Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

R
८०
प्र ८ ६ स
भा० ६

विषय संख्या
पुस्तक संख्या
आगत पंजिका संख्या

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्ज़ित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। ३१८

112834

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३१८D

12 AUG 1974

यह पुस्तक वितरित न की जाय
NOT TO BE ISSUED

सन्दर्भ ग्रन्थ
REFRENCE BOOK

हस्त लिखित १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकु

विषय स
पुस्तक
आगत प
पुस
वर्ज़िल
तक पुस्त

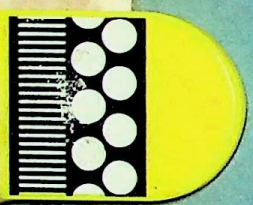

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

३१८
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112834

1973

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रि

112834

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

भाग ७

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० सर०
आगत सं० ७(१-१२)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी

सम्पादक,

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

प्रकाशक,

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

१९०६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

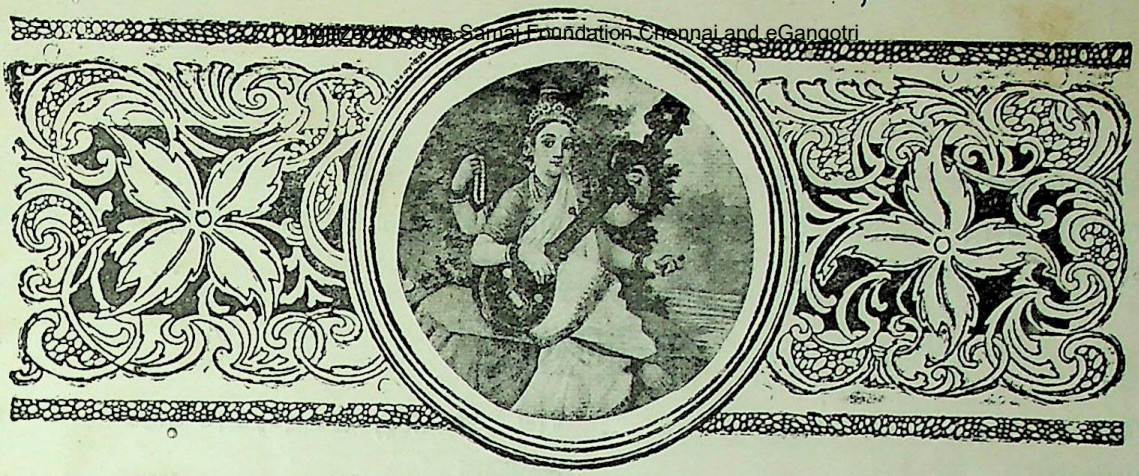

सूचीपत्र ।

☞ जिन लेखों के पहले * ऐसे चिन्ह हैं वे सचित्र हैं ।

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
	१—आख्यायिकायें ।		
१	एक अशरफ़ी की आत्म-कहानी ...	पण्डित वेङ्कटेशनारायण त्रिपाठी ...	३९९
२	एक के दो दो	लाला पार्वतीनन्दन ...	२६५
३	कुम्भ में छोटी बहू	श्रीमती "वङ्ग-महिला" ...	३४२
४	चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान ...	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०	१०४
५	दान-प्रतिदान	श्रीमती "वङ्ग-महिला" ...	१३५
६	प्रोषित-पतिका	चाँदनी	१७४
७	भूलभुलैयाँ	चतुर्वदी	३१
८	मेरा पुनर्जन्म	लाला पार्वतीनन्दन ...	५६
९	राजपूतनी	भट्टाचार्य्य	१९३
	२—आध्यात्मिक विषय ।		
१	एक योगी की साप्ताहिक समाधि ...	सम्पादक	४०२
२	एकही शरीर में अनेक आत्मायें ...	पण्डित मधुमङ्गल मिश्र, बी० ए०...	१८४
३	परमात्मा की परिभाषा	सम्पादक	३२१
४	परलोक से प्राप्त हुए पत्र	,, ...	२२७
	३—ऐतिहासिक विषय ।		
१	अकबर की मृत्यु	बाबू प्रमथनाथ भट्टाचार्य्य ...	२६८
२	प्रश्नोत्तररत्नमाला का कर्त्ता	पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा	२७९
३	प्राचीन भारत के विश्व-विद्यालय ...	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी और पण्डित वेङ्कटेशनारायण त्रिपाठी	२९१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ	नम्बर
४	महाराणी विक्टोरिया का घोषणापत्र ...	सम्पादक	१५६	२८
५	*रामगिरि अथवा रामटेक	पण्डित गणपति जानकीराम दुबे, बी०ए०	२०	२९
६	*साँची के पुराने स्तूप	सम्पादक	२१७	३०

४—कविता।

१	अक्षर एक	राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	३०२	३१
२	आर्य्य-भूमि	सम्पादक	१३४	३२
३	ईश्वर-स्तुति	पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	१०	
४	उद्बोधन	,, ...	४२१	३३
५	*ऊषा-स्वप्न	सम्पादक	११	३४
६	कर्त्तव्य-पञ्चदशी	,, ...	२१६	३५
७	कवि और स्वतन्त्रता	,, ...	२६४	
८	कान्यकुब्ज-अबला-विलाप	सम्पादक	३५१	१
९	काल की आत्म-कहानी	सैयद अमीर अली ...	३१०	२
१०	काव्यकुसुमाञ्जलि	श्रीमती पार्वती देवी ...	१३१	३
११	*केरल की तारा	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	३८०	४
१२	कोकिल	बाबू जीतनसिंह	१३२	५
१३	*गङ्गा-भीष्म	सम्पादक	१७३	६
१४	*गौरी	,, ...	१०३	७
१५	ग्रीष्म	पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	२१३	
१६	घर में शान्ति	बाबू रामरणविजयसिंह ...	५६	८
१७	ठहरौनी	सम्पादक	४३७	९
१८	पवन-दूत	पण्डित रामचरित उपाध्याय ...	२६२	
१९	पावस-पञ्चाशिका	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	३६६	१०
२०	पुस्तक-प्रेम	पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	५३	११
२१	प्यारा वतन	सम्पादक	५४	१२
२२	प्रणय की महिमा	बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	२१५	१३
२३	*प्रियंवदा	सम्पादक	४८९	१४
२४	बम्बई का समुद्र-तट	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ...	१३	
२५	बरसाती कविता	राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	३०२	१५
२६	बालक-विनोद — भगवान की बड़ाई	पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय	१०२	
	बालक-विनोद — कोयल			
	बालक-विनोद — शहर और गाँव ...	सम्पादक	१५४	१
२७	*"भानु की झाँकी"	श्रीयुक्त कामताप्रसाद गुरु ...	५५	२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठ	नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
१५६	२८	महिला-परिषद् के गीत	सम्पादक	३७
२०	२९	वन्दे मातरम्	,, ...	१२
२१७	३०	वर्षा	पण्डित बालचन्द्र शास्त्री ...	२८९
			पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	३१९
	३१	वर्षा-ऋतु	श्रीमुरारि वाजपेयी काव्यतीर्थ ...	३२५
३०२	३२	शरद	,, ...	३९८
१३४			पण्डित गिरिधर शर्म्मा	४३०
१०			पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी	
४२१	३३	शरीर-रक्षा	सम्पादक	१७४
११	३४	समालोचक-लक्षण	पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा ...	३००
२१६	३५	हमारा अधःपतन	,, ...	१९०
२६४				

५—जीवन-चरित।

३५१	१	* एफ०एस० ग्राउस, एम०ए०, सी०आई०ई०...	बाबू काशीप्रसाद ...	५
३१०	२	*डाक्टर जी० थीबो, पी०एच०डी, सी०आई० ई०	सम्पादक	२८७
१३१	३	धनुर्विद्या-विशारद राना सुल्तानसिंह ...	,, ...	२०८
३८०	४	नरहरि और हरिनाथ	पण्डित रामशरण त्रिपाठी ...	४८
१३२	५	*पण्डित प्रतापनारायण मिश्र	सम्पादक	८८
१७३	६	बाबू काशीनाथ खत्री	पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ...	४३४, ४६४
१०३	७	*महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न, सी० आई० ई०	बाबू यशोदानन्दन अखौरी ...	३३७
२१३				
५६	८	*मिर्ज़ा गुलाम-अहमद क़ादियानी ...	पण्डित महेन्दुलाल गर्ग ...	३७७
४३७	९	*रीवाँ-नरेश सर वेङ्कटरमणसिंह जू देव, जी० सी० एस० आई०	बाबू जीतनसिंह ...	२९४
२६२				
३६६	१०	*शेक्सपियर	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०	४१६
५३	११	श्रीयुक्त दादा भाई नौरोजी	पण्डित उदयनारायण वाजपेयी...	४९०
५४	१२	सुल्तान अब्दुल अज़ीज़	सम्पादक	१७०
२१५	१३	*स्वर्गीय आनन्दमोहन वसु, एम० ए० ...	पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०	४६८
४८९	१४	*स्वामी सच्चिदानन्द मुनि ...	राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल० और बाबू सहदेवप्रसाद	१२९
१३				
३०२	१५	हर्बर्ट स्पेन्सर	सम्पादक	२५५
१०२				

६—फुटकर विषय।

१५४	१	आख्यायिका	सम्पादक	१०९
५५	२	,, का उत्तरार्द्ध	पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	१५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
३	*आलसी और हत्यारे पक्षी	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०	४४
४	जापान के स्कूलों में जीवन-चरित-शिक्षा ...	सम्पादक	८
५	जापान में शिक्षा-प्रणाली	,, ...	३
६	जीवन-बीमा	पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०	४९३
७	*टिड्डी-दल	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०	२४
८	द्रव्य-माहात्म्य	पण्डित यमुनाप्रसाद पाण्डेय ...	३०३
९	*बलरामपुर का खेदा	सम्पादक	१४
१०	मनोरञ्जक श्लोक	,, ... ४४, २९०, ३३	
	,, ...	सैयद अमीर अली ...	८
	,, ...	पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ...२५०, ४०९, ५००	
	,, ...	पण्डित गिरिधर शर्म्मा ...	३७
११	वार्षिक विनय	सम्पादक	४५७
१२	विविध विषय†	,, १, ४५, ८५, १२५, १६५, २०५, २५१, २९१, ३३१, ३७२, ४१३, ४५९	
१३	शिक्षा	,, ... १८१, २३६, २७५, ३८१	
१४	"शिक्षा" की भूमिका	,, ...	४२२
१५	हिन्दी-मिश्रित संस्कृत-श्लोक	,, ...	४०८
१६	हृदयोच्छ्वास	,, ...	४४८
१७	हंस का नीर-क्षीर-विवेक	,, ...	४३१

७—विचित्र विषय।

१	अद्भुत इन्द्रजाल	सम्पादक	२६
२	अन्ध-लिपि	,, ...	४७
३	दिव्य दृष्टि	,, ...	१०१
४	भेड़ियों की माँद में पले हुए लड़के ...	,, ...	३५१
५	*विस्यूवियस का विषम स्फोट	,, ...	२८१

८—वैज्ञानिक विषय।

१	कृत्रिम हीरा	पण्डित गिरिजादत्त वाजपेयी, एम० ए०	१९७
२	क्या जानवर भी सोचते हैं?	सम्पादक	१९९
३	*खगोल-विज्ञान	बाबू जैनेन्द्रकिशोर ...	३८३

† विविध विषयों में अनेक विषय सचित्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्बर	लेख	लेखक	पृष्ठ
४	*गुरुत्वाकर्षण-शक्ति	पण्डित शुकदेवप्रसाद तिवारी, बी० ए०	१४०
५	मङ्गल-ग्रह तक तार	सम्पादक	२८५
६	*वागस्पतिक सज्ञानता	,, ...	३४८
७	विकास-सिद्धान्त...	,, ...	३१३
८	विवीसेक्शन	पण्डित महेन्दुलाल गर्ग ...	२०१
९	*सूर्य्य के धब्बे	पण्डित सरयूनारायण त्रिपाठी, एम० ए०	४०६

९—स्थल, नगर, जात्यादि-वर्णन ।

१	*मुरशिदाबाद	सम्पादक	४७६
२	*राजपूताने के भील	पण्डित गङ्गासहाय ...	१११
३	स्त्री-स्वर्ग	बाबू माणिक्यचन्द्र जैन ...	४८४

१०—साहित्य-विषय ।

१	उर्दू और आज़ाद	सम्पादक	१४९
२	देवनागरी में गवर्नमेंट-गज़ट	पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०	३२४
३	पुस्तक-परीक्षा	सम्पादक ४१, ८२, १२३, १६०, २०३, २४९, २९०, ३२९, ३७०, ४५३	
४	भद्दी-कविता	,, ...	३९३
५	भाषा और व्याकरण	,, ...	६०
६	लखनवी रामायण	पण्डित यमुनाप्रसाद पाण्डेय ...	४४५
७	शब्द-रहस्य	बाबू व्रजनन्दनसहाय ...	१७६
८	शब्दार्थ-विचार	सम्पादक	४५१
९	शेक्सपियर का हैम्लेट	पण्डित सूर्य्यनारायण दीक्षित, बी० ए०	२३८
१०	सत्कविता पर बातचीत	राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०	३६४
११	*हिन्दीप्रदीप	सम्पादक	३२६
१२	"हिन्दू" शब्द की व्युत्पत्ति	,, ...	२३०

११—हँसी-दिल्लगी ।

१	खटमलचन्द की चिट्ठी	लाला पार्वतीनन्दन ...	४२७
२	जम्बुकी न्याय (कविता)	सम्पादक	११८
३	टेसू की टाँग (कविता)	,, ...	४१०
४	शङ्कराचार्य्य और मण्डन मिश्र का संवाद ...	,, ...	३१६
५	सरगौ नरक ठेकाना नाहिँ (आल्हा) ...	कलू अलहइत	३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सरस्वती ।

ऊषास्वप्न ।
रविवर्म्मा कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गा-भीष्म ।

रविवर्मा-कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्कर-भिल्ली ।

रविवर्म्मा-कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सावित्री—सत्यवान् ।

रविवर्म्मा कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौरी ।

रविवर्म्मा-कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

कालीयमर्दन ।

राजा रविवर्म्मा कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरही यक्ष ।

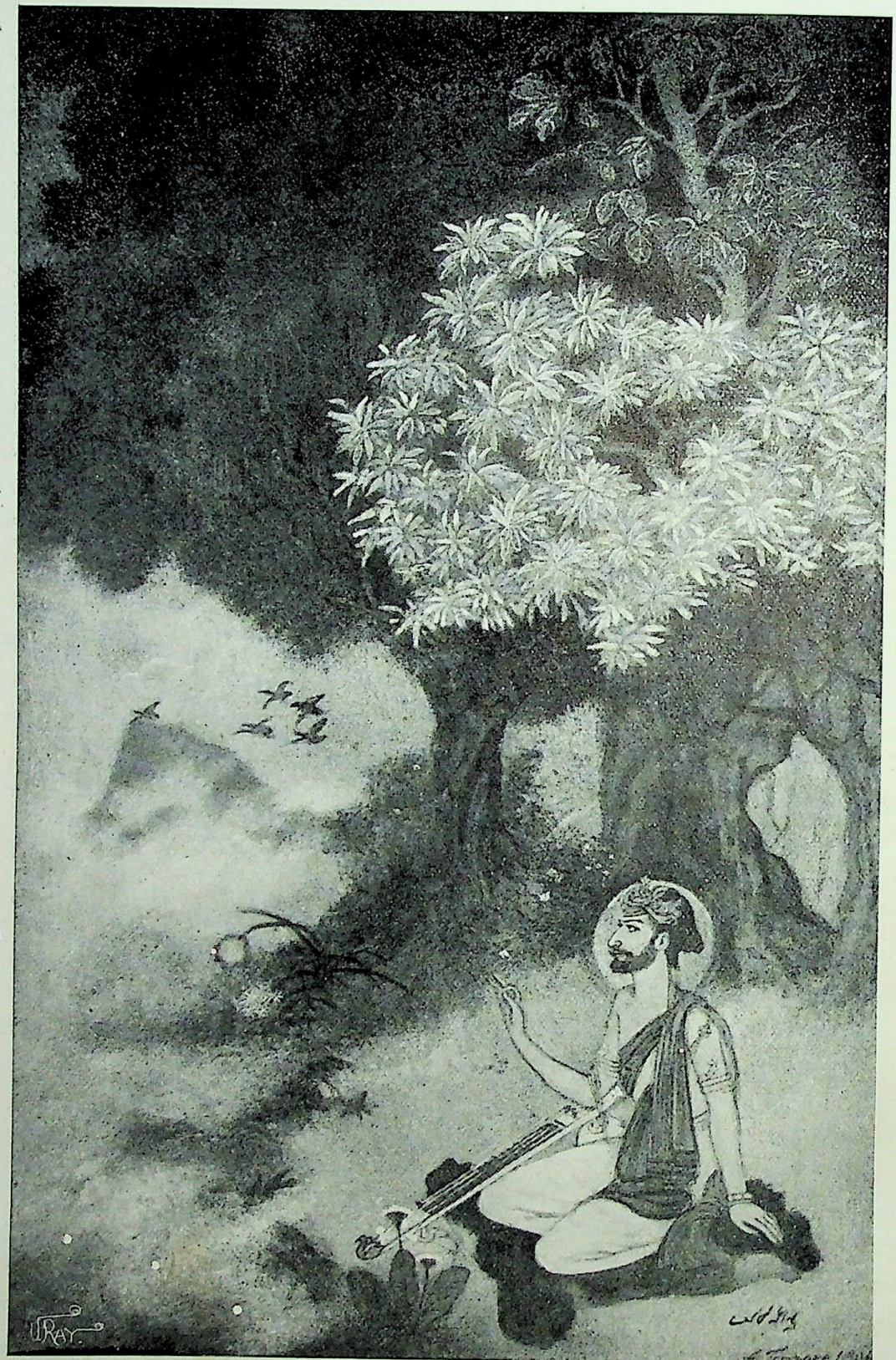

सावनके दिग आवन में वह नारिके प्रान बचावन काज । बादर दूत बनावनको कुशलात संदेश पठावन काज ॥
लै कर कूटज फूल्ल नए मन-कल्पित अर्घ बनावन काज । बोलत प्रीतिके बोल लग्यो हँसते मुख नेह बढ़ावन काज ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(राजा लक्ष्मणसिंह)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारा ।

राजा रविवर्म्मा-कृत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

सैंट जॉन ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रियंवदा ।

(राजा रविवर्म्मा चित्रित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

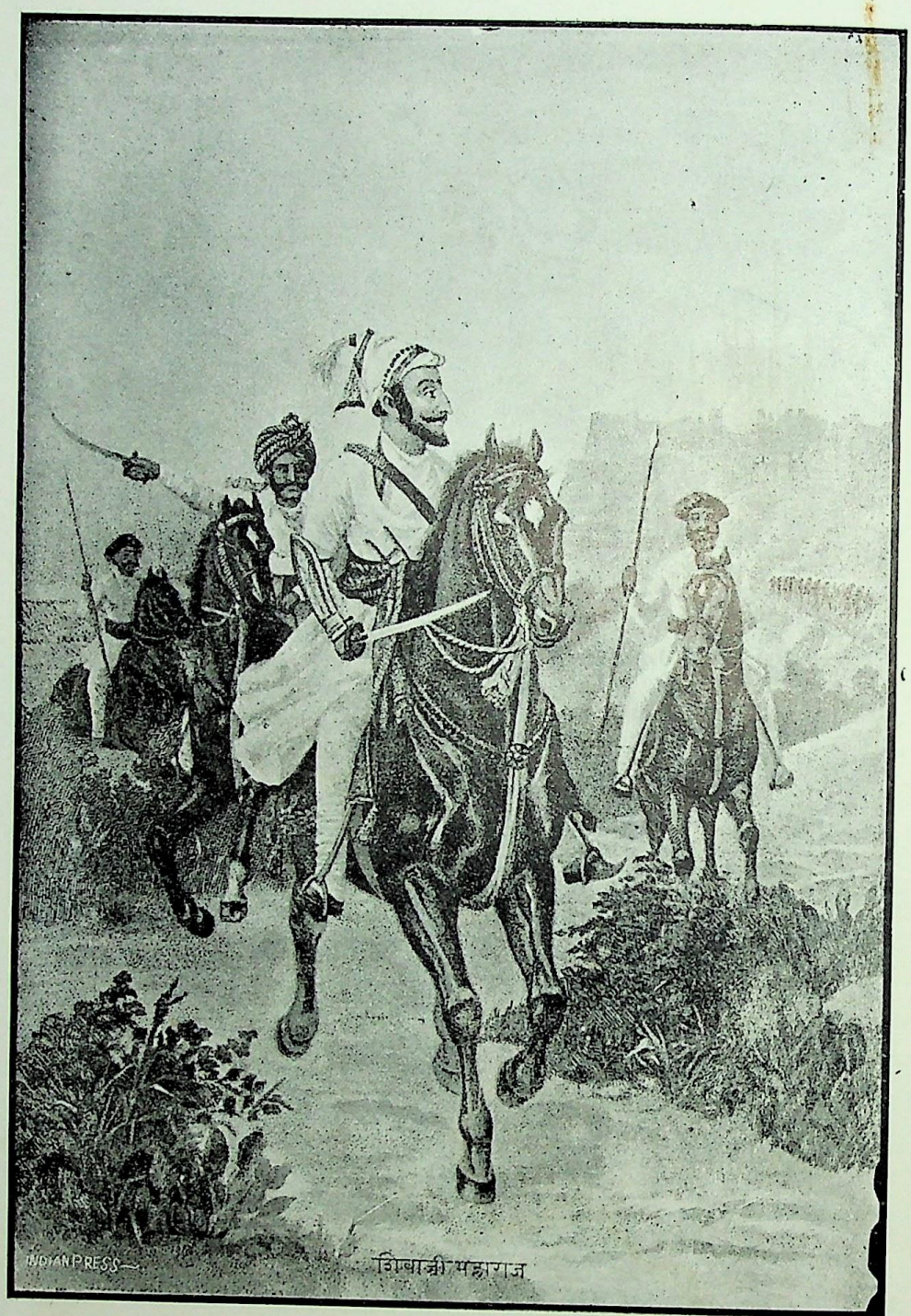

छत्रपति श्रीशिवाजी महाराज।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न,
सी० आई० ई०,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

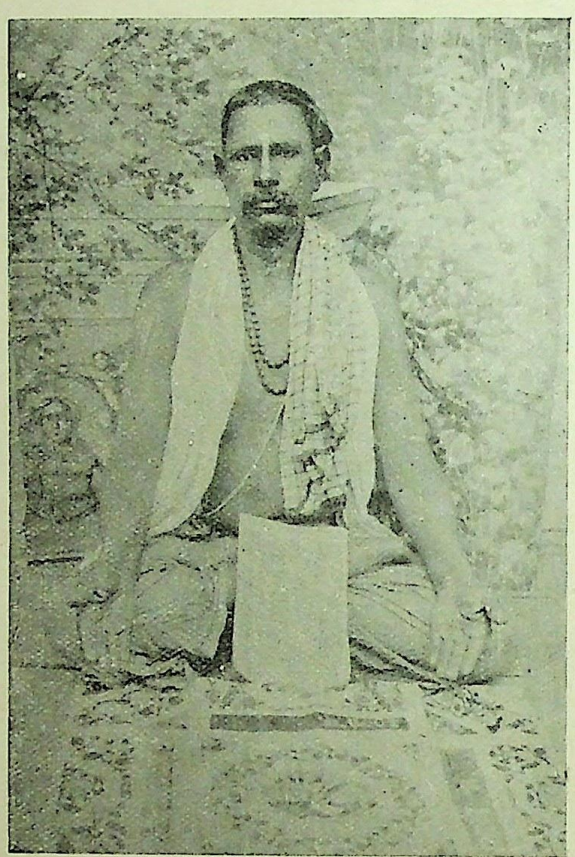

हिन्दी-प्रदीप के सम्पादक

पण्डित बालकृष्ण भट्ट ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रीवाँ-नरेश सर वेङ्कटरमण सिंहजू देव, जी. सी. एस. आई. ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

डाक्टर जी० थीबो, पी० एच्० डी०, सी० आई० ई०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

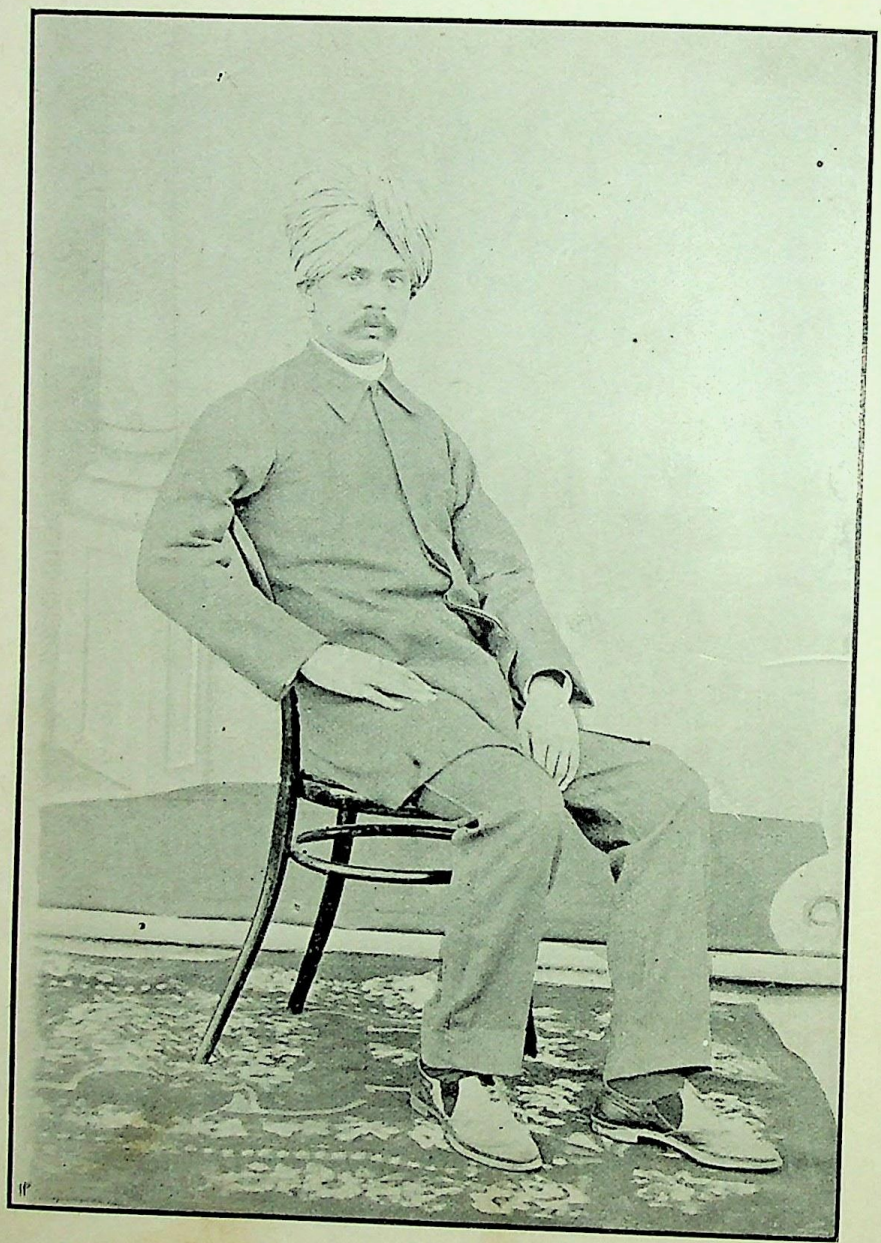

बाबू जगन्नाथप्रसाद (भानुकवि)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालेज, लाहौर के
जापानी अध्यापक मि० टी० गोटो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

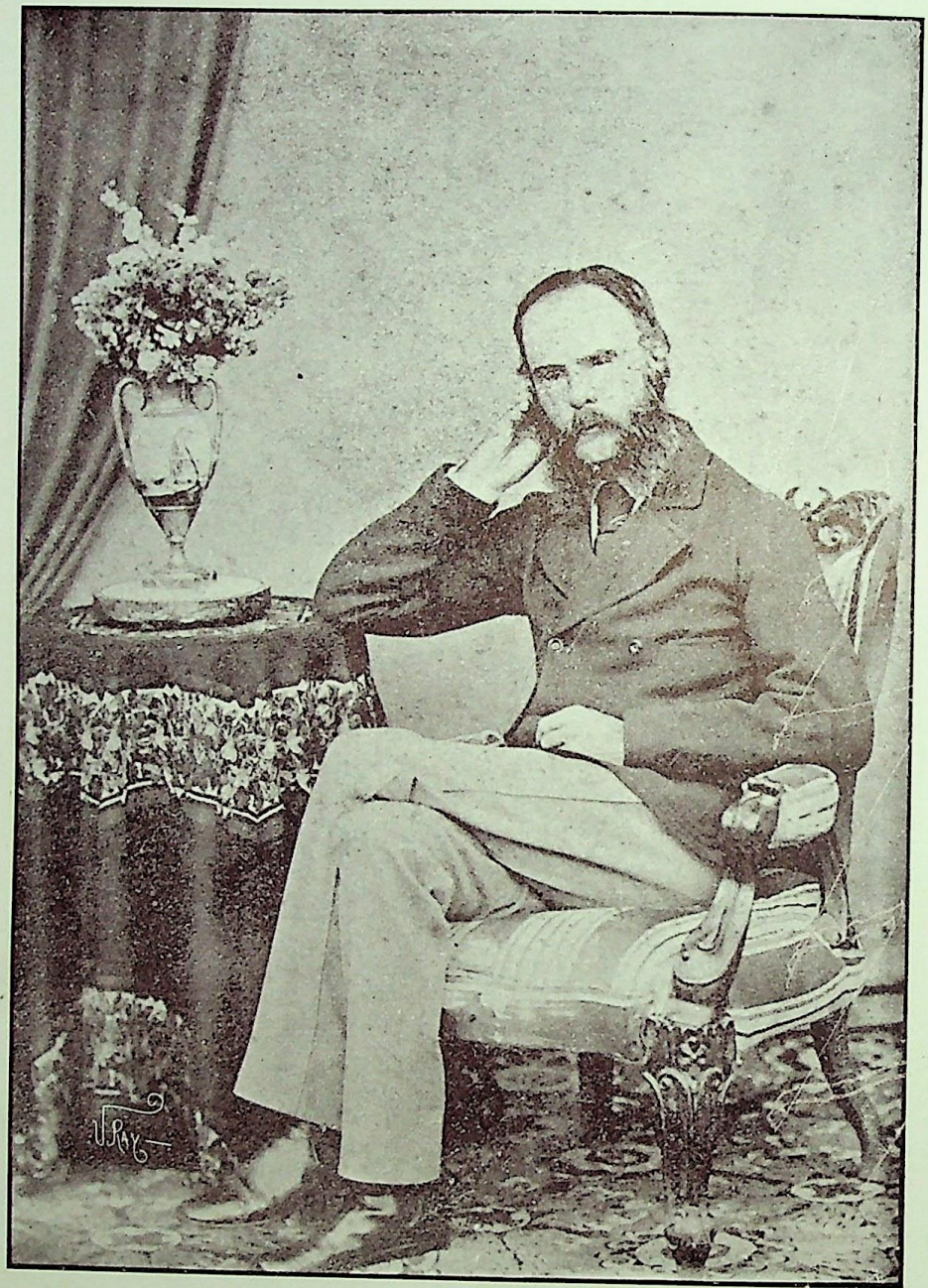

मि० फ्रेडरिक सॉलमन ग्राउस, एम० ए०, सी० आई० ई०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

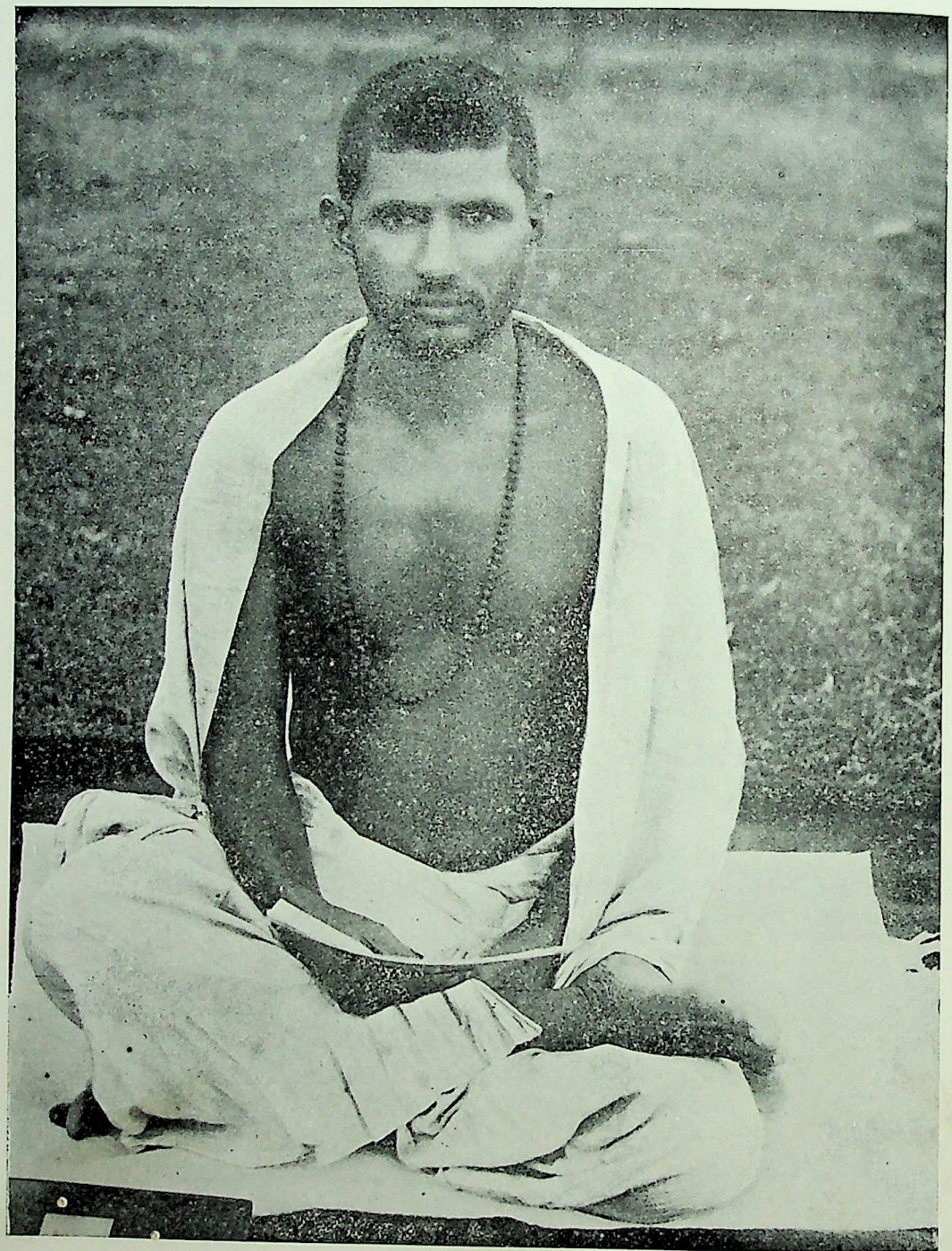

स्वामी सच्चिदानन्द मुनि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० प्रतापनारायण मिश्र ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माननीय पण्डित सुन्दरलाल, बी० ए०, राय बहादुर,
वैस-चैनसेलर, इलाहाबाद युनीवर्सिटी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

चित्रविद्याविशारद स्वर्गवासी,
राजा रविवर्म्मा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

मिरज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

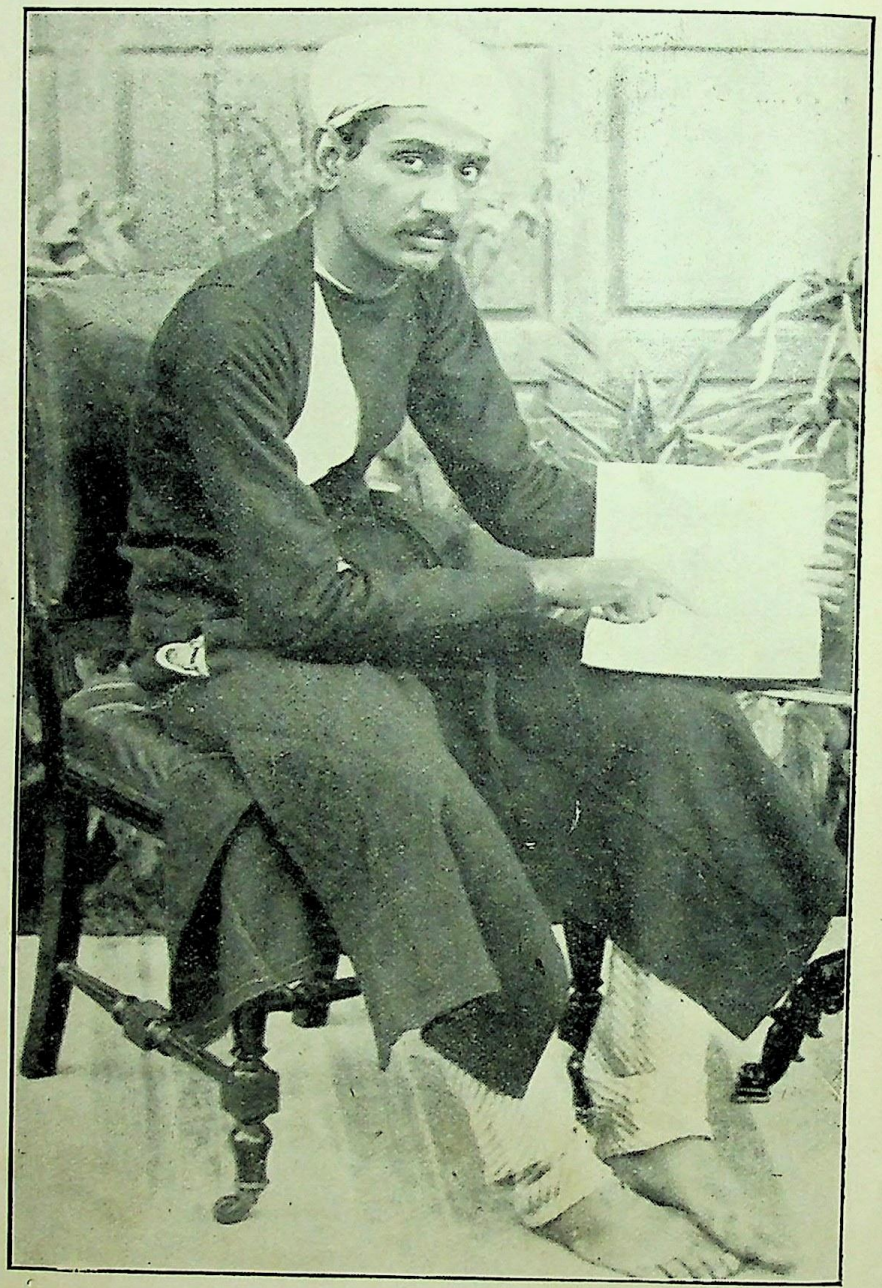

पण्डित गिरिधर शर्म्मा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

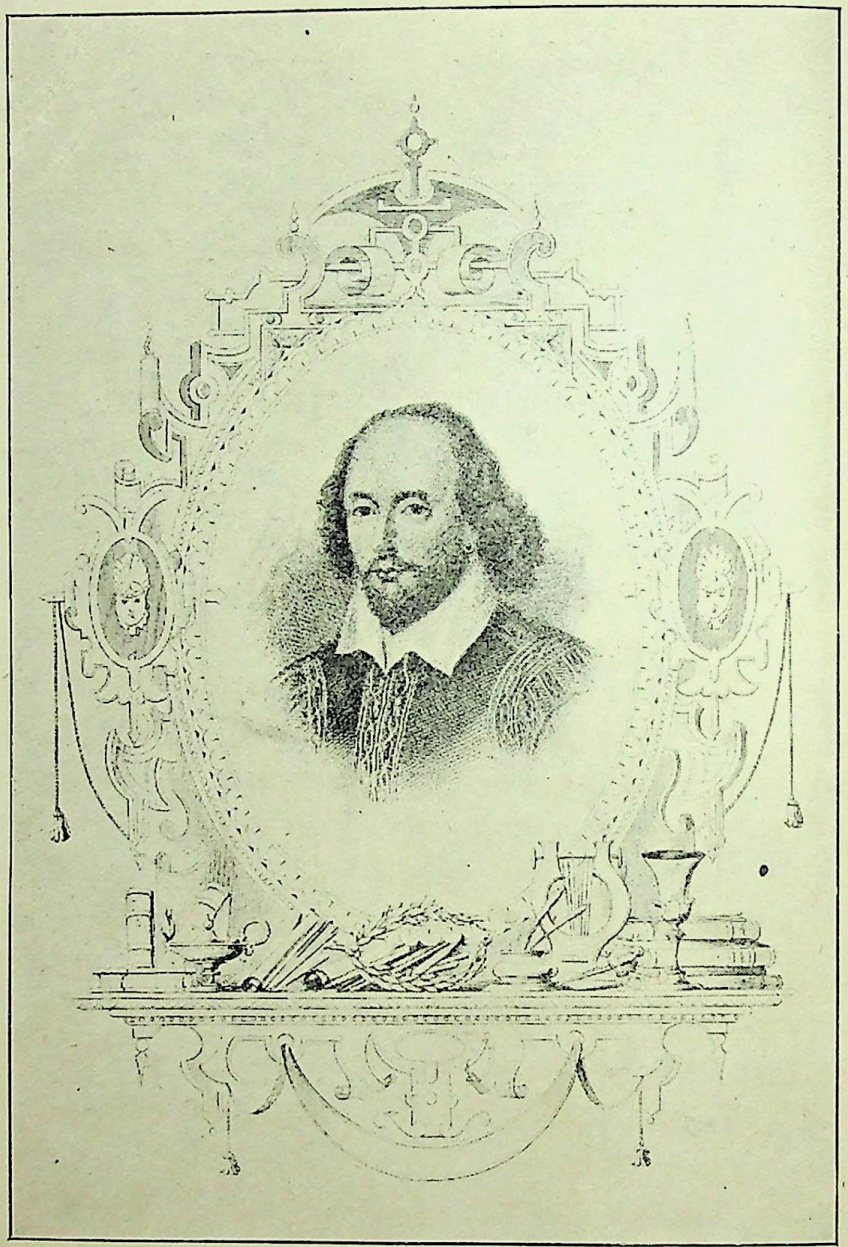

शेक्सपियर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती

भारत के सच्चे हितैषी

श्रीयुक्त दादाभाई नौरोजी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवाब सिराजुद्दौला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

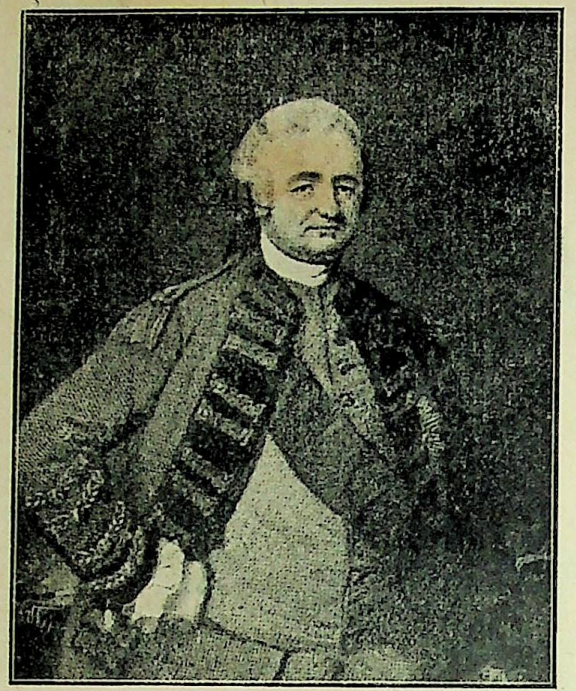

लार्ड क्लाइव ।

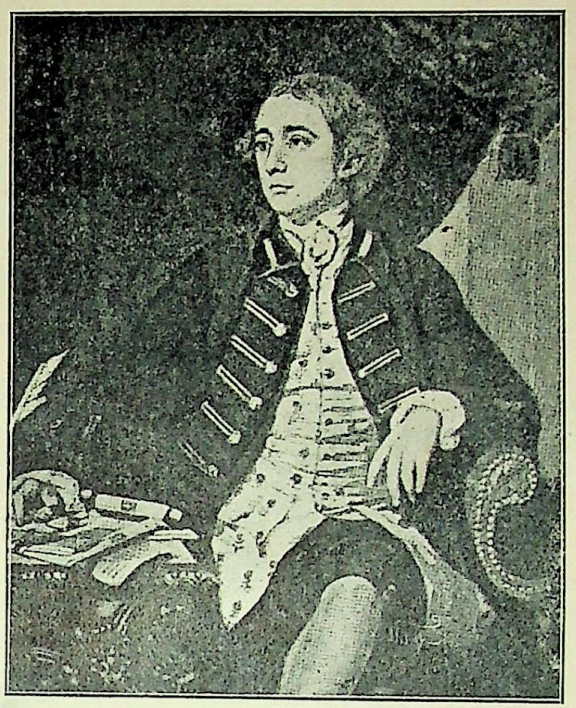

वारन हैस्टिंग्ज़ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्गीय आनन्द मोहन वसु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

आशुकवि पण्डित अयोध्यानाथ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक सं० सर०
आगत सं० ७(१)
तिथि०
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

सरस्वती ।

भाग ७] जनवरी, १९०६ [संख्या १

विविध विषय ।

इस अङ्क के साथ ऊषास्वप्न नामक राजा रविवर्म्मा का एक चित्र पाठकों की भेंट किया जाता है। आशा है, पाठक उसको पसन्द करेंगे। इस वर्ष, इसी तरह, प्रत्येक संख्या में रविवर्म्मा का एक एक चित्र देने का विचार है।

* * *

कानपुर के उर्दू मासिकपत्र "ज़माना" का अक्टोबर का अङ्क देर से, यानी दिसम्बर में, निकला; पर निकला बहुत अच्छा। इस अङ्क में ३२ पृष्ठ हैं। यह अकबर की यादगार में निकला है। इसमें अकबर, मानसिंह और राजा राममोहन-राय के चित्र हैं। पिछला चित्र सेप्तम्बर के "ज़माना" से सम्बन्ध रखता है। कई एक इमारतों के भी चित्र इस अङ्क में हैं। अकबर आज़म, अकबर की रूहानियत, अकबर की बेतअस्सुबी इत्यादि कई अच्छे अच्छे लेख अकबर के विषय में इसमें हैं। फ़ैज़ी, अबुलफ़ज़ल, टोडरमल, मानसिंह आदि पर भी लेख हैं। छ सात कवितायें भी हैं। यह अङ्क मनोरम और सुपाठ्य है। इसमें जो लेख फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल पर है उसे हमने साद्यन्त पढ़ा है। पहले पहल अकबर के दरबार में पहुँचने पर फ़ैज़ी कटेहरे के बाहर खड़ा किया गया। इस पर उसने यह पद्य पढ़ा—

बादशाहा बरून पिंजरा अम।
अज़ सरे लुत्फ़ ख़ुद मरा जा देह॥
ज़ां कि मन तूतिये शकर ख़ायम।
जाय तूती दरून पिंजरा बेह॥

हे बादशाह, मैं पिँजड़े के बाहर हूं। कृपा करके मुझे जगह दे। क्योंकि मैं शकर के समान मीठी बोली बोलनेवाली तूती हूं और तूती को पिँजड़े के भीतर जगह मिलनाही अच्छा है। (बाहर रहने से वह उड़ जा सकती है)। इस लतीफ़े को सुनकर अकबर ने फ़ैज़ी को फ़ौरन भीतर बुला लिया।

* * *

अमेरिका के विश्वविख्यात आविष्कर्ता एडीसन साहब ने बिजली की एक बैटरी (कोश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाई है। उसमें इतनी ताक़त है कि वह पचास साठ मन वज़नी गाड़ी एक घण्टे में ३३ मील के हिसाब से खींच सकती है। एक घोड़े के रखने में जो ख़र्च पड़ता है, क़रीब क़रीब उसका आधा ही ख़र्च इस बैटरी से काम लेने में पड़ता है। इसे एक दफ़ा लगा देने से १५० मील तक यह एक गाड़ी खींच सकती है; तब कहीं दुबारा इसमें मसाला भरने की ज़रूरत पड़ती है।

* * *

इँगलैण्ड के बार्टल्यट साहब ने एक नये तर्ज़ की बाइसिकल (पैरगाड़ी) बनाई है। वज़न में यह कुछ अधिक है; पर, इस पर सवार होने में आराम बहुत मिलता है। बैठने की जगह के

पीछे, इसमें, एक छोटी सी कुरसी रहती है। कुरसी के पीछे पीठ लगा कर बैठने का भी इसमें प्रबन्ध है। इसमें एक और भी विशेषता है। पकड़ने के लिए जो हैंडल होते हैं वे और गाड़ियों में अगले टायर (पहिये) के ऊपर रहते हैं। पर इसमें वे बैठक के पासही, कुरसी के ठीक

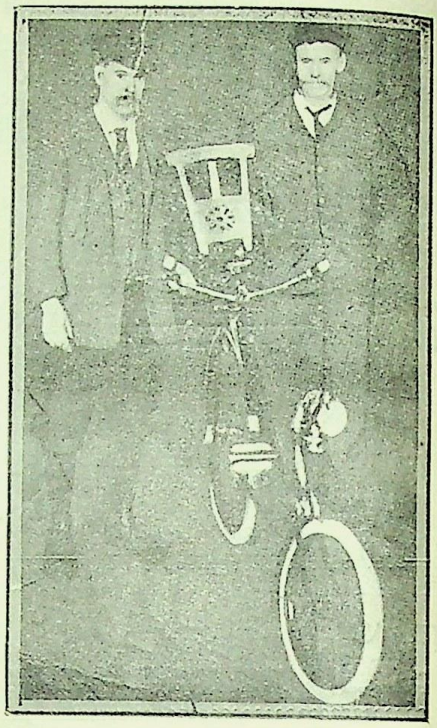

नीचे, होते हैं। इस कारण आगे को झुकना नह पड़ता और बैठने वाला बहुत आराम के साथ गा चला सकता है। यह गाड़ी बहुत थोड़ी जगह घूम सकती है और इच्छानुसार, बड़ी आसानी धीरे या जल्दी चलाई जा सकती है। इच्छानुसा यह तत्काल खड़ी भी की जा सकती है। इसमें गि का बहुत ही कम डर रहता है। इसकी क़ीम मामूली गाड़ियों ही के बराबर है, अधिक नहीं।

* * *

दिसम्बर १९०५ को नागरीप्रचारिणी पत्रिका में यह नोटिस दी गई थी कि नागरीप्रचारिणी "सभा का एक विशेष अधिवेशन शनिवार ता० दिसम्बर को सवेरे ८ बजे सभाभवन के निकट विशेष मंडप में होगा। इसमें 'भारतवर्ष के लि एक लिपि' के सम्बन्ध में विचार होगा"। सुनते हैं, सभा ने एक दिन पहलेही यह अधिवेश कर डाला। इस दिन-परिवर्तन का बात किसी जानी, किसी ने न जानी; इससे सभा के वृहदधिवेशन में कोई गया, कोई गया ही नहीं।

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई कोई कीड़े भी दुनिया में भीमकाय होते हैं। उन्हें कीड़ों का भीमसेन कहना चाहिए। अमेरिका में एक कीड़ा कोई ७ इंच लंबा होता है। उसके मुँह पर एक सींग होता है। सींग की लंबाई ३ इंच होती है। उसके पंख, फैलने पर, एक सिरे से दूसरे सिरे तक, ८ इंच होते हैं। उसके अगले पैर देख कर डर लगता है; वे केंकड़े के आँकड़ों के समान होते हैं? ब्रेज़ील में भी एक बहुत बड़ा कीड़ा होता है। उसकी लंबाई ६ इंच होती है। उसके आँकड़ों का आकार आरे का ऐसा होता है; आरे ही के ऐसे दाँत उनमें होते हैं। उसका पकड़ से छोटे छोटे कीड़े किसी तरह नहीं बच सकते। उसके परों के ढकने पर सुर्ख़ी लिये हुए भूरी भूरी धारियां होती हैं। अमेरिका में एक प्रकार के और बड़े बड़े कीड़े होते हैं। उनकी शकल कुछ कुछ

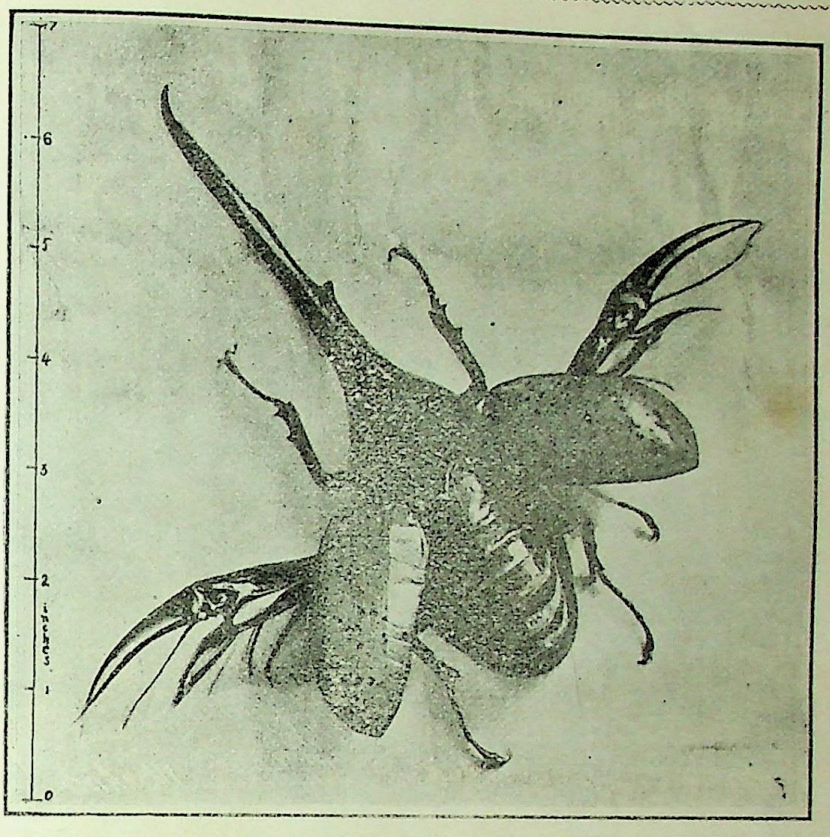

अमेरिका का भीमकाय कीड़ा।

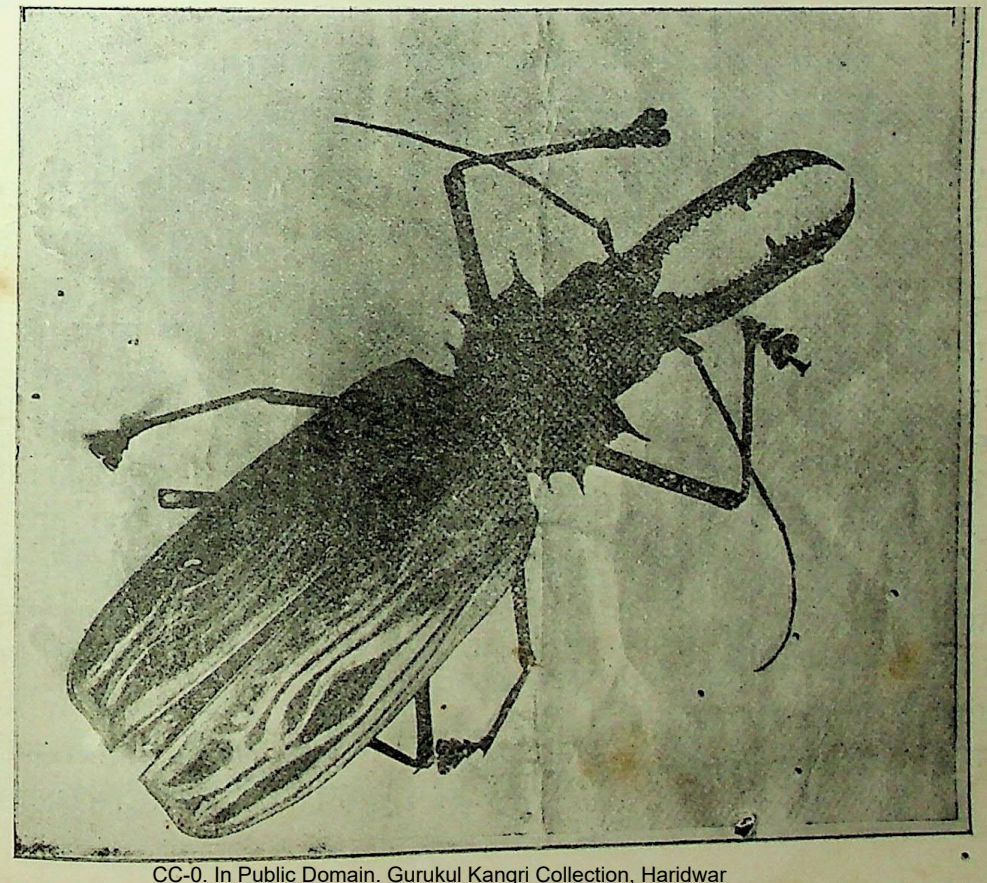

ब्रेज़ील का बड़ा कीड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमेरिका का लघु भीमकाय कीड़ा।

इस देश के गोबरोरों की ऐसी होती है। इनमें नर ५ इंच लम्बा होता है और मादी ३ इंच। नर के आगे एक सींग होता है, मादी के आगे नहीं।

* * *

विज्ञापन देना हम लोगों ने अँगरेज़ी अख़बारों से सीखा है। विज्ञापन की महिमा इस देश में हर रोज़ बढ़ती जाती है। उसके साथ ही विज्ञापनों का दुरुपयोग भी हो रहा है। उनकी मदद से कोई कोई महात्मा माल भी ख़ूब मारने लगे हैं। उनकी बदौलत कोई कोई महाशय, जिन्हें अपना नाम तक ठीक ठीक लिखना नहीं आता, ग्रन्थकार हो जाते हैं; जिन्हें बाज़ारू चूरन तक बनाना नहीं आता, राजवैद्य बन बैठते हैं; जिन्हें दुनिया के शास्त्रसमूह में से किसी और शास्त्र के मुखचुम्बन तक का मौक़ा नहीं आया, "कोखशास्त्र" के आचार्य्य-पद पर जा बैठते हैं। विज्ञापन दे में यहां विलायत का इतना ख़र्च नहीं पड़ता। विलायत में विज्ञापन देना एक विद्या हो गई है। विज्ञापन देने की नई नई युक्तियां वहां निकल करती हैं और लोग रुपये को पानी की तरह विज्ञापन देने में, उड़ाते हैं। लण्डन का प्रसिद्ध अख़बार "टाइम्स" पहले पहल जब १७८८ ई० में निकला, तब उसकी पहली ही संख्या में ६० विज्ञा पन प्रकाशित हुए। कुछ दिन में उनकी संख्या १०० हो गई। १८५० ईसवी के लग भग को छब्बीस सौ विज्ञापन उसकी एक संख्या में निकल लगे! १८६१ ई० में उनकी नौबत ४००० त पहुँच गई!!! विज्ञापन देने में, वहां, चार हज़ा रुपया ख़र्च कर देना गोया रुपये को फेंक देन है। कम से कम चालीस पचास हज़ार रुप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़र्च करने से लोगों का ध्यान कहीं विज्ञापन में उल्लेख की हुई चीज़ की तरफ़ अच्छी तरह खिँचता है। यदि किसी की इच्छा हो कि वह विज्ञापनों के द्वारा अख़बार पढ़ने वालों के दिल को एक दम अपनी मुट्ठी में कर ले तो उसे चार पाँच लाख रुपया ख़र्च करना चाहिए। लण्डन के किसी दैनिक पत्र के एक कालम में विज्ञापन देने से लगभग तीन हज़ार रुपये ख़र्च होते हैं। परन्तु यदि ऐसा विज्ञापन बार बार न दिया जाय तो उससे कुछ भी फ़ायदा न हो। रेल के बड़े बड़े स्टेशनों पर "पियर्स सोप" का जो विज्ञापन हम देखते हैं, उसके लिए इस साबुन के कारख़ाने के मालिकों को साल में बीस लाख रुपये के लग भग ख़र्च करना पड़ता है। पर उन्हें करोड़ों की आमदनी भी होती है।

बुधवर मि० एफ़्० एस्० ग्राउस, सी० आई० ई०।

"अंगरज़ी अरु फ़ारासीस भाषा कौ पण्डित।
संस्कृत-हिन्दी-रसिक विबिध-विद्यागुन-मण्डित॥
गुनियन कौ सर्वस्व, दीप निज सेत दीप कौ।
परम भक्त सेवक सुजान अपने महीप कौ॥
निज बानी में कीन्हीं तुलसी कृत रामायन।
जासु अमी-रस पियत आज अंगरेज़ी बुधगन"॥

पं० श्रीधर पाठक।

विद्वत्वञ्च नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

आज हम एक ऐसे कीर्तिधाम विद्वान् का चित्र-सहित संक्षिप्त चरित आपको भेंट करते हैं, जो मानस-रामायण का अपनी भाषा में गान कर निज नाम को अमर कर गये हैं। ज़िले के एक साधारण हाकिम होकर वे अपने विद्याबल और गुणग्राहकत्व के द्वारा, इस देश में, लाट साहबों से भी अपने को अधिक सरणीय कर गये हैं।

विल्डेस्टन (इप्स्विच) के रहनेवाले, एवर्ट ग्राउस साहब के ये सबसे छोटे बेटे थे। सन १८३६ में ये पैदा हुए, और आक्सफ़ोर्ड के ओरियल और क्वीन्स कालेजों में शिक्षित हुए। ये अपने कालेज के नामी छात्र थे। आक्सफ़ोर्ड ही में इन्होंने एम० ए० पास किया। १८६० ई० में बङ्गाल की सिविल सर्विस में ये दाख़िल हुए और १८६१ में एशियाटिक सोसाइटी के सभ्य चुने गये।

ग्राउस साहब की राजसेवा का अधिकांश आगरा प्रान्त—मथुरा, मैनपुरी और फ़तहगढ़—में बीता। कुछ वर्षों तक ये बुलन्दशहर और थोड़े समय के लिए फ़तहपुर में भी रहे।

जिस जिस जगह के ये कलेक्टर रहे उस उस जगह को इन्होंने अलङ्कृत कर सुन्दरतर किया। हिन्दुओं की पुरानी इमारतों के आप बड़े प्रेमी थे। इनके शासित प्रत्येक स्थान में आपको "गूरूस" साहब के कीर्त्तिस्तम्भ, मरम्मत कराये हुए देवालय, नवनिर्म्मित बाज़ार, पुल, घाट या विद्यालय आदि के रूप में मिलेंगे। वृन्दावन के प्रसिद्ध गोविन्द देव के मन्दिर*, और मथुरा-ज़िले की और कई एक प्राचीन इमारतों, का जीर्णोद्धार सिर्फ़ इन्हीं की बदौलत हुआ। बुलन्दशहर को तो इन्होंने चारही वर्ष में, स्थानीय रईसों की सहायता से, क़सबे से एक ख़ासा शहर कर डाला। लकड़ी और पत्थर का काम करनेवाले कारीगरों के आप बड़े ही क़दरदाँ थे। बारिकमास्तरी के अफ़सर, रुड़की में सीखे हुए कारीगरों के सामने बुलन्दशहर के कारीगरों को पसन्द नहीं करते थे। इस पर उन कारीगरों की हिमायत में ग्राउस साहब ख़ूब लड़े।

* "सम्बत् ३४, श्री शकबंध अकबर शाहराज श्रीकर्मकुल श्रीपृथाराजाधिराज वंश महाराज श्री भगवन्तदास सुत श्री महाराजाधिराज श्रीमानसिंह देव श्रीवृंदावनजोग पीठस्थान मंदिर कराजौ श्रीगोविन्ददेव को।"—उक्तमन्दिर का शिलालेख।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पायोनियर" पत्र में आपने बड़े ज़ोर शोर के साथ विवादात्मक लेख लिखे। पर खेद है कि उनका प्रयत्न निष्फल गया। यहां तक निष्फल गया कि आप बुलन्दशहर में मकान वग़ैरह बनाने की विद्या सिखलाने की एक पाठशाला स्थापित किया चाहते थे, सो भी न कर सके।

इस तरह कारीगरी की तरफ़ प्रवृत्ति के साथ ही साथ, इनमें, साहित्य और भाषा शास्त्र सम्बन्धी अध्ययन की अभिरुचि भी थी। यह इनमें दो भिन्न गुणों का दुर्लभ और विलक्षण एकत्र समावेश था। पहले कहा जा चुका है कि स० १८६१ में ये एशियाटिक सोसाइटी (बँगाल) में सम्मिलित हुए। ३० वर्ष तक परमोत्साह के साथ, इस सभा में, इन्होंने काम किया। "पायोनियर" लिखता है कि शुरू ही शुरू में इन्होंने अपने को अध्ययन के उस विषय में, अर्थात् ऊपरी भारत की देश भाषाओं के अध्ययन में, लगाया कि जिसके साथ उनके नाम का संसर्ग हमेशा बना रहैगा। उनका पहला लेख १८६६ में एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में छपा। बीम्स साहब ने आज कल की अदालती हिन्दुस्तानी (उर्दू) भाषा का पक्ष लिया था। बीम्स साहब के मत का, ग्राउस साहब ने, अपने इस लेख द्वारा, खण्डन किया। उन्होंने फ़ारसी-मिश्रित भाषा का घोर विरोध किया और सर्वसुगम भाषा के बर्तने पर ज़ोर दिया। लेकिन औरों के समान इनको भी, मुहर्रिरों के कुसंस्कार और दुराग्रह के कारण, निराश होकर यह विवाद छोड़ना पड़ा।*

स० १८६७ में, 'रोमनलिपि में भारतीय-लिपियों के अक्षरान्तर' पर (On the Transliteration of Indian Alphabets in the Roman Character) इन्होंने, एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में, लिखा। डा० ग्रियर्सन साहब इसीको इनका पहला लेख कहते हैं, पर "पायोनियर" ऊपर वाले लेख को। ख़ैर, इसके बाद ग्राउस साहब चन्द के रायसो के प्रकाशन में योग देने लगे। उस समय रायसो एशियाटिक सोसाइटी की ओर से छप रहा था। उसके पाठों की शुद्धता और अशुद्धता पर विवाद छिड़ गया। बीम्स और ग्राउस ने उस पर पहले अलग अलग आक्रमण किया। पर आगे चलकर दोनों विद्वान्, आपसही में, एक दूसरे की युक्ति का घनघोर खण्डन करने लगे। इस विषय में सोसाइटी के जरनल और इंडियन ऐंटिक्वरी में दोनों महाशयों के अनेक लेख निकले। एक अपने पाठ को ठीक ठहराता और अनुवाद को सही साबित करता और दूसरा उसे बड़ी ही बेरहमी से काटकर छिन्न भिन्न कर डालता। ये दोनों महाशय इसी तरह बङ्गाल में उलझ रहे थे कि डाक्टर हर्नलो ने रायसो के एक भाग का निजकृत बहुत ही उत्तम अनुवाद, सोसाइटी की ग्रन्थमाला (Bibliothica Indica) में, चुपके से छपवा दिया। इसकी भी आलोचना ग्राउस साहब ने, १८७४ में, इण्डियन ऐंटिक्वरी में, कर डाली। डा० ग्रियर्सन ने लिखा है कि १८७८ में ग्राउस साहब का आख़िरी प्रबन्ध, इसी विषय पर, प्रकाशित हुआ।

इसी दरमियान में मथुरा और अन्तर्वेद के पुरातत्व, रीतिनीति और कारीगरी की तरफ़ इनका ध्यान गया। १८७३ से १८७९ के बीच के एशियाटिक सोसाइटी के जरनल और इंडियन ऐंटिक्वरी में मथुरा पर इनके लिखे हुए बहुत से उत्तमोत्तम प्रबन्ध मुद्रित हुए। इन सब फुटकर लेखों को इकट्ठा करके, "मथुरा" (Mathura: A District Memoir) नामक ग्रंथ इन्होंने सम्पादित किया। इसकी पहली आवृत्ति की एक पुस्तक हमारे सामने है। उसमें चित्र नहीं है। पर हमने चौथी आवृत्ति की पुस्तक बहुत परिवर्द्धित और मनोरम चित्रों से भूषित देखी है। पहली आवृत्ति सन १८७... में, इलाहाबाद के गवर्नमेंट प्रेस से, दो भागों में निकली थी। इसकी भूमिका २२ नवम्बर, १८७...

* ता: १७ जून, सन १८९३, का "पायोनियर"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की लिखी हुई है। इस ग्रन्थ के पहले भाग में ज़िले का, उसके निवासियों के चाल-व्यवहार और भाषा का, ख़ास ख़ास रईसों का, व्रजमण्डल, व्रजयात्रा, कृष्णोपासना और वैष्णव सम्प्रदायों का, गोवर्द्धन, बरसाना, नन्दगांव आदि स्थानों का; मथुरा के इतिहास और पुरावृत्त का; और मथुरा-वृन्दावन की श्रेष्ठ इमारतों का, वर्णन है। दूसरे भाग में केवल ज़िले भर के परगनों का, सरकारी अफ़सरों के काम के लायक़ बयान है। इस ग्रन्थ के मुखपत्र में एक विशेषता है। उसके ऊपर सप्तपुरीवाला यह श्लोक दिया हुआ है।

काशी कान्ती च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि।
मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्योऽत्र मोक्षदाः॥

कहने की ज़रूरत नहीं 'काञ्ची' की जगह 'कान्ती' शब्द भूल है। शेष तीनों तरफ़ अनुष्टुप छन्द के एक एक अर्द्धक छपे हुए हैं, जिनमें "मथुरायां कृतं पापं, तत्रैव च विनश्यति" भी है।

सन १८७८ में ये बुलंदशहर को बदल आये, जहां ये ६ वर्ष तक रहे। इसके बाद ये फ़तहपुर आये और १८९१ तक वहां रहे। इन दोनों नगरों पर भी इन्होंने वर्णनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। पर मथुरा-वर्णन ही तीनों वर्णनों में सर्वोत्तम और मनोहारी हुआ। मथुरा से आपको बहुत प्रेम था। अपने कलेक्टर साहब का मथुरापुरी पर इतना प्रेम देखकर सर्वसाधारण उनसे बहुत प्रसन्न थे, जैसा कि उनके 'बैकुण्ठवास' पर, पं० श्रीधरजी लिखित कविता के निम्नस्थ पंक्तियों से प्रकट होता है—

हाय "गुरू" साहब ठाकुरजी माननवारे।
कहां गये तजि हमें हमारे परम पियारे॥

अब हम ग्राउस साहब के उस ग्रन्थ का उल्लेख करते हैं जिससे हिन्दी-साहित्य से सम्बन्ध है और जिसने उनकी कीर्त्ति को अचल कर दिया है। हम पहले कह आये हैं कि ग्राउस साहब सर्व-साधारण को भाषा के पक्षपाती थे और उसके लिए उन्होंने लड़ाई भी की थी। उस विवाद के बाद इन्होंने हिन्दी का अभ्यास बराबर जारी रक्खा। इनको उत्तरी हिन्दुस्तान की भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया था। यही कारण है जो यहां वालों की चाल ढाल और धार्मिक विचारों को अच्छी तरह ये अपनी भाषा में प्रकट कर सके। तुलसीदास की रचनाओं की उत्तमत्ता इन्होंने शुरू ही में पहचान ली थी। उस समय तक गोस्वामी जी की रामायण, अँगरेज़ों के लिए, ऐसी बन्द थी मानों उस पर मुहर कर दी गई हो। साहब ने, स० १८७६ में, रामचरितमानस की प्रस्तावना, एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में प्रकाशित कराई। इसके बाद इस महाकाव्य का अँगरेज़ी अनुवाद इन्होंने मुद्रित करना आरम्भ किया। १८७७ ई० में पश्चिमोत्तर गवर्नमेंट के सरकारी प्रेस में इसका पहला खण्ड अर्थात् बालकाण्ड (The Childhood) छपा और शायद १८८० तक सारा अनुवाद छप गया। इस आवृत्ति की किताबें झटपट बिक गईं। इसके बाद कई एक और आवृत्तियां निकलीं, जिनमें एक बहुतही मनोमोहिनी आवृत्ति की प्रति हमारे देखने में आई है। वह ठीक इंडियन प्रेस की रामायण के आकार की है और उसमें निहायत अच्छे अच्छे चित्र छपे हैं। उनमें से बहुतेरे इंडियन प्रेस की आवृत्ति में भी हैं। इसकी पाँचवीं आवृत्ति, छोटे आकार में, कानपुर से, १८९१ में, निकली। इसमें सिवा साहब की प्रतिमूर्त्ति के और कोई चित्र नहीं है। इस पर इसका मूल्य ३ रु० लिखा है। इधर बहुत दिनों से इसकी कोई नई आवृत्ति नहीं छपी मालूम होती है। सचित्र आवृत्ति महाराज काशीराज के ख़र्च से छपी थी।

शुरू ही से इनकी रामायण (अनुवाद) पर ग्रिफ़िथ साहब का यह वाक्य छपता रहा है—

"The Ramayana of Tulsi Das is more popular and more honoured by the people of the North-Western Provinces than the Bible is by the corresponding classes in England."—*Griffith.*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् इँगलैंड में लोग बाइबुल का जितना आदर करते हैं, उसी दरजे के आदमी, पश्चिमोत्तर प्रदेश में, रामायण का उससे अधिक आदर करते हैं।

कानपुर की आवृत्ति के आवरणपत्र पर, पुस्तक के नाम के ऊपर, दोनों तरफ़, दहने बायें दो "श्री" बड़े अक्षरों में और चारों ओर ये पद्य हैं—

ऊपर—संबत सोरह सै इकतीसा।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥

नीचे—संबत सोरह सै असो, असी गंग के तीर।
श्रावणशुक्लासप्तमी, तुलशी* तज्यो शरीर॥

दाहनो तरफ़—रामचरित मानस यह नामा
सुनत श्रवन पाइय विश्रामा।
मन-करि विषय अनलवन जरहीं
होंइ सुखी जे इहिं सर परहीं†।

बांई तरफ़— जो यह कथा सनेह समेता
कहिहहिं सुनहहिं समझ‡ सचेता।
होइहहिं रामचरन अनुरागी
कलिमल रहित सुमंगल भागी।

पुस्तक खोलते ही दाहने बायें की चौपाइयों के पढ़ने से एक अलौकिक सुख का अनुभव होता है। यद्यपि वे पूर्वपरिचित हैं, पर साहब की रामायण पर सुन्दर अक्षरों में लिखे रहने से इनमें एक मोहिनी शक्ति सी आ गई है। इनसे रामायण पर आउस साहब की श्रद्धा ज़ाहिर होती है। रामायण वास्तव में परम श्रद्धेय है; कुछ विशेष प्रकार के आदमियों को छोड़ कर हमने और किसी में इसके प्रति अन्यथा बुद्धि कभी नहीं देखी।§

यह अनुवाद गद्यात्मक है। सिर्फ़ बालकां के "छन्दों" का अनुवाद पद्यबद्ध है। अनुव प्रायः शुद्ध है; कहीं कहीं कोई भूल हो गई है अनुवाद की अँग्रेज़ी रस से भरी हुई है। अँग्रे में रामायण के भावों को व्यञ्जित करने में अ वादक ने अपने गहन अध्ययन और रचना-चातु का परिचय दिया है।

अनुवाद की माधुरी और उसके कर्ता की कारीगरी दिखलाने के लिए, नमूने के तौर प हम यहां 'फुलवरिया' का एक अंश सानुवा उद्धृत करते हैं। मूल—

केहरि-कटि पट-पीट-धर, सुखमा शील निधान
देखि भानु-कुल-भूषनहिं, बिसरी सखिन्ह अपान

अनुवाद—As her companions gazed up the two glories of the solar race, with th lion-like waists and bright yellow atti very abodes of bliss* and amiability, th lost all self-consciousness.

मूल—धरि धीरज एक आलि सयानी।
सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू।
भूप किशोर देख किन लेहू॥

अनुवाद—Yet one summoning up coura grasped Sita by the hand and said,—"Y can at any time meditate upon Gauri, w not now look at the princes ?"

मूल—सकुचि सीय तब नयन उघारे।
सन्मुख दोउ रघुवीर निहारे॥
नखसिख देखि राम कै शोभा।
सुमिरि पितापनु मनु अति छोभा।

अनुवाद—Then the modest Sita unclos her eyes and saw before her the two scio

* 'तुलसी' चाहिए। तालव्य शकार नहीं।
† रामायण में इसकी क्रियाएं एक वचन हैं।
‡ 'समुझि' चाहिए।—लेखक।
§ "सादर मज्जन पान किए तें।
मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥"
"अति खल जे विषई बक कागा।
यहि सर निकट न जाहिं अभागा॥"

* 'सुषमा' का अर्थ 'सुख' या 'परमानन्द' समझ भूल है। हिन्दी के एक आध अच्छे कवि को भी सुख अर्थ में इसे हमने लाते देखा है। पर इसका ठीक अर्थ 'क शोभा' है। अतः Bliss ठीक नहीं है, Exqui beauty चाहिए।—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

of Raghu. As she gazed on Rama, all beautiful from head to foot, and remembered her father's vow, she was greatly agitated.

मूल—परबस सखिन्ह लखी जब सीता।
'भयउ गहरु,' सब कहहिं सभीता॥

अनुवाद—When her companions saw her thus overcome, they all cried as if in alarm: "It is getting late."

मूल—पुनि आउब यहि बिरिया काली।
अस कहि मन बिहसी इक आली॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी।
'भयउ बिलम्ब,' मातु भय मानी॥

अनुवाद—And one added with a meaning smile—"we must come again at this time to-morrow." On hearing this clever hint, Sita was abashed and said, as if in fear of her mother: "It is late, indeed."

मूल—धरि बड़ धीर राम उर आनी।
फिरी, अपनपौ पितु बस जानी॥

अनुवाद—Summoning up resolution, she fixed the image of Rama in her heart and turned to go, but again she thought how entirely it all depended upon her sire.

मूल—

देखन मिसु मृग बिहँग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढइ प्रीति न थोरि॥

अनुवाद—And under pretence of looking at a deer, or bird, or tree again and again she turned her head, and each time that she beheld the beautious Raghubir her love was augmented not a little.

बालकांड के आदि के सोरठों में बड़े बड़े समस्यन्त पद सम्बोधन में हैं। देखिए उनका अनुवाद किस सुन्दरता से किया गया है। मूल—

जो सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवरवदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि-राशि शुभ-गुन-सदन॥

अनुवाद—O Ganes, of the grand elephant head, the mention of whose name ensures success, be gracious to me, accumulation of wisdom, store house of all good qualities!

मूल—

मूक होइ वाचालु, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा, सो दयालु, द्रवौ सकल-कलिमल-दहन॥

अनुवाद—Thou, too, by whose favour the dumb becomes eloquent; and the lame can climb the vastest mountain, be favourable to me, O thou that consumest as a fire all the impurities of this iron age!

मूल—

करौ सो मम उर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन।

अनुवाद—Take up thy abode also in my heart, O thou that slumberest on the milky ocean!

हिन्दी सीखनेवाले भाषाशास्त्र के अध्यायी योरोपियन लोगों को इस अनुवाद से बहुत सहायता मिलती है। इसकी बिक्री विशेष करके यहीं के अंग्रेज़ी जाननेवाले लोगों में हुई। हम समझते हैं कि यह अनुवाद अब अप्राप्य हो रहा है; इसकी एक नई आवृत्ति छपनी चाहिए।

मानस रामायण की उत्तमता पर मुग्ध होकर, उसके प्रचार करनेवाले योरोपियन लोगों में ग्राउस साहब के पीछे अब डाक्टर ग्रियर्सन की गिनती है। ये महाशय योरप में इसके प्रचार का ख़ूब प्रयत्न करते हैं। पर साल आपकी एक चिट्ठी से मालूम हुआ कि आप नार्वे देश के एक पण्डित को, उस समय, इसका अध्ययन करा रहे थे।

ये फ़ारसी अक्षरों की जगह रोमन अक्षरों के बर्त्ते जाने के पक्षपाती थे। यह इनमें भूल थी। बड़े बड़े लोगों में भी कभी कभी कोई बेडौल विचार पैदा हो जाता है।

ग्राउस साहब की बुद्धि ऐसी कलावती थी कि जिस विषय में उन्होंने हाथ लगाया उसको अलङ्कृत कर के ही छोड़ा; जिस काम को आरम्भ किया उसको साङ्गोपाङ्ग करही डाला। फ़तहपुर के कलेक्टर के दफ़्तर में जेनरल कनिंहम की लिखी हुई पुरातत्वसम्बन्धी जाँच की पुस्तकों के हाशियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ग्राउस साहब के लिखे हुए नोट मौजूद हैं, जिनके देखने से साहब के विद्याव्यसन और पाण्डित्य का अच्छा अनुमान होता है।*

ग्राउस साहब, आक्सफ़ोर्ड के एम० ए०, बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी की कमिटी के मेम्बर, और कलकत्ता विश्वविद्यालय के फ़ेलो थे। १८७१ ई० में, गवर्नमेंट ने इनकी योग्यता के उपलक्ष्य में, इन्हें सी० आई० ई० (C. I. E.) की पदवी दी थी।

इनका शरीर हमेशा से क्षयी रोग से ग्रसित था। इससे इनकी तबीयत बहुत कमज़ोर रहती थी। शायद पठनपाठन में बहुत अधिक मेहनत का ही यह फल हो। अख़ीर में तबीयत अच्छी न रहने के कारण, १८९१ ई० में जब ये फ़तेहगढ़ में थे, सरकारी नौकरी से इन्होंने पेन्शन ले ली और विलायत जाकर थस्ली हाल, हस्लिमियर, सर्रे, में रहने लगे। इनके जाने पर, इनके मित्रों ने आशा की थी कि घर पर ये सुखपूर्वक कालक्षेप करेंगे और लिखने पढ़ने में इनकी कीर्त्तिचन्द्रिका और भी दिनोंदिन विकसित होगी। पर "नर-चेती होवै नहीं, प्रभु-चेती तत्काल"।

मनुष्य मर्त्य है। मरना प्राणधारी मात्र का धर्म है। यह पार्थिव शरीर एक दिन अवश्य ही गिर जाता है। सर्वदा के लिए गिर कर ख़ाक हो जाता है, चाहे उसमें कितने ही बड़े जीव का वास क्यों न रहा हो। इस शरीर के साथ, कहते हैं, सूक्ष्म शरीर का अन्त नहीं होता, वह कर्म्मानुसार दूसरी योनि में जन्म ग्रहण करता है, या ज्ञानाग्नि से यदि जीवात्मा शुद्ध हो गया है तो, परमात्मा में लीन हो जाता है। ये सब बातें सुनी हुई हैं, देखी या अनुभव की हुई नहीं। पर एक चीज़ प्रत्यक्ष देखने में आती है जो पार्थिव पिण्ड के क्षय हो जाने पर भी अक्षय्य और अमर बनी रहती है। उसे 'कीर्त्ति' या 'नाम' कहते हैं। सो यद्यपि सन् १८९३ को १९वीं मई को, ५६ वर्ष की उम्र में, निजनिवृत्ति-निवास-स्थल थस्लीहाल में, यक्ष्मा से जर्जरीभूत होकर, ग्राउस साहब का नश्वर गात्र गिर गया, तथापि उनका अक्षय्य यशःशरीर अब भी जीवित है।

"ऐसो गुनी गरूस आज सुरधाम सिधायो
सुजस एक रहि गयो, सेस छिति मांहि समायो"

काशीप्रसाद।

ईश्वर-स्तुति।

[१]

ईश्वर तू प्रेमी का प्यारा,
सबमें व्यापक, सबसे न्यारा।
निर्गुण सर्वगुणाकर है तू,
न्यायी करुणासागर है तू॥

[२]

तूही करता, तूही हरता,
तूही सकल सृष्टि को भरता।
अज, अनादि, अव्यय, है तूही,
पुरुषोत्तम उत्तम है तूही॥

[३]

निर्धन को धनवान करे तू;
मानी का अभिमान हरे तू।
जङ्गल में मङ्गल दिखलाता;
शहरों को सुनसान बनाता॥

[४]

तेरी गति जानी नहिँ जाती;
"नेति नेति" कह श्रुति रह जाती।

---

* हर एक कलेक्टर के दफ़्तर में एक एक पुस्तकालय रहता है। फ़तेहपुर की कलेक्टरी में भी एक है। एक दफ़ा हमें इस पुस्तकालय की पुरातत्वविषयक पुस्तकें देखने का मौक़ा आया। हमने देखा कि हण्टर, कनिंहम और प्रिंसेप आदि की पुस्तकों के अनेक पृष्ठों के दाहने बायें छूटी हुई कोरी जगह को ग्राउस साहब ने अपने पेंसिल के नोटों से भर दिया है। उन नोटों में आपने इन ग्रन्थकारों की कितनी ही ग़लतियां दिखलाई हैं।—स० सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू जग में, जग तेरे भीतर ;
कहते हैं सब यही मुनीश्वर ॥

[५]

मैं तो लघुतम पामर प्राणी ,
है मेरी अति परिमित वाणी ।
दूर रही तेरी पहिचान ;
"मैं हूं—पर क्या हूं ?" नहिँ ज्ञान ॥

[६]

एक सत्य में सब ठहरा है ,—
यह विज्ञान मर्म गहरा है ।
इस पर जिसने ध्यान लगाया ;
उसको ही तूने अपनाया ॥

[७]

सत्यरूप ! चिद्घन ! योगीश्वर !
विश्वम्भर ! श्रीधर ! परमेश्वर !
सत्ता तेरी प्रकट सकल में—
अम्बर-अनिल-अनल-जल-थल में ॥

[८]

कुछ भी न तव शक्ति के बाहर—
यह सब समझदार पर ज़ाहर ।
भारत को तू दे वह विक्रम ,
जिससे यह हो पुनः पूज्यतम ॥

गिरिधर शर्म्मा ।

ऊषा-स्वप्न ।

[१]

बाणासुर की सुता सयानी ;
रति भी जिसको देख लजानी ।
रुचिर नाम ऊषा उसका है ;
विशद वेश-भूषा उसका है ॥

[२]

जब वह हुई षोड़शी बाला ;
पड़ा काम से उसका पाला ।
मन्मथ ने शायक सन्धाना ;
ऊषा उसका हुई निशाना ॥

[३]

दुर्निवार मनसिज की मारी
व्यथित हुई जब वह सुकुमारी ।
उससे और न लड़ना चाहा ;
पति का पाणि पकड़ना चाहा ॥

[४]

बिम्बाधर-रस चखनेवाला ।
तनु में जीवन रखनेवाला ।
जल्द नहीं जो पाऊंगी मैं ;
हे महेश, मर जाऊंगी मैं ॥

[५]

यों कह कर घबराने तब वह—
लगी गिरीश मनाने तब वह ।
दुःख अति अधिक पाने तब वह ;
तनु को कृषित बनाने तब वह ॥

[६]

बहुत रात खोने पर उसको ;
एक बार सोने पर उसको ।
हुआ स्वप्न सुखदायक उसको ;
मिला एक नव नायक उसको ॥

[७]

यदुवंशी अनिरुद्ध कुमार ,
रूप-राशि शोभा-आगार ।
पास स्वप्न में उसके आया ;
दिल से वह ऊषा को भाया ॥

[८]

सुन्दरता भी शरमा जावे ,
यदि वह उसके सम्मुख आवे ।
वदन नील-नीरद-सम काला ;
अति विशाल गल-मुक्ता-माला ॥

[९]

उसे देख मन बहुत सँभाला ;
तदपि हो गई मोहित बाला ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदपि न मुँह से वचन निकाला ;
दिल अपना उसने दे डाला ॥

[१०]

ऊषा को जब ऐसा पाया ;
युवा पास उसके तब आया ।
बैठ गया मन-मोद बढ़ाया ;
विधु-वदनी का हाथ उठाया ॥

[११]

रस इस तरह बढ़ाया उसने ;
मनोमुकुल विकसाया उसने ।
सुधा-सलिल बरसाया उसने ;
तनु कण्टकित बनाया उसने ॥

[१२]

कि वह भूल अपने को गई ;
सत्य समझ सपने को गई ।
कर-स्पर्श-सुख-सिन्धु समानी ;
रतिपति के वह हाथ बिकानी ॥

[१३]

उसके मुख-मयङ्क की शोभा
देख युवा का भी मन लोभा ।
सुषमा-सर उसने अवगाहा ;
अरुणाधर-रस चखना चाहा ॥

[१४]

ऊषा ने भी की मन भाई ;
उत्सुकता अतिशय दिखलाई ।
पर ज्योंहीं वह भुजा उठाने
चली, युवा को गले लगाने ॥

[१५]

नींद दृगों से त्योंही भागी ;
कहीं नहीं कुछ ; जब वह जागी ।
इससे जो दुख उसने पाया ;
गया पुराणों में है गाया ॥

[१६]

चित्रकार-वर रविवर्म्मा है ;
निज गुण में अनन्यकर्म्मा है ।
उसने ऊषा-स्वप्न उतारा ;
खूब सुयश अपना विस्तारा ॥

वन्दे मातरम् ।

वन्दे मातरम् !
सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्यश्यामलां मातरम् ।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम् !
त्रिंशत्कोटिकंठकलकलनिनादकराले
द्विसप्तिंशत्कोटिभुजैर्धृतखरकरवाले
कथयन्ति जनास्त्वां कथं मातरबलाम् ।
बहुबलधारिणीं, नमामि तारिणीं,
रिपुदलवारिणीं मातरम् ।
त्वमेव विद्या त्वमेव धर्म्म
त्वमेव हृदयं त्वमेव मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे ।
बाहोर्मे त्वमेव शक्तिः
हृदये मातस्त्वमेव भक्तिः
तवैव प्रतिमा मातर्ह्यते प्रति मन्दिरे ।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी
नमामि त्वाम् ।
नमामि कमलां अमलां अतुलां
सुजलां सुफलां मातरम् ।
वन्दे मातरम् ।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां
धरणीं भरणीं मातरम् ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वन्दे मातरम् ।

पानी की कुछ कमी नहीं है, हरियाली लहराती है ।
फल औ फूल बहुत होते हैं, रम्य रात छवि छाती है
मलयानिल मृदु मृदु बहती है, शीतलता अधिकाती है
सुखदायिनि वरदायिनि तेरी, मूर्ति मुझे अति भाती है

वन्दे मातरम् ।

तीस कोटि लोगों की कल कल सुनी जहां पर जाती है
उसकी दुगुन खड्ग-धारा की द्युति विकाश जहँ पाती है
तिस पर भी "तू अबला है" यह बात व्यथा उपजाती है
हे तारिनि ! हे बहुबल-धारिनि ! रिपु तू काट गिराती है

वन्दे मातरम् ।

तूही धर्म्म, कर्म्म भी तूही, तूही विद्यावानी है ।
तूही हृदय, प्राण भी तूही, तूही गुण-गण खानी है ॥
बाहु-शक्ति तूही मम, तेरी भक्ति महा मन मानी है ।
प्रति घट, प्रति मन्दिर के भीतर तूही सदा समानी है ॥

वन्दे मातरम् ।

हे दुर्गे ! दस भुजा तुम्हारी दुर्गति-नाश निशानी है ।
हे कमले ! हे अमले ! अचले ! तू सब सुख की खानी है ॥
नहीं एक भी भरतखंड में ऐसा पापी प्रानी है ।
कहै न जो नित, "यही हमारी महा-महिम महरानी है"

वन्दे मातरम् ।

—

BANDE MATARAM.

Hail Mother !
Sweet thy water, sweet thy fruits,
Cool blows the scented south-wind,
Green waves thy corn,
Mother !
Land of the glad white moon-lit nights,
Land of trees with flowers in bloom,
Land of smiles, land of voices sweet,
Giver of joy, giver of desire,
Mother !
Thirty million voices resounding,
Twice thirty million arms in resolve
uplifting,—
Dare any call Thee weak ?
Obeisance to Thee ! O Thou mighty with
multiple might !
Redeemer Thou, Repeller of the enemy's
host,
Mother !
In Thee all knowledge, Religion Thou,
Thou the heart, Thou the seat of life,
The breath of life in the flesh !
O Mother, the strength of this arm Thine,
Thou the devotion in the heart !
Thine the image consecrate,
From temple to temple !
Thee weilder of ten arms, Durga, Thou,
Thou the Goddess of wealth bower'd
in the lotus,
Thou the Muse dispensing wisdom,
Obeisance to Thee !
Salutations to Thee ! Holder of wealth,
Peerless
With Thy limpid water and luscious fruit,
Mother, Hail Mother !
Verdant, artless, sweet-smiling,
Radiant, holding, nourishing,
Mother ! Mother, Hail ! !

बम्बई का समुद्र-तट ।

(सायङ्कालिक दृश्य)

[१]

सायङ्काल हवा समुद्र-तट की नैरोग्य-कारी महा ,
प्रायः शिक्षित-सभ्य लोग नितही आते इसीसे वहाँ ।
बैठे हास्य-विनोद-मोद करते सानन्द वे दो घड़ी ,
सो शोभा उस दृश्य की हृदय को है तृप्ति देती बड़ी ॥

[२]

सन्ध्याको गिरतों दिनेश-कर की नोकैं ललाईसनी ,
होती है तब दिव्य वारिनिधि की शोभा मनोमोहिनी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे से जब बार बार उठती ऊंची तरङ्गावली,
आती है बढ़के सु-दूर, फिर भी जाती वहांही चली॥

[३]

छोटे और बड़े जहाज़ जल में देखे वहां वे खड़े,
सोभी दृश्य विचित्र; किन्तु हम को वे हानिकारी बड़े।
ले जाते वर-वस्तु देशभर की जाने कहां की कहां,
लाते केवल ऊपरी चटक की चीज़ें विदेशी यहां॥

[४]

है उद्यान महा-मनोहर जहां विख्यात वृक्षावली;
फूली है कुसुमावली नव-नवा सौरभ्य आती चली।
बैठी स्वागत सी जहां कर रही प्यारी विहङ्गावली;
चित्ताकर्षक ख़ूब वारिनिधि की आनन्ददायी स्थली॥

[५]

आते हैं दिन के थके जन सदा सन्ध्या हुए पै यहीं;
प्यारी मन्द-सुगन्ध-शीतल हवा अन्यत्र पाते नहीं।
देके स्पर्श समीर ख़ूब करती आतिथ्य-सेवा, तथा,
खोती है श्रम सर्व और उनकी सारी मिटाती व्यथा॥

[६]

मेमें मञ्जुल, पारसीक नवला-नारी दिखाती अदा,
आती हैं सब सभ्य भव्य महिला प्रायः सदा सर्वदा।
वे स्वाधीन सभी, समाज निज से स्वातंत्र्य पाई हुई,
आतीं जो मरु-वासिनी वह कथा है सर्वथा ही नई॥

[७]

सुभग-सदन-पंक्ति प्रान्त में है दिखाती,
घर घर सुखमा को वाटिका हैं बढ़ाती।
विकसित कुसुमाली ख़ूब सर्वत्र छाई;
सुरुचिर हरियाली मालियों की लगाई॥

[८]

मदकल-मतवाली जो वहां कामिनी हैं,
अनुपम-छविवाली रूप-शाली बड़ी हैं।
दृग-पथ करने से चित्त आती यही है,
सुर-पुर-वनिता ही क्या यहां आ गई हैं?

[९]

शोभा-समुद्र-तट की अवलोकनीय,
पाता प्रमोद मन देख उसे मदीय।
याथार्थ वर्णन न हो सकता तदीय;
है दृश्य केवल अहो! वह दर्शनीय॥

कन्हैयालाल पोद्दार

बलरामपुर का खेदा।

जंगली हाथियों को पकड़ने के लिए जो चढ़ाई होती है उसे खेदा कहते हैं। बलरामपुर में हर पांचवें साल खेदा होता है। बलरामपुर अवध में एक रियासत है। हिमालय की तराई का बहुत सा हिस्सा इस रियासत में शामिल है। वहां बहुत हाथी रहते हैं। उन्हींको पकड़ने के लिए खेदा होता है। हर साल खेदा इसलिए नहीं होता कि ऐसा न हो बहुत हाथियों के पकड़ लिए जाने से उनका वंश ही कुछ दिन में नष्ट हो जाय। इसी कारण से हर पांचवें साल हाथियों का शिकार होता है। इस शिकार चढ़ाई में हाथी पकड़ कर क़ैद कर लिये जाते हैं पर मारे नहीं जाते। हां, पकड़ते समय किसी दुर्घटना के कारण यदि उनकी मौत हो जाय तो दूसरी बात है।

गत बार बलरामपुर का खेदा २५ दिसम्बर १९०४, से १५ फ़रवरी, १९०५, तक हुआ। इस खेदे पहले जो खेदा हुआ था उसमें युक्तप्रान्त के भूतपूर्व छोटे लाट सर अण्टोनी मैकडानल शामिल थे। इस खेदे की शोभा छोटे लाट सर जेम्स लटूस ने बढ़ाई। बलरामपुर में अनेक हाथी हैं। उनमें से जो खेदे के काम के थे, वे सब हरद्वार के पास चिल्ला नामक जगह को भेज दिये गये। तब खेदे वालों का पड़ाव पड़ा। महाराज बलरामपुर २१ दिसम्बर को बलरामपुर से रवाना हुए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३ को सबेरे हरद्वार स्टेशन पर पहुँचे। वहां से वे अपने पड़ाव पर गये। छोटे लाट भी २४ तारीख़ को आगये। उनसे महाराज ने पूछा कि क्या आप बड़े दिन, अर्थात् २५ दिसम्बर को, खेदे पर चलना पसन्द करेंगे? आपने उत्तर दिया, हां।

यथासमय सब शिकारी हाथी और आवश्यक आदमी खेदे के लिये रवाना कर दिये गये। उनसे कहा गया कि ज्योंहीं जंगली हाथियों की ख़बर मिलै, महाराज को सूचना दी जाय। यह ख़बर दिन के एक बजे आई। फ़ौरन बिगुल बजाया गया। सब आदमी तैयार होगये। जितने हाथी थे, सब अपने अपने शिकारी सामान के साथ तैयार किये गये। ये सब फ़ौरन ही उस तरफ़ रवाना हुए जहां से दो जंगली हाथियों के देखे जाने की ख़बर आई थी। महाराज और उनके साथी और मेहमान घोड़ों पर गये। सात मील चलने के बाद सब को घोड़े छोड़ कर हाथियों पर सवार होना पड़ा। शाम तक हाथियों की तलाश रही। पर एक भी हाथी नज़र नहीं आया। दूर दूर से आदमियों के आने और शोर ग़ुल मचाने से होशियार होकर सब हाथी न जानें कहां छिप रहे या भग गये। इससे नाउम्मेद होकर वहां से सबको पड़ाव पर लौट आना पड़ा। उस दिन महाराज बलरामपुर ने लाट साहब की दावत की। २६ दिसम्बर को खेदा नहीं हुआ। उस दिन छोटे लाट ने मामूली शिकार किया; हाथियों का नहीं।

२७ दिसम्बर को फिर हाथियों का पता लगा। खेदे के कप्तान नन्हे ख़ां हाथियों और बन्दूक़चियों को लेकर सबेरे ही चल दिये। महाराज १० बजे रवाना हुए और कोई १ बजे के क़रीब मौक़े पर पहुंचे। जब कोई जंगली हाथी देख पड़ता है और घात में आ जाता है, तब सधे हुए हाथी उसकी चारों तरफ़ पर मोटे मोटे रस्से फेंक कर फंदा लगाते हैं। ऐसे जितने हाथी थे सब अपनी अपनी जगह पर खड़े किये गये। अनेक लोग तमाशा देखने आये थे। उनके भी सुरक्षित जगहों में खड़े होने का प्रबन्ध हुआ। यह सब कप्तान नन्हेख़ां ने किया। महाराज और लाट साहब की दाहनी और बांई तरफ़ सब शिकारी हाथी खड़े किये गये। नागेन्द्र गज और गजराज-बहादुर नाम के दो विशाल गज महाराज और सर जेम्स लटूस की रखवाली के लिए नियत हुए। सब लोग चुपचाप अपने अपने हाथियों पर बैठे। बैठे बैठे बहुत देर हुई। लाट साहब के सिवा और भी कई अँगरेज़ महाराज के साथ थे। देरी से सब लोग घबरा उठे। किसी किसीसे बिना बात किये रहा न गया। धीरे धीरे कानाफूसी होने लगी। यहां तक कि एकआध ने सोडावाटर की बोतलें तक फड़ाक फड़ाक खोल कर उनके भीतर की चीज़ को अपने कण्ठनाल के भीतर पहुँचाया।

इस खेदे में अनेक शिकारी और सवारी के हाथी थे। इन हाथियों की पीठ पर केवल एक गद्दा रहता है। इससे बैठनेवालों को ज़रा तकलीफ़ होती है। पुरुषों को तो उतनी तकलीफ़ नहीं होती, पर स्त्रियों को अधिक होती है। खेदे में कई कोमल-कलेवरा मेमें भी थीं। जितना बोझ उनके बदन का न था, उससे अधिक बोझ उनके गौन वग़ैरह का था। इस बोझ के कारण, और हाथी के ऊपर बैठने के लिए हौदा न होने के भी कारण, उन बेचारियों को कुछ अधिक कष्ट हुआ।

सामने जंगल था। जितने शिकारी हाथी थे सब उसी तरफ़ ध्यान से देख रहे थे। उन हाथियों पर जो लोग सवार थे वे भी सब अपने अपने काम के लिए मुस्तैद थे। जहां कोई जंगली हाथी देख पड़ता है तहां शिकारी हाथी उसके पीछे दौड़ता है। परन्तु कभी कभी वह उसकी बराबर नहीं दौड़ सकता; पीछे रह जाता है। इस हालत में मुँगरीवाला आदमी उसके पैरों में, या पूँछ के पास, मुँगरी से मारता है। मुँगरी में छोटी छोटी कीलें रहती हैं। इससे उसकी चोट लगने से हाथी को वेदना होती है और वह बेतहाशा दौड़ने लगता है। ये मुँगरीवाले भी अपनी अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुँगरियों को लेकर जंगल ही की तरफ़ बड़े ध्यान से देख रहे थे। जो लोग जंगली हाथी पर शिकारी हाथी की मदद से फन्दा डालते हैं, वे फन्दैत कहलाते हैं। वे बड़े बड़े रस्से लिए हुए मुँगरीवाले के आगे शिकारी हाथी पर बैठते हैं।

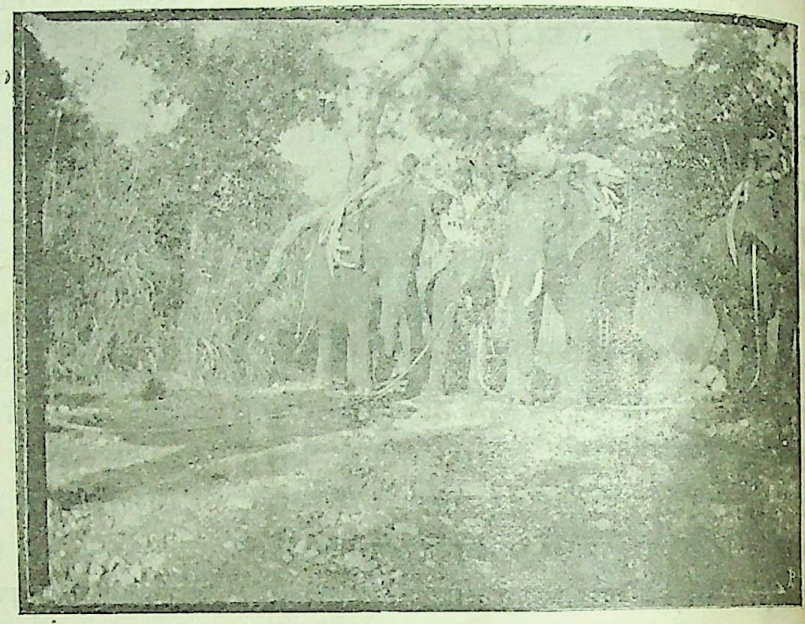

वे लोग भी अपना अपना रस्सा सँभाल कर हाथी को दौड़ाने के लिये तैयार थे। मुस्तैदी में परस्पर एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा से भी, और लाट साहब को अपनी अपनी चालाकी दिखलाने के इरादे से भी, सब लोग जंगल की तरफ़ दौड़ लगाने के लिए एक पैर के बल खड़े थे कि एक एक बन्दूक़ की आवाज़ आई। मालूम हुआ कि कोई हाथी दीख पड़ा। धारवाले, अर्थात् बन्दूक़ची लोग, पहले से जंगल में घुसते हैं। वे बन्दूक़ें दाग़ कर हाथियों को एक तरफ़ निकालते हैं। जहां वे निकलते हैं उन पर शिकारी हाथी बड़े बल-विक्रम से धावा करते हैं।

पहले पहल कन्हैयाबख़्श नाम के शिकारी हाथी ने जंगली हाथी को देखा। देखते ही उसने उसपर धावा किया। फिर क्या था, एक मिनट में सब हाथी वहां से ग़ायब होगये। सिर्फ़ सवारी के हाथी रह गये। कोई तीन मील तक नरकुल का जंगल पार करने पर मैदान मिला। वहीं शिकारी हाथियों ने जंगली हाथी को घेरा। पहले वह घेरे से निकल भागा। पर वह फिर घेरा गया। कन्हैयाबख़्श, नागेन्द्रगज और राजमङ्गल नाम के शिकारी हाथी उसके दाहिने, बांये और सामने हुए। तब कई महावतों ने अपने हाथियों से उतर कर जंगली हाथी के पिछले पैरों को रस्से से बांध दिया। यह करके शिकारी हाथियों के ऊपर से जंगली हाथी के गले में फंदे लगाये गये। फंदे डाले जाने पर उनमें कुटनी लगाई गई। कुटनी एक तरह की गाँठ का नाम है। इस तरह का हाथी गिरफ़्तार होगया। कुछ पालू हाथी उसके आगे, कुछ पीछे, और कुछ अगल बग़ल में हुए जंगली हाथी की गरदन के रस्से पालू हाथियों की गरदन में बांध दिये गये। इस तरह वह क़ैदी हाथी पड़ाव की तरफ़ रवाना हुआ। यदि रास्ते में कहीं अड़ जाता था तो शिकारी हाथी उसे पीछे से अपने दांतों की चोट से मारते थे। यह चोट आवश्यकतानुसार कड़ी या धीमी होती है। यदि हाथी चलने से इनकार करता है तो शिकारी हाथी उस पर अधिक बलपूर्वक प्रहार करते हैं। दाहने बांये के हाथी रस्सों से भी कभी कभी पीटते हैं। पर इस नये हाथी पर अधिक मार करने की ज़रूरत नहीं हुई। जिस समय इस जंगली हाथी के पिछले पैरों में रस्सा बांधा जा रहा था उस समय लाट साहब भी वहां मोक़े पर पहुँच गये थे। इससे उनकी अनुमति से इस हाथी का नाम "लाटूस बहादुर" हुआ। इस खेदे के पहले जो खेदा हुआ था उसमें एक हाथी का नाम मैकडानल बहादुर रक्खा गया था। क्योंकि उस खेदे में सर अण्टोनी मैकडानल शरीक थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३० दिसम्बर को फिर खेदे की तैयारियां हुई। शिकारी हाथी और बन्दूक़ची लोग सवेरे जंगल की तरफ़ रवाना हुए। कोई १० बजे ख़बर आई कि जंगली हाथियों का पता लगा है। इसलिए लाट साहब और महाराज घोड़ों पर सवार होकर डेढ़ बजे के क़रीब मौक़े पर पहुंचे। कुछ देर बाद खेदा करने के लिये बन्दूक़वाले जंगल में धँसे। उनके पीछे शिकारी हाथी और शिकारी हाथियों के पीछे सवारी के हाथी चले। बीच में एक नाला पड़ा। खेदे के कप्तान नन्हेख़ां ने सब लोगों को नाले के उस पार, जंगल में, खड़ा किया। फंदैती हाथी अपनी अपनी जगह पर हुए। गजराज बहादुर और नागेन्द्रगज महाराज और लाट साहब के पास रक्षक के तौर पर रहे। तब तक बन्दूक़ वालों ने खेदा करके जंगली हाथियों को जंगल से बाहर निकाला। बन्दूक़ की आवाज़ सुनाई पड़ने के कोई आध घण्टे बाद एक जंगली हाथी दिखाई दिया। उसपर नागेन्द्रगज ने धावा किया। महाराज की हथिनी भगवतप्यारी भी उसके पीछे दौड़ी। जंगली हाथी भगा। कभी वह नरकुल के जंगल में घुस जाता, कभी उससे भी घने पेड़ों और कांटेदार झाड़ियों के जंगल में। इस तरह बहुत देर तक वह इधर उधर भगता और शिकारी हाथियों को तंग करता रहा। क़रीब ५ बजे शाम को वह सब तरफ़ से निकाला जाकर मैदान में बाहर आया। वहां मौक़ा पाते ही दो तीन शिकारी हाथी उसके पास पहुँचे और उस पर उन्होंने फंदे डाल दिये। तीन फंदे पड़ के गये। तीनों सही हो गये। पर हाथी बहुत घबड़ा हुआ था। फंदों के रस्सों को जो दो हाथी पकड़े हुए थे, उनको घसीटता हुआ वह जंगल की तरफ़ भगा। इतने में और भी कई शिकारी हाथी उसके पास पहुँच गये और वह ख़ूब घेर लिया गया। कई बड़े बड़े हाथी उसके इधर उधर खड़े हुए। तब उसके पैरों में रस्सा डाला गया और गरदन में और कई फंदे लगाये गये। इस तरह वह ख़ूब मज़बूती के साथ गिरफ़्तार कर लिया गया। तब वह पड़ाव की तरफ़ रवाना किया गया। चार शिकारी हाथी उसके आगे जोड़े गये और तीन पीछे। एक दाहने और एक बांये; ऐसे दो हाथी और उसके साथ हुए। रास्ते में एक आध जगह पानी पिलाकर वह पड़ाव पर पहुँचाया गया। उसका नाम रक्खा गया "चण्डीप्रसाद"। उसमें चण्डभाव था भी अधिक। पकड़ते समय उसने बहुत तंग किया। बाद में, बाँध दिये जाने पर भी, उसने अपना बन्धन तोड़ कर निकल जाने की बहुत कोशिश की। पर व्यर्थ।

इस खेदे में एक फ़ीलवान की पँसली टूट गई। जिस समय शिकारी हाथी जंगली हाथी पर खेदा किये हुए थे, उस समय कालीप्रसाद नाम का हाथी अपने फ़ीलवान को लेकर बेतहाशा भगा और एक पेड़ के नीचे से निकला। पेड़ की लटकती हुई एक डाल फीलवान की छाती पर लगी। उसके आघात से उस बेचारे की एक पसली अलग हो गई।

इसके बाद और कई खेदे हुए। कितने ही बड़े बड़े नर और मादा हाथी गिरफ़्तार किये गये; छोटे छोटे पाठे भी कई मिले। एक पाठा जब पड़ाव को लाया जा रहा था तब कई दफ़ा राह में बेहोश हो हो कर गिरा। पानी डाल कर वह होश में लाया गया। पर जान पड़ता था कि उसके पैर में चोट आ गई थी। इससे वह चल न सकता था। मालूम नहीं उसकी क्या गति हुई।

जैसा ऊपर लिखा गया है, जब जंगली हाथी पकड़ कर पड़ाव को भेजा जाता है तब, खेदे के हाथी उसकी गरदन के रस्सों को पकड़ कर आगे चलते हैं। जो रस्से पिछले पैरों में बँधे रहते हैं उनको भी कई हाथी पीछे से थांभे रहते हैं। उसके दाहने बांये पर भी कई हाथी चलते हैं। इस तरह वह नया क़ैदी जंगल से पड़ाव को लाया जाता है। अगर पड़ाव दूर होता है तो रात को बीच में कहीं ठहरना पड़ता है। पड़ाव पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुंचने पर वह एक बड़े पेड़ से बाँध दिया जाता है और चारा उसकी सूंड़ की पहुंच में रख दिया जाता है। अपनी स्वतंत्रता के छिन जाने पर कभी कभी हाथी को सख़्त रंज होता है। कई दिन तक वह एक तिनका भी मुँह में नहीं डालता। जिन आदमियों की स्वतंत्रता छिन जाती है, क्या उनको भी कभी इस बात पर अफ़सोस या रंज होता है? कोई कोई हाथी बहुत समझदार होता है। वह समझ जाता है कि छूटने की कोशिश करने या खाने को न खाने से अब कोई लाभ नहीं। इससे दैववश प्राप्त हुई पराधीनता के सामने सिर झुका कर वह पहले ही दिन से खाना पीना शुरू कर देता है। लटूस बहादुर नाम का हाथी इसी पिछली नीति के स्कूल का था। जब उसे पहली दफ़ा पानी पिलाने के लिए शिकारी हाथी

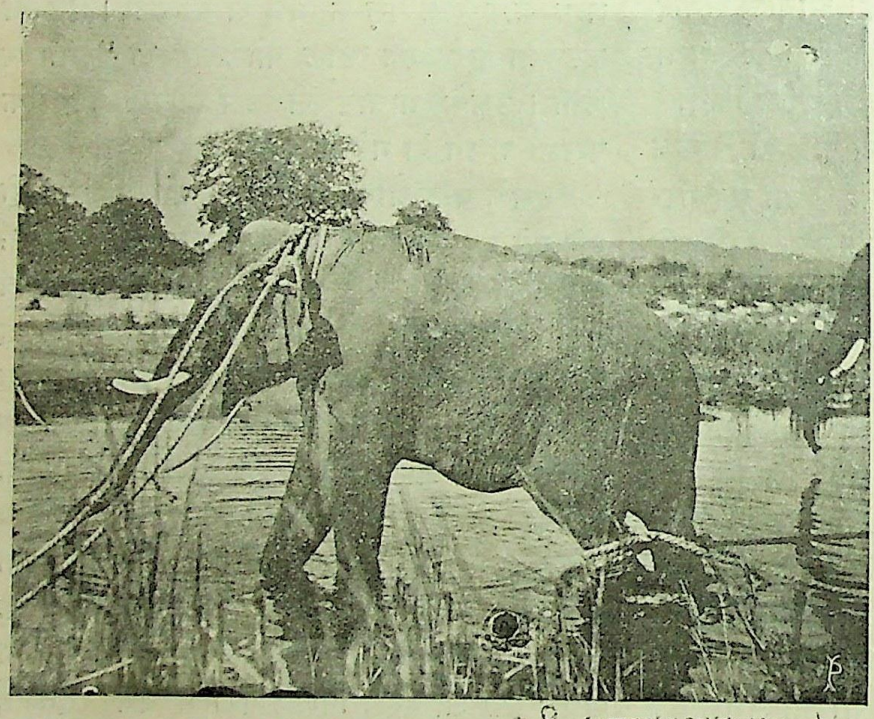

रस्से थामे हुए पानी के पास ले गये तब उसने सिर तक नहीं हिलाया। अपनी दशा पर सन्तोष करके चुपचाप उसने पानी पी लिया। पर चण्डीप्रसाद किसी दूसरे स्कूल का हाथी था। उसे इस तरह की नम्र नीति पसन्द नहीं आई। खाने पीने में उसने बहुत तंग किया और [illegible] की कोशिश में पैरों के रस्सों को खींच खींच व्यर्थ परिश्रम किया। पकड़ते समय भी [illegible] बड़ी वीरता दिखाई थी। नागेन्द्रगज को [illegible] नुकीले और बलवान दाँतों से उसने घायल दिया था। चाहे जो कुछ हो, जो वीर हैं वे [illegible] शत्रु के सामने भी वीरता दिखाये बिना [illegible] रहते। भेड़ बकरी की तरह, बिना हाथ हिलाये, स्वतंत्रता ऐसी प्यारी चीज़ को वे [illegible] से नहीं जाने देते।

जंगली हाथी आठ नौ महीने में सध जाते गरदन और पैर रस्सों से ख़ूब बँधे रहते इससे वहां का चमड़ा कट जाता है और घाव जाते हैं। उनमें तेल और चरबी लगाई जाती पहले पहल इसी बहाने हाथी के बदन में लगाया जाता है। इससे [illegible] को आराम मिलता है और [illegible] धीरे वह उन लोगों को पहचा लगता है जो उसे चारा [illegible] देते हैं। उसका जंगलीपन [illegible] जाता है। जब हाथी [illegible] तरह हिल जाता है, तब सवारी या बोझ ढोने का [illegible] देता है। कोई कोई खेदा काम में भी लाये जाते हैं। [illegible] पराधीनता की पाश में [illegible] समय उन्होंने इतना तिरस्कार प्रकट किया था, उसीमें वे [illegible] सजातियों को फँसाते हैं। [illegible] सोस! हाथियों के छोटे [illegible] बच्चे तक पराधीनता [illegible] पसन्द करते; पकड़ते समय वे बेतरह बिगड़ते पर क़ैद हो जाने पर अपने स्वातंत्र्य-प्रेम को जल्द भूल जाते हैं।

जङ्गली हाथियों के पकड़ने की कई तरह हैं। इस देश में भी कई तरह से हाथी पकड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। पर जो तरकीब बलरामपुर में काम में लाई जाती है, वही अकसर मदरास और आसाम में भी काम में लाई जाती है।

लङ्का में भी बहुत हाथी होते हैं। वहांके हाथियोंके दाँत अकसर नहीं होते। जङ्गली हाथियों को पकड़ने के लिए गवर्नमेंट का हुक्म दरकार होता है और कुछ कर भी देना पड़ता है। गरमी के मौसम में, बड़े बड़े गावों के ज़मींदार कोई दो हज़ार आदमी इकट्ठा करते हैं। वे हाथियों के झुण्ड को घेरते हैं। पानी कम हो जाने के कारण गरमी के दिनों में हाथी अकसर किसी तालाब या नदी के ही पास रहते हैं और दस बीस मिल कर एक साथ घूमते फिरते हैं। जहां हाथी होते हैं वहां से कुछ दूर पर मज़बूत लकड़ियों का एक वृत्ताकार घेरा या बाड़ा बनाया जाता है। जिस तरफ़ से उसमें हाथियों के घुसने की उम्मेद होती है, उस तरफ़ घेरे का मुँह खुला रक्खा जाता है।

कई दिन तक खेदेवाले हाथियों को घेरते हैं और धीरे धीरे लकड़ियों के घेरे को तरफ़ ले आते हैं। घेरा घने जङ्गल के बीच में होता है। बन्दूकें दागकर और ढोलक बजा कर हाथी खूब डराये जाते हैं और घेरे के दरवाज़े पर लाये जाते हैं। वहां और कोई जगह भगने के लिए न मिलने से वे घेरे के भीतर चले जाते हैं। उनके भीतर जाते ही दरवाज़ा बन्द कर दिया जाता है। बहुत से आदमी बड़े बड़े भाले लेकर घेरे के चारों तरफ़ खड़े हो जाते हैं, जिसमें जङ्गली हाथी उसे तोड़ कर बाहर न निकल भगें।

दूसरे दिन पालू हाथी भेजे जाते हैं। हर एक हाथी पर उसका महावत रहता है और एक मोटा रस्सा हाथी की गरदन से बंधा रहता है। उस रस्से का एक किनारा ज़मीन की तरफ़ लटका करता है। उसमें फंदा लगा रहता है। यह फंदा एक

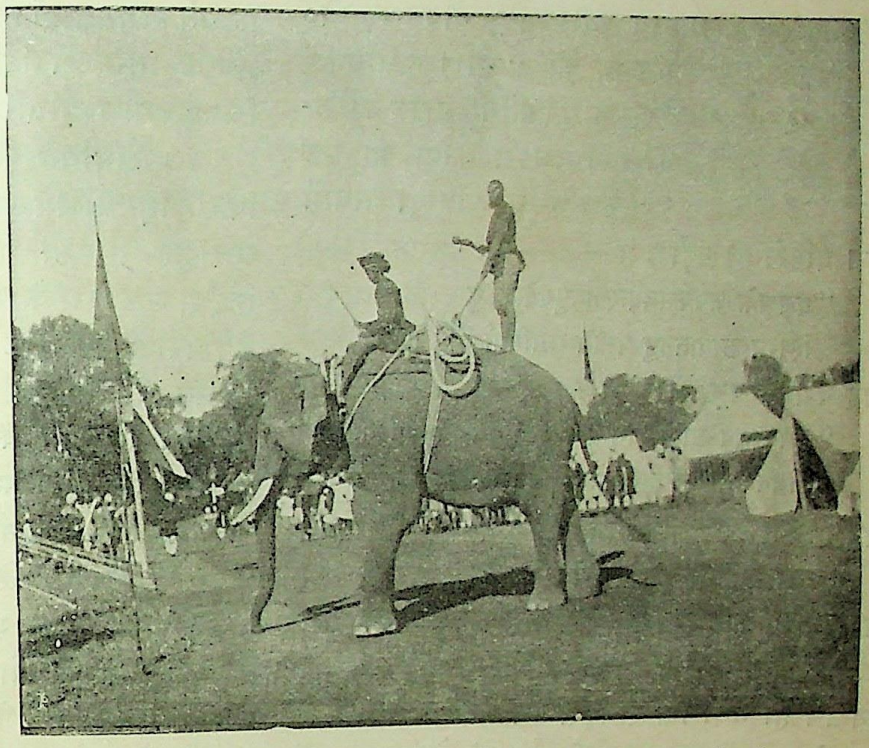

आदमी अपने हाथ से थाँभे रहता है और जङ्गली हाथी का ख़ौफ़ मालूम होते ही पालू हाथी के पेट के नीचे छिप जाता है। पालू हाथी घेरे में घुसकर जङ्गली हाथियों का पीछा करते हैं। घेरे में उनके पीछे पीछे दौड़ते हैं। इसी समय जङ्गली हाथियों के पिछले पैरों में फंदा डाला जाता है। फंदा लग जाने पर वे बड़े बड़े पेड़ों से बाँध दिये जाते हैं। फंदा लगाते समय जङ्गली हाथी बेतरह बिगड़ते हैं और बड़ी मुशकिलों में लोग फंदा लगा पाते हैं। दो दिन बाद वे जङ्गल से बाहर लाये जाते हैं और उन्हें चारा पानी दिया जाता है। कोई छ महीने में वे सध जाते हैं और बोझ ढोने या सवारी का काम देने लगते हैं। लङ्का में हाथियों को सागोन के लट्ठे बहुत ढोने पड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनते हैं, पालू हाथियों के ऊपर जो आदमी सवार रहता है उस पर जङ्गली हाथी वार नहीं करते।

रामगिरि अथवा रामटेक।

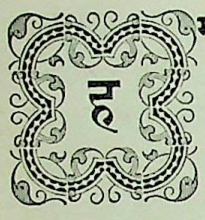

म राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, का "धाराधरधावन" देख रहे थे। कविकुलगुरु कालिदास के मेघदूत काव्य का यह पद्य-रूप अनुवाद हिन्दी भाषा में है। पहिले ही श्लोक में—

"यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु।
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु॥"

यह पद्यार्द्ध पढ़ा और नीचे ही—

"द्रुम-सघन-छाया रामगिरिवर-धाममें निवसन गयो।
श्रीजनकजा-मज्जनप्रभाव-पवित्रजल जहँ व्है रह्यो॥"

यह सुरस अनुवाद भी पढ़ा। नीचे नोट में "रामगिरि से अर्थ प्रायः रामटेक से है, जो नागपुर ज़िले में रामटेक तहसील में है" यह पढ़ कर समाधान नहीं हुआ। नोट के देखते ही निश्चय हो गया कि राय साहब ने अपने धाराधर के प्रस्थान स्थल का निर्णय पूरे तौर पर नहीं किया। राय साहब ने विल्सन् साहब की 'क्लाउड मेसेंजर' नामक मेघदूत की अँगरेज़ी अनुवाद की पुस्तक में अनुवादक की टिप्पणी को सत्य समझ कर वैसाही नोट लिख दिया। यही पं० नंदर्गाकर ने भी अपनी पुस्तक में किया है। इससे यदि यह कहा जाय कि आज कल सर्वत्र मेघदूत के—विशेषतः अँगरेज़ी के द्वारा—पढ़ने वालों की समझ यही हो रही है कि रामगिरि वही स्थान है जो नागपुर के उत्तर में है, तो अत्युक्ति न होगी। हम आज यह सिद्ध किया चाहते हैं कि रामटेक रामगिरि नहीं है।

२। राय साहब ने ६० वें पद्य के अन्त में एक टिप्पणी लिखी है। उसमें उन्हों ने कहा है कि रामगिरि 'चित्रकूट' नहीं है यह ठीक है क्योंकि चित्रकूट से आम्रकूट, अर्थात् अमरकंटक और रेवा, अर्थात् नर्मदा, नदी कदापि उत्तर दिशा में नहीं है। इससे सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की टीका दोषयुक्त है। उन्होंने चित्रकूट के आश्रमों में से रामगिरि को भी एक आश्रम लिखते समय पूर्वापर सम्बन्ध को नहीं देखा, और मेघ के मार्ग की दिशा ही का विचार किया। चित्रकूट में रामगिरि कदापि नहीं हो सकता।

३। रामगिरि से उत्तर चलकर माल क्षेत्र फिर थोड़ा पश्चिम चलकर, फिर उत्तर की ओर आम्रकूट मिलता है। यह वर्णन और दिशा निर्देश मूल ग्रंथ के अनुसार हैं। यही विचारणीय है। क्योंकि आम्रकूट और उसके आगे मेघमार्ग के सब स्थल स्पष्ट हैं।

४। रामगिरि के विषय में कालिदास के दिए हुए दो विशेषण अत्यन्त स्मरणीय हैं। एक तो "जनक-तनया-स्नानपुण्योदकेषु" और दूसरा "वंद्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु"—इन में पहली पंक्ति से यह मालूम होता है कि रामगिरि के निकटवर्ती आश्रमों में मेघदूतवर्णित यक्ष रहता था, जहां का जल श्री सीताजी के स्नान से पुनीत हो रहा है। और दूसरी से यह ज्ञात होता है कि उस रामगिरि में वनवासी श्रीरामचन्द्र के पूज्य पद-चिन्ह अङ्कित हैं। हमें दूसरी पंक्ति की अपेक्षा पहली पंक्ति की श्रेष्ठता अधिक दिखाई देती है क्योंकि उससे यह मालूम होता है कि जिन स्थानों में श्रीरामचन्द्र ने सीता सहित निवास किया था उन स्थानों में से एक रामगिरि भी है। दूसरी पंक्ति में सीताजी का नाम-निर्देश नहीं है। उससे यह शङ्का की जा सकती है कि कदाचित् उस समय सीताजी का त्याग हुआ था, और श्रीरामचन्द्र शंबूकवध के लिए उत्तरकांड की कथा के अनुसार दण्डकारण्य में गये थे, उस समय वे अकेले घूमते फिरे थे। उस समय उनके एकाकी परिभ्रमण में रामगिरि पर जाना माना जा सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। परन्तु यह शङ्का पहली पंक्ति से नष्ट हो जाती है। क्योंकि सीताजी के स्नानादिक से जल के पवित्र होने का वर्णन कवि ने किया है। इससे यह बात सिद्ध है कि रामगिरि उन आश्रमों में से है जहां श्रीराम "ससीता सलक्ष्मणेन" कुछ दिनों तक रहे थे।

५। यह बात स्पष्ट है कि वह स्थान यदि चित्रकूट नहीं हो सकता, जैसा कि हम ऊपर बतला आये हैं, तो चित्रकूट के अतिरिक्त और ही कोई स्थान है। अब यहां इस बात के जानने की आवश्यकता उपस्थित हुई कि श्रीरामचन्द्र, सीता जी और लक्ष्मण सहित, चित्रकूट से प्रस्थान करके कहां कहां गये और कहां कहां कितने कितने दिन तक रहे। श्रीरामचन्द्र का दण्डकारण्यमार्ग उस स्थान तक बतलाना होगा जहां श्रीरामचन्द्र पर्णकुटी बनाकर रहे थे, और सीताजी को, अकेली पाकर, रावण ने हरण किया था। क्योंकि इसी स्थान तक सीताजी और श्रीरामचन्द्र का साथ रहा। फिर वे एकबार ही लङ्का में जा पहुंचीं। अर्थात् इससे यह स्पष्ट है कि चित्रकूट के दक्षिण और गोदावरी के उत्तर जो दण्डकारण्य प्रदेश है, उसमें किसी जगह रामगिरि होना चाहिए। इस विस्तार को और भी सङ्कुचित करने से हम यह कह सकते हैं कि अमरकण्टक की आग्नेय दिशा में और गोदावरी के उत्तर जो स्थान हैं, जहां श्रीरामचन्द्र सीता-सहित रहे थे, उन्हींमें से किसी स्थान का नाम रामगिरि रहा होगा। क्योंकि अमरकण्टक का नाम-निर्देश मेघ के मार्ग में स्पष्ट है; और वहां से रामगिरि पूर्व-दक्षिण दिशा में बतलाया गया है।

६। पाठकों के सुभीते के लिए इस लेख के साथ रामचन्द्र की वनयात्रा का क्रम बतलानेवाला नक़शा दिया जाता है। उससे स्थान-निर्देश करने में सरलता होगी। हमें चित्रकूट से आगे रामचन्द्र की यात्रा का क्रम, पर्णशाला तक, बतलाने की आवश्यकता है। चित्रकूट को तो सभी जानते हैं। उससे आगे का मार्ग, पाठक, कृपा करके नक़शे में देखते जावें।

७। रामचन्द्र जब प्रयागस्थ भरद्वाजाश्रम से चले तो भरद्वाज ऋषि ने कहा कि यहां से चित्रकूट १० कोस है। आजकल की गणना के अनुसार प्रयाग से चित्रकूट ७½ मील है। इससे यह स्पष्ट है कि रामायण कालीन कोस ७॥ मील का होता था। और एक योजन ३० मील का। रामचन्द्र चित्रकूट आये। वाल्मीकिजी के अनुरोध से चित्रकूट के समीप रामजी ने एक पर्णशाला बनाया। वह यही स्थान है जिसे अब सीतापुर कहते हैं, और जो चित्रकूट से कोई डेढ़ मील है। चित्रकूट की समीपवर्तिनी दो नदियों में से एक का नाम मन्दाकिनी है, जो आज तक उसी नाम से प्रसिद्ध है। यहां से रामचन्द्र प्रस्थान करके अत्रि ऋषि के आश्रम को गये। यहां पर हमें एक विशेष बात कहना है। प्राचीन समय में आश्रम शब्द से किसी गाँव या स्थान का अर्थ नहीं समझा जाता था; किन्तु एक विस्तीर्ण प्रदेश का। क्योंकि बड़े बड़े मुनिवरों के शिष्य उनका आश्रय करके आस पास दूर दूर तक रहते थे, और वह सारा प्रदेश उसी ऋषि के नाम से आश्रम कहलाता था। जैसे आज कल "सेंट्रल इंडिया एजन्सी" कहने से कई छोटी बड़ी रियासतों का अन्तर्भाव समझा जाता है, वैसे ही उस समय कितने ही जनस्थान मिलकर आश्रम कहलाते थे। अत्रि का आश्रम बहुत विस्तृत था। वह आजकल के रीवां (बघेलखण्ड) की अन्तिम हद तक, अर्थात् सुहागपुर के आसपास तक, फैला हुआ था। चित्रकूट में वाल्मीकि का आश्रम था। वहां से अत्रि का आश्रम आग्नेय दिशा में होना चाहिए। अत्रि ऋषि की पत्नी का नाम अनुसूया था। इस मुनिपत्नी के नाम से पहाड़ की एक टेकड़ी चित्रकूट से कुछ दूर पर अब तक प्रसिद्ध है। इस अत्रि ऋषि के आश्रम से, निकल कर रामचन्द्र ने दण्डकवन में प्रवेश किया। दण्डकवन बहुत विस्तीर्ण था। उसकी सीमा इस प्रकार थी। उत्तर में—गङ्गा नदी का दक्षिण किनारा और विन्ध्य; पश्चिम में उत्तर विन्ध्य, अत्रि का आश्रम,

11834
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामचन्द्र का वनगमन मार्ग।

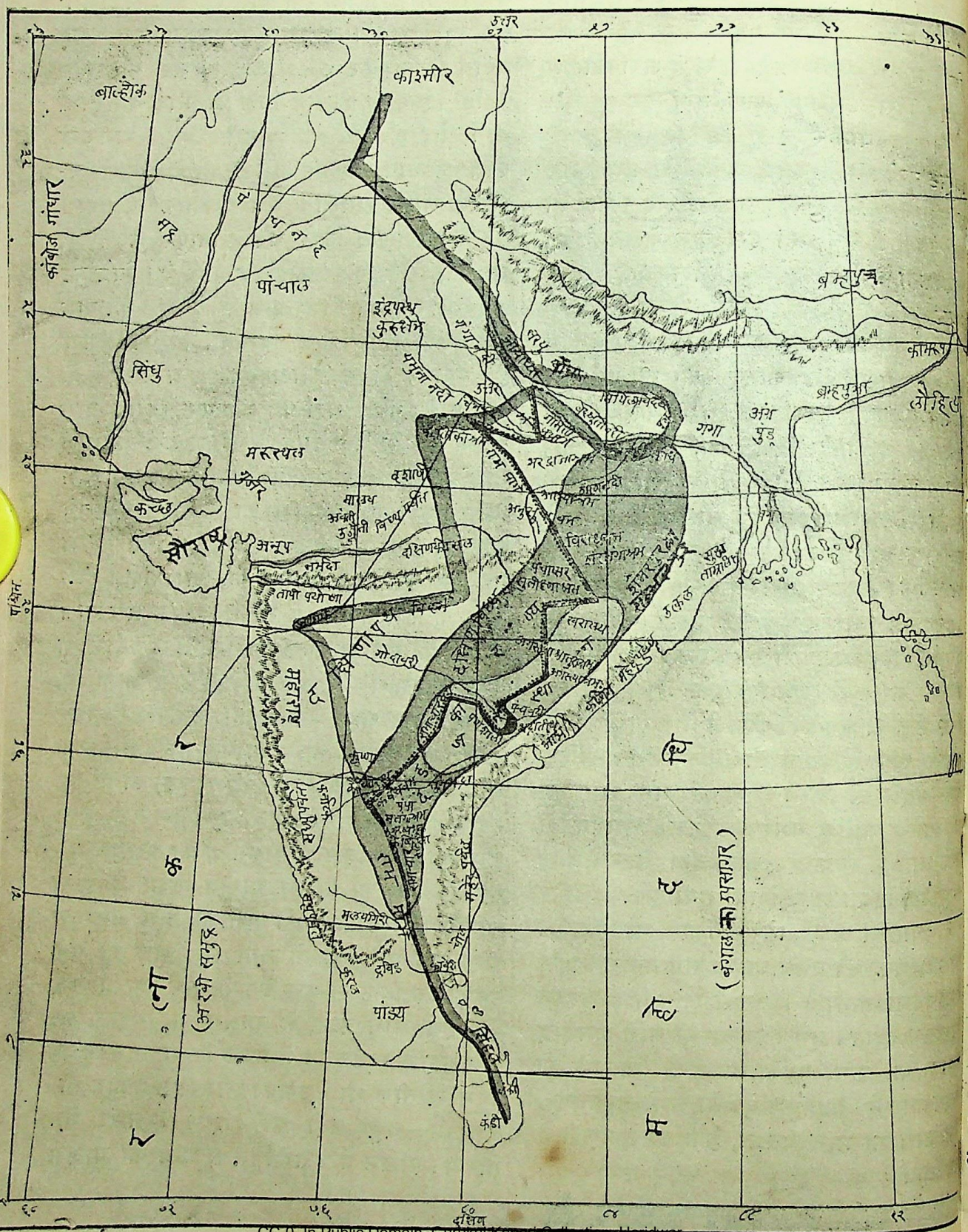

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दक्षिण विन्ध्य, दक्षिण कोसल, विदर्भ, दक्षिणापथ, और मलयाद्रि; दक्षिण में—द्रविड़ और पांड्य; और पूर्व में—उत्कल, कलिङ्ग, महेन्द्र, आंध्र और चोल। इससे यह मालूम होता है कि जिस प्रदेश को अब सिरगुजा प्रान्त कहते हैं, उसके आस पास कहीं रामचन्द्र ने दण्डकारण्य में प्रवेश किया था। मार्ग में उन्हें अनेक तापसी जनों के आश्रम मिले थे। आगे चलकर उन्हें विराधवन मिला था। यह वन दण्डकारण्य का एक भाग था, क्योंकि रामचन्द्र दक्षिण दिशा की ओर जा रहे थे। इससे यह प्रतीत होता है कि विराधवन आजकल के बिलासपुर ज़िले की ऐशान्य दिशा में रहा होगा। इस विराधवन से अर्धयोजन, अर्थात् १५ मील पर, शरभङ्गमुनि का आश्रम था। यह आश्रम विराधवन के दक्षिण में था। शरभङ्ग के आश्रम को छोड़ कर रामचन्द्र सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँचे थे। सुतीक्ष्ण, अगस्त्य मुनि का शिष्य था। उसका आश्रम बहुत विस्तृत था। क्योंकि रामचन्द्र ने इस आश्रम के अन्तर्गत और ऋषिमुनियों के आश्रमों में घूमते हुए १० बरस व्यतीत किये थे। इस सुतीक्ष्ण-आश्रम में आजकल के बिलासपुर और रायपुर ज़िले का कुछ भाग शामिल था। पाठक, इस सुतीक्ष्ण-आश्रम को स्मरण रखिए, क्योंकि इसीसे हमें प्रयोजन है। इसी आश्रम में मांडकर्णी का पञ्चाप्सरस नामक एक सुन्दर तालाब ३० मील चौड़ा था। कनिङ्घम साहब ने अपनी आर्कियालाजिकल रिपोर्ट्स् की नवीं जिल्द में, बिलासपुर ज़िले में प्रचलित दन्तकथाओं के अनुसार, बिलासपुर के कई सरोवरों में से एक को, पञ्चाप्सरस निश्चित करने का यत्न किया है। सुतीक्ष्ण के आश्रम के अनन्तर, दक्षिण दिशामें, चार योजन, अर्थात् १२० मील पर, अगस्त्य मुनि के भाई का आश्रम था। इस आश्रम में आज कल के रायपुर ज़िले का दक्षिण भाग और बस्तर रियासत का बहुत सा प्रदेश व्याप्त था। अगस्त्य के भाई के आश्रम से आगे दक्षिण की तरफ, ३० मील दूर, अगस्त्य का ख़ास आश्रम था। यह आश्रम सारी बस्तर रियासत को व्याप्त किये रहा होगा, क्योंकि वहां से लग भग ६० मील पर पञ्चवटी का आरम्भ होता था, और वहां से गोदावरी ७५-८० मील थी। पञ्चवटी वन-प्रदेश अगस्त्य के आश्रम से अनुमान ६० मील, अर्थात् दो योजन, दूर था। और गोदावरी के समीप उसी वन-प्रदेश में रामचन्द्र ने पर्णशाला बनाकर कुछ समय तक निवास किया था। यह पर्णशाला नामक स्थान आज कल के मद्रास इलाक़े में (पहिले के मध्यप्रदेश के उत्तर गोदावरी ज़िले में) पर्णशाला नामक गाँव के रूप में अब भी बना है। यहीं से रावण ने सीता का हरण किया था। आगे के मार्ग, या जनस्थानप्रदेश की सीमा इत्यादि, से हमें कुछ प्रयोजन नहीं है।

८। वाल्मीकि रामायण के आधार पर निश्चित ऊपर लिखे हुए मार्ग से यह ज्ञात होता है कि रामचन्द्र ने, विन्ध्यपर्वत तथा कोसल देश, जो उनका ननिहाल था, टालने के लिए, चित्रकूट से चलकर, थोड़ी ही दूर पर, दण्डकारण्य में प्रवेश किया था। रामचन्द्र का प्रण था कि पिता की आज्ञा के अनुसार "वत्स्यामि विजने वने"। फिर यह सम्भावना क्योंकर हो सकती है कि उन्होंने नागपुर में जाकर रामटेक में निवास किया, क्योंकि नागपुर दक्षिण विन्ध्य के पश्चिम विदर्भ देश के अन्तर्गत है। अर्थात् रामचन्द्र विन्ध्यपर्वत को एक तरफ़ छोड़ कर, दण्डकारण्य के भीतर से गये थे। इस कारण दक्षिण विन्ध्य की दूसरी ओर जो स्थान हैं उनमें रामचन्द्र का जाना कदापि सम्भव नहीं हो सकता। रामचन्द्र को न तो नर्मदा नदी लांघनी पड़ी, और न विन्ध्य पर्वत ही को किसी जगह उन्होंने पार किया। इससे रामटेक में रामचन्द्र का जाना सिद्ध नहीं होता। यदि ऐसा है तो "रघुपति पदैरंकितं मेखलासु" यह कालिदास की उक्ति रामटेक के विषय में कदापि सत्य नहीं हो सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९। राय साहब कहते हैं—"मालक्षेत्र कदाचित् वर्तमान समय का मालदा हो जो छत्तीसगढ़ के उत्तरीय भाग में रतनपुर के पास है"। रतनपुर बिलासपुर ज़िले में है और अमरकण्टक मँडला ज़िले में है। मध्यप्रदेश का नक़शा देखने से मालूम होगा कि मँडले से बिलासपुर आगे को पूर्व-दक्षिण कोने में है। मेघ जो रामटेक से रवाना होगा तो उसे प्रथम ऐशान्य दिशा में जाकर फिर उसे पश्चिम को जाना चाहिए। परन्तु राय साहब ने प्रथम ही लिखा है कि "रामगिरि से चलकर मालक्षेत्र, फिर किञ्चित् पश्चिम चलकर पुनः उत्तर चलकर, आम्रकूट मिलता है"। इन दोनों बातों में परस्पर विरोध है। बिलासपुर में जो मालदा है, यदि वही "मालक्षेत्र" माना जाय तो यक्ष का प्रस्थान वहां से दक्षिण-पूर्व के बीच में किसी स्थान से होना चाहिए। अर्थात् बिलासपुर की दक्षिण सीमा, या रायपुर का उत्तरी भाग, जिसे हम सुतीक्ष्ण का आश्रम निश्चित कर आये हैं, वहां किसी स्थान से प्रस्थान होना चाहिए, न कि दक्षिण विन्ध्य पर्वत के आगे नागपुर के पास विरुद्ध दिशा में। दूसरे, रामचन्द्र सुतीक्ष्ण के आश्रम में अनेक ऋषि-जनों के यहां लगभग दस वर्ष तक रहे थे। अर्थात् ऐसे स्थानों में कई जगह अधिक समय तक वे रहे होंगे। इस समय उनके साथ सीताजी भी थीं। उनके स्नान से उन आश्रमों के निकटवर्ती सरोवर, झरने, नदियां इत्यादि के जल का पवित्र होना युक्ति-सङ्गत है। यदि रामगिरि किसी स्थान में स्थिर किया जा सकता है तो वह उस प्रदेश में जो मालदा से दक्षिण है। क्योंकि यक्ष ने आरम्भ में ही "उदङ्मुख" अर्थात् उत्तर होकर जाने के लिए मेघ को कहा है। वहां से कालिदास के किये हुए वर्णन के अनुसार अमरकण्टक किञ्चित् पश्चिम और उत्तर को होगा। इससे स्पष्ट है कि रामटेक कदापि रामगिरि नहीं।

अब यह रहा कि रामगिरि लोग कहते कि पर्वत को थे? इसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है। इस विषय में मध्यप्रान्त—विशेषकर छत्तीसगढ़—निवासी कोई सभ्य यदि परिश्रम करके रामगिरि का स्थान स्थिर करने का यत्न करें तो उनका संस्कृत तथा भाषा साहित्यों पर बड़ा उपकार हो। हिन्दुस्तान के नक़शे में अक्षांश रे के नीचे पूर्वघाट-पर्वत-श्रेणी में एक 'रामगढ़' है यह सुतीक्ष्ण-के आश्रम प्रदेश में है। क्या वह रामगिरि कहा जा सकता है?

गणपति जानकीराम दुबे

टिड्डीदल।

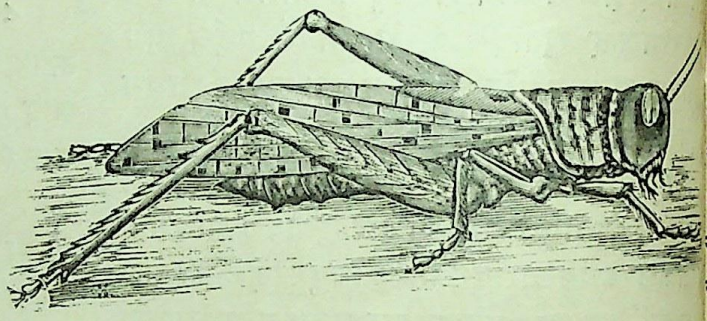

बड़े भयङ्कर सिंह आदि हिंसक जन्तु बड़े विषैले सर्प आदि प्राणनाशक सरीसृप, हमारी उतनी हानि नहीं करते जितनी कि छोटे छोटे कीड़े द्वारा हमें उठानी पड़ती है। कृषि का क्षय करनेवाली टिड्डी एक बड़ी बुरी बला है अफ़्रीक़ा और एशिया में इसके समूह के समू इतनी बहुतायत से खेती के ऊपर धावा करते जिसका कुछ ठिकाना नहीं। इसकी सेना प्रलयङ्कर, एक बड़े भारी मेघमण्डल सी मालू पड़ती है। जब वह आकाशमार्ग से निकलती तब सूर्य की रोशनी बन्द हो जाती है; और क कभी इतना अँधेरा हो जाता है कि सारी ज़मी अन्धकारमय हो जाती है। टिड्डीदल के चलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना कर्णभेदी शब्द होता है, मानो नियागरा को मात करनेवाला कोई जलप्रपात भीमवेग से बह रहा हो। जब यह दल धरती पर उतरता है तब कभी कभी इसको एक फुट से भी अधिक मोटी ज़िन्दा चादर नज़र आती हैं। जब यह दल थक कर वृक्षों पर बैठता है तब उनकी टहनियां मारे बोझ के झुक जाती हैं और तने फट पड़ते हैं। जिस वन या बाग़ में से यह दल निकल जाता है वह झुलसा हुआ सा देख पड़ता है। एक भी हरी पत्ती नहीं रहने पाती। सब्ज़ी का कहीं नाम भी नहीं रह जाता। छाल तक को ये चाट जाती हैं। इसीसे शास्त्रकारों ने टिड्डीदल का आना भी छ प्रकार की दैवी आपदाओं में गिनाया है।

मनुष्य के सारे यत्न इस आपदा को दूर करने में असमर्थ हैं। मनुष्यों की सेना इसका सामना करने को दौड़ती है, पर हतसफल होकर जहां की तहां रह जाती है। यदि किसी कारण से मृत्यु टिड्डीदल में फैलकर उनका एकबार ही नाश कर देती है तो भी इनका शव-समूह सड़ सड़ कर इतनी दुर्गन्ध फैला देता है और वायु को इतना ख़राब कर देता है कि चारों तरफ़, दूर दूर तक, बीमारी फैल जाती है और हज़ारों मनुष्य मौत का शिकार हो जाते हैं।

इतिहास के देखने से मालूम होता है कि टिड्डीदल का धावा मनुष्यों पर हमेशा ही हुआ किया है। हज़रत मूसा लिखते हैं कि टिड्डीदल का भीमरव समस्त मिश्रदेश में व्याप्त हो गया, सारी खेती को टिड्डियों ने खा डाला, और फरोहा के महलों पर भी टिड्डियों ने आक्रमण किया। प्लीनी (Pliny) का कथन है कि अफ़्रीका के कई प्रदेशों को टिड्डियों ने एकबारही जन शून्य कर दिया। टिड्डीदल से डर कर सन्त जेरोम कहता है कि टिड्डीदल से बढ़कर अधिक बलवान और हानिकर और कोई चीज़ दुनिया में नहीं है। मानवी बुद्धि और मनुष्यों के सारे यत्न इसका सामना करने में असमर्थ हैं। ईश्वरही इस आपदा से बचा सकता है।

वर्तमान समय के भी इतिहास में टिड्डीदल के आक्रमणों का वर्णन पाया जाता है। बारहवें चार्ल्स की सेना बेसाराबिया (Bessarabea) देश में से होकर जारही थी। आँधी की भाँति टिड्डीदल उठा और सूर्य्य छिपगया। चार्ल्स को विवश होकर अपनी सेना की गति बार बार रोकनी पड़ी। बारहवें चार्ल्स का इतिहासकार इस टिड्डीदल के धावे का इस प्रकार वर्णन करता है। "समुद्र की तरफ से प्रायः हर रोज़ दोपहर के समय टिड्डीदल उठा करता था। पहले तो आकाश में कुछ स्याही दिखलाई पड़ती थी। फिर ज़रा ही देर में वह एक बड़े भारी बादल के रूप में परिणत हो जाती थी; और इतना अँधेरा छा जाता था मानों सूर्य्य में पूरा ग्रहण लग गया हो। ये टिड्डियां ज़मीन के नज़दीक नहीं उड़तीं। जितनी उँचाई पर अबाबील उड़ती है उतनी ही उंचाई पर टिड्डीदल भी आकाश में उड़ता है। पर जहां कोई खेत उसने देखा कि चट दल का दल उस पर टूट पड़ा। कभी कभी हम लोगों को उनके बीच में से होकर जाना होता था। जहां हम लोग खेतों में घुसे कि टिड्डीदल ने तूफ़ान की तरह हमारे ऊपर हमला किया। घोड़ों के और हम लोगों के बदन पर भी वे इतनी लिपट जाती थीं कि आगे चलना मुशकिल हो जाता था। जब तक हम लोग खेतों के पार न हो लेते थे, हमें कुछ भी सामने दिखलाई नहीं देता था। जिधर से होकर यह टिड्डीदल निकल जाता था, उधर की खेती स्वाहा हो जाती थी। पत्ती तो एक भी नहीं रहने पाती। वृक्षों की छाल और जड़ तक टिड्डियां चाट जाती हैं। जो देश अभी ख़ूब हरा भरा था, टिड्डीदल के आक्रमण के बाद वीरान रेगिस्तान सा मालूम पड़ने लगता है। * * * * टिड्डियां समुद्र की छोटी मोटी खाड़ियों तक को पार कर जाती हैं। कौन यक़ीन करेगा कि इतना छोटा जीव समुद्र को पार कर सकता होगा"?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हर समय में मनुष्य को इसका सामना करना पड़ा है। प्राचीन काल में बड़े बड़े कठोर क़ानून टिड्डियों के नाश के लिए बनाये जाते थे। लेमनस (Lemnos) नामक टापू में हर आदमी को न्याया-धीश के सम्मुख, साल में एक बार, कुछ टिड्डियां कर के रूप में लानी पड़ती थीं। प्लीनी (Pliny) का कथन है कि साइरिनेका (Cyrenaica) में यह क़ानून जारी था कि सब लोग साल में तीन दिन टिड्डियों का सामना किया करें। यदि कोई इस नियम का उल्लंघन करता था तो उसे दण्ड दिया जाता था। लिखा है कि सीरिया देश में रोमन लोगों को अपनी फ़ौजें इस 'शलभसंग्राम' के लिये भेजनी पड़ती थीं।

अर्वाचीन काल में भी कभी कभी सरकारी फ़ौजों से यह काम लेना पड़ा है। १७८० ई० में ट्रांसलवानिया की फ़ौज को टिड्डी नाश के लिये काम करना पड़ा था। पन्द्रह सौ आदमी टिड्डियों के कुचलने, मारने, जलाने और गाड़ने में लगे रहे थे। पर इतना सब करने पर भी १७८१ ई० में फिर टिड्डियों का धावा हुआ। इस बार राजा को सारी प्रजा से सहायता लेनी पड़ी। परन्तु इस पर भी टिड्डियों ने खेती बारी का इतना नाश कर डाला कि बहुत से ज़िले बिलकुल ही उजाड़ हो गये।

१७८० ई० के बाद भी इब्राहीम पाशा को अपनी सारी सेना टिड्डियों को नाश के लिये नियुक्त करनी पड़ी थी। सूर्य्य की कड़ी धूप में इस बहादुर सेना के बहादुर कप्तान ने और लोगों को उत्तेजना देने के लिये स्वयं कठिन परिश्रम किया था।

टिड्डियां चाहे जितनी हानि करें, उनसे किसी किसी को लाभ भी होता है। उनके मांस को कोई कोई आदमी बड़ी रुचि से खाते हैं। एशिया और अफ़्रीका के लोग न जाने कब से टिड्डियां खाते चले आये हैं। हज़रत मूसा ने भी चार प्रकार की टिड्डियों का खाना जायज़ (शास्त्रसङ्गत) माना है। इससे मालूम होता है कि बाइबिल ज़माने में यहूदी लोग भी टिड्डियां खाते बग़दाद की बाज़ारों में टिड्डियों का मांस बि है। अरब के लोग उन्हें सुखा कर और पीस आटे की भांति रोटी बनाने के काम में लाते १६९३ ई० में जर्मनी में बहुत टिड्डियां निकल वहाँ वालों ने इन्हें मार मार कर खूब खाया कहा बड़ी मज़ेदार हैं !!! भारतवर्ष में आज भी जब टिड्डियां निकलती हैं तब नीच जा के लोग उन्हें मार कर खा जाते हैं। औरतों विश्वास है कि एक बार टिड्डी खिला देने से को एक विशेष प्रकार की बीमारी (शायद सू की) नहीं होती।

सूर्य्यनारायण दीक्षित

अद्भुत इन्द्रजाल।

किसी समय इस देश में इन्द्रजाल का बड़ा प्राबल्य था। इस वि के कितनेही ग्रन्थ संस्कृत में गये थे। उनमें से कई एक तक प्रचलित हैं। इस विद्या बल से ऐन्द्रजालिक लोग अद्भुत अद्भुत मा रच कर प्रेक्षकों को विस्मय में डाल देते कापालिक लोगों का भी इस देश में, किसी सम बड़ा आधिक्य था। उन्होंने भी अनेक अद्भु अद्भुत सिद्धियों को प्राप्त करके अपना माहा बढ़ाया था। प्रेत और पिशाचों को सिद्ध कर वाले लोग अब तक जहां तहां पाये जाते हैं। प्रकार के एक पिशाच-सिद्ध महात्मा हमारे जन्मस्थ के पास, कुछ दूर पर, गङ्गा के किनारे, हो गये इस बात को थोड़ेही दिन हुए। उनके साथी तक विद्यमान हैं। वे मरे हुए मनुष्यों को प्रत दिखला देते थे; यथेच्छ चीज़ों की वर्षा कराते दूसरों के चित्त की बात बतला देते थे; और चीज़, जहां से कहिए, मँगा देते थे। सुनते आगरे में भी एक मनुष्य ऐसाही हो गया है। उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम था "हसनख़ां जिन्नी"। लोग कहते हैं उसे कोई जिन सिद्ध था।

और तरह के सिद्ध तो अब बहुत कम, या बिलकुल ही नहीं, देखने में आते। पर मदारी लोगों की अब भी यहां कमी नहीं है। ये भी ऐन्द्रजालिक हैं। यद्यपि ये लोग यथाशास्त्र इन्द्रजालविद्या नहीं सीखते, तथापि परम्परा से जो कुछ इनको मिलता है उतनेही से ये अनेक आश्चर्य्यजनक खेल दिखलाते हैं। पर इनकी भी इन्द्रजालविद्या का ह्रास हो रहा है। जैसे अलौकिक खेल ये लोग पहले करते थे, वैसे अब कम सुनने में आते हैं।

कुछ समय हुआ कर्नल स्माइल्स नामक एक साहब बङ्गाले में किसी अच्छे पद पर थे। उन्होंने वहां इन्द्रजाल विद्या का एक अद्भुत नमूना देखा—इतना अद्भुत कि उसके प्रभाव से उनके एक मित्र की जान तक जाती रही। इस बात को उन्होंने एक अँगरेज़ी मासिक पुस्तक में प्रकाशित किया है। उसीके आधार पर कोचीन से निकलनेवाली केरल-कोकिल नामक मासिक पुस्तक में भी एक लेख निकला है। कर्नल साहब की कहानी अद्भुत रस से लबालब भरी हुई है। इसलिए हम भी उसे यहां पर देते हैं। हम उनके लेख को कहानी इसलिए कहते हैं, कि उसके सत्यासत्य का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं। पर जिस दृश्य का वर्णन उन्होंने किया है उसका चित्र भी उन्होंने दिया है। अतएव उनकी बात पर विश्वास करने को जी ज़रूर चाहता है।

अच्छा तो अब कर्नल स्माइल्स का अद्भुत ऐन्द्रजालिक वृत्तान्त उन्हींके मुँह से, थोड़े में, सुनिए—

"जब मैं हिन्दुस्तान में था तब वहां मेरा एक हार्दिक मित्र गोरिंग नामक था। वह भी एक अफ़सर था। वह मुझसे कुछ दूर पर, दूसरी जगह, रहता था; हम दोनों एकही शहर में न थे। पर हम लोग छुट्टियों वग़ैरह में अकसर मिला करते थे। गोरिंग का विश्वास मन्त्रशास्त्री और ऐन्द्रजालिक लोगों पर बिलकुल न था। परन्तु बंगाले में इन लोगों की बहुत अधिकता थी। कोई गाँव या क़सबा ऐसा न था जहां ये लोग न हों। तथापि जब कभी इस तरह की बातें होती थीं तब गोरिंग अनेक कुचेष्टायें करने लगता था और सब बातों को झूठ समझ कर घण्टों हँसी दिल्लगी किया करता था। मैंने अनेक अद्भुत इन्द्रजाल के खेल ख़ुद देखे थे। इसलिए मेरा इस विद्या पर पूरा विश्वास था। इसीसे गोरिंग की कुचेष्टायें मुझे बुरी मालूम होती थीं। मेरी यह उत्कट इच्छा थी कि कोई अच्छा ऐन्द्रजालिक मिले तो मैं उसकी विद्या का प्रभाव गोरिंग को प्रत्यक्ष दिखलाऊं। परन्तु, अफ़सोस, गोरिंग ने लम्बी छुट्टी ली और वह विलायत चला गया। अतएव मुझे उसके अविश्वास के खण्डन का शीघ्र मौक़ा न मिला।

"छुट्टी पूरी होने पर गोरिंग साहब फिर हिन्दुस्तान में तशरीफ़ लाये और दो चार दिन बाद मुझसे भेंट करने आये। मैं उससे बड़े प्रेम से मिला और घण्टों बातें करता रहा। हम दोनों बँगले के बराण्डे में बैठे हुए प्रेमालाप कर रहे थे कि वहां अचानक एक प्रसिद्ध ऐन्द्रजालिक—एक मशहूर मदारी—आ पहुँचा। उस आदमी का बंगाले में बड़ा नाम था। मंत्र-विद्या में वह अद्वितीय था। लोग ऐसाही कहते थे। मैं भी उसे एक अलौकिक ऐन्द्रजालिक समझता था। उसके अनेक अद्भुत अद्भुत खेल मैंने देखे थे। उसे देख कर मैं बहुत ख़ुश हुआ। मैंने कहा कि अब गोरिंग के अविश्वास को दूर करने का मौक़ा आ गया। मैं हिन्दुस्तानी बोलने लगा, जिसमें वह मांत्रिक भी मेरी बात चीत समझ सके। मैं उसकी विद्या की प्रशंसा करने लगा और गोरिंग निन्दा। गोरिंग ने उसे सुना कर बार बार इस बात पर ज़ोर दिया कि मंत्रविद्या बिलकुल झूठ है; इन्द्रजाल कोई चीज़ नहीं; अतिप्रकृत बातों का होना असम्भव है। इस मधुर टीका को वह ऐन्द्रजालिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपचाप सुनता रहा। उसने अपने मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाला।

"उस समय मेरे पास और भी दो एक आदमी बैठे थे। उनमें से एक और आदमी ने भी इस मशहूर मदारी के खेल देखे थे। वह मेरी तरफ़ हो गया; उसने मेरा पक्ष लिया। उसने कहा मैंने इस मनुष्य के किये हुए अद्भुत तमाशे अपनी आँखों देखे हैं। उनमें से एक का वृत्तान्त मैं आपको सुनाना भी चाहता हूं। सुनिए—

'एक दिन इस ऐन्द्रजालिक ने खेल शुरू किया। इसके साथ एक लड़का था। उसे बुला कर इसने पास बिठलाया। फिर इसने सुतली का एक बण्डल निकाला। उसका एक सिरा इसने ज़मीन के भीतर गाड़ दिया। फिर उस बण्डल को इसने आकाश की तरफ़ फेंक दिया। सुतली सीधी आकाश में चली गई और जाते जाते लोप हो गई। तब इसने उस लड़के को हुक्म दिया कि वह उस सुतली पर चढ़कर आकाश की सैर कर आवै। लड़का उस पर चढ़ा। जैसे लोग ताड़ के पेड़ पर चढ़ते हैं, वैसे ही वह उस पर झट झट चढ़ता गया। धीरे धीरे उसका आकार छोटा मालूम होने लगा। यहां तक कि दूरी के कारण वह कुछ देर में अदृश्य हो गया। तब तक यह मदारी महाशय और खेल खेलने लगे। कोई आध घण्टे बाद इसे उस लड़के की याद आई। गोया अभी तक उसकी याद ही न थी। इसने उसे आवाज़ देना शुरू किया। उसे आकाश से नीचे उतारने की इसने बहुत कोशिश की। पर सब व्यर्थ हुई। उस लड़के ने ऊपर ही से जवाब दिया कि अब मैं नीचे नहीं उतरता। यह सुनकर इसे बहुत क्रोध आया। इसने एक छुरा निकाला और उसे अपने दाँतों में दबाया। तब यह भी उस लड़के ही की तरह उस सुतली पर चढ़ने लगा। कुछ देर में छोटा होते होते यह भी अदृश्य हो गया। दो चार मिनट के बाद आकाश से बड़ी ही करुणा-जनक चिल्लाहट सुनाई पड़ी। ऐसा मालूम होता था कि कोई किसीको मारे डालता है और वह अपनी जान बचाने की कोशिश कर रहा है। इतने में आकाश से ख़ून की वर्षा शुरू हुई। इससे हम लोगों को निश्चय हो गया कि इसने उस लड़के का ख़ून कर डाला। इसके बाद उस लड़के के हाथ पैर कट कट कर, ख़ून से भी हुए, गिरने लगे। कुछ देर में उसका कटा हुआ सिर भी ज़मीन पर आ गिरा। उसके साथही उसका धड़ भी धड़ाम से नीचे आया। कुछ मिनट बाद यह मान्त्रिक भी आकाश से उतरता हुआ देख पड़ा। ख़ून से भरा हुआ छुरा इसके मुँह में था। इस तमाशे को देखकर देखने वालों के रोंगटे खड़े हो गये, पर इसके लिए गोया यह कोई बात ही न थी। यह धीरे धीरे नीचे उतरा और सुतली को ऊपर से खींच कर इसने उसका पूर्ववत् बण्डल बनाया। तब इसने उस लड़के के हाथ, पैर, सिर वग़ैरह को इकट्ठा करके एक चादर के नीचे ढक दिया। जब तक इसने खेलने की चीज़ें वग़ैरह अपने पिटारे में रक्खीं, तब तक वह चादर वैसी ही ढकी रही। जब इसे और काम से फ़ुरसत मिली तब इसने उस चादर को एक झटके से ऊपर खींच लिया। चादर खींचते ही वह लड़का हँसता हुआ उसके भीतर से निकल आया। उसके बदन पर ख़ून का ज़रा भी निशान न था। यह तमाशा देखकर सब लोग दंग हो गये।

यहां पर हम यह कह देना चाहते हैं कि इस तरह के खेल का हाल लोगों ने अकसर सुना होगा। किसी किसीने तो इसे शायद देखा भी हो। क्योंकि अब तक, सुनते हैं, इस तरह के खेल होते हैं। पर साइल्स साहब कहते हैं कि उनके मित्र गोरिंग को इस पर विश्वास न आया। उसने यह बात हँसी में उड़ा दी। तब साइल्स की कहानी सुनिए।

"अब यह ठहरी कि गोरिंग का अविश्वास दूर करने के लिए उसे कोई अद्भुत खेल दिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाय। उस ऐन्द्रजालिक ने हमारी बात क़बूल कर ली। हमने उससे कहा कि कल तुम मेजर साहब के बँगले पर तीसरे पहर आओ और गोरिंग को अपनी विद्या दिखलाओ। उसने कहा—'हुज़ूर के सामने जो कुछ सेवा बन पड़ेगी करूंगा'। बस इतना कह कर उसने हम सब को बड़े अदब से सलाम किया और वहां से वह चलता हुआ।

"दूसरे दिन यथासमय हम लोग मेजर साहब के बँगले पर इकट्ठे हुए। गोरिंग के सिवा और भी कई आदमी वहां थे। एक इञ्जिनियर भी तमाशा देखने के लिए आया था। वह भी मेरा मित्र था। उसका नाम था जर्म्मिन। वह अपने साथ तसवीर उतारने का एक छोटा सा कैमरा भी लाया था। कैमरा इतना छोटा था कि उसके पाकट में आ जाता था। कुछ देर में हम लोगों ने दो आदमियों को, मैले कुचैले कपड़े पहने हुए, कुछ दूर पर, एक पेड़ के नीचे, देखा। यह वही कल का ऐन्द्रजालिक और उसका एक साथी था। हम लोगों ने उनको अपने पास बुलाया। वे आये। उनके पास था क्या? सिर्फ़ एक पिटारी, दो एक छोटे छोटे डिब्बे और फटे पुराने कपड़ों और चीथड़ों की एक गठरी! बस।

"मेजर साहब की आज्ञा मिलते ही खेल शुरू हुआ। मदारी मियाँ बङ्गाली थे। उम्र उसकी कोई ६० वर्ष के क़रीब होगी। उसने अपनी पिटारी में हाथ डाला और उसके भीतर से एक काला नाग बाहर निकाला। निकलते ही उसने अपना फन उठाया और फुफकार मारते हुए उसे इधर उधर हिलाना शुरू किया। दूसरा आदमी उसके सामने मौहर (तूम्बी) बजाने लगा। तब वह सर्प अपना फन और भी अधिक लहराने लगा। जैसे जैसे मदारी महाशय के मनोहर वाद्य का सुर चढ़ने लगा, वैसेही वैसे सर्प की फणा भी ऊंची होने लगी; यहां तक कि कुछ देर में यह मालूम होने लगा कि वह हवा में निराधार हिल रही है। उसका रंग अत्यन्त काला था। फणा बहुत ही तेजस्क थी। जान पड़ता था कि फन पर देदीप्यमान रत्न जड़े हुए हैं। जब खेल इस अवस्था को पहुँचा तब जर्म्मिन ने उस दृश्य का एक फोटो लिया। कैमरा के बटन की आवाज़ आई और छाया को ग्रहण करके प्लेट नीचे गिरी। यद्यपि मैं तमाशा में तन्मनस्क था, तथापि मैंने प्लेट का गिरना सुना।

"अब एक विलक्षण—महाविलक्षण—बात हुई। तमाशे में एक अद्भुत परिवर्तन हुआ; परन्तु कब हुआ, यह हम लोगों ने नहीं देख पाया। स्वच्छ आकाश सहसा काला हो गया। प्रकाशवती दिशाओं ने श्यामलता धारण की। सब तरफ़ बादल से घिर आये। इतने में उस सर्प की फणा ने स्त्री का रूप धारण किया और उस रूप में वह पूर्ववत् आकाश में नृत्य करने लगी। मदारी अपनी मौहर को बजा रहा था। पर जान पड़ता था कि वह हम लोगों से कुछ दूर पर बजा रहा है। था वह पासही; पर सुर में अन्तर हो गया था।

"कुछ देर में वाद्य बन्द हुआ। परन्तु वह सर्पिणी नारी अपने कृष्ण मणिमय रत्नों के प्रकाश में नाचती ही रही। इतने में उसने अपना रूप बदल डाला। वह दिव्यरूप हो गई। उसके मुखमण्डल पर अप्रतिम प्रभा छा गई। उसने अपने विशाल नेत्रों से हम लोगों की तरफ़ निर्निमेष भाव से देखना शुरू किया। हम लोग उसके अद्भुत रूप को देख कर दंग हो गये। वैसा रूप हमने कभी पहले नहीं देखा था और न अब आगे कभी देखने की सम्भावना ही है। उसके निरुपम रूप, उसके त्रिभुवन-जयी नेत्रद्वय और उसके मोहक लावण्य ने हम लोगों को बेहोश सा कर दिया। हमारी चित्तवृत्ति उसीके मुखमण्डल में जाकर प्रविष्ट हो गई। शरीरमात्र से हम लोग अपनी अपनी जगह पर बैठे रह गये। गोरिंग की दशा भयङ्कर हो गई; क्योंकि उस दिव्यनारी की नज़र सबसे अधिक उसीकी तरफ़ थी।

"हम सब बँगले के बराण्डे में थे। खेल कुछ दूर नीचे हो रहा था। वह स्त्री नाचते नाचते क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़ो और थोड़ी देर में बराण्डे की सीढ़ियों के पास आ गई। जब वह इतना पास आ गई तब गोरिंग की अजीब हालत हो गई। वह बेतरह भयभीत हुआ सा जान पड़ने लगा। मालूम होता था कि उसे आनन्द भी हो रहा है और भय भी हो रहा है। कुछ मिनट बाद उसने बहुत धीरे से दो चार शब्द कहे। पर उसने क्या कहा हम लोगों ने नहीं समझा। इतने में उसने अपने दोनों हाथ फैलाये और उठकर उस नागबाला को वह आलिङ्गन करने चला। उसका मुँह पीला पड़ गया था और आँखें लाल हो गई थीं। उसे इस प्रकार अपनी तरफ़ आते देख नागकन्या ने भी अपने बाहुपाश को आगे बढ़ा कर गोरिंग को उससे बाँधना चाहा। परन्तु हुआ क्या? इस तरह दोनों तरफ़ से आलिङ्गन और प्रत्यालिङ्गन का उपक्रम होते ही वह कन्या वहां की वहीं अन्तर्हित हो गई।

"हम लोग होश में आये। ऐसा जान पड़ा मानो हम सब कोई भयङ्कर स्वप्न देख रहे थे। जब तक खेल होता रहा, जर्म्मिन को छोड़ कर किसी के होश हवास ठिकाने नहीं रहे। जर्म्मिन ने दो एक फोटो उस खेल के लिये। खेल समाप्त होते ही उसने अपना केमरा नीचे रक्खा और सोडावाटर वग़ैरह मांगा। उस समय उसके हाथ काँप रहे थे। गोरिंग कुछ नहीं बोला। आलिङ्गन के नैराश्य ने उसे पागल सा कर दिया। वह अपनी कुरसी पर बैठ गया और जिस जगह वह स्त्री अदृश्य हुई थी, उसी तरफ़ टकटकी लगा कर देखने लगा। इतने में वह ऐन्द्रजालिक अपना सब सामान इकट्ठा करके जाने को तैयार हुआ। उसे मेजर साहब ने कुछ रुपये देकर विदा किया। जब वह चलने लगा तब उसने गोरिंग की तरफ़ देख कर कहा—'साहब, अब भी होश में आइए'।

"पर गोरिंग ने कुछ जवाब नहीं दिया। काठ का सा पुतला वह पूर्ववत् उस जगह की तरफ़ टकटकी लगाये देखता रहा। जर्म्मिन ने पकड़ कर उसे हिलाया; पर वह अचल रहा। यह हालत देखकर हम लोग घबरा गये। हम सबने बलपूर्वक उसे उठाने की कोशिश की। पर हमारी कोशिश व्यर्थ हुई। वह वहां से नहीं हिला। तब हम लोगों ने उसकी छाती पर ब्रांडी के छींटे मारे। इस पर वह होश में आया और सन्निपातग्रस्त आदमी की तरह, न जानें क्या, बर्राने लगा। हम लोगों ने उसे उठाकर बँगले के भीतर लिटाया। हमने उसके कपड़े ढीले कर दिये और सिर के ऊपर पानी की धारा छोड़ी। तब वह बेतरह घबरा उठा और आश्चर्य्य-चकित सा होकर उठ बैठा। चारों तरफ़ देखकर उसने एक अजब सुर में कहा—'वह कहां है'? हम सब ने उसे बहुत समझाया। हमने कहा तुम क्या पागल हो गये हो? वह सब इन्द्रजाल था; वह सब भ्रम था। परन्तु उसने हमारी एक भी बात न सुनी। 'मैं उसके पास जाना चाहता हूं; मैं वहां ज़रूर जाऊंगा; वह गई कहां?' इस तरह गोरिंग बकने लगा। यह दशा देखकर मेजर ने डाक्टर को बुलाया। जर्म्मिन तो फोटो की प्लेट तैयार करने में लगा और हम लोग गोरिंग को समझाने में। वह बार बार उठ कर भगने की कोशिश करता और हम लोग बार बार पकड़ कर उसे रोक रखते। इतने में डाक्टर आया। उसे देख गोरिंग बहुत बिगड़ा। उसने मुझे एक लात मारी। डाक्टर ने कहा इसे उन्माद हुआ है। उसने गोरिंग का दस्ताना फाड़कर, पिचकारी से, एक औषध उसके हाथ में प्रविष्ट कर दी।

"गोरिंग को हम लोगों ने किसी तरह बिछौने पर लिटाया। लेटे लेटे वह फिर प्रलाप करने लगा। "वह कहां गई; वह मुझे बहुत पसन्द है; मैं उसके पास जाना चाहता हूं"। इस तरह वह कुछ देर तक बकता रहा। इसके बाद वह कुछ शान्त हुआ। पर उसका शान्त-भाव बहुत देर तक नहीं ठहरा। वह फिर बर्राने लगा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सद्धर्म ग्रन्थ REFRENCE BOOK

पूछने लगा कि 'वह ऐन्द्रजालिक किस रास्ते से गया; मैं उससे मिलना चाहता हूं'। इस पर हम लोगों ने फिर उसे समझाना और दिलासा देना शुरू किया। हमने कहा वह स्त्री न थी; केवल भ्रम था। तुम मूर्खता की बातें मत करो। झूठे खेल को देखकर कोई देखी गई चीज़ों को सच नहीं मान लेता। न कोई स्त्री थी; न कोई सर्प था। वह सारा खेल सिर्फ़ माया थी। अतएव उस स्त्री के लिए तुमको दीवाना न होना चाहिए। इस तरह बहुत कुछ कह सुन कर हम लोगों ने गोरिंग को फिर शान्त किया और वह निश्चेष्ट सा होकर बिछौने पर लेट गया।

"इसके बाद जर्म्मिन ने जो फोटो लिये थे उनकी प्लेटें हम लोग देखने लगे। उसने तीन फोटो लिये थे। एक उस समय का जिस समय उस ऐन्द्रजालिक ने अपने पिटारे से साँप निकाला था; दूसरा उस समय का जिस समय वह साँप स्त्री हो गया था; और तीसरा उस समय का जिस समय गोरिंग उस स्त्री को आलिङ्गन करने दौड़ा था। हम लोगों ने 'निगेटिव' उजेले की तरफ़ करके देखे तो सारा दृश्य स्पष्ट देख पड़ा। सर्प, स्त्री, गोरिंग इत्यादि के छाया-चित्र उन पर साफ़ उठ आये थे। यह देख कर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। यदि वह सारा तमाशा भ्रम था तो उसके चित्र कैसे?

"रात होते ही और लोग तो अपने अपने घर गये। मैं और मेजर साहब बँगले में गोरिंग की देख भाल के लिए जागते रहे। मैंने कहा मैं कुछ देर सो लूं। तब तक मेजर साहब गोरिंग के पास बैठें। फिर मैं पहरे पर रहूंगा और मेजर साहब को सोने के लिए छुट्टी दूंगा। मैं बाहर आकर सो गया। कोई १ बजने का वक्त था कि मेजर साहब घबराये हुए मेरे पास आये। उन्होंने कहा कि मैं ज़रा सो गया और उतने में गोरिंग कहीं चला गया।

"हम लोग गोरिंग को ढूंढने निकले। मेजर साहब एक तरफ़ गये और मैं दूसरी तरफ़। बँगले के पास ही एक बाग़ था। थोड़ी देर में उसी तरफ़ से बन्दूक़ की आवाज़ आई। मैं वहां दौड़ा गया। मैंने देखा कि मेजर साहब की गोद में गतप्राण गोरिंग पड़ा हुआ है। उसकी गरदन में सर्पदंश के कई घाव हैं। पास ही मेजर की गोली से मरा हुआ एक भयङ्कर साँप भी पड़ा है। यह हृदयद्रावक दृश्य देखकर मैं काँप उठा। अपने मित्र गोरिंग की ऐसी शोचनीय मृत्यु पर मुझे बेहद रंज हुआ। पर लाचारी थी। भवितव्यता बड़ी प्रबल होती है!"

भूलभुलैयाँ*।

नगर और अश्विनपुर में चिरकाल से वैर चला आता था। इस कारण अश्विनपुर में यह क़ानून प्रचलित था कि अगर कोई श्रीनगर का व्यापारी वहां आवे तो या तो वह एक हज़ार रुपया जुर्माने का दाख़िल करे या शीघ्र ही प्राणदण्ड पावे। श्रीनगर का अजान नामक एक व्यापारी कहीं से घूमता-फिरता अश्विनपुर में आ निकला। राज-कर्म्म-चारियों के दृष्टिगोचर होते ही वे उसे वहां के राजा के निकट ले गये। दीन अजान के पास इतना रुपया कहां, जो वह उसे देकर छुटकारा पावे। निदान उसके लिए प्राणदण्ड देना ही निश्चित हुआ। परन्तु दयालु राजा ने, इससे पहले कि अजान के प्राण-पखेरू उसके तनुपिञ्जर से उड़ जायँ, उसका आद्योपान्त क़िस्सा सुनने की इच्छा प्रकट की। अजान ने कहा, हे राजा! मुझे प्राण जाने का तनिक भी भय नहीं है। क्योंकि मैं अपनी ज़िन्दगी से

* शेक्सपियर की "काम्यडी आफ् एर्स" (Comedy of Errors) नामक नाटक का भावार्थ।—अनुवादक।

सद्धर्म ग्रन्थ REFRENCE BOOK
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेज़ार हूं; परन्तु सच्चा हाल कहने की आपने अति कठिन आज्ञा दी है।

यह कह कर अजान ने एक दीर्घ श्वास ली। उसने कहा—मेरा जन्म श्रीनगर में ही हुआ था। मेरा पिता व्यापार करता था। बड़े होने पर मैंने भी यही पेशा ग्रहण किया। जब मेरे पास कुछ सम्पत्ति हो गई तब मैंने एक युवती से विवाह कर लिया और उसके साथ मैं सुख से दिन बिताने लगा। कुछ दिनों बाद किसी कार्य्यवश मुझे आनन्दपुर जाना पड़ा। वहां ६ महीने तक मैं कुछ काम करता रहा। परन्तु कार्य्य का शीघ्र ही अन्त न होते देख मैंने विचार किया कि ईश्वर जाने यहां कब तक ठहरना पड़े। यह सोचकर मैंने अपनी स्त्री को आनन्दपुर में ही बुला लिया। उसके वहां पहुँचने के थोड़े ही दिन बाद उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों बच्चों की सूरत एक दूसरे से इतनी मिलती हुई थी कि उन को पहचानना कठिन था। आनन्दपुर में जिस मकान में मैंने निवास किया था उसीके पास एक और आदमी का मकान था। जब मेरे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, उसी समय उस आदमी के भी एक ही सूरत के दो बालक हुए थे। उनको मैंने उस आदमी से ख़रीद लिया। वह अति-दरिद्री था। इससे लाचार होकर उसने उन्हें बेच दिया। मेरी स्त्री अपने पुत्रों का मुखचन्द्र देख देख कर बहुत प्रसन्न हुआ करती थी। उसने मुझसे कई दफ़ा श्रीनगर वापस चलने को कहा। परन्तु मैं उसकी बातों को टालता रहा। उसके बहुत हठ करने पर मेरी भी इच्छा हुई कि मैं फिर श्रीनगर वापिस चलूं। कौन जानता था कि दैव की क्या इच्छा है।

हम सब लोग जहाज़ पर सवार होकर श्रीनगर को चले। परन्तु अभी मील भर भी न निकले होंगे कि वायु अत्यन्त वेग से चलने लगी और जहाज़ डगमगाने लगा। माझी लोग हाहाकार करने लगे। अँधियारी ऐसी झुकी कि हाथ मारा नहीं सूझ पड़ता था। मेरी स्त्री यह दशा देख भय से रोने लगी। बच्चे भी मा को रोती देख चोख़ मार मार कर रोने लगे। मैंने साहस करके अपने और उस ग़रीब के छोटे बालक को अपने साथ एक मस्तूल से बांध लिया। ऐसा करने की आज्ञा मैंने स्त्री को भी दी। उसने वैसा ऐसा ही किया। वह लड़कों सहित अपने को बांध ही रही थी कि जहाज़ ने एक चट्टान से टक्कर खाई और देखते देखते वह टुकड़े टुकड़े हो गया। मैं, दोनों बच्चों सहित एक मस्तूल से बँधा हुआ बह रहा था, कि अकस्मात् मेरी दृष्टि अपनी स्त्री पर पड़ी जिसको एक मछुये ने पुत्र सहित एक नाव में बिठा लिया था। उनके इस तरह बच जाने से मुझे कुछ सन्तोष हुआ। तीन रोज़ बाद बहते बहते, बच्चों सहित, मैं नगर के किनारे जा लगा। पर यह न मालूम हुआ कि मेरी स्त्री वग़ैरः का क्या हाल हुआ।

छोटा लड़का, जो मेरे साथ था, जब आठ वर्ष का हुआ, तब वह स्वयं अपनी माता और भाई को खोज करने के लिए हठ करने लगा। उसके बहुत कहने पर मैंने उसे ढूंढ़ने की आज्ञा दे दी। आज सात वर्ष हुए उसका भी कुछ पता नहीं है। मुझको उसे खोजते खोजते बारह वर्ष हो गये। कहीं भी पता नहीं लगा। उसी तलाश में मैं आज यहां आ निकला था। उस खोज का अब मेरी ज़िन्दगी के साथ अन्त है।

राजा उसकी हृदयविदारक कहानी सुनकर अत्यन्त चिन्तित हुआ। उसने कहा, मैं हुक्म नहीं रद्द कर सकता; क्योंकि मैं वैसा करने की शपथ खा चुका हूं। किन्तु एक दिन का अवकाश मैं तुझको देता हूं। अगर तू जुर्माने का रुपया एक दिन में, किसीसे उधार लाकर, जमा कर दे तो तू छुटकारा पा सकता है। इस तरह एक दिन अजान को दिया गया। परन्तु वह उससे कुछ लाभ न उठा सका। क्योंकि आश्विनपुर में किसी से उसकी जान पहचान न होने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधार रुपया न मिला। विवश होकर उसे कारागार जाना पड़ा।

अजान के दोनों पुत्र एक रूप के थे। इससे उनका नाम भी एक ही, अर्थात् विनोदचन्द्र, था। इसी तरह उसके उन दोनों पोषितपुत्रों का भी एक ही, अर्थात् दीनचन्द्र, नाम था। परन्तु, हम, पाठकों के सुभीते के लिए अजान के बड़े लड़के का नाम विनोदचन्द्र और छोटे का विनोद; इसी तरह उसके पोषितपुत्रों में से बड़े का नाम दीनचन्द्र और छोटे का दीन रखते हैं। एक बात यह भी याद रखना चाहिए कि विनोदचन्द्र और दीनचन्द्र तथा विनोद और दीन साथ साथ रहते थे।

विनोद अपने पिता से आज्ञा लेकर घूमता फिरता आश्विनपुर में आ निकला। राजकर्मचारियों ने उसके पिता की तरह उसे भी पकड़ लिया। परन्तु विनोद पर दया करके एक मित्र ने उसे यह सलाह दी कि यदि वह अपने को आनन्दपुर का व्यापारी बतलावे तो शीघ्र ही उसका छुटकारा हो जाय। अजान का बड़ा लड़का विनोदचन्द्र बीस वर्ष से आश्विनपुर में रहता था और इतना धनवान था कि जुर्माना देकर पिता को छुड़ा सकता था। परन्तु इतने समय में वह पिता को बिलकुल ही भूल गया था।

मछुये ने विनोदचन्द्र, उसकी माता और दीनचन्द्र को समुद्र से निकाल अपने घर में रक्खा था। कुछ दिन बाद बच्चों को उसने जागीरदार मङ्गलसिंह के हाथ, जो राजा का चचा था, बेच डाला। मङ्गलसिंह उनको राजदरबार में ले गया। बालक विनोदचन्द्र को देखकर राजा अति प्रसन्न हुआ। उसने दोनो बालकों को अपने यहां रख लिया। जब विनोदचन्द्र तरुण हुआ तब राजा ने उसको फ़ौज में एक बड़े पद पर नियुक्त किया। विनोदचन्द्र स्वभावही से होनहार और पराक्रमी मालूम होता था। उसने एक लड़ाई में राजा की प्राणरक्षा की। इससे प्रसन्न होकर राजा ने उसे बहुत कुछ पारितोषिक दिया और इन्दिरा नाम की एक अतिसुन्दरी सुशील कन्या से उसका विवाह कर दिया। तब से वह बहुत ही सुखपूर्वक रहने लगा। दीनचन्द्र भी उनके साथ रहने लगा।

विनोद ने अपने मित्र से, जिसने उसे आनन्दपुर से आने को कहने की सलाह दी थी, अलग होकर अपने साथी दीन को सराय भेजा कि उसके लिए वह भोजन तैयार करावे। दीन बड़ा दिल्लगीबाज़ आदमी था। जब कभी उसका मालिक विनोद कुछ उदास होता, तब वह अपनी हाज़िरजवाबी और मनोरञ्जक बातों से उसके चित्त को प्रसन्न करता। इस कारण उनमें मालिक और नौकर का ऐसा बर्त्ताव न था। दीन को सराय भेज कर विनोद थोड़ी देर के लिए ठहर गया। वह खड़ा हुआ कुछ सोच रहा था कि दीन आ गया। विनोद ने उसको इतना शीघ्र लौटते देख बड़ा आश्चर्य्य किया और पूछा कि तूने रुपया क्या किया और इतना शीघ्र कैसे वापिस आया? यह दीन विनोदचन्द्र का नौकर दीनचन्द्र था। दीन ने उत्तर दिया, मेरी मालकिन ने आपको बुलाने भेजा है। विनोद ने फिर पूछा कि तूने रुपया क्या किया? दीन ने फिर वही उत्तर दिया कि आपको मैं भोजन करने के लिए बुलाने आया हूं। तब विनोद ने झुंझला कर कहा—अरे मूर्ख, साफ़ साफ़ क्यों नहीं बतलाता। कैसी मालिकिन? दीन ने कहा, आपकी स्त्री इन्दिरा ने आपको बुलाने भेजा है। विनोद का विवाह न हुआ था। इस कारण उसको दीन की बात पर बहुत क्रोध आया। छड़ी लेकर उसने दीन की ख़ूब ख़बर ली। दीन वहां से भाग कर इन्दिरा के पास गया। उसने कहा वे कहते हैं कि मेरा विवाह ही नहीं हुआ। मेरे स्त्री ही नहीं! यह सुनकर इन्दिरा बहुत कुपित हुई और फ़ौरन विनोद से मिलने चली। पर उसको पता लगा कि विनोद सराय को गया। तब उसने सराय के लिए प्रस्थान किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीन के धोखे दीनचन्द्र को पीट कर विनोद सराय को गया। वहां उसने अपने साथी दीन को बैठा हुआ पाया। अब उसने उस दिल्लगी के लिए, जो असल में दीनचन्द्र ने की थी और जिसकी उसको सज़ा भी मिल चुकी थी, दीन की फिर ख़बर ली। इतने में इन्दिरा भी वहां आ गई। उसके आने पर ख़ूब गुल खिला। इन्दिरा विनोदचन्द्र के धोखे विनोद के पास पहुँची और उसे बड़े प्यार से पति, पति, कह कर पुकारने लगी। पति कहने पर विनोद बहुत चौंका। उसने इन्दिरा को बहुत समझाया कि मैं तेरा पति नहीं हूं। मैं तो अभी दो घण्टे भी नहीं बीते कि आश्विनपुर में आया हूं। परन्तु इन्दिरा ने एक न सुनी। वह फिर भी घर चलने के लिए हठ करती रही। अन्त को किसी तरह छुटकारा न पाते देख विनोद उसके साथ अपने भाई के घर गया। इन्दिरा और उसकी बहिन लाड़िली के साथ उसने वहां भोजन किया। वह मन ही मन कह रहा था कि क्या उसका विवाह सोते में हो गया? या वह स्वप्न देख रहा है? उधर दीन भी तअज्जुब कर रहा था कि इन्दिरा की नौकरानी (जो असल में उसीके भाई दीनचन्द्र की स्त्री थी) क्यों उसको पति कह कर पुकारती थी। जिस समय इन्दिरा और उसकी बहिन के साथ विनोद भोजन कर रहा था, इन्दिरा का पति विनोदचन्द्र अपने नौकर दीन के साथ घर आया और द्वार खोलने के लिए उसने आवाज़ दी। परन्तु नौकरानी ने द्वार न खोला। क्योंकि विनोदचन्द्र का नियम था कि भोजन के समय वह द्वार बन्द कर लेता था। उसने बहुत कहा सुना। अपना नाम उसने बतलाया। परन्तु किसी ने उसकी एक भी न सुनी। अन्त को विनोदचन्द्र क्रुद्ध होकर चला गया। इधर विनोद और दीन ने भोजन करके जैसे तैसे वहां से छुटकारा पाया। वहां से निकल कर जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाते हुए वे जा रहे थे, कि एक सुनार ने विनोदचन्द्र के धोखे विनोद को एक सोने की गुंज दी। विनोद ने उसे लेने से इन्कार किया। उसने कहा यह गुंज मेरी नहीं है; मैंने इसे नहीं बनवाया। पर सुनार ने कहा, मैंने इसे आपके हुक्म से बनाया है। यह कहकर और गुंज विनोद के हाथ में देकर वह चला गया।

इधर सुनार पर किसी का क़र्ज़ था। उसके अदा न होने से वह गिरफ़्तार किया गया था। उसको सिपाही पकड़े लिये जा रहे थे कि राह में उसे विनोदचन्द्र मिला। उसको देख कर सुनार ने कहा, कृपापूर्वक उस गुंज की क़ीमत आप दे दीजिये तो मैं अपना क़र्ज़ अदा कर दूं। विनोदचन्द्र ने कहा, तूने मुझे गुंज कब दी थी। सुनार ने कहा, आप भूलते हैं, मैंने आप ही को दी है। सुनार क्या जाने कि वह धोखा खा गया है। अन्त को राज-कर्म्मचारियों ने सुनार को रुपया न देने के अपराध में विनोदचन्द्र को भी गिरफ़्तार किया और कारागार की ओर उसे भी वे ले चले। राह में उनको विनोद का साथी दीन भी मिला। उसको दीनचन्द्र समझ कर विनोदचन्द्र ने कहा कि तू इतना रुपया इन्दिरा से ले आ तो मैं छुटकारा पाऊं। दीन ने विनोद का धोखा खाना बड़ा आश्चर्य्य किया। उसने कहा कि अभी तो इन्दिरा के यहां से जैसे तैसे छुटकारा पाये आये ही हैं। अब फिर मुझे वहीं भेजते हैं। दीन ने समझा कि ये मुझसे दिल्लगी कर रहे हैं। परन्तु मालिक की आज्ञा को वह न टाल सका। भागता हुआ वह इन्दिरा के पास गया। सब हाल उसने उससे कहा। इन्दिरा ने तुरन्त रुपये निकाल कर दीन के हवाले किये। रुपये लिए हुए वह आ रहा था कि उसको राह में विनोद मिला। अब दीन के आश्चर्य्य की सीमा न रही। क्योंकि राह में विनोदचन्द्र के कोई उसको कोई सलाम करता, कोई निवेदन करता, कोई कुछ कहता, कोई कुछ। एक सौदागर रेशम के कपड़े देकर कहा कि आपके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए ये कपड़े आ गये हैं। जब वह दीन के सामने आया तब दीन ने उससे पूछा कि आपको कैद से रिहाई कैसे मिली। जो रुपया आपने इन्दिरा से मँगाया था उसे मैं लाया हूं। यह लीलिए। दीन इस तरह की बातें कर ही रहा था कि एक स्त्री वहां पर आई। उसने विनोद से कहा कि सोने की गुंज जो आपने भेजने को कहा था वह दीजिये। यह सुन कर विनोद अधीर हो उठा और उन्मत्त की तरह चिल्लाने लगा। उसने कहा, तू जादूगरनी है। तू मुझे धोखा देती है। मैंने तुझको इससे पहिले कभी नहीं देखा और न गुंज देने का वादा ही किया। यह स्त्री भी विनोद-चन्द्र के धोखे में थी। क्योंकि जब विनोदचन्द्र अपने घर गया था और इन्दिरा ने, जो विनोद के साथ भोजन कर रही थी, द्वार न खोला, तब वह क्रुद्ध हो लौट आया था। लौटकर उसने इस स्त्री के यहां भोजन किया था। यह उसके साथ बहुत ही अच्छी तरह पेश आई थी। इससे विनोदचन्द्र ने उसे सोने की गुंज देने का वादा किया था। यह वही गुंज थी जो सुनार ने विनोद-चन्द्र के भाई को दे दी थी।

जब विनोद ने ऐसी बातें कीं तब उसको विनोदचन्द्र समझ वह स्त्री दौड़ती हुई इन्दिरा के पास गई। वहां उसने कहा कि तेरा पति पागल हो गया है। वह स्त्री सब हाल कह चुकी ही थी कि इतने में असली विनोदचन्द्र जेलर की निगह-बानी में, हथकड़ी बेड़ी पहने हुए, रिहाई के लिए रुपया लेने अपने घर आया। क्योंकि जो रुपया उसने मँगाया था उसे दीन, उसके भाई विनोद के पास, ले गया था। उधर विनोदचन्द्र रुपये की राह देखते देखते जब थक गया तब वह खुद घर आया। उस स्त्री ने इन्दिरा से सब हाल कह ही रक्खा था। असल में ये सब बातें विनोद से सम्बन्ध रखती थीं। परन्तु आफ़त विनोदचन्द्र पर आई। इन्दिरा ने विनोदचन्द्र की रिहाई के लिए जेलर को फिर रुपया दिया और विनोदचन्द्र को छुटा कर अपने घर रक्खा। तब उसने नौकरों को आज्ञा दी कि विनोदचन्द्र को रस्सी से बाँध कर वे एक अँधेरी कोठरी में रक्खें और शीघ्र ही किसी अच्छे वैद्य को उसकी चिकित्सा के लिए बुलावें। विनोदचन्द्र ने इस आफ़त से बचने की बहुत कोशिश की (जो उन पर उनके भाई के धोखे से आई थी) परन्तु नक़ारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है। उन लोगों ने दीनचन्द्र को भी बाँधा।

इन्दिरा को अपने पति को बाँधे ज़रा ही देर हुइ थी कि एक नौकर ने आकर कहा कि वे घर से निकल गये और बाहर फिर रहे हैं; मैं अभी अपनी आँख से उनको देख आया हूं!

यह सुनते ही इन्दिरा शीघ्रता से अपने आद-मियों को लेकर वहां पहुँची और उनको पकड़ना चाहा। परन्तु इन्दिरा की सूरत से वे ऐसे डरते थे कि उसे देखते ही वे भागे और एक पुजेरिन के मकान में घुस गये। इन्दिरा ने उससे उनको बहु-तेरा माँगा, पर पुजेरिन ने उन्हें न छोड़ा।

हम पहिले कह आये हैं कि एक दिन का समय जो अजान को दिया गया था वह निष्फल हुआ था। उस समय तो वह कारागार को भेज दिया गया था; पर शाम को उसे वध करने की आज्ञा थी। जब शाम हुई, अजान वध करने के लिए उसी पुजेरिन के मकान के पास लाया गया। राजा भी, अपने नौकरों सहित, वहां आया। ज़रा देर बाद विनोदचन्द्र, जिसको इन्दिरा बाँधकर घर में डाल आई थी, किसी तरह छुट कर वहीं पहुँचा। अजान उसको विनोद समझ कर बड़े प्यार से बुलाने लगा। परन्तु यह तो विनोदचन्द्र था। इसने अपने पिता को बहुत वर्षों से देखा ही न था। इससे उसने कहा, यह मेरा पिता नहीं हैं। अजान ने समझा, या तो यह मुझे भूल गया है, या कलि-युगी पुत्रों की तरह मुझे दीन अवस्था में देख कर पिता कहते लजाता है। इतने में विनोद और दीन पुजारिन सहित पास के घर के भीतर से बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये। इन्दिरा अब बड़े आश्चर्य्य से दो विनोदचन्द्र और दो दीनचन्द्र को देखने लगी। इनको देख राजा को अजान की बात याद आई जो उसने प्रातःकाल कही थी। राजा ने पूर्वापर विचार करके सब भेद खोल दिया।

अजान अपने प्यारे पुत्रों से मिला और गद्गद होकर कहने लगा—क्या ही अच्छा होता जो मेरी स्त्री भी इसी तरह मिल जाती। पुजारिन ने उसे दिलासा दिया और कहा कि ईश्वर सब कुछ कर सकता है। यह कह कर उसने अपना जोगिया लिबास उतार डाला। अजान मारे ख़ुशी के बेहोश हो गया। बच्चे उससे लिपट गये। पाठक समझ ही गये होंगे कि यह पुजारिन अजान की प्यारी स्त्री थी। अब उनकी ख़ुशी की सीमा न रही। सब लोग जाकर विनोदचन्द्र के यहां रहे। विनोद ने इन्दिरा की बहिन लाड़िली से विवाह किया और वे सब सुखपूर्वक रहने लगे। चतुर्वेदी।

जापान में शिक्षा-प्रणाली।

ने शनल रिव्यू नामक अँगरेज़ी के सामयिकपत्र में एक लेख जापान की शिक्षा-प्रणाली पर छपा है। उसमें लिखा है कि जापान के छोटे छोटे लड़के जो मदरसों में पढ़ते हैं, वे छ बजे सुबह खाना खा चुकते हैं। सात बजे वे मदरसे जाते हैं और बारह बजे तक वहां रहते हैं। इन पांच घण्टों में खेलकूद के लिए भी उन्हें वक़्त मिलता है। इतवार को सब दिन छुट्टी रहती है; शनिवार को आधे दिन। बीच जाड़े में १५ दिन की छुट्टी होती है; और एक एक हफ़्ते की अप्रैल और अगस्त में। एक तजरबेकार अँगरेज़ शिक्षक लिखता है कि उसने जापानी लड़कों को आपस में झगड़ा करते कभी नहीं देखा। साल में कम से कम एक दफ़ा लड़कों को बाहर सफ़र करने जाना पड़ता है। इस सफ़र में जितनी बातें सिखलाई जा सकती हैं, सिखलाई जाती हैं। बेत की सज़ा नहीं दी जाती। जापानी स्कूल मास्टर कभी ग़ुस्सा नहीं करते; ग़ुस्सा करने वे लोग दूसरों की नज़र में गिर जाते हैं। लड़के अपना सबक़ ख़ूब दिल लगा कर याद करते हैं। सबक़ याद करने से जी चुराना वे जानते ही नहीं।

अमीर और ग़रीब सबके लड़के एक ही साथ मदरसे जाते हैं। जापानी लोग, काम करने और बोलने में, बेहद शिष्टाचार दिखलाते हैं; वे कभी किसीके साथ असभ्यता का व्यवहार नहीं करते। जापान में वज़ीफ़े भी ख़ूब दिये जाते हैं। कुछ वज़ीफ़े वहां उधार के तौर पर भी दिये जाते हैं। जिन लड़कों को ऐसे वज़ीफ़े मिलते हैं, वे जब पढ़ लिख कर तैयार हो जाते हैं तब वे अपनेही समान किसी दूसरे लड़के के फ़ायदे के लिए अपने वज़ीफ़े का रुपया लौटा देते हैं। मदरसों में कसरत करना भी सिखाया जाता है। लड़के तोते की तरह किताबें नहीं रटने पाते। प्रारम्भिक मदरसों में हफ़्ते में दो घंटे नीति-शिक्षा दी जाती है। जो मदरसे कुछ बड़े हैं उनमें हफ़्ते में एक घण्टा नीति-शिक्षा दी जाती है। नीति की शिक्षा में, ऐतिहासिक और मामूली आदमियों के उदाहरण देकर नीति के तत्व अच्छी तरह समझा दिये जाते हैं। नीति-शिक्षा में जो उदाहरण दिये जाते हैं उनमें बहादुरों की बहादुरी का ज़िकर नहीं रहता। उनमें उदारता, दया और आत्मसंयमन (अपने आपको क़ाबू में रखना) आदि गुणों की महिमा रहती है। जापानियों में धार्म्मिक उत्साह कम पर देशभक्ति और उदारता अधिक होती है। १८९२ ईसवी में जापानी लड़कों की एक क्लास से यह पूछा गया कि उनकी सबसे बड़ी अभिलाषा क्या है? इसके जवाब में उन्होंने लिखा—"सबसे अधिक प्यारे अपने राजेश्वर के लिए मर जाने की अनुमति पाना"! जापानी लोग अपने राजा को ईश्वर का अवतार समझते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान में स्त्रीशिक्षा का भी अच्छा प्रचार है। १९०० ईसवी में स्त्रियों की जो यूनीवर्सिटी (विश्वविद्यालय) टोकियो में स्थापित हुई है, वह सबमें श्रेष्ठ है। जो लोग पुराने ख़यालात के थे उन्होंने इस विश्वविद्यालय के स्थापित होने में बहुत कुछ प्रतिकूलता की। तिस पर भी मतलब से अधिक चन्दा इकट्ठा हो गया। जितनी इमारतें दरकार थीं सब बन गईं और विश्वविद्यालय स्थापित हो गया। उसके स्थापित होने के पहले ही उसमें दाख़िल होने के लिए इतनी अर्ज़ियां आईं कि कई सौ अर्ज़ियां नामंजूर करनी पड़ीं; क्योंकि सबके लिए जगह ही न थी। इस विश्वविद्यालय में, इस समय, कोई ७०० स्त्रियां हैं। उनकी शिक्षा के लिए ४९ अध्यापक, ९ शिक्षक और ९ व्याख्यान देने वाले हैं। अध्यापकों में सिर्फ़ २ इँगलैंड के हैं और एक अमेरिका का। बाक़ी सब जापान के हैं। जिन जिन विषयों की शिक्षा स्त्रियों को अपेक्षित है, वे सब विषय यहां सिखलाये जाते हैं। बच्चों का पालन-पोषण, सफ़ाई, कला-कौशल और गृहस्थी के काम-काज के सिवा शिष्टाचार, गाना, बजाना, तसवीर खींचना, और फूलों की माला और गुलदस्ता आदि बनाना भी सिखलाया जाता है। अर्थशास्त्र, इतिहास, दर्शन, भूगोल, कानून, साहित्य, इत्यादि विषयों की भी शिक्षा दी जाती है। जो लड़कियां और स्त्रियां विश्वविद्यालय के बोर्डिंग-हाउस में रहती हैं उनको अपने हाथ से गृहस्थी के काम काज करने की शिक्षा स्त्री-अध्यापिकायें अपने पास रख कर देती हैं।

महिला-परिषद् के गीत।

[३० दिसम्बर १९०५ को काशी की महिला-परिषद् में गाये जाने के लिए रचित]

[१]

बहन, शुभ दिन बड़ा यह आज आया
परस्पर ईश ने हमको मिलाया—
यहां आने में इतनी दूर चल कर
बहुत कुछ कष्ट है हमने उठाया १

अनेकों धर्म्म-पन्थों की हैं हम सब
पै सब पर एक सा अनुराग छाया २

जमा हो इस सभा-मण्डप के भीतर
बहुत उत्साह है हमने दिखाया ३

करें निज हित लगाकर दिल को हम सब
यह अवसर ख़ूबही है हाथ आया ४

झुकावें शीश हम ईश्वर को पहले
कि जो घट घट में है सबके समाया ५

[२]

शिक्षामृत पान करो चित्त को लगाई
जीवित-साफल्य हेत अतिशय गुणदायी—
विद्या की आदि-देव स्त्रीही जग में प्रसिद्ध
देखके हमारी वह घोर मूर्खताई १

पावैगी खेद बहुत, बहनो, सन्देह नहीं
कुछ न कोई कर सकैगा भगिनी या भाई २

आवो सप्रेम उसे नेम से प्रसन्न करें
अपनी उन्नति ही से है सभी भलाई ३

विद्या से नीति रीति होती सब भाँति शुद्ध
मन-वच भी पावन हो होते सुखदायी ४

होंगे तब हमसे शुभ काम सहज मेंही सब
छिपी नहीं जग में है ज्ञान की बड़ाई ५

[३]

अज्ञान-अन्धकार में पड़ी हैं हाय हम
कर ज्ञान का प्रकाश उसे दें नसाय हम—
आवो पवित्र आचरण सीखें नये नये
राखें सुखी कुटुम्ब मनो-वाक्-काय हम १

महिला अनेक महि की भूषण हैं हो गईं
उनकी सुचाल को ही चलें चित्त लाय हम २

उनके सदाचरण ने उन्हें कर दिया अमर
उनकाही सा चलो करें अपना सुभाय हम ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो काम देश के नहीं पूरे वे कर सकीं
आवो करें उन्हींको हिये हर्ष छाय हम ४
छोड़ें विचार आज से अपने पराये का
सोचें गुणों के सिर्फ़ ग्रहण का उपाय हम ५

[४]

प्यारा है सबसे हमको हिन्दुस्तान हमारा
सुख दुःख में हमेशा मेहरबान हमारा—
विद्या नहीं है, बल नहीं है, धन भी नहीं है,
क्या से हुआ है क्या यह गुलिस्तान हमारा १
पढ़ती थीं वेद तक जहां महिला सदैवही
नारी-समूह है वहीं अज्ञान हमारा २
विद्या धनों का मूल है पै उस तरफ़ बहन
अब तक गया नहीं है कभी ध्यान हमारा ३
आवो करें प्रयत्न आज से लगा के दिल
बढ़ जाय जिससे ज्ञान और मान हमारा ४
विद्या बिना स्वदेश की सेवा न हो सके
विद्या ही से है सब तरह कल्याण हमारा ५

सरगौ नरक ठेकाना नाहिँ ।

(आल्हा)

[१]

देवी सारदा तुमका सँवरौं मनियाँ देउ महोबे क्यार
तुमँही रच्छक हौ सब जग के बेड़ा खेइ लगावौ पार ।
आपनि कथा सुनावौं तुमका सुनियौ ज्वानौ कान लगाय
जब सुधि आवै उन बातन कै जियरा कलपि कलपि रहि जाय ॥

[२]

सात पुस्ति ते पुरिखा हमरे बसे गाँउँ मा घरु बनवाय
निगुरन के पुरवा माँ आजौ ठाढ़ि हमारि मँड़ैया आय ।
पैदा हुँवैं भैन हम भैय्या ख्याला खावा नित उठि रोजु
दिन दिनु भरि हम घरै न आयन बाप न पावा रंचौ खोजु ॥

[३]

मूँड़ कै धरती बहुत उठावा तब भै दादा के मन ऊब
हाथु पकरि घसिलायन हमका, कीन्हेन लालि कनगुदी खूब ।
रहे पढ़ावत लरिका याकै लाला नाँउँ मदारीलाल
हुँवैं गैन बैठाये हमहूँ अब आगे के सुनौ हवाल ॥

[४]

एक्का एकु पढ़ै हम लागेन परै लागि नित हम पर मारु
छिन छिन मैं हाँ लाला जौं कैं--"कलुआ आपन हाथु निकारु" ।
छरी तड़ातड़ हम पर बरसै लागौं नित कमते कम बीस
पटई डंडा तहूँ न छाँड़ा भैय्या अस हम रहेन खबीस ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[५]

ज्यौं त्यौं कै हम पढ़ा मोहल्ला, फिरि खरीदि, ग्रै बेंचु, बियाजु
पिचमित, तरकुन मंत्र पढ़ायनि लाला रोजु ढोवायनि नाजु।
फिरि हम गैन झज्झरा खेरे मच्छू मियाँ मोलबी पास
लागेन पढ़े अलिब्बे हौवा धरमु करमु भा सत्यानास॥

[६]

परेन प्याँच माँ जेर जबर के हालि हालि लागेन अभुवाय
घर माँ जानैं पढ़ी पारसी चिलमैं भरत दिनौंना जाय।
पढ़ा करीमा, आमदनामा, खालिकबारी बारा दाँयँ
दस्तूरुस्सुबियाँ पढ़ि डारा जिन के पढ़े पितर तरि जाँयँ॥

[७]

यहू के आगे ग्रौरु बढ़ेन हम पढ़ीं किताबैं हम छा सात
मनु तौ रहै अरब माँ अरबी पढ़ी जाय—पै बदे कै बात।
घर माँ कहै लाग सब कोऊ—"कल्लू बन्द करौ यहु खेलु
बहुत पारसी जो तुम पढ़िहौ तुम्हैं परी ब्याँचै का तेलु"॥

[८]

भैं सि-भवानी कै तब सेवा लागेन करै पढ़बु गा छूटि
बटुवन दूधु दुहा इन हाथन धार न कबौं दुहत माँ टूटि।
मोटरिन कटिया भथुरा, सानी कीन रोजु हम बाँहँ चढ़ाय
मस्त भैन तब आल्हा गावा उपर दुहत्था हाथु उठाय॥

[९]

हेात बनियई आई हमरे, को अब तुमते झूठ बताय
हमहूँ घिउ बरसन ब्याँचा है छोटी बड़ी बजारन जाय।
हिंयाँ को बातैं हिंयैं रहि गईं अब आगे के सुनौ हवाल
गाँउ छाँड़ि हम सहर सिधायन लागेन लिखै चुटकुला ख्याल॥

[१०]

अचकनु पहिरि बूटु हम डाटा बाबू बनेन डेरात डेरात
लागेन आवै जाय सभन माँ, कण्ठु फूट, तब बना बतात।
जब तक हमरे तन माँ तनिकौ रहा गाँउँ के रस का अंसु
तब तक हम अखबार-किताबैं लिखि लिखि कीन उजागर बंसु॥

[११]

जहाँ गाँउँ का खूनु खतम भा तहां फूटि गै भागि हमारि
अक्किल सासु छाँड़ि गै हमका दुर्गति केहिते कहन पुकारि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुंभीपाक-नरकु असि लाखन जाजरू जहँ परे गँधाँयँ
गटरन ते भुँइँ पोलि परी है मनई चलत फिरत धँसि जाँयँ ।

[१२]

आठौ पहर भकाभक निकरै धुँवाँ जहाँ अक्कास उड़ाय
कौनी तना, बताओ तुमहीं, अक्किल रहै लहुरवा भाय ।
ऐसे बुरे सहर माँ रहिकै पाकि उठा सब मगजु हमार
नोक-नकारा हमैं न सूझै मुँहु ह्वैगा भुजवा का भारु ॥

[१३]

जिनका निमक मुद्दतिन खावा तानि डुपट्टा स्वावा भाय
कलम-कुदारी लै उनहिन की जरै वगारै लागेन हाय ।
जिन बँभनन का पुरिखन पूजा हमहूँ जिनके ज्वारा हाँथ
हमरी गारिन के फूलन ते उनहिन के भे बोझिलि माँथ ॥

[१४]

घेरे रहैं गाँउँवाले जो मदति देइँ औ राखैं प्रीति
उनहिन का हम उठि गरियाई अस हमारि भै उलटी रीति ।
अपने करमन कै सुधि आये हियरा टूकु टूकु ह्वै जाय
धरती माता जो तुम फाटौ मैं मुँह के बल जाउँ समाय ॥

[१५]

गुन-जसु मानबु कौनि चीज है सो हम सपन्यौं जानित नाहिँ
अस किरतघ्न औरु, जो ढूंढै, मिली न सात बिलाइति माँहिँ ।
जो हमारि संगी-साथी हैं सुख दुख माँ जो सदाँ सहाँय
उनहुन का अपिमानु करी हम बीच बजार बैठि गोहराय ॥

[१६]

घिन लागै अपने मनइन ते उनका पास न आवै घान
जो कोउ भूलि गाँउँ ते आवै वहिका आड़े हाँथन ल्यान ।
कोऊ न जानै की इनके हैं भ्वासरि भाई-बन्द भकास
यही ते कामु परे पर हमहीं घर का दौरी दुइसै कास ॥

[१७]

अपने मतलब का हम जिनकी चेरिया बिनती करी हजारु
उनहिन के पीछे परि जाई चाहै हँसै सकल संसारु ।
पढ़ा-गुना हम कुछौ नहीं ना, जो कुछु सिखा—राम का नाउँ
तहूँ बिरस्पति जो कुछु ब्वालैं वहिमाँ दौरि घुसारी पाउँ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१८]

हमरी नस नस बीच बियापे इरखा औरु लोभ महराज
उनहिन की दीन्ही खाइत है रोटी, छांड़ि लोक कै लाज।
जहिका चही चढ़ाई ऊपर जहिका चही गिराई कीच
हाय हाय अस हमैं बेगारा सहरु ससुरु यहु है अस नीच॥

[१९]

साफ कहित है हम ऐसेन का सरगौ नरक ठेकाना नाहिँ
बूड़ि मरी जेा हम गङ्गा माँ तौ हत्या लागै हम काहिँ।
हे भगवान उबारौ हमका दीनदयाल धर्म्म के नाथ
तुम्हरे पाँयन माँ हम आपन पटकित है यहु फुटहा माथ॥

[२०]

जेा हम जनतेन असि गति होई तौ हम हाय न छँड़तेन गाँउँ
भूँखन चहै मरित, ना लेइत भूलिउ कबौँ सहर का नाँउँ।
देखि हमारि हाल जेा कोऊ फिरिउ सहर के आई पास
तनिकौ चल न कही हम, होई वहिका सब बिधि सत्यानास॥

कल्लू अल्हइत।

पुस्तक-परीक्षा।

ज़िन्दा-दिल। "ज़माना" नाम की मासिक पुस्तक कानपुर से कई साल से उर्दू में निकलती है। जनवरी १९०५ से अब "ज़िन्दादिल" नामक मासिक पुस्तक भी यहीं से निकलने लगी है। यह भी होनहार और उपयोगी मालूम होती है। इसका अक्टोबर का अङ्क हमारे पास समालोचना के लिए आया है। इसमें कई लेख अच्छे हैं। पर "परेशानी हिन्द" नाम के लेख में जेा वैदिक वाक्य हिन्दी में दिये गये हैं उनमें भूलें रह गई हैं। इसकी सालाना क़ीमत दो रुपये हैं।

*

आर्य्यसमाचार। कानपुर से उर्दू में निकलने वाली मासिक पुस्तकों में आर्य्यसमाचार तीसरा है। इसके सम्पादक बाबू आनन्दस्वरूप वकील हैं। यह पत्र २७ वर्ष से निकलता है। इसके मई से अगस्त तक के अङ्क एक साथ निकले हैं। यह पहले मेरठ से निकलता था। कई अच्छे अच्छे सुलेखकोंने इसका सम्पादन किया है। यह दयानन्द सरस्वती के कालेज से सम्बन्ध रखनेवाली, इस सूबे की सभा का, पत्र है। इस सभा का दफ़्तर अब कानपुर आ गया है। इसीसे आर्य्यसमाचार को भी कानपुर आना पड़ा है। जेा अङ्क हमारे सामने हैं उनमें कई लेख उपयोगी और मनोरञ्जक हैं। एक लेख "सरस्वती" से भी लिया गया है। कानपुर की आबो हवा उर्दू मासिक पत्रों के अनुकूल जान पड़ती है। आशा है "आर्य्यसमाचार" यहां अच्छी उन्नति करैगा। पर उपनिषद् और गीता आदि गहन संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद में मूल संस्कृत को उद्धृत करने में विशेष सावधानता दरकार है। इस अङ्क-चतुष्टय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में एक कविता है। उसका नाम है "एक दर्द-अंगेज़ नज़ारा"। वह आर्यगज़ट से ली गई है। उसके लिखनेवाले हैं "अमरनाथ मोहसिन"। यह कविता ऐसी हृदयद्रावक है कि कोई सहृदय इसे पढ़कर बिना रोये नहीं रह सकता। एक कम उम्र हिन्दू लड़की की शादी हुई। शादी के दूसरे ही दिन वह विधवा होगई। इस विपत्ति के कारण उसने वज्रभेदी विलाप शुरू किया। विलाप करते करते वह बेहोश हो गई। बेहोशी में उसने समझा कि उसका पति उसे दिलासा देते हुए हिन्दू समाज की सख़्ती पर अफ़सोस कर रहा है। इस कारण जब वह होश में आई तब वह और भी चीख़ें मार मार कर रोने लगी। अन्त में दुःखातिरेक से वह भी वहीं समाप्त हो गई। इससे पति-पत्नी दोनों को एक ही साथ श्मशान-यात्रा करनी पड़ी। कविता के अन्त में कवि ने समाज से बालविधवाओं पर दया करने की अपील की है। इस कविता के दो एक नमूने सुनिए—

विलाप।

सरताज मेरे वाली मेरे प्रान से प्यारे।
बे-वक़्त कहां जाते हो, क्यों हाय सिधारे॥
छोड़ा है मुझे आपने अब किसके सहारे।
इन्साफ़ से कहना, थे यही वादे तुम्हारे॥

वह क़ौल कहां और वह इक़रार कहां हैं।
दो दिन ही में बे-अहदी के उनवान अयां हैं॥

जिन आँखों में थी फूल कभी, ख़ार हुई हूं।
मैं अपने हीं कुनबे के लिए आर* हुई हूं॥
बेकस हुं मैं, बेबस हुं मैं, लाचार हुई हूं।
सच कहती हूं मैं जीने से बेज़ार हुई हूं॥

मनहूस कोई कहता है और कोई अभागिन।
कहता है कोई क्यों न मरी होते ही, डायन॥

मैं ग़ैर सही मुझसे अजी बोलो न बोलो।
पर अपने अज़ीज़ों से तो यों ज़हर न घोलो॥

किस हाल में हैं घर के ज़रा आँख तो खोलो।
माता की मुहब्बत को कुछ इन्साफ़ से तोलो॥
क्या दूध की धारों का यही मोल है प्यारे।
सर पीटती को छोड़ कहां आप सिधारे॥

पति का उत्तर।

जाने का मुझे अपने नहीं रंज ज़रा है।
पर ख़ौफ़ तेरा जाने-जहां मुझको बड़ा है॥
जिस क़ौम में है तू वह अजब अहल-जफ़ा है।
नै शर्म ही है उसको कुछ न ख़ौफे-ख़ुदा है॥

है नाला ग़रीबों का उसे एक तराना।
है अश्क यतीमों का उसे मोती का दाना॥

मैं चाहता कब हूं कि तुझे ताने दिलाऊं।
मैं चाहता कब हूं कि अक़ारिब को रुलाऊं।
मैं चाहता कब हूं कि इसी उम्र में जाऊं।
मैं चाहता कब हूं कि तुझे छोड़ के जाऊं॥

लेकिन मेरी जां इसमें नहीं मेरी ख़ता है।
मैं जाने पै मजबूर हूं यह हुक्म क़ज़ा है॥

पत्नी की मृत्यु।

गो आलमे बेहोशी में थी दर्द-रसीदा।
इस आख़िरी फ़िक़रे से हुआ और उसे सदमा
इस सदमे के होते ही घिरा और कलेजा।
घिरते ही कलेजे के बिगड़ने लगा नक़शा॥

मुँह ज़र्द हुआ नबज़ें छुटीं ग़श हुआ तारी।
और देखते ही देखते दुखिया भी सिधारी॥

कवि की अपील।

है भारतियो हाय यह अन्धेर नहीं है।
औलाद पै भी ज़ुल्म सुना तुमने कहीं है।
तुमने तो समझ रक्खा है जो कुछ है यहीं है।
नै हश्र का है ख़ौफ़ न दावर* का यक़ीं है॥

मासूम† का यह ख़ून न दामन से छुटैगा।
धुलने से धुलैगा न मिटाने से मिटैगा॥

* आर = बोझ।

* दावर = ईश्वर, हाकिम।

† मासूम = बेगुनाह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हक़दारों का यों बहरे ख़ुदा हक़ न गँवावो।
महकूमों पै अहकाम तअद्दी* न चलावो॥
मँझधार में है नाव ज़रा ज़ोर दिखावो।
बेवाओं की शादी में न अब देर लगावो॥
ये मोहसिन व अरबाब† सितम की कोई हद है।
कुछ करके दिखाओ कि यही वक़्त मदद है॥

❋

विनयपत्रिका। हरिहरप्रसाद-कृत सीतारामीय-टीका-सहित, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, में मुद्रित और वहीं से प्रकाशित। रीवांनरेश महाराज रघुराजसिंह एक दफ़ा काशी गये। काशीनरेश महाराज ईश्वरीप्रसाद-नारायणसिंह ने आपका बड़ा सत्कार किया। काशिराज ने रीवांनरेश से विनयपत्रिका की टीका बनाने का अनुरोध किया। आपने काशिराज से कहा कि यदि आप रामायण की टीका लिखें तो मैं विनयपत्रिका की टीका लिखूं। काशिराज ने यह बात मंज़ूर कर ली और रामायण की टीका भी लिखकर समाप्त कर दी। रीवांनरेश ने भी विनयपत्रिका की टीका का आरम्भ किया। परन्तु दो ही चार पृष्ठ लिखे जा चुके थे कि आपका शरीरपात हो गया। आपकी प्रारम्भ की हुई टीका को हरिहरप्रसाद ने पूरा किया। यह वही टीका, अब, खड्गविलासप्रेस से प्रकाशित हुई है। टीका अच्छी है। तुलसीदास का भावार्थ ख़ूब समझाया गया है। पर टीका की भाषा पण्डिताऊ है। यदि वह प्रचलित भाषा में होती तो बहुत अच्छा होता।

❋

भारतवर्षीय संस्कृत कवियों का समयनिरूपण। हरिमोहन मामाणिक ने बँगला में एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम है "भारतवर्षीय कविदिगेर समय-निरूपण"। उसे प्रकाशित हुए कोई आठ दस वर्ष हुए। उसमें गुणाढ्य, व्यास, चाणक्य, कालिदास, माघ, भारवि, भवभूति, दण्डी आदि पुराने कवियों से लेकर अर्वाचीन कवियों तक के समय का निरूपण है। प्रत्येक कवि के विषय में और जो जो बातें विदित हुई हैं वे भी इसमें संक्षेप से लिखी गई हैं। पुस्तक लिखी जाने के बाद अनेक नई नई बातों के मालूम होने से यद्यपि हरिमोहन प्रामाणिक द्वारा निश्चय किये गये सिद्धान्तों में कहीं कहीं परिवर्तन की ज़रूरत है, तथापि यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। अच्छा हुआ जो बाबू रामदीनसिंह के कहने से पण्डित सरयूप्रसाद मिश्र ने इसे हिन्दी में अनुवादित और खड्गविलास प्रेस ने छाप कर प्रकाशित कर दिया। ऐसी पुस्तक की हिन्दी में बड़ी ज़रूरत थी। कई दफ़ा हमारे दिल में आया कि हम किसी उपन्यासप्रेमी को यह सूचना करें कि महीने दो महीने के लिए औपन्यासिक काम बन्द करके वह इसे लिख डालें; परन्तु यह सोच कर हम चुप रहे कि कवियों का समयनिरूपण लिखने की उन्हें भला कहां फ़ुरसत? अस्तु। हमारी इच्छा एक और ही द्वार से पूर्ण हो गई। हम खड्गविलास प्रेस के मालिकों की सुरुचि की प्रशंसा करते हैं और पुस्तक की एक कापी भेजने के लिए उनके कृतज्ञ हैं।

हमारी राय में बँगला-पुस्तक के अन्त में कवि और काव्य-ग्रन्थों का जो सूचीपत्र है, वह भी यदि इस पुस्तक में दे दिया जाता तो अच्छा होता। संस्कृत पद्यों का जो छन्दोबद्ध अनुवाद हिन्दी में किया गया है, उसकी कोई ज़रूरत न थी। गद्य में भावार्थ लिख देना ही काफ़ी होता। क्योंकि संस्कृत-कविता का अच्छा अनुवाद हिन्दी में मुश्किल से होता है।

---

* तअद्दी = ज़ुल्म।

† अरबाब = भाई, बन्धुवर्ग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोरञ्जक श्लोक ।

पिकं हि मूकीकुरु धूमयोने भेकञ्च सैकैर्मुखरीकुरुष्व ।
किन्तु त्वमिन्दोः प्रपिधाय बिम्बं खद्योतमुद्द्योतयसीत्यसह्यम् ॥

धुँवे से उत्पन्न हुए हे काले मेघ, तू कोकिल को भलेही चुप कर दे, और अपने छींटों से मेढ़कों के मुँह को खोल कर उनसे खूब वाचालता करा—इसकी कुछ परवा नहीं। पर तू चन्द्रमा के बिम्ब को ढक कर, खद्योत के समान तुच्छ कीड़े का प्रकाश करता है—यह तेरा अविवेक सर्वथा असह्य है।

प्रयाग में माघमेला ।

इस साल प्रयाग में कुम्भ का बहुत बड़ा मेला हो रहा है। लाखों आदमी मेले में जमा हो रहे हैं। परन्तु अभी से मेले में कई आदमियों को हैज़े की बीमारी हो गई है। इसलिए युक्तप्रान्त की गवर्नमेंट सर्व साधारण को विदित करती है कि मेले में आनेवाले लोग ज़रा समझ बूझ कर घर से पैर निकालें। यद्यपि हैज़े के रोकने के लिए सब तरह का इन्तज़ाम सरकार की तरफ़ से हो रहा है, तौभी यात्रियों की जान ख़तरे में रहेगी।

——: o :——

स्वर्ण-पदकविषयक विज्ञापन का फल ।

गतवर्ष जनवरी की सरस्वती में यह विज्ञापन दिया गया था कि उसके छठे भाग में जिसका लेख सबसे अच्छा होगा उसे श्रीनगर (पुरनियां) के नरेश श्रीमान् राजा कमलानन्दसिंह एक स्वर्ण-पदक देंगे। सरस्वती के पाठकों के जानने के लिए यह प्रकाशित किया जाता है कि राजा साहब ने पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०, के "सम्मिलित-हिन्दू कुटुम्ब-प्रथा के दूषण" नामक लेख को सबसे अच्छा समझा है। यह लेख दिसम्बर की सरस्वती में प्रकाशित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ७] फ़ेब्रुअरी, १९०६ [संख्या २

विविध विषय।

माननीय पण्डित सुन्दरलाल, राय बहादुर, बी० ए०, इलाहाबाद युनीवर्सिटी के वैस-चैनसेलर नियत किये गये हैं। पहले इस पद पर इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज, सर जी० ई० नाक्स साहब नियुक्त थे। पण्डित सुन्दरलालजी बहुत वर्षों से विद्याविभाग की उन्नति के लिए तन मन से कार्य्य कर रहे हैं। अब सरकार ने उनको वैस-चैनसेलर का पद देकर उनकी कार्य्य-कुशलता का पूरा आदर किया। केवल एक ही और विश्वविद्यालय में एक भारतवासी इस पद पर नियुक्त है। वे मदरास के वैस-चैनसेलर सर एस० सुब्रह्मण्य आयर, के० सी० आई० ई०, हैं। पण्डित सुन्दरलालजी गुजराती ब्राह्मण हैं और इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रधान एडवोकेट हैं। आप युनीवर्सिटी की तरफ़ से लाट साहब के कौंसिल के मेम्बर भी चुने जा चुके हैं। हम माननीय पण्डितजी का चित्र इस बार सरस्वती के पाठकों को सादर भेट देते हैं।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हम लिख चुके हैं कि कुछ समय से लाहौर के दयानन्द-ऐंग्लो-वैदिक-कालेज में जापानी भाषा भी सिखलाई जाने लगी है। जापान के मिस्टर टी० गोटो इस भाषा के अध्यापक हैं। आपकी उमर अभी कम है। पर अँगरेज़ी और जापानी दोनों भाषाओं में आप पण्डित हैं। गोटो महाशय के जो पत्र हमारे पास अँगरेज़ी में आये हैं उनसे आपके चित्त का औदार्य और शील टपके पड़ते हैं। जापान के विषय में आपसे जो कुछ कोई पूछता है आप प्रसन्नतापूर्वक बतलाते हैं। आज हम इस संख्या में आपका भी चित्र प्रकाशित करते हैं।

* * *

आइज़क पिटमैन साहब के ईजाद किये हुए "शार्ट हैण्ड राइटिंग् (Short Hand Writing) से योरप और अमेरिका की ज़बानों में बड़े बड़े काम होते हैं। इसे हिन्दी में "शीघ्र-लिपि-प्रणाली" कह सकते हैं। इसमें एक विशेष प्रकार के सङ्केत रहते हैं। बड़े बड़े वाक्य एक छोटे से साङ्केतिक चिन्ह में लिखे जा सकते हैं। जहां कहीं वक्तृतायें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हैं वहां इस लिपि से ख़ूब काम लिया जाता है। बोलनेवाले धाराप्रवाह बोलते जाते हैं और इस सांकेतिक लिपि के लेखक उनकी वक्तृता को लिखते चले जाते हैं। बड़े बड़े अख़बारों के रिपोर्टर इसी लिपि को काम में लाते हैं। बड़ी ख़ुशी की बात है कि महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र बाबू द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर ने इस लिपि का निर्म्माण वङ्गाक्षरों के लिए भी कर दिया। कई एक उत्साही तरुण इसे सीख रहे हैं। अभी तक इसका प्रकाशन सर्व-साधारण में नहीं हुआ; परन्तु शीघ्र ही जाने की आशा है। इस लिपि का प्रयोग देवनागरी अक्षरों में लिखी जाने वाली और भाषाओं में भी हो सकेगा।

* *
*

सरस्वती में एक दफ़ा गरुड़ पक्षी के ऊपर एक लेख छप चुका है। उसमें यह कहा गया है कि गरुड़ सचमुच ही पक्षियों का राजा है। उड़ने में, बल में, हमला करने में कोई पक्षी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। वह लड़ते तक को उठा ले जाता है और भेड़ियों के झुण्ड के झुण्ड एक एक करके पहाड़ों पर रख आता है। वह बड़ा विकट शिकारी है। अफ़रीका के उगंडा सूबे में अँगरेज़ों की अमलदारी है। वहां भी बड़े बड़े भयङ्कर गरुड़ पक्षी होते हैं। वे गीदड़ों का सहज में शिकार करते हैं। प्राणि-विद्या के जाननेवालों ने इन गरुड़ पक्षियों के विषय में अनेक बातों का पता लगाया है। शत्रु पर आक्रमण करते हुए उगण्डा के एक ख़ूनी गरुड़ का चित्र यहां पर दिया जाता है।

* *
*

डाक्टर एच० हेनसोड, पी० एच० डी०, जरमनी के रहनेवाले हैं। आपने बहुत बरसों तक हिन्दुस्तान, तिबत, ब्रह्मा और लङ्का में सैर की है। आप एक बहुत बड़े विज्ञानी हैं। आपने अमेरेज़ी की एक सामयिक पुस्तक में एक लेख प्रकाशित किया है। उसमें आपने इस देश के इन्द्रजाल की ख़ूब प्रशंसा की है। आप लिखते हैं—"आगरे में मुझे एक साधू मिला। एक खुले मैदान में उसने अपनी छड़ी से ज़मीन में छ इंच गहरा एक छेद कर दिया। उसके भीतर उसने एक अधपका आम गाड़ दिया। तीन मिनिट में उसके भीतर से आम के एक पेड़ के उगने के लक्षण देख पड़ने लगे। क्रम क्रम से वह बढ़ने लगा। पाँच मिनिट में वह पूरा पेड़ हो गया। उसकी उँचाई लगभग ५० फ़ुट होगी। पत्तियों से वह लदा हुआ था। आम भी उसमें लगे हुए थे। जब मैं उसके पास गया तब वह पेड़ पहले कुछ धुंधला सा मालूम हुआ; फिर बिलकुल ही नज़र से ग़ायब हो गया। जब मैं अपनी जगह पर लौट आया तब वह पेड़ फिर मेरे सामने पहले की तरह खड़ा हुआ देख पड़ा। दो अँगरेज़ अफ़सर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीछे से आ गये थे; पर ज़मीन में आम गाड़ने के वक़्त वे हाज़िर न थे। वह पेड़ उनको नहीं दिखाई पड़ा। पर और सब लोगों को वह अच्छी तरह देख पड़ता था। २० मिनट बाद साधू ने कुछ कहना शुरू किया। जब वह कह चुका, पेड़ न मालूम कहां, गायब हो गया। उसने ज़मीन में गड़े हुए आम को खोद लिया और खोद कर चल दिया। मुझे ऐसा ही एक तमाशा पञ्जाब के एक गाँव में एक दफ़ा देखने को मिला था। यह तमाशा मुझे रामसिंह नाम के एक आदमी ने दिखाया था। इस दफ़ा मैंने इस पेड़ का फ़ोटो ही नहीं लिया, किन्तु कई फ़ुट तक इस पर मैं चढ़ भी गया था"।

* *
*

कानपुर के "ज़िन्दादिल" के एक बनारसी लेखक महाशय ने सरस्वती के एक लेख को "ज़िन्दादिल" में प्रकाशित कर दिया; पर "सरस्वती" का नाम देना आप भूल गये। इस पर "सरस्वती" में हमने एक नोट लिखा। "हिन्दी-बङ्गवासी" से मालूम हुआ कि "ज़िन्दादिल" ने अपने दिसम्बर के अङ्क में हमारे इस नोट का ज़िकर करते हुए लिखा है—"यह मामला प्राइवेट है और हम एक प्राइवेट ख़त में चोरी के मज़मून से पबलिक को आगाह कर देने के लिए एडिटर साहब सरस्वती का शुक्रिया अदा कर चुके हैं"। इस पर हमारी प्रार्थना है कि यह मामला ज़रा भी प्राइवेट नहीं; इसमें प्राइवेसी की गन्ध तक नहीं। न हमने कभी "ज़िन्दादिल" का आफ़िस देखा; न कभी "ज़िन्दादिल" के एडिटर या मैनेजर को देखा; न कभी "ज़िन्दादिल" से सम्बन्ध रखनेवाले किसी और ही आदमी को देखा; और न कभी उसकी बाबत कुछ सुनाही। वह लेख डाक्टर महेन्दुलाल गर्ग के एक लेख से नक़ल किया गया था। उन्हींने हमारे पास "ज़िन्दादिल" की वह कापी भेजी थी। यदि वे न भेजते तो हमें ख़बर भी न होती कि "ज़िन्दादिल" भी उर्दू में कोई मासिकपत्र है। शुक्रिया तो आपने ज़रूर अदा किया है और आपकी इस शिष्टता की हम तारीफ़ भी करते हैं; पर जो ख़त आपने कलकत्ते भेजा है उसमें आपने अपने दिल का ग़ुबार भी ख़ूब निकाला है। इस विषय में "हिन्दी-बङ्गवासी" ने जो टिप्पणी लिखी है उसके लिए धन्यवाद।

* *
*

अभी हाल में एक किताब निकली है। उसका नाम है "उर्दू-बेगम"। किताब नागरी हुरूफ़ों में है; पर भाषा उसकी प्रायः उर्दू है। लेखक एक बी० ए० हैं। पर किताब पर उन्होंने अपना नाम नहीं दिया। किताब एडवर्ड प्रेस, इलाहाबाद, में छपी है और ८ आने को मिलती है। इसका मज़मून बिलकुल नया मालूम होता है। आदि से लेकर अन्त तक इसमें रूपक है। अरबी मियां और फ़ारसी बेगम की पोषित पुत्री उर्दू-बेगम के साथ लाला भवानी ग़ुलाम कायस्थ के प्रेम-सम्बन्ध का वर्णन इसमें बड़ी ही योग्यता से किया गया है। उर्दू के चरित्र का जैसा चित्र इसमें है वह बहुत ही अच्छा है। इसकी इबारत हास्यरस से भरी हुई है। कहीं कहीं पर तो कोई कोई बात ऐसी हास्योत्पादक कह दी गई है कि उसे सुनकर आजन्म मौनव्रत धारण करनेवाले मुनि भी हँस पड़ें। इसकी इबारत जगह जगह पर कवित्व-रस से रञ्जित है। और भी इसमें कितनी ही मज़ेदार बातें हैं। एक जगह पर इसमें लिखा हुआ है—"एक दफ़ः एक मौलवी साहब ने लिखा—बरतर नतीजः हिल्म—उसको एक लाला साहब ने पढ़ा—नरियर नैचः चिलम"! दूसरी जगह पर है—"उर्दू-बेगम। तो आप किसीको बेजा तौर पर नुक़तःचीनी न करने दीजिएगा। लेकिन ऐबजोई करनेवाले कब मानते हैं। वे तो दूसरों की नाक काटने में अपना फ़ख़ समझते हैं; चाहे वैसा करने में ख़ुद उनकी नाक कट जाय"। इस किताब में मौके मौके पर कविता भी ख़ूब अच्छी अच्छी है। इसमें सब सोलह अध्याय हैं। अध्याय का नाम झलक रक्खा गया है। नवीं झलक में "हिन्दू,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसल्मानों और अँगरेज़ों की ख़सलतें; इसलाम फैलाने की तरकीब; और उर्दू ज़बान का असर" है। इस अध्याय में लेखक ने अपनी योग्यता का बहुत ही विशेष परिचय दिया है। किताब के अख़ीर में लाला भवानीग़ुलाम की मा हिन्दीबाई और जोरू कैथीकुँवर ने उर्दू बीबी पर इस बिना पर नालिश की है कि उसने भवानी ग़ुलाम को अपने जाल में फाँस कर उन दोनों को भूखों मरने की नौबत को पहुँचाया। अन्त में हिन्दीबाई और उर्दू-बेगम में मेल हो गया। दोनों ने अपने को एक ही मा, अर्थात् प्राकृत-देवी, से उत्पन्न जान ख़ुशी मनाई और परस्पर बहन बहन का ऐसा बर्ताव करने का प्रण किया। किताब लेने के लायक़ है; पढ़ने के लायक़ है; विचार करने के लायक़ है। हिन्दी-उर्दू का यह एक मुख़्तसिर इतिहास है। इसमें अगर कोई दोष है तो यह है कि एक आध जगह पर इसकी इबारत में कुछ अश्लीलता की बू है।

* * *

एक और रूपकमय किताब, अभी हाल में, हमारे पास आई है। बनारस में एक बाबू मोहिनी-लाल गुप्त हो गये हैं। उनका शरीर-पात हुए कई वर्ष हुए। यह पुस्तक उन्हींकी रचना है। इसका नाम है सिद्धमनोरञ्जन। यह कोई २०० पृष्ठ की किताब है। दाम इसका १) रुपया है। काशी के अग्रवाल-समाज से यह मिल सकती है। पुस्तक पद्य में है और ग्रियर्सन साहब को समर्पित हुई है। इसमें—"ग्रन्थकर्ता ने कहानी के रूप में यह दिखलाया है कि मनुष्य का मन बुरी इच्छाओं में पड़ कर किस तरह सत्य का पथ छोड़ देता है और अपने को नष्ट करता है। और फिर किस तरह ईश्वर की कृपा से उसको बुद्धि की सहायता मिलती है और फिर वह धर्म्म के पथ पर आ जाता है, पङ्कज देश में आत्मनगर नामक एक शहर है। वहां राजा चित्त राज्य करता था। सङ्कल्प उसका मित्र बना। उसके बहकाने से राजा को अनेक कष्ट भोगने पड़े और उसका राज्य उससे छि गया। अन्त में धैर्य्य नामक रास्ते से चलकर वि पुण्यनगर में पहुँचा। वहां प्रेम और भक्ति लड़की चिति से उसने शादी की। और अन्त अपने देश जाकर फिर उस पर उसने क़ब्ज़ा लिया। इसमें इसी रूपक का विस्तृत वर्णन है

नरहरि और हरिनाथ।

युक्त प्रदेश में फ़तेहपुर एक ज़िला इस ज़िले में असनी नाम का आम है। ग्राम बहुत बड़ा अन्तर्वेद में असनी उच्चश्रेणी कान्यकुब्जों का स्थान है। यह समुद्र की सतह से ३७६ फ़ीट की उँचाई पर के दाहने किनारे बसा है। गङ्गा का प्रवाह यहां कुछ उत्तर-पूर्व है। यह ग्राम १½ फरलांग और लम्बाई में गङ्गा के किनारे किनारे डेढ़ तक बसा है। कलकत्ते से ६३७, प्रयाग से ७३ कानपूर से ४७ मील के फ़ासले पर ईस्ट-इण्डियन रेलवे का फ़तेहपूर स्टेशन् है। वहां से रायबरेली जानेवाली सड़क के किनारे ९ मील की दूरी हुसेनगंज नामक एक क़सबा है। यहां से ३ मील है। वहां तक कच्ची सड़क भी है। लोग खेती न करके रोज़गार और नौकरी से निर्वाह करते हैं। यहां पर्वों पर दूर दूर से गङ्गास्नान के लिये एकत्र होते हैं और छोटे बड़े मेले भी लग जाते हैं। श्रीविहारी मालिकोत्सव चन्दूलाल की बाज़ार में प्रति होता है; उस समय तीन रोज़ तक दर्शकों की रहती है। यहां पर देहाती मदरसा, डाकख़ाना बाज़ार और गङ्गाजी पार करने के लिए घाट भी प्रबन्ध है। गङ्गा के उस पार रायबरेली ज़िले में गेगासँव (गर्गाश्रम) नामक गांव में हारिणी देवी संकटा का मन्दिर है, जहां वैशाख जेष्ठ दो महीने प्रति सोमवार को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है। देवीजी का यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। यहां जाने के लिए फ़तेहपुर के ज़िले के लोगों को प्रायः असनी ही का घाट उतरने में सुभीता होता है। असनी की मिठाई भी—विशेष करके लड्डू—बहुत मशहूर है असनी भाटों की बस्ती कहलाती है। क्यों? इसका वृत्तान्त इस लेख में आगे दिया जाता है।

पूर्वकाल में असनी के पूर्व सुकुलपुर नाम का एक ग्राम था। प्रसिद्ध कवि नरहरि के पिता उसी ग्राम के रहनेवाले थे। आपके पिता बहुत ग़रीब और पुरानी चाल के भोले भाले मनुष्य थे। नरहरि की बाल्यावस्था का चरित आप के वंशज यों बयान करते हैं। वे कहते हैं कि लड़कपन में नरहरि एक दिन अपनी गायें चरा रहे थे कि एक साधु ने आकर कहा "बच्चा, मुझे भूख लग रही है"। आप ने आधीनता-पूर्वक कहा, महाराज, बस्ती में जाइये। यहां मैं अकेला गाय चरा रहा हूं। अगर इन्हें छोड़ घर जाता हूं तो ये किसी की कृषी चरलेंगी, और पिता तक उलाहना पहुंचेगा, जिससे मेरे दण्ड पाने का भय है। साधु ने कहा, "बच्चा, इस समय मैं बस्ती में जाना उचित नहीं समझता। अगर तू जाकर कुछ कच्चा अन्न ला सके तो मैं तेरी गायें यहीं देखता हूं"। यह बात नरहरि के भी मन आगई। घर जाकर उन्हों ने अपनी मां से खाने की सामग्री मांगी। माँने भी भक्तिपूर्वक जौ का थोड़ा सा आटा और दूध लड़के को देकर बिदा किया। इन्हों ने वह उस साधु को अर्पण किया। साधु ने उसी जगह कूप के किनारे कण्डों पर रोटियां बनाकर उन्हें भगवान को अर्पण किया। और इनको भी दो भौरियां (रोटियां) दीं और कहा, बच्चा, तू भी प्रसाद पाले। नरहरि ने प्रसाद तो लेलिया पर उसे अपने कपड़ों में छिपा लिया। जब साधु महाराज भोजन करके सन्तुष्ट हुए तब नरहरि से पूछा कि बच्चा तूने प्रसाद पाया। इन्होंने कह दिया, हां महाराज। तब उस साधु ने कुछ सोच विचार कर कहा "बच्चा तूने भगवान के प्रसाद को नहीं पाया। मेरे विचार में आता है कि अगर तू पा लेता तो तू अवश्य राजा होता। परन्तु जा राजाओं का कृपापात्र तू अब भी होगा"।

उस समय तो नरहरि ने उस महात्मा की बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया। पर कुछ रोज़ बाद इनके मन में ज्ञान का सञ्चार हुआ और गायों का चराना छोड़ इन्होंने हिन्दी सीखना आरम्भ किया। हिन्दी में बहुत जल्द बोध हो जाने पर आप की इच्छा संस्कृत सीखने की हुई। काशी जाकर आपने थोड़ी बहुत संस्कृत विद्या भी सीखी और अपने कुलानुसार आप कविता भी करने लगे। अब कविजी को द्रव्य पैदा करने की अभिलाषा हुई। परन्तु उस समय मुसलमानों का प्रताप-सूर्य्य समस्त भारत में चमक रहा था और बादशाह, सूबेदार और बड़े बड़े नवाब सब फ़ारसी-कविता के प्रेमी थे। उस समय भाषा कवियों को छोटे छोटे तअल्लुक़ेदारों के सिवा और कोई पूछनेवाला न था। इससे नरहरिजी ने दिल्ली पहुँच कर अपनी कार्य्यसिद्धि के लायक़ फ़ारसी भी सीख ली। भाग्यवश वे बाबर के दरबार में किसी तरह पहुंच गये। बाबर को आप की कविता ऐसी पसन्द आई कि उसने इन्हें शाही कवियों में शुमार कर लिया। आपका बनाया हुआ एक पद्य मैं यहां पर उद्धृत करता हूं, जिसे आपने बाबर की प्रशंसा में बनाया था।

नेकबख़्त, दिलपाक, सख़ी, ज्वांमर्द, शेर नर।
अबल वली ख़ोदाय, दिया बिसियार मुल्क ज़र॥
तुम ख़ालिक बहुवेश रुकन शालियन अमालिम (?)
दौलत बख़त बुलन्द जंग दुश्मन पर ज़ालिम॥

इन्साफ़ तुरा गोयद ख़लक़
कवि नरहरि गुफ्तन चुनो।
बब्बर न बरोबर बादशाह
दिल दिगर न दीदम दरदुनी॥*

शिवसिंह-सरोज में लिखा है कि नरहरिजी सं० १८९८ में उत्पन्न हुए थे। यह ग़लत है।

* इस कविता में कुछ गड़बड़ मालूम होती है। सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरहरिजी का जन्म सम्वत् १५६२ के लगभग हुआ था। पच्चीस वर्ष की अवस्था तक आप बाबर के दरबार में रहे। इसी समय आपके पिता की मृत्यु की ख़बर पहुँची। इससे आपको अत्यन्त दुःख हुआ और आप तुरन्त बादशाह से बिदा होकर अपने मकान चले आये। यहां अपने कुटुम्बियों के साथ गृहस्थी का सुख अनुभव करने लगे।

नरहरिजी कुछ कारणों से ३३ वर्ष की अवस्था तक फिर बाहर नहीं जा सके। तदुपरान्त कविजी दुबारा दिल्ली के लिए रवाना हुए। इस बार आप राजे, महाराजे, नवाब, सूबेदार, तअल्लुक़ेदार, सब के दरबार देखते और प्रतिष्ठा पाते साल भर में दिल्ली पहुँचे। परन्तु लड़ाई झगड़े की वजह से आप का दिल्ली में बहुत रोज़ रहना न हुआ और न आप को विशेष द्रव्य ही प्राप्त हुआ। ये हुमायूं बादशाह के लश्कर के साथ क़न्नौज तक आये और वहां से अपने मकान लौट गये। इस बार शाही दरबार से कम प्राप्ति होने के कारण आप आस पास के तअल्लुक़ेदारों का आश्रय हमेशा लेते रहे और ६२ वर्ष की अवस्था तक दूर देश जाने का इरादा आपने नहीं किया।

आप के इस अवस्था तक कोई पुत्र नहीं हुआ था। इस बात का दुःख, समय समय पर, स्त्री पुरुष दोनों को, निरुत्साह और मलीन बना देता था। परन्तु उस जगदाधार परमात्मा की विचित्र गति है। उसने आपको ६१ वर्ष की अवस्था में आप ही के समान कवि और प्रतापी पुत्र देकर आपकी कुम्हलाती हुई आशा-लता को सींच कर मानों फिर लहलही कर दिया। कवि जो विरक्त से फिर गृहस्थ बने।

आप को द्रव्योपार्जन की फिर चिन्ता हुई। स्त्री के बहुत मना करने पर भी आपने दिल्ली को फिर प्रस्थान किया। इस बार अकबर के दरबार में आप की बड़ी प्रतिष्ठा हुई। एक एक पद्य के लिए लाख लाख रुपये आपने पारितोषिक पाया। बैरमख़ां के लड़के रहीमख़ां ख़ानख़ाना से आपकी बड़ी मित्रता थी। आप बादशाह के दरबार में आशु कवि कहे जाते थे। सुनते हैं एक दिन अकबर ने कर्ण कवि सिरोहिया से पूछा कि तुम लोगों में कौन बन्दीजन (भाट) बड़े हैं। आप कहां हैं। कर्ण ने कहा सिरोहिया बन्दीजन सब जहाँ बड़े होते हैं। वे कलँगी के समान हैं। तब अकबर ने नरहरि की तरफ़ देखा। नरहरिजी ने कहा कर्णजी ठीक कहते हैं। सिरोहिया सिर के समान और हम पैर के समान हैं। इस उत्तर से अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और नरहरिजी को उसने महापात्र की पदवी दी। तब से नरहरि के वंशज महापात्र कहलाते हैं। वर्तमान समय में भी इस के घराने वालों की विशेष इज़्ज़त है।

नरहरिजी के सम्पूर्ण ग्रन्थ तो कोई नहीं जाते। परन्तु आप की फुटकर कविता और बहुत तरह की हैं। कविजी के वंशज कहते हैं कि आपने "रुक्मिणीमङ्गल" और बादशाह अकबर के आज्ञानुसार "छप्पय-नीति" ये दो ग्रन्थ बनाये हैं। एक एक पद्य में इन दोनों ग्रन्थों से यहां उद्धृत करता हूं--

रुक्मिणी मंगल से—

ततछन टरत तनक अरचत जन
गन गन सघन कनक दरखत दर।
तरल नयन धन धरत अधरतल
करतल करलस सरल गरलधर॥
अटत गहन धन रटत अजर जस
नगन सजत रज रजत अचल धर।
दहत सकल अघ दरसत दरसन
दरद न रहत कहत नरहर हर॥

छप्पयनीति से—

नरहरि धरहरि को करै, जननि सुतहि विष दे।
वारि जो खेती हठि चरै साहु परा धन लेइ।
साहु परा धन लेइ नाव करिया गहि बोरै।
वोइ पहरु वोइ चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै॥
नृपति प्रजहि दुखदेइ कौन समरत्थहि धरहरि।
क्षितिपति अकबर शाह सुनो बिनती कर नरहरि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरहरि जी जैसे कवि थे वैसेही सभाचतुर भी थे। एक समय आप अपने डेरे में बैठे हुए कुल्ला दातून कर रहे थे। इतने में एक गाय कांपती हुई आप के घर में घुस आई। उसके पीछे दो कसाई भी वहाँ आ पहुँचे। वे बोले कि हमारी गाय तुम्हारे घर के भीतर है, उसे निकाल दीजिये। कवि जी उनको पूरतही से ताड़ गये कि ये कसाई हैं और यही कारण है कि गाय काँप रही है। उन्हों ने इधर उधर की बातें करके अपने को छिपाना चाहा। परन्तु बात न छिपी। तब उन्हों ने क्रोध में आकर कहा कि हम कसाई ही सही, गाय हमारी है। आप की उस पर क्या सत्ता? कवि जी ने कहा भाई, अब तो जो चाहो सो करो। पर शरणागत के बचाने में अगर प्राण भी जाय तो अच्छा। अधिकों ने न्यायाधीश की शरण ली। न्यायाधीश ने जवाब दिया कि कवि जी ने अनुचित तो किया पर बादशाह की आज्ञा बिना मेरा कुछ वश नहीं। तुम बादशाह से जाकर निवेदन करो। अन्त ऐसाही हुआ। बादशाह ने कवि जी को दरबार में बुलाकर कहा—आप मेरे लिये नीति रचते हैं पर खुद अनीति करते हैं। इसके उत्तर में कवि जी ने यह छप्पय पढ़ा—

तृण जो दंततर धरहिँ
तिन्है मारत न सबल कोइ।
हम नित प्रति तृण चरहिं
बैन उच्चरहिँ दीन होइ॥
हिन्दुहि मधुर न दोहँ
कटुक तुरकै न पिआवहिँ।
पय सुविसुध अति स्रवहिँ
बच्छ महिथम्भन जावहिँ॥
सुनु शाह अकब्बर अरज यह
कहत गऊ जोरे करन।
सो कौन चूक मोहिँ मारियतु
मुये चाम सेवहिँ चरन॥

यह सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ; और वही नहीं, वरन गोकुशी बिलकुल ही बन्द करादी।

यह भूमि जहां अब असनी बसी है कवि जी को पान खाने को मिली थी। नरहरि के पुत्र हरिनाथ अपने लिखे हुये नरहरि-चरित में लिखते हैं कि मेरे पिता की युवा और मध्यमावस्था घर में ही बीती। वृद्धावस्था आपने अकबर के दरबार में बिताई। उनकी मृत्यु सौ वर्ष के बाद सं० १६६६ सन् १६०९ में असनी में हुई। इतनी अवस्था होने पर भी ये बहुत शिथिल नहीं हुये थे। खूब चल फिर सकते थे।

नरहरि के पुत्र हरिनाथ भी बड़े प्रतापी और बुद्धिमान हुए। इनका जन्म सं० १६३० (सन् १५७३) में हुआ था। आप भी काव्य में अपने पिता ही के समान कुशल थे। इनके पिता बादशाह के दरबार में जो कुछ प्राप्त करते थे उसे अपने पास न रखकर हमेशा घर भेजते जाते थे और सदा यह उपदेश देते रहते थे कि बेटा, यह धन बड़े परिश्रम से उपार्जन किया गया है। इसे बड़े सञ्चय से रखना। हरिनाथ सोचते थे कि हम इस द्रव्य को किस प्रकार सञ्चित रक्खें। यदि इसे गाड़ कर रखते हैं तो कदाचित् चोर खोद ले जायँ, तब हम पिता को क्या उत्तर देंगे। निदान आप ने यह सिद्धान्त किया कि कुलीन कान्यकुब्जों को बुलाकर यदि हम असनी में बसावें तो उत्तम हो। बस आप कान्यकुब्जों को बुला बुला कर बसाने लगे। जितनी सम्पत्ति वे लोग अपने पूर्वस्थान पर छोड़ कर आते उसकी दूनी हरिनाथ जी से पाते। आपने कान्यकुब्जों का इतना सत्कार किया कि दोही वर्ष में वाजपेयी, मिश्र, शुक्ल, पांड़े, त्रिपाठी, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी इत्यादि असनी में आकर बस गये। जब नरहरि जी घर आये तब आपने फिर भी पुत्र से धन यत्न-पूर्वक रखने को कहा। हरिनाथ ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि मैंने सब धन ऐसे यत्न से रक्खा है कि आप के और मेरे बाद भी वह सहस्रों वर्ष तक सञ्चित रहेगा। शाम को मैं आपको अपनी सब विभूति दिखलाऊंगा।

नरहरि जी बड़े विस्मित हुये कि बात क्या है, कुछ ध्यान में नहीं आती। परन्तु उस समय आपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ न कहा। हरिनाथ ने सब लोगों के यहां कहला भेजा कि आज हमारे यहां भगवान की पूजा है और हमारे पिता आप लोगों के दर्शन भी करना चाहते हैं सो कृपा करके आप लोग सज धज से पधारें। शाम को जब सब लोग एकत्र हुये तब हरिनाथ ने पिता से हाथ जोड़कर सब कच्चा हाल कह सुनाया। नरहरि ने गम्भीरता से कहा कि, बेटा, जो कुछ किया बहुत उत्तम और लोक परलोक दोनों में कीर्त्ति का देने वाला है; पर यदि मेरी वृद्धावस्था की कमाई न व्यय करके अपनी कमाई व्यय करते तो तुम्हारा पुरुषार्थ था। पिता का यह कहना इनके बाण सम लगा। ज्यों त्यों कर आपने रात बिताई। प्रातःकाल होतेही आप लोटा डोर लेकर घर के बाहर हुये।

जब यह समाचार पिता को मिला तब आप बहुत व्याकुल हुये और अपने कहे पर पश्चात्ताप करने लगे। पुत्र के खोज में आपने चारों तरफ़ मनुष्य भेजे, पर कहीं पता न मिला। हरिनाथ भिक्षा-भवन करते रीवां पहुँचे। वहां कुछ दिन तक वे इधर उधर घूमते रहे। बादशाह के दरबार में रहने से नरहरि जी का नाम बड़े बड़े राजाओं को पूर्णरूप से विदित था। कुछ दिन बीतने पर रीवां नरेश ने सुना कि नरहरि कवि के पुत्र हमारे राज्य में आये हैं। श्रीमान ने इन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। जब हरिनाथ जी आये श्रीमान उठकर अङ्कभर मिले। पर हरिनाथ ने अपना दाहना हाथ बिलकुल अलग रक्खा। इसपर महाराज के दरबारियों को बड़ा विस्मय हुआ और वे आपस में काना फूसी करने लगे। तब कविजी ने यह कवित्त पढ़ा—

आज लों मोसों और तोसों विपत्ति
बढ़ो रसरीति की प्रीति सुहेली।
तो हित भारि पहारन गाहिकै
देखी मैं आय कै भूमि बघेली॥
श्री हरिनाथसो मानकरै जनि
मानु कह्यो हठ छोड़ि दे हेली।
भेंटत हौं अब रामनरेन्द्रहि
भेंटि ले री फिर भेंट दुहेली॥

भाई आप लोग विस्मय न कीजिये। विधा से मेरी बहुत रोज़ से मैत्री है। परन्तु आज महाराज से मित्रता करता हूं। अब इस मेरी मैत्रि से फिर भेंट होना असम्भव है। इस पर महार बहुत प्रसन्न हुए और लाख रुपये का दानपत्र उ समय आप ने लिख दिया। तब हरिनाथ जी यह दोहा और कवित्त पढ़ा—

पुण्य बीज बलि ने बई, कर्ण कीन द्वै पात।
सोच्यो बान्धवगढ़ नृपति, जब देख्यो कुम्हिला

काहू के करम उमराई, बादशाही, राई,
काहू के करम राज राजन सो हेत है।
काहू के करम हय, हाथी, परगने, पुर,
काहू के करम हेम, हीरन, सो नेत है॥
हरिनाथ जेाई जेाई जाही के लिलार लोह
सेाई सेाई यहि दरबार आनि लेत है।
महाराज रामसिंह बान्धव-नरेन्द्र तेरे
करके भरोसे करतारौ लिखि देत है॥

बहुत दिनों बाद यह ख़बर नरहरि को मि उन्होंने सारा वृत्तान्त महाराज रामसिंह को भेजा और पुत्र को घर भेज देने के लिए प्रा की। महाराज ने हरिनाथ को बहुत सा पारितो देकर बिदा किया। जब हरिनाथ मकान पहुँचे पिता ने उन्हें बड़े प्रेम से लिया। जो कुछ ये र्जन करके ले गये थे पिता के चरणों पर रख दिया। पिता ने गद्गद कण्ठ होकर बेटा तुम बड़े कमासुत और सुपूत हो। मैं तु कहां तक प्रशंसा करूं।

बहुत रोज़ बाद एक दफ़ा हरिनाथ जी रीवां की तरफ़ रवाना हुए। इन्होंने पहले के नवाब का दरबार देखा। वहां आप तक रहे।

एक रोज़ नवाब अपने दरबारियों के चिड़ियाख़ाना देख रहे थे। उसी समय कवि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां आ पहुँचे। नवाब साहब ने कवि जी से अपने चिड़ियाख़ाने का वर्णन करने को कहा। हरिनाथ ने विनती की कि हुज़ूर मेरा चिड़ीख़ाना तो भूखों मर रहा है; आप अपने का वर्णन कराते हैं। नवाब साहब ने कहा क्या आपने हज़ार दो हज़ार चिड़ियां रक्खे हैं जो भूखों मरती हैं। हरिनाथ ने मौक़ा पाकर यह कवित्त कहा—

बाज सम बाजपेयी पांड़े पक्षिराज सम
सोहैं हंसराज सो त्रिवेदी बड़े गाथके।
कोयल सम सुकुल मयूर सम तिवारी भारो
जुर्रा सम मिसिर नवैया जे न माथ के॥
नीलकण्ठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु
चक्रवाक दुबे शुक शुक्ल सम साज के।
एते द्विज जाने देश देशन सो आने रङ्ग
रङ्गन बखाने चिड़ीख़ाने हरिनाथ के॥

इस कवित्त को सुनकर नवाब बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बहुत सा धन विदाई में दिया। यहां से हरिनाथ जी झांसी होते हुये बान्धवगढ़ (रीवां) पहुँचे। परन्तु थोड़ेही दिनों बाद आप घर वापस आये। कहते हैं कि आप शाहजहां और आमेर के भी दरबार में गये थे।

सुनते हैं एक दफ़ा हरिनाथ जी बहुत सा धन, जो उन्हें विदाई में मिला था, लिये घर आ रहे थे, राह में एक याचक ने उन्हें यह दोहा सुनाया—

दान पाय दोहो बढ़े, की हरि की हरिनाथ।
उन बढ़ि ऊंचो पग कियो, इन बढ़ि ऊंचो हाथ॥

इस पर आप इतना रीझे कि जो कुछ धन पाया था सब उसीको आप ने दे डाला और ख़ाली हाथ घर लौट आये। इसी तरह जन्मभर आप अपनी और पिता की कमाई लुटाते रहे।

इन्होंने नरहरि-चरित नामक पुस्तक में अपने पिता की कविता और संक्षिप्त जीवनी लिखी है। इससे आप का हाल जानने में मुझे बड़ी मदद मिली है। सम्वत् १७०३ (सन् १६४६) में आप का देहान्त हुआ। पर जब तक असनी में एक भी घर रहेगा तबतक आपकी कीर्त्ति का पताका फहराता रहेगा। आपके घराने में अबतक कवि होते आये हैं और रीवां, जयपुर, जोधपुर इत्यादि में अब भी आपके वंशज गांव पाये हुये हैं। वर्तमान समय में भी महापात्र लाल जी और व्रजेशकवि आपके वंश की शोभा बढ़ा रहे हैं। इनकी भी कविता बहुत सरस और मनोमोहिनी होती है।

रामशरण त्रिपाठी।

पुस्तक-प्रेम।

[१]

मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूं,
भाता मुझे सो नव मित्र सा है।
देखूं उसे मैं नित बार बार;
मानो मिला मित्र मुझे पुराना॥

[२]

"ब्रह्मन् तजो पुस्तक-प्रेम आप,
देता अभी हूं यह राज्य सारा।"
कहे मुझे यों यदि चक्रवर्ती,
"ऐसा न राजन् कहिये" कहूं मैं॥

[३]

अखण्ड भण्डार भरा हुवा है,
सुवर्ण का जो मम गेह में हीं।
बताइए हे मम मित्र-वर्य्य,
क्यों लूं किसी के फिर दान को मैं?

[४]

गिने हुए सज्जन-वृन्द का तो
कभी कभी मैं करता सुसङ्ग॥
परन्तु है पुस्तक मित्र ऐसा
होता कभी जो मुझसे न न्यारा॥

[५]

इच्छा न मेरी कुछ भी बनूं मैं;
कुबेर का भी जग में कुबेर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा मुझे एक यही सदा है,
नये नये उत्तम ग्रन्थ देखूं ॥

गिरिधर शर्मा ।

प्यारा वतन ।

[१]

प्यारे वतन हमारे प्यारे,
आजा, आजा, पास हमारे ।
या तू अपने पास बुलाकर,
रख छाती से हमें लगाकर ॥

[२]

जब तू मुझे याद आता है,
तब दिल मेरा घबराता है ।
आँखें आंसू बरसाती हैं;
रोते रोते थक जाती हैं ॥

[३]

तुझ से जो आराम मिला है,
दिल पर उसका नक़्श हुआ है ।
उसे याद कर मैं रोता हूं;
रो रो कर आँखें धोता हूं ॥

[४]

कच्चा घर जो छोटा सा था;
पक्के महलों से अच्छा था ।
पेड़ नीम का दरवाज़े पर;
सायबान से था वह बेहतर ॥

[५]

सब्ज़ खेत जो लहराते थे,
दिल को वे कैसे भाते थे ।
फ़र्श मख़मली जो बिछते हैं,
नहीं मुझे अच्छे लगते हैं ॥

[६]

वह जङ्गल की हवा कहां है ?
वह इस दिल की दवा कहां है ?
कहां टहलने का रमना है ?
लहरा रही कहां जमना है ?

[७]

वह मोरों का शोर कहां है ?
श्याम घटा घनघोर कहां है ?
कोयल की मीठी तानों को,
सुन सुख देते थे कानों को ॥

[८]

ज्योंही आम पेड़ से टपका,
मैं फौरन लेने को लपका ।
चढ़ा उचक कर डाली डाली;
खाईं जामन काली काली ॥

[९]

जब यह मुझे याद आता है,
नहीं मुझे तब कुछ भाता है ।
वे दिन क्या फिर कभी मिलेंगे ?
क्या फिर अपने दिन पलटेंगे ?

[१०]

वे लँगोटिये यार कहां हैं ?
वे सच्चे ग़मख़्वार कहां हैं ?
वह घर वह बैठक मनभाई
क्या फिर कभी मिलेगी भाई ?

[११]

आंख-मिचौनी की वे घातें;
खेल-कूद के दिन और रातें ।
हाय कहां हैं ! हाय कहां हैं !
कहां मिलें जो ढूंढ़ा चाहें ?

[१२]

बिछुड़ा वतन हुआ यह बेजा,
फटता है सुध किये कलेजा ।
ठाठ अमीरी के सब तुझ पर,
मिलै अगर तू, करूँ निछावर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भानु" की झांकी।

[बाबू जगन्नाथप्रसाद (भानु कवि) विषयक कविता]

[१]

छंदः-पथ-दर्शक कवि भानु,
छन्दोजलधि जिन्हें परमाणु,
जिनका छन्दप्रभाकर ग्रंथ,
विद्युत-प्रभा-प्रकाशित पंथ।

[२]

उनकी आज मनोहर झांकी
क़लम! बता दे सबको बांकी।
प्रतिभा-अवलोकन-अभिलाषी
हेाँय तृप्त सब भारत-वासी।

[३]

गौर शरीर तेज की राशी;
मानेा यश की प्रभा प्रकाशी;
विहसन मधुर सुधा से वैन;
दिव्य-साधुता-सूचक नैन।

[४]

जिनका अहङ्कार उपकार,
वसुधा जिनका प्रिय परिवार,
कालिदास से कविता-कामी,
मनसा ईदृश कविं नमामी।

[५]

चलेा, उठेा, सब हिन्दी-सेवी,
है प्रिय जिनको कविता-देवी,
देखेा अन्तर्नयन उघार,
अपनें में अपना अवतार।

[६]

वीराराधन-धर्म-समाज!
रखले तूभी अपनी लाज;
ले विलेाक यह रूप पवित्र,
सत्य-वीर-पूजा का चित्र।

[७]

विज्ञानी जज, सभ्य वकील,
कवि, लेखक, शिक्षक गुणशील,
अँगरेज़ी-रत हिन्दुस्तानी,
अस्थिर प्रभुता के अभिमानी।

[८]

तज के स्वार्थ-जनित सब द्वेष
देखो यह उपकारी भेष;
ज़रा उबालेा अपना रक्त;
बनेा मातृ-भाषा के भक्त।

[९]

जननी-पय-सँग की प्रियवाणी,
बालकपन की लाड़-कहानी,
सारे जीवन का सुख-मूल,
गये हाय! तुम पल में भूल!

[१०]

महाराष्ट्र, उड़िया, बङ्गाली,
हँसते हैं सब दे दे ताली;
जिनकी भाषा का यह हाल,
वह भी बजा रहे हैं गाल।

[११]

"इन्दुप्रकाश", "काल", इत्यादी,
"प्रजाबन्धु", "वसुमति", "हितवादी",
निज-निज-जाति-जीवनाधार,
करते हैं हमको धिक्कार।

[१२]

धर्म-बन्धु मम हिन्दी-भाषी,
मत होओ इमि स्वार्थ-विलासी;
यह अनूप छबि हिये विचारेा;
पड़ी हुई निज जाति उबारेा।

कामताप्रसाद गुरु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर में शान्ति ।

[अङ्गरेज़ी कविता "Peace at Home" का हिन्दी-अनुवाद]

[१]

Whatever brawls disturb the street,
There should be peace at home ;
Where sisters dwell, and brothers meet,
Quarrels should never come.

गलियों में चाहे गड़बड़ हो,
घर को करिये शान्तिनिवास ।
भाई-बहन जहां रहते हैं,
भला वहां क्यों द्रोहविकास ?

[२]

Birds in their little nests agree ;
And 'tis a shameful sight,
When children of one family
Fall out and chide and fight.

पक्षी भी अपने खोतों में
रह कर सुख से बढ़ते हैं ।
छी छी ! कहीं घरी के बालक,
भला परस्पर लड़ते हैं ?

श्रीरामरणविजयसिंह ।

मेरा पुनर्जन्म ।

[१]

मरना एक बार सबको है । जिसने जन्म लिया है वही मरेगा । शास्त्रकार यही कहते हैं । और नित्य अपनी आँखों से सारा संसार इसी बात को देख रहा है । और मैं—हाय,—मैंने भी देख लिया है कि मेरे प्यारे,—जो मेरे सामने जन्मे,—मेरे ही सामने, मुझे छोड़ कर, चले गये । मैं अभागा जीता जागता हट्टा कट्टा बना रहा !

हाय, मेरा प्यारा बालक मेरे सामने से बसा । मेरी कन्या, सैकड़ों रुपये ख़र्च कर जिसका मैंने व्याह कर दिया था,—हाय—वह भी अब इस जगत में नहीं है । और न है वह अभागिन, जिसने पन्द्रह वर्ष तक दुख और सु में मेरा साथ दिया था । सब के सब मुझे अके छोड़ कर चले गये !—कहां चले गये ?

मैं अब तक उनको स्वप्न में देखा करता हू जी में आता है कि मैं गयाजी जाकर उन श्राद्ध कर आऊं । मेरी आत्मा कह रही है उनको सुगति नहीं मिली !

क्यों ? क्या प्लेग में मरनेवालों को सुग नहीं मिलती ? ईश्वर जाने । परन्तु, अब कभी कभी उनकी बात स्मरण होते ही कलेजा धड़कने लगता है ।

आपको मेरे दुख की कहानी अच्छी न ल होगी ! इसमें आपका क्या दोष है ? संसार भर यही दशा है । परन्तु,—हाय,—मैं फिर क्यों जी

मैं तो यमराज की गढ़ी के भीतर सैर कर आ हूं । यदि मैं फिर न लौटता तो अच्छा होता । मैं लौट आया ? अब मुझे जन्म भर रोना ही बदा

मैं काल का ग्रास बन चुका था । कराल ने मुझे भी अपने मुँह में धर लिया था । पर न मालूम क्यों, उसने मुझे उगल दिया ! क्या डरा कि मुझे वह हज़म न कर सकेगा ? क्या फिर भी मरना होगा ? हे मृत्यु ! क्या तू कभी मेरी सुध लेगा ? मुझसे अपने प्रियजनों विरह नहीं सहा जाता ।

[२]

सन् १९०३ के आरम्भ में प्लेग ने प्रयाग डांवाडोल कर दिया था । उसी हत्यारे ने घरवाली और मेरे बेटा, बेटी को देखते ही देखते उठा लिया । उनके दुख से कलपता तड़पता भी बीमार हो गया । मेरे भी जीने की कोई न रही । और न कोई मेरी सेवा करने ही के मेरे पास रहा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय सब लोग अपना अपना प्राण ले लेकर भग रहे थे। सब लोग अपने अपने टोले मुहल्ले को सफ़ाई में लगे थे। और मैं ?—मैं अपने घर में प्लेग की पीड़ा से अचेत पड़ा था।

जब मेरी हालत बहुत बिगड़ गई, तब गाँव वालों ने मुझे गाँव से अलग कर देना उचित समझा। उस समय दयामय ने मेरे समधी मेरी कन्या के ससुर—के हृदय में तनिक दया का सञ्चार कर दिया। उसने आकर गाँववालों की निठुराई को रोका और मुझे डोली में लेटा कर वह अपने घर उठा ले गया।

मैं प्रयाग का रहने वाला हूं। प्रयागवालों की जानकारी के लिये अपना थोड़ा सा पता मैं बतलाये देता हूं। मेरा नाम रामाधीन है। मैं दीन हूं। मज़दूरी—बेलदारी—करके पेट पालता हूं। पहले मैं राजमिस्त्री का काम अच्छी तरह कर सकता था। परन्तु जिस दारुण पीड़ा की कथा कह रहा हूं, उससे मेरी जान तो बच गई, पर मेरे नेत्रों की ज्योति बहुत घट गई। मैं 'बेली' में रहता हूं। मेरा समधी राजापुर का रहनेवाला है।

मेरी दीन दशा पर तरस खा कर मेरा समधी मुझे अपने घर ले गया। परन्तु दिन बड़े भयानक थे। समधी के गाँव वालों ने मेरे अचेतन शरीर को गाँव के भीतर नहीं घुसने दिया। बीमारी फैलने के भय से डर कर सब लोग समधी के दयालु कार्य्य में बाधा देने लगे। वह बेचारा अकेला क्या कर सकता था? उसने लाख यत्न किये; वह बार बार सब के पैरों पर गिरने लगा। परन्तु जब किसीको मुझ पर दया न आई, तब आँखों से आंसू बहाते हुए उसने डोली के कहारों को दो रुपये देकर कहा, इसे तुम लोग फिर इसी-के घर रख आओ। जो ईश्वर की इच्छा होगी वही होगा।

जो ईश्वर की इच्छा थी वही हुआ भी। पर समधी की इच्छा नहीं पूरी हुई। मैं अपने घर तक न पहुँचा। राह में मेरी दशा कुछ अधिक ख़राब हो गई। यह देखकर डोलीवाले भी घबरा गये। वहीं, पासही, मुसल्मानों का एक क़बरिस्तान है। डोलीवालों ने मेरे शरीर को वहीं, क़बरों की आड़ में, रखकर अपनी राह ली। मैं भी थोड़ी देर में इस लोक को छोड़कर दूसरे लोक का राही हुआ।

[२]

जिधर आँख उठाकर देखता हूं, आग जल रही है—आग की नदी जल रही है—नहीं, नहीं,—अपार अनन्त समुद्र जल रहा है। उस जलते हुए समुद्र की शिखायें सैकड़ों—हज़ारों—सर्पों की तरह लपकती हुई दौड़ रही हैं। उस समुद्र में बड़ी बड़ी लाल लाल धधकती हुई लहरें लहरा रही हैं। मानों बाग़ियों ने बाकू के मिट्टी के तेल की खानों में आग लगा दी हो। तो भी वे आग की लहरें पानी की तरह तरल नहीं हैं। मानों किसी गहरे गन्धक की एक बड़ी भारी खान हो; उस खान के चारों तरफ़ आग धधक रही हो; सब जगहों से आग की ज्वाला धधक धधक कर आकाश की मेघमालाओं को भून रही हो! आग जल रही है, परन्तु उस आग में उजियाला नहीं—चारों ओर गहरा अँधेरा भरा है—चारों ओर की अग्निशिखायें इस अँधेरे को और भी भयानक बना रही हैं।

इस वर्णनातीत भयानक अँधेरे देश में आग की लपटें बिजुली की तरह दौड़ रही हैं। मैंने अपने शरीर को उन्हींमें से एक लपट पर लेटा हुआ पाया। मुझे जान पड़ा कि सैकड़ों—हज़ारों—लाखों—करोड़ों वर्ष से मैं उस अग्निमय राज्य में—उस भयावने अँधेरे देश में—स्तम्भित, मूर्च्छित, पड़ा हुआ हूं।

धीरे धीरे जब मुझे फिर चेतना हुई तब उस ज्वाला-प्रवाह में से मैंने अपना सिर बाहर निकाला। शरीर बहुत दुर्बल था; सिर कमज़ोरी से चक्कर खा रहा था,—परन्तु; तिस पर भी, एक जलते हुए गन्धक की चट्टान पर हाथ टेक कर मैं धीरे धीरे उठ बैठा। चारों ओर, निराश की भांति, मैं निहारने लगा। परन्तु उसी प्रकाशहीन लहराती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई लाल लाल अग्निशिखा को छोड़,—उस अन्धकार पूर्ण नरक-राज्य को छोड़—मुझे और कुछ भी न सूझ पड़ा। वह घना अँधेरा बड़ा दुखदायी, शान्तिरहित, आशाशून्य जान पड़ने लगा। देख देखकर मेरा जी ऊबने लगा।

इस भयानक नरक में बन्द रहना सम्भव नहीं। मैं उठ खड़ा हुआ। चारों ओर आँख उठा कर मैं बाहर निकलने का द्वार खोजने लगा। प्रचण्ड अग्नि-शिखा से मेरे नेत्रों में चकाचौंध लगने लगी; एक जलती हुई चट्टान से ठोकर खाकर मैं गिर पड़ा; काले काले अँधेरे की ढेरियां मेरी आँखों के ऊपर बरसने लगीं;—मैं अन्धा सा होकर वहीं बैठ गया।

फिर उठा, फिर गिरा, फिर उठा,—बार बार उस उजियालेहीन अँधेरे में—ठोकर खा खा कर मैं उठता और बैठता रहा।

कभी ऊपर, कभी नीचे—कभी दाहने, कभी बांयें—सब ओर टटोल टटोल कर मैं देखने लगा, परन्तु कहीं बाहर निकलने का द्वार न देख पड़ा।

इसी तरह ठोकरें खाते, गिरते पड़ते, घूमते फिरते, मुझे कितने ही वर्ष हो गये। परन्तु नरक से बाहर निकलने का द्वार मुझे न मिला। उस अँधेरे में अकेला, निराश, सूने हृदय से भटकता हुआ मैं घूमने लगा।

न जाने मुझे कितने हज़ार वर्ष इसी तरह घूमते हुए बीत गये। भय से मेरा हृदय इतना विह्वल हो गया था कि भय भी भयावनी वस्तु नहीं मालूम होता था। उस समय कभी भूल कर भी मैंने मुँह से ईश्वर का नाम नहीं निकाला। कभी करुणामय से आर्त्तस्वर से विनती नहीं की कि "प्रभो, दयासागर, इस अग्निसागर से मुझे बचाइए"।

मैं तो करुणामय को भूलही गया था, परन्तु वे मुझे नहीं भूले। एक दिन अकस्मात् करुणामय की बात मुझे आपही आप याद आ गई। मैंने दोनों हाथ उठाकर बड़ेही विनीत भाव से उनसे सहायता मांगी,—अकस्मात् मेरे पैर फिसल पड़े,—मैं एक अँधेरी गुफा में जा पड़ा।

मैं एक अँधेरी गहरी गुफा में जा पड़ा। वेग से नीचे गिरने लगा। गिरते समय गन्धक किरकिरी कनियों के गड़ने से मेरे सब अङ्ग गये,—जान पड़ा कि मेरी बग़ल की प्लेग गिल्टी फूट गई—उसमें से पिचकारी की पीब बहने लगा—अकस्मात् मेरे कानों के कुत्तों के भूंकने की आवाज़ आने लगी।

[४]

धीरे धीरे मेरी आंखों से अँधेरा हटने लगा धीरे धीरे उजले वस्त्र पहन कर आकाश पूर्व ओर हँसने लगा। पक्षी पेड़ों पर बैठ कर कर मय की अपार करुणा की महिमा गाने लगे। डालि पर फूल खिल कर उनके चरणों की पूजा करने ल वायु उन चरणों का सुगन्धमय प्रसाद लाकर सन्तप्त पीड़ित शरीर पर अपने ठंढे ठंढे हाथों मलने लगा। करुणामय ने नरक का भयावना प मेरे सामने से हटा लिया। मैं सोचने लगा, अ कहां आ गया?

उस समय कोई मनुष्य मेरे मुँह में बूंद जल टपका रहा था। प्यासा सूखा गला जल भीग कर और भी पानी मांगने लगा। मैंने मुह दिया। उसमें धीरे धीरे और भी जल गिरने ल मेरे शरीर में कुछ बल हो आया। मैंने आंखें खोल

जल पिलाने वाला वह मनुष्य धीरे धीरे नाम लेकर पुकारने लगा। जब मुझे कुछ चेतना मैंने अपने समधी को पहचान लिया। मैंने धी उससे कहा, सँभल के बैठो, कहीं जलते हुए गढ़े न गिर पड़ना।

मेरे समधी ने कुछ उत्तर न दिया। उसकी गर्म सी लम्बी सांस मेरे ठण्ढे गालों से आ ल वह वहां से उठकर चला। उसके उठतेही दो मेरे दोनों ओर आ बैठे।

जब मैं तनिक भी हिलता, अथवा अपने सा का नाम लेकर पुकारता, मेरे साथी दोनों कुत्ते कूं करके मुझे उत्तर देते। उनको देख क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोचने लगा कि ये दोनों नरक के द्वारपाल हैं; मेरे समधी को फाटक के भीतर नहीं आने देते।

न मालूम कब तक मैं वहां इसी तरह पड़ा रहा। फिर अज्ञानता सी छा गई। परन्तु थोड़ी देर में फिर कुत्ते भूंकने लगे। उनकी आवाज़ सुनकर मैं चौंक पड़ा।

मुझे जान पड़ा कि मेरा समधी फिर मेरे पास बैठा है। उसके साथ और कई भी कई मनुष्य बैठे हैं। मेरा समधी मेरे मुहँ में कुछ पतली सी खाने की चीज़ डालने लगा।

हायरे भोजन! तेरे बिना मृत्युलोक में भी शरीर अशक्त हो जाता है! उदर में कुछ भोजन पड़तेही मेरी चेतनता लौट आई। मैंने अच्छी तरह देख लिया कि मेरा समधी मेरी खूब सेवा कर रहा है।

[५]

जब शरीर पहले से कुछ स्वस्थ हुआ, मैंने सुना कि डोलीवाले कहार मुझे क़बरों के पास डाल गये थे। वहीं अज्ञान, अचेतन, दशा में पड़े पड़े मुझे पांच दिन होगये थे। पांच दिनों तक किसी मनुष्य ने मेरा पता नहीं पाया था। वे पांच दिन मैंने पांच हज़ार वर्षों की तरह नरकयातना में बिताये थे।

जी हां, पूरे पांच दिन, और पांच रात, वहीं, उन क़बरों के पास, मैं पड़ा था। पांचों दिन सूर्य्य की जलती हुई किरणें मेरे अचेतन शरीर को तपाती रहीं—मेरा पीड़ित मस्तिष्क सूर्यातप से सन्तप्त होकर धधकते हुए नरक का भीषण दृश्य देखता रहा। पांचों रात की माघ पूस की ठंढी ओस मेरे शरीर को धोती रही, और मेरा विकृत मस्तिष्क नरक के अँधेरे में टक्कर खाकर चकराया किया। पांच दिन, पांच रात, मैंने इसी तरह पड़े पड़े काटा। मुझे इस जगत की, इस संसार की, अपने पीड़ित शरीर की, कुछ भी सुध बुध न रही।

परन्तु इस भयानक समय में, पाठक आप बताइए तो सही, किसने मेरी रक्षा की? सारा संसार मुझे भूल रहा। परन्तु जिसको संसार भर की चिन्ता रात दिन बनी रहती है, एक उसीको मेरी भी सुध बनी रही। मैं अपने किये का फल भोगने को नरक-राज्य में जा पड़ा था। पर एक उसी करुणामय ने वहां भी मेरा साथ न छोड़ा।

करुणामय ने संसार को अनेक आपत्तियों से बचाने के लिये बारम्बार अवतार लिया है। मैं बेचारा एक अनाथ दीन नीच वंश का मज़दूर हुआ तो क्या मेरे लिये अवतार लेना उस अपार दया-सागर के लिये कुछ असम्भव है? आप चाहे जो कुछ कह लीजिये, आप चाहे फ़िलासफ़ी की बुकनी छिड़क कर भगवान का अवतार लेना असम्भव सिद्ध करते रहिए,—मैं आपसे सत्य कहता हूं—अपने क्षीण स्वर से भर सक चिल्ला कर कहता हूं—कि अभागे रामाधीन की सुध उसको न भूली, उसका दयार्द्र कलेजा धड़कने लगा, मुझे उस भीषण नरक राज्य से तारने के लिये उसको एक बार फिर अवतार लेना पड़ा। वह भैरव के रूप से, कुत्तों की सवारी कसकर, त्रिशूल हाथ में लेकर, मेरे अचेतन शरीर के पास आकर मेरी रक्षा करने लगा। दो कुत्ते मेरे मृतवत् शरीर के दोनों ओर बैठकर चौकीदारी करने लगे। कुत्तों ही का भूकना सुन कर—पांच दिन पीछे—जब मेरे नरकवास का काल शेष होगया—कुछ लोग उधर आ निकले। उन्हीं मनुष्यों के मुँह से भगवान भूतभावन भैरवावतार की दया और कुत्तों की अद्भुत चौकीदारी का समाचार सुनकर मेरा कृपालु समधी—मेरे असमय का पक्का मित्र—वहां आ पहुँचा।

कुत्तों ने चाट चाट कर मेरे पके हुए फोड़ों को तोड़ दिया था। उन्होंने चाट चाट कर फोड़ों से बहते हुए रुधिर और पीब को साफ़ कर दिया था। जब मैं फिर भूलोक को लौट आया, उस समय तीन चार बड़े बड़े घाव मेरी देह पर डहडंहा रहे थे।

मेरा समधी मुझे फिर डोली में लादकर गाँव को ले चला। गाँव वाले फिर भी मेरे वहां लौट-जाने का विरोध करने लगे। तब, विवश होकर, समधी ने मुझे गङ्गा के तीर पर एक छायादार स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ला रक्खा। और मेरी रक्षा के लिये ऊपर से झाऊ और चटाइयों से कुछ थोड़ी सी छाया बनादी। मैं वहीं पड़ा रहा।

[६]

कथा अधिक बढ़ाने का साहस नहीं होता। डर है कि कहीं सम्पादक महाशय अपने क़लम की तेज़ नोक से मेरे पीड़ित शरीर में नया घाव न कर दें। मेरी दुःखपूर्ण आख्यायिका बहुत लम्बी है। 'सरस्वती' में उस सबके छापने का स्थान नहीं है। बस, इतना ही जान लीजिए कि मैं ज्यों त्यों कर फिर जी उठा हूं। परन्तु मेरे नेत्रों की ज्योति बहुत घट गई है।

मैं अब भी अपने प्रियजनों को स्वप्न में देखा करता हूं। आप लोगों की सेवा करके चार पैसे जब हाथ में आजायँगे, तब भगवान गदाधर के पादपद्म में अपने प्यारों के लिये पिण्डदान कर आने की इच्छा है।

परन्तु, पाठक महाशय, आप मेरी कहानी को उपन्यास मात्र न समझिएगा। मेरी कथा बिलकुल सही है। मैं अभी जीवित हूं। यदि मेरे कहने का विश्वास न हो तो आकर मुझे देख जाइए।*

पार्वतीनन्दन।

---

*रामअधीन, तुम अभी तक जीते जागते हो यह सुन कर हम बहुत ख़ुश हुए। तुम यदि अपनी कहानी इससे चौगुनी कर देते तो भी हम उसे काट कर तुम्हारे शरीर से ख़ून निकालने का पाप अपने सिर न लेते। तुम्हारी बात पर हम को विश्वास है। इस लिए आकर तुम्हें देख जाने की कोई ज़रूरत नहीं। हां, यदि एक दिन के लिए, अपने फावड़े कुदाली से छुट्टी लेकर, तुम ख़ुदही हमारे यहां चले आते तो हम तुम्हारी मुलाक़ात अपने चौकीदार भैरवसिंह से करा देते। भैरवसिंह तुम्हारा समदुःखी है। खानदेश में रावेर एक जगह है। वहां कपास ओटने का एक पेंच है। वहां भैरवसिंह नौकर था। उसे प्लेग हुआ। इस लिए वह 'क्वारंटाइन' में भेजा गया। वहां से बेहोशी की हालत में वह जंगल को भग गया। जंगल में पांच सात दिन तक दिन को धूप में और रात को ओस में वह अकेला जंगली जीवों के बीच पड़ा रहा। इतने में बीमारी का ज़ोर जाता रहा और होश आने पर वह रावेर लौट आया। जंगल में बेहोशी की हालत में, उसने तुम्हारेही ऐसे, बल्कि तुमसे भी अधिक, विलक्षण दृश्य देखे। पर खेद है उनको क़लमबन्द करने के लिए यहां कोई पार्वती का पुत्र नहीं।—सरस्वती-सम्पादक।

भाषा और व्याकरण।

भाषा-विज्ञान की उत्पत्ति हुए कोई सौ वर्ष हुए। यह नया विज्ञान है। इसकी जन्मभूमि जर्मनी है। इँगलैंड, फ्रांस और अमेरिका आदि देशों में वहीं से इसका प्रचार हुआ है। इस विषय पर अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। उनमें से कई मैक्समूलर और ह्विटने की पुस्तकें सर्वमान्य हैं। प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता, के संस्कृत अध्यापक पण्डित सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए०, ने भी भाषा-विज्ञान के विषय में दो एक लेख बँगला में लिखे हैं। इन पुस्तकों को पढ़ने से जो संस्कार हमारे चित्त पर हुआ था उसके कुछ अंश को, अपने तौर पर लिख कर, "भाषा और व्याकरण" के नाम से, हमने नवम्बर १९ की सरस्वती में प्रकाशित किया। उसके उत्तर में हमने यह भी लिखा कि भाषा की अनस्थिरता को कम करने के लिए एक अच्छे व्याकरण की बड़ी ज़रूरत है। हमारे इस लेख को हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों ने पसन्द किया और हमें उत्साहवर्द्धक पत्र लिखे। पण्डित कमलाकिशोर त्रिपाठी एम० ए०, लिखते हैं—

Your article on "Bhasha and Vyakarana" is the best of its kind. It is very interesting and very instructive. I wish you would write one or two more on similar lines.

पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री लिखते हैं—

नवम्बर की सरस्वती में "व्याकरण" विषयक आपका लेख बहुत अच्छा निकला है।

बाबू काशीप्रसाद लिखते हैं—

भाषा और व्याकरण वाला लेख बहुतही अच्छा है। हमने उसे पढ़ा। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ लेखक को जैसा लिखना चाहिए था आप ने वैसाही लिखा है।

पण्डित पद्मसिंह शर्म्मा संस्कृत और फ़ारसी दोनों के अच्छे विद्वान् हैं। वे जालन्धर से लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा और व्याकरण को मैंने कई बार पढ़ा, ध्यान से पढ़ा। मैंने उसकी प्रत्येक बात अपने मत के अनुकूल पाई। यही नहीं किन्तु आप के लेख का प्रत्यक्षर मुझे कुछ ऐसा मोहित कर लेता है कि उसके प्रतिकूल कुछ सूझता ही नहीं। उसमें कही गई बात मुझे अपनीहीं मालूम होने लगती है। ग़ालिब का यह शेर आपही के लेखों पर चरितार्थ होता है—

देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा।
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है॥

निबन्ध में जहां कथित भाषा के लिए व्याकरण की अनावश्यकता दिखलाई गई है वहां श्रीहर्ष के इस श्लोक का सन्निवेश हो जाता तो अच्छा होता—

भंक्तुं प्रभुर्व्याकरणस्य दर्पं
पदप्रयोगाध्वनि लोक एषः।
शशो यदस्यास्ति "शशी" ततोऽय-
मेवं मृगोऽस्यास्ति "मृगी" ति नोक्तम्॥

लेख बहुतही उपयोगी और हृदयग्राही है। इस प्रकार के लेखही हिन्दी को उन्नत करेंगे। मत्सरी लोगों की बात पर ध्यान न दिया कीजिए। जो बात साहित्य का और लोगों का उपकार करे उसे प्रकाशित करने में किसी के आक्षेपों की परवा न किया कीजिए।

पण्डित श्रीधर पाठक लिखते हैं—

I have perused with much pleasure and interest your article on भाषा and व्याकरण in this month's issue of "Saraswati," in the greater portions of which I entirly agree with you. There are a few places where I differ from you.

पण्डित श्रीधरजी हमारे लेख के अधिकांश से पूरे तौर पर सहमत हैं। सिर्फ़ कुछ स्थल ऐसे हैं जहां हमारी राय उनकी राय से नहीं मिलती। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। प्रत्येक आदमी अपनी अपनी राय रखता है। बहुत सम्भव है कि एक की राय दूसरे की राय से न मिले। उदाहरण के लिए पण्डितजी के एक चेले (हमारे समालोचक-शुकाचार्य्य के आत्मरूप) को देखिये। आपको पण्डितजी ने बहुत दिन तक "राम राम" रटाया है। पर आपकी राय में हमारा लेख बिलकुल ही कूड़ाकरकट है। एक भी जुमला उसका सही नहीं; एक भी सिद्धान्त उसका संग्राह्य नहीं; एक भी बात उसकी पूर्वापर-सम्बद्ध नहीं! किम्बहुना, न हमें बामुहावरा भाषा-लिखना आता है; न हमें सार्थक शब्दों का प्रयोग करना आता है; न हमें कर्ता, कर्म्म और क्रिया आदि को यथास्थान रखना ही आता है!!! ख़ैर इतनी ही हुई है कि समालोचना-समर के ऐसे नपोलियन-समालोचकों के गुरुदेव ने हमारे लेख को वैसा नहीं समझा। उन्होंने उसे सानुराग पढ़ा; उसमें उन्हें आनन्द भी मिला; और अनेक बातों में उन्होंने हमारे कथन का अनुमोदन भी किया। यह हमारे लिए थोड़े सौभाग्य और उत्साह की बात नहीं है। अपने ऊपर आत्मश्लाघा के दोष का आरोपण किये जाने की परवा न करके, ऊपर हमने जो अवतरण दिये हैं, वे सिर्फ़ इस बात को दिखलाने के लिए हैं कि हिन्दी के साहित्य-संसार में कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्होंने हमारे लेख को उपयोगी और युक्तिसङ्गत समझा है। ऐसे ही पुरुषों से उत्साहित किये जाने पर, भाषा और व्याकरण के विषय में, हमने और भी कुछ लिखना उचित समझा है। क्योंकि—

चन्द्रेण चारुचरितेन विकासितं सत्
सङ्कोचितं भवति किं कुमुदं तमोभिः?

चारुचरित चन्द्रमा ने जिस कुमुद को विकसित कर दिया वह, अन्धकार के हज़ार सिर पटकने पर भी, सङ्कुचित नहीं हो सकता।

इस लेख में आज, हम, भाषा के सम्बन्ध में सिर्फ़ उसकी अनस्थिरता पर कुछ कहेंगे। फिर उसकी स्थिरता के साधनीभूत व्याकरण के विषय में हम थोड़ी सी विवेचना करेंगे। इसके सिवा और भी दो एक बातों का हम विचार करेंगे। भाषा के विषय में हम जो कुछ कहेंगे उसमें सिर्फ़ मैक्समूलर के मत का अनुसरण करेंगे। यह हम इसलिए कहे देते हैं जिसमें हमारे विश्वविजयी समालोचक, जो सुरगुरु बृहस्पति को भी अपने सामने कोई चीज़ नहीं समझते, मैक्समूलर के "भाषा-विज्ञान" नामक बहुत बड़े ग्रन्थ को पढ़ कर (अगर पढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते हों तो), इस लेख के साथ, उसका भी खण्डन कर डालें ।

भाषा का विज्ञान बड़े महत्व का है। शब्दरहस्य को जिसने जाना उसने गोया जीवन-रहस्य को जान लिया। वह केवल साहित्य के विद्वानों ही के जानने की चीज़ नहीं; उसका सम्बन्ध दार्शनिक, इतिहासवेत्ता और अध्यात्म-विद्या के जाननेवालों से भी है। इस विज्ञान की तरफ़ इन लोगों का भी ध्यान जाना चाहिये। भाषा-विज्ञान में इन लोगों के भी जानने की अनेक बातें हैं। इस विज्ञान में शब्दों ही का विचार किया गया है; परन्तु, शब्दों को तुच्छ दृष्टि से न देखना चाहिए। उनमें ऐसे ऐसे रहस्य भरे हुए हैं जिनका दर्शनशास्त्र* में होना स्वप्न में भी सम्भव नहीं।

भाषा-विज्ञान में भाषायें उपकरण या साधन का काम नहीं देतीं। अर्थात् उनकी सहायता किसी और अभिप्राय से, किसी और बात के जानने के लिये, नहीं ली जाती। वैज्ञानिक जांच का हेतु स्वयं भाषा ही हो जाती है। भाषा-विज्ञान का प्रधान उद्देश्य भाषाओं का जानना ही है। जिन भाषाओं में, जिन प्रान्तिक बोलियों में, साहित्य का नाम तक नहीं है, अर्थात् जिनमें एक पृष्ठ की भी किताब नहीं, या एक गीत की भी रचना हुई, उनकी भी जाँच से इस विज्ञान के कितने सिद्धान्तों की पोषकता होती है। अफ़रीका न्यूज़ीलैंड के जंगली असभ्यों की भाषा की इस विज्ञान के लिए, बड़े बड़े लेखकों और कवि की रचना की जाँच से अधिक लाभदायक भाषा-विज्ञानी भिन्न भिन्न भाषाओं के की परवा नहीं करते। वे परवा करते हैं भाषा को, चाहे वह जिस देश के मनुष्यों भाषा हो। वे सिर्फ़ यह जानना चाहते हैं भाषा क्या चीज़ है; मन के भावों के प्रकाशन किस तरह उससे सहायता* मिलती है; ख़याल को ज़ाहिर करने के लिए किस प्रकार उसे साधन प्राप्त होता है। इस शास्त्र में पारगामी होने इच्छा रखने वाले भाषा की उत्पत्ति, उसके स और उसके नियम जानना ही अपना प्रधान उ

And which, though it professes to treat of words only, teaches us that there is more in words than is dreamt of in our philosophy. Preface to Science of Language.

" We want to know * * * what language is; it can form an instrument or an organ of thought

अपने पहले लेख में भाषा की नश्वरता का ज़िकर करते समय हमने संसार की नश्वरता का नाम लेलिया। इस पर वाजिदअली शाह के मकतब के एक ज़ुबां दां को ग़श आ गया। भाषाविज्ञान और वेदान्त! वेदान्त का विषय लोगों को शाइस्ताख़ां की राजनैतिक चिट्ठी के लिए रख छोड़ना चाहिए या नये साल के शुरू में संसार को सोते से जगाने के लिए। वेदान्त का और कहीं क्या काम? ख़ुदा ऐसे ज़ुबां-दानों से बचावे! हमारे जिस समालोचकाचार्य्य को भाषा के विषय में वेदान्त का नाम सुन कर घबराहट हुई है उसके आत्मरूप ने मैक्समूलर की तारीफ में एक लम्बा स्तोत्र बना डाला है। उसमें हुज़ूर ने मैक्समूलर के लेखों को "उचित आज्ञा" की सनद दी है। अब आपको लाज़िम है कि फ़ौरन ही एक दूसरी "तुकबन्दी" करके "उचित" को अनुचित से बदल देने का फ़रमान लिख डालें।

अपने पहले लेख में एक जगह हमने लिखा—"मन जो भाव उदित होते हैं वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्र किये जाते हैं"। इस पर उम्र भर क़वायददानों की सो और ज़ुबांदानों की ख़िदमत करके नाम पाने वाले समालोचकों में से एक समालोचक-शिरोमणि ने दू मसख़रापन छांटा है। आपकी समझ में यहां पर "सहायता" है। अब आप को चाहिए कि ज़रा देर के लिए ज़ुबांदान चोग़ा उतार कर मैक्समूलर के सामने आवें। या अगर फ़ारसीही के जाननेवाले आपकी समझ में सर्वज्ञ हों तो "मदानी" का जामा पहन कर आप पं० इक़बालकृष्ण एम० ए०, के ही सामने सिर झुकावें। रिसाले तालीम व तर्ब नाम की अपनी किताब के शुरूही में परिडत साहब फ़र्मा हैं—"हवास"। * * * * "क्योंकि अशयाए ख़ारिजिया इल्म हमको इन्हीं क़ूवतों के ज़रिये होता है"। "हाफ़ि * * * * "हवास के ज़रिये जो ख़यालात पैदा होते लेकिन दूसरों को भी कुछ समझने या उनकी बात वाले जीव औरही होते हैं। "बहुत तरह की बातें फ़ां का ख़याल आतेही इन जीवों को तो जूड़ी आ जाती वे इन्हें हज़मही नहीं होतीं। हज़म होती है सिर्फ एक प्रलाप। उसे ये इतना खा जाते हैं कि उगलना पड़ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझते हैं। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए भाषा-विषयक जितनी सामग्री उन्हें मिलती है उसको वे एकत्र करते हैं। वे सिर्फ व्याकरण और कोश की जाँच करते हैं। दूसरे बखेड़ों में वे नहीं पड़ते।

भाषा का ज्ञान सम्पादन करने के अनन्तर भाषा-शास्त्र के ज्ञाता अपनी जाँच के फल को यथानियम भिन्न भिन्न विभागों में विभक्त करते हैं। अर्थात् मनुष्यमात्र की भाषा के जितने प्राकृतिक विभाग हो सकते हैं उतने विभाग करके, तब, एक एक विभाग की जुदा जुदा परीक्षा करते हैं।

भाषा पर यद्यपि मनुष्य का पूरा अधिकार है; वह उसकी मिलकियत है; जब वह उसे चाहता है बोलता है; तथापि वह उस पर बलात्कार नहीं कर सकता। यदि उस पर यह सनक सवार हो कि वह अपनी इच्छा के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दे तो वह नहीं कर सकता। उसे घटाना, बढ़ाना या दूसरे मार्ग पर ले जाना उसके अख़तियार के बाहर है। भाषा प्राकृतिक नियमों के बन्धन से बँधी रहती है। वही उसका शासन करते हैं। उनका उल्लंघन करना मनुष्य के हाथ में नहीं। ये प्राकृतिक नियम अज्ञेय नहीं हैं। अच्छी तरह विचार करने से वे समझ में आ जाते हैं और विचार की शृङ्खला आगे बढ़ाते चले जाने से और भी अधिक व्यापक नियमों का पता लगता है। यही विश्व-व्यापक नियम मनुष्य-मात्र की विचार-परम्परा और उच्चारण-पद्धति पर अपनी सत्ता चलाते हैं। इन नियमों का अनादर करके एक भी विचार नहीं प्रकट किया जा सकता, एक भी भाव नहीं समझाया जा सकता, एक छोटे से भी छोटे शब्द का उच्चारण मुँह से नहीं हो सकता। इन नियमों के जानने के लिए भाषा-विज्ञान की पुस्तकें पढ़नी चाहिए।

भाषा-शास्त्र में प्रवेश करते ही जिस व्यापक सिद्धान्त का पता लगता है वह भाषा की अनस्थिरता है। कोई भाषा स्थिर नहीं। भाषा-विज्ञान का यह प्रधान सूत्र* है। इस सूत्र को हमेशा ध्यान में रखना पड़ता है। भाषा की परिवर्तनशीलता

* हमने लिख दिया कि—"अथ शब्दानुशासनम्" पाणिनि का सूत्र है। इसके विरुद्ध हमारे पास दो तीन चिट्ठियां आई हैं। चिट्ठियों में वही बातें हैं जो हमारे लेख के समालोचकों ने अपनी समालोचनाओं में लिखी हैं। एक में लिखा है, यह सूत्र नहीं, पतञ्जलि का वाक्य है। इस पर हमारी प्रार्थना है कि जो बात थोड़े में कही जाय वही सूत्र है। उस का कहनेवाला चाहे जो हो और चाहे जिस भाषा में वह कही गई हो। सूत्र का एक लक्षण है—"अल्पाक्षरत्वे सति बह्वर्थबोधकत्वं सूत्रत्वम्"। सूत्रमय जितने दर्शनशास्त्र के ग्रन्थ हैं उनके अद्वितीय पण्डित, "खण्डन-खण्ड-खाद्य" के कर्त्ता, श्रीहर्ष, नैषधचरित में दस बीस श्लोक दमयन्ती के मुँह से सुनाकर उससे कहलाते हैं—

स्खिया मया वाग्मिषु तेषु शक्यते न जातु सम्यग्विवरीतुमुत्तरम्।
तदत्र मद्भाषितसूत्रपद्धतौ प्रबन्धास्तु प्रतिबन्धता न ते॥

यदि श्रीहर्ष के अनेक श्लोक "सूत्रपद्धति" हो सकते हैं तो "अथ शब्दानुशासनम्" के सूत्र होने में क्या आपत्ति? अच्छा, वह सूत्र न सही, वाक्य सही; वाक्य भी नहीं एक प्रबन्ध सही। इससे क्या? इससे क्या उसका लोप हो सकता है? उसमें जो कुछ कहा गया है वह पूर्ववत् बना हुआ है। हमें पतञ्जलि की बात का वैसाही प्रामाण्य है जैसा पाणिनि की बात का। फिर, अष्टाध्यायी की बहुत सी पुस्तकों में यह सूत्र पाया भी जाता है। कलकत्ते से एक पत्र हमारे पास आया है उसमें लिखा है कि अष्टाध्यायी की कई एक पुस्तकें उस तरफ ऐसी हैं जिनमें यह सूत्र है। १८९२ ई० में छपी हुई इटावानिवासी पं० भीमसेन शर्म्मा की अष्टाध्यायी देखिए। उसमें इस सूत्र के आगे यह भी लिखा हुआ है—"अधिकार आग्रन्थसमाप्तेः"। इससे इसकी अधिकार-सूत्रता भी साबित है। कैयट ने इस सूत्र को "प्रयोजननिर्देशक" लिखा है। पर दीक्षित आदिकों ने इसका खण्डन किया है। यह ठीक "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" और "अथ योगानुशासनम्" की तरह का है। इसे अगर कोई चाहे तो प्रस्ताव अर्थ में मान सकता है। पर हमने तो उसका अर्थ लिखाही नहीं; सिर्फ यह लिखा है कि वह अधिकार सूत्र है। हां भाष्यकार ने ज़रूर उसके विषय में साफ़ साफ़ "अधिकारार्थः" लिख दिया है। वैयाकरण लोग इस "अधिकारार्थः" का चाहे जो अर्थ करें। योगदर्शन के "अथ योगानुशासनम्" सूत्र पर व्यासदेव का जो भाष्य है उसमें भी उन्होंने "अथेत्ययमधिकारार्थः" लिखा है। अब जिसका जो जी चाहे अर्थ करे। सूत्रों के जितने भेद माने गये हैं उनमें "अधिकार" का नाम तो है, "प्रस्ताव" का नाम नहीं; यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के विषय में अस्थिरता की जगह अनस्थिरता शब्द लिखना अनुचित नहीं। अस्थिरता शब्द केवल स्थिरता के प्रतिकूल अर्थ का बोधक है। जो स्थिर नहीं है वह अस्थिर है। परन्तु जिसमें अतिशय अस्थिरता है, जिसमें अस्थिरता की मात्रा अत्यन्त अधिक है, उसके लिए अनस्थिरता ही का प्रयोग हम अच्छा समझते हैं। कोई कोई भाषा दसही वर्ष में समूल नष्ट हो जाती है। अतएव ऐसी भाषा के अत्यन्त अस्थिरत्व गुण के बोधक अनस्थिरता शब्द के रखने में दोष नहीं, प्रत्युत गुण है। संस्कृत-व्याकरण से यदि वह अशुद्ध है तो हुआ करे; हम संस्कृत नहीं किन्तु हिन्दी लिख रहे हैं। जितने प्राकृतिक पदार्थ हैं—चाहे खनिज हों, चाहे उद्भिज्ज, चाहे और कोई, उनके आकार में कुछ भी अन्तर नहीं होता। सोना जैसे पहले होता था वैसाही अब भी होता है; हज़ारों वर्ष पहले पेड़ जैसे होते थे, अब भी वैसेही होते हैं। मनुष्यों का भी यही हाल है। परन्तु भाषा में यह बात नहीं। भाषा काल-सह नहीं। अँगरेज़ों को आल्फ्रेड के समय की अँगरेज़ी वैसी ही सीखनी पड़ती है जैसी ग्रीक और लैटिन। हम लोगों की भाषा किसी समय उस रूप में थी जिस रूप में उसे हम वेदों में पाते हैं। फ़िरदौसी की भाषा किसी समय उस रूप में थी जो रूप उसका जिनवेस्ता में विद्यमान है। ये भाषायें सभ्य लोगों की हैं। जंगली असभ्यों की भाषाओं की अनस्थिरता तो बहुत ही बढ़ी चढ़ी है। इन लोगों की भाषाओं का ठीक ठीक पता नहीं चलता; पर दो चार भाषाओं के विषय में विशेष सावधानी से जो जाँच की गई तो मालूम हुआ कि वे बहुत जल्द बदल जाती हैं। *साइबेरिया, आफ़रीक़ा और स्याम के अपढ़ जंगली आदमियों की भाषाओं का रूप दो ही तीन पुश्तों में प्रायः बिलकुल ही बदल जाता है। जी सेगार्ड नाम एक फ़रासीसी पादरी ने उत्तरी अमेरिका विषय में एक पुस्तक लिखी है। उसने उसमें लिखा है कि वहां के पुराने निवासियों के प्रत्येक गाँव की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर जरूर है। एक गाँव की भाषा दूसरे गाँव की भाषा से नहीं मिलती। यहां तक कि प्रत्येक घर, प्रत्येक कुटुम्ब, की भाषा में भी थोड़ा बहुत अन्तर है। वहां की भाषा में प्रतिदिन परिवर्तन होता है। कुछ पादरियों ने मध्य अमेरिका के पुराने निवासियों की भाषा लिखने की कोशिश की। जिन शब्द उनको मिले उन सब का उन्होंने एक कोष बना दिया। फिर वे दूसरी जगह चले गये। कई वर्ष बाद जब वे वहां लौट कर आये तब उन्होंने देखा कि वहां के निवासियों की भाषा बिलकुल ही बदल गई है। पुराने शब्द ख़ाक में मिल गये हैं और नये नये शब्द उनकी जगह पैदा हो गये हैं। इस कारण उनका शब्दकोश बिलकुल व्यर्थ हो गया। उनकी सारी मेहनत मिट्टी में मिल गई। लाचार होकर वे मूँड़ मार कर बैठ रहे। डाक्टर रे ने पालीनीशियन लोगों पर एक

* Among the wild and illiterate tribes of Siberia, Africa, and Siam two or three generations are sufficient to change the whole aspect of their dialect.—

MaxMuller's Science of Lang

हमारे लेख में भाषाओं के शीघ्र शीघ्र बदलने की बात सुनतेही भाषाशास्त्र के कोई कोई ज्ञानी घबरा उठे हैं। मैक्समूलर साहब डेढ़ही दो सौ वर्ष में किसी किसी भाषा का कायाकल्प हो जाना बतलाते हैं। इन उर्दू के उद्भावक परिडतों से यदि और कुछ नहीं बन पड़ता तो ये आचार्य्य मौलवी मुहम्मद हुसैन की किताब "स ख़ुलासा ग्रीक, पारिस" ही क्यों नहीं पढ़ जाते? उसमें भी तो विज्ञान का संक्षेप है। पर ये कुछ न करेंगे। करेंगे प्रलाप।

संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रमुच्यते॥

लिखने को तो हमने यह लिख दिया; पर इससे कोई अपनी वैयाकरणता खण्डित न समझे। हम उसे बेदाग़ समझते हैं। हम वैयाकरण नहीं; और न किसी परिडत या अपरिडत समाज में वैयाकरण कहलाये जाने की हमें महत्वाकांक्षा है। सम्भव है हम इसी नोट में कितनेहीं शब्द और वाक्य व्याकरणविरुद्ध लिख गये हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी है। उसमें उन्होंने भी भाषा की अनस्थिरता के बड़े ही आश्चर्य्यजनक उदाहरण दिये हैं।

परन्तु सभ्य जातियों की भाषा इतना जल्द नहीं बदलती। उसमें विशेष स्थिरता आजाती है। कभी कभी तो ऐसा मालूम होता है कि उसने अपनी स्वभावसिद्ध परिवर्तनशीलता को छोड़ सा दिया है। जिस भाषा में अच्छा साहित्य उत्पन्न हो जाता है और जो भाषा प्रत्येक गाँव और प्रत्येक कसबे में फैल जाती है उसमें परिवर्तन होना तो असम्भव सा मालूम होता है। पर प्राकृतिक नियमों में बाधा नहीं आ सकती। वे अपना काम किये बिना नहीं रहते। ग्रीस, रोम और हिन्दुस्तान की सभ्यता सब पर विदित है। तथापि उनकी प्राचीन भाषायें अब सिर्फ़ प्राचीन पुस्तकों में रह गई हैं। चासर की भाषा शेक्सपियर के वक्त में न थी और शेक्सपियर की भाषा अब नहीं है। यही दशा ऋग्वेद, रघुवंश, और रासो की भाषा की है। भाषा की अनस्थिरता प्राकृतिक है। भाषा को स्थिर कर देना मनुष्य के हाथ में नहीं। जिन नियमों के अनुसार मनुष्य के शरीर में ख़ून का दौरान होता है या जिन नियमों के अनुसार सूर्य और चन्द्र आदि ग्रह, उपग्रह अपनी अपनी कक्षा में घूमते हैं उनको बदल देना जैसे मनुष्य के लिए असम्भव है वैसे ही भाषा की परिवर्तनशीलता के नियमों को बदल देना भी असम्भव है।

भाषाओं का स्वभाव जैसे अनस्थिर रहने का है वैसे ही परस्पर एक दूसरे के शब्दों को अपने में शामिल कर लेने का भी है। यह परिवर्तनशीलता भी एक प्रकार की अनस्थिरता है। इसका सबसे अधिक व्यापक उदाहरण अँगरेज़ी भाषा में पाया जाता है। दुनिया की मुख्य मुख्य भाषाओं में शायद ही कोई भाषा ऐसी हो जिसका प्रभाव अँगरेज़ी भाषा पर न पड़ा हो। लैटिन, ग्रीक, फ्रेंच, स्पैनिश, इटालियन, जर्मन और संस्कृत आदि भाषाओं के अनेक शब्द अँगरेज़ी भाषा के कोश में भरे पड़े हैं। हिन्दी में भी फ़ारसी, अरबी और तुर्की भाषा के कितने ही शब्द आ गये हैं। यहां तक कि पोर्चुगीज़ लोगों के सम्पर्क से उनकी भाषा के शब्दों तक का भी हिन्दी में पता चलता है। अब, आज कल, इस पर अँगरेज़ी भाषा का असर पड़ रहा है और फ़ीस, स्कूल, कालेज, क्रिकेट, फुटबाल, जज, मैजिस्ट्रेट, व्यञ्च, टेबुल, बोतल आदि शब्द हिन्दी में मिलकर हिन्दी हो रहे हैं।

तुर्की ज़बान में फ़ारसी और अरबी के सैकड़ों शब्द भरे हुए हैं। फ़ारसी में तो अरबी शब्दों की बहुत ही अधिक भरमार है। पर अरबी भी फ़ारसी शब्दों से बिलकुल ही ख़ाली नहीं। मैक्समूलर साहब का मत है कि क़ुरान तक में फ़ारसी के शब्द पाये जाते हैं।

भाषा का अस्तित्व सर्वथा मनुष्य के आधार पर अवलम्बित रहता है। मनुष्य की इच्छा के अनुसार भाषा की वृद्धि और ह्रास तो नहीं होते; परन्तु बिना मनुष्य के आधार के न भाषा पैदा हो सकती है और न ज़िन्दा ही रह सकती है। उसकी स्थिति का स्थान मनुष्य ही है; उसका बोला जाना ही उसकी ज़िन्दगी है; और प्राकृतिक नियमों के अनुसार उसकी विस्मृति ही उसकी मृत्यु है। जो शब्द कुछ काल तक बोले जाकर परित्यक्त हो जाते हैं वे गोया मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। भाषाओं का लिपिबद्ध होना—उनका लिखा जाना—एक अस्वाभाविक घटना है—एक आकस्मिक बात है। जितनी भाषायें-जितनी बोलियां-दुनिया में हैं उनकी अधिक संख्या अब तक लिपिबद्ध नहीं हुई। प्राकृतिक उद्देश्य यह नहीं कि जो भाषा बोली जाय वह लिखी भी जाय। मध्य एशिया, आफ़रीक़ा, अमेरिका और पालीनेशिया में मनुष्य-भाषा अब तक अपने प्राकृतिक-रूप में विद्यमान है। वहां पर उसकी अनस्थिरता और परिवर्तनशीलता को देखकर आश्चर्य्य होता है। साहित्य-शृङ्खलाओं के योग से भाषा की गति में बाधा आने के पहले उसका स्वाभाविक रूप देखने की जिसे इच्छा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो उसे पूर्वोक्त देशों को जाकर उसे देखना चाहिए। क्योंकि जो भाषायें लोग हिन्दुस्तान, इँगलैंड और फ्रांस आदि देशों में बोलते हैं वे स्वाभाविक नहीं; उनमें कुछ अस्वाभाविकता भी है। सच्चा और स्वाभाविक जीवन प्रत्येक देश की प्रान्तिक बोलियों ही में रहता है। भाषा की आत्मा, उसके प्राण, उसका सर्वस्व प्रादेशिक बोलियों ही में पाये जाते* हैं। अगर ऐसा न हो तो बेरहम और ज़बरदस्त ज़ुबांदाँ लोग अपनी ज़ुबांदानी की तेज़ तलवार से भाषा को अल्पकाल ही में बे मौत मार डालें; क्योंकि वाजिदअलीशाह के मकतब के मुरीद प्रान्तिक बोलियों और देहाती मुहाविरों से अज़हद नफ़रत करते हैं। ये अरबी, फ़ारसी और उर्दू के दास सत्य को सत, पति को पती, अनुभूति को अनुभूती, लक्ष्मी को लक्शमी, स्त्री को इस्त्री, पाँच सौ को पान्सौ, मेष राशि को मेख (खूंटा) राशि और सदिच्छा को सदेच्छा लिखकर अपनी ज़ुबांदानी साबित करते हैं। यहां तक कि अपना नाम लिखने में वे नारायण को नरायण(न), प्रसाद को परशाद और गुप्त को गुप्ता तक कर डालते हैं। ख़ुद तो वे नामोनिशान या नामोनिशाँ की जगह अक्सर नाम-निशान लिखते हैं; पर यदि कोई रद-बदल लिख दे तो उसे रद्दोबदल कराने दौड़ते हैं। गोया शब्दों के बनाने और बिगाड़ने के ठेकेदार-आज़म यही हैं। इनकी कुटिल नीति ने चाणक्य की नीति को भी मात कर दिया।

प्रान्तिक बोलियां शहर और साहित्य की भाषा का अपभ्रंश नहीं। उनको अपभ्रंश समझना भूल है। उनकी उत्पत्ति स्वाभाविक है। उनके शब्द-समूह और भावव्यञ्जक शक्ति का विस्तार साहित्य की भाषा की अपेक्षा भी अधिक है। साहित्य की भाषा की सहायक हैं; वे उसके वर की पोषक हैं; उसके प्रभुत्व और विस्तार कम करने वाली नहीं। इन्हीं प्रान्तिक भाषा में से कोई एक भाषा, अनेक प्राकृतिक का से, साहित्य की भाषा हो जाती है। पहले अपेक्षा मनुष्य उसे अधिक काम में लाने ल हैं। और विद्वान् उसीमें अपने विचारों को लि बद्ध करना आरम्भ कर देते हैं। यह लिपि करना ही भाषा की स्वच्छन्द दौड़ या बाढ़ रोक देता है; उसकी सीमा को निश्चित कर है। यही गोया उसकी दौड़धूप का—उसके नये रूप का—जानी दुश्मन है। जहां भाषा लि जाने लगी तहां उसका अनिर्बन्ध प्रवाह बन्द हु इच्छानुसार अनेक शाखा-प्रशाखाओं में उ विचरण तभी से स्तम्भित हो जाता है और तभी से धीरे धीरे स्थिरत्व आने लगता है। किसी देश या विस्तृत प्रान्त में प्रधानता को पहुंचने के पहले ज़िलों, शहरों, क़सबों और गाँवों अनेक रूप धारण किये हुए, भाषा फैली है। पर प्रधानता के स्रोत में पड़ते ही बहुरूपियापन कम होने लगता है और कम होते कुछ दिनों में उसका एक रूप रह जाता इसी एक रूप में वह लिखी पढ़ी जाती है। बात यद्यपि उसके प्राकृतिक प्रवाह की अवरो है तथापि उससे लाभ भी बहुत है। क्योंकि एक भाषा प्रधान न मान ली जाय और लोग उसी में अपने ज्ञानानुभव को लिपिबद्ध करें तो भावी सन्तति को उनके ज्ञान और अनुभव से कुछ भी लाभ न हो, और न भाषा ही सुदृढ़, सुसज्जित और अलङ्कृत हो। इसीसे उसे स्थिर करना, उसकी अनस्थिरता को यथाशक्ति रोकना, भाषा-भाषियों का बहुत बड़ा कर्तव्य है। इस प्रकार की स्थिरता और सुन्दरता भाषा के में व्याकरणरूपी बेड़ी डालने ही से आ सकती यही उसकी एक मात्र ओषधि है। यह हम

* The real and natural life of language is in its dialects, and in spite of the tyranny exercised by the classical or literary idioms, the day is still very far off which is to see the dialects, even of * * classical languages, * * * entirely eradicated.

MaxMuller.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले लेख में कह चुके हैं। यहां पर भाषा की अनस्थिरता के विषय में फिर जो हमने इतना पिष्टपेषण किया वह इस बात के दिखलाने के लिए कि इसे कोई हमारी कपोलकल्पना न समझे। जो विद्वान् इस शास्त्र के आचार्य्य माने जाते हैं, उनकी राय ऐसी ही है। प्रेसीडेंसी कालेज, कलकत्ता, के संस्कृताध्यापक पण्डित सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए०, भी इसी मत के अनुगामी हैं। यह सब लिख देना हमारा काम है, मानना न मानना पढ़नेवालों का। और तो जो लोग "ज्ञान-लवदुर्विदग्ध" हैं, ईर्षा-द्वेष से जिनका जी जल रहा है, उनको बृहस्पति के बाप की भी बातों में पूर्वापर-विरोध और संदिग्ध-भाव देख पड़ेगा। हमारा पहला लेख इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जब भाषा अनस्थिर है, और जब व्याकरण भाषा का शासन करने के लिए, उसके बाद, बनता है तब व्याकरण को हमेशा के लिए बनाया गया कहना कहां तक ठीक है इसका फ़ैसला हम इस लेख के पढ़ने वालों ही पर छोड़ते हैं। हमारी समझ में तो जो लोग व्याकरण को हमेशा के लिए बनाया गया मानते हैं वे अपने को पढ़े लिखे आदमियों की दृष्टि में उपेक्षा का पात्र बनाते हैं। पाणिनि के पहले भी अनेक व्याकरण थे—उन्होंने शाकटायन, शाकल्य आदि कई वैयाकरणों के मत ख़ुद भी लिखे हैं; और यदि संस्कृत भाषा बोल-चाल की भाषा बनी रहती तो और भी कितने ही व्याकरण बन जाते; और दो एक बने भी हैं। जिस समय जैसी भाषा होती है वैसा ही व्याकरण बनता है। उसके बदल जाने पर, परिवर्तित भाषा का वह उसी तौर पर शासन नहीं कर सकता। उसके लिये व्याकरण के भी परिवर्तित नियमों की ज़रूरत होती है। हां, जिस भाषा से उस व्याकरण का सम्बन्ध है वह यदि पुस्तकादि में बनी है तो उसके लिए वह ज़रूर काम आता है। इस अर्थ में यदि वह नित्य माना जाय तो माना जा सकता है; अन्यथा नहीं। व्याकरण गणित शास्त्र नहीं है जिसके सिद्धान्त सदा एक से और निर्विवाद बने रहें। यह कैसे सम्भव है कि भाषा बदल जाय, पर व्याकरण पूर्ववत् बना रहे? यदि ऐसा होता तो पाणिनि को वैदिक भाषा के लिए अलग नियम न बनाने पड़ते और अँगरेज़-विद्वानों को शेक्सपियर के ग्रन्थों के पढ़ने में सुभीता होने के लिए जुदा व्याकरण की रचना न करनी पड़ती। यह एक ऐसी स्थूल बात है कि इस विषय में अधिक लिखना व्यर्थ समय नष्ट करना है। यदि भाषा अनस्थिर है तो व्याकरण भी अनस्थिर है। जो इस बात के क़ायल नहीं वे इस समय भी रासो की भाषा लिख सकते हैं।

बड़ी ख़ुशी की बात है कि व्याकरण के नियमों के ख़िलाफ़ हमारे दिग्विजयी ज़ुबाँदानों* के हज़ार सिर पटकते रहने पर भी हिन्दी के लेखकों का ध्यान उनके पालन की तरफ़ आकृष्ट हो रहा है। "वह" और "यह" के बहुवचन "वे" और "ये" अब अधिक लिखे जाने लगे हैं। "जब" के साथ "तब" का भी प्रयोग अब अधिकता से हो रहा है। उदाहरण—

(१) वे दूसरे के लिए उपदेशक कब होंगे।

(२) जो काम काज न पाकर मूँड मुँडा लेते हैं वे उस काम से बाज़ आवेंगे।

(३) जो लोग पढ़े लिखे * * * हैं वे * * * किया ही करते हैं। भारतजीवन, ११-१२-१९०५

(४) वे अक्षर बंगाली भाषा के अक्षर से * * * मिलते चुलते हैं।

(५) वे रानियां * * * बहुत सी पुस्तकों को लायीं थीं। हिन्दोस्थान, २९-१२-१९०५

(६) वे * * * नवाब सर अहसनउल्ला नहीं हैं।

* फ़ारसी-अरबी के आलिम हमारे महामान्य समालोचक जी कहीं "ज़बान" लिखते हैं, कहीं "ज़ुबान"; कहीं "ज़ुबाँनदान", कहीं "ज़ुबाँदान," कहीं कुछ कहीं कुछ। अनस्थिरता के विरोधी हैं न! ख़ैर हमने उन्हीं के लफ़्ज़ों में से एक लफ़्ज़ चुन लिया है। भूल चूक माफ़ हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(७) वे भली भाँति जानते हैं कि सरकारी वाह वाह से जाति नहीं बनती है।

(८) जब देशवासियों का अनुराग प्रबल दिखाई दे रहा है तब देरी की शंका ही क्यों की जावे ?

(९) जब * * * देशवासियों ने * * यूनीवर्सिटी बनाने का संकल्प कर लिया है तब * * * महाविद्यालय का प्रयोजन क्या है।

श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार, १२-१-१९०६

(१०) ये लोग भी ताने मारते अवसर तकते रहे। समालोचक, संख्या ४०-४१

(११) वे जितना भारतवर्ष का हित करते हैं।

(१२) ये भारतवासियों का पक्ष लेकर * * * समझाते थे। नवीन भारत।

हरिश्चन्द्र ने भी अपनी पुस्तकों में 'ये' और 'वे' का प्रयोग किया है, और कहीं कहीं बहुलता से किया है।

कर्तृपदों के अध्याहार और अनुवृत्ति पर भी लेखकों का प्रेम कम हो चला है; जहां ओजस्विता की कोई ज़रूरत नहीं है, वहां भी अब उन्हें स्थान मिलने के लक्षण दिखाई देते हैं। "लार्डकिचनर के लिए लार्ड कर्ज़न को बेइज़्ज़त किया गया" इत्यादि उर्दू के मुहाविरे भी अख़बारों में कम हो चले हैं। हठी, दुराग्रही और अहंमन्य लोग चाहे अपना दुराग्रह न छोड़ें; पर समझदार लेखकों से ऐसी उम्मेद नहीं। उचित बात को मान लेना विद्वत्ता, बुद्धिमानी और पाण्डित्य का लक्षण है। समझदार सज्जन यदि सच बात को न स्वीकार कर लें तो उनमें और दूसरे प्रकार के पुरुषों में अन्तर ही क्या रहे ? क्योंकि—

मूर्खस्य पञ्च चिन्हानि गर्व्वी दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते॥

ऊपर के उदाहरणों से भाषा की अनस्थिरता का भी अच्छा प्रमाण मिलता है। जिन शब्दों को एक लेखक एक तरह से लिखता है उन्हीं को दूसरा दूसरी तरह से लिखता है। यह अनस्थिरता नहीं है तो क्या है ? किसी किसी लेखक के लेख में तो यहां तक अनस्थिरता रहती है कि एकही जुमले कहीं "जब" के साथ "तब" रहता है और कहीं "तो"। यथा—

"जब उसको अपनी डाढ़ी के दर्द का ख़याल हो था तब वह बेगम को कोसता था और जब जिन की सूरत याद पड़ती थी तो जी में डरता था "एक बी० ए० लिखित," उर्दू बेगम, पृष्ठ ५७

बात यह है कि हिन्दी की अवस्थाही अनस्थिर है; लेखक क्या करे।

एक लेखक लिखता है "जिनने," "उनने" "इनने"; दूसरा लिखता है "जिन्होंने," "उन्होंने" "इन्होंने"। एक लिखता है "वहही"; दूसरा लिखता है "वही" और "वोही"। एक लिखता है "वे जायें" दूसरा लिखता है "वे जायँ"। जो लेखक एक जगह पर लिखता है—"वह काम इस तरह हो" वह दूर आगे चलकर लिखता है—"वह काम इस तरह होवे"। इस अनस्थिरता का कहीं ठिकाना है। इस तरह के प्रयोग सर्वसम्मति से उभयमुखी लिये जायँ तो तो कुछ बातही नहीं; अन्यथा से एक प्रकार छोड़ देना चाहिए। उर्दू के नक़ल करना मुनासिब नहीं। हिन्दी भाषा प्रारम्भिक अवस्था में है। इससे अभी इसके ऐसे दोष दूर हो सकते हैं। किसी का लेकर दूषित या अनस्थिर भाषा के नमूने दिखाना मानों अपने ऊपर आफ़त लेना है; क्योंकि कोई लेखक अपनी सर्वज्ञता से एक इंच भी हटना चाहता। इस लिए हम बे नाम दियेही इस तरह कुछ नमूने, सिर्फ़ इस इरादे से देते हैं, जिसमें तरफ़ पढ़नेवालों का ध्यान आकृष्ट हो। एक उर्दू दां अपनी एक हिन्दी की किताब में लिखते

"यह * * * मेरे पुत्र * * से ऐसा अनु सम्बन्ध कर लिये है कि उसके कहने में मुझे आती है"। इसमें "यह कर लिये है" विचा है। इसी तरह—"उन्हों ने देवदत्त के नाम पत्र लिखे होंगे"—भी कान को खटकता है। पण्डित जी साहब कहते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) अपने ग्रन्थ में सर हैनरी कटन ने जो कुछ भारतवर्ष का इकानामिक प्राब्लेम पर लिखा है।

(२) मेरे याद दिलीप भूपति गये।

(३) बङ्गाली के गवेषणा के परिश्रम को मैं * * * अपना रहा हूं।

(४) जितना (चरित्र) एक * * * का सच्चे झूठे * * * रीति से प्रकट हुआ था।

इन उदाहरणों की आलोचना अनावश्यक है।

एक बहुत प्रसिद्ध लेखक के चरितप्रणेता ने अपने एक ग्रन्थ में इस प्रकार के वाक्य लिखे हैं—

(१) परन्तु वह रिपोर्ट हमको देखने में नहीं आई।

(२) हमको वह फर्मा नहीं देखने में आया।

(३) उनका रचा हुआ कई एक ग्रन्थ पढ़ने का संयोग पड़ा है।

(४) बाबू साहिब ने * * * कई एक दोहा बना दिये थे।

(५) भारतवासियों ने पश्चिमोय देश से वर्णमाला लाया और लिखना सीखा।

(६) जितनी वर्णमाला का हाल * * * ज्ञात हुआ है।

(७) विशालदेव का पुत्र सारङ्गदेव ने * * * लिया।

(८) इस पर घनपटल छाये हुआ है।

(९) * * पुर के इसी यात्रा में।

(१०) वह हमको कहीं देखने में नहीं आई।

(११) इनके पास लिखने की सामग्री न रक्खी रही करती हो।

ये उदाहरण एक नई किताब से हमने चुने हैं। यदि ये वाक्य शुद्ध हैं तो तो कोई बातही नहीं; परन्तु यदि शुद्ध नहीं हैं तो लेखकों का ध्यान ऐसे वाक्यों की तरफ़ आकृष्ट करना चाहिए; अन्यथा और लोग भी ऐसाही लिखने लगें तो कोई आश्चर्य्य नहीं। किसी अच्छे व्याकरण के न होने से, इस दशा में, भाषा की अनस्थिरता और भी अधिक बढ़ जायगी। ये उदाहरण हमने सिर्फ़ हिन्दी की वर्तमान अवस्था दिखलाने के लिए दिये हैं; किसी के दोष दिखलाने के इरादे से नहीं। यह हम सच्चे दिल से कहते हैं। इससे, आशा है, वे लेखक जिनके ये वाक्य हैं, उदारतापूर्वक हमें क्षमा करेंगे। व्याकरण और अलङ्कार आदि के प्रबन्धों में गुण-दोषों के दिखलाने, या अपनी बात को पुष्ट करने, के लिए प्रामाणिक ग्रन्थकारों के उदाहरण दिये बिना काम नहीं चल सकता। क्योंकि सामान्य ग्रन्थकारों की भाषा के उदाहरणों को क़ीमत ही कितनी? परन्तु यदि हिन्दी के लेखकों और समालोचकों को यह बात बहुतही नागवार हो तो कल्पित उदाहरण देनेही का नियम करना होगा। पर कल्पित उदाहरण भी क्या कोई चीज़ हैं? सच तो यह है कि ग़लती कौन नहीं करता। भाषा की अपक्व दशा में तो यह बात और भी अधिक सम्भव है। हमने अपने पहले लेख में लिखा है कि विदेशी शब्दों में "णत्व" विचार की ज़रूरत नहीं। पर जब हम "इंडियन" लिखने लगते हैं तब उस बात को बहुधा भूल जाते हैं और "डि" के साथ "ण्" लिख जाते हैं। यह पूर्व अभ्यास का फल है।

हिन्दी के शब्द-विचार में, हमारी समझ में, यथा-सम्भव संस्कृत-व्याकरण से सहायता लेनी चाहिए। संस्कृत-व्याकरण के समान अच्छा और कोई व्याकरण दुनिया में नहीं। उसे छोड़ कर जो लोग उर्दू और फ़ारसी के व्याकरण का आश्रय लेते हैं वे मानों घर की कामधेनु के दूध का अनादर करके आक का दूध निकालने दौड़ते हैं। हरिश्चन्द्र के चरितलेखक ने जो यह लिखा है कि—

"हिन्दी सर्वशुभगुणसम्पन्न संस्कृत से जनमी है। संस्कृतही का अनुकरण करने में इसकी विशेष शोभा और प्रशंसा है"।

वह बहुत ठीक लिखा है।

हमारे पहले लेख की जो समालोचनायें हो रही हैं उनके सम्बन्ध में हमारे पास बहुत सी चिट्ठियां आई हैं—इतनी कि उनकी एक बहुत बड़ी मिसिल होगई है। उनमें किसी ने कुछ लिखा है किसी ने कुछ। कई एक चिट्ठियों में बहुत सी बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही कही गई हैं जो हमारे सर्वदर्शी समालोचकों ने कही हैं। इन सब चिट्ठियों का अलग अलग उत्तर देने में हम असमर्थ हैं। इससे उनकी मुख्य मुख्य बातों का उत्तर हम यहीं पर दिये देते हैं। आशा है, हमारे पत्रप्रेरक महाशय इसी से सन्तोष करेंगे।

अनेक लोगों की यह सलाह है कि सब समालोचनाओं का हम विस्तृत उत्तर दें। पर इसकी हम कोई ज़रूरत नहीं समझते। जो समालोचक आराम से आत्मा के कोटर में छिपा हुआ बैठा है, जिसे सर्व-साधारण के सामने प्रकट होते शरम लगती है, उसकी विकत्थनाओं का विस्तृत उत्तर हमारे पास नहीं। उत्तर समालोचनाओं का दिया जाता है, प्रलापों का नहीं। जिसे ज़ुबांदानी, क़वायददानी, और ज़ुबांदानों की सोहबत से मिले हुए ज्ञानीपन का त्रिदोषज्वर चढ़ा हुआ है उसकी जल्पनाओं का उत्तरही क्या? कुत्सापूर्ण निःसार बर्राने का भी क्या कोई उत्तर होता है? निःसन्देह, ऐसी बातों के उत्तर में हम अपना व्यर्थ कालातिपात नहीं करना चाहते। हमारे पास और काम हैं जो ख़ुराफ़ात बातों का उत्तर देने की अपेक्षा अधिक महत्व के हैं। चरखा कातनेवाली बुढ़ियों की कहानियों, चुटकुलों और लतीफ़ों का क्या उत्तर? उनका उत्तर अगर कुछ है तो उपेक्षा है। उत्तर उसका दिया जाता है जिसमें कुछ सार होता है; जो भीतर "गजभुक्तकपित्थवत्" बिलकुलही असार है उसका क्या उत्तर? भाषा और व्याकरण का विषय महत्व का है। यह समझ कर हमने विस्तृत उत्तर देने का विचार किया था। पर जब हमने मसख़रापन और शुष्क वितण्डावाद की मात्रा बहुतही बढ़ती हुई देखी तब हमने वह विचार रहित कर दिया। जिस काया में घुसकर हमारे शूर समालोचक बाण-वर्षा कर रहे हैं उसकी शुरूही से सरस्वती पर नेक नज़र रही है। आक्रमण पर आक्रमण उसपर होते आये हैं। पर हमने कभी उनकी तरफ़ ध्यान देने की ज़रूरत नहीं समझी। नहीं मालूम क्यों कुछ लोगों की आंख में सरस्वती कांटे सी चुभती है। हमें जिन सज्जनों ने चिट्ठियां भेजी हैं उनमें से किसी [illegible] की राय है कि विस्तृत उत्तर न देने से न मालूम लोग क्या ख़याल करें। पर हमको विश्वास है लोग कुछ भी ख़याल न करेंगे; और अगर करेंगे भी तो यह कि पढ़ने लिखने से ख़ाक नहीं होता। बहुत तरह की बातें "फाँक" से पेट में वे "बकरकूद" मचाने लगती हैं। से अब, आज से, भूल कर भी न तो किसी बहुत सी विद्या पढ़नी चाहिए और न तरह की बातें ही फाँकनी चाहिए। ज़ुबांदा के हुक्म से सबको उर्दू और फ़ारसी की चार किताबें पढ़ कर लतीफ़े और अख़ लिखना शुरू कर देना चाहिए। इतने ही संस्कृत के नाटकों का तरजमा करना और के ज़माने से लेकर आजतक की भाषाओं इतिहास लिखना हस्तामलक हो जायगा। लोगों को ख़याल यह होगा, और कुछ नहीं फिर, जिस मधुर और मनोहर भाषा में हमारे की समालोचना हो रही है वह भाषा सरस्वती है"। लिखते हमें दुःख होता है। और, किसी दूसरे प्रदेहलव की भाषा हमारे सम्माननीय समालोचक को पसंद भी आ आने की नहीं। इन्हीं अनेक कारणों से हम सिर्फ उत्तर देने में असमर्थ हैं। तथापि हमारा और " सुनने के लिए जिन महाशयों की इच्छा बहुमक म अनिवार्य्य हो उनको तृप्ति के लिए, नमूने के की का पर, दो चार प्रलापों का उत्तर हम दिये देते जो कलाम जिस तारीख़ को हमारे ज़ुबांदानों राजश ज़ुबान शरीफ़ से निकला है उसे भी हम लि जायँगे। सुनिए—

(१) हमने अपने लेख में लिखा—"एक वाक्य को एक लेखक एक तरह लिखता है, दूसरा दूसरी तरह, तीसरा तीसरी तरह"। इस उपाय प्रलाप हुआ—"चौथा चौथी, पांचवां पांचवीं तक समझते चले जाइए"। २-१२-१९०५

जिसकी आत्मा के बल पर आपने आलोच ज़ुबांदानी का जौहर दिखलाया है उसकी की" की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की करतूत, अब, देखिए—"पल घड़ियों को (ख़ता माफ़ हो घड़ियों के पहले दण्ड होते हैं), घड़ियां पहरों को, पहर दिनों को और दिन महीनों को बिताते रहते हैं"। १३-१-१९०६ (महीने बरसों को, बरस शतकों को, शतक युगों को, युग चतुर्युगियों को—इसी तरह महाप्रलय तक चले जाइए और फिर वहां से विपल, पल और दण्डों से शुरू करके, महाप्रलय तक, तेली के बैल की तरह, अनवरत चक्कर लगाया कीजिए समालोचकशिरोमणे! आपने जिस घर में अपनी आत्मा का डेरा डाला है उसकी पहले ख़बर लीजिए तब दूसरों को ज़ुबांदानी का सबक़ सिखाइए।

(२) हमने लिखा—"यदि यही दशा बनी रही तो आज से सौ वर्ष बाद के लोग आज कल की भाषा के बहुत से वाक्यों को न समझ सकेंगे"। इस पर यह जल्पना हुई कि—"द्विवेदी जी को "को" की बड़ी बीमारी है। *** सीधी बात है "बहुत से वाक्य न समझ सकें"—को इस में फ़ालतू है"। ९-१२-१९०५। दुहाई है हकीम महमूदख़ां देहलवी की, मुद्दत तक देहली में शागिर्दी करके भी आप को नब्ज़ पकड़ना न आया। हुज़ूर, मुझे सिर्फ "को" की ही बीमारी नहीं, "के" की भी है और "की" की भी। यह कमबख़्त बीमारी संक्रामक मालूम होती है। हकीम साहब, इसे आपही की काया ने फैलाया है—

(क) उक्त मैजिस्ट्रेट बहादुर अब रङ्गपुर से जशाही को बदल दिये गये हैं।

(ख) युवराज* इस देश को देखने आये हैं। १८-११-१९०५

(ग) इन सब दोषों के दूर होने को कोई उपाय नहीं है।

(घ) इस के दो घंटे के बाद ९ बड़े सरदारों *** सहित महाराज *** मिलने गये। २-१२-१९०५

(च) दक्षिणी सागरों में ह्वेल नाम की एक विशालाकार की मछली पाई जाती है। १३-१-१९०६

गवर्नमेंट को चाहिए कि इस "को के को" मर्ज़ के मरीज़ों को बस्ती से हटाकर दूर किसी झोंपड़े में "सेग्रिगेट" कर दे नहीं तो सारी (इसे आप चाहें तो वाजिदअलीशाही सुथना समझ सकते हैं) दुनिया में इस बीमारी के फैलजाने का बड़ा डर है।

हम अपने पाठकों से निवेदन करते हैं कि इस तरह के विस्तृत उत्तर से उन्हें लाभ क्या हुआ? अगर लाभ कुछ हुआ तो यह कि भाषा की अनस्थिरता साबित हुई। जिस बात को लोग दोष समझते हैं उसे यद्यपि वे ख़ुद करते हैं, और बार बार करते हैं, पर भाषा की अनस्थिरता के कारण उसका स्मरण उन्हें नहीं रहता। या शायद यह "नेकनीयतो" का फल हो!

(३)—काशीनाथ के एक वाक्य को उद्धृत करके हमने लिखा कि "दोनों पुस्तक" की जगह "दोनों पुस्तकें" क्यों न हो? इस पर इस तरह ज़ुबांदानी झाड़ी गई—"द्विवेदी जी को इस बात का तो मग़ज़ नहीं है कि बीस साल पहले जो हिन्दी बोली जाती थी अब उसमें कुछ अन्तर हो गया है। *** काशीनाथ के समय के लोग 'दोनो पुस्तक' ही लिखते थे, 'दोनो पुस्तकें' नहीं"। इस पर हमारी गुज़ारिश है कि काशीनाथ से विकालतनामा लिखाकर आप ने उन्हें बेढब धोखा दिया; बल्कि उनकी भाषादानी में दाग़ लगा दिया; या यों कहिए कि उनकी बेइज़्ज़ती की। मुनासिब तो आप को अब यही है कि जिस मुर्दे की टांग में बँध कर गजाधरसिंह के पास वह "सलाह" भेजी जाय उसी में बाँधकर आप अपना मेहनताना काशीनाथ को लौटा देने की उदारता दिखावें। आप चाहे जो कहें पर हमारी राय "शरीफा" में "हेचमदानी" का लक़ब आपसे बढ़कर और किसीके लिए मौज़ू नहीं। ज़ुबांदां साहब! दो के लिए एक वचन लिखना बीस साल पहले नहीं अब भी रायज है। बल्कि यों कहना चाहिए कि अब उसमें कुछ तरक़्क़ी हुई

* समालोचक जी के क़ायदे से, जिसपर आपने अपनी आलोचना में दूर तक भाष्य रचा है, इस वाक्य में "इस देश को" की जगह "यह देश" चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। अब तो तीन तक के लिए एकही वचन लिखा जाता है। उम्र भर जिसने मारवाड़ी ज़ुबांदानों की सोहबत की है उसका एक ताज़ा जुम्ला देखिए—

तीन देवी की मूर्तियें द्वारा तीनों देश समझाये गये हैं। १३-१-१९०६

यहां एक ही देवी की तीन मूर्तियों से मतलब नहीं। तीनों देवियां अलग अलग हैं। तिस पर भी "देवी" एकही वचन! मग़ज़ बढ़ जाने का शायद यह फल हो; क्योंकि जिस इटालियन विद्वान् ने "प्रतिभा" पर पुस्तक लिखी है उसने मग़ज़ के बड़े हो जाने ही का नाम पागलपन रक्खा है। बीस साल पहले की हिन्दी में अन्तर था। यह फ़रमाकर आपने बड़ा काम किया। भाषा की अनस्थिरता आपने किसी तरह मंज़ूर तो कर ली। पर अनस्थिरता तो आपकी एक एक बात में भरी हुई है।

(४) हमने अपने लेख में, एक जगह लिख दिया—"मनुष्य और पशु, पक्षी आदि की उम्र देश, काल, अवस्था और शरीरबन्धन के अनुसार जुदा जुदा होती है"। इसपर इस तरह जल्पना हुई—"कोई पूछे कि जनाब व्याकरणवीर साहब! उम्र जुदा जुदा होती है, या उम्रें जुदा जुदा होती हैं"। इसका यह उत्तर है कि "उम्र" की बराबर नाशुकरा शब्द किसी कोश में न मिलेगा। जिस पिंजड़े की आत्मा ने उसे तरक्क़ी देकर एक-वचन से बहुवचन बनाया उसी के कितने ही शब्दों को इस कृतघ्न ने काट काट कर बहुवचन से एक-वचन कर दिया। यह शब्द नहीं, कोई बला है। यह भी एक तरह की प्लेग की बीमारी जान पड़ती है। इस के संसर्ग से शब्दों के झुण्ड के झुण्ड अपना बहुवचनत्व खोकर एकवचन हो गये। देखिए—

(क) पाँचवीं, चौथी और पहली वार्षिक श्रेणी के लड़कों पर जुर्माना किया गया है।

(ख) उनमें से कितने ही हलवाइयों की दुकान की मिठाई नहीं खाते।

(ग) यहां २५ छोटी हाथ की कल और एक बड़ी इस समय काम करेगी। २-१२-१९०५

(घ) कनिष्टबलों का दल बड़ी बड़ी लाठी लि पहरा देता था। २५-११-१९०५

कृतघ्न और अकृतज्ञ चाहे जो करें। "उ के संसर्ग-दोष से बेचारे "श्रेणी", "दुका "कल" और "लाठी" शब्दों को कट कट टुकड़े टुकड़े होना पड़ेगा। शिव शिव! इस बढ़कर अनस्थिरता के नमूने और क्या हो सकते बात तो यह है कि ज़ुबाँदां जो लिख दें सही हम जो लिख दें ग़लत।

(५) हमारा एक वाक्य है—"इस तरह सारी त्रुटियों को हम मुहाविरा नहीं समझते इसमें "सारी" शब्द के ऊपर मसख़रापन—"लहँगा! आपका देहाती चोचल ही तो सि करता है"। लहँगा नहीं बल्कि पंजाब का देह घांघरा। हमारा इरादा तो उसे ही रखने का जिसमें वह सितम पर सितम करता चला ज लेकिन कमबख़्त धोबिन ने धोखा दिया। वह लेकर ककरीले घाट पर धोने चली गई।

लहँगे के तरफ़दार हमारे नागरिक स लोचक अपनी समालोचना के आठवें प्रला फ़रमाते हैं। "अनस्थिरता का फ़ैसला भ हो जाना चाहिए क्योंकि वही सारी लिखा की जड़ है"। जो हुक्म; फ़ैसला, फ़ैसला फैसुला तो हम बराबर करते ही चले आ हैं; पर यह तो कहिए कि आप की "लिखा को "सारी" खोल कर घाँघरा पहनाया या नहीं। प्रतापनारायण ऐसे वज्रदेहाती ने रूह के क़ालिब को हिन्दी सिखलाई वह लहँगे का तरफ़दार हो?

(६) हमारे समालोचक-सम्राट् ने हमें दानो की पदवी दी है। आपकी बातों से है कि आपके पास सिर्फ़ दो चीज़ें थीं, एक दानी दूसरी हमादानी। सो हमादानी तो अता फ़रमाई गई। और हमने उसे ले भी लि क्यों न ले लें? जिस शरीर की आप गुप्त हैं उसने हमें "विद्वान्", "पण्डित" और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा पाये हुए" की अपनी दस्तख़ती सनद दे रक्खी है न। वह पाँच छ साल से हमारे पास सुरक्षित है। फिर भला हम क्यों न हमदाँ हो जायँ? इसमें अगर किसी का कुछ अपराध है तो आप की आत्मा के प्रपञ्च का, और किसी का नहीं। इस प्रपञ्च ने १ जनवरी १९०० को हमारी एक सनद छाप कर प्रकाशित भी कर दी है। अब बाक़ी रही आप की ज़ुबांदानी, सो कोहेनूर की तरह चमक रही है। वह आपको मुबारक रहे। कृपा करके उसे भी किसी को न दे डालिएगा; नहीं तो हिन्दी के साहित्य का एक दम ही कायाकल्प हो जायगा। उर्दू-क़वायद और उर्दू-कोश, जो आप की नस नस में घुसे हुए हैं, और जिनके आप इतने क़ायल हैं, यदि बने हैं तो आप हिन्दी को काया में कुछ न कुछ उलट फेर किये बिना मानेंगे क्यों?

हम अपने पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि वे अब हमें अपने उत्तर के अधिक नमूने देने के लिए लाचार न करें। इतने ही बस हैं। वे देखेंगे कि इन्हीं के देने में इतनी जगह व्यर्थ रुकी और हमारा इतना समय व्यर्थ गया। यों तो कोई कोई लेखक अपनी सर्वज्ञता को इतने ऊंचे दरजे की समझते हैं कि शायद कुतुबमीनार भी उन्हें उसके सामने ठिंगना मालूम होता हो। ये लोग एक एक मात्रा के लिए झगड़ने में अख़बारों के कालम के कालम काले कर डालते हैं। एक बार प्रसङ्गवश हमने एक कवि की कविता में एक मात्रा की कमी बतला दी। इस पर ज़मीन आसमान एक कर डाला गया। एक "रामभज" पैदा हो गये। उन्होंने "धर्म्मार्थ परिश्रम" पर ख़ूब माला फेरा। एक मात्रा पर तो इतना "धर्म्मार्थ" हुआ; अब हमारे लेख की समालोचनाओं का जो यह तांता बँधा उससे न मालूम कितना धर्म्मोपार्जन हो। सम्भव है, आसमान में सीढ़ी लग जाय और हमारे परिश्रमी समालोचक की आत्मा उसी से बढ़ कर स्वर्ग में एक दम परमात्मा का आसन छीन ले। अपने लेख में समाचार-पत्रों से हमने जो दो चार वाक्य दिये थे उन्होंने, जान पड़ता है ग़ज़ब कर दिया। वे किसी तरह हज़म नहीं हो सके। वे पहचान लिये गये। उनके, और पूर्व-सञ्चित अकारण-विद्वेष-विष के, कारण पैदा हुई बदहज़मी अब क़लम के मुँह से निकल रही है। यह शायद "शेष" के प्रमाण भेजने और बरसों तक गद्य-पद्य-मय लेख लिखकर समालोचक-जी की आत्मा के शरीर को कीर्ति फैलाने का फल हमें मिल रहा है!

जो चिट्ठियां हमारे पास आई हैं उनमें इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया गया है कि हम "अनस्थिरता" शब्द को ज़रूर सही साबित करें; क्योंकि उसे टेक कर हमारे सौम्य समालोचक बांसों कूद रहे हैं। पर इसकी हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। जो बहुत कूद फांद करता है, मेघदूत* के "शरभों" की तरह उसी का अङ्गभङ्ग होता है। शब्दों की व्युत्पत्ति उसे समझाई जाती है जिसे समझने का शऊर होता है। जो इतना भी नहीं जानता कि "जीव" और "जीवन" में भेद है या नहीं, और है तो क्या है; जिसकी आँखें "प्रकाशन" और "प्रकटन" को देखकर दुखने लगती हैं; जिसको समझ में "ब" और "व" का अन्तर अभी तक नहीं आया और जिसका पञ्चभूतात्मक प्रपञ्च भर्तृहरि का एक श्लोक सही सही नक़ल तक नहीं कर सकता, उसका शब्दों को व्युत्पत्ति पूछना मानों तीन दमड़ी की दूकान रखनेवाले किसी बनिये बक्काल का जगत्सेठ, राथसचाइल्ड या कारनेगी से उनकी सम्पत्ति का हिसाब पूछना है! अभी दिसम्बर के अख़ीर में, जब हम बनारस में थे, एक दिन नागपुर के पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० और "संस्कृतचन्द्रिका" के सम्पादक अप्पा शास्त्री विद्यावागीश हमारे स्थान पर आये। विद्यावागीश जी संस्कृत के अद्वितीय पण्डित

* के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः। मेघदूत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उन्होंने अपनी संस्कृत-वक्तृता से काशी के प्रसिद्ध पण्डितों को भी प्रसन्न किया है। उनसे इस शब्द के विषय में बातचीत हुई। सप्रे महाशय भी उस समय थे। हमने उसे एक तरह से, इच्छित अर्थ में, संस्कृत का शुद्ध शब्द साबित किया। उसे तो उन्होंने मानही लिया; पर उन्होंने एक और तरह से भी उसे शुद्ध ठहराया।

संस्कृत के जिस व्याकरण में "मलिक", "मौलाना" और "पाकेट", "ब्लाकेट" आदि शब्दों को शुद्ध साबित करने की शक्ति है, उसके लिए "अनस्थिरता" को शुद्ध साबित करना कौन बड़ी बात है? पर हम अपने वाचकों से प्रार्थना करते हैं कि संस्कृत के बखेड़े में न पड़कर "अनस्थिरता" को वे "अनमिल", "अनहित", "अनरीति", "अनमोल", "अनगैरी", "अनदेखो" और "अनसुनी" की तरह का हिन्दी-शब्द समझें। दो चार उदाहरण—

(१) "अनमिल आखर अर्थ न जापू"।

(२) "हित अनहित पशु पक्षिहु जाना"।

(३) "अनदेखी अनसुनी बनाय—कुकथा कहै सभा में आय"।

(४) "कहि गिरिधर कविराय घरै आवै अनगैरो"।

(५) "अनहोनी होनी करै होनी होन न देय"।

हिन्दी में व्यवहृत शब्दों को संस्कृत बनाने की चेष्टा करने से लिखने वालों का एक मिनट भी काम नहीं चल सकता।

एक साहब लिखते हैं कि "ज़िन्दादिल" के लेखक पर जो हमने नोट लिखा था उसकी उचित समालेचना हुई है। इसका उत्तर यह है कि हुई सही; अगर आपको ऐसी ही राय है तो आप उसे उचित समझे रहिए। हमारी राय तो यह है कि आप हिन्दी अख़बारों को अच्छी तरह नहीं पढ़ते। अगर पढ़ते तो आप कभी ऐसा न कहते। एक दफ़ा किसी साहब की वक्तृता का हमारे सम्माननीय समालोचक महाशय की काया ने अनुवाद छापा। उसके छपने के बाद किसी और अख़बार ने [illegible] का नाम न देकर उसे छाप दिया। इस पर [illegible] से न रहा गया; एक नोट आप ने लिखही डा[illegible] इसके बाद किसी ने आप का कोई चिट्ठा बे[illegible] दिये छाप दिया। इस पर भी आप से चुप न [illegible] गया; फिर भी आपने एक नोट लिखकर छ[illegible] वाले को गोशमाली की। इसी से हम कहते हैं [illegible] आप अच्छी तरह अख़बारों को नहीं पढ़ते—

"रावरी बात गजेन्द्र के दांत ये खात के [illegible] दिखात के और हैं"।

दुनिया में उपदेश एक ऐसी चीज़ है [illegible] अपने लिए नहीं, बल्कि औरों ही के लिए [illegible] गई है। इस विषय में एक कायस्थकुमार [illegible] आल्हा-ऊदल के पहाड़ी देश से सुदूर लाहौर [illegible] दौड़ लगाई है। इधर उधर से पूछ पाछ कर [illegible] ने वहां के एक उर्दू अख़बार में अपनी विद्[illegible] दिखलाई है। आप की नीति कुछ समझ में [illegible] आती। अब की मिलने पर उसे समझने की [illegible] कोशिश करेंगे। ख़ैर, ख़ुशी की बात है जो [illegible] को एक अख़बार मिलने लगा। दीन की [illegible] करना सर्वथा उचित हुआ। हम आपके मालिक [illegible] सिफ़ारिश करेंगे कि आपके इस काम के उपल[illegible] में आपकी तरक्क़ी कर दी जाय।

वैदिक साहित्य के एक प्रचण्ड पण्डित को [illegible] "अनुशासन" में "अनु" का अर्थ "पीछे" [illegible] में भारी सन्देह हुआ है। हम कभी भूल कर [illegible] आप के रास्ते नहीं जानते; फिर न मालूम [illegible] आप अपनी पण्डिताई दिखाने दौड़ते हैं। [illegible] हमेशा कुछ न कुछ फ़रमायाही करते हैं और [illegible] उसपर ध्यान ही नहीं दिया करते। जिसके [illegible] किये हुए ३२ अक्षर के एक श्लोक में इम्ला तक [illegible] ग़लतियां हमें सुधारनी पड़ें, वह किस [illegible] पर मुँह खोले। हमारी प्रार्थना से आप ज़रा दे[illegible] लिए शब्दकौस्तुभ का कण्ठा उतार कर रख दी[illegible] और "पश्चात्सादृश्ययोरनु" को रट डालिए। [illegible] कोश में—"अनुगमन", "अनुसरण", "अनु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अन्वक्", "अन्वक्ष" "अनुचर", "अनुपद" और "अनुज" आदि शब्दों का अर्थ याद कीजिए। फिर कौमुदी में दिये हुए "विष्णोः पश्चाद्-अनुविष्णु" उदाहरण को दस पाँच दफे कह जाइए। इस पर भी "अनु" का अर्थ यदि समझ में न आवे तो किसी से "शिशुपालवध" का यह श्लोक पढ़ लीजिए—

प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे।
अनुहुंकरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी॥

न कोई अर्थ करने वाला मिले तो "केनिंग् कालेज" के भूतपूर्व संस्कृताध्यापक पण्डित कालीवरण का किया हुआ हिन्दी-अनुवाद पढ़िए। लीजिए, हम उसे लिखे भी देते हैं—

"श्रीकृष्णजी ने गालो देते हुए राजा शिशुपाल को प्रत्युत्तर नहीं दिया क्योंकि सिंह, मेघ के शब्द के पीछे हुंकार करता है, शृगालों के शब्दों के पीछे हुंकार नहीं करता है"।

आशा है आप इस श्लोक को पसन्द करेंगे और "अनु" का अर्थ भी समझ जायँगे।

हमने हरिश्चन्द्र के एक—सिर्फ़ एक—वाक्य की समालोचना कर दी। यह हमसे घोर पातक हो गया। स्मृतियों में सैकड़ों तरह के पातक, उपपातक, और महापातक गिनाये गये हैं और प्रायश्चित्तों का विधान भी उनमें है; पर हमारे इस घोर पातक का कोई प्रायश्चित्त नहीं; उसका कोई इलाज नहीं; उसकी कोई दवा नहीं। भगवान् बड़ा दयालु है; पर उसकी शरण जाने से भी शायद हमारा निस्तार न हो। सुनते हैं हरिश्चन्द्र बड़े उदार, बड़े दानी, बड़े क्षमाशील, और बड़े दयालु थे। इससे अब हम उन्हीं को पुकारते हैं। हे हरिश्चन्द्र! कासि? हे गोलोकवासिन्! त्राहि माम्। हे कवि-कुल-कल्पवृक्ष! रक्ष। हे निःशेष-लेखक-पथप्रदर्शक! भवतैव प्रदर्शिते पथि स्खलितं मां करावलम्बं देहि। आपने अपनो "नाटक" नाम की किताब में लिखा है—

"एक तो मनुष्य बुद्धि ही भ्रमात्मिका है दूसरे मेरी ठीक *रुग्नावस्था में यह विषय लिखा गया है इससे बहुत सी अशुद्धियां सम्भव हैं"।

यह देख कर हमने समझा था कि मनुष्य से भ्रम होना सम्भव है; परन्तु "वञ्चितोहं त्वया कवे"। अब आपही कृपा करें तो हमारा उद्धार हो। अन्यथा अब और कोई मार्ग हमारे बचने का नहीं। या तो आप इस जुम्ले को अपनी किताब से दूर कराइए; या हमें कृतापराध की माफ़ी दिलवा कर इस बात की भी इजाज़त दिलवा दीजिए कि, ज़रूरत पड़ने पर, हम आप की किताबों की समालोचना कर सकें।

हमने बाबू साहब के वाक्य की आलोचना करके, वहीं पर, यह भी लिख दिया कि—"सम्भव है * * * छापेवालों को असावधानी से ये त्रुटियां रह गई हों"। परन्तु, न! हम कुछ भी क्यों न लिखें हमने समालोचना की क्यों? स्वर्गीय भारतेन्दु की हिन्दी की समालोचना! महाकवि प्रतापनारायण ने जिसे अपना गुरु माना और महाविद्वान् राजा शिवप्रसाद ने जिसे हिन्दी की दीक्षा दी उसकी इबारत की समालोचना! अक्षम्य! अक्षम्य!! अक्षम्य!!! वाल्मीकि के—"सखिनावानरेन्द्रेण" की समालोचना हो सकती है; वह क्षम्य है। कालिदास के—"पातयां प्रथममास" को हो सकती है; वह भी क्षम्य है। भारवि के "गाण्डीवी * * * आजघ्ने" की हो सकती है; वह भी क्षम्य है। माघ के—"आविश्चक्षुषोऽभवत्" की हो सकती है; वह भी क्षम्य है। पर बाबू हरिचन्द्र की हिन्दी की नहीं। वह समालोचना

* हमारा "हलन्त-वर्ण" और हिन्दी के वैय्याकरण पं० केशवराम भट्ट का "हलन्त-व्यञ्जन" ये दोनों संस्कृत शब्द होने के कारण ग़लत हैं; पर बाबू साहब का "रुग्नावस्था" शब्द या तो हिन्दी है; या, अगर संस्कृत है तो, महाभाष्य की रूसे सही है; या, अगर नहीं सही है तो, बाबू साहब उसके ज़िम्मेदार नहीं; क्योंकि उन्हों ने अपने लेखों की कापी कभी दुबारा नहीं पढ़ी। और "प्रूफ़" पढ़ने का तो कुछ ज़िकर ही नहीं। बड़े ग्रन्थकारों की चालही यही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"प्रूफ" है। उस पर समालोचना को रोकने वाला कवच चढ़ा हुआ है। उसको आलोचना करना अक्षम्य अपराध है—घोर पातक है। बाबू साहब ख़ुदही क़बूल करलें कि उनसे ग़लती हो सकती है, तो भी कोई उनके लेख की समालोचना न करे। हमें तो उसके विषय में मुँह से चकार तक निकालना मना है; क्योंकि हम देहाती हैं। न हम किसी शहर के हैं; न हम बाबू साहब के सजातीय हैं। फिर हमको समालोचना का क्या अधिकार? हां अगर हम हरियाने के देहाती होते तो बात दूसरी थी। और लोग उनके कवि-वचनसुधा की समालोचना कर सकते हैं। उनकी इबारत में ढीलापन बतला सकते हैं। उनको ख़ता माफ़ है। पर हमारी नहीं। हम होते कौन हैं? बाबू साहब के चरितलेखक को उनके प्राणोपम पात्रों तक की आलोचना करने का अख़तियार हासिल है; पर हमको उनके एक जुम्ले तक की आलोचना का नहीं। न हम पञ्जाब के देहाती हैं और न हम महा-महा-देहाती होकर नागरिक बनने और जुबां-दानी का लोलक लटकाने का दावाही रखते हैं, फिर हम आलोचना कर कैसे सकते हैं? और समालोचकों के पास आलोचना का "लाइसन्स" है; बाबू साहब की किताबों की समालोचना के वे "लाइसेन्स होल्डर्स" हैं। इसी से उनको समालोचना करने का अख़तियार है। हमारे पास "लाइसन्स" नहीं। फिर हम समालेचना कैसे कर सकते हैं? बाबू साहब ने अपने "काश्मीरकुसुम" में लिखा है—

(१) कवियों ने अपने अन्नदाता के वंश की तो झूठी प्रशंसा की कहानी जोड़ ली और उनके जो शत्रु थे उनकी सब कीर्ति लोप कर दी।

(२) (कल्हण) कवि के स्वभाव का जहां तक परिचय मिलता है ऐसा जान पड़ता है कि वह उद्धत और अभिमानी था।

बाबू साहब तो पुराने कवियों को झूठा, उद्धत और अभिमानी कह दें और अपने प्रहसनों में किसी को भी न छोड़ें; पर "लाइसन्स-होल्डर" के सिवा उनके एक शब्द तक की कोई आलोचना न करने पावे। क्यों? समालोचकों का हाईकोर्ट का "रूलिंग्" ही ऐसा है!

राजा शिवप्रसाद और बाबू काशीनाथ के लेखकों के लेखों की समालोचना का भी अधिकार नहीं; क्योंकि मुर्दा-ज़िन्दा, नये-पुराने सभी हिन्दी-उर्दू-लेखकों के लेखों पर, विशेष करके अख़बार और सामयिक पुस्तकों पर, हमारे समालोचक-चूड़ामणि के आत्मगुप्ताचार्य्य ने पहले से अपनी समालोचना-रूपी उलटी-सीधी लगा दी है।

एक लखनऊ के और एक लक्ष्मणगढ़ के पण्डित महाशय बाबू हरिश्चन्द्र की किताबों की समालोचना के बहुत ही ख़िलाफ़ हैं। यह है हमारी प्रार्थना है कि आप चाहें ऐसी समालोचना के जितना ख़िलाफ़ हों, पर हरिश्चन्द्र यदि होते तो वे ज़रा भी मुख़ालिफ़त न करते। क्योंकि उन्होंने ख़ुद औरों की समालोचना की है; समालोचना का मार्ग उन्होंने हिन्दी में निकाला है। अतएव यह कब सम्भव था कि अपने ही निकाले हुए मार्ग के मुसाफ़िर से वे रुष्ट होते। हमारे विचार से समालोचकों के हृदय में हरिश्चन्द्र की जितनी भक्ति है यह तो वही जानें; पर हम तुलसीदास के शब्दों में कोरे क़ागज़ पर लिख कर सच कहते हैं ("सत्य कहहुं लिखि कागद कोरे") हम उनको हिन्दी का बहुत बड़ा लेखक, कवि और नाटककार मानते हैं। हिन्दी लेखकों में—

क्रियते चेत् साधुविभक्तिचिन्ता
व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाभिधेया।

पर क्या उनके लेखों की समालोचना पाप है? स्वर्गीय और गोलोकवासी महात्मा के कृत्यों की समालोचना करना क्या अवमानना करना है? यह कहां लिखा है? कहां का न्याय है? काव्यप्रकाश, साहित्य-दर्पण, रसगङ्गाधर, औचित्यविचारचर्चा, काव्यानु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि में किसकी समालेचना नहीं हुई ? किसके दोष नहीं दिखलाये गये ? प्रायः सभी प्राचीन कवियों के जो, एक नहीं अनेक, दोष दिखलाये गये हैं उससे क्या उन पर से लोगों की श्रद्धा कम हो गई ? क्याही अच्छा न्याय है ! क्या ही अच्छा विचार है ! ! क्या ही अच्छा "रूलिंग्" है ! ! ! सब की समालोचना हो ; पर हरिश्चन्द्र की न हो ! शेक्सपियर की पुस्तकों पर इतने खण्डन-मण्डनात्मक प्रबन्ध निकले हैं कि एक पुस्तकालय उनसे भर जाय। अकेले "हैमलेट" की समालोचनाओं का एक ख़ासा साहित्य हो गया है। यह काम क्या शेक्सपियर का उपहास करने के लिए किया गया है ? मेकाले ने जो समालोचनायें लिखी हैं वे क्या दूसरों का अनादर करने के लिए ? पर बात तो यह है कि यहां बहुत तरह की बातों का "फाँकना" ही मना है। मना सही ; पर जिस "आबेहयात" का नाम हमेशा हमारे ज़ुबांदानों की ज़ुबान पर रहता है उसका फाँकना तो रवा है। उसमें ज़ुबाँदानों के पैग़म्बर हज़रत आज़ाद ने किसी पुराने कवि की समालोचना की है या नहीं ? अभी बहुत दिन नहीं हुए, बँगला के प्रतिष्ठित लेखक और कवि, बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर, के व्याकरण-विषयक नये सिद्धान्तों का क्या पण्डित शरच्चन्द्र शास्त्री ने कठोर खण्डन नहीं किया ? बङ्गाल के विख्यात कवि नवीनचन्द्र सेन के प्रसिद्ध काव्य पर, पण्डित वीरेश्वर पांडे ने "ऊनविंश शताब्दीर महाभारत" नाम की समालोचनात्मक पुस्तक लिख कर, नवीन बाबू के जो सैकड़ों दोष दिखलाये हैं उनसे कौन बङ्गभाषाप्रेमी परिचित नहीं ? और उनके "पलाशीर युद्ध" नामक कविता की अनेक उक्तियों का खण्डन जो "सिराजुद्दौला" नाम की पुस्तक में हुआ है उसे कौन नहीं जानता ? ये समालोचनायें किसी की अवज्ञा या अवमानना करने के इरादे से नहीं लिखी गईं। इनके कारण न तो समालोचित व्यक्तियों का आदर कम हुआ न समालोचकों पर किसीने कशाघात ही किया। पर, हिन्दी के महारथी महात्माओं की सभी बातें विलक्षण हैं। "मथुरा तीन लोक से न्यारी" !

हरिश्चन्द्र के समय में हिन्दी की आद्यवस्था का आरम्भ था। शुरू शुरू में व्याकरण का समुचित विचार किसी भाषा में नहीं होता। व्याकरण के नियम ही नहीं निश्चित होते ; उसका विचार हो कैसे ? इससे बाबू हरिश्चन्द्र या इस समय के लेखकों की भाषा में यदि परस्पर विरोध देख पड़े, अथवा अन्य परिमार्जित भाषाओं के व्याकरण-विषयक व्यापक सिद्धान्तों का अनुसरण न करने के उदाहरण मिलें, तो कुछ आश्चर्य्य नहीं। यदि प्रसङ्गवश उन्हें कोई दिखलावे तो उससे अवज्ञा या अपमान समझकर दिखलानेवाले पर कोप करना मुनासिब नहीं। मैक्समूलर साहब कहते हैं—

It is no want of respect for the great men of former ages to say that they would have written differently if they had lived in our days.

Science of Language (2nd Series), page 338.

समालोचना-सरोवर के हंस, हमारे समालोचक महाशय, ने हमारी तुलना—"एक विशेष प्रकार के जलपक्षी" से की है। इस पक्षी को "किनारे के कीचड़ ही में सब मिल जाता है"। थैंक यू, जलपक्षियों के परीक्षक और ज़ुबांदानों का कीचड़ उड़ानेवाले वीर ! आपने कभी उस जलचर को भी देखा है जो भय के मारे अपने हाथ, पैर, सिर और आत्मा तक को अपने शरीर के कोटर में छिपा कर पानी में ग़ोता लगा जाता है। इस दफ़ा हम—"इधर उधर के विज्ञापन आदि से" कुछ न चुन कर हरिश्चन्द्र के मुद्राराक्षस नाटक की इबारत में अनस्थिरता दिखलाने की कोशिश करते हैं। आप इस भयत्रस्त जलचर की भाँति ग़ोता लगा कर देखिए कि हमारे नमूने किनारे के हैं या कुछ दूर के। मुद्राराक्षस की जो कापी हमारे पास है वह १८८८ ई० की छपी हुई है। उससे चुने हुए नीचे के उदाहरणों से हमारा यह मतलब नहीं कि बाबू हरिश्चन्द्र को हिन्दी-लिखना न आता था, या वे व्याकरण न जानते थे, या वे संस्कृत से अनभिज्ञ थे। जो कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी किताब में है हम उसीकी समालोचना करते हैं। उसके आगे हम और कुछ नहीं कहते—

(१) एक दिन शिकार खेलने में गङ्गा में राजा ने अपनी पाँचों उँगली की परछांई बररुचि को दिखलाया।

(२) बररुचि ने अपनी दो उंगलियों की परछांई ऊपर से दिखाई।

ये वाक्य "पूर्व्व कथा" के आठवें पृष्ठ में, पास ही पास, हैं। पहले में पाँच के लिए भी "उँगली" शब्द एकही वचन में रक्खा गया है। अब यदि कोई कहे कि उस समय वैसी ही चाल थी तो अनुपद ही दो के लिए बहुवचन "उँगलियों" का प्रयोग किया गया है। इसी तरह पहले उदाहरण में परछांई के साथ "दिखलाया" क्रिया पुल्लिङ्ग है, पर दूसरे उदाहरण में उसीके साथ "दिखलाई" स्त्रीलिङ्ग!

(३) इस बात पर राजा ने बररुचि की बड़ी स्तुति किया। पृष्ठ ८

(४) एक दिन राजा ने *** ब्राह्मण को मारने की आज्ञा किया। पृष्ठ ८

(५) भालू ने *** कुँवर की रक्षा किया। पृष्ठ ८

(६) जरासन्ध ने उग्रसेन के पास अँगीठी भेजी। पृष्ठ ६

(७) नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की। पृष्ठ ४

(८) पाठशाला धूमधाम से चल निकली। पृष्ठ ४

यहां (३), (४) और (५) उदाहरणों में स्तुति, आज्ञा और रक्षा के योग में पुल्लिङ्ग-क्रिया का प्रयोग है, पर (६), (७) और (८) उदाहरणों में अँगीठी और पाठशाला के योग में स्त्रीलिङ्ग का! यदि यह अनस्थिरता नहीं तो है क्या? इसे तो महा-महा अनस्थिरता कहनी चाहिए।

अब इस पुस्तक के उपसंहार के दो चार उदाहरण सुनिए—

(९) ढुंढि पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था। इसको दो स्त्री थीं। पृष्ठ १२

(१०) एक दिन राजा दोनों रानियों के सा एक ऋषि के यहां गया। पृष्ठ १२

ये दोनों वाक्य भी पासही पास के हैं। नवें वा में "दो" के लिए "स्त्री" एकवचन; पर द वाक्य में "दोनों" के लिए "रानियें" बहुवच

(११) इनमें यदि केवल केतु का दर्शन हो दस वर्ष तक संसार में महाताप और शस्त्रको रहता है। पृष्ठ १९

(१२) अर्थात् केतुओं का उदय और अ गणित से नहीं जाने जाते। पृष्ठ २१

ग्यारहवें उदाहरण में महाताप और शस्त्रको इन दो के लिए, "रहता है" एकवचनात्मक क्रि पर बारवें उदाहरण में उदय और अस्त के लि "जाने जाते" बहुवचनात्मक!

ऐसे अनेक उदाहरण बाबू साहब की पुस्त में हैं। इन अनस्थिरताओं का कारण व्याकरण अभाव है। वह अभाव जैसा हरिश्चन्द्र के समय था वैसाही अब भी है। अतएव इस विषय तरफ़ हिन्दी जानने वालों का ध्यान आकर्षित क के कारण हम पर आक्रमण करना सर्वथा अन है। हिन्दी के हितचिन्तकों को चाहिए कि वे अच्छा व्याकरण बनाकर इस अनस्थिरता को कर दें। जो वक्त वे प्रलापपूर्ण समालोचनायें लि में लगाते हैं उसे वे व्याकरण या और कोई उपयो पुस्तक लिखने में लगावें। वे विश्वास रक्खें, किसी पुराने कवि या लेखक को अपमानित का स्वप्न में भी कभी ख़याल नहीं हुआ। हमारे सवाई सिकन्दर समालोचक क्यों ह बात पर ध्यान देने लगे। हमें तो वे उपदेश हैं कि जो बात सच्चे दिल से की जाती है लिए माफ़ी माँगने की ज़रूरत नहीं होती; पर वे जो काम "नेकनीयती" से करते हैं उसके में अपनी "साफ़दिली" का इज़हार देने दौड़ते ख़ैर जो उन्हें अच्छा लगे करें। जब तक, महीने, वे हरिश्चन्द्र के पूर्वोक्त वाक्यों की स्थिर प्रमाण दें और हमारे इस लेख के एक एक अक्षर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डन करें तब तक हम हर्बर्ट स्पेन्सर की एक आध किताब को हिन्दी में लिखने की फ़िक्र करें।

यहां तक लिख चुकने पर हमें ख़याल हुआ कि बाबू हरिश्चन्द्र के पूर्वोक्त वाक्य हमने लिख तो दिये, पर हमारे समालोचकचक्रचूड़ामणि उनकी अनस्थिरता को एक चुटकी में उड़ा देंगे। वे फ़ौरन ही कह देंगे कि देहली और लखनऊ का (या 'की'—जो ज़ुबांदानों की राय में सही हो) बोल चाल ही ऐसा है, और काशी के पुराने लेखक घरहा में बैठे बैठे, एक ही ज़ुबान से देहली, लखनऊ और काशी की बोलियां एक ही साथ बोलते थे। उनके और उनके कृपापात्र पुराने लेखकों के, इस तरह के वाक्य-समुदायों का समाधान बस इस "बोल चाल" से हो जायगा। होगा नहीं—सिर्फ़ हमारे वाक्यों का? "नेकनीयती" के मानी यही हैं! लखनऊ और देहली के बोल चाल का पक्षपात इसलिए, कि यही दोनों शहर हिन्दी के "मख़ज़न" हैं। उनके "मख़ज़न" बनने के पहले यह प्रान्त बिलकुल भाषा-शून्य था! हिन्दी वालों को अब चाहिए कि अपने व्याकरण का वारिस या सरपरस्त इन ज़ुबांदानों को बना दें, और आप देहली और लखनऊ की बोली सीखकर "रुक्क" की जमा "अराकोन" बनाने का अभ्यास करें। बस, फिर भारत भर की भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होते देर न लगेगी। हिन्दी में बहुरूपियापन पैदा करने के लिए देहली और लखनऊ के ज़ुबांदानों की बोली की नक़ल अचूक अपना काम करेगी, और थोड़े ही समय में जितने मुंह उतनी ही बोलियां हो जायँगी। क्योंकि ये ज़ुबाँदाँ जैसा बोलते हैं ठीक वैसाही लिखते भी हैं। इनकी लिखित और कथित भाषा में भेद नहीं। बस इस भेदभाव के दूर होते ही हिन्दी में व्याकरण की ज़रूरत एक दम दूर हो जायगी और फिर हिन्दी पारे के समान अनस्थिर होकर उन्नति की मारी आकाश छू लेगी। हिन्दी में जो सजीवता है वह उसे संस्कृत और प्राकृत से मिली है, अरबी-फ़ारसी से नहीं। पर जिस हिन्दी के टुकड़े खाकर उर्दू ज़िन्दा है उसी हिन्दी को अब उर्दू के द्वार पर भीख मांगने—उसके सेवकों की बोली की नक़ल करने—देहली आगरे जाना होगा! देखें इन ज़ुबांदानों की बदौलत उसकी क्या क्या गति होती है।

हमारे ज़ुबांदाँ समालेचक फ़रमाते हैं कि पंजाब, युक्तप्रदेश, दिल्ली, आगरा, काशी, पटना के लेखक "करें", "हमें" बोलते और लिखते हैं, "करैं" "सकैं" नहीं। बेहतर है, हम अपनी देहाती चाल को छोड़ने की कोशिश करेंगे; पर आप भी थोड़ी सी उदारता दिखाइए। आप अपने प्रपञ्चरूप से कहिए कि "सहानुभूती", "अप्रस्यार", "स्मर्ण" और "देव्यापराध" लिखना छोड़ दें, और "करैं" इत्यादि लिखने में हमारे जो साथी हैं उनसे भी, आप "आबेहयात" से प्राप्त हुई अपनी ज़ुबांदानी के बल पर, इस आदत को छुड़ाइए—

(१) उचित है कि वह रूसराज्य की वर्त्तमान शासनस्थिति से शिक्षा ग्रहण करै।

प्रयागसमाचार (इलाहाबाद), १०-१२-०५

(२) वे परिश्रम न करके माँग खा लेवैं।

(३) दस ग़रीब काम करके जीविका-निर्वाह कर सकैं।

(४) दुर्दशा का वृत्तान्त सुनावैं या * * * उपदेश करैं। भारत-जीवन (काशी), ११-१२-०५

(५) वे * * * * कालेज को दे दिया करैंगे।

(६) अपना भरण-पोषण अन्य सम्पत्ति द्वारा करैंगे। सरस्वती, भाग ६, पृष्ट ४८९ (पं० श्यामविहारी मिश्र "लखनवी")

और, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की पुस्तकों में जो इस तरह के अनेक शब्द भरे पड़े हैं, आप उन्हें भी, बड़ी कृपा करके, कुलवा डालिए। उनकी अकेली "नाटक" नामक पुस्तक के दो चार उदाहरण सुनिए—

(१) आशा है कि सज्जन गण * * * * मेरा श्रम सफल करैंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) वामहस्त जो कार्य्य करै वह भी निज कृतही है। उपक्रम।

(३) * * * सूत्रधार * * * कैसे * * * राजप्रासाद दिलवा सकैगा। पृष्ठ १५

(४) सहृदयही इसका अनुभव करैंगे। पृष्ठ २७

हमारे समालोचक जी को "अनस्थिरता" शब्द हिन्दी में भी रखना मंज़ूर नहीं। क्यों? उसमें एक "ता" जो है! "पन" की नादिरशाही में "ता" का क्या काम? अच्छी बात है, आप और आपके सगे सहकारी सहोदर उसे ग़लत समझे रहें। हमने इसमें और इसके पहले लेख में "अनस्थिर" शब्द भी लिखा है। उसे आप हिन्दी के कोश में रहने दीजिए। इसी को हम ग़नीमत समझेंगे। आपकी इतनी उदारता से "अनस्थिरता" का भी कहीं न कहीं ठिकाना लगही जायगा; क्योंकि अभी तक हिन्दी-साहित्य के संसार में सब लोगों ने "नेकनीयती" का ऐनक अपनी आँखों पर नहीं लगाया। इच्छा तो हमारी यह थी कि जिस "ता" से आप को इतनी नफ़रत है उसे हम "अनहित", "अनमिल" "अनरस" आदि शब्दों में भी लगा दें। पर "ता" का बहुत अधिक ख़र्च हम नहीं करना चाहते। यदि "ता" का ख़ज़ाना यहीं ख़ाली हो जायगा तो गुप्त विद्वान् अपने अत्यन्त शुद्ध हिन्दी-शब्द "निरधनता" के लिए "ता" कहां पावेंगे और अपने नाम में "त" को जगह "ता" बिठा कर "गुप्त" का "गुप्ता" कैसे बनावेंगे? नायिका का नाम "गुप्ता" सुना गया था; पर अब "गुप्ता" नायक भी पैदा हो गये! "गुप्ता" शब्द संस्कृत, हिन्दी उर्दू, आदि सब भाषाओं के व्याकरण से सही है, पर "अनस्थिरता" नहीं। क्यों? ज़ुबां-दानों का हुक्म! और हुक्म भी कैसा? "स्थिर" में "अन" लग जाय; पर "स्थिरता" में न लगने पावे! ये महात्मा संस्कृत के सैकड़ों शब्द, तोड़ मरोड़ कर, हिन्दी बना देंगे; "निर्धनता" को "निरधनता" कर देंगे; "चञ्चलता", "सुन्दरता", "सुकुमारता" आदि के आगे ख़ुशी से एक "ई" बढ़ा देंगे; पर हमारे समालोचक "अनस्थिर" के आगे "ता" न होने देंगे। "नेकनीयती"! जो प्रत्यय जहां लग सकता है वहीं लगाया जाता है पर आप इसके ख़िलाफ़ जान पड़ते हैं। आपकी दलील यह है कि गुण-वाचक शब्द "अनस्थिर" में अगर भाववाचक प्रत्यय "ता" लगे तो उस सर्वथा भिन्न "अनहोनी" ऐसे शब्दों में क्यों लगे? लगे तो सब कहीं, न लगे तो कहीं नहीं। हम कहते हैं अगर "चञ्चलता" में "ई" लगे तत्समानलिङ्गधारी गिनती, विनती और आप "नेकनीयती" और "साफ़दिली" में क्यों न लगे इसी व्याकरणज्ञान के बूते "अनस्थिरता" व्युत्पत्ति हमसे पूछी जा रही है! "स्थिर" संस्कृत, "होनी" शब्द प्राकृत; पर "ता" में लग जाय!

एक बात को सुनकर हमारी तबीयत ख़ुश हुई। यह ख़ुशख़बरी हमारे सम्मानास्पद समालोचक साहब का अपनी "बड़ी नेकनीयती" और "साफ़दिली" विषयक, इज़हार है। इसके फ़रमाने की ज़रूरत ही क्या थी? "रा चे बयाँ"? "नेकनीयती" तो आपके एक लफ़्ज़ से टपक रही है। और "साफ़दिली" उसके जाज्वल्यमान प्रमाण आपके प्रयुक्त उत्प्रेक्षा रूपक आदि अलङ्कार और लच्छेदार लतीफ़े हैं। आराम की केठरी के भीतर अपनी आ को छिपा रखनेवाला आपका गुप्त नाम ही आ "बड़ी नेकनीयती" और "साफ़दिली" की उ मान पताका है। क्योंकि नेकनीयती के सब छिप कर ही किये जाते हैं। आपकी "बड़ी नीयती" नई नहीं, ६ वर्ष की पुरानी है। उसका वेग बढ़ जाता है तब वह, समय पर, कभी लेख, कभी नोट, कभी तसवीर के रूप में बाहर निकलकर आईने के समान साफ़ दिल को हलका कर दिया करती आत्माराम "का जो कुछ सरोकार है द्विवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लेख से है उनके शरीर से या उनके कामों से कुछ नहीं है"। ज़रा नहीं! कहता कौन है कि कुछ सरोकार है? हमारा देहातीपन, हमारा संस्कृत-श्लोकों का लासानी उच्चारण, हमारा बहुत तरह की बातों का फाँक जाना, हमारा संस्कृत का अद्वितीय ज्ञान—न हमारे शरीर से कुछ सरोकार रखता है, न हमारे कामों से! सरोकार शायद रखता है आपके शरीर से। वह शरीर ही ऐसा है। जिसका सरोकार दुनिया में किसीसे न हो उसका आपके शरीर से हो। "भाषा और व्याकरण" पर लिखे गये लेख की समालोचना करते समय हमारे इन गुणों का स्मरण कराये बिना आपकी समालोचना ही किसीको समझ में न आती। इसीसे हमारे लेख से उनका सम्बन्ध आपको जोड़ना पड़ा। यही सब बातें तो "बड़ी नेकनीयती" और "साफ़दिली" का प्रमाण हैं। एक बच्चा भी क़बूल कर लेगा कि हिन्दी में एक अच्छे व्याकरण की ज़रूरत है। भाषा की अनस्थिरता दिखला कर इसी बात को हमने अपने लेख में दृढ़ किया। पर हमारे साफ़ दिल समालोचक ने हमारे उस प्रधान उद्देश्य पर ख़ाक डालकर एक विकट वितण्डावाद खड़ा कर दिया और आज ढाई महीने से प्रलापों का तार बाँध कर हमारे लेख का एक एक लफ़्ज़ ग़लत साबित करने का चेष्टा कर डाली। इसी का तो नाम "बड़ी नेकनीयती" है। आपने यह न देखा कि यदि सचमुचही हमारा लेख व्याकरण की ग़लतियों से भरा हुआ है तो एक अच्छे व्याकरण की और भी अधिक ज़रूरत है। पर आप देखें (बाबू हरिश्चन्द्र की आज्ञा से) या देखें (ज़ुबाँदानों की आज्ञा से) कैसे? आप की आखों पर "बड़ी नेकनीयती" का परदा जो पड़ा हुआ है!

हमारे लिए दूसरी ख़ुशख़बरी जासूस-सम्पादक श्रीमान् बाबू गोपालराम (गहमर) का "व्याकरण-विचार" है। आपने भी हमारे नेकनीयत समालोचक का साथ दिया है। देना ही चाहिए। कारण ही ऐसा है। अभी तक हम आपको हिन्दी और बँगला का विद्वान्, अनेक पुस्तकों का अनुवादक और अनेक सामयिक पत्र और पत्रिकाओं का सम्पादक ही जानते थे; पर अब मालूम हुआ कि आप पुराने लेखकों के बहुत बड़े भक्त, उनके लेखों के बहुत बड़े मर्म्मज्ञ, और हिन्दी तथा संस्कृत के बहुत बड़े वैयाकरण भी हैं। आपसे हमारा परिचय भी है और आपका हम में थोड़ा सा "पूज्य" भाव भी। इसीसे आपके इन गुणों की ख़बर सुनकर हमें परमानन्द हुआ। मातृभाषे! धन्यासि। ईदृशं विद्वद्रत्नं संस्कृत-प्राकृत-शब्द-समास-तद्धित-पारावार-पारगामिनं प्राप्य कृतार्थतां याहि।

जापान के स्कूलों में जीवन-चरित-शिक्षा।

जापान के स्कूलों में जो किताबें जारी होती हैं उनमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध जापानियों के सचित्र जीवन चरित रहते हैं। उन को पढ़ा कर चरित-नायकों के उदाहरणों के द्वारा लड़कों को यह सिखलाया जाता है कि "अच्छा जापानी" होने के लिए कौन कौन से गुण दरकार होते हैं। अच्छे जापानी के कुछ लक्षण सुनिए—अच्छा, या आदर्श, जापानी वह है जो अपने माता पिता, भाई, बहन और कुटुम्बियों से सम्बन्ध रखने वाले सब कर्तव्यों का मन लगाकर पालन करता है; जो कभी इस बात को नहीं भूलता कि अपने पूर्वजों को भक्तिपूर्ण दृष्टि से देखना उसका धर्म्म है; जो, मालिक होकर, अपने आश्रितों पर कृपा रखता है; जो, आश्रित होकर, अपने मालिक का हित-चिन्तन करता है। आदर्श जापानी अपने ऊपर किये गये एहसान को कभी नहीं भूलता; जो कुछ वह करता है सचाई के साथ करता है; जिस बात का वह वादा करता है उसे पूरा करता है; दूसरों के साथ वह हमेशा उदारता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहार करता है। दया और दाक्षिण्य को अच्छा जापानी कभी नहीं भूलता; जो बात सच है उसका वह जी जान से पक्ष लेता है; जो दीन दुखिया हैं उनको वह दया-दृष्टि से देखता है; सामाजिक नियमों की वह सब से अधिक इज़्ज़त करता है; समाज की अधिकाधिक उन्नति के लिये वह हमेशा यत्नशील रहता है; विदेशियों के साथ भी वह कभी बुरा बर्ताव नहीं करता। आदर्श जापानी अपनी शारीरिक शक्ति को हमेशा बढ़ाता रहता है; लाभदायक विद्या और कला-कौशल का ज्ञान प्राप्त करने में हमेशा तत्पर रहता है; शौर्य्य, सहनशीलता, आत्मनिग्रह, मिताचार, और विनीत-भाव की वह हमेशा वृद्धि करता रहता है। उसे हमेशा इस बात का ध्यान रहता है कि काम काज में, व्यापार में, प्रतियोगिता, अर्थात् दूसरों के साथ चढ़ा-ऊपरी, करने में, रुपया कमाने में, और दूसरों के दिल में अपना विश्वास जमाने में उसे किस तरह का व्यवहार करना चाहिए। वह अच्छे काम करने को आदत डालता है; वह नेको करना सीखता है; विद्या पढ़कर उससे व्यावहारिक लाभ उठाने का वह अभ्यास करता है; और आत्मोन्नति करने की वह नई नई तजवीज़ें सोचता रहता है। आदर्श जापानी अपने देश का हृदय से आदर करता है और राजभक्ति तथा स्वदेशप्रीति की वृद्धि करके अच्छे नागरिक होने के फ़र्ज़ को अदा करता है। अच्छा जापानी इसी तरह के व्यवहार से अपनी और अपने कुटुम्ब की उन्नति करता है, और अपने देशवालों ही के लिए नहीं, किन्तु सारे संसार के फ़ायदे के लिए, जो कुछ वह कर सकता है, हमेशा करने के लिए तैयार रहता है।

सदाचार और सुनीति की शिक्षा में जापानी हिन्दुओं से कम नहीं।

पुस्तक-परीक्षा।

सुमतिमनरञ्जननाटक। कानपुर के प्रसिद्ध कवि परलोकवासी ललिताप्रसाद त्रिवेदी का बनाया। दाम १५ आने। ब्राह्मण प्रेस, कानपुर, से प्रकाशित। इसके कर्ता सत्कवि थे। उनकी कविता बहुत अच्छी होती थी। इस नाटक में उनके कविता का मधुरत्व कहीं कहीं पर, खूब पीने को मिलता है। इसमें रा चन्द्र के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा है। धनु यज्ञ वाला प्रसङ्ग बहुत अच्छा है। जगह जगह तुलसीदास की, और कहीं कहीं पर, केशवदास भी, समयानुकूल कविता को कवि ने वैसाही दिया है। नाटक बहुत लम्बा है। सब मिला दस अङ्क है। आलङ्कारिकों ने संस्कृत में नाटक जो लक्षण लिखे हैं उनके अनुसार चलने की ललि जी ने विशेष परवा नहीं की। उन्होंने इस पु का जो नाम रक्खा है वह भी कान को खटक है। ललित की कविता का एक उदाहरण—

धरा धसकाय कहौ मेरु को हलाय देउँ
सब नृप मंडल दलौं जो बलधाम है।
ललित बराबरी को कौन अवनीप मेरी
रहत उमाह रणही में चहुंयाम है॥
जेती कला धनुष प्रवीन सब अस्त्र शस्त्र
जानो विधि नीकी बुधिबल सब ठाम है
नाम है सकल जग जानै धाम धाम ही पै
धनुष चढ़ायबो तो रामही को काम है॥

अलबेला रागिया। "जौनपुर निवासी गो लाल खत्री द्वारा रचित और प्रकाशित"। रस के भारतजीवन प्रेस में मुद्रित। दाम ६ इसके टाइटिल पेज पर लिखा है—यह उप बहुतही हास्ययुक्त है यदि इसे पढ़कर आपन तो दाम वापस कर दिया जायगा"। इस प्र के विश्वास पर हमने इस अलबेली पुस्तक को शुरू किया तो भूमिका के नीचे हमें यह हुआ मिला—"मातृभाषा के सच्चे प्रेमियों सेवक गोपाललाल"। इसके आगे, पहलेही च्छेद में, व्यभिचार की एक लीला देख प हमने समझा शायद आगे अच्छी बातें हों, इ पढ़ना जारी रक्खा। पर तीसरे परिच्छेद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वैसीही लीला नज़र आई। इसलिए हमने और आगे पढ़ने की ज़रूरत नहीं समझी। मातृभाषा के सच्चे प्रेमी बाज़ आये ऐसे सेवकों से। पूरी पुस्तक पढ़ने से शायद कुछ शिक्षा मिले।

❋

मतलबसंग्रह। यह पुस्तक हिन्दी, उर्दू, अँगरेजी, बँगला, गुजराती और मराठी में है। इसे रामप्रेस, कलकत्ते, के मालिक श्रीयुक्त रामलाल नेमाणी ने प्रकाशित किया है। वही इसे दो रुपये में बेचते हैं। इससे पूर्वोक्त भाषाओं के सीखने में बड़ी मदद मिल सकती है। इस में नित्यकर्म्म, शिक्षा, व्याकरण, कोश, गणित आदि के सिवा और भी बहुत सी बातें हैं। बातें सब काम की हैं। विशेष करके व्यापारियों का इससे बहुत काम निकल सकता है। क्योंकि इसमें रेल, तार, डाक के क़ायदे हैं; हुण्डी, पेठ, परपेठ, चेक इत्यादि लिखने के क़ायदे हैं; बंबई, मदरास और कलकत्ते में घोड़े गाड़ियों के किराये का निर्ख़ है; और मोती चउका, जिनसों की तौल और ब्याज आदि का हिसाब है।

❋

श्रीयुगलविनय। "श्रीमद्युगलस्वरूपानुरक्त परमभक्त गोंडा निवासी पण्डित युगलानन्दशरण विरचित"। बालचन्द्र प्रेस, जयपुर, से प्रकाशित। मूल्य ४ आने। इसमें पद हैं। कुछ पद साधारण हैं; कुछ रामायण-सम्बन्धी हैं; कुछ श्यामायण (!) सम्बन्धी। बालचन्द्र प्रेस से इस पुस्तक के विषय में एक कार्ड हमारे पास आया है। उसमें लिखा है—"देखा जावै तो वास्तव में यह पुस्तक सकल साधारण के लिये आनन्द प्रद है विशेषतः श्री कृष्ण राम भक्तों के लिये अलभ्य लाभ है इसमें भक्तिरूप सिन्धु के बढ़ानेवाली अपूर्व कविता रस भरी ग्रन्थकर्ता ने की है इसका आनन्द व भगवत्प्रेम का प्रवाह पढ़तेही बहने लगता है"।

❋

उपाकर्म्मपद्धतिः। कविरत्न पण्डित श्री शिवदत्त शर्म्मा द्वारा सङ्कलित। पुस्तक संस्कृत में है। इस में यजुर्वेदियों के उपाकर्म्म की बातें हैं। कविरत्न जी की कविता बहुत अच्छी होती है। आप अच्छे पण्डित मालूम होते हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह पुस्तक अच्छी होगी। पर इसकी ठीक समालोचना वही कर सकेगा जो इसके विषय को अच्छी तरह जानता होगा।

❋

इतिहासमाला। जुलाई, १९०५ से इतिहास नाम की एक मासिक पुस्तक बनारस से निकलने लगी है। नवम्बर, १९०५, से अब यह इतिहासमाला भी वहीं से निकल आई। छोटे सांचे के २४ पृष्ठों की यह एक मासिक पुस्तक है। बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त इसके एडिटर हैं। १।) इस की सालाना क़ीमत है। वर्नियर के सफ़रनामे का अनुवाद इसमें छपना शुरू हुआ है। इतनी छोटी मासिक पुस्तक इतिहास प्रकाशन का कहां तक काम कर सकेगी इस बात का विचार इसके लेखक और प्रकाशक ने करही लिया होगा। वर्नियर ही की किताब के लिए बहुत समय दरकार है। हां यदि मूल का मतलब थोड़ेही में दे दिया जाय तो बातही और है।

❋

धर्म्मपाल नाटक। बाबू गङ्गाराम अग्रवाल, बी० ए०, एल० एल० बी०, अजमेर, कृत। दाम ५ आने। इस में वैश्यजाति की वर्तमान दशा का चित्र उतारने की चेष्टा की गई है। पुस्तक मारवारी भाषा में है। भरतिया जी के "कनक सुन्दर" को देख कर बाबू गङ्गाराम ने भी मारवारीही भाषा लिखना पसन्द किया है। ख़ैर, मारवारी किसी तरह पढ़ें तो सही। नाटककार इसमें कविता लिखने के झमेले में न पड़ते तो अच्छा होता। इसके और दोषों का ज़िकर हम नहीं करते; पर इसमें जो पद्य हैं वे कविता के नाम की विडम्बना मात्र हैं। तथापि, यदि मारवारी इसे पढ़कर अपनी सामाजिक बुराइयों को छोड़ दें तो इसमें सब गुणही गुण समझने चाहिएं।

❋

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालिका-प्रबोधिनी। चुनार-निवासी-बाबू-राजाराम-कृत। मूल्य डेढ़ आना। इसमें लड़कियों के पढ़ने लायक़ ९ पाठ हैं। लड़की शब्द के सम्बोधन का बहु-वचन रूप, इसमें "लड़कियें" लिखा गया है।

❋

रिपोर्ट। फीरोज़पुर-आर्य्यसमाज के यतीम ख़ाने (अनाथालय) की यह रिपोर्ट है। रिपोर्ट १९०४ की है। १९०४ में कोई ढाई सौ के क़रीब अनाथ इस अनाथालय में थे। अनाथों में लड़के भी हैं लड़कियां भी। लड़कियों में से ९ की शादी १९०४ में कर दी गई। २५ अनाथ भगे; ५ छोड़ दिये गये; २५ मर गये। अनाथों को पढ़ाने और दस्तकारी सिखलाने का यहां अच्छा प्रबन्ध है। अनाथालय के लिए एक नई इमारत भी बन रही है। उसमें कोई ६०० अनाथों के लिए जगह है। इस अनाथालय ने बहुत से अनाथों को पतित होने से बचाया है। रिपोर्ट के साथ छपी हुई सरटीफिकटों से मालूम होता है कि अनाथालय का प्रबन्ध अच्छा है।

❋

भारतेन्दु। हिन्दी की मासिक-पुस्तक है। बनारस में उत्पन्न और अगस्त १९०५ से प्रचलित। दाम एक रुपया साल। इसका तीसरा अङ्क हमारे पास समालोचना के लिए आया है। उसमें छोटे साँचे के १६ पृष्ठ हैं। इतने के लिए ५ आदमियों की एक "सम्पादक समिती" है। समालोच्य अङ्क में इतने लेख हैं—१ सम्पादकीय टिप्पणियां २ शिक्षा ३ समय ४ अहमदनगर ५ भारतवर्ष के कारीगर ६ तिरोमण। 'तिरोमण' शब्द टेलिफोन (Telephone) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस पुस्तक में अच्छे लेखों के निकलने के चिन्ह देख पड़ते हैं।

❋

विज्ञानमूलक धर्म्म। मासिक पुस्तक है। आक्टोबर १९०५ से, लाहौर से, निकलने लगी है। पुस्तक का नाम संस्कृत में है पर भाषा इसकी अँगरेज़ी है। सब लेख अँगरेज़ीही में है। मूल्य डेढ़ रुपया साल कानपुर ज़िले के एक अग्निहोत्री जी महाराज रुड़की के यंजिनियरी कालेज में पढ़ कर आ पहले कई वर्ष तक वारिकमास्टरी की। फिर देव गुरु भगवान" की पदवी ग्रहण कर, घर सैकड़ों कोस दूर लाहौर में, आपने एक समाज" क़ायम किया और वहां "देव-धर्म्म" आविष्कार करके उसकी शिक्षा आरम्भ की "विज्ञान-मूलक धर्म्म" इसी "देव धर्म्म" रूपान्तर जान पड़ता है। इसी वैज्ञानिक धर्म प्रचार के लिए यह मासिक पुस्तक अँगरेज़ी निकाली गई है। इसके सम्पादक श्रीयुक्त नारायण अग्निहोत्री हैं। आप शायद भगवान गुरु के ही वंशज हैं। सरस्वती में वर्तमानस सम्बन्धी धार्म्मिक बातों की चर्चा नहीं की जा इससे इस विषय में हम और कुछ नहीं लिख सक

मनोरञ्जक श्लोक।

मनः कुत्रोद्योगः सपदि वद मे गम्यपदवीं
नरं वा नार्यं वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम्।
यतस्ते क्लीबत्वं सकृदपि गतो हास्यपदवीं,
जनस्तोमे मागास्त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम्।

अपने चञ्चल मन के सम्बोधनार्थ किसी ज्ञानी की उक्ति—रे मन! तू कहां जाने के प्रयत्नशील हो रहा है? वह स्थान मुझे बत तू क्या किसी पुरुष के पास जाना चाहता है स्त्री के? पर ये दोनों स्थान तेरे लिये चित हैं। क्योंकि तू नपुंसक है। यदि दोनों में से एक बार भी कहीं जायगा, तो तेरी होगी। इससे इन दोनों स्थानों को त्याग कर सजातीय जो परब्रह्म है, उसी को तू शरण वहां तेरा आदर होगा)। संस्कृत में नपुंसक लिङ्ग है और ब्रह्म भी।

सय्यद अमीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती ।

भाग ७] मार्च, १९०६ [संख्या ३

विविध विषय ।

पाठकों को सुन कर शायद आश्चर्य्य होगा कि अब रेल के स्टेशनों पर सजीव टिकिट-बाबुओं की जगह निर्जीव जड़-बाबू टिकिट बाँटने लगे हैं। विलायत में साउथ-पोर्ट नाम का एक रेलवे-स्टेशन है। वहां से "सेंट-लूक" नाम के स्टेशन को लोग बहुत जाते हैं—इतने कि टिकिट देते देते सजीव टिकिट-बाबुओं (या साहबों) का नाकों दम हो जाता था। इस लिए अब वहां टिकिट-घर की खिड़की के पास एक कल रक्खी गई है। इस जड़ और जीवहीन कल में "सेंटलूक" का महसूल डालते जाइए और धड़ाधड़ टिकिट लेते जाइए। यह कल दिन-रात टिकिट बाँट सकती है और खाने के बदले ज़रा सा तेल पी कर ही सन्तोष करती है।

***

जनवरी की "सरस्वती" में कानपुर के "ज़माना" के "अकबर-नम्बर" पर हमारे नोट को पढ़कर हमारे एक मित्र लिखते हैं—"ज़माने में फ़ैज़ी के बयान में जो यह लिखा है कि 'मलिकुश्शोरा कालिदास का ड्रामा नलदमन फ़ैज़ी के सिवा कौन तर्जुमा कर सकता था', इस पर आपको नोट देना चाहिए था। महाकवि कालिदास का नलदमन नामक कोई ड्रामा ही नहीं, फिर तर्जुमा किसका किया"? नोट न देने की हम अपनी भूल स्वीकार करते हैं। परन्तु इस तरह के नोट लोग पसन्द कहां करते हैं?

***

बारन (कोटा) से श्रीयुक्त शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित लिखते हैं—"कुछ दिन हुए बंबई की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के सभ्यों के सामने मिस्टर आर० पी० करकरिआ ने एक लेख पढ़ा। उसमें उन्होंने दिखलाया कि अकबर की मृत्यु विष खाने से हुई थी। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में वह अपने उपद्रवकारी उमरावों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष की गोलियां दे देकर मारने लगा था। एक ही तरह की गोलियां उसके पास, खाने की चीज़ के बहाने, आती थीं। पर कुछ में विष रहता था, कुछ में नहीं। इस भेद को अकबर जानता था, और लोग नहीं। जिसे मारना होता था उसे वह विषवाली गोली अपने हाथ से देता था और वैसी ही निर्विष गोली वह ख़ुद उसके सामने खाता था। एक बार उसने सिन्ध में थत्ता के गवर्नर ग़ाज़ीख़ां को इसी तरकीब से मारना चाहा। पर ग़लती से गोलियां बदल गईं और विषाक्त गोली खाकर अकबर ने अपने ही हाथ से

अपनी हत्या कर ली। कई अँगरेज़ ग्रन्थकारों ने यह बात लिखी है। टाड साहब ने भी बूँदी के इतिहास में मानसिंह के सम्बन्ध में ऐसी ही घटना का उल्लेख किया है"।

* *
*

टाड साहब के राजस्थान के दो हिन्दी अनुवाद, मासिक-पुस्तक के रूप में, जनवरी १९०६ से निकलने लगे। एक बनारस के भारत-जीवन-प्रे से बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त द्वारा अनुवादित होक दूसरा खड्गविलास-प्रेस, बांकीपुर, से पं० रा ग़रीब चौबे द्वारा। टिप्पणियां दोनों में रहती उसमें टाड साहब के भ्रमों का संशोधन भी य स्थान कर दिया जाता है। बांकीपुर के अनुव की टिप्पणियां पं० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओ लिखते हैं। मुंशी देवीप्रसाद की भी लिखी टिप्पणियां इसमें छपेंगी। पहले का मूल्य २॥ दूसरे का २॥) है।

* *
*

एक में दो फल अक्सर जुड़े हुए पैदा होते हैं एक बड़े आम के साथ साथ उसीसे जुड़ा हु एक और छोटे से आम का होना कोई असाधा बात नहीं। कभी कभी मनुष्यों के भी दो बाल एक दूसरे से जुड़े हुए पैदा हो जाते हैं। थोड़े दिनों की बात है कि खीरी ज़िले के गाँव में ऐसे दो बालक पैदा हुए थे। इन दो का पेट से ऊपर का हिस्सा अलग अलग था, पेट एक ही था। यह जोड़ा कोई ३६ घंटे जी मर गया। आज, हम पाठकों को दो जुड़ी मछलियों की तसवीर दिखलाते हैं। १८५८ ई

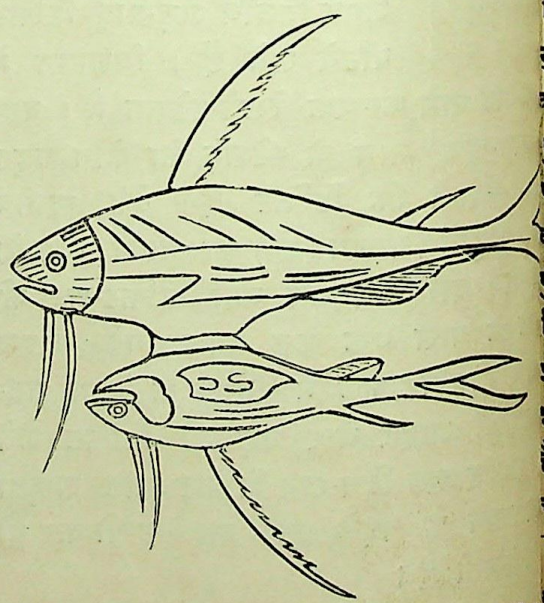

में सिल्मैन नामक एक अँगरेज़ अमेरिका देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारोलिना नामक नदी में नाव पर यात्रा कर रहा था। उसने दो मछलियां जुड़ी हुई देखीं। वे पेट के पास से जुड़ी हुई थीं। बड़े यत्न से वह उन्हें पकड़ कर अपने घर लाया। कहते हैं कि वे बहुत दिनों तक नहीं जी सकीं।*

* *
*

वेदों के विषय में पण्डित बालगङ्गाधर तिलक ने, दो वर्ष हुए, जो किताब अँगरेज़ी में लिखी है, उसका उल्लेख सरस्वती की किसी पिछली संख्या में हो चुका है। इस किताब में तिलक महाशय ने लिखा है कि वैदिक आर्य्यों के पूर्वज किसी समय उत्तरी ध्रुव के आस पास रहते थे। इस पुस्तक की सब कहीं प्रशंसा ही प्रशंसा हुई थी। पर अब इसके प्रतिकूल भी, जनवरी १९०६ के "इंडियनरिव्यू" में, एक लेख निकला है। बिलारी में वक्तृता देते समय एक बार तिलक ने अपनी पुस्तक के विषय में खुद ही कहा कि आज तक उसका किसीने खण्डन नहीं किया। इससे साबित है कि उनके सिद्धान्त निर्भ्रान्त हैं। इस बात को सुन कर आर स्वामीनाथ आइयर, बी० ए०, ने उनकी पुस्तक को खूब ध्यान से पढ़ कर उसके सम्बन्ध की और और प्रामाणिक पुस्तकों का भी अवलोकन किया। यह प्रतिकूल-मत-प्रदर्शक लेख आइयर महाशय के इसी सब अवलोकन और परिश्रम का फल है। इसमें अभी उन्होंने सिर्फ़ भूगर्भ-विद्या के आचार्य्यों के प्रमाण देकर तिलक के सिद्धान्तों का खण्डन किया है और यह दिखलाया है कि तिलक ने प्रमाण-संग्रह करने तक में बड़ी असावधानी की है। अपने अगले लेख में वे तिलक के उन वैदिक मंत्रों के अर्थों का खण्डन करेंगे जिनके आधार पर उन्होंने अपने सिद्धान्तों को पुष्ट किया है। लेख पढ़ने लायक़ है। जिन्होंने तिलक की "आर्कटिक होम इन दि वेदाज़" नाम की पुस्तक पढ़ी है उनको आइयर महाशय का लेख अवश्य पढ़ना चाहिए। इस लेख के पढ़ने से यह भी मालूम हो जायगा कि अच्छी समालोचना का ढंग कैसा होता है।

* *
*

प्रकृति भी कभी कभी अजीब खेल खेलती है। अमेरिका के वाशिंग्टन नगर में एक साहब ने एक कछुआ पाल रक्खा है। उसके दो सिर हैं।

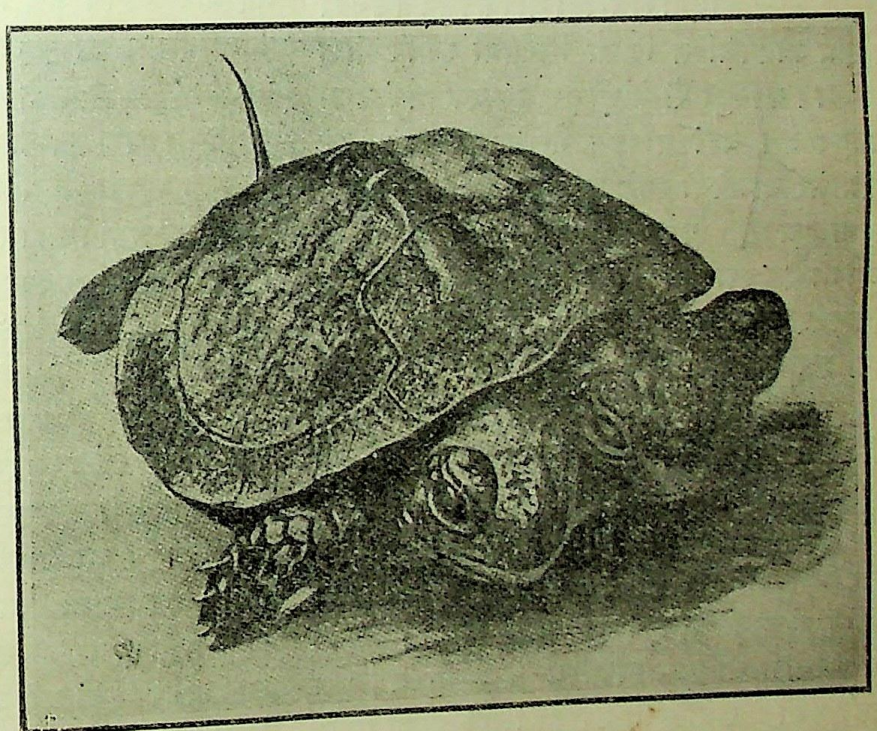

वर्जीनियां प्रान्त की एक नदी से वह लाया गया है। बाहर से देखने में उसकी बनावट में कोई ऐसी बात नहीं पाई जाती जो और कछुओं में न होती हो। उसके पेट के भीतर चाहे कुछ विशेषता हो; पर ऊपर दो सिरों के सिवा, और कोई

* यह नोट पण्डित सूर्यनारायण दीक्षित, बी० ए०, का भेजा हुआ है। स० सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषता नहीं। यह जलचर, अभी, सिर्फ़ पाँच छ महीने का है। इसकी लंबाई कोई दो इंच और चौड़ाई डेढ़ इंच है। दोनों सिर एक ही नाप के हैं; उनमें कुछ भी भिन्नता नहीं। यह कछुआ अपने दोनों मुँहों से एक साथ चारा नहीं खाता; जब एक मुँह से खाता है तब दूसरा ठहर जाता है और जब दूसरे से खाता है तब पहला।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी के मशहूर लेखक और कवि हो गये। उनके विषय में एक छोटा सा लेख सरस्वती में लिखने का हमारा बहुत दिनों से इरादा था कि इतने में उनका संक्षिप्त जीवनचरित लिखा लिखाया हमारे पास आगया। कानपुर से थोड़ी दूर पर एक गाँव मसवानपुर है। वहां पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट और लक्ष्मीधर वाजपेयी रहते हैं। यह चरित उन्हींका लिखा हुआ है। पर इसमें बहुत बातों की न्यूनाधिकता है। इस कारण इसके लेखकों को धन्यवाद देकर, इसकी सामग्री का उपयोग हम अपने तौर पर, इस लेख में, करते हैं और आवश्यकता के अनुसार, यथाज्ञान और यथामति, और और बातें भी लिखते हैं।

वंश-विवरण।

पण्डित प्रतापनारायण ने "ब्राह्मण" में अपना चरित लिखना शुरू किया था। आपने उसका नाम रक्खा था "प्रतापचरित्र"। परन्तु वह पूरा नहीं हुआ। छपा हुआ उसका सिर्फ़ पहला फ़ार्म, अलग, पुस्तकाकार, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, से हमें मिला है। उसमें प्रतापनारायण ने अपने पूर्वजों का वृत्तान्त लिखा है। उसके अनुसार आप कान्यकुब्ज-ब्राह्मणों के अन्तर्गत बैजेगाँव के मिश्र थे। आपका गोत्र कात्यायन था। इसीसे आप अपने को "महर्षि-कात्यायन-कुमार" लिखते थे। इनकी देखा देखी और भी दो एक आदमी अपने को "कात्यायन-कुमार" कहने लगे हैं। अवध एक ज़िला उनाव है। कानपुर से उनाव (शहर) पाँच छ कोस है। बैजेगाँव उसी ज़िले में है। उनाव से वह थोड़ी ही दूर है। प्रतापनारायण पिता का नाम सङ्कटाप्रसाद, पितामह का रा दयाल और प्रपितामह का सेवकनाथ था। पितामह रामदयाल मिश्र, सुनते हैं, कवि थे। उनकी लिखी हुई कविता प्रतापनारायण के देखने में नहीं आई। इनके पिता सङ्कटाप्रसाद ज्योतिषी थे। १४ वर्ष की उम्र में वे अपना ग्राम छोड़कर, जीविका के लिए, कानपुर आये। यहां, धीरे धीरे, उनकी आर्थिक दशा अच्छी गई और उन्होंने कुछ रियासत भी पैदा कर ली। कुछ दिन तक, ग़ाज़ि-उद्दीनहैदर के समय दीवान फ़तेहचन्द के यहां उन्होंने नौकरी भी प्रतापनारायण की चाची कानपुरनिवासी प्र प्रयागनारायण तिवारी के वंश की थीं। इस के कारण प्रतापनारायण के पिता को कानपु रहने में बहुत सुभीता हुआ।

लड़कपन और विद्याभ्यास।

प्रतापनारायण का जन्म आश्विन कृष्ण सं० १९१३, (१८५६ ईसवी) में हुआ था। पिता ज्योतिषी थे। इससे उन्होंने अपने पुत्र प्र नारायण को भी ज्योतिर्विद् बनाना चाहा। प्रतापनारायण को "आदिनाड़ी वरं हन्ति म च कन्यकाम्" वाले मसले पसन्द नहीं आये। लाचार होकर पिता ने उन्हें अँगरेज़ी मदरसे में जिस मदरसे में आपने अँगरेज़ी का आरम्भ उस पर आपकी बहुत दिन तक कृपा नहीं इस कारण पादरियों के मदरसे में आपने पढ़ किया। वहां उनका और "आर्मी प्रेस", (पुर) के मालिक बाबू सीताराम का साथ बाबू सीताराम से मालूम हुआ कि प्रतापना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दिल पढ़ने में न लगता था। इससे वे अपने अध्यापकों के बहुधा कोपभाजन हुआ करते थे। धीरे धीरे उन्हें पढ़ना पीड़ाजनक मालूम होने लगा और अँगरेज़ी की बहुतही थोड़ी विज्ञता प्राप्त करके आपने, १८७५ ईसवी के लगभग, स्कूल से अपना पिण्ड छुड़ाया। इसके कुछ दिनों बाद आपके पिता की मृत्यु हुई। इससे इनकी शिक्षा की इकदमही समाप्ति हो गई। स्कूल में इनकी दूसरी भाषा हिन्दी थी। पर इन्होंने उर्दू में भी अच्छा अभ्यास कर लिया था। आपने फ़ारसी और संस्कृत में भी कुछ कविता लिखी है। इससे जान पड़ता है कि इन भाषाओं में भी आपकी गति थी। बँगला भी इन्होंने सीख लिया था।

कविता-प्रेम।

जिस ज़माने में प्रतापनारायण स्कूल में थे, बाबू हरिश्चन्द्र का "कविवचनसुधा" पत्र ख़ूब उन्नत अवस्था में था। उसमें बहुत ही मनोरञ्जक गद्य-पद्य-मय लेख निकलते थे। उसे, और बाबू हरिश्चन्द्र की अन्यान्य रचनाओं को भी, पढ़कर प्रतापनारायण की प्रवृत्ति कविता की तरफ़ हुई। उस समय कानपुर में लावनीबाज़ों का बड़ा ज़ोर शोर था। बाबू सीताराम कहते हैं कि लावनी गानेवालों की कई जमातें यहां थीं। लावनी का प्रसिद्ध कवि बनारसी भी उस समय अकसर कानपुर में रहा करता था। वे लोग अकसर सर्वसाधारण में लावनी गाया करते थे। उनके दो दल इकट्ठे हो जाते थे और लावनी कहने में एक दूसरे को परास्त करने की चेष्टा करते थे। उन में से कोई कोई आदमी बहुत अच्छी लावनी कहते थे और मौके मौके पर नई लावनी बना भी लेते थे। प्रतापनारायण इन लोगों की जमातों में कभी कभी जाते थे। इसी समय कानपुर के प्रसिद्ध कवि पण्डित ललिताप्रसाद त्रिवेदी के धनुष-यज्ञ की धूम थी। आप राम-लीला—विशेष करके धनुष-यज्ञ—कराने में बड़े निपुण थे। समयानुकूल अच्छी अच्छी कविता की रचना करके और उसे लीला-गत पात्रों के मुँह से सुनाकर सुननेवालों के मन को आप मोहित कर लेते थे। प्रतापनारायण भी इस लीला में शामिल होते थे और "ललित" जी की कविता को पाठ करते थे। हरिश्चन्द्र के लेख पढ़ने, लावनीवालों की लावनी सुनने, और "ललित" जी की लीला में योग देने से, सुनते हैं, प्रतापनारायण की हृदय-भूमि में कविता का बीज अच्छी तरह अङ्कुरित हो गया। इसके बाद छन्दः-शास्त्र के नियम भी शायद उन्होंने "ललित" जी से सीखे। क्योंकि, सुनते हैं, इस विषय में वे "ललित" जी को अपना गुरु मानते थे।

ब्राह्मण।

प्रतापनारायण को हिन्दी-अख़बार पढ़ने का लड़कपन ही से शौक़ था। इसी शौक़ से धीरे धीरे उत्साहित होकर गोपीनाथ खन्ना इत्यादि की मदद से इन्होंने १५ मार्च १८८३ से "ब्राह्मण" नामक एक १२ पृष्ठ का मासिकपत्र निकालना शुरू किया। यह कोई दस वर्ष तक निकलता रहा। पर निकलने में यह बहुत अनियमित था। जन्म होने के थोड़े ही दिन बाद इसके निकलने में देरी होने लगी। इस देरी का कारण प्रायः पण्डित प्रतापनारायण की बीमारी थी। आप अकसर बीमार रहा करते थे। विशेष शिकायत आप को बवासीर की थी। १८८७ ईसवी में "ब्राह्मण" कुछ दिनों के लिए बन्द भी होगया था। इनकी मृत्यु के बाद भी "खड्गविलास प्रेस" (बांकीपुर) के मालिक, बाबू रामदीनसिंह, ने "ब्राह्मण" को कुछ समय तक जीवित रक्खा। पर वह चला नहीं; बन्द ही हो गया। प्रतापनारायण पर बाबू रामदीनसिंह की विशेष कृपा थी। उनकी बहुत सी पुस्तकों को बाबू साहब ने छाप कर प्रकाशित किया है। प्रतापनारायण ने कुछ को छोड़ कर अपनी सब पुस्तकों का अधिकार बाबू रामदीनसिंह को ही दे दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण में पण्डित प्रतापनारायण धार्म्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी तरह के लेख लिखते थे। यहां तक कि आप ख़बरें भी छापते थे। कभी कभी कानपुर की बहुत छोटी छोटी ख़बरें तक भी आप प्रकाशित कर देते थे। "ब्राह्मण" का पहला अङ्क होली के दिनों में निकला था। उसकी प्रस्तावना में प्रतापनारायण ने, उसकी पैदाइश होली की बतला कर, आगे चल कर, थोड़ी दूर पर, होली पर ही एक लेख लिखा। लेख दिल्लगी से भरा हुआ है। पर उसके बीच में जो मत-मतान्तर की बातें आ गई हैं, वे ज़बरदस्ती लाई गई मालूम होती हैं।

"ब्राह्मण" में कैसे लेख निकलते थे इसका अन्दाज़ लगाने के लिए कुछ लेखों के नाम हम नीचे देते हैं—

१। बेगार, २। होली, ३। रिश्वत, ४। देशोन्नति, ५। गुप्त ठग (दूकानदार), ६। मुच्छ, ७। कानपुर-माहात्म्य (आल्हा), ८। शोकाश्रु (हरिश्चन्द्र के मरने पर कविता), ९। विस्फोटक, १०। भारत-रोदन (कविता), ११। देशी कपड़ा, १२। प्रेम एव परो-धर्म्मः, १३। गंगाजी, १४। मानस-रहस्य, १५। बन्दरों की सभा, १६। टेढ़ जानि शङ्का सब काहू, १७। घूरे के लत्ता बिनैं, कनातन का डौल बांधैं, १८। खरी बात शहिदुल्ला कहैं, सबके जी ते उतरे रहैं, १९। जानैं न बूझैं, कठौता लैके जूझैं, २०। हाथी चले ही जाते हैं कुत्ते भोंका ही करते हैं, इत्यादि।

"ब्राह्मण" के ज़माने में हिन्दी की तरफ़ लोगों का ध्यान नया ही नया गया था। इससे मासिक पुस्तकों में जैसे लेख होने चाहिएं वैसे बहुत कम लेख "ब्राह्मण" में निकले। हमने इस पत्र के पहले तीन साल के सब अङ्क देख डाले, पर इतिहास, जीवन-चरित, विज्ञान, पुरातत्व अथवा और कोई मनोरञ्जक या लाभदायक शास्त्रीय विषय पर कोई अच्छे लेख हमें न मिले। इसमें पण्डित प्रतापनारायण का दोष कम था, समय का अधिक।

प्रतापनारायण की हिन्दी ख़ूब मुहावरेदार होती थी। वे अपने लेखों में कहावतें बहुत लिखते थे। पर शब्द-शुद्धि की तरफ़ उनका ख़याल कम था। श्लेक्ष, रिषि, रिषीश्वर, रितु, ग्रहस्त, लेखन, औगुण, मात्रभाषा आदि व्याकरण-विरुद्ध शब्द जगह जगह पर देख पड़ते हैं। सम्भव है कि शब्द सावधानी से प्रूफ़ न देखने के कारण गये हों। या हिन्दी समझ कर प्रतापनारायण ने इन्हें ऐसा ही लिखा हो। "ब्राह्मण" में कितने ही संस्कृत के वाक्य भी व्याकरण-विरुद्ध मिले। यथा—"अहं पण्डितम्"। "स्वधर्मे निधनः श्रेयः"। "का चिन्ता मरणे रणे"। "यथानामस्तथागुणः"। इनको देखकर पण्डित प्रतापनारायण की संस्कृतज्ञता के विषय में शङ्का होने लगती है। पर संस्कृत में भी उन्होंने कविता लिखी है। उनकी एक पुस्तक का नाम है "[illegible] की लहर"। उसमें एक लावनी संस्कृत में है। वह यद्यपि निर्दोष नहीं है तथापि बुरी भी नहीं है। इसी पुस्तक में पण्डित प्रतापनारायण की कुछ फ़ारसी कविता भी है। पर फ़ारसी अच्छे जाननेवाले ही उसपर अपनी राय दे सकते हैं। १५ मई १८८३ ईसवी के "ब्राह्मण" में एक लेख बेगार पर है। वह अँगरेज़ी में है। पता लगाने से मालूम हुआ कि वह मिशन स्कूल के अध्यापक बाबू नन्हेमल का लिखा हुआ है। प्रतापनारायण ने अपना उपनाम "ईश्वरावलम्बित" रक्खा था और उनके साथी मास्टर नन्हेमल का "सुखदावलम्बित" (?)। "सुखदावलम्बित" जी अभी विद्यमान हैं।

प्रतापनारायण के लेखों में मनोरञ्जकता मात्रा ख़ूब होती थी। हास्य-रस के लाने का ज़रा भी मौक़ा होता था वहां वे उसे हाथ से न जाने देते थे। कभी कभी उर्दू की तरह अनुप्रासपूर्ण बनावटी इबारत भी आप लिखते। इनकी कविता बहुत अच्छी होती थी। कभी ये "ब्राह्मण" की क़ीमत तक, दानग्राही की तरह, कविता में माँगते थे। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१)

विज्ञापन ।

चार महीने हो चुके, "ब्राह्मण" की सुधि लेव ।
गंगामाई जै करै, हमैं दक्षिणा देव ॥ १ ॥

जो बिन मांगे दीजिए, दुहुँ दिश होय अनंद ।
तुम निचिंत हो हम करैं, मांगन की सौगंद ॥ २ ॥

सदुपदेश नितही करैं,* मांगें भोजन पात्र ।
देखहु हम सम दूसरा, कहां दान कर पात्र ॥ ३ ॥

तुर्त दान जो करिय तो, होय महा कल्यान ।
बहुत बकाये लाभ क्या ? लमुझ जाव जजमान ॥ ४ ॥

रूप राज की कगर पर, जितने होयँ निशान ।
तिते वर्ष सुख सुजस जुत, जियत रहो जजमान ॥ ५ ॥

(२)

हरिगङ्गा ।

आठ मास बीते जजमान ।
अब तो करो दच्छिना दान ॥ हरिगङ्गा
आजु काल्हि जो रुपया देव ।
मानौ कोटि यज्ञ करि लेव ॥ ,,
माँगत हमका लागै लाज ।
पै रुपया बिन चलै न काज ॥ ,,
तुम अधीन बाह्मन के प्रान ।
ज्यादा कौन बकै जजमान ॥ ,,
जो कहुँ देहौ बहुत खिझाय ।
यह कौनिउँ भलमंसी आय ॥ ,,
सेवादान अकारथ (?) होय ।
हिन्दू जानत हैं सब कोय ॥ ,,
हँसी खुसी से रुपया देव ।
दूध पूत सब हमते लेव ॥ ,,
कासी पुन्नि गया मां पुन्नि ।
बाबा बैजनाथ मां पुन्नि ॥ ,,

प्रतापनारायण के कोई कोई लेख व्यंग्य से बेतरह भरे हुए होते थे। उन्होंने एक दफ़ा भड़ुए और फक्कड़ का क़िस्सा उत्तर-प्रत्युतर के रूप में लिखा था। वह साद्यन्त विकट व्यंग्यों से पूर्ण है। हँसी दिल्लगी के लेख लिख कर ग्राहकों को रिझाना इन्हें ख़ूब आता था। तिस पर भी लोग "ब्राह्मण" की क़ीमत वक्त पर न देते थे। बहुतेरे तो देते ही न थे। इससे इनको तंग होना पड़ता था और घाटा भी उठाना पड़ता था। एक बार बीमारी के बाद बाबू हरिश्चन्द्र के स्नान करने और अन्त में उनके मरने पर इन्होंने अपने पत्र में बहुत अच्छी कविता लिखी थी। अपनी कविता में इन्होंने बाबू हरिश्चन्द्र की बहुत तारीफ़ की है। एक जगह आप कहते हैं—

बनारस की ज़मीं नाज़ां है जिसकी पायबोसी पर ।
अदब से जिसके आगे चर्ख़ ने गरदन झुकाई है ॥

वही महताबे हिन्दुस्तां वही ग़ैरतदिहे नैयर ।
कि जिसने दिल से हर हिन्दू के तारीकी मिटाई है ॥

सब उसके काम ऐसे हैं कि जिनको देख हैरत से ।
हर एक आक़िल ने अपनी दाँत में उँगली दबाई है ॥

भारतजीवन, भारतेन्दु, उचितवक्ता और फ़तेहगढ़-पंच आदि पत्रों और मासिक पुस्तकों से कभी कभी आप छेड़ छाड़ भी कर बैठते थे। यदि वे आपकी बात में दंश देते थे तो आप उनको जवाब भी ख़ूब देते थे। पण्डित बदरीदीन शुक्ल अकबरपुर (कानपुर) में मदरसों के सबडेप्युटी इन्स्पेक्टर थे। उनकी तरक्की आदि के बारे में आपने, न मालूम क्यों, बार बार "ब्राह्मण" में नोट लिखे हैं। इनके "ब्राह्मण" की एक कापी कानपुर के कलेक्टर के नाम से भी जाती थी।

"हिन्दोस्थान" से सम्बन्ध ।

१८८९ ईसवी में प्रतापनारायण कालेकांकर गये और श्रीयुक्त राजा रामपालसिंह के "हिन्दोस्थान" के सम्पादन में सहायता देने के काम पर नियत हुए। परन्तु उनके स्वभाव में स्वच्छन्दता अधिक थी। इस कारण वे बहुत दिनों तक वहां

* "करैं", "हमैं"—प्रयोग याद रखिए। स० सं०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं रह सके। उन्हें वहां से वापस आना पड़ा। उसी समय हिन्दुस्तान के सच्चे शुभचिन्तक ब्राडला साहब इस देश में आये। उनके आने के उपलक्ष्य में पण्डित प्रतापनारायण ने "ब्राडला-स्वागत" नाम की एक कविता लिखी। इस कविता का लोगों ने बड़ा आदर किया। इँगलैंड तक में उसकी समालोचना हुई। इस कविता का आरम्भ इस प्रकार है—

स्वागत श्रीयुत ब्राडला, प्रेम-प्रतिष्ठा-पात्र।
पलक पाँवड़े करि रहे, तव हित देशीमात्र॥

स्वागत श्रीयुत चार्ल्स ब्राडला परम पियारे।
स्वागत स्वागत वृटिश-वंश-विधु जग उजियारे॥

कालेकाँकर में इनकी सङ्गति से एक ऐसे सज्जन ने हिन्दी सीखी जिसने ख़ुद देहाती होकर भी, और जिसकी बदौलत उसने हिन्दी सीखी उसकी जन्मभूमि देहात में थी, यह जानकर भी, देहातियोंही की सिखलाई हुई हिन्दी में देहातियों की निन्दा करके अच्छा नाम पैदा किया है।

पुस्तक-रचना।

इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं और अनुवादित कीं। जहां तक जाना गया है इनकी अनुवाद की हुई पुस्तकें ये हैं—

१ राजसिंह
२ इन्दिरा
३ राधारानी
४ युगलांगुरीय

} बङ्किम बाबू के बँगला-उपन्यास।

५ चरिताष्टक—बंगाल के ८ प्रसिद्ध पुरुषों के चरित।

६ पञ्चामृत--पाँच प्रसिद्ध देवताओं का अभिन्नत्व-निरूपण।

७ नीतिरत्नावली—बँगला की नीतिरत्नमाला का अनुवाद।

८ कथामाला—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पुस्तक का अनुवाद।

९ सङ्गीतशाकुन्तल।

१० वर्णपरिचय ३ भाग—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पुस्तक का अनुवाद।

११ सेनवंश—सेन-वंशीय राजाओं का इतिहास।

१२ सूबे बंगाल का भूगोल।

प्रतापनारायण की लिखी हुई पुस्तकें, जिनका नाम ज्ञात हुए हैं, ये हैं—

१ कलिकौतुक (रूपक)।
२ कलिप्रभाव (नाटक)।
३ हठी हमीर (नाटक)।
४ गो-सङ्कट (नाटक)।
५ जुआरी ख़ुआरी प्रहसन।
६ प्रेम-पुष्पावली।
७ मन की लहर।
८ शृङ्गार-विलास।
९ दंगल-खण्ड (आल्हा)।
१० लोकोक्ति-शतक।
११ तृप्यन्ताम्।
१२ ब्राडला-स्वागत।
१३ भारतदुर्दशा (रूपक)।
१४ शैव-सर्व्वस्व।
१५ प्रताप-संग्रह
१६ रसखान-शतक
} संग्रह।
१७ मानस-विनोद।

इनके सिवा इन्होंने वर्णमाला, शिशुविज्ञान और स्वास्थ्य-रक्षा नाम की पुस्तकें भी लिखी हैं पर हमने इन पुस्तकों को नहीं देखा; इससे हम नहीं कह सकते, ये अनुवाद-रूप हैं या इन्हें लिखी हुई हैं। शैवसर्व्वस्व में आपने शिव-लिङ्ग-स्थापना और शिवपूजन का सा किया है। "तृप्यन्ताम्" एक विनोदात्मक है; पर उपदेशपूर्ण है। उसमें देशदशा का चित्र है। लोकोक्ति-शतक भी अच्छी कवि उसमें एक एक कहावत पर एक एक पद्य है हर एक पद्य का अन्तिम चरण स्वयं कोई है। इनकी कई एक किताबें बिहार के विभाग में, बाबू रामदीनसिंहके प्रयत्न से,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई थीं। मालूम नहीं अब वे जारी हैं या नहीं। इनकी एक पुस्तक को मुरादाबाद-निवासी पण्डित बलदेवप्रसाद ने प्रकाशित किया है; पर उसका नाम, इस समय, हमें याद नहीं। प्रतापनारायण की पुस्तकों में हम उनके सङ्गीत-शाकुन्तल को सबसे अच्छा समझते हैं। अपनी अन्तिम बीमारी में उन्होंने परमेश्वर की प्रार्थना में कुछ पद्यों की रचना की थी। वे भी बहुत सरस और भक्ति-भाव-पूर्ण हैं।

रूप, रङ्ग, आत्मश्लाघा आदि।

प्रतापनारायण का रंग गोरा था। नाक बहुत बड़ी थी। शरीर दुबला था। कमर जवानी ही में झुक गई थी। आप सिर के बाल बड़े बड़े रखते थे और आगे दोनों तरफ़ काकुलें रखते थे। वे किञ्चित् विलक्षण प्रकार की चेष्टा से कमर झुकाये हुए चलते थे। कदाचित् इनका दुर्बलत्व इसका कारण था। कभी कभी मेले में देखा गया कि पर्दे से ढके हुए इक्के में बैठे स्त्रियों की तरह झांकते हुए, आप चले जा रहे हैं! हम दो दफ़े इनसे मिले। दोनों दफ़े हमने इनके लम्बी डाढ़ी देखी। इनको नास सूंघने का व्यसन था। इनकी नाक दिन भर नास फाँका करती थी। इससे इनकी डाढ़ी और मूछों के बालों पर भी थोड़ा बहुत नास छाया रहता था। शरीर इनका रोग का घर था। आप अपने रूप आदि की तारीफ़ में कहते हैं—

कौसिक-कुल-अवतंस श्री, मिश्र सङ्कटादीन।
जिन निज-बुधि-विद्या-विभव, वंश प्रशंसित कीन॥१
तासु तनय "परताप हरि," परम रसिक बुधराज।
सुघररूप, सतकवित बिन, जिहिन रुचत कछु काज॥२
प्रेम-परायन सुजन-प्रिय, सहृदय नव-रस-सिद्ध।
निजता निज-भाषा-विषय, अभिमानो परसिद्ध॥३
श्रीमुख जासु सराहना, कीन्ही श्रीहरिचन्द।
तासु कलम-करतूति लखि, लहै न को आनन्द॥४

सङ्गीत-शाकुन्तल।

नाटक की प्रस्तावना में कवि का अपने ही मुँह अपनी तारीफ़ करना अनुचित नहीं। पर, यहां, पण्डित प्रतापनारायण ने मतलब से कुछ ज़ियादह अपनी तारीफ़* कर डाली है। ऊपर के अवतरण के आगे भी आपने अपनी तारीफ़ की है और अपने को "पण्डित-वर" लिखा है। "परम रसिक," "सहृदय" और "नवरस-सिद्ध" इत्यादि विशेषण तो ठीक ही हैं। पर "सुघर-रूप" में विलक्षणता है।

आत्मश्लाघा को लोगों ने बुरा माना है। यद्यपि संस्कृत के किसी किसी कवि ने आत्मश्लाघा की है, पर कालिदास के सदृश विश्वमान्य कवि ने नम्रता ही दिखलाई है। प्रतापनारायण संस्कृत-कवि श्रीहर्ष और जगन्नाथराम के स्कूल के थे। उन्हें अपने को "प्रसिद्ध प्रतापनारायण" लिखे बिना कल ही न पड़ती थी। उनकी किताबों के ऊपर तक "प्रसिद्ध" शब्द विराजमान है। "ब्राह्मण" में कई जगह इन्होंने अपने मुँह अपनी और अपने पुस्तकों की बड़ाई की है। अपनी "प्रेमपुष्पावली" के ऊपर आपने एक लेख "ब्राह्मण" में अपनी ही क़लम से लिख कर उसकी ख़ूब तारीफ़ की है। हमारी समझ में इन बातों की ज़रूरत न थी। इनके लेख ही इनको प्रसिद्धि के लिए काफ़ी थे। ख़ुदही अपने को "प्रसिद्ध" लिखने से इनकी प्रसिद्धि शायद ही अधिक हुई हो।

आप कविता में अपना नाम प्रताप, प्रतापहरि, और कभी कभी प्रेमदास देते थे। प्रेम के आप बहुत बड़े पूजक थे। इसी से आपने अपने नामों में एक नाम प्रेमदास भी रक्खा था।

---

* पर प्रतापनारायण की आत्मश्लाघा उर्दू के प्रसिद्ध कवि इन्शा अल्ला ख़ां की आत्मश्लाघा के सामने कोई चीज़ नहीं। सैयद साहब ने एक मुशायरे में अपने एक प्रतिपक्षी के जवाब में एक ग़ज़ल कही थी। उसकी कुछ पंक्तियां यों हैं—

एक तिफ़्ल दबिस्तां है फलातूं मेरे आगे।
क्या मुंह है अरस्तू जो करे चूं मेरे आगे॥
क्या माल भला क़ैसर फ़रेदूं मेरे आगे।
काँपे है पड़ा गुम्बद गरदूं मेरे आगे॥
बोले है यही ख़ामा कि किस किस को मैं बाँधूं।
बादल से चले आते हैं मज़मूं मेरे आगे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभाव ।

प्रतापनारायण के स्वभाव में स्वच्छन्दता अधिक थी। ये हमेशा अपने ही रंग में मस्त रहते थे। किसी की परवा इनको न थी। जिन लोगों के साथ ये बैठते उठते थे, अथवा जिन से इनका मैत्रीभाव था उनके यहां कभी कभी ये दिन दिन भर पड़े रहते थे। पर कभी कभी हज़ार मिन्नत आरज़ू करने पर भी उनके यहां ये न जाते थे। ये सर्वथा मनमौजी थे। जब कभी कोई इनकी तबीयत के ख़िलाफ कुछ कह देता या कोई काम कर बैठता तब उसका ज़रा भी मुलाहज़ा न करके ये उसकी गोशमाली करने लगते थे। इनकी तबीयत में जोश था। इससे कभी कभी छोटी छोटी बातों पर भी ये बिगड़ उठते थे। स्वदेशी चीज़ों और कपड़ों पर इनका अधिक प्रेम था। सादापन इन्हें बहुत पसन्द था। ये हमेशा सादे कपड़े पहनते थे। एक दफ़ा कोट बूट पहने एक महाशय इनसे मिलने आये। उस समय ये बहुत सादी पोशाक में अपनी मित्रमण्डली के बीच बैठे थे। आगन्तुक ने कहा—"हम पण्डित प्रतापनारायण से मिलना चाहते हैं"। यह सुन कर प्रतापनारायण अपनी देहाती बोली में बोल उठे—"भाई उनसे मिलै की खातिर पन्द्रह रुपैय्या का एकु टिकट लेइ का परत है तब उइ मिलति हैं"। आपने अपने बैठने के कमरे का नाम रक्खा था "ब्राह्मण-कुटीर"। पर बैठते आप वहां बहुत कम थे। एक दिन जब हम आपसे मिलने गये आप वहीं हमको मिले। दीवार पर एक इकतारा टँगा था। हमारे साथ एक और सज्जन थे। उन्होंने उस इकतारे को उठा कर छेड़ना शुरू किया। कोई दो मिनट बाद प्रतापनारायण से न रहा गया। उन्होंने उसे उनके हाथ से छीन लिया। आपने कहा—"यहि तना नहीं बजावा जात"। यह कह कर आप खड़े हो गये और उसे बजाते हुए लावनी गाने लगे। हमारे साथी सज्जन ने पूंछा—"ब्राह्मण मरि गा कि है?" आपने कहा—"ब्राह्मण अब ना मरी; जी गा। बाबू रामदीनसिंह 'ब्राह्मण' का अमर कै दीन"। हम उनसे दो दफ़े मिले, पर हमें अफ़सोस है, एक दफ़ा भी उनसे साहि विषयक बातें अच्छी तरह न हुईं। शायद उ तबीयत उस समय किसी और तरफ़ रुजू थी।

प्रतापनारायण अबल नम्बर के काहिल उनके बैठने की जगह तक में कूड़े का ढेर ल रहता था। अख़बार, चिट्ठियां, काग़ज़, बिखरे रहते थे। उनके यहां आने जाने वाले उनके अगर उन्हें उठा कर जगह को साफ़ कर देते तो कर देते थे। ख़ुद प्रतापनारायण ने शा ही कभी उनको उठा कर यथास्थान रक्खा हो लोगों की चिट्ठियों का उत्तर तक ये बहुधा न देते थे। पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र को इन्होंने चिट्ठी लिखी थी। उसे "खड्गविलास प्रेस" छाप कर प्रकाशित किया है। उसमें, एक ज चिट्ठियों का उत्तर न देने के विषय में आप लि हैं—"को खारेन की खैंहसि मां परै"।

सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विचा

प्रतापनारायण को सामाजिक बन्धनों परवा बहुत कम थी। इस विषय में विधि-नि सम्बन्धी जो नियम प्रचलित हैं उनकी पा के वे क़ायल न थे। उनका आहार-विहार यंत्रित था। शरीर-रक्षा के नियमों का वे तरह पालन न करते थे। इसीसे उनका जवानी ही में मिट्टी हो गया था। और इ उनकी अकाल-मृत्यु भी हुई। कवि ही तो कवि स्वभाव ही से उच्छृङ्खल होते हैं।

सामाजिक बन्धनों की तरह धार्म्मिक ब के भी वे बहुत अधिक वशीभूत न थे। धा न्धता उनमें न थी। आपके सिद्धान्त थे "एव परोधर्म्मः" और "शत्रोरपि गुणा दोषा वाच्या गुरोरपि"। किसी विरोधी से उन्हें आन्तरिक घृणा न थी। वे आर्य्यस ब्रह्मसमाज, धर्म्मसमाज, सब कहीं अकसर जाते थे। शायद कुछ दिन तक किसी को पढ़ाने की नौकरी भी आपने कर ली उन्होंने एक सनातन-हिन्दू-धर्म्मावलम्बी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जन्म लिया था और ऐसे ही धर्म्मावलम्बी लोगों के साथ वे बैठते उठते भी थे। इसलिए इस धर्म्म की तरफ़ उनकी प्रवृत्ति स्वभावही से अधिक थी। यह इनके लेखों से ज़ाहिर है। अकेला इनका "शैवसर्व्वस्व" ही इस बात का पक्का सबूत है। एक दफ़ा कलकत्ते की हाईकोर्ट में किसी जज ने शालग्राम की मूर्ति मँगवाई थी। इस पर प्रतापनारायण बिगड़ उठे थे। आपने कई लेख इस बात के ख़िलाफ़ लिखे थे।

कांग्रेस को ये अच्छा समझते थे। उसके ये पक्षपाती थे। एक दफ़ा मदरास और एक दफ़ा इलाहाबाद की कांग्रेस में कानपुर से प्रतिनिधि होकर आप गये भी थे। गोरक्षा के ये बहुत बड़े हिमायती थे। अपनी कई कविताओं में इन्होंने गोरक्षा पर ज़ोर दिया है। सुनते हैं कानपुर में जो इस समय गोशाला है, उसकी स्थापना के लिए प्रयत्न करनेवालों में ये भी थे। एक दफ़ा स्वामी भास्करानन्द के साथ ये क़न्नौज गये। वहां गोरक्षा पर इन्होंने एक व्याख्यान दिया। व्याख्यान में इन्होंने एक लावनी कही। उसका आरम्भ इस प्रकार है—

बाँ बाँ करि तृण दाबि दाँत सो
दुखित-पुकारत गाई है।

इसमें करुणरस का इतना अतिरेक था कि मुसल्मानों तक पर इसका असर हुआ और एक आध क़साइयों ने गोहत्या से तोबा तक किया।

हरिश्चन्द्र पर भक्ति।

हरिश्चन्द्र पर प्रतापनारायण की अपूर्व भक्ति थी। उनका "कविवचनसुधा" पढ़ते ही पढ़ते हिन्दी पर ये अनुरागशील हुए थे। हरिश्चन्द्र की इन्होंने बहुत तारीफ़ की है। "ब्राह्मण" में कई जगह मिश्र महाराज ने हरिश्चन्द्र को ऐसे ऐसे विशेषण दिये हैं जो सिर्फ़ बहुत बड़े बड़े महात्माओं ही को दिये जाते हैं। इन्होंने उनके हाथ तक जोड़े हैं। यह बात, उस समय, किसी किसी को अच्छी नहीं लगी। इससे इन पर आक्षेप भी हुए। आक्षेपों का इन्होंने यथामति उत्तर भी दिया। हरिश्चन्द्र ने जब से प्रतापनारायण की "प्रेमपुष्पावली" की तारीफ़ की, तबसे इनका उत्साह बहुत बढ़ गया। हरिश्चन्द्र की आलोचना गोया इनके सुलेखक और सुकवि होने की एक शिलालिखित सर्टीफिकेट हो गई। उसका उल्लेख करके इन्होंने कई दफ़े अपने ही मुँह अपनी तारीफ़ की। हरिश्चन्द्र के मरने पर इन्होंने "शोकाश्रु" नामक एक विलापात्मक लम्बी कविता "ब्राह्मण" में प्रकाशित की। उसमें इन्होंने बाबू साहब के गुण गाते गाते आकाश पाताल एक कर दिया। हरिश्चन्द्र को इन्होंने "पूज्यपाद" तक कहा है; अपने कई ग्रन्थों के आदि में "हरिश्चन्द्राय नमः" लिखा है। उनके मरने पर इन्होंने "हरिश्चन्द्र सम्वत्" लिखना तक शुरू कर दिया था।

मृत्यु।

इनका शरीर क्या था रोग का चिर-वास्तव्य था। कई दफ़े ये सख़्त बीमार हुए, पर बच गये। सम्वत् १९५१ की आषाढ़-शुक्ल-चतुर्थी, रविवार, (आगस्ट १८९४) इनकी जीवन-यात्रा का अन्तिम दिन था। उसी दिन, ३८ वर्ष की उमर में, रात के दस बजे के क़रीब, इनका शरीरपात हुआ। इनके मरने पर सभी हिन्दी अख़बारों ने शोक-सूचक लेख लिखे। कवितायें भी बहुत सी प्रकाशित हुईं। इनके कोई सन्तति नहीं। इनकी विधवा अभी तक विद्यमान हैं। इनके पूर्वजों के उपार्जित दो तीन मकान कानपुर में हैं। शायद उन्हींके किराये पर इनका गुज़र होता है। मरने के पहले कुछ काल के लिए प्रतापनारायण बांकीपुर चले गये थे। बाबू रामदीनसिंह की इनपर कृपा थी। इसी लिए ये वहां गये थे। जैसा ऊपर लिखा गया है, इनकी प्रायः सभी किताबें खड्गविलास-प्रेस के मालिक ही छापते और बेचते हैं। मालूम नहीं उन्होंने पण्डित प्रतापनारायण की विधवा की कुछ मदद की या नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा, परिहासप्रीति, नाट्य-कौशल आदि।

कोई कोई कहते हैं कि प्रतापनारायण संस्कृत भी अच्छी जानते थे और फ़ारसी भी। किसी किसी के मुँह से हमने सुना है कि वे अरबी तक जानते थे। परन्तु जो लोग उनके पास हमेशा बैठते उठते थे उनका मत है कि वे अरबी नहीं जानते थे। उर्दू में तो वे बहुत अच्छी कविता करते थे। मशायरों तक में जाते थे, दीवाने-बिरहमन में उनकी उर्दू कविता संग्रहीत है। संस्कृत में भी उनके नाम से कुछ कविता छपी है और फ़ारसी में भी। पर इस बात की तहक़ीक़ात करने की हम कोई ज़रूरत नहीं देखते कि वे इन भाषाओं में कितनी गति रखते थे। कवि के लिए जिस बात की सबसे अधिक ज़रूरत होती है वह प्रतिभा है। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रतापनारायण में प्रतिभा थी; और थोड़ी नहीं, बहुत थी। विद्वत्ता होने से कविता-शक्ति में कोई विशेषता नहीं आ सकती; उलटा हानि चाहे उससे कुछ हो जाय। प्रतापनारायण की कविता में प्रतिभा का प्रमाण अनेक जगह पर मिलता है। उनकी कोई कोई उक्तियां बहुत ही अनोखी और नई हैं। उनकी कविता में विशेष करके हास्यरस का बहुतही अच्छा परिपाक होता था। वे बड़ी शीघ्रता से छन्दोरचना कर सकते थे। जैसा पहले कहा गया है, कानपुर में बहुधा लावनीबाज़ों के दो दलों में लावनीबाज़ी हुआ करती थी। कभी एक दलवाले उनको अपनी तरफ़ बिठा लेते थे और उस दल के इच्छानुसार, विरोधीदल का गाना समाप्त होते होते, वे नई लावनी तैयार कर देते थे। कभी दूसरे दलवाले भी ऐसाही करते थे। कई दफ़े उन्होंने नाटक भी खेला था। उसमें उन्होंने अपनी हास्यमयी कविता से दर्शकों को ख़ूब ही हँसाया था। फागुन में इकतारा लेकर वे उपदेशपूर्ण, पर हास्यजनक, होली, कबीर और पद आदि गाते थे। वे बहुत जल्द कविता करते थे। यथासमय कविता बनाकर लोगों को वे मोहित कर देते थे। एक दफ़ा एक साधु ने यह पद गाया—"तजहु हरि-विमुखन को संग। जिनकी संगति सदा पाय के परत भजन में भंग"। प्रतापनारायण ने पूरे पद के मतलब को बिलकुल ही उलट कर तरह गाया—"तजहु मन हरिभक्तन को संग। जिनकी संगति सदा पाय के होत रंग में भंग"। इसी तरह सारे पद के अर्थ को उन्होंने बदल दिया। ये पूरे मसख़रे थे।

यदि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र की जीवनी में यह न लिखा जाय कि वे बड़े ही दिल्लगीबाज़ थे, किसी अंश में फक्कड़ थे, तो वह जीवनी अवश्य अपूर्ण समझी जायगी। एक बार नाटक में उन्हें स्त्री का रूप लेना था। इसलिए मूछों का मुँड़ना ज़रूरी था। आप बड़े भक्ति-भाव से अपने पिता के सामने हाज़िर हुए और बोले, "यदि आज्ञा दीजिये तो इनको मुँड़वा डालूँ। इनका मुँड़ना ज़रूरी है। परन्तु मैं अनाज्ञाकारी नहीं कहाना चाहता"। पिता ने हँस कर आज्ञा दे दी।

पण्डित प्रतापनारायण नाटक खेलने के बड़े प्रेमी थे और जब जब वे नाटक खेले तब तब उनकी चातुर्य्य की प्रशंसा हुई। एक बार उन्होंने "बूढ़ी बीबी" का पार्ट लिया था। उस समय उनके मुसल्मान वेश्या के वेश में कोई अन्तर न था। दर्शकों में बैठी हुई एक प्रसिद्ध वेश्या से "बूढ़ी सलाम" कह कर उन्होंने सलाम किया तो वह सहसा बोल उठी "बेटी जीती रह"!

प्रतापनारायण जी बाज़ारों में धर्म्मशिक्षा देने वाले पादरियों से बहुत उलझा करते थे और उनको ख़ूब छकाते थे। उनकी तर्कशक्ति बहुत प्रबल थी। एक बार आप कह बैठे कि बाइबिल की प्रथमपुस्तक कोकशास्त्र है! पादरी के पूछने पर आपने इस शास्त्र के सिद्धान्तों का परिचय देते हुए बहुत से सामान्य धर्म, कर्म, उसीके अन्दर सुनाये। यह सब सुनकर पादरी साहब बहुत छके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिल्लगी और सुनिए। एक दिन पादरी साहब से और उनसे इस तरह बात चीत हुई—

पादरी—आप गाय को माता कहते हैं ?

प्रताप०—जी हां।

पादरी—तो बैल को आप चचा कहेंगे ?

प्रताप०—बेशक—रिश्ते से क्या इनकार है ?

पादरी—हमने तो एक दिन अपनी आँख से एक बैल को मैला खाते देखा था।

प्रताप०—अजी साहब, वह बैल ईसाई हो गया होगा ! हिन्दूसमाज में ऐसे भी बैल होते हैं !!!

पादरी साहब चुप हो रहे; कहते ही क्या ?

एक बार कानपुर की म्यूनीसिपालिटी में इस बात पर विचार हो रहा था कि भैरवघाट में मुर्दे बहाये जांय या नहीं। (गङ्गाजी का प्रवाह उस घाट से कानपुर की बस्ती की ओर है), तरह तरह के प्रस्ताव होते होते किसीने कहा कि जले हुए मुर्दे की पिण्डी यदि इतने इंच से अधिक न हो तो बहाया जाय। दर्शकों में प्रतापनारायण भी उपस्थित थे। आप खड़े होकर बोल उठे—"अरे दैया रे दैया ! मरेउ पर छाती नापी जाई" !

सुनते हैं ये साँस बन्द करके घंटों तक मुर्दा से पड़े रहते थे। जिस अङ्ग को चाहते थे (यथा एक कान या दोनों) उसे ये यथेच्छ हिलाते या फरकाते थे। ऐसा करने में और अङ्ग स्थिर रहते थे। इससे किसी किसी का मत है कि ये योगविद्या जानते थे। पर प्रतापनारायण के ऐसे आहार-विहार करनेवाले का योगी होना कुछ असम्भव सा जान पड़ता है।

निदान प्रतापनारायण स्वतन्त्र थे, फक्कड़ थे, हिन्दी और हिन्दुस्तान और कांग्रेस के परम भक्त थे, अच्छे कवि, लेखक और उत्साही थे। प्रारब्ध ने इनको अधिक नहीं जीने दिया, नहीं तो इनसे समाज को अनेक लाभ पहुंचने की आशा थी।

हिन्दी की हिमायत।

यह कहने की ज़रूरत नहीं कि ये हिन्दी के बहुत बड़े हिमायती थे। हिन्दी के पक्ष में इन्होंने "ब्राह्मण" में बहुत दफ़े अच्छे अच्छे लेख लिखे। एक दफ़ा "फतेहगढ़-पंच" ने इनकी हिमायत के ख़िलाफ़ कुछ लिखा और हिन्दी में दोषोद्भावना की। इस पर प्रतापनारायण जामे से बाहर हो गये। आपने "पंच" की दलीलों का बड़ी ही योग्यता से खण्डन किया। कई महीने तक यह विवाद जारी रहा और प्रतापनारायण "पंच" की बे-सिर-पैर की बातों की असारता दिखलाते रहे। हिन्दी के विषय में आपका उपदेश यह था—

चहहु जु साँचौ निज कल्यान।
तो सब मिलि भारत-सन्तान॥
जपो निरन्तर एक ज़बान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥ १॥

तबहिँ सुधरिहै जन्म-निदान।
तबहिँ भलो करिहै भगवान॥
जब रहिहै निशिदिन यह ध्यान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥ २॥

इससे इनका देशाभिमान भी सिद्ध होता है।

कविता के नमूने।

पण्डित प्रतापनारायण की कविता के कुछ नमूने देकर हम इस लेख को पूरा करना चाहते हैं—

बाडला-स्वागत।

नोन, तेल, लकड़ी, घासहु पर टिकस लगै जहँ
चना, चिरौंजी मोल मिलै जहँ दीन प्रजा कहँ
जहां कृषी, वाणिज्य, शिल्प, सेवा सब मांहीं
देशिन के हित कछू तत्व कहुँ कैसहु नाहीं॥ १

कहिय कहाँ लगि नृपति दबे हैं जहँ ऋन भारन
तहँ तिनकी धनकथा कौन जो गृही सधारन
जे अनुशासन करन हेत इत पठये जाहीं
ते बहुधा बिन काज प्रजा सों मिलत लजाहीं॥ २

लोकोक्ति-शतक।

छांड़ि नागरी सुगुण आगरी उर्दू के रँग राते
देशी वस्तु विहाय विदेशिन सो सर्वस्व ठगाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूरख हिन्दू कस न लहैं दुख जिनकर यह ढँग दीठा
"घर की खाँड़ खुरखुरी लागै चोरो का गुड़ मीठा"॥१

नहिँ सीखत सद्गुण करि नेम
निज हठ तजि न प्रचारत प्रेम
परदेशिन सेवत अनुरागे
"सब फल खाय धतूरन लागे" ॥ २

तृप्यन्ताम् ।

केहि बिधि वैदिक कर्म्म होत कब
कहा बखानत ऋक, यजु, साम।
हम सपनेहूं में नहिँ जानैं,
रहैं पेट के बने गुलाम।
तुमहिँ लजावत जगत जनम लै
दुहु लोकन में निपट निकाम
कहैं कौन मुख लाय हाय फिरि
ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम् ॥ १

* * * * * *

देख तुम्हारे फ़रज़न्दों का
तौरो-तरीक़ तुग्रामो-कलाम
ख़िदमत कैसे करूं तुम्हारी
अक़ल नहीं कुछ करती काम।
आबे गङ्ग नज़र गुज़रानूं
या कि मये-गुलगूं का जाम
मुंशी चितरगुपत साहब
तसलीम कहूं या तिरपिंताम ॥ २

इन नमूनों से प्रतापनारायण का स्वदेश और स्व-भाषा सम्बन्धी प्रेम टपका पड़ता है। स्वदेश-दशा का चित्र भी इनमें अच्छा देख पड़ता है।

फुटकर कविता।

अपने लेखों और चिट्ठियों में ये कभी कभी बैसवारे की अपनी ठेठ देहाती बोली के वाक्य लिख दिया करते थे। उनमें अपूर्व रस भरा रहता था। इस तरह की देहाती बोली में इन्होंने कुछ कविता भी की है। ऐसी कविता का एक नमूना सुनिए। एक वृद्ध आदमी अपनी दशा का वर्णन करता है—

हाय बुढ़ापा तोरे मारे
अबतो हम नकन्याय गयन
करत धरत कुछु बनतै नाहीं
कहां जान औ कैस करन।
छिन भरि चटक छिनै मां मद्धिम
जस बुझात खन होय दिया
तैसे निखवख देखि परत हैं
हमरी अक्किल के लच्छन ॥ १

अस कुछु उतरि जाति है जी ते
बाजी बेरिया बाजो बात
कैस्यो सुधिही नाहीं आवति
मूंडुइ काहे न दै मारन।
कहा चहौ कुछु निकरत कुछु है
जीभ रांड का है यहु हालु
कोऊ याकी बात न समुझै
चाहै बीसन दाँय कहन ॥ २

दाढ़ी नाक याक मां मिलि गै
बिन दाँतन मुँहुँ अस पोपलान
दढ़िही पर बहि बहि आवति है
कबौं तमाखू जो फांकन।
बार पाकि गे रीरौ झुकि गै
मूंड़ौ सासुर हालन लाग
हाथ पाँय कुछु रहे न आपनि
केहिके आगे दुखु रोवावन ॥ ३

यही लगुठिया के बूते अब
जस तस डोलित डालित है
जेहिका लै कै सब कामेन मा
सदा खखारत फिरत रहन।
जियत रहैं महराज सदा जो
हम ऐस्यन का पालति हैं
नाहीं तो अब को धौं पूंछै
केहि के कौने काम के हन ४॥

इस कविता में बुढ़ापे का बहुतही अच्छा है। कविता ख़ूब सरस है। पर हमें डर है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो इस बोली को अच्छी तरह नहीं जानते वे इसका पूरा मज़ा न पावेंगे। जिन लोगों का यह ख़याल है कि किसी विशेष प्रकार की भाषा या बोली में ही अच्छी और सरस कविता हो सकती है, वे देखें कि महा गँवारी बोली में भी रसवती कविता हो सकती है। पर, हां, कवि प्रतिभावान् होना चाहिए। प्रतापनारायण ने आल्हा तक में कविता की है और वह भी सरस और हृदयहारिणी है। कानपुर के दंगल पर उन्होंने एक पुस्तक ही लिख डाली है। उस पुस्तक में आदि से अन्त तक आल्हा ही है। उसके सिवा, कानपुर पर भी, आल्हा-छन्द में, आपने कविता की है। इस पिछली कविता का गोरक्षाविषयक एक नमूना देखिए—

गैया माता तुमका सुमिरों
कीरति सबते बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना तुम लरिकन कै
पुरिखन बैतरनी देउ तारि॥
तुम्हरे दूध दही की महिमा
जानैं देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका
गोबर लगे पवित्तर होय॥ १

जिनके लरिका खेती करिकै
पालैं मनइन के परिवार।
ऐसी गाइन की रछ्या मां
जो कुछु जतन करौ सो थ्वार॥
घास के बदले दूध पियावैं
मरि कै देंय हाड़ औ चाम।
धनि वह तन मन धन जो आवै
ऐसी जगदम्मा के काम॥ २

आल्हखण्ड की पोथी लै कै
द्याखौ तनुक लिखा कस आय।
"जहां रोसैंयां है ऊदन कै
भुरवा मुगुल पछारै गाय"॥
को अस हिन्दू ते पैदा है
जो अस हालु देखि एक साथ।
रकत के आँसन रोय न उठिहै
माथे पटकि दुहत्था हाथ॥ ३

सब दुख सुख तो जैसे तैसे
गाइन की नहिं सुनै गुहार।
जब सुधि आवै मोहिं गैयन की
नैनन बहै रकत की धार॥
हियां की बातैं तौ हियनैं रहिँ
अब कम्पू के सुनौ हवाल।
जहां के हिन्दू तन मन धन ते
निसदिन करैं धरम प्रतिपाल॥ ४

प्रतापनारायण के आल्हा का नमूना आप देख चुके। अब उनकी भक्ति-रस में सराबोर कविता का एक उदाहरण लीजिए—

आगे रहे गनिका गज गीध
सुतौ अब कोऊ दिखात नहीं हैं।
पापपरायन ताप-भरे
परताप समान न आन कहीं हैं॥
हे सुखदायक प्रेमनिधे
जग यों तो भले औ बुरे सबही हैं।
दीनदयाल औ दीन प्रभो
तुमसे तुमहीं हमसे हमहीं हैं॥ १

इस पद्य की हम तारीफ़ नहीं कर सकते। सरस कविता का यह बहुत ही अच्छा नमूना है।

उर्दू कविता।

अब इनकी थोड़ी सी उर्दू कविता सुनिए। यह कविता एक तरह के समस्यासमूह की पूर्ति है। इसमें पहली पंक्ति इनकी है, दूसरी और किसी की। पर, मेल दोनों का ख़ूब मिल गया है—

ग़ज़ल।

वो बद्ख़ू राह क्या जानै वफ़ा की।
'अगर ग़फ़लत से बाज़ आया जफ़ा की'॥ १

न मारी गाय गोचारन किया बन्द।
'तलाफ़ी की जो ज़ालिम ने तो क्या की'॥ २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मियां आये हैं बेगारी पकड़ने।
'कहे देती है शोख़ी नक़्शे पा की' ॥ ३

पुलिस ने और बदकारों को शह दी।
'मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' ॥ ४

जो काफ़िर कर गया मन्दिर में बिद्अ़त।
'वो जाता है दुहाई है .खुदा की' ॥ ५

शबे क़तलागरे के हिन्दुओं पर।
'हक़ीक़त खुल गई रोज़े जज़ा की' ॥ ६

ख़बर हाकिम को दें इस फ़िक्र में हाय।
'घटा की रात और हसरत बढ़ा की' ॥ ७

कहा अब हम मरे साहब कलकूर।
'कहा मैं क्या करूं मरज़ी .खुदा की' ॥ ८

ज़मीं पर किसके हो हिन्दू रहें अब।
'ख़बर ला दे कोई तहतुस्सरा* की' ॥ ९

कोई पूंछै तो हिन्दुस्तानियों से।
'कि तुमने किस तवक़्क़ा पर वफ़ा की' ॥ १०

उसे मोमिन न समझो ऐ बरहमन।
'सताये जो कोई ख़िलक़त .खुदा की' ॥ ११

यह १५ दिसम्बर १८८३ के "ब्राह्मण" में प्रकाशित हुई थी। उस समय गोरक्षा-विषयक ख़ूब चर्चा चल रही थी। आगरे में हिन्दू-मुसल्मानों के बीच झगड़ा भी उसी दरमियान में हुआ था। बेगारी-पकड़ने के विषय में भी "ब्राह्मण" में कई लेख निकले थे। इन्हीं बातों को लक्ष्य करके "बरहमन" साहब ने यह ग़ज़ल गाई थी। उर्दू में आप अपना तख़ल्लुस "बरहमन" लिखते थे। इसी तरह की एक और कविता सुन लीजिए—

विवादी बढ़े हैं यहां कैसे कैसे।
'कलाम आते हैं दरमियां कैसे कैसे' ॥ १

जहां देखिए म्लेच्छ-सेना के हाथों।
'मिटे नामियों के निशां कैसे कैसे' ॥ २

बने पढ़ के गौरंड-भाषा द्विजाती।
'मुरीदाने पीरे-मुग़ां कैसे कैसे' ॥ ३

बसो मूर्खते देवि आर्यों के जी में।
'तुम्हारे लिए हैं मकां कैसे कैसे' ॥ ४

अनुद्योग आलस्य सन्तोष सेवा।
'हमारे भी हैं मिहरबां कैसे कैसे' ॥ ५

न आई दया · ·गो भक्षियों को।
'तड़पते रहे नीमजां कैसे कैसे' ॥ ६

विधाता ने यां मक्खियां मारने को।
'बनाये हैं .खुशरू जवां कैसे कैसे' ॥ ७

अभी देखिए क्या दशा देश की हो।
'बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे' ॥ ८

हैं निर्गन्ध इस भारती-वाटिका के।
'गुलो लाल ओ अरगवाँ कैसे कैसे' ॥ ९

हमें वह दुखद हाय भूला है जिसने।
'तवाना किये नातवां कैसे कैसे' ॥ १०

प्रताप अपनी (अब तो ?) होटल में निर्लज्ज
'मज़े लूटती है ज़बां कैसे कैसे' ॥ ११

शृङ्गार-रस-की कविता।

कानपुर के कवियों ने जो "रसिकसमा नाम का कविसमाज स्थापित किया था, प्रतापनारायण जी बड़े उत्साही मेम्बर थे। तक वह उनके सामने चला उसमें प्रायः समस्या पूर्त्ति ही का उद्योग रहा। रसिकवाटिका की पुस्तक की एक जिल्द में इस समाज के कलाप के साथ प्रतापनारायण की जो कवि छपी है, उससे हम उनके कुछ छन्द चुनकर पा को भेट करते हैं। प्रतापनारायण भी शृङ्गा के प्रेमी थे। ये उदाहरण भी उसी रस के हैं

(पपिहा जब पूंछिहै पीव कहां)

बन बैठी है मान की मूरति सी
मुख खोलति बोलै न नाहि न हां।

* तहतुस्सरा = पाताल।

* जब सन् १८६७ ई० में कानपुर में कवि की स्थापना की गई, तब स्वर्गीय प्रतापनारायण जी ने पर ध्यान रख कर ही उसका नाम "रसिकसमाज" उसकी पत्रिका का नाम "रसिकवाटिका" रक्खा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम हीं मनुहारि कै हारि परे
सखियान को कौन चलाई कहां ॥
बरखा है प्रतापजू धीर धरो
अब लों मन को समुझायो जहां ।
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू
पपिहा जब पूंछिहै पीव कहां ॥ १ ॥

(बीर बली धुरवा धमकावैं)
बूड़ि मरैं न समुद्र में हाय
ये नाहक हाथ निछोछे डुबावैं ।
का तजि लाज गराज किये
मुख कारो लिये इतही उत धावैं ॥
नारि दुखारिन पै बज मारे
वृथा बुंदियान के बान चलावैं ।
बीर हैं तौ बल बीरहि जाय कै
बीर बली धुरवा धमकावैं ॥ २ ॥

(बजनी घुँघुरू रजनी उजियारी)
आसव छाकि खुलो छतिपै
खुलि खेलति जोबन की मतवारी ।
गात ही गात अदा ही अदा
कढ़ै बात ही बात सुधा सुखकारी ॥
रंग रचै रस राग अलापि
नचै परताप गरे भुज डारी ।
ताछिन छावै अजीब मजा
बजनी घुँघुरू रजनी उजियारी ॥ ३ ॥

(देह धरे को यहै फल भाई)
नैनन में बसै सावँरो रूप
रहै मुख नाम सदा सुखदाई ।
स्यों श्रुति में ब्रज केलिकथा
परिपूरण प्रेम प्रताप बड़ाई ॥
कोऊ कछू कहै हाय कहूं कछु
पै जिय में परवाहि न लाई ।
नेह निभै नदनंदन सों नर-
देह धरे को यहै फल भाई ॥ ४ ॥

(धुरवान की धावन सावन में)
सिर चोटो गुँधावतीं फूलन सों
मेहँदी रचि हाथन पावन में ।
परताप स्यों चूनरी सूही सजी
मन मोहती हावन भावन में ॥
निस द्यौस बितावती पीतम के संग
झूलन में औ झुलावन में ।
उनहीं को सुहावन लागत है
धुरवान की धावन सावन में ॥ ५ ॥

शकुन्तला ।

पण्डित प्रतापनारायण ने शकुन्तला का जो अनुवाद हिन्दी में किया है वह अनुवाद नहीं कहा जा सकता; हां स्वतन्त्र या स्वच्छन्द अनुवाद कहा जा सकता है। मूल के भावों को इन्होंने अनुवाद में बहुत कुछ घटा बढ़ा दिया है। इस बात को इन्होंने भूमिका में स्वीकार किया है। ऐसा करने से अगर कहीं कहीं मूल का मज़ा जाता रहा है तो कहीं कहीं अधिक भी हो गया है। हम यह नहीं कह सकते कि यह अनुवाद सब कहीं अच्छा ही हुआ है; पर इसका अधिक अंश रोचक, रसवान् और मनोहर है। इस अनुवाद का एक नमूना देकर हम 'प्रेमदास' 'प्रतापहरि' से विदा होंगे—

चौथे अङ्क की बात है। कण्व प्रवास से वापस आ गये हैं। उनकी आज्ञा से उनका शिष्य यह देखने के लिए कुटी से बाहर निकला है कि कितनी रात बाक़ी है। इधर उधर देखने पर उसे मालूम हुआ कि प्रातःकाल हो गया। तब वह कहता है—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः ।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ १ ॥
अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा ।
इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥ २ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थ। जिन ओषधियों का सेवन बड़े बड़े भयङ्कर रोगों का—नहीं, मृत्यु तक का—नाश कर सकता है उन्हीं का स्वामी, चन्द्रमा, एक तरफ़, अस्त हो रहा है। दूसरी तरफ़, जिसके जंघायें (रानें) तक नहीं ऐसे अनूरु सारथी को रथ के आगे बिठला कर सूर्य्य उदित हो रहा है। इस प्रकार एक ही साथ, दो तेजस्वी पिण्डों की सम्पदा और विपदा को दिखलाकर, अपनी अपनी अवस्था-विशेष में, मनुष्यों का मानों नियमन किया जा रहा है। अर्थात् सम्पत्ति और विपत्ति के समय किसी को भी हर्ष या विषाद करना उचित नहीं ॥ १ ॥ जो कुमुदिनी अपनी प्रफुल्लित अवस्था में परम शोभामयी थी वही, चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर, मेरी आँखों को अच्छी नहीं लगती। अब उसमें उसकी पहली शोभा नहीं रही। उस शोभा का अब स्मरण-मात्र शेष है; वह दिखाई नहीं देती। सच है, अपने प्रियतम के प्रवासी होने के कारण उत्पन्न हुआ दुःख अबलाओं को अत्यन्त दुःसह होता है।

प्रतापनारायण ने इसका अनुवाद नहीं किया। सिर्फ़ इसकी छाया लेकर उन्होंने जो कविता लिखी है वह इस प्रकार है—

प्रभावती।

कैसी कमनीय है प्रभा प्रभातकाल की।
दिनकर करि इत उजास, इत लहि ससि तेज नास,
कै रहे दसाप्रकास मानो जग-जाल की।
कुमुदिनि सोभा-विहीन, विरहिनि इव दुखित दीन,
लागति नैनन मलीन, देखत दिसि ताल की।
दरभ की कुटीन त्यागि, उठहिँ मोर जागि जागि,
बेदिन ढिग लागि लागि ऐंडनि मृगमाल की।
इहि छिन सब साधु सन्त, प्रेम-पूरि ह्वै इकन्त,
सुमिरत महिमा अनन्त त्रिभुवन महिपाल की॥ १॥

दोहा।

तो हमहूं गुरु देव सों करैं निवेदन जाय।
नाथ होम बेला भई अरुन उदित दरसाय ॥ २ ॥
बदरि बिरिछ के पात पै ओस-बुंद छबि छाय।
कैसी लगति सुहावनी अरुन उदय दुति पाय ॥ ३ ॥

सवैया।

सोई निसापति जो गिरि मेरु पै
पाँव धरे बिचरै निसि मांहीं।
त्यों तम तोमहि नासत जासु
मरीचिका श्रीहरि-धाम लौं जाहीं॥
तेज गंवाय गिरै नभ ते सोउ
भोर समै दबि कै रबि पांहीं।
या जग माहिँ बड़ेहू बड़ेन की
दीसति है थिर संपति नाहीं ॥ ५ ॥

प्रतापनारायण का अनुवाद इसी तरह है। इसी से उसकी योग्यता का अन्दाज़ पा कर सकते हैं। पिछला सवैया अपूर्व है; रखने लायक़ है; शिक्षा ग्रहण करने लायक़ है

लिख चुकने पर यह लेख हमने उन सज्जनों दिखलाया जो प्रतापनारायण से अच्छी परिचित हैं, और जो उनके पास हमेशा बैठा करते थे। उनकी राय से, जहां कहीं संशोधन ज़रूरत समझी गई वहां हमने इसमें संशोधन दिया। इस पर भी यदि कोई बात भ्रम से लिख गई हो जो ठीक न हो तो पाठक क्षमा इस संशोधन-कार्य्य में हमें अपने माननीय राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, से मदद मिली है। इसलिए हम उनके कृतज्ञ हैं

बालक-बिनोद।

भगवान की बड़ाई।

जो है हमें बनानेवाला।
उसका है सब ढंग निराला ॥ १
देखो आसमान के तारे।
कितने हैं आँखों के प्यारे ॥ २
कोई नीला कोई पीला।
कोई उजला वो चमकीला ॥ ३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो सूरज को है कैसा।
चांदी का गोला है जैसा ॥ ४

कैसा प्यारा चांद बनाया।
जिसने देखा वही लुभाया ॥ ५

ठंढी ठंढी हवा बहाई।
जो पेड़ों में हो कर आई ॥ ६

यह पानी जो पीने का है।
कितना अच्छा वो मीठा है ॥ ७

कर देती है आग हमारा।
काम पका देने का सारा ॥ ८

जो यह मिट्टी है दिखलाती।
कितने कामों में है आती ॥ ९

रंग रंग के फूल खिलाये।
जिनके ऊपर भौंर लुभाये ॥ १०

बड़ा अनूठा वो मनभाया।
चिड़ियों को गाना सिखलाया ॥ ११

हरे भरे पत्ते वो डाली।
पेड़ों को दी है हरियाली ॥ १२

तुम्हें उसी ने आँखें दी हैं।
जिनपर पलकें लगी हुई हैं ॥ १३

कान दिये वो नाक बनाई।
जीभ उसी से तुमने पाई ॥ १४

हाथ पाँव वो बदन तुम्हारा।
है उसका ही रचा सँवारा ॥ १५

लड़को, तुम उसका गुन गाओ।
उसको पूजो उसे मनाओ ॥ १६

इससे होगा भला तुम्हारा।
पाओगे दुख से छुटकारा ॥ १७

कोयल।

काली काली कू कू करती।
जो है डाली डाली फिरती ॥ १

कुछ अपनी ही धुन में ऐंठी।
छिपी हरे पत्तों में बैठी ॥ २

जो है पंचम-सुर में गाती।
वह ही है कोयल कहलाती ॥ ३

जब जाड़ा कम हो जाता है।
सूरज थोड़ा गरमाता है ॥ ४

तब होता है समा निराला।
जी को बहुत लुभानेवाला ॥ ५

पेड़ हरे सब हो जाते हैं।
नये नये पत्ते पाते हैं ॥ ६

कितने ही फल वो फलियों से।
नई नई कोंपल कलियों से ॥ ७

वह कुछ ऐसे लद जाते हैं।
बहुत भले वह दिखलाते हैं ॥ ८

रंग रंग के प्यारे प्यारे।
फूल फूल जाते हैं सारे ॥ ९

बसी हवा बहने लगती है।
दिसा महँकने सब लगती है ॥ १०

तब यह होती है मतवाली।
कूक कूक कर डाली डाली ॥ ११

अजब समां दिखला देती है।
सब का मन अपना लेती है ॥ १२

लड़को, जब अपना मुँह खोलो।
तुम भी मीठी बोली बोलो ॥ १३

इससे कितने सुख पाओगे।
सब के प्यारे बन जाओगे ॥ १४

अयोध्यासिंह उपाध्याय।

गौरी।

[१]

पर्वतपति-मेना की प्यारी,
है यह शैलसुता सुकुमारी।
रूप अति रुचिर इसने पाया;
विधि ने स्वयं इसे निर्म्माया ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२]

हिमकर में जो सुन्दरता है ;
कमलों में जो कोमलता है ।
जहां जहां लावण्यलता है ;
जिसमें जितनी गुण-गुरुता है ॥

[३]

जब एकत्र उन्हें कर पाया ;
तब विधिने अभ्यास बढ़ाया ।
फिर उनसे यह रूप बनाया ;
सुन्दरता-समूह उपजाया ॥

[४]

हर को इसने बरना चाहा ;
मोहित उनको करना चाहा ।
बहु-विधि हाव-भाव कर हारी ;
विफल हुई पर इच्छा सारी ॥

[५]

शिव ने काम भस्म कर डाला ;
बहुत निराश हुई तब बाला ।
कठिन तपस्या तब विस्तारी ;
गौरी गौरी-शिखर सिधारी ॥

[६]

बरसों वहाँ बिताया इसने ;
क्लेश कठोर उठाया इसने ।
तप से गात सुखाया इसने ;
मुनियों को शरमाया इसने ॥

[७]

इसकी देख तपस्या भारी,
हुए द्रवित कैलाशविहारी ।
की तब सब इसकी मनभाई ;
कुछ दिन में यह हर-घर आई ॥

[८]

मृत्युञ्जय पति इसने पाया ;
प्रेमपाश से बद्ध बनाया ।
तनु पति का आधा अपनाया ;
अपना अति सौभाग्य बढ़ाया ॥

[९]

तब से त्रिभुवन में विख्याता
गौरी हुई जगत की माता ।
दिन दिन महिमा अधिकाती है ;
घर घर में पूजी जाती है ॥

[१०]

इसका चित्र मनोहारी है ;
कौशल उसमें अति भारी है ।
रविवर्म्मा को बलिहारी है ;
जिसकी ऐसी कृतिकारी है ॥

चन्द्रहास का अद्भुत उपाख्यान ।

कलदेश में सुधार्मिक नामक बड़ा प्रतापी राजा था। उस राज्यकाल में प्रजा बड़ी सुखी थी। उस राजा की रानी एक अति सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम चन्द्रहास रक्खा गया। अभी चन्द्रहास गोद का बच्चा ही था कि सुधार्मिक पर उसके वैरियों ने चढ़ाई की। लड़ाई में सुधार्मिक मारा गया। वैरियों की जीत हुई। पतिव्रता रानी सुधार्मिक की लाश के साथ सती हो गई। बालक बे मा बाप का रह गया। दाई उसे लेकर कुन्तलपुर नामक नगर को चली गई। वहीं बड़े स्नेह के साथ बालक चन्द्रहास का लालन पालन करती रही। जब चन्द्रहास तीन वर्ष का हुआ तब वृद्धा दाई भी परलोक चल बसी। अनाथ बालक पर नगर की अन्य स्त्रियों को दया आई। वे बारी बारी से उसका पोषण करने लगीं। कोई कपड़ा बनवा देती; कोई भोजन खिला देती। निदान यों हीं चन्द्रहास पाँच वर्ष का हुआ।

एक दिन इच्छानुसार घूमता हुआ चन्द्रहास धृष्टबुद्धि नामक, कुन्तलपुर के प्रधानामात्य के घर जा पहुँचा। वहाँ ब्राह्मणों की भीड़ लगी

* जैमिनिपुराण के आधार पर लिखित ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी। कोई बड़ा भारी ब्रह्मभोज हो रहा था। बड़े बड़े महात्मा और मुनीश्वर भोजन कर रहे थे। चन्द्रहास के अनुपम सौन्दर्य्य को देख कर मुनीश्वरों को बड़ा अचम्भा हुआ। उन्होंने धृष्टबुद्धि से पूछा कि यह भाग्यवान् बालक किसका है? अपने बड़े पद के अभिमान में भराहुआ मंत्री बोला—"मैं क्या जानूं यह बालक किसका है? ऐसे सैकड़ों अनाथ बालक कुन्तलपुर की गलियों में मारे मारे फिरा करते हैं। राजकाज से मुझे कहां फ़ुरसत कि ऐसी ऐसी बातों का मैं ख़याल करूं"। धृष्टबुद्धि की बात को सुनकर मुनीश्वरों ने कहा,—"मन्त्री जी! ऐसा मत कहिये। यह बालक बड़ा होनहार है। यह भविष्य में तुम्हारी सम्पदा का वारिस होगा"।

मुनीश्वर लोग तो यह कह कर चले गये। पर धृष्टबुद्धि को यह बात बहुत बुरी लगी। यह बे मा बाप का अनाथ बालक मेरा उत्तराधिकारी होगा! कभी नहीं। मैं मुनीश्वरों की बात को टाल दूँगा; असत्य कर दूँगा। यह विचार निर्दयी धृष्टबुद्धि ने घातकों को बुला कर आज्ञा दी कि—"इस बालक को निर्ज्जन वन में ले जाकर मार डालो। और इसका कोई अङ्ग काट कर ले आओ जिससे मुझे विश्वास हो जाय कि तुमने इसे मारा है"। धृष्टबुद्धि की आज्ञा पाकर घातक लोग चन्द्रहास को एक निर्ज्जन वन में ले गये और तलवार निकाल कर उसे मार डालने पर उद्यत हुए। पर निर्ज्जन वन के प्राकृतिक सौन्दर्य्य के सामने चन्द्रहास का दैवी सौन्दर्य्य और भी अधिक जगमगा उठा। घातकों के निर्दय चित्त में भी दया का सञ्चार हुआ। उन्होंने सोचा कि इतना छोटा बालक धृष्टबुद्धि का क्या बिगाड़ सकता है जो उसने इसके मारने की आज्ञा दी है। आओ इसे यहीं वन में छोड़ दें और स्वामी के निकट निशानी के लिए इसके किसी अङ्ग को काट कर ले चलें। चन्द्रहास के एक पैर में छ अँगुलियाँ थीं। इसी छठी अँगुली पर घातकों की निगाह गई। उसे उन्होंने काट लिया और चन्द्रहास को उस वन में रोता हुआ अकेला छोड़ वे धृष्टबुद्धि के पास लौट गये। प्रकृति को भी चन्द्रहास की दशा पर दया आई। वन की चिड़ियाँ तारस्वर से रोने लगीं। वृक्षगण वायु के सञ्चार से कराहने लगे। मृगों के यूथ चन्द्रहास के चारों ओर शान्त्वना के लिये आ इकट्ठे हुए। उल्लू का घूत्कार बन्द हुआ। कबूतर मारे रंज के पत्थर चुगने लगे।

उसी समय चन्दनावती का राजा कुलिन्दक शिकार खेलता हुआ उधर से आ निकला। रोते हुए बालक को देख कर उसे दया आई। बालक के सौन्दर्य्य पर राजा का मन मोहित हो गया। चन्द्रहास को अपने घोड़े पर बिठा कर वह अपने घर ले आया। कुलिन्दक निस्सन्तान था। चन्द्रहास को उसने अपना दत्तकपुत्र बनाया। अनाथ चन्द्रहास का चन्दनावती के राजमन्दिर में राजकुमारों की भांति लालन पालन होने लगा।

उपनयन-संस्कार के अनन्तर चन्द्रहास को वेदवेदाङ्ग की शिक्षा दी गई। अपनी तीव्र बुद्धि के कारण वह शीघ्र ही पण्डित होगया। धनुर्विद्या में भी चन्द्रहास बड़ा निपुण हो गया। सोलह वर्ष ही की अवस्था में चन्द्रहास बड़ा शूरवीर गिना जाने लगा। कुलिन्दक ने उसे अपना युवराज बनाया।

युवराज चन्द्रहास एक बड़ी भारी सेना लेकर अपने पिता के शत्रुओं को जीत लाया। बहुत सा धन धान्य उसने लूट में पाया। उसे छकड़ों में भर कर वह चन्दनावती ले आया।

चन्दनावती का राज्य कुन्तलपुर के राज्य के अधीन था। कुलिन्दक ने सोचा कि इस माल से कुछ कुन्तलपुर भेजना भी उचित है। सो उसने बहुत से छकड़े कुन्तलपुर के राजा के पास भेंट में भेज दिये। कुछ छकड़े कुन्तलपुर-राज्य के प्रधान अधिकारी धृष्टबुद्धि के पास भी उसने भेजे। अमात्य धृष्टबुद्धि धन पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। छकड़ों के साथ आये हुए सेवकों का उसने अच्छा स्वागत किया और उनसे पूछा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह धन कुलिन्दक ने कहां पाया ? उन्होंने उत्तर दिया कि युवराज चन्द्रहास शत्रुओं को जीत कर वह धन ले आये थे; उसीमें से ये छकड़े आपकी भेंट के लिए हमारे राजा ने भेजे हैं।

दूसरे दिन धृष्टबुद्धि अपने राजा की आज्ञा ले कर चन्दनावती को गया। कुलिन्दक ने आदर-पूर्वक उसका स्वागत किया। उसने चन्द्रहास सहित धृष्ट-बुद्धि की पूजा की और सम्मान के साथ उसे आसन पर बिठाया। कुशल प्रश्न के उपरान्त धृष्टबुद्धि ने पूछा, तुम्हारे यह पुत्र कब उत्पन्न हुआ? यह सोलह वर्ष का हो गया और तुमने हमें सूचना तक न दी? कुलिन्दक ने उत्तर दिया कि चन्द्रहास हमारा औरस पुत्र नहीं है। एक बार शिकार खेलते हुए हम उस वन में जा निकले जो कुन्तलपुर से कोई चार कोस पर है। वहां मैंने छठी अँगुली कटे, रोते हुए, इस बालक को देखा। मैं इसे अपने यहां ले आया और अपना पुत्र बनाया।

धृष्टबुद्धि को बड़ी चिन्ता हुई। हो न हो यह वही बालक है जिसको मैंने घातकों द्वारा मार डालने का प्रबन्ध किया था। पर छठी अँगुली दिखला कर घातकों ने मुझे धोखा दिया। अब फिर कोई ऐसी तरकीब करनी चाहिए जिसमें मुनीश्वरों की बात झूठी हो जाय और यह मेरा उत्तराधिकारी न बनने पावे। यदि कहीं इसको मेरी सम्पदा मिल गई तो मेरे दोनों पुत्र अमल और मदन क्या करेंगे। निदान यों ही सोच विचार कर कुटिल धृष्टबुद्धि ने एक युक्ति निकाली। उसने ऊपर से बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और बड़ी प्रीति से उसने कुलिन्दक से कहा—"मैं तो अभी यहां दो एक दिन और ठहरूँगा; पर कुन्तलपुर में मेरा एक बड़ा आवश्यक काम है। उस काम के लिए चन्द्रहास को भेज दो तो मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र मदन के नाम एक पत्र उसके हाथ भेजूं। उससे सब काम बन जायगा। सीधे सादे कुलिन्दक को भला क्या मालूम था कि इसमें भी कोई कुटिल चाल है। वह बड़े हर्षपूर्वक ऐसा करने को राज़ी हो गया और चन्द्रहास ने कुन्तलपुर जाने की तैयारी करदी। अपने गुरुजनों की आज्ञा से धृ बुद्धि का पत्र जेब में रख, घोड़े पर सवार हो, कुन्तलपुर की ओर रवाना होगया।

कुन्तलपुर के निकट एक अति रमणीक था। वसन्तऋतु के कारण उसकी शोभा और बढ़गई थी। इस बाग़ के पास पहुँचने पर चन्द्र को बड़ी थकावट मालूम हुई। उसने सोचा चलो यहां आराम करलें; तब कुन्तलपुर में प्र करें। यों सोच, घोड़े को एक वृक्ष की जड़ से पृथ्वी पर काठी बिछा, वह उस पर सो गया।

धृष्टबुद्धि के एक अति रूपवती विषया की कन्या थी। उस दिन वह अपनी सहेलियों साथ सैर करने को निकली थी। फिरती फि वह इसी बाग़ में पहुँची। बाग़ के बीचो बीच तालाब था। और सब लड़कियाँ तो उस ता की शोभा देखने लगीं, पर वह उनसे अलग हो में इधर उधर घूमने लगी। घूमते घूमते वह स्थान पर जा निकली जहाँ चन्द्रहास सो रहा चन्द्रहास बड़ा सुन्दर युवा था। सोते हुए में उ सुन्दरता और भी अधिक भली मालूम पड़ती विषया एक टक उसकी ओर देखती रही। देर में उसे थोड़ा साहस हुआ और आगे ब पास से वह उसको देखने लगी। प्रेम ने अपना किया। विषया ने तन मन से अपने को च के अर्पण कर दिया। चन्द्रहास का मुख ता ताकते उसकी निगाह जेब से निकल कर पड़े हुए एक लिफ़ाफ़े पर पड़ी। बिना कु विचारे उसने उसे उठा लिया। लिफ़ाफ़े पर अपने भाई का नाम देखा; अपने पिता के हा लिखावट को पहचाना। मन में वह बहुत हुई। उसने समझा, हमारे घर से इसका सम्बन्ध भी है। लिफ़ाफ़े को बड़ी सावधा उसने खोला और पत्र निकाल कर वह पढ़ने

प्यारे पुत्र,

पत्रवाहक चन्द्रहास तुम्हारे पास आता तुम इसकी सुन्दरता का ध्यान न करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किशोरावस्था पर न जाना। पत्र पाते ही तुरन्त इसे विष दे देना।

तुम्हारा स्नेहशील पिता

धृष्टबुद्धि।

पत्र पढ़कर विषया दंग रह गई। पिता को क्या हुआ है जो उसने ऐसी क्रूरता पर कमर बाँधी है। जो हो, मैं पिता के वचन को पलट दूंगी। यह सोच कर विषया ने चट विष को जगह विषया लिख दिया। आँखों के काजल ने स्याही का काम दिया। "तुरन्त इसे विष दे देना" की जगह पत्र में हो गया "तुरन्त इसे विषया दे देना"! पत्र को उसने फिर ज्यों का त्यों लिफ़ाफ़े में रख दिया और चन्द्रहास की जेब में डाल दिया। तब चुपके से खिसक कर विषया फिर अपनी सहेलियों से जा मिली और हँसती हुई अपने घर गई।

इधर चन्द्रहास की जब आँख खुली तब वह घोड़े पर चढ़ कर कुन्तलपुर की ओर रवाना हुआ। मन्त्री के मकान पर पहुँच कर उसने वह पत्र मदन को दिया। पत्र को पढ़ कर मदन बहुत प्रसन्न हुआ और झटपट मुहूर्त विचरवा कर विषया का विवाह चन्द्रहास के साथ उसने कर दिया।

इधर चन्दनावती में चन्द्रहास के चले जाने पर धृष्टबुद्धि बड़ी विद्दत मचाने लगा। प्रजा को बहुत कष्ट दे देकर बहुत सा रुपया उसने वसूल किया। बुड्ढे राजा कुलिन्दक से कुछ भी करते धरते न बन पड़ा। धृष्टबुद्धि की क्रूरता ने उससे बहुत तंग किया। धृष्टबुद्धि इस तरह बहुत सा धन इकट्ठा करके कुन्तलपुर लौट आया। मन में वह सोचता था कि चन्द्रहास कबका मर गया होगा। मुनीश्वरों का भविष्यवाद मैंने झूठा कर दिया। पर कुन्तलपुर पहुँचने पर और ही गुल खिला। उसने देखा कि जिसको मैंने मरा हुआ समझा था वह मेरा दामाद बन गया है!

अब क्या किया जाय? जो होना था वह हो गया। भावी को कौन टाल सकता है? परन्तु क्रूर धृष्टबुद्धि भला कब मानने वाला था। उसने कहा विषया विधवा हो जाय तो हो जाय; पर चन्द्रहास के जीवन का अन्त किये बिना मैं नहीं रहूंगा। ऋषियों की बात मैं सत्य नहीं होने दूँगा। उसकी बुद्धि मारी गई थी। क्रोध में अपना भला बुरा वह कुछ न सोच सकता था। ऊपर के मन से वह चन्द्रहास से बड़े प्रेम से मिला। उसे उसने गले लगाया और बड़ा हर्ष प्रकट किया। पर छिपे ही छिपे उसके मारने की दूसरी तरकीब उसने निकाली। धृष्टबुद्धि ने चन्द्रहास से कहा कि बेटा हमारे कुल में यह रीति है कि लड़की के व्याह के बाद दामाद आधी रात को अकेले नगर के बाहर चण्डीदेवी की पूजा करने जाता है। सो तू भी आज ही इस रीति को पूरा कर डाल। चन्द्रहास ने कहा, पिता जी, आपकी आज्ञा शिरो-धार्य्य है। मैं आज ही रात को पूजा कर आऊंगा। वास्तविक बात यह थी कि धृष्टबुद्धि ने नगर के बाहर चण्डीदेवी के मन्दिर में घातक लगा रक्खे थे। उनसे उसने कह दिया था कि आधी रात को जो कोई पूजा करने यहां आवे उसे बिना बिचारे मार डालना।

कुन्तलपुर का राजा वृद्ध हो गया था। जिस दिन कि चन्द्रहास को चण्डीदेवी की पूजा करने का आदेश मिला था उसी दिन कुन्तलपुराधीश ने अपना छाया-पुरुष आकाश में अङ्गहीन देखा था। इस अपशकुन का यह अर्थ है कि देखने वाला छ महीने से अधिक नहीं जीता। राजा को पूरा विश्वास हो गया कि अब मेरी मौत आगई। एक पुत्री को छोड़ कर और कोई सन्तान उसे न थी। उसे चिन्ता हुई कि अपना राज्य किसे सौंप दूं? राजा ने अपने प्रधान मंत्री के दामाद की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। उसके मन में विचार आया कि राज्य चन्द्रहास को दे दूं और आप वन में जाकर जीवन के शेष दिवस हरिभजन में व्यतीत करूं। यह विचार कर उसने मन्त्रिपुत्र मदन को बुला कर उससे इस विषय में परामर्श किया। मदन तो चन्द्रहास के गुणों पर मोहित था ही। उसने राजा के इस प्रस्ताव का बड़े जोश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ अनुमोदन किया। और राजा ने भी निश्चय कर लिया कि जो मैंने विचारा है उसे तत्काल कर डालना चाहिए। रात बहुत बीत चुकी थी। नगर के सारे लोग सो चुके थे। पर राजा ने यह समझ कर कि शुभ कर्म्म को तत्काल ही करना चाहिए, मदन को चन्द्रहास के पास भेजा, कि वह उसे तुरन्त ले आवे।

चन्द्रहास एक थाली में पूजा का सामान लिये, थाली के बीच में एक प्रज्वलित दीप रक्खे, अकेला चण्डीदेवी के मन्दिर की ओर जा रहा था। राजमन्दिर से जो रास्ता धृष्टबुद्धि के घर को गया था उसीसे होकर चण्डी-मन्दिर को जाना होता था। अपने घर जाते हुए मदन को रास्ते ही में चन्द्रहास मिल गया। "ऐं चन्द्रहास, तुम इतनी रात गये अकेले कहाँ जा रहे हो"?—"भाई मदन, तुम्हारे पिता की आज्ञानुसार चण्डी-देवी की पूजा करने जा रहा हूं"। "नहीं, इस समय तुम कहीं और न जाओ। राजा साहब ने तुम्हें अभी बुलाया है। वे बैठे हुए तुम्हारे आने का रास्ता देख रहे हैं। तुम सीधे वहीं जाओ। वहाँ जाकर जानोगे कि राजा को तुमसे क्या काम है। लाओ, तुम्हारे एवज़ मैं स्वयं चण्डीदेवी की पूजा किये आता हूं"। यह कह कर मदन ने चन्द्रहास के हाथ से थाली ले ली और चण्डीदेवी के मन्दिर की ओर वह रवाना हुआ। चन्द्रहास राजमन्दिर को चला।

चण्डीदेवी के मन्दिर को जाते हुए मदन को बहुत से अशकुन हुए। पर उनमें से किसी की भी परवा न कर मदन सीधा मन्दिर को चला गया और वहां पहुँच कर पूजा करने लगा। वह अभी अर्घ ही दे पाया था कि सिर पर मुशल और खड्ग के प्रहार होने लगे। "हाय, यह अचानक आफ़त कहां से आ गई! हो न हो चण्डी मेरी पूजा से रुष्ट हो गई है और वह मुझे मारे डालती है। इस दशा में प्राण देने के अतिरिक्त और चारा ही क्या है?" यह विचार कर हाथ जोड़ मदन चण्डी से प्रार्थना करने लगा—"हे चण्डिके, मैं अपने अपराध की क्षमा क्या मांगूं? उसके [illegible] तो मैं प्राण दे ही रहा हूं। पर हाँ इतनी प्रा[illegible] अवश्य करूंगा कि चन्द्रहास को कुशल से रक्खि[illegible] उस पर रुष्ट मत हूजिये। उसका कुछ अपराध [illegible] है। मैं ही ज़बरदस्ती उसके बदले पूजा करने [illegible] आया"। यह कहते हुए मदन ने प्राण त्याग कि[illegible]

प्रातःकाल मन्त्री धृष्टबुद्धि को ख़बर हुई [illegible] चन्द्रहास को राजा ने अपना राज्य दे दिया [illegible] राजकन्या का उसके साथ विवाह कर के वह [illegible] को चला गया। यह ख़बर सुनकर मन्त्री [illegible] चिन्तित हुआ। क्या विचारा था क्या हो गय[illegible] दौड़ा हुआ वह चण्डी के मन्दिर में गया, [illegible] देखे वहाँ क्या हालत है। वहाँ पहुँच कर [illegible] सहम गया। अपने प्यारे पुत्र मदन को [illegible] सामने मरा हुआ पड़ा पाया। धरती पर [illegible] सिर पटक दिया। कपाल फूट गया। भेजा नि[illegible] पड़ा। मन्त्री धृष्टबुद्धि का जीवन शेष हुआ।

संस्कृत के नाट्यकारों की रीति है कि [illegible] नाटकों को वे दुःखान्त बनाना दोष समझते [illegible] किसी न किसी भांति सच्ची दुःखान्त घटना को [illegible] वे सुखान्त कर डालते हैं। इसीसे हम भी इस पु[illegible] कथा के कथानक में हस्तक्षेप करना नहीं चाह[illegible]

अच्छा अब आगे की सुखान्त कथा सु[illegible] राजा चन्द्रहास को ख़बर लगी कि धृष्ट[illegible] और मदन दोनों चण्डीदेवी के मन्दिर में मरे [illegible] पड़े हैं। ख़बर पाते ही चन्द्रहास वहाँ दौ[illegible] गया। जो सुना था उसे उसने ठीक पाया। [illegible] इन दोनों की मृत्यु से बड़ा शोक हुआ। उसे [illegible] ख़बर थी कि धृष्टबुद्धि और मदन की मृत्यु धृ[illegible] बुद्धि ही के कुचक्र से हुई है। उसने समझा [illegible] मदन की जान मेरे कारण गई। अब मैं [illegible] क्या करूँगा? यह विचार कर वह सारी आवश्[illegible] सामग्री मँगा, चण्डी की मूर्त्ति के सन्मुख [illegible] बनवा, हवन करने लगा। हवन में वह [illegible] शरीर का मांस काट काट कर उसीकी आ[illegible] देने लगा। जब शरीर का सब मांस हुत हो [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और केवल हड्डियों का ढांचा रह गया, तब तलवार उठा कर चन्द्रहास चाहता ही था कि अपने शीश को काट कर वह वेदी में डाल दे और अपने जीवन का अन्त कर दे, कि मूर्ति में से चण्डी प्रकट हुई और उसका हाथ पकड़ कर बोली—"बस, चन्द्रहास, बस। मैं तुझ पर प्रसन्न हुई। तू मनमाना वर माँग ले। चन्द्रहास ने कहा—"यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो इन दोनों को फिर से जिला दीजिए। यह सुनते ही, एवमस्तु कह कर देवी अन्तर्हित हो गई। धृष्टबुद्धि और मदन जी उठे। चण्डी के प्रसाद से चन्द्रहास का शरीर फिर ज्यों का त्यों हो गया।

धृष्टबुद्धि ने "विधि की इच्छा" समझ कर अपना हठ छोड़ दिया। जैसे पुराने राजा की वह सेवा करता था वैसे ही वह नये राजा, चन्द्रहास, का मन्त्रित्व करने लगा। चन्द्रहास और मदन की प्रीति यावज्जीवन कम नहीं हुई; किन्तु प्रतिदिन अधिक होती गई। सूर्य्यनारायण दीक्षित।

आख्यायिका।

एक आदमी बड़ा कंजूस था। उसने एक एक कौड़ी जमा करके बहुत सा धन इकट्ठा किया था। उसका लड़का ऐयाश निकला। उसने पिता के धन को बरबाद करना शुरू किया। यह दशा देख बाप ने बेटे को एक कविता लिखकर दी। उसमें उसने दरिद्रता का वर्णन करके यह दिखलाया कि फ़ुज़ूल ख़र्ची से ग़रीब हो जाने पर आदमी की कैसी दुर्दशा होती है। वह कविता यह है—

जानेपिदर तु सफ़रै बेनाँ न दीदई।
रंजे अयाल गिरियै तिफ़लाँ न दीदई॥
न नशिस्तई बगोशै अज़ बोम क़र्ज़ख़्वाह।
नागह जे़ दर दरामद मेहमाँ न दीदई॥

अर्थात्, हे पिता के प्राणोपम पुत्र, तू ने बे-रोटी का दस्तरख़ान नहीं देखा; तू ने बीबी और आश्रित जनों का रंज और लड़कों का रोना नहीं देखा; क़र्ज़ख़्वाहों के डर से तू कभी किसी कोने में छिपकर नहीं बैठा; और अकस्मात् दरवाज़े से भीतर आये हुए मेहमान को भी तू ने कभी नहीं देखा। दरिद्रता का यह बहुत ही अच्छा वर्णन है। घर में खाने को नहीं है, जोरू रंजीदा बैठी है; लड़के वावैला मचा रहे हैं; जिनका रुपया देना है वे दरवाज़े पर खड़े हैं; और ऐसी आफ़त में भी मेहमान चले आ रहे हैं! इससे अधिक और क्या आपत्ति आदमी पर आ सकती है? पर इस कविता का कुछ भी असर उस आदमी के बेटे पर न हुआ। इसके उत्तर में उस नाख़लफ़ ने क्या लिखा सो सुनिए—

बाबा मगर तु ज़ुल्फ़े परीशाँ न दीदई।
ख़ाले सियह बरूय दुरख़शाँ न दीदई॥
न नशिस्तई बगोशै दर इन्तज़ारे यार।
नागह जे़ दर दरामद जानाँ न दीदई॥

लेकिन, बाबा, तूने परीशान ज़ुल्फ़ों को नहीं देखा; लावण्यलोल मुखमण्डल पर तूने काले तिल को भी नहीं देखा; यार के इन्तज़ार में तू कभी किसी कोने में बैठा भी नहीं; और न अकस्मात् दरवाज़े से भीतर आते समय तूने कभी जानाँ ही को देखा! मतलब यह कि अगर तू कभी मेरी हालत में रहा होता तो रुपये पैसे को ज़रा भी परवा न करता।

दिव्यदृष्टि।

दो तीन साल से एक मासिक पुस्तक अँगरेज़ी में लंडन से निकलने लगी है। इसमें अनेक अद्भुत अद्भुत बातें रहती हैं। विशेष करके आध्यात्मविद्या से सम्बन्ध रखनेवाली बातों की इसमें चर्चा रहती है। इसके एक अङ्क में दिव्यदृष्टि का एक विचित्र उदाहरण हमने पढ़ा है। उसे हम अपने पाठकों को, थोड़े में, सुनाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्यदृष्टि से हमारा मतलब उस दृष्टि से है जिसमें किसी चीज़ के अवरोध से बाधा न पहुँचे। पदार्थों का चक्षुरिन्द्रिय से संनिकर्ष होने ही से उनका चाक्षुष ज्ञान होता है। यह सर्वसम्मत मत है। पर इसमें अब परिवर्तन की ज़रूरत जान पड़ती है; क्योंकि किसी किसी विशेष अवस्था में सन्निकर्ष, संघर्ष या योग न होने से भी पदार्थों का ज्ञान हो सकता है।

एलिस नाम के एक आदमी के घर पर एक बार तीन आदमी बैठे थे। उनके नाम हैं—फेल्टन, मोरले और गेट्स। इन लोगों को मेस्मेरिज़्म, अर्थात् अध्यात्म विद्या, से बहुत प्रेम है। इन्होंने दृष्टि-विषयक एक विचित्र तजरुबा करने की मन में ठानी। मोरले को एक आराम कुरसी पर बिठला कर फेल्टन ने उस पर पाश देना शुरू किया। थोड़ी देर में मोरले सो गया, अर्थात् उसे आध्यात्मिक निद्रा आ गई। इसके बाद वह सचेत किया गया और उसके सिर के पीछे एक किताब खोली गई। किताब में फ़्रेडरिक दि ग्रेट की ज़िन्दगी का हाल था। जो पृष्ठ खोला गया उसमें एक लड़ाई का चित्र था। कितने ही मरे और घायल सिपाही पड़े हुए दिखलाये गये थे। मोरले से पूछा गया, तुम क्या देखते हो? उसने कहा, मैं एक तसवीर देख रहा हूं जिसमें बहुत से सिपाही इधर उधर पड़े हुए हैं। इस बात को सुन कर कमरे में जितने आदमी थे सबको आश्चर्य हुआ। इसी तरह को एक और तसवीर के विषय में भी उससे प्रश्न किया गया। इस तसवीर को भी उसने पहचान लिया। याद रहे यह तसवीर उसकी आँखों के सामने न थी, किन्तु उसके पीछे, सिर की तरफ़, थी। मानों मोरले को आँखें उसके सिर के पीछे थीं, कपाल पर नहीं। इसी तरह और भी उसकी कई परीक्षायें हुईं और प्रायः सब में वह पास हो गया। जो तसवीर उसको दिखलाई जाती थी वह उसकी पीठ की तरफ़, सिर से कोई गज़ भर के फ़ासले पर, रक्खी जाती थी, बहुत पास भी नहीं। तिस पर भी वह उसे पहचान लेता था!

इसके बाद और तरह से उसकी परीक्षा ले निश्चय हुआ। मोरले से कहा गया कि गेट्स क से बाहर चला गया है। यह कथन झूठ था। गे कमरे के भीतर ही था। पर मोरले ने इस पर विश्वास कर लिया। उस कमरे में एक घ लगी थी। गेट्स उसके सामने इस तरह खड़ा गया कि घड़ी उससे ढक गई। अर्थात् घड़ी डायल उसकी पीठ के पीछे हो गया; और उस कांटे लोगों की नज़र से छिप गये। तब मोरले पूछा गया, बतलाइए क्या वक्त है? मोरले अपनी घड़ी जेब से न निकाली। उसने दीवार लगी हुई घड़ी को देखा और धड़ाक से, निःसन्दे ठीक वक्त बतला दिया। गेट्स इस घड़ी के सा खड़ा था; पर मोरले की दृष्टि से वह लोप अथवा वह पारदर्शक हो गया था!

इसके बाद एलिस मोरले से बातें करने ल और गेट्स और फेल्टन ज़रा देर के लिए कमरे बाहर चले गये। बाहर जाकर उन्होंने अपने परस्पर बदल डाले। फेल्टन ने गेट्स का कोट पह और गेट्स ने फेल्टन का। यह करके वे फिर क के भीतर आये। गेट्स ने क्या किया कि फेल्टन कोट पहने हुए वह कमरे में इधर उधर घूमने ल यह इसलिए उसने किया जिसमें मोरले की नज़र पर पड़े। मोरले इस समय एलिस से बातें कर था। पर गेट्स को देखते ही वह क़हक़हा मार हँस पड़ा। उसने गेट्स को तो न देखा, पर फेल्ट के कोट को, जो गेट्स के बदन पर था, देख लिय जब मोरले को हँसो रुकी तब एलिस ने पूछा, मा क्या है? क्यों इतने ज़ोर से तुम हँसे? उसने अजी वह कोट निराधार आकाश में उड़ रहा क्या तुम्हें वह नहीं देख पड़ता? तुम अजब आद हो। क्या तुम अन्धे हो? मतलब यह कि मो ने गेट्स को तो नहीं देखा, क्योंकि पूर्व-वासना अनुसार वह उसकी दृष्टि से अदृश्य हो चुका पर उसके बदन पर फेल्टन का जो कोट था उसने देख लिया। इसीसे उसको कोट निरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम हुआ। तब उसका ध्यान फेल्टन की तरफ़ आकृष्ट किया गया। उसने गेट्स का कोट पहन रक्खा था। वह कोट मोरले को नहीं देख पड़ा। मोरले ने फेल्टन को सिर्फ़ कमोज़ पहने देखा।

इसी तरह और भी कितनी ही परीक्षायें हुईं। मोरले की नज़र से चिट्ठियां, मोमबत्तियां, तम्बाकू, बिल्ली और एक स्त्री सब, सिर्फ़ झूठ विश्वास दिलानेहीं से, अदृश्य हो गईं। एक स्त्री कमरे में आगई थी। उसके बारे में मोरले से कहा गया कि वह चली गई। इस पर उसने विश्वास कर लिया और वह स्त्री सचमुच ही उसकी नज़र से ग़ायब हो गई। यहां तक कि मोरले जब आराम कुरसी से उठकर दूसरी जगह जाने लगा तब रास्ते में उस स्त्री के पैर से ठोकर खाकर गिरने से बचा!

आध्यात्मिक-निद्रा से जगने पर मोरले की यह विलक्षण शक्ति जाती रही।

इन परीक्षाओं से सिद्ध होता है कि जगत् के मिथ्या होने का उपदेश जो वेदान्त देता है वह बहुत दुरुस्त है। इस संसार के सारे पदार्थ मायामय हैं; केवल कल्पनाप्रसूत हैं; उनमें कुछ भी सार नहीं। सब चीज़ों का अस्तित्व केवल ख़याली है। उस ख़याल को किसी तरह दूर कर देने से वे चीज़ें भी आदमी की दृष्टि में अभाव को प्राप्त हो जाती हैं। जिसको यह ख़याल दृढ़ हो जाता है कि जगत् सचमुचही मिथ्या है और इसमें जितने पदार्थ हैं सचमुचही काल्पनिक हैं वह दिव्यदृष्टिवान् हो जाता है! जड़ पदार्थों का व्यवधान उसकी दिव्यदृष्टि को बाधा नहीं पहुँचा सकता!

राजपूताने के भील।

वाचकवृन्द! आज आपके सम्मुख उस जाति के रीतिव्यवहारों का संक्षेप से उल्लेख किया जाता है जो सदैव से लोकप्रसिद्ध चिरप्रतापी सूर्य्यकुलोद्भव शीशोदियावंश के नरेशों की सच्ची भक्तिमान, विश्वासपात्र और शुभ-चिन्तक होती आई है। महाराना मेवाड़ के इस

विशुद्ध राजवंश के आदिपुरुष गोह जब एक दरिद्रा ब्राह्मणी से ईडर में पालन किये जाते थे, तब भील जाति के बालकों ने उनकी वीरता पर मुग्ध होकर उन्हें जिस भांति अपना शिरमौर बनाया था; और उन्हींकी नवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए बप्पा रावल का जिस भांति इस जातिने साथ दिया था; वह इतिहास-प्रेमियों से छिपा नहीं है। जिन वीरपुङ्गव, स्वकुल-कमल-दिवाकर, स्ववंश-कीर्तिप्रचारक, महाराना प्रतापसिंह का सिद्धान्त "जो हठ रक्खै धर्म्म की तेहि रक्खै करतार" था, और जिन्होंने शतशः आपत्तियां तथा कष्ट सहने पर भी मुग़ल सम्राटों का आधिपत्य स्वीकार न किया—अपनी राजधानी परित्याग कर वन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवास किया; परन्तु अपने धर्म्म पर अचल रहे; उनको भी संग्राम में जो सहायता इस जाति ने दी और जिस कौशल से उनकी महारानी तथा और कुटुम्बियों को गुप्तरूप से अपनी शरण में रख रक्षा की, वह भी साहित्यप्रेमियों से अविदित न होने के कारण, फिर से दोहराना अनावश्यक है। वर्त्तमान समय में भी मेवाड़ में इनके कई एक प्रधान ठिकाने हैं और राज्य की ओर से भी ये पूर्ण सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। सुनते हैं कि इनको सेवाओं के उपलक्ष्य में आज तक महाराना के वंश में राजतिलक के समय इन्हीं भील सरदारों में से एक सरदार नरेश को राजसिंहासन पर बिठाता है और अपने अङ्गुष्ठ के रक्त से तिलक करता है।

यों तो यह जाति मध्यप्रदेश, बम्बई, बड़ोदा, बराड़, आदि कई प्रदेशों में फैली हुई है; परन्तु राजपूताने में भी यह कम नहीं है। विशेषकर मेवाड़ राज्य में इनकी संख्या बहुत है। हां, थोड़े बहुत तो सभी रियासतों में पाये जाते हैं। सिरोही और मारवाड़ में भी ये लोग बहुत निवास करते हैं। मनुष्य-गणना की रिपोर्ट के अनुसार समस्त भारतवर्ष में ये कोई बारह लक्ष के अनुमान होंगे। इनमें से साढ़े तीन लक्ष के लगभग राजपूताने के निवासी हैं। यह जो वृत्तान्त लिखा जाता है उन्हीं का है जो राजपूताना की रियासतों में, और ख़ास-कर मेवाड़, में रहते हैं।

यह जाति भारतवर्ष के आदिम निवासियों में से है। इस प्रदेश में भील जाति के जो मनुष्य पाये जाते हैं वे प्रायः जंगली और असभ्य हैं। रंग इनका बहुत करके काला और क़द साधारण होता है। अर्थात् ये न बहुत नाटे और न बहुत लम्बे होते हैं। शरीर में ये हृष्ट पुष्ट होते हैं। शीत, उष्ण और वर्षा के क्लेशों को सुगमता से ये सहन कर सकते हैं। इनकी प्रकृति स्वतन्त्रता की ओर अधिक है और लड़ाई झगड़े के भी ये अधिक अनुरागी हैं। ये स्वभाव से ही चञ्चल और अत्यन्त दुराग्रही होते हैं। लजालू भी ये विशेष हैं। पर सत्य बोल और वचन के पक्के होना इनके गुणों में से है। आतिथ्यसेवी भी ये पूरे हैं। जो मनुष्य ग्रामों रहते हैं अथवा अरण्य में अपना जीवन बिताते वे तो बहुधा सत्य बोलनेवाले होते ही हैं; पर जिनका संसर्ग बड़े बड़े नगरों से होता है वे मिथ्य भाषी भी हो जाते हैं। मद्य ये लोग अधिक पी हैं। कोई कार्य्य इसके बिना ये नहीं करते। यं कोई विवाह हो तो मद्यपान अवश्य होता है अथवा साधारणतः किसी कार्य्यवश पंचायत प त्रित हुई तो मद्य अवश्य ही पधारती है। य कारण है कि होलिकोत्सव ये लोग ख़ूब ही धाम के साथ मनाते हैं। इस दिन तो दिल खोल "पीत्वा पीत्वा" की ठहरती है। मदोन्मत्त होकर ख़ूबहो नाचते कूदते हैं। सुरापान को ये मुख्य मानकर सब कार्यों में साक्षीस्वरूप समझ हैं। इतिहासवेत्ता यह प्रश्न उठा सकते हैं कि रा पूतों में मद्य इनसे आया या इनमें राजपूतों से

ये लोग कई धर्म्मों के अनुयायी हैं। कितने सिख हैं; कितनेही हिन्दू हैं; कितनेही यवन हैं किन्तु बहुधा हिन्दू अधिक हैं। आश्चर्य्य की है है कि ये अपने को हिन्दू कहकर कितनेही म्लेच्छ चित और दुष्ट कर्म करते हैं, जैसे गोमांस भक्षण इत्यादि। इसीसे इनको हिन्दू कहते हि कना पड़ता है। हां, कितनेही रीति-व्यवहार इनके हिन्दुओं से मिलते जुलते हैं। इस विषय यहां अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। क्यों आगे चलकर सब स्वयं स्पष्ट हो जायगा। व साधारण पहनते हैं। इसमें कोई विचित्रता पाई जाती। कितनेही वनवासी प्रायः नंगेही हैं। परन्तु ये लोग धोती पहनते हैं और मस्तक एक छोटा सा वस्त्र अवश्य लपेटे रहते हैं। के वस्त्रादि भी साधारण ही होते हैं। उनके घुटनों तक प्रायः खुले रहते हैं। आभूषण अ तर पीतल तथा रांग के होते हैं। भाषा हिन्दी और गुजराती की खिचड़ी सी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीलाड़ो, या भोलो, या भीलानी कहते हैं। एकान्त में रहना ये लोग ज़्यादह पसन्द करते हैं और इसीलिए सघन वन में घास, फूस और पत्तों आदि के कुछ झोंपड़े से बनाकर रहते हैं। और पहाड़ों पर कन्दरा आदि के होते अपने रहने का और कुछ प्रयत्न ये नहीं करते। ये अपने गाँव, जिनको अपनी बोली में ये "पाल" कहते हैं, नदी नाले के निकट बनाते हैं। एक ग्राम में बहुत अधिक मनुष्य नहीं होते। इन्हें थोड़े थोड़े रहनाही अधिक पसन्द है। यदि कोई लड़ाई झगड़ा उपस्थित होता है तो उसका न्याय पंचायत द्वाराही हो जाता है। अड़ोस पड़ोस और गाँव के भील मुखियों को लेकर यह पंचायत

अविच्छिन्न घटित होती है। पंचों का लक्ष्य सदा सत्यन्याय की ओर ही रहता है। सभ्यसमूह के पंचों की तरह इनमें भी तरफ़दारी और लेनदेन का रोग अभी भीलमुखियों में नहीं घुसा है। यही कारण है जो इनके जातीय अभियोग राज्य के न्यायालयों में प्रायः नहीं आते। सच तो यह है कि "पंच परमेश्वर" वाली कहावत इस समय इन्हीं लोगों में चरितार्थ होती है।

जब इनमें किसी व्यक्ति के सन्तान का जन्म होता है तब इसकी सूचना देने के लिए एक कौतूहलोत्पादक रीति से ढोल बजाया जाता है। इसका शब्द सुनकर सब ग्राम-निवासी जिस गृह में बालक का जन्म होता है वहां, एकत्रित होते हैं। अपनी अपनी इच्छा के अनुकूल तथा सम्बन्ध के अनुसार सभी हितू, व्यवहारी, धन धान्य रूप में, कुछ न कुछ, जिसके यहां सन्तति होती है उसे भेट करते हैं। इसके उपरान्त इनका गुरु (जो बहुत करके जोगी हैं) अपनी स्त्री सहित वहां आता है और प्रसूतिगृह के द्वार पर बैठकर एक अश्व की प्रतिमूर्ति उस स्थान पर अपने समक्ष रख कर भजन आदि गाना आरम्भ करता है। इस कार्य्य में उसकी स्त्री भी सहायक होती है। यहीं इनके यहां शीतला देवी का पूजन होता है। कितने ही भीलों के यहां बालक की शय्या के निकट एक धनुष और बाण रख दिये जाते हैं। इनका विश्वास है कि ऐसा करने से बालक सर्व विघ्नों से सुरक्षित रहता है। पांच, छ दिन के पीछे सूर्य्य का पूजन होता है। यह कोई रीति नहीं है। सभी हिन्दुस्तानियों में ऐसा होता है। शिशु यदि पुत्र होता है तो दो तीन मास के पश्चात् उसका शिरोमुंडन और नामकरण आदि संस्कार किये जाते हैं इन लोगों में यह एक आश्चर्य्य-जनक बात है कि पुरुष जाति के शिशु के दोनों हाथों की कलाइयों पर ये लोहे को ख़ूब गरम करके उससे चिन्ह करते हैं। यह रीति बालक के बारह वर्ष का होने के पूर्व ही सम्पादन होती है। इस रीति के हुए बिना, इनका विश्वास है कि, किसी पुरुष को स्वर्ग में स्थान नहीं मिलता। बालक के जन्म के उपरान्त जो पहली होली आती है उस दिन बालक का मामा एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाग बलि के लिए और सुरा पीने को लाता है। उसी दिन बालक को भी प्रथम ही प्रथम मद्यपान कराया जाता है।

पुत्र के वयस्क होने के पूर्व ही उसके सम्बन्ध की उसके पिता को चिन्ता होती है। पुत्रीवाला अपनी बालिका के लिए वर की खोज नहीं करता। क्योंकि ऐसा करने से लोग उसकी पुत्री के चाल चलन में संशय करने लगते हैं। भले ही पुत्री विवाह योग्य हो जाय, उसका पिता किसी पुत्र वाले से सम्बन्ध की प्रार्थना नहीं करने का। पुत्र वाला ही पुत्री के पिता के यहां जाता है और पुत्री की भिक्षा का प्रार्थी होता है। "दाया", जो वर वाले को कन्या के मूल्य स्वरूप देना होता है, ठीक कर लिया जाता है। यदि दोनों में सब बात पट गई तो सगाई का दिवस स्थिर हो जाता है; और उस दिन पंचायत एकत्रित होती है। यह कार्य्य कन्या के पिता के गृह पर सम्पादित होता है। लड़की एक पटे पर बिठाई जाती है, और वर का पिता पैसे दो पैसे तो उस पटे के नीचे रख देता है, और एक पैसा और एक रुपया बालिका के हाथ में दे देता है। बस सम्बन्ध पक्का हो जाता है। इसके उपरान्त मद्यपान होता है और फिर पंचायत विसर्जन होती है। विवाह के लिए भी कन्यावाला ज़रा भी उद्विग्नता नहीं दिखाता। वर का पिता ही विवाह-तिथि स्थिर करता है। विवाह का कार्य्य साधारणतः होता है। उसमें कोई विशेषता नहीं। प्रायः विवाह-कर्म्म ब्राह्मणों से ही कराया जाता है। परन्तु कहीं कहीं कुटुम्ब में जो वृद्ध होता है वही करा देता है। दहेज में गाय, बैल, और बकरे आदि अधिक दिये जाते हैं। एक गोत्र वालों में और एक कुल-देवी वालों में विवाह नहीं होता। गोत्र इनके राजपूतों से मिलते जुलते हैं। ज्ञात होता है कि जिस देश में ये रहते हैं, और वहां का राजा जिस गोत्र का होता है, ये भी वही गोत्र अपना मानते हैं। क्योंकि मेवाड़ में रहने वाले अपने को शीशोदिया, मारवाड़ में रहने वाले राठोड़, और सिरोही में रहने वाले चौहान कहते हैं।

यदि कोई मनुष्य किसी कुँवारी कन्या को भगा ले जाता है तो लड़की के पिता आदि उसका अनुसन्धान करते हैं। और जब उनको यह ज्ञात हो जाता है कि वह कहां है तब वे उसके प्रेमी के झोंपड़ा जला देते हैं। इस काम में गाँव वाले भी सहायता करते हैं। ऐसा होने पर बहुधा पंचायत एकत्रित होती है और लड़की के पिता को, उसकी हानि के अनुसार, भगा ले जाने वाले मनुष्य से धन दिलाया जाता है और झगड़ा तय हो जाता है। झगड़ा की शान्ति के प्रमाणस्वरूप ये लोग एक नई रीति का व्यवहार करते हैं। पृथ्वी में एक गढ़ा खोदा जाता है। उसमें जल भर दिया जाता है। दोनों विपक्षी उस गढ़े में एक एक पत्थर फेंकते हैं। यह हो चुकने पर वे दोनों एक हो जाते हैं।

स्त्री को किसी विशेष कारण-वश त्याग देने का भी पति को अधिकार है। जब कोई अपनी विवाहिता स्त्री को त्याग देना चाहता है तब वह उस स्त्री के दुपट्टे को चौड़ाई की तरफ से दो टुकड़े कर देता है, और एक रुपया, दूसरा पति ढूढने के समय तक के निर्वाह के लिए, उसे बांध देता है। यह कार्य्य दो चार मनुष्यों के सामने होता है। इसी तरह सम्बन्ध स्थिर होने के बाद कोई विवाह न करना चाहे और मँगनी तोड़ देना चाहे तो वह भी ऐसा ही कर सकता है। जो मनुष्य ऐसा करता है वह एक पीपल का पत्ता एक पत्थर के साथ किसी तालाब में फेंक देता है। यह बात दो चार मनुष्यों के सामने कह देने से सम्बन्ध टूट जाता है। बहुविवाह की प्रथा भी इन लोगों में प्रचलित है; क्योंकि बहुत से मनुष्यों के दो दो तीन तीन स्त्रियां भी देखने में आती हैं।

विधवा-विवाह भी इनमें होता है। यदि किसी मनुष्य मर जाता है तो उसकी दाह-क्रिया के बाद उसकी पत्नी से पूछा जाता है कि वह मृत पति के घर रहा चाहती है अथवा "नाता" करना चाहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यदि उसको रहने की इच्छा होती है तो वह वैसा कह देती है। नहीं तो लज्जावश स्पष्ट नाते के लिए नहीं कहती। परन्तु इतना कह देती है कि वह अपने पिता के घर जायगी। इसका यही अर्थ समझा जाता है कि वह नाता करना चाहती है। यदि मृत पुरुष के छोटा भाई होता है तो स्त्री के दूसरे के

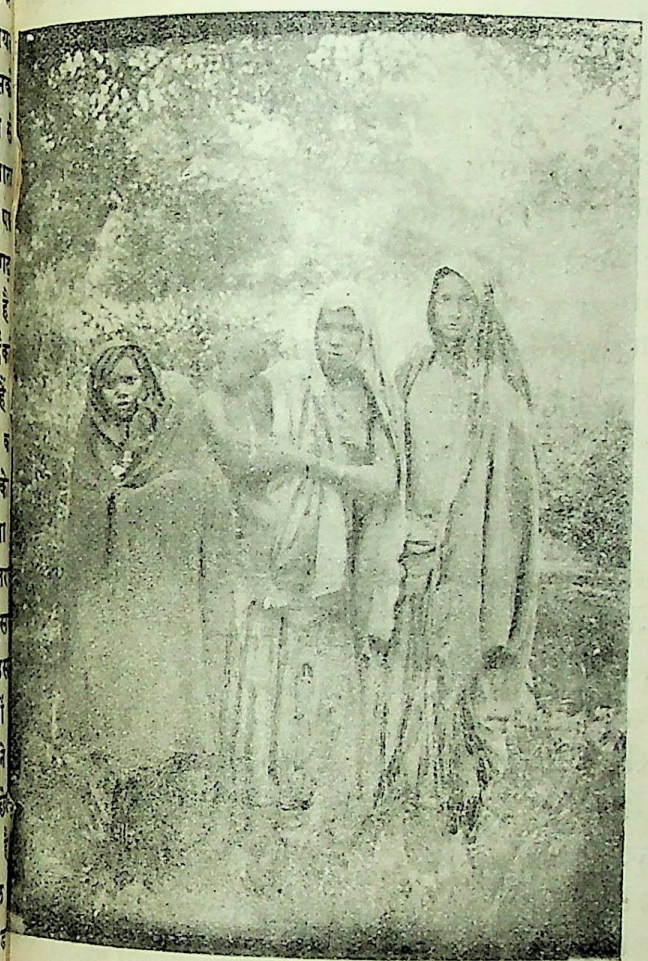

हां जाने की इच्छा प्रगट करने पर वह आगे बढ़-
र कह देता है कि मैं उसे दूसरे के यहां न जाने
गा; किन्तु अपने ही यहां अपनी स्त्री बना कर
खूंगा। ऐसा होने पर स्त्री को पति के छोटे
ाई की स्त्री बन कर उसके यहां रहना होता है
ार वह इसके प्रतिकूल नहीं कर सकती। हां,
किसीके छोटे भाई के लिए यह करना कोई
ावश्यक बात नहीं है। और न वह इसके लिए
बाध्य है कि अपने जेठे भाई की स्त्री को अपने यहां रक्खे ही। परन्तु प्रायः छोटा भाई ऐसाही करता है। भले ही वह बालक क्यों न हो। क्योंकि इनमें अपने बड़े भाई को स्त्री को दूसरे के यहां जाने देना लोग अपमान-सूचक समझते हैं। इसमें प्रतिष्ठा भंग होने का भय भी है। यदि मृत पुरुष के छोटा भाई नहीं है; अथवा है, पर उसने उसकी स्त्री को रखने की इच्छा प्रकाशित न की, तो वह स्त्री कुछ दिन बाद अपने पिता के घर चली जाती है और अपनी इच्छा के अनुसार किसी को अपना पति बना लेती है।

मृतक के शरीर को ये लोग जलाते हैं। कहीं कहीं गाड़ने की प्रथा भी इन लोगों में देखी जाती है। जलाने के समय ये मृतक को औंधे मुंह उलटा रखते हैं और भस्म को नदी में प्रवाहित कर देते हैं। किसी व्यक्ति के मर जाने की सूचना एक विचित्र प्रकार से ढोल बजाकर सब ग्राम को दी जाती है। इसीको सुन कर सब एकत्रित हो जाते हैं। दस या बारह दिन के बाद एक "भोपा" आता है। मृतक को जहां जलाते हैं वहां पर सब कुटुम्बी जाते हैं। भोपा भी वहीं जाता है। वहां जाकर ढोल बजाया जाता है। "भोपाराम" उछल कूद करने लगते हैं। मानों उनके शरीर में मृत पुरुष की आत्मा ने प्रवेश किया है। ये लोग विश्वास भी ऐसा ही करते हैं। वह जो कुछ मांगता है श्रद्धानुसार मृतक के कुटुम्बी उसकी भेंट करते हैं। थोड़ी देर बाद "भोपा" सब चीज़ वस्तु समेट कर वहां से प्रस्थान कर जाता है। यही "भोपे" इनके गुरु भी होते हैं। इसके अतिरिक्त मृत्यु होने पर कोई विशेष घटना नहीं होती।

डायन से ये लोग बहुत डरते हैं। यदि किसी स्त्री के ऊपर डायन होने का सन्देह होता है तो उसकी ये परीक्षा करते हैं। परीक्षा अतीव कठोर है। सुनिये एक बांस पानी में गाड़ दिया जाता है। उसी के पास, जिस स्त्री पर डायन होने का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देह होता है, वह खड़ी की जाती हैं। बांस को पकड़ कर स्त्री को पानी में डुबकी मारना होता है। इतने में एक मनुष्य ज़ोर से एक तीर चलाता है। दूसरा मनुष्य तीर चलाते ही उसको लेने जाता है। जब तक वह तीर लेकर लौटे तब तक यदि वह स्त्री पानी के अन्दर रह जाय तो उस पर से सब का सन्देह दूर हो जाता है। किन्तु यदि वह इसके पूर्व ही पानी के बाहर निकल आवे तो लोग उसे पक्की डायन समझते हैं। इसी तरह ये और भी कई तरह से परीक्षा करते हैं। जैसे खौलते हुए तेल में से रुपया अथवा पैसा निकालना आदि। परीक्षा में जब यह सिद्ध हो जाता है कि कोई स्त्री डाइन नहीं है तब उसे ये लोग छोड़ देते हैं। पर जब उसका डायन होना साबित हो जाता है तब उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। टोले मुहल्ले में कोई बालक चाहे जिस कारण बीमार हो उसका कारण तुरन्त डायन के सिर मढ़ा जाता है। ऐसी दशा में गाँव वाले डायन को घसीट कर वहां लाते हैं जहां बीमार बालक है। उस समय रोगी बालक का थूक आदि डायन से चटाया जाता है और यदि वह ऐसा करने में आना कानी करती है तो गांव वाले उसे बड़ी मार मारते हैं। इनका विश्वास है कि ऐसा करने से बालक नीरोग हो जाता है। छोटे छोटे बच्चे डायन से बहुत डरते हैं। इसीलिये उसे कोई अपने घर में नहीं घुसने देता। सब लोग उसे गांव छोड़ कर चले जाने के लिए लाचार करते हैं। आफ़त की मारी जहां जहां वह जाती है वहां वहां से निकाली जाती है। कहते हैं कि डायन सात आठ वर्ष के बच्चों तक का कलेजा निकाल कर खा जाती है। ऐसा अनेक कहावतें लोगों में प्रचलित हैं। हमने एक साधु के मुँह से सुना है कि वह बिचरता बिचरता किसी गांव में पहुंचा तो देखता क्या है कि एक वैश्य का तीन चार वर्ष का बालक मारे पीड़ा के तड़फड़ा रहा है, और टोले मुहल्ले के लोगों को लेकर बालक के कुटुम्बी बालक की रक्षा के लिये नाना उपचार में लगे हैं। उस समय एक को उस साधुने देखा जो बारम्बार अपने घर झरोखे में आकर उस बालक की ओर ताक झांकती थी। उस स्त्री का ऐसा कृत्य देखकर साधु संशयात्मा होकर उस स्त्री के घर में घु तो क्या देखता है कि एक पटे पर आड़ी छुरी है और नीचे एक बर्तन रक्खा है। दीपक रहा है। वह देखता ही था कि छुरी पर से बूंद रक्त का उस बर्तन पर आ कर पड़ा। अघटित घटना देख कर उस साधु के होश गये। ज़रा देर में उसी प्रकार एक बूंद रक्त और आकर उस बर्तन में गिरा। उस समय से और तो कुछ न बन पड़ा, छुरी के ऊपर एक तसला अधखुला रक्खा था उसे उसने उठा कर अलग कर दिया। तसले का हटना कि वह स्त्री वहां आकर उपस्थित हो गई और से रक्त आना बन्द हो गया। और उधर बालक की पीड़ा जाती रही।

पुरातन समय में डायन के नेत्रों में मिर्चें भर, पट्टी बांधकर, गले में फांसी औंधे मुंह, सिर के बल, एक वृक्ष की से लटका कर ये लोग उसे प्राण-दण्ड देते परन्तु अब सरकार अँगरेज़ो के डर से ऐसे काण्ड इन लोगों में नहीं होते।

पुराने ज़माने से इनको आजीविका लूट पर ही अवलम्बित है। खेती बारी या व्यवसाय करना तो यह जानते ही न थे। हमारी दयालु अँगरेज़ी गवर्नमेंट की कृपा बहुत कुछ शान्त हो गये हैं और जंगली पेड़ जैसे फल, फूल, गोंद, शहत और लकड़ी बेंच कर तथा मिहनत मज़दूरी द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। अब लूट खसोट की घ इन लोगों में बहुत कम सुनने में आती हैं।

पहले जैसी गति ये पथिकों की करते बड़ी ही निर्दयताजनक थी। पाठकों में अधि इस बात से अभिज्ञ होंगे कि विलायत में स्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के हाईलैंडर लोग बहुत लूट मार किया करते थे। उनका यही सिद्धान्त था कि "धन अथवा प्राण" (Purse or Life)--बस इस भिल्ल जाति का सिद्धान्त भी इनसे मिलता जुलता ही था। वरन एक दो बातें इनमें इससे भी विशेष थीं। ये लोग यात्री के इच्छापूर्वक कुल माल असबाब न देने पर उसे मार डालें तो आश्चर्य्य ही क्या है; परन्तु इससे भी अधिक और निष्ठुर यह बात है, कि बिना रुधिर बहाये ये मानते ही नहीं। चाहे यात्री अपना सब माल बिना आना कानी के इनको समर्पित क्यों न कर दे, बिना रक्त बहाये लूटना ये लोग महापाप समझते हैं। ये कहते हैं कि इसके बिना इनकी देवी प्रसन्न ही नहीं होती। कोई यात्री जो इन्हें अपना माल यों देना चाहता है तो ये कहते हैं—"क्या हम ब्राह्मण हैं जो बिना लोहू बहाये दान ले लें।" मेवाड़, सिरोही इत्यादि राज्यों में जब यात्री यात्रा को निकलते हैं तब इन्हींमें से एक को मार्ग बताने के लिए साथ ले लेते हैं। इस पथदर्शक को इधर "बोलावा" कहते हैं। इसके साथ रहते यात्रियों पर कोई आपत्ति नहीं आती। इस पथदर्शक के बिना जाने वाले दुःख अवश्य ही पाते हैं, चाहे गवर्नमेंट के अथवा राज्य के भय से लूटे न जावें। अब इस लूट मार का पेशा इनसे छुड़ाने को सरकार ने "भोलकोर" नाम की सेना बनाकर कितनों को उसमें भरती कर लिया है। कितने ही अपनी इच्छा से ही लूट मार का पेशा छोड़ खेती आदि के काम में लग गये हैं। मतलब यह कि अब शनैः शनैः ये शान्त होते जाते हैं।

किसी किसी समय गुरुतर कारण उपस्थित होने पर दो "पालों" में युद्ध की ठन बैठती है। जब ऐसा कारण दृष्टिगोचर होता है तब सब ग्राम निवासी उस गांव के मुखिया के पास जाते हैं और सबको सम्मति-सम्पादन करने के बाद सबको युद्ध के लिए सशस्त्र सज्जित होकर आने की सूचना देने के लिये ढोल पीटते हैं। "किलकी" (या किलकारी) सुनते ही तत्क्षण गांव के सभी स्त्री पुरुष एकत्र हो जाते हैं। तब स्त्रियों को आगे लेकर शत्रु के ग्राम पर आक्रमण के लिए प्रस्थान होता है। विपक्षियों के ग्राम के निकट पहुंचते ही पत्थर आदि की वर्षा की जाती है। जब शत्रु लड़ने को सम्मुख आकर डट जाते हैं तब तीरों की वर्षा प्रारम्भ होती है। स्त्रियां एक ओर हट जाती हैं। पाठक! आपने जाना, स्त्रियां वहां क्यों जाती हैं? इनका वहां क्या काम है? क्या वे लड़ाई में सहायता दे सकती हैं? नहीं। आप जानते हैं, बिना काम कोई कहीं नहीं जाता और फिर इस लड़ाई के समय में कोई क्यों जाने लगा। स्त्रियां यहां क्या करती हैं सो भी सुनिये। जब कोई इनके पक्ष का ज़ख़्मी हो जाता है तब ये उसे सहारा देकर सुरक्षित स्थान में ले जाती हैं और वहां उसकी भली प्रकार सेवा सुश्रूषा करती हैं और ज़ख़्म पर मरहम पट्टी करती हैं। हमारे पश्चिमी देशवासियों की स्त्रियों ने तो "रेड क्रास" समाज स्थापित कर रक्खा है। वे पक्षपातरहित होकर विदेशीय योद्धाओं की सुश्रूषा युद्धक्षेत्र में जाकर करती हैं। यदि भिल्लों की स्त्रियां पति पुत्रादि अपने कुटुम्बियों के साथ जाकर उनकी सेवा सुश्रूषा करें तो उसमें आश्चर्य्य ही क्या है? लड़ाई होती रहने पर थोड़े समय में सन्धि का सन्देश किसी ओर से होता है। लड़ाई बन्द होती है। दोनों विपक्षी ग्रामों के मुखिया इकट्ठे होते हैं। उपद्रव का कारण जानने की कोशिश होती है। कारण ज्ञात होने पर न्याय होता है। अपराधी को जातीय दण्ड दिया जाता है। इसके बाद आपस में दोनों विपक्षी ग्राम वाले सुरापान करते हैं और सब उत्पात और वैमनस्य जाता रहता है। आपस में पूर्ववत् फिर एका हो जाता है।

तीर चलाने में ये बड़े चतुर हैं। यही इनका मुख्य अस्त्र है। तीर सन्धान में ये अँगूठे की सहायता बिलकुल नहीं लेते। अँगूठे के पास की दो अँगुलियों ही से ये काम लेते हैं। इसका ठीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण तो ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु महाभारत की एक कथा हमने अवश्य सुनी है। वह इस प्रकार है। एक भिल्लने द्रोणाचार्य्य से बाणविद्या की शिक्षा देने की प्रार्थना की थी। परन्तु महर्षि ने निकृष्ट जाति होने के कारण इस बात को अस्वीकार किया। तब उस भिल्लने द्रोणाचार्य्य महाराज की एक मृत्तिका-मय मूर्ति बनाई। उसीको द्रोणाचार्य्य मान कर पूर्ण श्रद्धायुत हो उसके समक्ष बाण चलाना उसने आरम्भ किया। अभ्यास से इस कार्य्य में वह दक्ष हो गया। गुरु द्रोणाचार्य्य को इसकी ख़बर हुई। वे वहां आये। उन्होंने उससे गुरु का नाम पूछा। उसने उन्हींका नाम बताया। यह सुन कर वे चकित हुए। इस पर भिल्लने मृत्तिका की मूर्तिका सब वृत्तान्त उनसे कहा। तब प्रसन्न होकर द्रोणाचार्य्य ने गुरु-दक्षिणा की याचना की। भिल्लने गुरु महाराज की इच्छा के अनुसार अपना अँगूठा उनको भेंट कर दिया। शायद इसी कारण भिल्ल अपने अँगूठे को काम में न लाते हों। इसका पक्का कारण बताने में, कि ये लोग अपने अँगूठे को काम में क्यों नहीं लाते, कुछ बुद्धि काम नहीं करती। किन्तु यह साहस पूर्वक कहा जा सकता है कि भिल्ल बाण-विद्या में निपुण हैं। हर भिल्ल के पास, बालक से लेकर वृद्ध तक के, एक कटार और तीर कमान अवश्य होते हैं।

मालवा में भील कन्याओं या स्त्रियों को मोल देकर या डर से लाकर उनके सिर पर एक ठीकरे में अग्नि रख दी जाती है। उसमें जौ होम दिये जाते हैं। मानों उनका इस अग्निप्रवेश से नया संस्कार होता है। पीछे यही कन्यायें या स्त्रियां पासवान बन जाती हैं और दास-जाति को विवाहादि से बढ़ाती हैं।

अब यह लेख यहां ही समाप्त किया जाता है। यदि इससे पाठकों का मनोरञ्जन हुआ तो भविष्यत् में इस प्रदेश की और भी कई एक जंगली जातियों का वृत्तान्त भेंट किया जायगा।

गङ्गासहाय।

जम्बुकी न्याय।

एक बाग़ में बहुत पुराना
पाँच परिन्दों का था थाना।
वक, बटेर, कौवा, चण्डूल,
दिवाभीत भी नामाक़ूल॥ १

एक घोंसला ख़ाली पाया
सबने उस पर दाँत लगाया।
अपना अपना हक़ दिखलाने
लगे कूदने शोर मचाने॥ २

कई रोज़ तक हुई लड़ाई
जीत किसी के हाथ न आई।
बुड्ढा जम्बुक एक वहीं पर
रहता था अपने बिल-भीतर॥ ३

कुनबा भी था उसका वहां
था जिसका वह शाहेजहां।
पास परिन्द उसी के आये
चोंचें खोलीं शीश झुकाये॥ ४

बैठे सब डालों पर दूर
झपट न मारें कहीं हुज़ूर।
झटपट उन चिड़ियों ने एक
अर्ज़ी दी, कर अर्ज़ अनेक॥ ५

जरठ-शिरोमणि, जम्बुकराज,
न्यायमूर्त्ति, महराजधिराज।
कर इन्साफ़ हमारा दीजै
दया-दृष्टि प्रभु हम पर कीजै॥ ६

दया जरठ जम्बुक को आई
दुम उसने उठ ख़ूब हिलाई।
बोला वह मैं न्याय करूंगा
शेर-बबर से भी न डरूंगा॥ ७

अपनी अपनी बात सुनावो
एक एक सब सन्मुख आवो।
तब बटेर बढ़ आगे आई
उसने यों कह कथा सुनाई॥ ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे जम्बुकजी, मैं नारी हूं
नाज़ुक-बदनों की प्यारी हूं।
ऊंचा नीचा मेरा ग्राम
रम्यरूपिणी मेरा नाम ॥ ९

ख़ुशबू से लिपटी रहती हूं
मुँह से जो निकला कहती हूं।
नवाबों की पाली हूं मैं
काली होकर लाली हूं मैं ॥ १०

शुरू शुरू में मेरा बोल
था थोड़ा ही गोल गोल।
अब तो ख़ूब बोलती हूं मैं
घर गुलक़न्द घोलती हूं मैं ॥ ११

तीतर की परवाह न मुझको
मोरों की भी चाह न मुझको।
इनको कभी न मैंने देखा
पर इन सब का रखती लेखा ॥ १२

लड़ने में हे जम्बुक ज्ञानी
नहीं कहीं भी मेरा सानी।
सब को मैं मृदु वचन सुनाऊं
दुम अपनी दिन रात हिलाऊं ॥ १३

मैं अपनी कह चुकी कहानी
याद पड़ी जो नई पुरानी।
कृपा महाप्रभु मुझ पर कीजै
मुझे घोंसला दिलवा दीजै ॥ १४

यह सुन बुड्ढा जम्बुक बोला
सब बातों को उसने तोला।
"वाह न अब कुछ बाक़ी रहा
ख़ूब कहा जो ख़ूब कहा" ॥ १५

तब कुनबे के जम्बुक सारे
खड़े हो गये न्यारे न्यारे।
"हुआ हुआ जी ख़ूब हुआ"
कह, बुड्ढे का क़दम छुआ ॥ १६

तब बोला चण्डूल बहादुर
फटकारे पर फुर फुर फुर फुर।
हे जम्बुक-वर कान उठावो
ज़रा और आगे बढ़ आवो ॥ १७

घर है फतेहगंज में मेरा
बना हुआ है अब तक डेरा।
रहता मैं थिर नहीं वहां हूं
भटका फिरता जहां तहां हूं ॥ १८

नाम कुटिल-लोचन है मेरा
लज्जा ने है मुझको घेरा।
इससे मुँह न खोलता हूं मैं
बोली कई बोलता हूं मैं ॥ १९

पिँजड़े पर परदा डलवाये
रहता अपना बदन छिपाये।
आँखें मेरी लाली लाली
चाल अजब है घूंघटवाली ॥ २०

शब्दमालिका कण्ठ विराजी
छैल छबीले मुझसे राज़ी।
वही मेरा पिँजड़ा लटकाते
चारा मुझको वही खिलाते ॥ २१

सतयुग में भी जो पक्षी थे
वक-मयूर के समकक्षी थे।
उन तक की मैं बोली बोलूं
मुँह अपना मैं निर्भय खोलूं ॥ २२

वाह कहे या कोई आह
इसकी नहीं मुझे परवाह।
समझ पड़े या नहीं कलाम
मुझे बोलने से है काम ॥ २३

पहर पहर भर में हे तात
निकलै मेरे मुँह से बात।
चारा पानी अगर न पाऊं
बरसों तक मैं चुप हो जाऊं ॥ २४

मैं हूं महा-महिम चण्डूल
तूल बहुत क्यों करूं फ़िज़ूल।
मैं हो क्यों न घोंसला पाऊं
उस पर अपना दख़ल जमाऊं ॥ २५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सुन बुड्ढा जम्बुक बोला
सब बातों को उसने तोला।
"वाह न अब कुछ बाक़ी रहा
.खूब कहा जो .खूब कहा" ॥ २६

तब कुनबे के जम्बुक सारे
खड़े हो गये न्यारे न्यारे।
"हुआ हुआ जी .खूब हुआ"
कह, बुड्ढे का क़दम छुआ ॥ २७

काकदेव तब सन्मुख आये
पैर उठाया पर फैलाये।
मैं विजयी जयन्त का नाती
वक्र चाल मुझको अति भाती ॥ २८

सब चिड़ियों से रहूं निराला
तन है आबनूस सा काला।
मन मेरा अति हो निर्म्मल है
तरु-खोखला विहार-स्थल है ॥ २९

त्रेता-युग की है यह काया
मैंने गिना हिसाब लगाया।
यद्यपि इतना वृद्ध कहाऊं
बाल-मराली से अँठिलाऊं ॥ ३०

रावणारि के मुँह मैं पैठा
बरसों रहा पेट में बैठा।
खेला खाया मज़े उड़ाया
जब जी ऊबा बाहर आया ॥ ३१

जहां कहीं मैं कुछ सुन पाऊं
काँवँ काँवँ करके घुस जाऊं।
टेढ़ी गर्दन कर चिल्लाऊं
अपनी खिचड़ी अलग पकाऊं ॥ ३२

कुछ चिड़ियों में जाता हूं मैं
अपनी चाल सिखाता हूं मैं।
यदि थोड़ा पा जाता हूं मैं
अति कृतार्थ हो जाता हूं मैं ॥ ३३

एक बात से मैं घबराऊं
खाने को न पेट भर पाऊं।
इससे मैं सब दिवस भटकता ॥
सिर अपना सब कहीं पटकता ॥ ३४

ग्रास मुझे यदि मिल जाता है
दिल मेरा .खुश हो जाता है।
वरना घर ही में मर जाऊं
या दुबला हो बाहर आऊं ॥ ३५

पहले था मैं बड़ा बहादर
करते थे सब मेरा आदर।
पञ्च-तन्त्र में महा पुरानी
मेरी भी है एक कहानी ॥ ३६

एक बार उल्लू उड़ सारे
घुसे एक बिल में बेचारे।
उसमें आग लगाई मैंने
सब को ख़ाक बनाई मैंने ॥ ३७

जो कहना था तुम्हें सुनाया
जम्बुक जी कुछ नहीं छिपाया।
जो न घोंसला पाऊंगा मैं
आफ़त भारी ढाऊंगा मैं ॥ ३८

यह सुन बुड्ढा जम्बुक बोला
सब बातों को उसने तोला।
"वाह न अब कुछ बाक़ी रहा
.खूब कहा जो .खूब कहा" ॥ ३९

तब कुनबे के जम्बुक सारे
खड़े हो गये न्यारे न्यारे।
"हुआ हुआ जी .खूब हुआ"—
कह, बुड्ढे का क़दम छुआ ॥ ४०

वीर वकासुर मेरा नाम
मुनियों का सा मेरा काम।
धाम बताऊं अपना कहां
जहां मुझे देखो मैं वहां ॥ ४१

गङ्गा, यमुना, या तालाब
जहां कहीं थोड़ा भी आब।
वहीं झट पहुँच जाता हूं मैं
जाकर घात लगाता हूं मैं ॥ ४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी यदि कम हो जाता है
मेरा भी दिल फट जाता है।
और कहीं मैं उड़ जाता हूं
सजल देख फिर आ जाता हूं ॥ ४३

अद्भुत मेरी सुन्दरताई
मूर्ति मनोहर मैंने पाई।
नव-पल्लव से पैर लाल हैं
चिपटी चोंच सफ़ेद बाल हैं ॥ ४४

मछली मुझे सुधा सी भाती
मुँह में रखते ही धँस जाती।
यदि मेंडक को सामने आती
वह भी कभी न बचने पाती ॥ ४५

मुझसे कोई ताल न बचता
पहुँच महाभारत मैं रचता।
जीव-जन्तु ग़ारत हो जाते
आर्त-नाद करते चिल्लाते ॥ ४६

जब मुझको कुछ दिन हो जाते
धोंधे तक न मुझे पतियाते।
तब मैं उन्हें छोड़ देता हूं
और कहीं का पथ लेता हूं ॥ ४७

देख मुनिवरों का सा ध्यान
मिलै नहीं मेरी पहचान।
धीरे धीरे खुलता भेद
तब पाता मैं खरतर खेद ॥ ४८

देख रूप, सुन मधुरी वानी
चिड़ियां मुझे बतातीं ज्ञानी।
पर क्या हूं, सो मैंहीं जानूं
मैंहीं अपने को पहचानूं ॥ ४९

एक बार मैं गया फँसाया
चिड़ीमार ने जाल बिछाया।
बहुत दिनों तक मुझे सताया
रो रो मैंने प्राण बचाया ॥ ५०

हंसों से है मेरा नाता
चिड़ियों को मैं यही सुझाता।
यदि कोई ख़िलाफ़ कुछ कहता
मैं उसको खा जाना चहता ॥ ५१

हे जम्बुक, हे सुघर शृगाल,
इतनाहीं है मेरा हाल।
वह घोंसला मुझे दिलवावो
महा-प्रलय तक यश फैलावो। ५२

यह सुन बुड्ढा जम्बुक बोला
सब बातों को उसने तोला।
"वाह न अब कुछ बाक़ी रहा
ख़ूब कहा जो ख़ूब कहा" ॥ ५३

तब कुनबे के जम्बुक सारे
खड़े हो गये न्यारे न्यारे।
"हुआ हुआ जी ख़ूब हुआ"—
कह बुड्ढे का क़दम छुआ ॥ ५४

हा ! हा ! हा ! यह मैं अब आया
मेरा रूप मुझी को भाया।
सुनो ज़रा तुम मेरी बात
बड़े मियां जी तसलीमात ॥ ५५

मेरा रंग ज़रा कुछ काला
घुघ्घू हूं मैं सब घरघाला।
पन्थ चलाया मैंने कामिल
अक़्लमन्द सब उसमें शामिल ॥ ५६

छिपा रहा मैं बालकपन में
पड़ा हुआ था निर्ज्जन वन में।
बड़ा हुआ तब बाहर आया
उड़ना मुझको गया सिखाया ॥ ५७

एक गाँव का ऊंचा खँडहर
जन्मभूमि मेरी है सुन्दर।
ख़ाक वहां को मैंने छानी
हुआ कहीं तब इतना ज्ञानी ॥ ५८

छोड़ा मैंने अपना थान
पहुँचा जहां स्फटिक की खान।
रात हुई मैं उसमें पैठा
दर्ज देख भीतर घुस बैठा ॥ ५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरी एक पत्थर की ढेरी
टूट गई कुछ बाज़ू मेरी।
तब मैं लौट वतन को आया
घर न देख जी में घबराया ॥ ६०

वहां दरी यक मैंने पाई
घुसा उसी में जान बचाई।
हुआ न मेरा वहां गुज़ारा
फिरा कुछ दिनों मारा मारा ॥ ६१

चूना, पत्थर, जहां निकलता
स्वल्प शिकार वहां से मिलता।
मुझे नहीं यह अच्छा लगा
तब मैं एक गाँव को भगा ॥ ६२

सीखा इल्म शिकारी वहां
रात रात भर जहां तहां।
पक्का हुआ मश्क़ हो गई
फ़िक्र न अब मुझको रह गई ॥ ६३

तब ईं जानिब अन्त सिधाये
खँड़हर जहां पड़े मन भाये।
अब न वहां से हटता हूं मैं
मोटा हुआ, न घटता हूं मैं ॥ ६४

बाज़ बहादुर तक को डाटा
बड़े बड़े चूहों को काटा।
गर उक़ाब को भी मैं पाऊं
झूठ नहीं है, मज़े चखाऊं ॥ ६५

जितने जीव-जन्तु निशिचारी
उतने मेरे आज्ञाकारी।
अगर न वे मुझको ख़ुश रक्खें।
जल्द किये का फल वे चक्खें ॥ ६६

नहीं रोशनी मुझे सुहाती
नज़र मुझे जल्दी लगजाती।
इससे मैं दिन में डरता हूं
छिपा हुआ सब कुछ करता हूं ॥ ६७

शुक, पिक अगर सामने आवें
मुझे देख कर घबरा जावें।
मोरों को भी मैं फटकारूं
दौड़ दौड़ कर चोंचें मारूं ॥ ६८

लेकिन कोई और परिन्दा
गर इनको दिखलावे दन्दाँ।
उसको मैं कच्चा खा जाऊं
ज़रा नहीं मैं दया दिखाऊं ॥ ६९

हैं ये सब मेरा ही माल
मैंहीं हूं इन सब का काल।
पास और जो इनके जावे
वह मेरा शिकार हो जावे ॥ ७०

चिमगादड़ को गर मैं पाऊं
उसको ख़ता माफ फ़रमाऊं।
मेरा वही हक़ीक़ी भाई
सच कहता हूं राम-दुहाई ॥ ७१

जिसने जानी मेरी किल्ली
उससे मैं हो जाता बिल्ली।
सत्य-सूर्य्य जब मुझे दिखाता
अन्धकार में मैं छिपजाता ॥ ७२

यह सुन बुड्ढा जम्बुक बोला
सब बातों को उसने तोला।
"अब न और तकलीफ़ उठावो
डिकरो लेकर घर भग जावो" ॥ ७३

तब कुनबे के जम्बुक सारे
खड़े हो गये न्यारे न्यारे।
"हुआ हुआ जो ख़ूब हुआ"—
कह बुड्ढे का क़दम छुआ ॥ ७४

गिरगिट एक वहीं रहता था;
ज्ञानी अपने को कहता था।
बदल बदल कर रंग हज़ार
उसे हुआ था बुद्धि-विकार ॥ ७५

उसकी प्रिया छिपकली काली
सुन्दरता-मद से मतवाली।
उसने अण्डे देना चाहा
बोली मेरे आलीजाहा ॥ ७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसके जो कुछ जी में आया
अपना राग सभी ने गाया।
दिवाभीत ने डिकरी पाई
यह सुन मुझे रुलाई आई ॥ ७७

है घोंसला बहुत वह सुन्दर
अण्डे देती उसके भीतर।
ज्ञान कहां सब तुमने खोया
किस रंगत में उसे डबोया ॥ ७८

पास दौड़ जम्बुक के जावो
अपना ज्ञानोपन दिखलावो।
लावो छीन घोंसला मेरा
लगै उसी में कल से डेरा ॥ ७९

तब गिरगिट ने शीश उठाया
गिनकर बारह बार हिलाया।
कहा इसी दम मैं जाता हूं
छीन घोंसला ले आता हूं ॥ ८०

जन्तु-सृष्टि के सारे ज्ञानी
मेरे हाथों पीते पानी।
वर मैंने गिरिधर से पाया ;
बिना पढ़े सब मुझको आया ॥ ८१

यह कह, वह जम्बुक के घर
दौड़ा सरपट सर सर सर।
द्विजपति वैनतेय विख्यात
मिले उसे, भावी की बात ॥ ८२

उनका पैर पड़ गया उस पर
उखड़ी दुम दो टुकड़े होकर।
गिरगिट भगा छिपकली पास ;
हुए बाख़्ता होश हवास ॥ ८३

छोड़ी सब डिकरी की आस
हुआ पूंछ का सत्यानाश।
मरहम पट्टी .खूब चढ़ाई
किसी तरह से जान बचाई ॥ ८४

हुआ जम्बुकी न्याय तमाम
सब सन्तों को मेरा सलाम।
भूल चूक कर दीजे माफ़
बात सदा मैं कहता साफ़ ॥ ८५

पुस्तक-परीक्षा।

लिपिबोध का विवरण-खण्ड। मसवानपुर, ज़िला कानपुर, के निवासी पण्डित गौरीशङ्कर भट्ट ने नागरी लिखने का एक नया आविष्कार किया है। उन्होंने नियमानुसार अनेक प्रकार के चित्र विचित्र अक्षर लिखने की युक्ति निकाली है। जैसे अँगरेज़ी में सैकड़ों तरह के अक्षर होते हैं वैसेही भट्टजी ने नागरी में लिखकर अपनी लिपिकुशलता की पराकाष्ठा दिखलाई है। आपके बनाये हुए एक एक अक्षर को एक एक बेलबूटेदार चित्र कहना चाहिए। जिस पुस्तक में आपने अपनी चित्रित वर्णमालिका प्रकाशित की है उसका नाम है लिपिबोध। उसके दो खण्ड हैं। पहले खण्ड का नाम है आकृतिखण्ड। उसमें अक्षरों की सिर्फ़ आकृतियां हैं। वह छपकर प्रकाशित हो चुकी है। उसका विवरणखण्ड अब निकला है। इसमें आकृतिखण्ड की आकृतियों का विवरण है; और प्रत्येक आकृति के बनाने की तरकीब है। इतनाहीं नहीं, क़लम, ब्रश, ड्राइंग-बोर्ड और टी स्क्वायर आदि का प्रयोग भी इसमें समझाया गया है और भिन्न भिन्न तरह से अभ्यास करने की रीति भी बतलाई गई है। इस पुस्तक में एक "प्रस्तावना" है। उसमें लिपि के इतिहास के सिवा और भी बहुत सी बातें जानने लायक़ हैं। यदि पण्डित गौरीशङ्कर किसी और देश में होते तो उनका नाम आज दिगन्तव्यापी होगया होता और वे अब तक अमर भी होगये होते। पर इस अभागी भारत में गुणज्ञता का प्रायः अभावही है। धनाभाव के कारणही भट्टजी इस विवरणखण्ड को आकृतिखण्ड के साथ नहीं छपा सके। किसी किसी गुणग्राही ने उनकी सहायता की; परन्तु उतनी सहायता से क्या हो सकता था। भट्टजी ने २०० प्रतियां आकृतिखण्ड की मुफ़्त बाँट दीं! पर दाम देकर लोगों ने सिर्फ़ तीस चालीसही कापियां लेने की कृपा की! बहुत सी हानि उठाकर और अनेक प्रकार की असुविधाओं को झेल कर उन्होंने अब यह विवरणखण्ड भी प्रकाशित कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका मूल्य सिर्फ़ आठ आना है। आशा है, हिन्दी के प्रेमी, इस खण्ड को लेकर भट्टजी को सहायता करेंगे। उनको सहायता करना मानों उन्हें अर्थ-कृच्छ्रता के सङ्कट से उबारना है।

❋

असली ख़िज़ाब। सेठ रामचरण वर्म्मा एण्ड कम्पनी, भींड, रियासत ग्वालियर, का बनाया। दाम एक डिब्बी का १ रुपया। माधुरी एण्ड कम्पनी, सिरकी मोहाल, कानपुर से भी यह मिल सकता है। इस कम्पनी के मालिक प्रणपूर्वक कहते हैं कि सिर्फ़ ३ मिनट में यह ख़िज़ाब सफ़ेद बालों को काला कर देता है और उनका कालापन १५ दिन तक बना रहता है। इस बात को हमारे दो मित्रों ने आज़माया और सही पाया।

❋

नारद। यह मासिकपत्र कुपरा से निकलता है। इसका वार्षिक मूल्य १ रुपया है। इसमें, हर महीने, १६ पृष्ठ रहते हैं। इसके दूसरे वर्ष का पहला (सेपृम्बर का) अङ्क हमारे पास "समालोचनार्थ" भेजा गया है। इस पत्र के हमने और भी कई अङ्क देखे हैं। कोई कोई लेख इसके अच्छे होते हैं। उदाहरण—सारन का ऐतिहासिक वृत्तान्त। कभी कभी एक आध वैज्ञानिक लेख भी इसमें रहा करे तो अच्छा हो। पर यह बात सम्पादकही जान सकता है कि उसके पाठकों की रुचि कैसी है। इस पत्र के पूर्वोक्त अङ्क में हम पर यह दोष लगाया गया है कि हमने "नारद" का नवां अङ्क, "लेने से इनकार किया" लिख कर, लौटा दिया। पर हमें याद नहीं कि हमने कभी ऐसा किया हो। बैरंग पत्र और बेमाँगे आये हुए "वैल्यूपेएबल" पैकटों को छोड़कर और हम कोई चीज़ नहीं लौटाते। "नारद" को भी हमने यही लिख दिया; पर हमें कोई उत्तर नहीं मिला।

शिक्षामणि। कर्ता—लाला नारायणदास बी० ए०, एल० एल० बी०, वकील, जालन्धर। मूल्य दो आने। यह पुस्तक कन्यापाठशालाओं के लिए बनाई गई है। इसमें जो विषय हैं, लड़कियों के पढ़ने लायक़ हैं, इस समय जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय में जो पुस्तकें जारी हैं उनमें अनेक दोष हैं। विद्यालय के अधिकारियों को चाहिए कि वे शिक्षामणि के सदृश पुस्तकें अपने यहाँ जारी करें। इस पुस्तक की भाषा कुछ क्लिष्ट है और इसके पद्यों में भी कुछ संशोधन दरकार है। यदि ये दो दोष निकाल दिये जायँ तो पुस्तक निर्दोष हो जाय।

❋

नागरी की पहली। जालन्धर में गवर्नमेंट की एक संस्कृत-पाठशाला है। उसके प्रधानाध्यापक पण्डित कर्म्मचन्द्र शर्म्मा ने इस पुस्तक की रचना की है। इसमें ४७ पृष्ठ हैं। दाम इसके डेढ़ आने हैं। इस पुस्तक को पंजाब की टेक्स्ट बुक कमिटी ने एंग्लो स्कूलों में पढ़ाने के लिए नियत किया है। पण्डित कर्म्मचन्द्र ने नागरी की दूसरी, तीसरी और चौथी भी बनाई है। ये नाम हमें कुछ सूने से मालूम होते हैं। पहली क्या? मतलब पुस्तक से है। फिर "पुस्तक" शब्द क्यों छोड़ दिया गया। कर उस पंजाब में शायद पुस्तकों के नाम इसी तरह के होते हों। "नागरी की पहली" अच्छी पुस्तक है। लिया। इसमें दोष हमको इतनाही देख पड़ता है कि भा नतीजा इसकी बेहद क्लिष्ट है। छः सात वर्ष के बच्चों शित कि लिए "गार्गी बड़ी विदुषी थी," या "विद्वान् एक लड़ पूजार्ह (पूजा-योग्य) है," या "सूर्य की रश्मि की है। से पहले उठो" आदि वाक्य रखना ठीक नहीं हो गई इसमें प्राय सब कहीं "नहीं" की जगह "नहि २० वर्ष का प्रयोग हुआ है!

रहता सुख़न से नाम क़यामत तलक है ज़ौक़।
औलाद से तो बस यही दो पुश्त चार पुश्त॥

—ज़ौक़।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

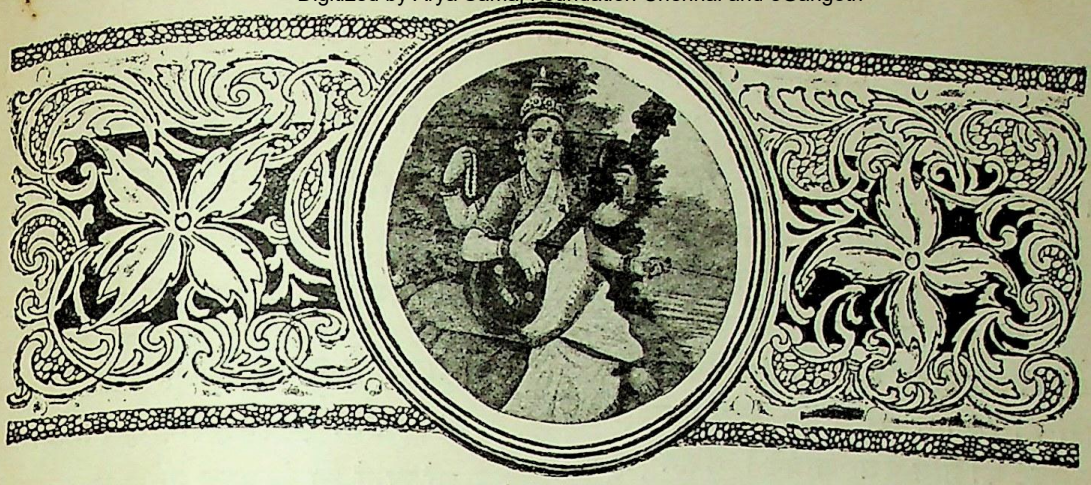

सरस्वती।

भाग ७] एप्रिल, १९०६ [संख्या ४

विविध विषय।

नवम्बर १९०५ की सरस्वती में पुनर्जन्म पर एक लेख छपा है। उसमें लिखा गया है कि कर्नल डि. रोचज़ ने प्राणपरिवर्तनविद्या की सहायता से एक लड़की को सुला कर उससे अपने कई पिछले जन्मों का हाल पूछ लिया। इन्हीं कर्नल साहब ने अब एक इसी तरह का, पर भविष्यवाद-विषयक, प्रयोग करके उसका नतीजा एक विलायती सामयिक पुस्तक में प्रकाशित किया है। इस दफ़ा भी जूलियट नाम की एक लड़की ही चुनी गई। उसकी उम्र १८ वर्ष की है। पाश देते देते जब वह प्रयोक्ता के वश में हो गई तब उससे कहा गया कि तुम्हारी उम्र अब ८० वर्ष की है। कहो अब तुम्हारा क्या हाल है? वह बोली—"ग्रिन्तेबल शहर छोड़े मुझे तीन चार वर्ष हुए। मैं अब जेनोवा में हूं। मैं एक संगतराश के पास काम करती हूं"। अच्छा अब तुम २२ वर्ष की हो। "अब मैं नाइस नगर में हूं। मुझे सर्दी हो गई है; खांसी बहुत आती है; अब काम पर नहीं जाती"। जब उसकी उम्र और बढ़ाकर बतलाई गई तब उसकी तबीयत बहुत ख़राब हो गई; खांसी बढ़ गई; चेहरा उतर गया; उसे बहुत तकलीफ़ होने लगी। अन्त में वह मर गई; उसका सिर कन्धे पर पड़ा रह गया; अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल हो गये। वह पाश देकर फिर जिलाई गई। तब उसने फिर बातें शुरू कीं। उसने कहा—"मैं २५ वर्ष की उम्र में मरी। मेरे सूक्ष्मशरीर ने मेरे स्थूलशरीर को ज़रा भी तकलीफ़ बिना छोड़ दिया—छोड़ने में देर भी नहीं लगी। मुझे याद है मैं जूलियट हूं, और हमेशा नेकचलन रही हूं। उसके पहले मैं पुरुष थी। पुरुषावतार में मेरी मृत्यु जवानी में ही हो गई थी। मुझे उस जन्म में बहुत तकलीफ़ें उठानी पड़ी थीं। क्योंकि उसके पहले जन्म में मैं एक बदचलन स्त्री थी।" इसके बाद कुछ देर में उसने कहा—"अच्छा हुआ मैंने जूलियट का शरीर छोड़ दिया। मुझे कोई तकलीफ़ नहीं। मुझे उन सबका स्मरण बना हुआ है जिन्होंने मुझ पर मेहरबानी की थी—विशेष करके कर्नल डि. रोचज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मैं नहीं भूलती। मेरे मरने के दो वर्ष बाद वे मरे"। इससे साबित हुआ कि कर्नल साहब को अब सिर्फ़ ९ वर्ष इस दुनिया में रहना है। इसके बाद जूलियट ने अपने भावी जन्म का हाल कहा। इस दफ़ा उसने पुरुष का अवतार लिया। उसके पैदा होते ही उसकी माँ मर गई। बाप मकान छाने के खपड़ों का रोज़गार करता है। अमीर आदमी है। जूलियट का नाम हुआ चामेटे। उसने ख़ूब लिखा पढ़ा। उसकी इच्छा धर्म्मोपाध्याय होने की थी। वह पूर्ण हुई। १९४० ईसवी में वह हावरे नामक स्थान में उपाध्याय हो गई। अर्थात् १९१२ ईसवी में जूलियट मरी। और १९४० में, २८ वर्ष बाद, वह चामेटे के रूप में धर्म्मोपाध्याय हुई। मालूम नहीं जूलियट के मरने पर उसका पुनर्जन्म कितने दिन बाद हुआ।

* * *

हमारे "भाषा और व्याकरण" शीर्षक लेख की आलोचना के बहाने, जो अन्याय-पूर्ण, आक्रमण-बहुल और विद्वेष-विषाक्त लेख लिखे गये उनका उचित उत्तर देनेवाले सज्जनों के हम कृतज्ञ हैं। इस विषय में हिन्दी-बङ्गवासी, श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार, वैश्योपकारक, भारतजीवन, श्रीराघवेन्द्र, कान्यकुब्ज और हितवार्ता आदि में जो लेख, कवितायें और प्रहसन आदि निकले हैं, उन्होंने इस बात को साबित कर दिया कि हिन्दी जाननेवालों में हिन्दी के हितचिन्तन का अब तक समूल निर्मूलन नहीं हुआ; न्यायान्याय का विचार अब तक बना हुआ है; सत्य का अपलाप होते देख अब तक उनकी लेखनी में तेजस्वितापूर्ण लेख लिखने की शक्ति बनी हुई है। विद्वत्तापूर्ण, युक्तिसङ्गत और सप्रमाण लेख लिखने के लिए हिन्दी-बङ्गवासी के लेखक महाशय का हम विशेष अभिनन्दन करते हैं। जिन सज्जनों ने पक्षपात छोड़कर हमारे पहले लेख और उसके बाद प्रकाशित हुए हमारे उत्तर में दोष दिखलाये हैं उनके कथन का हम सहर्ष और सधन्यवाद विचार करेंगे। आशा है, हिन्दी-व्याकरण की विपन्नावस्था देख हिन्दी के सुलेखक उसे सुधारने का अब अवश्य यत्न करेंगे।

* * *

एक फ़ारसी-कवि किसीसे कहता है—

याददारी बवक्ते ज़ादन तू
हमा ख़न्दाँ बुदन्द तू गिरियाँ।
आँ चुनाँ ज़ी के बाद मुर्दन तू
हमा गिरियाँ बुदन्द तू ख़न्दाँ॥

अर्थात् तुझे याद है या नहीं कि जिस समय तू पैदा हुआ था, तू रोता था और हम हँसते थे। अब तुझे मुनासिब है कि तू इस तरह अपनी ज़िन्दगी बसर कर—इस तरह रह—कि तेरे मरने के बाद हम लोग तो रोयें, पर तू हँसे। क्या ही अच्छी उक्ति है!

* * *

लोग हमारे पास समालोचना के लिए पुस्तकें भेजते हैं और यदि समालोचना में देर होती है तो तकाज़े पर तकाज़े आते हैं। यदि समालोचित पुस्तकों में, न्याय-परवश होकर, हमें कोई दोष दिखलाने पड़ते हैं तो लोग अप्रसन्न होते हैं। इसके हमें, आज तक, अनेक उदाहरण मिल चुके हैं। इससे, समालोचना के लिए पुस्तकें भेजनेवाले सज्जनों से हम प्रार्थना करते हैं कि जो समालोचना का अर्थ स्तुति समझते हों अथवा जो केवल गुण-गान सुनना चाहते हों, वे आज से हमारे पास कोई पुस्तक समालोचना के लिए न भेजें।

* * *

डाक्टर हागसन, केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय के अध्यापक थे। वहीं विद्याध्ययन भी इन्होंने किया था। वहां से जब वे अमेरिका गये तब अमेरिका की एक अध्यात्मविद्या-विषयक सभा के मंत्री हुए। इस पद पर रह कर आत्मासम्बन्धी बातों की इन्होंने बहुत कुछ जांच की। इसमें उनका बड़ा नाम हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे अब इस लोक में नहीं हैं; जहां मुर्दों की आत्मायें रहती हैं, वहां हैं। वहां गये उनको अभी बहुत दिन नहीं हुए। जब वे जीते थे तब अपने मित्रों से कहा करते थे कि मरने पर मैं दूसरे लोक से ख़बर ज़रूर भेजूंगा। यह वादा उन्होंने पूरा कर दिया। उनकी भेजी हुई ख़बर एक आदमी के पास आई है और उस ख़बर की ख़बर अमेरिका के "न्यू यार्क हेरल्ड" नामक पत्र में छपी है। इस पर अध्यात्मविद्या के अनुरागियों में बड़ा कोलाहल मच रहा है। बहुत लोगों को इस ख़बर पर विश्वास नहीं होता।

* *
*

पाठकों को सुनकर शायद आश्चर्य्य होगा कि मनुष्य-जाति में गरुड़ के गुरु और मयूर के मामा भी पड़े हुए हैं। वे मुर्दा नहीं किन्तु ज़िन्दा ही साँप निगल जाते हैं। और साँप भी सब छोटे छोटे नहीं, बड़े बड़े भी—यहां तक बड़े कि निगलने के बाद भी वे पेट में घंटों ज़िन्दा रहते हैं। एक अँगरेज़ी-पत्रिका में ऐसी ही ख़बर छपी है। इस सर्पभक्षी आदमी का नाम है नाक्स। यह काफ़िर है और दक्षिणी आफ़रीक़ा के "किंग विलियम्स टौन" में रहता है। इसका पेशा ही साँप निगलने का है। इसके शहर के अजायबघर का अध्यक्ष इसके विषय में इस तरह लिखता है—एक साँप निगलने के लिए यह ६ से ९ आने तक लेता है। जैसा साँप हो वैसाही चार्ज। यह सब तरह के साँप लिये हुए घूमा करता है। सब निगलने ही के लिए। उनमें बड़े बड़े विषधर काले नाग भी होते हैं। इसे साँप अकसर काट लेते हैं; पर ज़हरीले से भी ज़हरीले साँप के काटने का इस पर कुछ भी असर नहीं होता। एक दिन बड़ी दिल्लगी हुई। नाक्स मेरे पास आया और कहने लगा—"Baas, please give me little bit camphor to eat; we swallow big snake, but he no' dead yet!" अर्थात् "मैंने एक बड़ा सा साँप निगला है; पर वह अभी तक पेट में ज़िन्दा है, मरा नहीं। मेहरबानी करके मुझे कपूर की एक डली खाने को दीजिए"। इस काफ़िर के फ़ोटो लिये गये हैं और अँगरेज़ी-पत्र और पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

* *
*

सरस्वती के पाठकों में जो सज्जन संस्कृत से अभिज्ञ हैं उनका परिचय हम कोल्हापुर से निकलने वाली संस्कृतचन्द्रिका नाम की मासिक पुस्तक से कराते हैं। यह पत्रिका आज १२ वर्ष से निकलती है। इसके लेख बहुतही उपयोगी और विद्वत्ता-पूर्ण होते हैं। संस्कृत भी अत्यन्त मनोहर होती है। जिनको संस्कृत से कुछ भी अनुराग है उसे इस पत्रिका को अवश्य देखना चाहिए। संस्कृत में निकलनेवाली पत्रिकाओं में यह सबसे श्रेष्ठ है। इसके सम्पादक श्रीजयचन्द्र शर्म्मा, सिद्धान्तभूषण, और श्री-अप्पा शास्त्री विद्यावाचस्पति हैं। पर सम्पादकत्व का भार वाचस्पतिजी ही पर है। दाम, वार्षिक, १॥) मात्र।

* *
*

मिस्टर टहलराम गङ्गाराम ने एक छपा हुआ पत्रक हमारे पास भेजा है। वह "साधु ब्राह्मण महात्माओं के कर्तव्य" विषय में है। उसमें भारत-वर्ष की प्राचीन विद्या, वाणिज्य और वीरता आदि का संक्षिप्त वर्णन करके यह प्रार्थना की गई है कि इस देश के साधु, सन्यासी, महात्मा और ब्राह्मणों को फिर अपने शुभ-कर्त्तव्य-पालन में प्रवृत्त होना चाहिए। शिक्षा-दान के उद्देश्य से आप डेरा-इस्माईलख़ां में एक साधु-विद्यालय खोलनेवाले हैं। आपके इस सदनुष्ठान का हम अभिनन्दन करते हैं।

* *
*

"कलवार-गज़ट" नाम का एक नया मासिक-पत्र जनवरी १९०६ से निकलने लगा है। मध्यम साँचे के २४ पृष्ठ इसमें रहते हैं। मिर्ज़ापुर-निवासी बाबू काशीप्रसाद इसके सम्पादक हैं। आरमी प्रेस, कानपुर, में यह छपता है। सर्वसाधारण से वार्षिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्य इसका रु० १॥) है। छपाई और काग़ज़ उत्तम हैं। रूप-रङ्ग भी मनोहर है। यद्यपि यह जातीय-पत्र है, तथापि इसमें जातीय लेखों के सिवा और लेख भी रहते हैं। इसके दो अङ्क निकल चुके हैं। इन अङ्कों में जो लेख हैं सब सुपाठ्य हैं। व्यापार-विषयक कई लेख इसमें अच्छे अच्छे निकले हैं। इस विषय में पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए०, का एक लेख बहुत मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है। पत्र होनहार है और सबके पढ़ने लायक़ मालूम होता है। कलवार-महती-सभा (मिर्ज़ापुर) इसे प्रकाशित करती है।

* *
*

श्री अगम्यगुरु परमहंस नाम के एक साधु विलायत पहुँचे हैं। नाम आपका बहुत टेढ़ा मेढ़ा है। एक विलायती पत्र में आपकी बड़ी तारीफ़ छपी है। आप इसी देश के हैं; यहां किसी हाई-कोर्ट के जज थे। मालूम नहीं किसके। आपका भारतवर्षी नाम भी मालूम नहीं। १९०३ में आपने इँगलैंड की ख़ूब सैर की। मैक्समूलर को आपने अपनी विद्या से मोहित कर दिया था। आपने "श्री-ब्रह्मधारा" नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसकी आज कल विलायती पत्रों में ख़ूब तारीफ़ हो रही है। अगम्यगुरुजी पूरे योगी हैं। उन्होंने अपनी योगविद्या की परीक्षा अध्यापक कारपेंटर और केम्ब्रिज के डाक्टर हाजसन के सामने देकर बहुत प्रसिद्धि पाई है। मालूम नहीं आप इस समय कहां हैं। कप्तान जेम्स टौनश्यंड नाम के एक साहब विलायत में हो गये हैं। एक अँगरेज़-लेखक कहता है वे भी पूरे योगी थे। साथही वह कटाक्ष भी करता है कि हिन्दू लोग इस बात को क्यों क़बूल करेंगे ?

* *
*

बरीसाल में एक साहित्य-सभा होनेवाली है। उसमें बंगाले के साहित्य-सेवी इकट्ठे होंगे। इस सभा के सभापति का आसन बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर को दिया जायगा। यह बात किसी किसीको पसन्द नहीं। कलकत्ते के "डेली टेलिग्राफ़" नामक पत्र की राय है कि यह सम्मान बाबू द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर को मिलना चाहिए। बाबू चन्द्रनाथ वसु, बाबू अक्षय-चन्द्र सरकार, बाबू इन्द्रनाथ बैनर्जी, बाबू नवीनचन्द्र सेन, और महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री से भी वह, रवि बाबू की अपेक्षा, इस पद के अधिक योग्य समझता है। वह कहता है—"बाबू रवीन्द्रनाथ अच्छे कवि हैं; पर बाबू नवीनचन्द्र उनसे भी बड़े कवि हैं और ऐसे वैसे नहीं, नामी ऐतिहासिक कवि हैं। बाबू रवीन्द्रनाथ प्रबन्ध और आख्यायिका-लेखक हैं; पर बाबू अक्षयचन्द्र की योग्यता इन विषयों में उनसे भी बढ़ी चढ़ी है। वे गहरे विद्वान् हैं। बाबू रवीन्द्रनाथ समाज-संशोधक हैं; पर समाज-शास्त्र में बाबू चन्द्रनाथ इतने कुशल हैं कि सामाजिक विषयों में उनकी बात प्रमाणवत् मानी जाती है। बाबू रवीन्द्रनाथ समालोचक हैं पर बाबू चन्द्रनाथ और पण्डित हरप्रसाद उनसे भी बड़े समालोचक हैं; यही नहीं विशेष विद्वान् भी हैं। बाबू रवीन्द्रनाथ तत्ववेत्ता हैं; पर बाबू द्विजेन्द्रनाथ उन्हें अब भी तत्व सिखला सकते हैं। बाबू रवीन्द्रनाथ विनोदशील, प्रत्युत्पन्न-मति और परिहास-प्रेमी हैं; पर इन्द्रनाथ, इन बातों में, सारे बंगाल में अपना सानी नहीं रखते। तिस पर भी बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर साहित्य-सभा के सभापति बनाये जायँगे। सचमुच यह आश्चर्य्य की बात है। जो एक ही विषयों का पूर्ण ज्ञाता है उसके सामने सब विषयों के ज्ञाता की क़ीमत ही कितनी ? हां, इस एक सभा के ६ पति हों तो कैसा ?

* *
*

१८५७ ईसवी के सिपाही-विद्रोह के बाद महारानी विक्टोरिया ने जो घोषणापत्र इस देश में प्रकाशित किया था वह बड़े महत्व का था। उसे राजकीय नहीं, किन्तु महत्वपूर्ण एक प्रा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख समझ कर, उसका हिन्दी अनुवाद हम इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित करते हैं।

साधु-समागम।

(स्वामी सच्चिदानन्द मुनि)

"सङ्गः सर्वात्मना हेयः सचेत्युक्तं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां संगो हि भेषजम्॥"

पंजाब में अमृतसर प्रसिद्ध ही है। अमृतसर ज़िले में कोहाला नाम का एक क़सबा है। सन् १८९३ ई० में वहां एक नारायणदास नाम-धारी नहर के पटवारी का निवास था। नारायणदास अपना काम बहुत सावधानी के साथ करते थे और हाकिम, ज़मींदार और असामी सभी उनसे प्रसन्न रहते थे। धर्म के विषय में वे अनेक प्रकार की शङ्कायें रखते थे। उनकी प्रवृत्ति वैष्णवमार्ग की ओर अधिक थी। उस समय उनकी अवस्था लगभग २० वर्ष की थी। उनका जन्म गंगवाली, ज़िला स्यालकोट, का था, जो कोहाला से प्रायः ६० कोस है। कोहाला में एक अद्वैत-निष्ठ महात्मा का आगमन हुआ। नारायणदास को साधु-समागम, सत्संग और धर्म-चर्चा की स्वभाव से ही रुचि थी और इन गुणों के साथ साथ विवाद की भी। इसलिए वे उन महात्मा की सेवा में उपस्थित होने लगे और महात्मा भी उनको शुद्ध-प्रकृति और जिज्ञासु समझकर उन पर कृपा करने लगे। वह कृपा उपदेश और शङ्का-समाधान के स्वरूप में की। साधुओं की कृपा ही और क्या है?

यहां यह लिख देना आवश्यक है कि पहले उन महात्मा के शिष्य से नारायणदास का परिचय हुआ। उससे वे धर्म-विषयक विवाद किया करते थे और उसीके द्वारा उनकी पहुँच उन महात्मा तक हुई। महात्मा की उपदेश-शक्ति असाधारण थी। उसके प्रभाव से नारायणदास के सब संशय दूर हो गये।

दो महीने निवास करके महात्मा ने उस गाँव से प्रस्थान किया। तब नारायणदास जीविका परित्याग करके उनके पीछे हुए। ये महात्मा प्रसिद्ध स्वामी ग़रीबदास थे। वे किसी व्यक्ति का अपने साथ रहना पसन्द नहीं करते थे। इसलिए उनके देशाटन में नारायणदास उनसे कुछ दूर रह कर समय समय पर उनके सामने उपस्थित हुआ करते थे। चार महीने योंही भ्रमण रहा। इस श्रद्धा और तत्परता का यह शुभ परिणाम हुआ कि महात्मा ने करुणापूर्वक कुम्भ-संक्रान्ति, सम्वत् १९५०, के पवित्र मुहूर्त में उनको शिष्य-पद प्रदान किया। इससे नारायणदास ने त्याग के आश्रम में पदार्पण किया और गृहस्थो के बन्धन से वे मुक्त हुए। उस समय से नारायणदास-"स्वामी सच्चिदानन्द" हुए और वेदान्तविचार में उन्होंने ऐसी उन्नति की कि महात्मा ग़रीबदास के शिष्यत्व को सफल करते हुए वे "स्वामि" पद के सच्चे अधिकारी हो गये। धीरे धीरे सन्तमण्डली में वे "सच्चिदानन्द मुनि" के नाम से विख्यात हुए।

हमने ऊपर साधु-कृपा का उल्लेख किया है। इसलिए हम इस स्थान पर कृपा का व्याख्यान (जैसा स्वयं सच्चिदानन्दजी से हमने सुना है) देना उपयोगी समझते हैं। कृपा पाँच तरह की होती है—(१) आत्मकृपा—अर्थात् अपने आपही पर कृपा। निजको संसार-जाल से उद्धार करके परमानन्द को प्राप्त होने की इच्छा इसीके प्रभाव से होती है (२) ईश्वरकृपा—अर्थात् वह कृपा जिससे ईश्वर जिज्ञासु के संसारिक कार्य्यों का ऐसा संविधान कर देता है कि शास्त्र पढ़ने का उसे अवकाश मिलता है (३) शास्त्रकृपा—जिससे शास्त्र के उपदेश किये हुए सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने की और धारण करने की शक्ति प्राप्त होती है। (४) गुरुकृपा—अर्थात् जिससे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा गुरुभाव से युक्ति-युक्त व्याख्यान द्वारा शिष्य के हृदय में वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों को स्थित कर देता है। इनके सिवा पाँचवीं (५) साधुकृपा—अर्थात् अनेकानेक वेदान्तनिष्ठ साधुओं के मुखारविन्द से गुरु द्वारा सीखे हुए सिद्धान्तों की पुष्टि सुनना और उनको उन सिद्धान्तों पर आरूढ़ देखना जिससे मुमुक्षु की उन सिद्धान्तों में उत्तरोत्तर दृढ़ता बढ़ती जाती है—इस कृपा का फल है।

स्वामी सच्चिदानन्द मुनि के माता पिता उनकी बाल्यावस्थाही में उनका यज्ञोपवीत करके परलोकवासी हो चुके थे। जिस समय वे त्यागी हुए उस समय उनका विवाह भी नहीं हुआ था। इससे आश्रम बदलने में उनको अवश्य सुगमता हुई होगी। अलबत्ता उनके दो बड़े भाई कोहाला में थे, जिनसे पैत्रिक सम्पत्ति में भाग लिये बिना ही वे नौकरी की खोज में लाहौर चले गये थे। साधुवेष धारण करने के उपरान्त एक बार वे अपनी जन्मभूमि के दर्शन को (जैसी कि साधुओं की प्रणाली कही जाती है) कोहाला गये। उस समय उनके भाइयों, कुटुम्बियों, और परिचित जनों ने उनको घेर कर उनकी अवस्था पर बहुत शोक प्रकाश किया और करुणा-वश होकर मोह की बातें कीं। स्वामीजी ने बड़े चातुर्य्य से उनका आश्वासन किया। उनके कथन का तात्पर्य्य यह था कि—"यदि तुम्हारे कुटुम्ब में कोई व्यक्ति बड़े दर्जे को पहुँच जाय तो तुमको दुःखित होने के बदले सुखी होना चाहिए।"

स्वामी सच्चिदानन्द मुनि ने विद्याभ्यास इस भाँति किया था—

पण्डित रामनिवास (फ़ीरोज़पुर) से विचार माला और वैराग्यशतक; पण्डित बालराम शास्त्री से व्याकरण; स्वामी सेवाराम दादूपन्थी (हृषीकेश) से उपनिषत्; परम विख्यात स्वामी केशवानन्द (कनखल) परमहंस स्वामी मंगलगिरि तथा स्वामी आनन्तानन्दजी वेदान्ताचार्य्य (हृषीकेश) से वेदान्त (विविध ग्रंथ)। सिद्ध स्वामी अरविन्दानन्द (नामान्तर-कमलनयन) के सत्संग से भी इन्होंने बहुत कुछ ज्ञानार्जन किया।

स्वामी ग़रीबदास पहले नागे थे। तदुपरान्त परमहंस गति को पहुँचे। अतएव स्वामी सच्चिदानन्द मुनि उन्हींके सम्प्रदाय के कहे जा सकते हैं। तथापि वे निज को किसी सम्प्रदाय-विशेष से सम्बन्ध रखनेवाला नहीं मानते। एकबार पंथ पूछने पर उन्होंने हँसकर अपना पंथ "अन्तःसन्यास" "आज़ाद," "अद्वैत" बतलाया। हमारा परिचय स्वामीजी से श्रीनिवास बाग़ (कानपूर) में आषाढ़ में हुआ। प्रथम मिलन से ही अत्यन्त शान्त स्वभाव, सदैव प्रसन्नचित्त, जिज्ञासुकृपाशील इत्यादि उनके गुण हमारे हृदय में अङ्कित हो गये। उनके सत्संग और उपदेश से यथाभाग्य हमने आनन्द भी प्राप्त किया। वेदान्त की शङ्काओं को दूर करदेने की इनमें विशेष शक्ति है। कैसी ही शङ्का कीजिए, उनको क्रोध नहीं आता। प्रत्युत बड़े प्रेम और हर्ष से आप शङ्का-समाधान करते हैं। वेदान्त के सिद्धान्तों में ऐसी दृढ़निष्ठा है और प्रक्रिया के विचारों में ऐसी गति है कि प्रत्येक शङ्का का उत्तर युक्तियों समेत उन्हें अनायास उपस्थित रहता है। उनके साथ हमने ३५ दिन शिष्य-भाव से रहते हुए देखे जो अनेक पुस्तकें पढ़ते और सत्संग का लाभ उठाते हैं। यह मण्डली हमको बहुत ही सुहावनी मालूम हुई। हमने इसके दो चित्र लिये हैं। एक में केवल स्वामीजी हैं, दूसरे में वे और उनके साथवाले कुछ साधु हैं।

वेदान्त के जिज्ञासुओं के लिए अध्ययन-क्रम के प्रारम्भ में स्वामी जी की सम्मति में आत्मबोध और आनन्दामृतवर्षिणी उपयोगी पुस्तकें हैं। प्रक्रिया-सम्बन्धी हिन्दी-भाषा के ग्रंथों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचारसागर और विचारचन्द्रोदय की ये प्रशंसा करते हैं। संस्कृत में पञ्चदशी को ये परमोत्कृष्ट मानते हैं, और योगवाशिष्ठ को सिद्धान्त में मनन-रूप श्रेष्ठ ग्रंथ कहते हैं। भगवतद्गीता पर स्वामी चिद्घनानन्द कृत टीका को ये बहुत उपकारी समझते हैं और *प्रस्थानत्रय के शङ्करभाष्य पर तो सभी महात्माओं की समाननिष्ठा है। स्वामीजी श्रौत और स्मार्त धर्म के प्रतिपादक हैं और जिज्ञासुओं के लिये मूर्तिपूजा इत्यादि उपासना को अन्तःकरण-शोधक और ज्ञानोपार्जन का सहायक बतलाते हैं।

स्वामीजी की अवस्था इस समय ३२ वर्ष की है, क्योंकि उनका शुभ जन्म भाद्रपद शुक्ल १३ सं० १९३० को हुआ था। आशा की जाती है कि बहुत काल तक स्वामीजी अपने सदुपदेश से मुमुक्षुओं को पारलौकिक लाभ पहुंचाते रहेंगे। वास्तव में इस काल में, जब कि साधु वेषधारी असाधुओं की भरमार है, हमलोगों को सच्चिदानन्द मुनि सदृश महात्माओं की अत्यन्त अपेक्षा है। ऐसे ही महात्मा सच्चे साधुपद के उदाहरण-स्वरूप हैं। साधु-समागम की महिमा अपार है। इसने हैदराबाद मतवाले एक सामान्य पटवारी को भी मुनिपद को पहुँचा दिया।

प्यारे पाठकगण, क्या आप सत्संग की कामना करेंगे?

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

—कैवल्योपनिषत्।

देवीप्रसाद।
सहदेवप्रसाद।

---

* उपनिषत्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता।

काव्य-कुसुमाञ्जलि।

[१]

करो सदा जग में शुभ काम,
जिससे मिलै तुम्हें धन-धाम।
दुष्कर्मों को दीजे त्याग,
मन को पकड़ लीजिये बाग ॥

[२]

विद्या बिना न आदर होय,
जग में बात न पूछै कोय।
जो विद्या पढ़ते भरपूर,
वे रहते प्रमोद में चूर ॥

[३]

करैं तपस्या औ जो योग,
ऐसे दुर्लभ जग में लोग।
जिनके मन में नहीं विवेक,
ऐसे जग में पुरुष अनेक ॥

[४]

दया धर्म का है शुभ मूल,
इसे छोड़ना कभी न भूल।
हिंसा करते जो दिन रैन,
वे दुख के बनते हैं ऐन ॥

[५]

विद्या सम धन नहिँ जग और,
उसे चुरा सकते नहिँ चोर।
नृप से वह नहिँ छीनी जाय,
बन्धु न उसको सकैं बँटाय ॥

[६]

जिनके मन में है सन्तोष,
जग में वही पुरुष निर्दोष।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख से रहते दुनिया बीच ,
उन्हें न कोई कहता नीच ॥

[७]

पाप-कर्म्म से जिनका योग ,
आस्तिक वे न कहाते लोग ।
नहीं जिन्हें ईश्वर का ज्ञान ,
वे हैं महा मूढ़ अज्ञान ॥

[८]

जो विषयों में रहते लिप्त ,
जारकर्म्म करते हैं गुप्त ।
वे नर हैं अवश्य दुर्बुद्धि ,
नहीं आत्मा उनकी शुद्ध ॥

[९]

गुणी पुत्र अच्छा है एक ,
भले नहीं अवगुणी अनेक ।
मूर्ख से न कुछ सरता काम ,
पिता सदा उससे बदनाम ॥

[१०]

जिसके माता पिता महान ,
सुत होते उनके गुणवान ।
जिसके मातापिता अजान ,
पुत्र न हों उनके विद्वान ॥

[११]

करते जो नहिँ ईश्वर-ध्यान ,
वे अवश्य पापी नादान ।
उनका होता नहिँ कल्यान ,
जग में पाते कष्ट महान ॥

[१२]

पार्वती कहती कर जोर ,
इस पर करो पुरुष सब गौर ।
बे नारी-शिक्षा-विस्तार ,
देश का न होगा उद्धार ॥

पार्वती देवी ।

कोकिल ।

[अँगरेज़ी कविता "The Cuckoo" का भावानुवाद]

[१]

Hail, beauteous stranger of the grove !
Thou messenger of spring !
Now Heaven repairs thy rural seat,
And woods thy welcome sing.

❁

सुभग विदेशी-मित्र कुञ्ज-पिक शुभागमन हृत,
ऋतुपति-धावन चतुर करत जग-जनन अनन्दि
लहलहात तव कुञ्ज प्रकृति-शृङ्गारित सुन्दर,
कल-रव पक्षी करत बधाई देत तुम्हें वर ॥

[२]

What time the daisy decks the green,
Thy certain voice we hear ;
Hast thou a star to guide thy path,
Or mark the rolling year ?

❁

तव नियमित कल-गान करत मन मोहित सब
सूर्य्यमुखी मुख फेरि लखावति जब दिनकर-
पथदर्शक तव अहै काह कोउ नखत शुभङ्कर
तोहिँ जु देत बताय आगमन उत्तर रवि कर

[३]

Delightful visitant, with thee
I hail the time of flowers,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

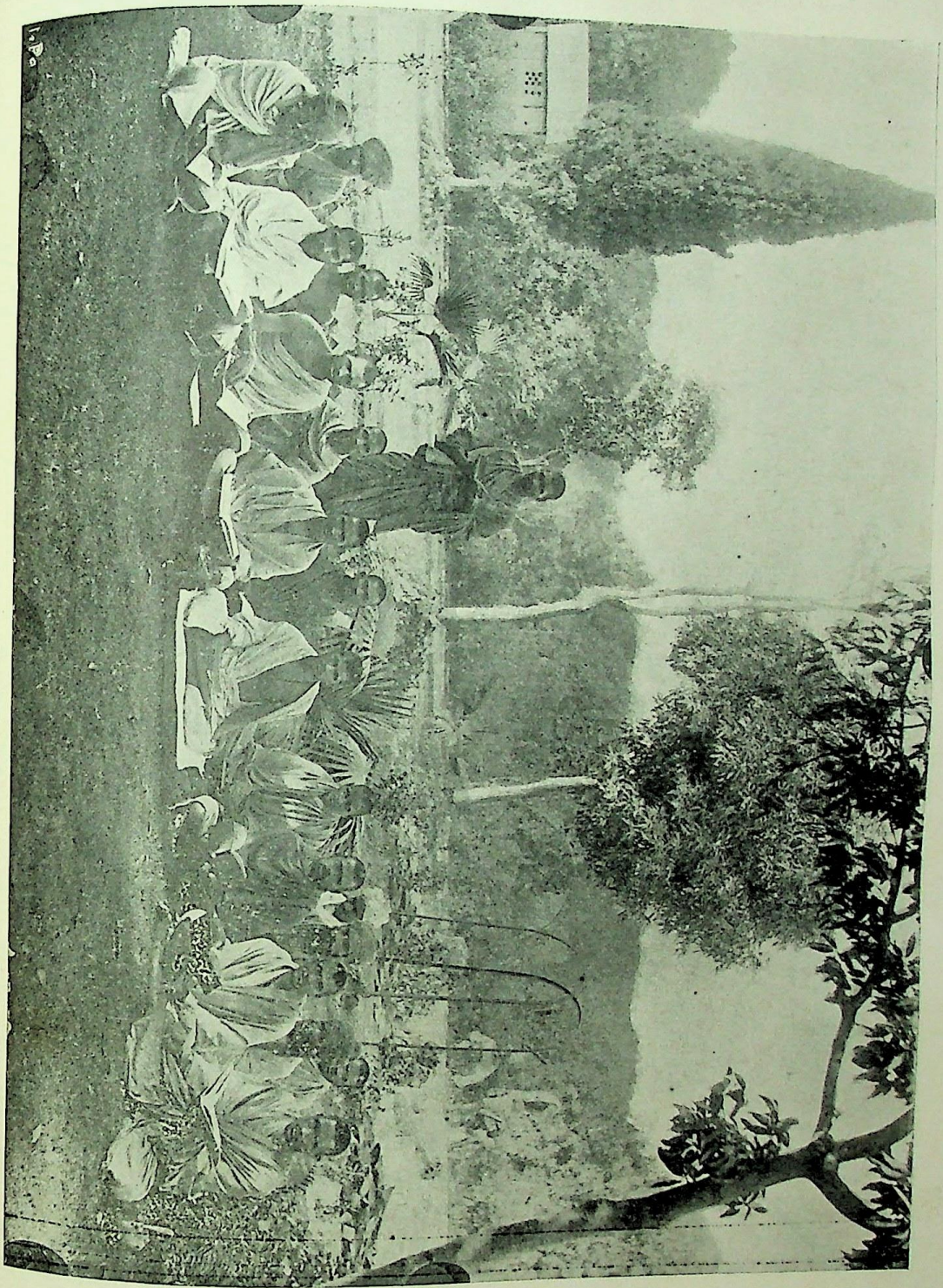

शिष्यमण्डली परिवृत स्वामी सच्चिदानन्द मुनि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

And hear the sound of music sweet
From birds among the bowers.

❁

दर्शक-सुखद सुजान, आगमन तव मुहिँ भावत,
निज सँग तू नव सुमन-सुरभि सरसावत आवत;
खग-समूह सुख पाय तोहिँ आदर दिखरावत;
कुञ्जन में कलगान अति मधुर मोहिँ सुनावत॥

[४]

The school-boy wandering through the wood
To pull the primrose gay,
Starts the new voice of spring to hear,
And imitates thy lay.

❁

बालक करत विहार उपवननि में सुख पाई;
तोरत विकसित कुसुम फिरत इत तें उत धाई;
करि वासन्तिक गान नवल, अति रुचिर मनोहर,
तव कूजनि अनुहारि करत मानों वे सादर॥

[५]

What time the pea puts on the bloom
Thou fliest thy vocal vale,
An annual guest in other lands,
Another spring to hail.

❁

यों ही खिलत कदम्ब* शरद-ऋतु-आगम पाई;
यों ही तू उड़ि जाय कलित-कल-कुञ्ज विहाई;
जाय बहुरि कोउ अन्य देश तू करति मनोहर,
पुनि वसन्त वगराय देत है सुख प्रति वत्सर॥

[६]

Sweet bird! thy bower is ever green,
Thy sky is ever clear;
Thou hast no sorrow in thy song,
No winter in thy year!

❁

कोकिल तव तरु-कुञ्ज रहत अति हरित सदाहीं;
नभमण्डल अति स्वच्छ, जलद कहुँ एकहु नाहीं;
अमी तुल्य तव कूक ताप-विरहित सुखकारी;
तव वत्सर में नहीं शिशिर ऋतु सुखमा-हारी॥

[७]

O could I fly, I'd fly with thee!
We'd make, with joyful wing,
Our annual visit o'er the globe,
Campanions of the spring,

❁

नभ-विहार की शक्ति-युक्त होतो यदि जीतन,
तो तव संग अकाश उड़त नित महा-मुदित मन;
सब जग में प्रति वर्ष जाय हम दोउ जनावत,
आवत मित्र वसन्त सकल प्रानिन सरसावत॥ *

जीतनसिंह।

---

* अँगरेज़ी शब्द Pea (मटर) के स्थान में कदम्ब कहां खटकता अवश्य है। किन्तु इस देश में Pea आदि वसन्त ही में या इसके प्रथम ही खिल जाती हैं। पर इंगलैंड में ये September (सेप्टेम्बर) में पकती हैं जिसे इस देश में शरद कह सकते हैं। अनुवादक।

* इस कविता में जो कुछ कहा गया है वह विलायती कोकिल के ही लिए है। देशकाल के अनुसार यहां के कोकिल में कुछ भेद है। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य्य-भूमि ।

["Message to Young men" नामक दसवें नम्बर के मराठी-पत्रक का भावार्थ]

[१]

जहां हुए व्यास मुनि-प्रधान ;
रामादि राजा अति कीर्तिमान ;
जो थी जगत्पूजित धन्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[२]

जहां हुए साधु महा महान ;
थे लोग सारे धन-धर्म्मवान ;
जो थी जगत्पूजित धर्म्म-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[३]

जहां सभी थे निज-धर्म्मधारी ;
स्वदेश का भी अभिमान भारी ;
जो थी जगत्पूजित पूज्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[४]

हुए प्रजापाल नरेश नाना ,
प्रजा जिन्होंने सुत-तुल्य जाना ;
जो थी जगत्पूजित सौख्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[५]

वीराङ्गना भारत-भामिनी थीं ;
वीरप्रसू भी कुल-कामिनी थीं ;
जो थी जगत्पूजित वीर-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[६]

स्वदेशसेवी जन लक्ष लक्ष
हुए जहां हैं निज-कार्य्य-दक्ष ;
जो थी जगत्पूजित कार्य्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[७]

स्वदेश-कल्याण सु-पुण्य जान
जहां हुए यत्न सदा महान ;
जो थी जगत्पूजित पुण्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[८]

न स्वार्थ का लेश ज़रा कहीं था ;
देशार्थ का त्याग कहीं नहीं था ;
जो थी जगत्पूजित श्रेष्ठ-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[९]

कोई कभी धीर न छोड़ता था ;
न मृत्यु से भी मुहँ मोड़ता था ;
जो थी जगत्पूजित धैर्य्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[१०]

स्वदेश के शत्रु स्वशत्रु माने
जहां सभीने शर-चाप ताने ;
जो थी जगत्पूजित शौर्य्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[११]

अनेक थे वर्ण तथापि सारे
थे एकताबद्ध जहां हमारे ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो थी जगत्पूजित ऐक्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[१२]

थी मातृ-भूमि-व्रत-भक्ति भारी ;
जहां हुए शूर यशोऽधिकारी ;
जो थी जगत्पूजित कीर्ति-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[१३]

दिव्यास्त्र-विद्या-बल ; दिव्य यान ;
छाया जहां था अति-दिव्य ज्ञान ;
जो थी जगत्पूजित दिव्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[१४]

नये नये देश जहां अनेक
जीते गये थे नित एक एक ;
जो थी जगत्पूजित भाग्य-भूमि ;
वही हमारी यह आर्य्य-भूमि ।

[१५]

विचार ऐसे जब चित्त आते ,
विषाद पैदा करते, सताते ;
न क्या कभी देव दया करेंगे ?
न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे ?

दान-प्रतिदान ।

बड़ी बहू जिन बातों की बाण-वर्षा कर रही थी, उन की धारही तीखी नहीं, वे बाण विष से भी बुझे हुए थे। जिस अभागिन के ऊपर ये बाण चलाये जा रहे थे उसके तन मन में आग सी लग गई। यह बाण-वर्षा प्रकट-रूप में तो श्यामा पर होती सी जान पड़ती थी, पर असल में उसका लक्ष्य श्यामा के पति राधेमुकुन्द ही थे। जिस समय बड़ी बहू यह तीरन्दाज़ी कर रही थी उस समय राधेमुकुन्द उनसे थोड़ी ही दूर पर बैठे तम्बाकू को सहायता से अन्न पचा रहे थे। बड़ी बहू की कड़ाके-चूर बातों से उनके काम में कुछ भी विघ्न होता न देख पड़ा,-उसी अविचलित गाम्भीर्य्य के साथ तम्बाकू पीकर वे सोने को चले गये।

राधेमुकुन्द की सी परिपाक-शक्ति ईश्वर ने सबको नहीं दी। उनको देखते ही खिजलाई हुई श्यामा ने उनके संग ऐसा वर्ताव किया जैसा कि और कभी करने का उसने साहस भी नहीं किया था। और दिन तो शान्त भाव से पति की पाद-सेवा करने में वह तत्पर हो जाती थी, परन्तु उस दिन (अथवा उस रात) आँसुओं की प्रबल धारा बहा कर उसने सारा बिछौना भिगो दिया। राधेमुकुन्द इन बातों पर ध्यान न देकर चुपचाप नींद को बाट देखने लगे। पर अपनी इस उदासीनता से स्त्री का अधैर्य्य बढ़ते देख उन्होंने धीरे से कहा कि "किसी काम के लिए कल ख़ूब सवेरे ही मुझे कहीं जाना है। इसलिए अब थोड़ी देर मुझे सो लेने दो"। इन शब्दों को सुनना था कि श्यामा को आंखों में गङ्गा की भदई बाढ़ आगई। वह फूट फूट कर रोने लगी। इस दृश्य को देख राधेमुकुन्द घबरा कर पूछने लगे, "हैं ! यह क्या हुआ ?" श्यामा ने रोते रोते कहा "क्या कुछ सुना भी नहीं ?" राधे ने कहा, "सब सुन चुका हूं; पर भाभी जो कुछ कहती थीं वह सब झूठ थोड़े ही है ? क्या भैया ने मुझे खिला पिला कर नहीं पाला पोसा है ? और तुम्हारे ही पास जो कुछ गहने कपड़े हैं वे सब किसके हैं ? क्या मैं कहींसे कमाके लाया हूं ? यदि अन्न-दाता दो चार बातें कहें तो उसे भी खाने पहिनने में शामिल कर लेना चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐसा खाना पहिनना किस काम का"?

"किसी सूरत से जीना भी तो चाहिए"।

"ऐसे जीने से तो मरना ही अच्छा"।

"अच्छा जब तक मौत न आवे तब तक थोड़ा सो लो। नींद आ जाने से देह की जलन जाती रहेगी"—यों कह कर राधेमुकुन्द अपने उपदेश को दृष्टान्त-द्वारा समझाने में तत्पर हुए।

बालमुकुन्द और राधेमुकुन्द न तो सगे भाई ही हैं, न चचेरे, न फुफेरे। यह भाई भाई का रिश्ता सिर्फ़ एक गाँव में वास करने से है। पर ये लोग जिस प्रीति के बन्धन में परस्पर बँध रहे हैं, वह सहोदर भ्राता से भी बढ़ कर है। बड़ी बहू को इन लोगों की इतनी आत्मीयता अच्छी नहीं लगती। पर इसके लिए बालमुकुन्द को ही ज़िम्मेदार बनना चाहिए, क्योंकि वे दोनों देवरानी जेठानी को बराबर गहने कपड़े बनवा देते हैं। यदि कोई चीज़ एक जोड़ा न मिलती तो वह छोटी बहू को ही दी जाती थी। इसके सिवा बालमुकुन्द बड़ी बहू की बातों की अपेक्षा राधेमुकुन्द की सलाह पर अधिक ध्यान देते थे। बालमुकुन्द कुछ ढीलेपन के आदमी थे। ज़मीदारी आदि सँभालने का भार उन्होंने राधेमुकुन्द के ही सिर पर छोड़ दिया था। बड़ी बहू के मन में सदा यह सन्देह होता था कि राधेमुकुन्द भीतर भीतर अपनी मुट्ठी गर्म कर रहे हैं। पर हज़ार सिर पटकने पर भी बड़ी बहू को कभी इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण न मिला। इस कारण से उनका सन्देह और भी दृढ़ होता गया, और धीरे धीरे सुलगता हुआ उनका हृदय, ज्वालामुखी पर्वत की भांति, कभी कभी भूकम्प के साथ कटुभाषणरूपी अग्नि उगलने लगा। उस दिन रात को राधेमुकुन्द को नींद आई कि नहीं, सो वही जानें; पर सबेरे वे उदास-चित्त होकर बालमुकुन्द के पास जा खड़े हुए। बालमुकुन्द उनके उदास चेहरे को देख घबरा कर पूछने लगे "तुम आज ऐसे क्यों हो? तबीयत तो अच्छी है न?"

"भैया, अब मैं यहां पर नहीं रह सकता"—कह कर राधेमुकुन्द गत रात की बड़ी बहू की सब बातें संक्षेप और शान्त भाव से कह गये।

बालमुकुन्द हँस कर कहने लगे—"बस, इसी के लिए इतने उदास? क्या यह बात आज की है? अरे, वह तो दूसरे के घर की लड़की है। कुछ इधर उधर सुन सुना के दो एक बातें कह देगी तो क्या उसके लिए घर छोड़ देना होगा? ऐसी ऐसी बातें दो चार मुझे भी कभी कभी सुननी पड़ती हैं, पर घर छोड़ के कहाँ जाऊं?"

"भैया, भाभी के कहने का मुझे कुछ भी ख़याल नहीं है। मुझे ख़ाली इस बात का ख़याल है कि कहीं आपकी गृहस्थी में अशान्ति की आग न भड़क उठे"।

बालमुकुन्द ने उत्तर दिया,—"क्या तुम्हारे चले जाने से मुझे शान्ति मिलेगी?" एक लम्बी सी सांस लेके राधेमुकुन्द अपने कमरे की तरफ़ चले गये। पर उनके मन का बोझ हलका न हुआ।

इधर बड़ी बहू की डाह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। वह बात बात में राधेमुकुन्द को ताना देने लगी; बात बात में छोटी बहू को खिझाने और रुलाने लगी। राधेमुकुन्द भी सब शान्तभाव से सहन करते रहे। श्यामा को मोहर्रमी सूरत देखते ही वे नींद के बहाने आंख मूंद लेते थे। पर अब उन्हें भी बड़ी बहू की बातें असह्य होने लगी थीं।

राधेमुकुन्द से बालमुकुन्द का आज का सम्बन्ध नहीं है। जब दोनों भाई जौ की रोटी खाकर, हाथ में तख़्ती और ख़ालिक़-बारी लेके एक साथ मकतब में जाते थे; जब दोनों ही मौलवी साहब की आंखों में धूल डाल कर चरवाहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़कों के साथ खेलने जाते थे; जब एक हो पलंग पर लेट कर बुड्ढी दादी को कहानियां सुनते थे; जब घरवालों से छिपाकर रात को दूसरे गांव में जाकर स्वांग तमाशा देखते थे और सवेरे पकड़े जाने पर दोष और दण्ड का हिस्सा दोनों बराबर बांट लेते थे, उस समय श्यामा और उनकी जेठानी जी कहाँ थीं? क्या जीवन के इतने दिन के बन्धन को तोड़ कर चला जाना उचित है? किन्तु, यह प्रीतिबन्धन स्वार्थपरता का बन्धन है। यह प्रीति परान्नप्रत्याशा का रूपान्तर है। इस प्रकार के सन्देह भी राधे को विषवत् प्रतीत होते थे। कुछ काल और व्यतीत हो जाने से क्या होता, सो नहीं कहा जा सकता; पर इसके बीच ही एक भारी घटना संघटित होगई।

जिस समय की बात मैं कह रही हूं, वह आज से पचास साठ साल पहले की बात है। उस समय नियत समय में सूर्य्यास्त तक मालगुज़ारी न दाख़िल करने से ज़मींदारी नीलाम हो जाती थी *। एक दिन ख़बर पहुंची कि बालमुकुन्द की एकमात्र ज़मींदारी, परगना "इनायतशाही," मालगुज़ारी न पहुंचने से नीलाम हो गई।

राधेमुकुन्द निज स्वाभाविक मृदुता से कहने लगे, "हमारे दोष से यह बात हुई"। बालमुकुन्द ने कहा, "इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुमने तो ठीक समय पर मालगुज़ारी भेज दी थी; रास्ते ही में लुटेरों ने रुपया लूट लिया। इसमें भला तुम क्या कर सकते थे?"

दोष किसका है, इस बात का विचार करने से इस समय कुछ लाभ नहीं। अब किसी सूरत से गृहस्थी का ख़र्च तो निबाहना होगा। बालमुकुन्द का स्वभाव और उनकी शिक्षा इस भांति की न थी कि वे शीघ्र किसी काम काज में हाथ लगावें। वे तो मानो एक दम ऊपर की सीढ़ी से पानी में जा गिरे हैं। उनकी तो यह दशा है कि पहले ही से निज स्त्री के गहने गिरवीं रखने को उद्यत होगये हैं। राधे ने एक थैली रुपया उनके सामने लाकर डाल दिया। उसने पहले से ही निज स्त्री का गहना गिरवीं रखकर यथेच्छ अर्थ-संग्रह कर रक्खा था।

अब बालमुकुन्द के संसार में एक महत् परिवर्तन दिखाई देने लगा। सम्पद-काल में गृहिणी-देवी, अर्थात् बड़ी बहू, जिसे घर से निकालने की सहस्र सहस्र चेष्टायें करती थीं, अब विपद-काल में उसी पर व्याकुलता से अवलम्बन करने लगीं। इस समय दोनों भाइयों में किस पर अधिक भरोसा किया जा सकता है, इस बात के समझने में उन्हें ज़रा भी विलम्ब न हुआ। अब तो किसी भांति भी यह बात मालूम ही नहीं होती कि, बड़ी बहू राधे से तिलमात्र भी कभी डाह रखती थीं, अथवा कुटिल नीति की चाल चलती थीं।

राधेमुकुन्द तो पहले ही से स्वाधीन आजीविका के लिये तैयार थे। गांव के पास किसी नगर में मुख़्तारी करने लगे। उन दिनों वकीलों की आज कल की तरह भरमार न थी। इससे इस व्यवसाय में उनको अच्छी आमदनी होने लगी। तीक्ष्ण-बुद्धि, सावधान, राधेमुकुन्द ने शीघ्र ही अपनी उन्नति कर ली। धीरे धीरे उस ज़िले में जितने बड़े बड़े ज़मींदार, तालुक़ेदार, थे प्रायः सभी उन्हें अपना अपना काम सौंपने लगे।

अब छोटी बहू की दशा आगे से बिलकुल विपरीत होगई है। अब उसके पति के उपार्जित धन द्वारा ही बालमुकुन्द और उनकी स्त्री प्रतिपालित हो रहे हैं। इस विषय में उन्होंने प्रकटरूप में कभी कभी कुछ गर्वाहंकार प्रकाशित किया था कि नहीं, सो तो मैं जानती नहीं; पर शायद कभी इशारे से मनका भाव उन्होंने प्रकाश कर दिया होगा। एक दिन किसी काम को बड़ी बहू की इच्छा के प्रतिकूल निज

* यह नियम बङ्गदेश में प्रचलित था, शायद अब भी है। —अनुवादिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छानुसार उन्होंने कर डाला। किन्तु उसके दूसरे ही रोज़ से उन्होंने पूर्वापेक्षा भी अधिक नम्रता धारण कर ली। यह बात राधेमुकुन्द के कानों तक जा पहुँची। इससे उन्होंने किस युक्ति से पत्नी को समझाया सो तो वही जानें। पर हां, उसके दूसरे ही दिन से छोटी बहू के मुँह से एक बात तक न निकली; वह बड़ी बहू की दासी सी बनकर रहने लगीं। सुना जाता है कि उसी रात को राधेमुकुन्द स्त्री को उसके मायकें भेजने का प्रबन्ध करने में तत्पर हो गये थे। उन्होंने एक अठवारे तक श्यामा का मुखावलोकन तक नहीं किया था। अन्त में बड़ी बहू ने मध्यस्था होकर देवर को बहुत कुछ कह सुन कर मनाया और दोनों में मेल करा दिया। वे कहने लगीं—"छोटी बहू तो अभी कल आई है और मैं तो बहुत दिनों से तुम लोगों के घर आई हूं। हमारे तुम्हारे बीच में जो प्रीति का सम्बन्ध है, भला उसकी मर्य्यादा वह क्या जानेगी? अभी तो वह कल की छोकड़ी है। उसका अपराध क्षमा करो!"

राधेमुकुन्द गृहस्थी का ख़र्चवर्च का रुपया सब बड़ी बहू के ही हाथ में देते थे। छोटी बहू अपना ज़रूरी ख़र्च नियमानुसार अथवा माँगने पर बड़ी से पातीं थीं। इस समय बड़ी बहू पहले की अपेक्षा अधिक ख़ुश है। मैं पहले कह चुकी हूं कि बालमुकुन्द स्नेहवश बहुतेरे विषयों में छोटी बहू का ही पक्षपात किया करते थे।

यद्यपि बालमुकुन्द के उस स्वाभाविक प्रफुल्लित मुख पर हँसी की कमी न थी; किन्तु छिपी बीमारी से वे दिन दिन दुर्बल होते जाते थे। उनके इस मानसिक रोग की तरफ़ और कोई तो उतना ध्यान न करता था; पर भैया का मुंह देख देख कर राधे की आंखों से नींद जाती रही थी। बहुत रात बीतने पर छोटी बहू नींद टूटने पर देखती क्या हैं कि उनके स्वामी, राधेमुकुन्द, गहरी सांस लेते हुए अशान्त-भाव से पलँग पर पड़े इधर से उधर करवटें ले रहे हैं। राधेमुकुन्द बालमुकुन्द से कहा करते थे कि, "भैया कुछ सोच मत करें। आपकी पैत्रिक ज़मींदारी शीघ्र ही लौटा लूंगा। उसे हम किसी भांति छोड़ेंगे। अब बहुत देर नहीं है"। वास्तव बहुत देर भी नहीं हुई। जिस मनुष्य ने मुकुन्द की ज़मींदारी नीलाम में ख़रीदी थी, जाति का बनिया था। ज़मींदारी के काम से बिलकुल अनजान था। ज़मींदार बनकर से प्रतिष्ठा तथा पदवी पाने की लालसा से उसे ख़रीदा था। आमदनी उसे एक पैसे की थी। बेचारा घर से मालगुज़ारी भरता था। मुकुन्द साल में दो चार बार लट्ठबाज़ों को लेकर मालगुज़ारी वसूल करते थे। सब रैयत ज़मींदार से मनही मन बहुत घृणा करते अन्त में उस बेचारे ने रोज़ रोज़ की मुक़दमेबाज़ी से हैरान होकर इस बखेड़े से अपना पिण्ड छुड़ाना ही उचित समझा। बहुत ही थोड़े दाम पर राधेमुकुन्द ने फिर ख़रीद लिया।

लिखने में जितना कम समय मालूम होता है असल में उतना कम समय नहीं हुआ। इसमें होने में दस वर्ष लग गये। दस वर्ष पहले बालमुकुन्द युवावस्था की सीमा और प्रौढ़ता के आरम्भ में किन्तु अब उनको देखने से विदित होता था कि वह "मोटरकार" (हवागाड़ी) में बैठकर जल्दी वृद्धावस्था के बीच में आगये हैं। जब उन्होंने पुश्तैनी ज़मींदारी को फिर से प्राप्त किया, जाने क्यों वे यथोचित सुखी न हो सके। पर क्या? आत्मीय, परिचित, गाँव के सभी लोग आनन्द में एक दावत देने के लिये बालमुकुन्द को दिक़ करने लगे। बालमुकुन्द ने राधे से पूछा। "कहो भाई क्या कहते हो?" राधे ने उत्तर दिया। "अवश्य, आनन्द मनाने की तो बात ही है।"

उस गाँव के बीच ऐसी भारी दावत किसी ने नहीं दी थी। ब्राह्मण देवता पेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ साथ मनमानी दक्षिणा पाकर, दीन दरिद्री पैसा और वस्त्र पाकर, दोनों हाथ उठा उठा कर आशीर्वाद कहने लगे। उस समय उस गाँव की आब हवा अच्छी न थी। तिस पर तीन चार दिन लगातार परिश्रम पड़ा। इस कारण बालमुकुन्द बीमार पड़ गये। बड़े ज़ोर से जूड़ी देकर बुखार हो आया। वैद्य ने नाड़ी देखकर कहा—रोग तो कठिन जान पड़ता है"। आधी रात के बाद सब लोगों को बाहर जाने का आदेश राधे दिया और बालमुकुन्द के पास बैठकर वे कहने लगे, "भैया, आपके पीछे जायदाद का हिस्सा किसको कितना दिया जायगा? इस विषय में आपका क्या हुक्म है?"

"भाई, मेरे पास क्या है कि मैं किसी को दूं?"

"आपही का तो सब कुछ है।"

"एक दिन मेरा सब कुछ था, पर अब मेरा नहीं"।

राधेमुकुन्द चुपचाप बिछौने को झाड़ने लगे। इतनेही में बालमुकुन्द को साँस लेने में कष्ट मालूम होने लगा। राधे चट खाट पर जा बालमुकुन्द के दोनों चरणों को पकड़ कर कहने लगे, "भैया, मैंने जो अपने जीवन में महान पातक का काम किया है, उसे मैं आज आपके श्रीचरणों के सन्मुख प्रगट करूँगा। हाय! अब तो समय नहीं रहा"।

बालमुकुन्द ने इन बातों का कुछ उत्तर न दिया। राधे निज स्वाभाविक शान्त भाव से धीरे धीरे कहने लगे। बीच बीच में गहरी साँस लेते हुए वे बोले,—"भैया, भली भाँति सब वृत्तान्त कहने की क्षमता तो मुझमें नहीं है। मेरे मन की यथार्थ बातें तो भगवान ही जानते होंगे। और किसीमें अनुभव करने की शक्ति है तो केवल आपमें। बाल्यावस्था में आपके और मेरे बीच में किसी बात का अन्तर न था। यदि कुछ था तो वह बाहरी था। पहला भेद तो यही था कि आप धनी और मैं निर्धन था। जब मैंने देखा कि केवल इसी एक बात पर मेरे और आपके बीच में विछोह होने की सम्भावना है, तब मैं उस भेद के नाश करने पर तत्पर हुआ। भैया, मैंने ही उस मालगुज़ारी के रुपये को लुटवा कर जायदाद को नीलाम करवा दिया था"।

कुछ भी आश्चर्य्य न प्रकट करके, पर कुछ हँस कर, धीरे से रुकी हुई आवाज़ से बालमुकुन्द ने उत्तर दिया,—"भाई, तुमने जो किया, अच्छा ही किया। किन्तु जिसके हेतु तुमने इतना किया, क्या वह सिद्ध हुआ? क्या उसे पास रख सके?" "भगवान्! दीनदयाल!" कहते प्रशान्त हँसी के साथ बालमुकुन्द की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े।

राधेमुकुन्द उनके पैरों में सिर रख कर कहने लगे, "भैया, आपने मुझे क्षमा किया?" बालमुकुन्द राधे का हाँथ थाम कर कहने लगे,—भाई जो ऐसा ही है तो सुनो, मैं पहले ही से इस बात को जानता था। तुमने जिन मनुष्यों के साथ सलाह करके मालगुज़ारी लुटवाई थी वही लोग मुझसे सब बातें कह गये थे। मैं तो उसी दम तुम्हें क्षमा कर चुका हूं।

राधेमुकुन्द दोनों हाथों से मुख ढाँप कर रोने लगे। थोड़ी ही देर के बाद वे बोले—"भैया, यदि आप मुझे सचमुच ही माफ़ कर चुके हैं तो अपनी सम्पत्ति आप ग्रहण कीजिए। मुझ पर रुष्ट हो कर उसे अस्वीकार न कीजिए"।

बालमुकुन्द इस बात का कुछ उत्तर न दे सके। उस समय उनका वाक्य रुध हो गया था। उन्होंने केवल राधे की ओर स्थिर दृष्टि से देख कर एक बार अपना दाहना हाथ उठाया। इस इशारे से उनका कौन सा हार्दिक भाव प्रकट हो रहा था, उसे हम लोग तो नहीं समझ सकते। राधेमुकुन्द ने कुछ समझा हो तो समझा हो।*

वङ्ग-महिला।

* श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर-लिखित एक बँगला गल्प का अनुवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुत्वाकर्षण शक्ति।

आकृष्टिशक्तिश्च महीतया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या।
आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतत्वियं खे॥*

गोलाध्याय।

गुरुत्वाकर्षण शक्ति नक्षत्रादिकों की गणित-विद्या के जानने का एक मूल नियम है। इससे इस देश के पुराने ज्योतिषी परिचित थे जैसा कि भास्कराचार्य-कृत गोलाध्याय के ऊपर के श्लोक से ज़ाहिर है। परन्तु इसका सविस्तर वर्णन योरप के ज्योतिषियों ने, विशेष करके गणितज्ञ-शिरोमणि श्रीमान् आइज़क न्यूटन साहब ने, किया है। इससे पृथ्वी के आस पास चन्द्रमा की और सूर्य्य के आस पास ग्रहों की गति सिद्ध होती है। अपरिमित दूरी पर विद्यमान नक्षत्रादिकों के प्राकृतिकरूप और स्वभाव इससे जाने जाते हैं। सूर्य्य-मण्डल की पूर्वरचना कैसी थी? यह भी इससे प्रकट होता है। सच तो यह है कि चन्द्रमा, ग्रह, पुच्छलतारे और नक्षत्रादि सभी पिण्ड इस प्रभावशालिनी और सर्वव्यापिनी शक्ति के अधीन हैं।

यह तो सब लोग जानते ही हैं कि यदि हम एक ढेले को हाथ से छोड़ दें तो वह तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। पर क्यों ऐसा हुआ, इसको एक बहुत साधारण बात समझकर वे इस पर ध्यान नहीं देते; यद्यपि लोहे को चुम्बक से खिँचते हुए देखकर वे आश्चर्य्य करते हैं। पर ढेले को पृथ्वी पर गिरानेवाली शक्ति चुम्बक की शक्ति से कहीं बढ़कर है। यह पृथ्वी ही है जो ढेले को खींच है। यह उसे उसी प्रकार खींचती है जैसे चुम्ब लोहे को खींचता है। चुम्बक की शक्ति का प्र केवल थोड़े पदार्थों में देख पड़ता है; परन्तु गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रभाव सारे संसार व्याप्त है। आप एक हाथ में सीसे की एक छो सी गोली लीजिए और उसे पृथ्वी पर डालि इस गोली को हाथ से छूटकर पृथ्वी पर गिरने कुछ समय लगेगा। यदि दूरी बराबर हो तो ह ही समय हमेशा उसे गिरने में लगेगा।

अब आप एक हाथ में एक गोली लीजि और दूसरे हाथ में सीसे का एक बड़ा गोल दोनों को फिर गिराइए। यदि दोनों को साथ छोड़ियेगा तो वे साथ ही पृथ्वी पर गिरेंगे। ए हम समझे थे कि भारी गोला गोली से प गिरेगा। परन्तु तजरिबे से जान पड़ा कि नहीं हुआ।

अब पत्थर की एक गोली या लकड़ी का टुकड़ा लीजिए। इनको भी पृथ्वी पर डालि ऐसा करने से मालूम होगा कि उसी दूरी पृथ्वी तक पहुँचने में इनको भी उतना ही स लगा, जितना कि सीसे की गोली या गोल लगा था।

अब एक पर लीजिए। उसे भी छोड़िए। पर हमारा तजरिबा ठीक नहीं हुआ। जि समय गोली के गिरने में लगा था उतना ही गिरने में न लगा। क्यों? कारण यह हुआ हवा पर को, गोली की अपेक्षा, गिरने से रोकती है। इस दोष को दूर करने के लिए पर को एक पैसे के ऊपर रखकर छोड़ा। से जान पड़ा कि हवा की रुकावट अधिक के कारण यह भी उतनी ही देर में गिरा देर में कि पैसा, या गोली, या लकड़ी का गिरा था। यदि आपने इन चीज़ों को पृथ्वी सोलह फ़ीट की दूरी से छोड़ा होगा तो

* पृथ्वी में आकर्षणशक्ति है। इसीसे वह आकाश में स्थित वज़नी चीज़ों को अपनी शक्ति से अपनी तरफ़ खींच लेती है। इसीसे जान पड़ता है कि वे चीज़ें गिरती हैं। पर पृथ्वी क्यों नहीं गिर पड़ती? वह कैसे गिर सकती है? उसके सब तरफ़ सम आकाश ही आकाश है न। सम आकाश वह गिर कर कहाँ जाय?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ज्ञात होगा कि प्रत्येक को गिरने में केवल एक सेकंड लगा है। इस तजरिबे को चाहे हम कानपुर में करें; चाहे और कहीं करें; चाहे समुद्र में जहाज़ पर करें; चाहे विषुवतरेखा या ध्रुवों पर करें; अर्थात् जहां चाहें करें; और चाहे कोई चीज़ भारी लें चाहे हलकी, चाहे बड़ी चाहे छोटी—फल वही होगा। अर्थात् प्रायः १६ फ़ीट की दूरी से किसी चीज़ के गिरने में १ सेकंड लगेगा।

हम ऊपर कह आये हैं कि पृथ्वी पर, जहां चाहें वहां तजरिबा करें, दूरी वही रहेगी। इसमें कई कारणों से (जैसे पृथ्वी के धरातल से केन्द्र तक एक ही दूरी के न होने से) कुछ न कुछ अन्तर पड़ जाता है।

परन्तु, इस समय, यह मान लेना चाहिए कि यदि किसी दूसरे प्रकार की रुकावट न हो तो प्रत्येक वस्तु सोलह फ़ीट की दूरी से पृथ्वी के किसी भाग पर एक ही सेकंड में गिरेगी।

अब हमें पृथ्वी के धरातल से कुछ ऊपर चल कर देखना चाहिए, कि यदि यही तजरिबा किया जाय तो वहां भी ऐसा ही होगा या नहीं। एक पहाड़ की चोटी पर जाकर ऐसा करने से ज्ञात हुआ कि गोली को, १६ फ़ीट गिरने में, एक सेकंड से कुछ अधिक समय लगा। वास्तव में अन्तर बहुत ही थोड़ा पड़ा। परन्तु इससे यह सिद्ध हुआ कि पृथ्वी से जितना अधिक ऊपर तजरिबा किया जायगा उतनीही अधिक आकर्षणशक्ति कम हो जायगी। ऊंचे से ऊंचे पहाड़ों पर, या उतनी ऊंचाइयों पर जहां तक ग़ुब्बारे जा सकते हैं, तजरिबा करने से ज्ञात होता है कि पृथ्वी की आकर्षणशक्ति अवश्य रहती है; परन्तु जितनाही अधिक ऊंचे पर तजरिबा किया जाता है आकर्षणशक्ति में उतनीही न्यूनता हो जाती है।

हमें यह जानना चाहिए कि यह शक्ति कितनी दूर तक विद्यमान है। ग़ुब्बारों में केवल ५ या ६ मील ऊपर हम जा सकते हैं। परन्तु हम जानना चाहते हैं कि १०००, या १००००, या १००००० मील या इससे भी अधिक दूरी पर क्या हाल होगा।

मान लीजिए कि कोई आदमी ऊपर चढ़ा और बराबर चढ़ता ही चला गया, यहां तक कि वह २½ लाख मील तक चला गया। इस अत्यधिक दूरी पर, मान लीजिए, कि उसने तजरिबा किया—गोली हाथ से छोड़ दी कि देखें न्यूटन साहब का कहना, कि इतनी दूरी पर भी पृथ्वी की आकर्षण शक्ति है, सही है या नहीं। हाथ से छूटते ही गोली कुछ देर अधर में रुकी। यह देख कर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। और हम कहनेहीवाले थे कि यहां पर पृथ्वी का आकर्षण नहीं है, न्यूटन साहब यह लिखना भूल गये, कि गोली खसकी। पहले वह बहुत धीरे धीरे चली। फिर उसका वेग बढ़ता गया और २½ लाख मील की दूरी से वह पृथ्वी पर आ गिरी। इस तजरिबे ने भी न्यूटन साहब के सिद्धान्त को सच साबित कर दिया। यहां यह कहा जा सकता है, कि यह तजरिबा असम्भव है। ऊपर लिखी हुई रीति से वह हो ही नहीं सकता। पर ऐसा न कहिए। न्यूटन साहब ने, ऐसा तजरिबा करने के लिए, चन्द्रमा का उपयोग किया है। वह पृथ्वी से प्रायः २½ लाख मील की दूरी पर है। हम यह जान सकते हैं कि चन्द्रमा प्रति सेकंड पृथ्वी की तरफ़ कितना खिंचता है, जिससे आकर्षणशक्ति को माप हो सकती है। न्यूटन साहब ने इससे सिद्ध किया है कि २,४०,००० मील की दूरी पर से भी पृथ्वी पदार्थों को अपनी ओर खींचती है! हां यह बात ज़रूर है कि दूर से गिरनेवाले पदार्थों के गिरने का वेग उतना नहीं होता जितना कि धरातल के पास से गिरनेवाले पदार्थों का होता है। यदि कोई पदार्थ उतनी दूरी से डाला जाय जितनी दूरी पर चन्द्रमा है तो वह पहले १ मिनट में १६ फ़ीट चलेगा, न कि एक सेकंड में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह न्यूटन साहब का सिद्धान्त बड़ा उपयोगी है। इससे यह प्रकट होता है कि पृथ्वी का आकर्षण, जैसे जैसे दूरी बढ़ती जायगी वैसेही वैसे, कम होता जायगा। यह बात समझ में भी अच्छी तरह आ सकती है। क्योंकि यह उसी प्रकार होता है जैसे कि दीपक से कोई दूर हटता जाय तो उसे जान पड़ता है कि प्रकाश कम होता जाता है। गुरुत्वाकर्षण और प्रकाश दोनों का एकही नियम है। अर्थात् गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में, प्रकाश की भांति, दूरी के वर्ग का विपरीत विकार होता है। केन्द्र से पृथ्वी का धरातल ४००० मील है। यदि एक पदार्थ धरातल से ४००० मील ऊपर रक्खा जाय तो उसकी दूरी केन्द्र से ८००० मील, अर्थात् दूनी, होने के कारण गुरुत्वाकर्षण केवल चौथाई होगा। यदि यह पदार्थ इतनी दूरी से छोड़ा जाय तो यह पहले सेकंड में १६ × ¼ = ४ फ़ीट चलेगा। अर्थात् दूनी दूरी होने से आकर्षण में २ का वर्ग ४ गुना घट जायगा।

दूसरा उदाहरण। पाठकों ने रेल के स्टेशनों पर तराज़ू देखे होंगे। उनमें बोझ के दबाव से कांटा खिसकता है। यदि ऐसा तराज़ू इतनी दूरी पर हम ले जायँ और कोई पदार्थ तोलें तो यदि वह धरातल पर चार सेर होगा तो वहां पर केवल एक सेर रह जायगा!

यदि धरातल से दूरी ८००० मील, अर्थात् केन्द्र से १२००० मील, अर्थात् तिगुनी कर दी जाय तो वज़न धरातल पर के वज़न का नवां भाग रह जायगा। अर्थात् वह आधसेर से भी कम होगा। यदि हम दूरी बढ़ाते जायँ और चन्द्रमार्ग तक उसे पहुँचा दें, जो पृथ्वी से उसके ६० चाप को दूरी पर है, (चन्द्रमा पृथ्वी से २४०००० मील दूर है और पृथ्वी का चाप ४००० मील है) तो यहां का आकर्षण धरातल के आकर्षण की अपेक्षा $\frac{१}{३६००}$ हो जायगा। अर्थात् चार सेर का वज़न $\frac{४}{३६००} = \frac{१}{९००}$ सेर होगा। अर्थात् धरातल पर ९० मन का वज़न चन्द्रमार्ग की दूरी पर केवल एक सेर होगा!!!

हम चाहे जितनी दूरी पर क्यों न चले जायं नियमानुसार आकर्षण अवश्य बना रहेगा। यह आकर्षणशक्ति पृथ्वी ही में नहीं है, जिससे यह सम्पूर्ण पदार्थ अपनी ओर खींचती है, किन्तु सब सांसारिक पदार्थों में है। इसीसे वे एक दूसरे को खींचते रहते हैं। अतएव गुरुत्वाकर्षण शक्ति का यह नियम सिद्ध है कि ब्रह्मांड का हर एक पदार्थ हर पदार्थ को एक ऐसी शक्ति से अपनी ओर खींचता है जिसमें दूरी के वर्ग के अनुसार उलटी कमी बेशी होती है। इस नियम की हम जितनी प्रशंसा करें कम है क्योंकि इसीसे ग्रहों की चालें मालूम होती हैं इसीसे उनका वक्रीभवन मालूम होता है; और इसीसे ऐसे ऐसे नक्षत्रों के होने की पहले ही सम्भावना की जा सकती है जो दूरबीन यंत्र बाद में देखे गये हैं।

परन्तु यहां पर यह सन्देह उत्पन्न होता है यदि पृथ्वी चन्द्रमा को खींचती है और सूर्य्य पृथ्वी को खींचता है तो चन्द्रमा पृथ्वी से और पृथ्वी सूर्य्य से टकराकर ये सब चूर चूर क्यों नहीं हो जाते? यही क्या, सारे ग्रह और नक्षत्र आदि परस्पर एक दूसरे से खिंचते हैं, आपस में टकर कर एक पिंड क्यों नहीं बन जाते? प्रायः ऐसा बहुत कम देखने में आया है कि ग्रह एक दूसरे से टकरा गये हों। जहां चन्द्रमा आदि में था अब भी है। और जहां पृथ्वी पहले थी वहीं भी विद्यमान है। असंख्य वर्षों के आकर्षण ने इन्हें अपने स्थान से ज़रा भी नहीं हटाया। आकर्षण-नियम के विरुद्ध ऐसा होता हुआ क्यों पड़ता है? इसका भी कारण विद्वानों ने निकाला है। सुनिए—

यदि सृष्टि के समय चन्द्रमा अपने स्थान घूमने की अपेक्षा ठहरा हुआ होता, और पृथ्वी कोई चाल न होती, तो चन्द्रमा पृथ्वी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टकरा जाता, और पृथ्वी सूर्य्य के भीतर चली जाती। परन्तु इनकी गति, जो पहले ही से इनमें है, इनको गिरने से रोकती है। प्रत्येक पिंड में केन्द्राकर्षण शक्ति होती है। यही उनको प्रायः वृत्ताकार मार्ग में घुमाती है। नीचे के उदाहरण से ज्ञात होगा कि चन्द्रमा, पृथ्वी के आकर्षण के वश होकर, उसके आस पास, प्रायः एक वृत्ताकार मार्ग में २ पखवारे में घूम आता है।

मान लीजिए कि समुद्र के किनारे, पृथ्वी के धरातल पर, एक पहाड़ की चोटी अ से एक तोप अ ब दिशा में दागी गई। उसका गोला मामूली गति से चलकर पहली गोलाई के मार्ग से होता हुआ समुद्र में गिरा। यदि गति कुछ अधिक की जाय तो वह दूसरी गोलाई के मार्ग से चलकर समुद्र में गिरेगा।

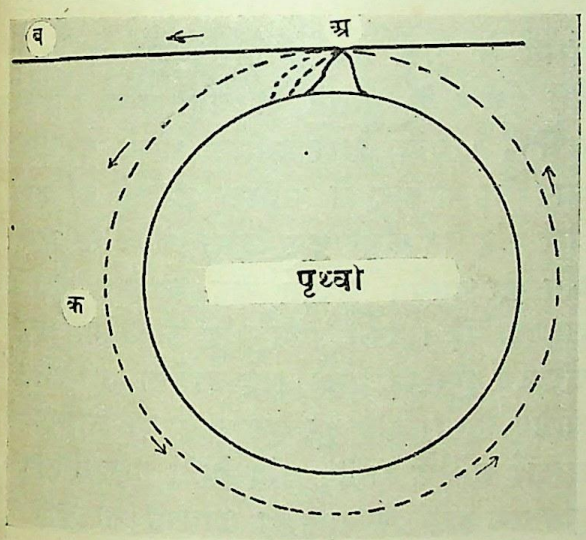

मान लीजिए कि अब एक महा प्रचण्ड तोप से (जैसी कि अब तक नहीं ईजाद हुई) एक ऐसा गोला छोड़ा गया जिसका वेग कई मील प्रति सेकंड है। और यह भी अनुमान कर लीजिए कि कोई ऐसा प्रबन्ध किया गया कि यह गोला बराबर इसी वेग से बिना किसी रोक के, पृथ्वी से उतनी ही दूरी पर, बराबर चलता रहा, यहां तक कि क वृत्त में घूम कर फिर वह अ पर पहुँच गया। अब यदि पहाड़ और तोप न रहें तो यह गोला इसी दूरी पर हमेशा घूमता रहेगा।

अब अपने अनुमान को और बढ़ा दीजिए। मान लीजिए कि एक ऐसी आश्चर्य्यजनक तोप तैयार हुई है जिसके गोले का व्यास २००० मील है और उसका गोला ३००० फ़ीट फ़ी सेकंड के वेग से जाता है। अर्थात् आज कल की तोप के गोलों के वेग से उसका वेग दूना या तिगुना है। अब कल्पना कीजिए कि यह गोला पृथ्वी के धरातल के २½ लाख मील ऊपर से, उसके क्षितिज के समानान्तर, छोड़ा गया। इस दशा में यह गोला, पृथ्वी के आस पास, प्रायः एक वृत्ताकार मार्ग में घूमता हुआ, दो पखवारे में वहीं आ जायगा जहां से वह छोड़ा गया था। और वह ऐसा ही सदा करता रहेगा। यह न समझिए कि यह केवल उपन्यास है। यथार्थ में यह बात ऐसी ही होती है। चन्द्रमा तोप से तो नहीं छोड़ा गया; परन्तु उसकी गति इस तरह के तोप के गोलेही की सी है।

जिन कारणों से चन्द्रमा पृथ्वी के आस पास घूमता है उन्हीं कारणों से पृथ्वी सूर्य्य के आस-पास घूमती है।

ऊपर के उदाहरणों से गुरुत्वाकर्षण शक्ति का महत्व अच्छी तरह प्रकट है। परन्तु यह न समझिए कि उसका असर चन्द्रमा और पृथ्वी इत्यादि पर ही होता है। नहीं, प्रत्येक पदार्थ पर होता है—चाहे वे बड़े हों, चाहे छोटे हों, चाहे जिस चीज़ के हों, और चाहे जहां स्थित हों। यदि हम पचीस पचीस सेर के दो गोले उनके केन्द्र से एक फुट की दूरी पर रक्खें तो उनमें आकर्षण अवश्य होगा। परन्तु इतना कम होगा कि जान न पड़ेगा। यदि हम उन्हें ऐसे पहियों पर रख कर, जिनका धरातल इतना चिकना हो कि रगड़ न लगे, छोड़ दें तो वे अवश्य एक दूसरे की ओर खिँच जायँगे। गुरुत्वाकर्षणशक्ति का एक बहुत बड़ा नियम यह है कि पदार्थों के छोटे और बड़े होने से उसमें अन्तर हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है; पर जिस चीज़ के वे पदार्थ बने होते हैं उसके कारण कुछ भी अन्तर नहीं होता। जैसे हम चाहे लोहे के गोले लें, चाहे तांबे के लें, चाहे लकड़ी के लें, परन्तु गुरुत्वाकर्षण पर असर केवल उनके भारी या हलके होने के कारण होगा। लोहे के कारण अधिक और लकड़ी के कारण कम न होगा।

हम यह कह आये हैं कि चन्द्रमा और दूसरे ग्रह सूर्य्य के आस पास प्रायः वृत्ताकार मार्ग में घूमते हैं। अब, यहां पर, हम यह बतलाते हैं कि वे वृत्त कैसे हैं।

यदि कोई ग्रह सूर्य्य के आस पास वृत्ताकार मार्ग में घूमता होता तो उसकी सूर्य्य से दूरी सदा एकही सी रहती। क्योंकि दूरी इस घूमे हुए मार्ग का अर्द्धव्यास है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता; कुछ अन्तर पड़ जाता है। यह अन्तर प्रत्येक ग्रह में न्यूनाधिक होता है। पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त में बहुत कम अन्तर पड़ता है। शुक्र के क्रान्तिवृत्त में और भी कम पड़ता है। परन्तु मङ्गल के और विशेष कर बुध के क्रान्ति-मंडलों में विशेष अन्तर होता है—अर्थात् सूर्य्य से इनकी दूरी विशेष घट बढ़ जाती है। देखनेही की शक्ति से पदार्थविद्या में नई नई बातें प्रकट होती हैं। यह देख कर कि सूर्य्य के आस पास घूमनेवाले ग्रहों के मार्ग वृत्ताकार नहीं हैं यह शङ्का होती है कि क्यों वे ऐसे नहीं हैं? क्यों इन मार्गों के केन्द्र बदलते रहते हैं जिससे अर्द्धव्यास की दूरी में इतना अन्तर पड़ जाता है? बड़े खोज से केपलर नाम के प्रसिद्ध ज्योतिषी ने सब ग्रहों के मार्ग ठीक तौर से जाने हैं। इससे ज्योतिष शास्त्र में बहुत अधिक उन्नति हो गई है। रेखागणित से जिनका परिचय है वे जानते हैं कि रेखाओं की सहायता से किस किस तरह वृत्त इत्यादि बनते हैं। नक्षत्रादि की चालों में गो-पुच्छाकार आकारों का विशेष प्रयोग होता है। उनके खण्ड अण्डाकार होते हैं। यदि हम एक काग़ज़ किसी मेज़ पर फैला दें; उस पर कुछ फ़ासिले से दो आलपीन चुभा दें और दोनों के आस पास एक ढीला डोरा फिरा कर बाँध दें। फिर डोरे को एक पेंसल की नोक से तान कर पेंसल को घुमावें तो एक चित्र काग़ज़ पर बनेगा। इसीको अण्डाकार वृत्त कहेंगे। नीचे के चित्र में देखिए। आलपीनों पर ढीला डोरा है जो

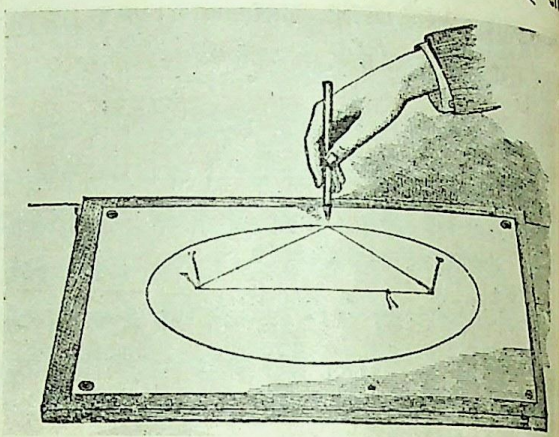

पेंसल से तानी गयी है और त्रिभुज सा हो गया है। पेंसल के घुमाने से वही अण्डाकार बन गया है। यदि डोरा अधिक ढीला कर दिया जाय तो आकार में अधिक लम्बाई हो जाय और यदि वह कड़ा कर दिया जाय तो लम्बाई कम हो जाय; अर्थात् वह आकार वृत्त ही सा देख पड़े। इसी तरह यदि आलपीनें उखाड़ कर एक दूसरे के पास लाई जावेंगी, तो गोलाई अधिक होगी; यदि दूर दूर कर दी जायँगी तो लम्बाई अधिक होगी; यदि दोनों आलपीनें बिल्कुल एक दूसरे के पास हो जायँगी तो वृत्त हो जायगा और जहां दोनों आलपीनें मिली हुई चुभी हैं वही केन्द्र होगा। इसी तरह जहां दोनों आलपीनें अलग अलग लगी हैं वे अण्डाकार वृत्त के केन्द्र या फ़ोकस कहलाते हैं—अर्थात् अण्डाकार वृत्त के केन्द्र या फ़ोकस होते हैं।

पुराने लोग अण्डाकार वृत्तों के नियमों से परिचित थे पर केपलर साहब ने देखा कि ग्रहों के मार्ग यदि वृत्त समझे जाते हैं तो ग्रहों की स्पष्ट चालों में अन्तर पड़ता है। तब उन्होंने ग्रहों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गों का आकार अण्डाकार सिद्ध किया, क्योंकि इससे उनकी चालें ठीक ठीक मिल जाती हैं। इससे यह जाना गया कि सब ग्रह सूर्य्य के आस-पास अण्डाकार मार्ग में घूमते हैं—अर्थात् सूर्य्य अण्डाकार मार्ग के भीतर है। परन्तु ठीक किस जगह पर है? इसको भी केपलर साहब ने सिद्ध किया है। उनका सिद्धान्त है कि सूर्य्य इस मार्ग के दो केन्द्रों, या फ़ोकसों, में से किसी एक पर होता है। अर्थात् केपलर साहब का पहला नियम यह हुआ कि प्रत्येक ग्रह सूर्य्य के आस पास अण्डाकार मार्ग में घूमता है; और सूर्य्य उस मार्ग के किसी एक केन्द्र या फ़ोकस में होता है।

इससे हमें ग्रहों की परिधि ठीक मालूम हो गई। अर्थात् हमने जाना कि ग्रहों की परिधि प्रायः एकही धरातल में है। पर कुछ ग्रहों की परिधि एकही धरातल में नहीं है; उसमें थोड़ा सा अन्तर है। ऐसे ग्रहों में सिर्फ़ यह बात मिलती है कि सबके धरातल, जिनमें परिधि स्थित है, सूर्य्य से होकर गुज़रते हैं और इन सब अंडाकार मार्गों का एक केन्द्र या फोकस सूर्य्य है। बड़े बड़े ग्रहों के मार्ग प्रायः वृत्ताकार हैं और छोटों के अंडाकार। पृथ्वी और शुक्र के मार्ग प्रायः वृत्ताकार हैं; परन्तु बुध और दूसरे छोटे ग्रहों के अधिक अंडाकार हैं।

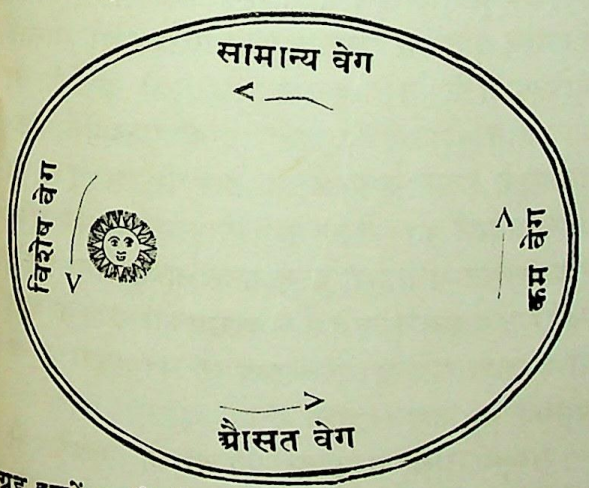

ग्रह इन्हीं मार्गों में घूमते हैं और एक नियत समय के बाद वहीं आ जाते हैं जहां से उन्होंने घूमना शुरू किया था।

अब यह देखना चाहिए कि इनकी चाल एक सी रहती है, या उसमें कुछ अन्तर पड़ता है। पृथ्वी १८ मील फ़ी सेकंड चलती है और ३६५¼ दिन में सूर्य्य के आस पास घूम आती है। परन्तु उसकी चाल हर स्थान पर १८ मील फ़ी सेकंड नहीं रहती। जब पृथ्वी सूर्य्य के पास होती है तब उसकी चाल का वेग विशेष होता है; जब दूर होती है तब कम; और जब सामान्य दूरी पर रहती है तब औसत दर्जे का होता है। यही और ग्रहों का भी हाल है।

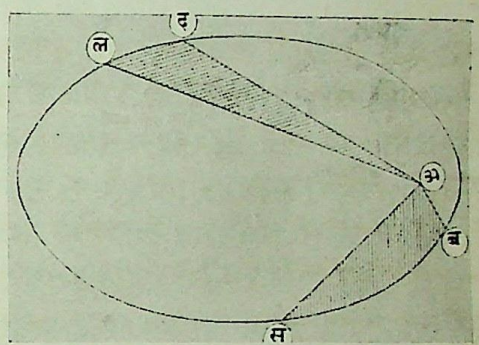

इससे केपलर साहब का दूसरा सिद्धान्त यह स्थिर हुआ कि प्रत्येक ग्रह सूर्य्य के आस पास प्रत्येक बिन्दु पर ऐसे वेग से घूमता है कि यदि उस बिन्दु से सूर्य्य तक एक सरल रेखा खींची जाय तो वह बराबर क्षेत्रफल को बराबर समय में तय करेगी।

अब ऊपर का चित्र देखिए। अ केन्द्र है; वहीं पर सूर्य्य है। ब, स और ल, द दो बिन्दु या विभाग हैं। उनसे अ केन्द्र तक स अ, ब अ, द अ, और ल अ रेखायें खींची गई हैं। अब अ ब स और अ द ल यदि क्षेत्रफल में बराबर हैं तो ब स और द ल दूरी चलने में बराबर समय लगेगा। यदि एक क्षेत्रफल दूसरे से बड़ा है तो चलने में क्षेत्रफल के अनुसार न्यूनाधिकता होगी।

ग्रहों की गति दो नियमों से स्पष्ट हो चुकी-पहले से ग्रहमार्ग ज्ञात हुआ; दूसरे से यह कि घूमते समय ग्रहों की गति में क्या अन्तर पड़ता है। इनके सिवा केपलर साहब ने एक तीसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम भी निकाला है जिससे हम सूर्य्य के आस-पास घूमते हुए ग्रहों की चालों को तुलना कर सकते हैं। अपने मार्ग में घूमते हुए ग्रह कभी सूर्य्य के निकट और कभी दूर हो जाते हैं। सबसे अधिक और सबसे निकट की दूरियों के योग को आधा करने से जो रहे वही ग्रह की सूर्य्य से औसत दूरी होती है। जितनी देर में ग्रह सूर्य्य के आस पास घूम जाता है वह उसका वार्षिक समय कहलाता है—औसत दूरी और वार्षिक समय में परस्पर सम्बन्ध कैसा है?—वार्षिक समय के वर्ग का औसत दूरी के घन से सम्बन्ध है। यह केपलर साहब का तीसरा सिद्धान्त है।

केपलर साहब को मालूम था कि भिन्न भिन्न ग्रहों के भिन्न भिन्न वर्ष होते हैं। और जिनकी सूर्य्य से औसत दूरी अधिक होती है उनके वर्ष भी बड़े होते हैं। इससे उन्होंने इन दोनों में सम्बन्ध निकाला है। यदि सूर्य्य से एक ग्रह दूसरे ग्रह की अपेक्षा दूनी दूरी पर हो तो वार्षिक गति का समय भी दूना होना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं होता। जाँचने से वह तिगुने के लगभग ज्ञात होता है। यही देखकर, बार बार जाँच करके और अखण्ड परिश्रम उठाकर केपलर साहब ने अपना तीसरा सिद्धान्त निकाला।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए पृथ्वी और शुक्र का उदाहरण लीजिए। यदि पृथ्वी की औसत दूरी १ मानी जाय तो शुक्र की ·७२३३ होती है। अतएव पृथ्वी और शुक्र की वार्षिक गति ३६५·३ और २२४·७ दिन हुए। अब केपलर साहब का तीसरा नियम यह है कि ३६५·३ के वर्ग का २२४·७ के वर्ग से वही सम्बन्ध है जो १ के घन का ·७२३३ के घन से सम्बन्ध है। गुणा करने से ज्ञात होगा कि यह सम्बन्ध बहुत ठीक है।

ग्रहों की गति के ये तीनों नियम ज्योतिष-विद्या के स्तम्भ समझने चाहिए। इनकी सत्यता, इनका प्रभाव, इनकी उत्तमता सब पर विदित है। इनको केपलर साहब ने खोज निकाला है इससे इनका नाम है "केपलर के नियम"। उन्होंने ग्रहों के मार्ग अण्डाकार बतलाये; परन्तु यह न बतलाया कि वे अण्डाकार ही क्यों होते हैं? और किसी आकार के क्यों नहीं होते? और इन्होंने न यह सिद्ध किया कि ये ग्रह बराबर समय में क्यों घूम जाते हैं और तीसरे नियम में फ़र्क़ क्यों नहीं पड़ता। इनको श्रीमान् न्यूटन साहब ने गुरुत्वाकर्षणशक्ति के नियमों से सिद्ध किया है। न्यूटन साहब ने यह बात सप्रमाण और साधार साबित कर दी है कि केपलर के तीनों नियम सत्य ही नहीं हैं, वरन यही नियम हो सकते हैं; इनके सिवा और नियम ठीक हो ही नहीं सकते। उन्होंने अपनी पुस्तक प्रिंसिपिया में ग्रहों के तीनों नियमों का कारण केवल गुरुत्वाकर्षण बतलाया है।

न्यूटन साहब के सिद्धान्त सुनिए। सूर्य्य में आकर्षणशक्ति है जिसके कारण प्रत्येक ग्रह अण्डाकार मार्ग में सूर्य्य के आस पास घूमता है। सूर्य्य इस मार्ग के एक केन्द्र, या फोकस, पर रहता है। इस ग्रहमार्ग का अर्द्धव्यास, बराबर क्षेत्रफल बराबर समय में तै करता है। और ग्रहों के वार्षिक गति-समय के वर्ग का सम्बन्ध उनकी औसत दूरी के घन के अनुसार होता है। इन सिद्धान्तों को सुबूत न्यूटन साहब ने गणितविद्या से बतलाये हैं जिनकी उपपत्ति यहां पर देना असम्भव है। तथापि दिग्दर्शन के तौर पर हम कुछ लिखे देते हैं।

मान लीजिए कि एक गोला आकाश में बिना किसी के सहारे ठहरा है। उस पर किसी सांसारिक पदार्थ का असर नहीं है। अब मान लीजिए कि यह गोला किसी अदृश्य शक्ति से, आकाश में चलाया गया। कुछ देर बाद वह शक्ति जाती रही और वह गोला आगे चलता ही रहा। अब यह जानना चाहिए कि वह गोला चलेगा किस ओर से? जब हम आकाश की तरफ़ ऊपर पत्थर फेंकते हैं तब उनको हम एक टेढ़े रास्ते से जाते हुए हमेशा देखते हैं। इसलिए हम अनुमान करते हैं कि गोला भी, जो आकाश में फेंका गया है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसका किसी शक्ति से लगाव नहीं है, टेढ़े ही मार्ग में घूमेगा। परन्तु यह नहीं होता। इस शून्य आकाश में नीचे और ऊपर की कोई सम्भावना नहीं हो सकती। सम्मुख मार्ग एकसां है। आकाश में किसी पिण्ड के दाहने या बायें हटने का कोई कारण नहीं है। इसलिए यह तात्पर्य्य निकलता है कि ऐसा पिण्ड एक सीधे मार्ग से चलेगा। यदि वह चलाया जायगा और उससे किसी दूसरी शक्ति का लगाव न होगा तो ज़रूर है कि वह एक सीधी राह से जाय। पर इसकी सत्यता की जाँच करना असम्भव है; क्योंकि पृथ्वी पर रह कर बाहरी शक्तियों के असर को रोकने का कोई उपाय ही नहीं है। और शक्तियां एक नहीं अनेक हैं। वायु की शक्ति, कई प्रकार के संघर्षणों की शक्ति, और पृथ्वी की आकर्षणशक्ति—ये सब, जाँच करते समय, बाधा देंगी। जब पत्थर बर्फ़ की सतह पर लुढ़काया जाता है तब उसको प्रायः रुकावट न होने से वह एक सरल रेखा में चलता है। इसी प्रकार जब शून्य आकाश में कोई पिण्ड चलता है तब वह सरल मार्ग में चलता है। इसके प्रतिपादन के गणितसम्बन्धी बहुत सबूत हो चुके हैं जिनके लिखने की यहां आवश्यकता नहीं है। अब यह जानना चाहिए कि आकाशगामी पिण्डों की गति किस प्रकार की होगी, अर्थात् उनके वेग में क्या अन्तर होगा।

बर्फ़ के चिकने होने पर भी, पत्थर और बर्फ़ की सतहों पर कुछ रगड़ होती है। इससे पत्थर की गति को रुकावट पहुँचती है और वह चल कर फिर ठहर जाता है। परन्तु शून्य आकाश में किसी तरह की रगड़ नहीं है। इसलिए किसी पिण्ड को हरकत मिलने पर उसके वेग को रोकने के लिए कोई पदार्थ नहीं है। इस कारण उसके वेग में बिना कमी हुए वह चलता ही रहेगा। हम इस बात को देख नहीं सकते; पर न देखने से इस सिद्धान्त में बाधा नहीं आ सकती। हवा का चलना या खेना बन्द हो जाने पर तालाब में चलती हुई नाव ठहर जायगी। भाफ के बिना रेलगाड़ी खड़ी हो जायगी। घूमता हुआ लट्टू, समय पाकर, ठहर जायगा। पर जाँचने से मालूम होगा कि इन चीज़ों का चलना किसी रुकावट के कारण बन्द हो जाता है। नाव पानी की लहरों को रगड़ लगने और हवा की रुकावट से ठहर जाती है। रेलगाड़ी पहियों को रगड़ खाने से खड़ी हो जाती है। और हवा की रुकावट से लट्टू भी ठहर जाता है; क्योंकि यदि किसी बर्तन के भीतर की हवा निकालकर उसके अन्दर हम लट्टू घुमावें तो वह बहुत देर तक घूमता रहेगा। इन उदाहरणों से यह तात्पर्य्य निकलता है कि यदि रोकनेवाली कोई बाहरी शक्ति विद्यमान नहीं है तो कोई पिण्ड, जो आकाश में निराधार चलाया गया है, सदा एक सरलरेखा में उसी वेग से चलता रहेगा जो आदि में उसको दिया गया है। इसीका नाम "गति का पहला नियम" है।

अब इस नियम का ग्रहों के साथ उपयोग करना चाहिये। इसके अनुसार पृथ्वी की गति की जाँच कीजिए। हम जानते हैं कि पृथ्वी १८ मील फी सेकंड चलती है। अब यदि किसी बाहरी शक्ति का इस पर असर नहीं पड़ता तो यह पहले नियम के अनुसार एक सरल रेखा में इसी वेग से चलेगी। परन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि केपलर साहब ने स्पष्टता पूर्वक सिद्ध कर दिखाया है कि पृथ्वी सूर्य के आस पास घूमती है। इससे यह जान पड़ा कि इस पर किसी बाहरी शक्ति का अवश्य असर है, जो उसे सरल रेखा में चलने से रोकता है और उसे अंडाकार मार्ग में घुमाता है।

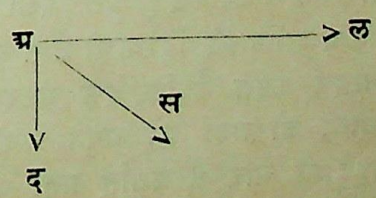

कल्पना कीजिए कि अ पृथ्वी है जो ल की तरफ चलती है। परन्तु वह द की तरफ खींची जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दोनों खिंचावों का नतीजा यह होता है कि वह स की तरफ खिँच जाती है।

अब यह जानना आवश्यक है कि वह बाहरी शक्ति कौन सी है जिस का ऐसा असर पृथ्वी की चाल पर पड़ता है और उसके क्या नियम हैं। यह दशा पृथ्वी ही की नहीं किन्तु मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि इत्यादि ग्रहों की भी है। वे भी सरल रेखा में नहीं घूमते। उन पर भी किसी बाहरी शक्ति का असर पड़ता है। यह शक्ति आई कहां से जो ग्रह मात्र में अपना असर डाले हुए है। यदि न्यूटन साहब आकर्षण शक्ति के नियम न निकलते तो इस शक्ति का पता लगना मुशकिल हो जाता।

अच्छा तो यह सिद्ध हुआ कि ग्रहों पर किसी बाहरी शक्ति का असर पड़ता है। पर यह असर है कैसा जो उन्हें अंडाकार मार्ग में घुमाता है और प्रत्येक ग्रह को बराबर क्षेत्रफल बराबर समय में चलाता है। यह असर एक प्रकार की शक्ति है। और जब वह शक्ति है तब उसकी दिशा भी होनी चाहिए। जब हम रस्सी से किसी चीज़ को खींचते हैं तब रस्सी खिँचाव की दिशा होती है। इसी प्रकार मान लीजिए कि ग्रहों पर भी किसी अदृश्य रस्सी के खिँचाव का असर पड़ता है। केपलर साहब के नियमों से इस अदृश्य रस्सी के खिँचाव और उसकी न्यूनाधिकता का पता लगता है। केपलर साहब का सिद्धान्त है कि ग्रह बराबर क्षेत्रफल बराबर समय में चलते हैं। इस बात को न्यूटन ने गणितविद्या से सिद्ध किया है। और इसी से इस खिँचाव रूपी शक्ति की दिशा भी ज्ञात होती है। न्यूटन साहब कहते हैं कि इस अदृश्य रस्सी का खिँचाव, जो ग्रहों को अपने अधीन किये हुए है, सूर्य की ओर है अर्थात् ग्रहों पर जिस शक्ति का असर पड़ता है उसकी दिशा ग्रहों से सूर्य की ओर है।

अब यह जानना है कि जब कोई ग्रह अ मार्ग में भिन्न भिन्न स्थानों में होता है तब शक्ति में क्या न्यूनाधिकता होती है। यह केपलर साहब के पहले नियम से जानी सकती है। यदि ग्रह का मार्ग अंडाकार है, शक्ति की दिशा सूर्य की ओर है, और सूर्य उस अण्डाकार मार्ग के एक केन्द्र, फोकस, में विद्यमान है, तो गणितविद्या के से हम को यह अवश्य मानना पड़ेगा कि शक्ति उसी हिसाब से न्यूनाधिक होगी हिसाब से ग्रह की सूर्य से दूरी के विपरीत वर्ग में न्यूनाधिकता होती है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि आकर्षण शक्ति ग्रहों को सूर्य की ओर खींचती है और आकर्षण की न्यूनाधिकता में दूरी के विपरीत वर्ग का असर पड़ता है। हम ऐसा कदापि नहीं कह सकते कि आकर्षण नहीं है, क्योंकि हम देखते हैं कि पृथ्वी अन्य ओर चीज़ों को खींचती है। उसका आकर्षण चन्द्रमा तक पहुँचता है। वही उसे पृथ्वी के आस पास घुमाता है। यही आकर्षण सब ग्रहों को भी सूर्य के आस पास घुमाता है। यह आकर्षण सूर्य ही में नहीं किन्तु कुल में है जिसके कारण वे एक दूसरे को अपनी खींचते हैं।

इसी आकर्षणशक्ति से पुच्छलतारों की और उपग्रहों की चालें इत्यादि जानी जाती इसीसे ज्वारभाटे का आना सिद्ध होता है। और बातें भी, जो सूर्य के क्रान्ति-मण्डल में हैं, इसीसे जानी जाती हैं। और जब हम सूर्य अतिरिक्त दूसरे ग्रह और नक्षत्र आदि के विषय विचार करते हैं तब वहां भी हम गुरुत्वाकर्षण शक्ति को व्याप्त पाते हैं।

शुकदेवप्रसाद तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू और "आज़ाद"।

गवर्नमेंट कालेज, लाहौर, के भूतपूर्व अरबी-अध्यापक शम्सुल्-उल्मा मौलवी मुहम्मद-हुसैन साहब (आज़ाद) ने एक किताब "आबे-हयात" नाम की उर्दू में लिखी है। उसमें उर्दू के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों का जीवन-चरित, उनकी कविताओं के चुने हुए नमूने और उर्दू-भाषा की यथाक्रम उन्नति आदि का वर्णन है। उर्दू-साहित्य-संसार में इस किताब की बड़ी महिमा है और किताब है भी अच्छी। मौलवी साहब ने पक्षपात को बिलकुल छोड़कर अपने नामानुकूल खूब आज़ादी के साथ सब बातों की आलोचना की है। हज़रत आज़ाद फ़ारसी और उर्दू के महा-वैयाकरण और महा-विद्वान् समझे जाते हैं। अतएव उर्दू के विषय में उनकी क्या राय है यह हम उनकी "आबे-हयात" से दिखलाना चाहते हैं। हम देखते हैं कि कुछ हिन्दी जाननेवालों का आग्रह उर्दू के समान दोषपूर्ण भाषा की लेख-प्रणाली और उसके व्याकरण की तरफ़, मतलब से अधिक, बढ़ रहा है। इसीसे हम "आज़ाद" की आज़ादाना राय सरस्वती के पाठकों के सामने रखते हैं और इस बात का फ़ैसला हम उन्हीं पर छोड़ते हैं कि इस भाषा की लेख-प्रणाली को आदर्श मानना मुनासिब है या नहीं और है तो कहाँ तक।

मौलवी साहब ने अपनी किताब में, प्रस्तुत विषय में, जो कुछ लिखा है उसका कुछ कुछ अंश हम उन्हीं के शब्दों में देते हैं। उचित तो यह था कि सिर्फ़ हिन्दी ही जानने वालों के सुभीते के लिए हम उनकी इबारत को हिन्दी का रूप दे देते। पर ऐसा करना हमने ज़रूरी नहीं समझा। कारण यह है कि उर्दू की इबारत का कुछ अंश वाचकों को यदि न भी समझ पड़े तो विशेष हानि नहीं, पर हिन्दी का रूप देने पर, कहीं कोई यह न समझ बैठे कि हमने मौलवी साहब की राय ठीक तौर पर नहीं प्रकट की; उसमें कुछ भूल हो गई। अभाग्यवश देहली या लखनऊ के महिमामय मौलवी महाशयों की सङ्गति करने का हमें कभी सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। इससे, सम्भव है, हम नीचे के अवतरणों में अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्दों का उच्चारण ठीक ठीक न कर सकें। पर हमें आशा है, हमारे पाठक "हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्" नीति का अनुसरण करते हुए मतलब की बातों को समझ कर हमारे इस दोष को क्षमा करेंगे।

हज़रत "आज़ाद" ने मौक़े मौक़े पर उर्दू की तारीफ़ भी की है और जो दोष उसमें हैं उन्हें दिखलाने में उन्होंने कसर भी नहीं की। उनके दिखलाये हुए सिर्फ़ दोषों ही का उल्लेख हम यहां पर इसलिए करते हैं जिसमें हिन्दी वाले उर्दू को अपना आदर्श न समझें और उसके दोषों को नक़ल करने की कोशिश न करें।

उर्दू की अनस्थिरता के विषय में, मौलवी साहब, १८९९ ईसवी की छपी हुई, अपनी पुस्तक, "आबे-हयात" के तेईसवें पृष्ठ में लिखते हैं—

"उर्दू इस क़दर जल्द जल्द रंग बदल रही
"है कि एक मुसन्निफ़ अगर ख़ुद अपनी एक
"सन् की तसनीफ़ को दूसरे सन् की तसनीफ़
"से मुक़ाबला करे तो ज़ुबान में फ़रक़ पायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बावजूद इसके अब तक भी इस क़ाबिल नहीं
"कि हर क़िस्म के मज़मून ख़ातिरख़्वाह अदा
"कर सके या हर इल्म की किताब को बेतकल्लुफ़
"तरजमा कर दे।"

जब उर्दू की यह दशा है तब हिन्दी के लिए वह क्यों आदर्श मानी जाय? हिन्दी को संस्कृत के व्याकरण का यथासम्भव अनुकरण करना चाहिए; उर्दू, फ़ारसी के व्याकरण का नहीं। अब पाठक विचार करें कि मौलवी साहब की उर्दू-इबारत का व्याकरण संस्कृत-व्याकरण के नियमों के कहां तक अनुकूल है?

कुछ लोगों का ख़याल है कि अरबी, तुर्की और फ़ारसी का कोई शब्द यदि हिन्दी में लिखा जाय तो उसका उच्चारण ठीक वैसाही होना चाहिए जैसा कि उन भाषाओं में होता है। यह बात भाषा-विज्ञान के नियमों के सर्वथा ख़िलाफ़ है। यदि ऐसा हो सकता तो आज संस्कृत और प्राकृत के हज़ारों शब्दों की उर्दू में जो मिट्टी ख़राब हो रही है वह न होती। इस उर्दू ने अरबी, फ़ारसी और तुर्की के भी अनन्त शब्दों को तोड़ मरोड़ कर अपना सा कर लिया है। ऐसे शब्दों के कितने ही उदाहरण मौलवी साहब ने अपनी किताब में दिये हैं। जिस उर्दू ने संस्कृत के गणनातीत शब्दों की दुर्गति कर डाली उसके पक्षपाती यदि कहें कि अगर फ़ारसी, अरबी का कोई शब्द, जो हिन्दी में चलित है, यदि उसमें लिखा जाय तो अपने मूल उच्चारण के अनुसार ही लिखा जाय तो समझदार आदमी यही कहेंगे कि भाषा-तत्व का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं। जो फ़ारसी अरबी जानता है वही ऐसे शब्दों को, मूल भाषा के उच्चारण के अनुसार, ठीक ठीक लिख सकता है; दूसरों के लिए यह बात सम्भव नहीं। अन्य भाषा के शब्द बोल-चाल में आने के कारण अपने मूल-रूप से बहुत कुछ न कुछ गिरही जाते हैं। इस दशा में, उन शब्दों के लिए विदेशी भाषाओं के कोश का हवाला देना निरी अन्यायपूर्ण और अश्रद्धेय बात है। अन्य भाषाओं के शब्द जब किसी भाषा में आते हैं तब वे जिस रूप में उस भाषा में लिखे जाने लगते हैं वही रूप उनका हो जाता है। उर्दू में संस्कृत, फ़ारसी, अरबी और तुर्की के जो शब्द बिगड़े हुए रूप में प्रचलित हैं उन्हें अशुद्ध ठहराने की किसी में शक्ति नहीं। ठीक वही बात हिन्दी भाषा में व्यवहृत विदेशी शब्दों के लिए कही जा सकती है।

मुहाविरे के विषय में "आबे-हयात" की राय सुनिए। उसके पृष्ठ ३०-३१ में लिखा है—

"बाज़ अश्ख़ास यह भी कहते हैं कि ख़ास
"भाषा में कुछ मज़ा नहीं। उर्दू ख़्वाह मख़ाह
"तबीयत को भली मालूम होती है। मगर
"अक्ल दोनों बातों में हैरान है। क्योंकि
"कोई कहे—आज एक शख़्स आया था—
"यह कहें कि एक मनुष आया था, तो दो
"यकसां हैं। क्योंकर कहूं कि मनुष मुख़ा
"तबा है? यह भी तो हो सकता है कि
"बचपन से शख़्स सुनते हैं। इसलिए
"मनुष या मानुस नामानूस (नापसन्द) मा
"होता है। इसी तरह और अलफ़ाज़ जि
"तादाद शुमार से बाहर होगई है।

"इससे ज़ियादा तअज्जुब यह है कि बहु
"लफ्ज़ ख़ुद मतरूक हैं। मगर दूसरे लफ्
"तरकीब पाकर ऐसे हो जाते हैं कि फ़सह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुहाविरे में जान डालते हैं। मसलन् यही "मानुस कि अकेला मुहाविरे में नहीं मगर सब "बोलते हैं कि अहमद ज़ाहिर में तो भलामानुस "मालूम होता है बातिन की ख़बर नहीं।

"बन्धु, भाषा में भाई या दोस्त को कहते हैं। "अब मुहाविरे में भाई बन्द कहते हैं। न फ़क़त "बन्धु, न भाई बन्धु। और इन इस्तेमालों की "तरजीह के लिए दलील किसी के पास नहीं। "जो कुछ जिस ज़माने में रवाज हो गया वही "फ़सीह हो गया। एक ज़माना आयेगा कि "हमारे मुहाविरे को लोग बे मुहाविरा कह कर "हँसेंगे॥"

उर्दू, संस्कृत और प्राकृत से ही पैदा हुई है; उसने कितने ही संस्कृत-शब्दों को बिगाड़ बिगाड़ कर अपने में मिलाया है, इस पर "आज़ाद" लिखते हैं। उनकी किताब का इकतीसवां पृष्ठ देखिए—

"अगरचे यह बात बग़ैर तमसील देखने के "भी हर शख़्स के ख़याल में नक़्श है कि "संस्कृत और व्रजभाषा की मिट्टी से उर्दू का "पुतला बना है। बाक़ी और ज़ुबानों के अल- "फ़ाज़ ने ख़त व ख़ाल का काम किया है मगर "मैं चन्द लफ़्ज़ मिसालन लिखता हूं। देखो "संस्कृत अलफ़ाज़ जब उर्दू में आये तो उनकी "असलियत ने इनक़िलाब ज़माना के साथ "क्योंकर सूरत बदली है।"

इसके आगे संस्कृत शब्दों की एक तालिका है। "उर्दू-बेगम" के लेखक महाशय ने भी ख़ूब समझाया है कि उर्दू प्राकृत ही की बेटी है। अब हमारी प्राकृत-प्रसूत हिन्दी यदि उर्दू-व्याकरण की नक़ल करने चले तो बड़े अफ़सोस की बात है, बड़ी लज्जा की बात है। उर्दू की बदौलत फ़ारसी, अरबी के जो शब्द बोल चाल में आ गये हैं उनका प्रयोग हिन्दी में अनुचित नहीं कहा जा सकता। पर हिन्दी में अरबी, फ़ारसी के क्लिष्ट शब्द लिखना और उर्दू के व्याकरण की नक़ल करना हिन्दी की असलियत का सर्वनाश करना है। उर्दू का व्याकरण भी कोई व्याकरण है?

फ़ारसी, अरबी और तुर्की के उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलङ्कारों को उर्दू में लाने और इबारत को रंगीन बनाने की कोशिश में उर्दू वालों ने अपनी भाषा की जो दुर्गति की है उस पर अध्यापक आज़ाद क्या कहते हैं सो सुनिए। उनके "अमृत" (आबे-हयात) के पृष्ठ ४७, ४८, ५२ और ५३ देखिए—

"बयान मज़कूरै बाला से तुम्हें एजमालन् "मालूम हो गया कि उर्दू का दरख़्त अगरचे "संस्कृत और भाषा की ज़मीन में उगा मगर "फ़ारसी की हवा में सरसब्ज़ हुआ है। अल- "बत्ता मुश्किल यह हुई कि "बेदिल" और "नासिरअली" का ज़माना क़रीब गुज़र चुका "था और इनके मोतक़िद बाक़ी थे। वह इस्ते- "आरा और तशबीह के लुत्फ़ से मस्त थे। इस "वास्ते गोया उर्दू भाषा में इस्तेआरा व तश- "बीह का रंग भी आया और बहुत तेज़ी से "आया। यह रंग अगर इसी क़दर आता "जितना चेहरे पर उबटने का रंग या आँखों में "सुर्मा तो ख़ुशनुमाई और बीनाई दोनों को "मुफ़ीद था। मगर अफ़सोस कि उसकी शिद्दत "ने हमारे क़ुवत बयान की आँखों को सख़्त "नुक़सान पहुँचाया और ज़ुबान को ख़याली "बातों से फ़क़त तौहमात का स्वाँग बना "दिया। नतीजा यह हुआ कि भाषा और उर्दू "में ज़मीन आस्मान का फ़र्क़ हो गया!

* * * * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तअज्जुब यह है कि इन ख़यालों ने और
"वहां की तशबीहों ने इस क़दर ज़ोर पकड़ा
"कि इनके मुशाबेह जो यहां की बातें थीं उन्हें
"बिलकुल मिटा दिया। अलबत्ता सौदा, सय्यद
"इन्शा के कलाम में कहीं कहीं हैं और वह
"अपने मौके पर निहायत लुत्फ़ देती हैं।

"ग़रज़ कि अब हमारी इनशा-परदाज़ी एक
"पुरानी याददाश्त उन तशबीहों और इस्तेआरों
"की है कि सदहा साल से हमारे बुज़ुर्गों की
"दस्तमाल हो कर हम तक मीरास पहुँची हैं।
"हमारे मुताख़रीन को नई आफ़रीं लेने की आर्ज़ू
"हुई तो बड़ा कमाल यह है कि कभी सिफ़त
"बाद सिफ़त कभी इस्तेआरा दर इस्तेआरा से
"उसे और तंग व तारीक किया जिससे हुआ
"तो यह हुआ कि बहुत ग़ौर के बाद फ़क़त एक
"वहमी नज़ाकत और फ़र्ज़ी लताफत पैदा हो गई
"कि जिसे मुहालात का (मुशकिलों का) मज-
"मूआ कहना चाहिये। लेकिन अफ़सोस यह
"है कि बजाय इसके कि कलाम उनका ख़ास
"व आम के दिलों पर तासीर करे वह मुस्तैद
"लोगों की तबा-आज़माई के लिये एक दक़ीक़
"मुअम्मा और अवाम के लिये एक अजीब
"गोरखधन्दा तैयार हो गया। और जवाब
"उनका यह है कि कोई समझे तो समझे जो न
"समझै वह अपनी जेहालत के हवाले।"

सुना आपने उर्दू के इन्शापरदाज़ों की कर-
तूत। अब कुछ और सुनिए। दो एक बातों में फ़ारसी ढंग की नक़ल करके उर्दू, व्रजभाषा से बढ़ गई—इस पर ख़ुशी मनाते हुए "आज़ाद" साहब "आबे-हयात" के पृष्ठ ५६ और ५७ में फ़रमाते हैं—

'इस फ़ख्र के साथ यह अफ़सोस फिर भी
"दिल से नहीं भूलता कि उन्होंने (अपने बुज़ुर्गों
"ने) एक क़ुदरती फूल को जो अपनी खुश्बू से
"महकता और रंग से लहकता था मुफ़्त हाथ
"से फेंक दिया। वह क्या है? कलाम का
"असर और इज़हार असलियत। हमारे नाज़ुक
"ख़याल और बारीकबीन लोग इस्तेआरों और
"तशबीहों की रंगीनी और मुनासिबत लफ़्ज़ी
"के ज़ौक़ व शौक़ में ख़याल से ख़याल पैदा
"करने लगे और असली मतलब के अदा करने
"में बे परवा हो गये। अंजाम इसका यह हुआ
"कि ज़ुबान का ढंग बदल गया और नौबत
"यह हुई कि अगर कोशिश करें तो फ़ारसी
"की तरह पंजरुक्का और मीनाबाज़ार या फ़िसाने-
"अजायब लिख सकते हैं। लेकिन एक मुल्की
"मुआमिला या तारीख़ी इन्क़िलाब इस तरह नहीं
"बयान कर सकते जिससे मालूम होता जाय
"कि वाक़या मज़कूर क्योंकर हुआ और क्योंकर
"इख़तिताम को पहुँचा।

* * * * *

"यह क़बाहत फ़क़त नाज़ुक ख़याली ने पैदा
"की, कि इस्तेआरा व तशबीह के अन्दाज़ और
"मुतरादिफ़ फिक़रे तकिया कलाम की तरह
"हमारीज़बाने-क़लम पर चढ़ गये। बेशक हमारे
"मुतक़द्दमीन उसकी रंगीनी और नज़ाकत देख
"कर भूले मगर न समझे कि यह ख़याली रंग
"हमारे असली जौहर को ख़ाक में मिलाने वाला
"है। यही सबब है कि आज अँगरेज़ी ढंग पर
"लिखने में या उनके मज़ामीन के पूरा पूरा
"तरजमा करने में हम बहुत क़ासिर हैं। नहीं
"हमारी असली इन्शापरदाज़ी इस रिश्ते में
"क़ासिर है।

* * * * *

"बेशक हमारी तर्ज़ बयान अपनी सुन
"बन्दिश और क़ाफ़ियों के मुसलसल खटकों
"कानों को अच्छी तरह ख़बर करती है। और
"रंगीन अलफ़ाज़ और नाज़ुक मज़मून से ख़याल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं शोख़ी का लुफ़्फ़ पैदा करती है। साथ इसके "मुबालिग़े कलाम और इबारत को धूम धाम से "ज़मीन व आसमान को तह व बाला कर देती "है। मगर असल मक़सूद यानी दिली असर "या इज़हार वाक़फ़ियत ढूंढो तो ज़रा नहीं।"

शिव! शिव! यद्यपि "आज़ाद" ने "आबे-हयात" में ख़ुद भी रंगीन इबारत लिखी है (पहले ही दौर का आरम्भ देखिए) तथापि ऐसी इबारत को बुरा बतलाने में उन्होंने ज़रा भी आगा पीछा नहीं किया। हम उनकी न्यायपरायणता, सुरुचि और बहुदर्शिता की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। जो अवतरण हमने ऊपर दिये हैं उनके आगे भी उन्होंने उर्दू वालों की अस्वाभाविक रचना पर अफ़सोस ज़ाहिर किया है और उन्हें लानत मलामत की है।

शुरू शुरू में उर्दू-भाषा की टकसाल देहली और लखनऊ थी। इसका कारण "आज़ाद" यह बतलाते हैं कि इन दोनों शहरों में प्रत्येक शहर उस समय राजधानी था। "दरबारही में ख़ानदानी उमरा और अमीर-ज़ादे ख़ुद साहब इल्म होते थे। उनकी मजलिसें अहले इल्म और अहले कमाल का मजमा होती थीं। * * * इसी वास्ते गुफ़्तगू, लिबास, अदब आदाब, नशिस्त बरख़ास्त, बल्कि बात बात ऐसी संजीदा और पसंदीदा होती थी कि ख़्वाह मख़्वाह सबके दिल क़बूल करते थे"। पर अब वह समय नहीं। आज कल की दशा का वर्णन प्रोफ़ेसर साहब अपनी किताब के पृष्ठ ६१ और ६२ में इस तरह करते हैं—

"दिल्ली बरबाद लखनऊ वीरान। दोनों के "सनदी अशख़ास कुछ पैवन्दज़मीन हो गये। "कुछ दर बदर ख़ाक बसर। अब जैसे और "शहर वैसे ही लखनऊ। जैसे छावनियों के "बाज़ार वैसे हो दिल्ली। बल्कि उससे भी "बदतर। कोई शहर ऐसा नहीं रहा जिसके "लोगों की ज़ुबान अमूमन सनद के क़ाबिल "हो। क्योंकि शहर में ऐसे चीदा और बर-"गुज़ीदा अशख़ास जिनसे कि वह शहर क़ाबिल "सनद हो सिर्फ़ गिन्ती के लोग होते हैं और "वह ज़माने की सदहा साला मेहनतों का "नतीजा होते हैं। इनमें से बहुत मर गये। "कोई बुड्ढा जैसे ख़िज़ाँ का मारा पत्ता किसी "दरख़्त पर बाक़ी है। उस बुड्ढे की आवाज़ "कमेटियों के ग़ुल और अख़बारों के नक़्क़ार-"ख़ानों में सुनाई भी नहीं देती। पस अब अगर "दिल्ली की ज़ुबान को सनदी समझें तो वहां "के हर शख़्स की ज़ुबान क्योंकर सनदी हो "सकती है। हवा का रुख़ और दरिया का बहाव "न किसीके अख़तियार में है न किसीको मालूम "है कि किधर फिरेगा। इसलिए नहीं कह "सकते कि अब ज़ुबान क्या रंग बदलेगी। "हम जहाज़ बे ना.ख़ुदा हैं। तवक़ुल ब.ख़ुदा "कर बैठे हैं। ज़माना के इनक़िलाबों को रंग "चमन की तबदीली समझ कर देखते हैं और "कहते हैं, आज़ाद—

"क़िस्मत में जो लिखा था सो देखा है अब तलक।
"और आगे देखिए अभी क्या क्या हैं देखते।"

अतएव देहली और लखनऊ के बोल-चाल की नक़ल करना हिन्दी के लिए कदापि लाभदायक नहीं। जिसका सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता और सर्वमान्य ग्रन्थकार उसे ऐसी बुरी सनद दे उस भाषा की नक़ल करना हिन्दी के शुभचिन्तकों का कर्तव्य है या नहीं इसका विचार हम पाठकों ही पर छोड़ते हैं। बँगला, मराठी, गुजराती, संस्कृत और अँगरेज़ी भाषायें हिन्दी से बहुत बढ़ी चढ़ी अवस्था में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी प्रणाली न स्वीकार करके देहली और लखनऊ की महा-अनस्थिर, व्याकरण-विरुद्ध और अस्वाभाविक भाषा की नक़ल करके "जहाज़ बे ना.खुदा" बनकर प्रमाद-महासागर में जान बूझ कर डूबना है!

बालक-विनोद।

(शहर और गाँव)

[१]

शहर गाँव से बोला भाई।
मुझको तुझ पर मिली बड़ाई॥
मुझसे सबको बहुत नफ़ा है।
तुझसे तो हर शख़्स ख़फ़ा है॥

[२]

मैं आराम बहुत देता हूं।
काम बहुत से मैं करता हूं॥
अच्छे अच्छे माल बनाकर।
रख देता हूं सजा सजा कर॥

[३]

मैं पूरी, पकवान, मिठाई।
देता हूं सब बनी बनाई॥
बिसकुट, रोटी, नानख़ताई।
मक्खन, रबड़ी, दूध, मलाई॥

[४]

और बहुत से उम्दा खाने।
सबको देता हूँ मनमाने॥
रात बिरात किसी दम आवे।
थका मुसाफ़िर खाना पावे॥

[५]

टिक रहने के बहुत ठिकाने।
अच्छे बने मुसाफ़िरख़ाने॥
जो कुछ चाहे सब मिलता है।
मुरझाया दिल भी खिलता है॥

[६]

थान रेशमी, ऊनी, सूती।
अच्छी भड़क, बड़ी मज़बूती॥
ख़ासा, मलमल, नैनू, लट्ठा।
मख़मल, साटन, गोटा, पट्ठा॥

[७]

लोई, धुस्सा, शाल, दुशाला।
मिलै एक से एक निराला॥
मोती, मूंगा, चाँदी, सोना।
ज़ेवर, बरतन और खिलौना॥

[८]

तेरा भी हूँ बहुत सहारा।
मुझसे तेरा बड़ा गुज़ारा॥
लेकर पैदावारी तेरी।
देता हूँ दौलत बहुतेरी।

[९]

क़र्ज़ तभी सर से टलता है।
काम तभी तेरा चलता है॥
तेरे हैं बहुतेरे दुश्मन।
चोर, लुटेरे, साह महाजन॥

[१०]

मुझ बिन तुझे चैन से रहना।
मुश्किल है, भाई, सच कहना॥
जजी, मुन्सिफ़ी, मैजिस्ट्रेटी।
मैंने तेरे लिए समेटी॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[११]

हाकिम, अहलकार, बैरिस्टर ।
सब बिठलाये तेरी ख़ातर ॥
बैद, हकीम, डाक्टर, सरजन ।
जो हैं सब रोगों के दुश्मन ॥

[१२]

ये सब तुझे मदद देते हैं ।
बिगड़ा काम बना देते हैं ॥
जो मेरा यहसान न माना ।
तो है तू पूरा दीवाना ॥

[१३]

गाँव हँसा सुन कर ये बातें ।
कहा, जानता हूँ सब घातें ॥
जो यहसान जताते हो तुम ।
बातें बड़ी बनाते हो तुम ॥

[१४]

अपने गुन सब गाते हो तुम ।
सब्ज़ बाग़ दिखलाते हो तुम ॥
सबको ख़ूब लुभाते हो तुम ।
खोटी चाल चलाते हो तुम ॥

[१५]

ऐसी चाट लगाते हो तुम ।
ऐसे ठाट बनाते हो तुम ॥
पहले जो बहलाते हो तुम ।
पीछे ख़ूब रुलाते हो तुम ॥

[१६]

जो मीठी बातों में आवे ।
पीछे सिर धुन कर पछतावे ॥
मैं अपने घरही में ख़ुश था ।
तुमने मुझको किया निकम्मा ॥

[१७]

अब तुम मेरी सुनो कहानी ।
हुई बड़ी मुझसे नादानी ॥
जो मैं पास तुम्हारे आया ।
अपना सारा भरम गँवाया ॥

[१८]

सारे दुख, तकलीफ़ें सारी ।
मिलीं मुझे तुमसे कर यारी ॥
पहले दुनिया में मैं हीं था ।
कोई दुख उस वक़्त नहीं था ॥

[१९]

खुली, साफ़, बेरोग हवा में ।
जो गुन है, वह नहीं दवा में ॥
पहले तुम थे कहां ? बताओ ।
कौन काम था रुका ? जताओ ॥

[२०]

किसको क्या तकलीफ़ रही थी ?
किसको क्या उस वक़्त कमी थी ॥
खुली हवा में रहते थे सब ।
खाते, पीते, सोते थे सब ॥

[२१]

सब चंगे थे; रोग नहीं था ।
जूड़ी, प्लेग, बुख़ार नहीं था ॥
सादा खाना सब खाते थे ।
पच जाता था; सुख पाते थे ॥

[२२]

दूध, दही की कमी नहीं थी ।
गाय भैंस को क्या गिनती थी ॥
तुमने अब जो चाट लगाई ।
उसने बीमारी फैलाई ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२३]

तब बेदौं की चाह नहीं थी।
रोग न थे; परवाह नहीं थी॥
जड़, फल, फूल राह में चुनकर।
भर लेते थे पेट मुसाफ़िर॥

[२४]

अब भी मेरा हाल वही है।
सीधी सादी चाल वही है॥
तुमसे क्या आराम किसी को?
दुखही दुख है सबके जीको॥

[२५]

जो सुख मैं सबको देता हूँ।
उसका बदला कब लेता हूँ?
मुझमें है आराम अनूठा।
मुझसे ख़फ़ा रहे वह झूठा॥

[२६]

सब समान जो तू रखता है।
मेरा पैदा किया हुआ है॥
मेरीही मेहनत का फल है।
जिससे तुझको इतना बल है॥

[२७]

छल, फ़रेब सब करते हो तुम।
मार और को मरते हो तुम॥
काम अदालत से क्या हमको।
क्या वकील को परवा हमको?

[२८]

तुम झूठे इलज़ाम लगाकर।
ले आते हो फँसा फँसाकर॥
जेवर, ज़रो वग़ैरह चीज़ें।
तुम्हें मुबारिक रहें तमीज़ें॥

[२९]

ग़ौर करो तो मुझको जानो।
दिल में सोचो तो पहचानो॥
अपने मुँह से सभी बड़े हैं।
तुमसे मिल लाखों बिगड़े हैं॥

महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र।

इलाहाबाद, सोमवार, १ नवम्बर, १८५८ ईसवी।

गलिस्तान की महारानी विक्टोरिया ने माननीय गवर्नर जनरल बहादुर को आज्ञा दी है कि हिन्दुस्तान के राजे, महाराजे, सरदार और सर्व-साधारण के जानने के लिए नीचे दिया हुआ घोषणापत्र, जो महारानी ने बड़ी कृपा करके लिखा है, प्रकाशित किया जाय।

हिन्दुस्तान के राजे, महाराजे, तअल्लुक़ेदार, सरदार और दूसरे लोगों के लिए, कौंसिल के इजलास में विराजमान महरानी का घोषणा-पत्र—

ग्रेटब्रिटन और आयरलैंड के संयुक्त राज्य की, और इस राज्य के अधीन योरप, एशिया, अफ़्रिक़ा, अमेरिका और आस्ट्रेलेशिया में जितने छोटे मोटे उपराज्य, उपनिवेश और बस्तियां हैं उन सब की महारानी और धर्म्म की रक्षा करने वाली विक्टोरिया है।

हिन्दुस्तान का राज-काज आज तक मानवीय ईस्ट इंडिया कम्पनी हमारी तरफ़ से चलाती थी। पर अब कई एक विशेष महत्व के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से, पारलियामेंट नाम की सभा में इकत्र हुए स्पिरिचुअल और टेंपरल लार्ड और कामन की सलाह और सम्मति से, वह कारोबार हमने ख़ुद ही करने का निश्चय किया है।

इस कारण हम इस घोषणापत्र के द्वारा सूचित और प्रकट करती हैं कि ऊपर लिखे अनुसार सलाह और सम्मति लेकर पूर्वोक्त राज्य का कारोबार हमने अपने हाथ में ले लिया है; और हम पूर्वोक्त देश की अपनी सारी प्रजा को आज्ञा देती हैं कि, तुम हमारे, हमारे वारिसों के, और हमारे उत्तराधिकारियों के, साथ, यथार्थ प्रजा का जैसा सम्बन्ध होना चाहिए उसके अनुसार, सचाई और ईमानदारी का बर्ताव करो; और अब आगे पूर्वोक्त देश का राज काज हमारे नाम पर, हमारी तरफ़ से, करने के लिए जब जब जिस जिस अधिकारी को हम नियत करें उस उस की आज्ञा तुम पालन करती रहो।

अपने बहुत बड़े विश्वास और प्रीतिपात्र मन्त्री माननीय चार्ल्स जान वाइकौंट केनिंग् साहब की ईमानदारी, योग्यता और चतुरता पर अपना पूरा विश्वास और भरोसा रखकर उनको, अर्थात् उल्लेख किये गये वाइकौंट केनिंग् साहब को, पूर्वोक्त देश में हम अपना पहला वाइसराय और गवर्नर जनरल निश्चित और नियत करती हैं; और हमारे नाम पर पूर्वोक्त देश का राज्य-सम्बन्धी कारोबार चलाने, और एक मुख्य स्टेट सेक्रेटरी की मारफ़त जो जो हुक्म और क़ायदे, समय समय पर, हमारी तरफ़ से उनके पास पहुँचें उनके अनुसार हर एक विषय में, हमारे नाम पर, हमारी तरफ़ से, कारर्वाई करने, का हम उन्हें अधिकार देती हैं।

इस समय जिन जिन देशी और फ़ौजी कामों पर जो जो अधिकारी माननीय ईस्ट इंडिया कंपनी के नियत किये हुए हैं उन सब को हम उन कामों पर बहाल करती हैं; आगे जैसी हमारी इच्छा होगी, और जो क़ायदे या क़ानून हम बनावेंगी तदनुसार फेर फार किया जायगा।

हिन्दुस्तान के जितने राजे और रजवाड़े हैं उनसे हम यह बात साफ़ तौर पर प्रकट करती हैं कि, माननीय ईस्ट इंडिया कंपनी ने उनके साथ जो सन्धिपत्र और इक़रारनामे किये होंगे, या जो पूर्वोक्त कम्पनी के हुक्म से हुए होंगे, वे सब हमको मंज़ूर हैं, उनका हम सावधानी से पालन करेंगी; इसी तरह राजे रजवाड़ों को भी अपनी अपनी तरफ़ से उन सन्धिपत्रों और इक़रारनामों की शर्तों का पालन करना चाहिए।

इस समय हमारा जितना राज्य है उसे बढ़ाने की हमारी बिलकुल इच्छा नहीं; हमारे राज्य और राजाधिकार को धक्का पहुँचाने का यदि किसी ने यत्न किया तो हम उसे दण्ड दिये बिना रहने की नहीं; और, इसी तरह, दूसरों के देश और हक़ को धक्का पहुंचाने वाली बात हम कभी मंज़ूर करने की नहीं। जिस तरह हम अपना अधिकार, अपना दर्जा, अपनी मान मर्य्यादा रखती हैं उसी तरह हम हिन्दुस्तानी रियासतों के राजे-रजवाड़ों का अधिकार, दर्जा और मान-मर्य्यादा रक्खेंगी। हम चाहती हैं कि देशी रियासतों और हमारी प्रजा, दोनों, का उत्कर्ष और कल्याण हो; और ये बातें देश में स्वस्थता और उत्तम प्रकार की राज्य-व्यवस्था होने ही से हो सकती हैं।

हिन्दुस्तान के जिन भागों में हमारा राज्य है, उनकी प्रजा के विषय में भी हम उन्हीं राजधर्म्मों का पालन करना अपना कर्तव्य समझती हैं जिन राजधर्म्मों को हम अपनी और सब प्रजा के विषय में ज़रूरी समझ कर मानती हैं; और ईश्वर की कृपा से उन सब का हम अन्तःकरणपूर्वक वास्तविक रीति से पालन करेंगी।

क्रिश्चियन-धर्म्म की सत्यता पर हमें पूरा विश्वास है। और इस बात का ख़याल करके कि धर्म के द्वारा (मनुष्य के मन को) शान्ति मिलती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है हम परमेश्वर के उपकार को मानते हैं। तथापि धर्म सम्बन्धी हमारे जो विचार हैं उन्हें हमारी प्रजा को भी मानना चाहिए—इस तरह की सख्ती करने का हमें अधिकार नहीं और इस बात की इच्छा भी हमें नहीं। हमारी आज्ञा है कि धर्म्म-सम्बन्धी आचार-विचारों के कारण न तो किसी पर किसी तरह का आघात पहुंचे और न किसी को किसी तरह का दुःख। हमारी यह भी आज्ञा है कि क़ानून की दृष्टि में सब लोग बराबर समझे जायँ—क़ानून सब को एक सा आश्रय दे—किसी के साथ पक्षपात न किया जाय। अपने सब अधिकारियों को हमारी सख्त ताक़ीद है कि हमारी रियाया की धार्म्मिक समझ, भक्ति या विश्वास में वे किसी तरह की दस्तंदाज़ी न करें; और यदि करेंगे तो वे हमारी बहुत बड़ी अप्रसन्नता के पात्र होंगे।

और हमारी यह भी आज्ञा है कि, हमारी रियाया में जो लोग अपनी विद्या, बुद्धि और प्रामाणिकता के कारण जो जो सरकारी काम यथोचित रीति पर करने के लायक़ हों वे वे काम, सुभीते का ख़याल रख कर, बिना किसी रोक टोक के, निष्पक्षपातपूर्वक, जाति और धर्म्म की बात को मन में न लाकर उन्हें दिये जायँ।

पूर्वजों के समय से जो ज़मीन हिन्दुस्तान के निवासियों के क़ब्जे में चली आती है उस पर उनकी आसक्ति का होना हमें मालूम है और हमारे ध्यान में भी है। हमारी आज्ञा है कि सरकार को जो उचित कर या लगान मिलना चाहिए उसे लेकर ज़मीन के सम्बन्ध में रियाया के जो जो हक़ हों वे क़ायम रहें, और हर एक विषय में क़ायदे कानून बनाते और उनको अमल में लाते समय हिन्दुस्तान के प्राचीन हक़, रीति-रस्म और रूढ़ि पर उचित ध्यान रक्खा जाय।

राज्य-लोभी लोगों ने अपने देशवासियों से झूठी बातें कह कर उनको धोखा दिया और विद्रोह करने के लिए उन्हें प्रवृत्त किया; उनकी इस कर-तूत से हिन्दुस्तान के निवासियों को दुःख और कष्ट उठाने पड़े। इस से हमें बहुत दुःख पहुँचा है। विद्रोहियों का पराजय करके विद्रोह शान्त के द्वारा हमारा सामर्थ्य सब पर विदित होगया है।

परन्तु हमारी इच्छा है कि ऊपर लिखे अनुसार धोखे में आकर फँसनेवाले लोगों में जो कोई फिर मुनासिब तौर पर (बिना किसी तरह का झगड़ा फ़साद किये) रहने के अभिलाषी हों उन पर दया करके उनके अपराध माफ़ किये जायँ।

अधिक ख़ून ख़राबा न हो और हिन्दुस्तान के अन्तर्गत हमारे अधीन देश में जल्द स्वस्थता हो जाय इस लिये एक प्रान्त में हमारे वाइसराय और गवर्नर जनरल ने, बिगत दुःखदायक विद्रोह में सरकार के विरुद्ध अपराध करने वालों में बहुतों के अपराधों को, कुछ शर्तों पर माफ़ कर देने की आशा दे भी दी है और जिनके अपराध माफ़ किये जाने के लायक़ नहीं उनके विषय में यह भी निश्चय कर दिया है कि उनको किस किस तरह का दण्ड दिया जायगा। यह तजवीज़ हमारे वाइसराय और गवर्नर जनरल ने की है, हमें मंज़ूर और क़बूल है; इसके सिवा हम और भी नीचे लिखे अनुसार बातें प्रकाशित करते हैं—

अँगरेज़ी सरकार की रियाया का ख़ून करने में प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने का सबूत जिन लोगों के ख़िलाफ़ मिला होगा, या मिलेगा, उन अपराधियों को माफ़ी देना न्यायानुकूल नहीं; परन्तु उन्हें छोड़ कर और सब अपराधियों पर दया की जायगी।

ख़ूनी अपराधियों को जिन लोगों ने बूझ कर आश्रय दिया होगा, या जो लोग विद्रोह के अगुवा या प्रवर्तक रहे होंगे उनको प्राण-दान देने के सिवा और कोई आश्वासन या भरोसा नहीं दिया जा सकता। परन्तु ऐसे आदमियों के लिए दण्ड देने का निश्चय करते समय इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का पूरा पूरा विचार किया जायगा कि किस कारण से उन्होंने सरकार के साथ बेईमानी का व्यवहार किया; और जिन लोगों के विषय में यह मालूम हो जायगा कि स्वार्थी आदमियों की उड़ाई हुई झूठी ख़बरों को, केवल अविचार के कारण, सच समझ कर उन्होंने अपराध किये, उनके साथ बहुत कुछ दयालुता का बर्ताव किया जायगा।

इस घोषणापत्र के द्वारा हम इस बात का भी विश्वास दिलाती हैं कि पूर्वोक्त आदमियों को छोड़ कर जो लोग विद्रोही बन कर लड़ रहे हैं वे यदि अपने अपने घर को लौट कर स्वस्थता से अपने अपने काम धन्धे करने लगेंगे तो अपने विरुद्ध, अपने राज्य के विरुद्ध और अपनी मान मर्य्यादा के विरुद्ध किये गये उनके सब अपराधों को भुला कर, किसी तरह की कोई शर्त न रख कर, उन्हें माफ़ी दी जायगी।

हमारी आज्ञा है कि अपराधों की माफ़ी और दया के विषय में जो नियम ऊपर दिये गये हैं उनके अनुसार, अगली जनवरी की पहली तारीख़ के पहले, जो लोग बर्ताव करने लगें उन सब के विषय में माफ़ी और मेहरबानी से सम्बन्ध रखने वाले पूर्वोक्त नियम काम में लाये जायँ।

अन्तःकरण से हमारी इच्छा है कि ईश्वर की कृपा से जब हिन्दुस्तान में स्वस्थता हो जाय तब देश के व्यापार-धन्धों को उत्तेजना दी जाय, लोकोपयोगी और लोक-कल्याणकारी कामों की वृद्धि की जाय, और उस देश को हमारी सारी प्रजा का हित साधन करने वाली रीति से राज्य का कारोबार चलाया जाय। अपनी प्रजा के कल्याण ही को हम अपना सामर्थ्य, उसके सन्तोष ही को हम अपने राज्य की मज़बूती, और उसकी कृतज्ञता ही को हम अपना उत्तम साफल्य समझती हैं। हमारी प्रार्थना है कि अपनी प्रजा के कल्याण के सम्बन्ध में हमारी जो इच्छायें हैं उन्हें पूर्णता को पहुँचाने के लिए हमें और हमारे अधिकारियों को सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सामर्थ्य दे।

आख्यायिका का उत्तरार्द्ध।

सरस्वती के सुयोग्य सम्पादक ने गत दिसम्बर को सरस्वती में एक मनोहर आख्यायिका प्रकाशित की है। उससे मनोरञ्जन के साथ ही साथ प्राचीन राजा महाराजाओं की विद्याभिरुचि का भी ख़ूब पता लगता है। आज हम पाठकों के चित्त-विनोदार्थ उसी आख्यायिका के उत्तरार्द्ध को यहां पर लिखते हैं, जिसे हमने श्रीपूर्णचन्द्र दे, काव्य-रत्न, उद्भट-सागर, बी० ए०, संगृहीत उद्भट-श्लोक-माला के पद्य-संग्रह नामक प्रकरण से लिया है।

जब लक्ष्मणसेन ने—"वृथा लोगों ने कोलाहल कर रक्खा है"—इस आशय का, बल्लालसेन का, पत्र पाया तब उसने फिर बल्लालसेन को एक पत्र लिखा जिसमें यह श्लोक था:—

परीवादस्तथ्यो भवतु वितथो वापि महतां
तथाप्युच्चैर्धाम्नां हरति महिमानं जनरवः।
तुलोत्तीर्णस्यापि प्रकटितहताशेषतमसो
रवेस्तादृक् तेजो न हि भवति कन्यां गतवतः॥

सच्चा हो या झूठा, मनुष्यों के कोलाहलवाला अपवाद, महाजनों की—बड़े तेजस्वियों की—भी महिमा को हर लेता है। देखिए, तुलोत्तीर्ण (तुला राशि से उतरा हुआ)—अनन्योपम—और सम्पूर्ण अन्धकार का नाशक होने पर भी कन्या (राशि) गमन करनेवाले सूर्य का वैसा तेज नहीं होता।

इसके उत्तर में बल्लालसेन ने यह श्लोक लिख कर फ़ुरसत पाई—

सुधांशोर्जातेयं कथमपि कलङ्कस्य कणिका
विधातुर्दोषोऽयं न च गुणनिधेस्तस्य किमपि।
स किन्नात्रेः पुत्रः किमु न हरचूडार्चनमणि-
र्न वा हन्ति ध्वान्तं जगदुपरि किं वा न वसति?

किसी प्रकार जो यह कलङ्क की कणिका (लेश) चन्द्र के सिर पड़ी, तो यह दोष विधाता का है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस गुणनिधि (चन्द्र) का कुछ भी दूषण नहीं। क्या वह अत्रि का बेटा नहीं? क्या वह महादेव के ललाट की सुन्दर मणि नहीं? क्या वह अन्धकार को दूर नहीं करता? अथवा क्या उसकी स्थिति भुवन के ऊपर नहीं? अर्थात् कलङ्क का लेश होने से चन्द्र की कोई हानि नहीं। वह अब भी ज्यों का त्यों चन्द्रही है; हरचूड़ार्चनमणि भी है, अत्रिपुत्र भी है; अन्धकार का नाशक भी है और लोक के ऊपर निवास करने वाला भी है।

गिरिधर शर्म्मा, झालरापाटन।

पुस्तक-परीक्षा।

वीरव्रत-पालन। मेवार के राना प्रतापसिंह ने १८ वर्ष तक वनवास करके, अनेक आपदायें झेल कर और अकबर की सेना के साथ अनेक बार घनघोर संग्राम करके अपनी स्वाधीनता रक्षित रक्खी और अन्त में मुसल्मानों को परास्त करके उनके पंजे से चित्तौर को छोड़कर अपना सारा मुल्क छीन लिया। प्रतापसिंह की वीरता और स्वदेशप्रीति अतुलनीय थीं। उसका चरित अनेक ग्रन्थकारों ने गाया है। किसीने इतिहास लिख कर, किसीने उपन्यास लिखकर, किसीने नाटक लिख कर। काशी के बाबू राधाकृष्ण-दास ने प्रतापनाटक लिख कर हिन्दी में भी प्रतापसिंह का चरित वर्णन किया है। वीरव्रत-पालन में भी प्रताप ही का यशोगान है, पर उपन्यास के रूप में। यह उपन्यास बाबू हारान-चन्द्र रक्षित की बँगला-पुस्तक "मन्त्र-साधन" का हिन्दी-अनुवाद है। ग्वालियर के पण्डित वनवारीलाल तिवारी ने इसे लिखा है। दाम इसका एक रुपया है। इस समय हिन्दी में उपन्यासों का बड़ा ज़ोर शोर है। जब किसी भाषा का उत्थान होना शुरू होता है तब पहले उसमें प्रायः उपन्यास ही अधिक निकलते हैं। हिन्दी में उपन्यासवृद्धि को देखकर कुछ लोग अप्रसन्न हो रहे हैं। पर यदि उपन्यास कुरुचि-पूर्ण न हों तो उन पर अप्रसन्नता प्रकट करना उचित नहीं। उपन्यासों से यदि और कुछ नहीं तो लोगों की प्रवृत्ति पढ़ने की ओर ज़रूर हो जाती है। उपन्यास की कथा यदि स्वाभाविक है, अथवा यदि वे किसी ऐतिहासिक घटना के आधार पर हैं, तो उनसे और भी अधिक लाभ होता है। यह उपन्यास ऐतिहासिक है। भाषा इसकी सीधी सादी, सबके समझने लायक़ है। इससे यह पुस्तक पढ़ने योग्य है। ख़ुशी की बात है कि इस पुस्तक ने हिन्दी की सुपाठ्य पुस्तकों की संख्या में एक संख्या की वृद्धि की।

इसमें कई दोष भी हैं। सबसे बड़ा दोष इसमें अस्वाभाविकता है। पर उसके लिए अनुवादक दोषी नहीं। मन में अत्यन्त पीड़ित हो कर भी कृष्णसिंह के सामने प्रताप का ठठा कर हँसना; यमुना का अपनी भौजाई किरण, को थप्पड़ मारना और "नकोटना"; पृथ्वीराज का मुसल्मानों की तरह उर्दू बोलना आदि कितनी हीं बातें इसमें अस्वाभाविक हैं। "कवया", "वैमातृज", "ऐश्वरीय", "तेजो-दीप्त" और "चरण-चञ्चरीक" आदि शब्द भी विचारणीय हैं। "काकतालीय-विद्या" कैसी होती है, नहीं मालूम? साहित्यशास्त्र में नौ रस माने गये हैं; पर इस पुस्तक की भूमिका में "छहों रसों का" ही उल्लेख है! "ख़सम" शब्द इस पुस्तक में अत्यन्त ही उद्वेग-जनक है। बीसवें पृष्ठ में उर्दू का एक मिसरा है; वह ग़लत है। अनुवाद की कोई कोई कविता बहुत ही बुरी है। उदाहरण—

(१) व्रतपालन हम दृढ़ करि करिहैं।
मरिबे ते न नेकहु जिय डरिहैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) जन्म जन्म यहि रूप-दीप पर
गिर गिर प्राण मैं देहूं।

इसमें बहुत लोगों की कवितायें उद्धृत हैं। पर "भारतभूषण हरिश्चन्द्र", "श्रीराधाकृष्णदास" और दो एक जगह केशव और तुकसीदास को छोड़ कर और किसी कवि का नाम नहीं दिया गया। सरस्वती के पाँचवें भाग से भी अनुवादरूप में कुछ कविता इसमें उद्धृत की गई है। पर वहां भी तिवारीजी ने न तो अनुवादक ही का नाम दिया, न सरस्वती ही का।

इस पुस्तक में कई जगह पर मुसल्मानों को कुवाच्य कहे गये हैं। यह अनुचित है। इससे हिन्दू-मुसल्मानों में भेदभाव बढ़ता है।

❋

फ़ोटो। वृन्दावन में "ब्रजवासी फ्रेण्ड एण्ड को" नाम की एक कम्पनी है। उसके यहां फ़ोटो का काम होता है। इस कम्पनी ने हमारे पास राधा-कृष्ण के चार फ़ोटो भेजे हैं। तीन पूरे साइज़ के हैं, एक कैबिनेट साइज़ का। ये फ़ोटो हाथ से बनाये गये चित्रों से लिये गये हैं। मूल चित्रों में जो दोष होते हैं उनके लिए फ़ोटोग्राफ़र ज़िम्मेदार नहीं हो सकता। यही बात इन फ़ोटोग्राफ़ों के लिए भी कही जा सकती है। इसको छोड़कर और सब बातों में ये फ़ोटो बहुत अच्छे हैं। देखतेही तबीयत ख़ुश हो जाती है। हर एक फ़ोटो में अलग अलग दृश्य है। जिनको राधाकृष्ण के फ़ोटो कमरे में लगाने का शौक़ हो उन्हें इनको ज़रूर ख़रीदना चाहिए। इस कम्पनी ने और भी चार फ़ोटो हमारे पास भेजे हैं। ये सब पूरे साइज़ के हैं। इनकी तफ़सील यों है—(१) वृन्दावन में शाहजी का मन्दिर (२) गोवर्द्धन में महाराजा भरतपुर का भवन (३) देहली में कुतुबमीनार के पास लोहे का स्तम्भ और प्रसिद्ध मेहराब (४) देहली में शमसुद्दीन के मक़बरे का भीतरी दृश्य। ये सभी फ़ोटो मनोहर हैं। इस कम्पनी का काम बहुत ही अच्छा जान पड़ता है। हम इसके काम की तारीफ़ करते हैं।

❋

आदर्शदम्पती। मेहता लज्जाराम शर्म्मा जी कृत। श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, मुम्बई, से ॥=) में प्राप्य। यह पुस्तक और कई पुस्तकों के साथ "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" के उपहार में दी जा चुकी है। यह "स्त्रीशिक्षाविधायक, प्रभावोत्पादक, उपदेशपूर्ण, सामाजिक उपन्यास" है। पण्डित लज्जारामजी के सभी उपन्यास पढ़ने और शिक्षा ग्रहण करने लायक़ हैं। यह भी वैसा ही है। विशेष करके स्त्रियों के लिए तो यह सचमुच ही आदर्श है। इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं। इस पुस्तक में एक पतिव्रता स्त्री का हाल है और दिखलाया गया है कि किस तरह धर्म्मनिष्ठ पुरुष और स्त्रियां अनेक कष्ट उठाकर भी अपने धर्म्म की रक्षा करती हैं, किस तरह ईश्वर ऐसे जनों की सहायता करके उनकी आपदाओं का निवारण करता है और किस तरह सत्पुरुष, बुरे आदमियों के भी आचरण भले बना देते हैं। पुस्तक बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री पुरुष सबके पढ़ने लायक़ है।

❋

डायरी। यह १९०६ की डायरी "फ़्रेण्ड एण्ड कम्पनी" के यहां से मिलती है। पाकेट में आ सकती है। इसमें कम्पनी के विज्ञापन भी हैं। दाम १ जिल्द के =)॥, ५ के ॥), १२ के १) और १०० के २) हैं।

❋

ताराचन्द जोशी का जीवनचरित। मूल्य =) आने। बाबू वैद्यनाथ गुप्त, मिर्ज़ापुर, से प्राप्य। इसे स्वामी विश्वेश्वरानन्द ने लिखा है। जीवनचरित उपदेश-प्रद है; इससे पढ़ने लायक़ है।

❋

सन्तसुधार। डाक व्यय आध आना पाने से यह पुस्तक बाबू वैद्यनाथ गुप्त, मिर्ज़ापुर से, धर्म्मार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजते हैं। इसे भी स्वामी विश्वेश्वरानन्द ने लिखा है। इसका विषय इसके नामही से स्पष्ट है। स्वामीजी की पुस्तक-रचना-प्रीति प्रशंसनीय है।

❋

बनारसीविलास। जैनग्रन्थरत्नाकर नाम ग्रन्थ-माला के दो एक ग्रन्थों की समालोचना सरस्वती में छप चुकी है। यह ग्रन्थ भी इसी रत्नाकर का एक रत्न है। बम्बई के निर्णयसागर प्रेस में यह उत्तम टाइप में छपा है। जिल्द भी इसकी बहुत अच्छी है। दाम १॥) है। जैनग्रन्थ-रत्नाकर-कार्य्यालय, गिरिगाँव, बम्बई से यह मिल सकता है। इसके सम्पादक श्रीयुक्त नाथूराम प्रेमी हैं। इस ग्रन्थ को देखकर हम बहुत प्रसन्न हुए। इसकी भूमिका में सम्पादक महाशय ने हिन्दी-साहित्य के विषय की भी अनेक बातें लिखी हैं। वे सब विचार करने लायक़ हैं। इस ग्रन्थ में बनारसीदास नामक एक जैन महात्मा की पद्यबद्ध-रचना संग्रहीत हुई है। विषय यद्यपि साम्प्रदायिक हैं, तथापि बनारसीदासजी की कविता प्रसादगुण से ख़ूब भरी हुई है। उसके पढ़ने में मन लगता है, उससे उपदेश भी मिलता है और उससे जैनधर्म्म की अनेक बातें भी मालूम होती हैं। इस पुस्तक में एक बात सबसे अधिक प्रशंसा की है। इसमें सम्पादक ने कवि का जीवन-चरित भी दिया है। यह चरित थोड़े में नहीं, ११३ पृष्ठों में हैं। इसमें भी विशेषता है। यह चरित स्वयं बनारसीदास के लिखे हुए आत्म-चरित के आधार पर लिखा गया है। उन्होंने अपनी ५५ वर्ष तक की उम्र का वृत्तान्त ख़ुद लिखा है। इस चरित में कवि के चरित के सिवा तत्कालीन अनेक ऐतिहासिक बातें भी हैं। उसी समय, अर्थात् संवत् १६०० में, इस देश में प्लेग हुआ था। उसका भी वर्णन इसमें है और बनारसी-दास के बतलाये हुए लक्षण इस समय के प्लेग के लक्षणों से बिलकुल मिलते हैं। हम सिफ़ारिश करते हैं कि हिन्दी जाननेवाले, चाहे वे जिस मत के हों—इसे पढ़ें। इसमें अनेक बातें जानने योग्य हैं। इस पुस्तक को जैनग्रन्थरत्नाकर ही का रत्न नहीं किन्तु हिन्दी-साहित्य का भी रत्न समझना चाहिए।

❋

हिन्दी शिक्षा-प्रथम अंश। बाबू रामदास राय, हेड-मास्टर, शिवहर, (मुज़फ़्फ़रपुर) कृत। दाम चार आने। इसका दूसरा नाम है लिङ्ग-भ्रम-संशोधन। हिन्दी के शब्दों के लिङ्ग-विषय में बड़ा गड़बड़ है। इस गड़बड़ को दूर करने के लिए बाबू राम-दास जीने यह पुस्तक लिखी है। इसमें उदाहरणों द्वारा विशेष-व्यवहृत शब्दों का लिङ्ग बतलाया गया है। पुस्तक निःसन्देह उपयोगी है।

❋

वाक्यबोधव्याकरण। यह पुस्तक भी पूर्वोक्त बाबू रामदास राय कृत है और दो आने में मिलती है। इसमें उदाहरणों के द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार के वाक्यों के शुद्धाशुद्ध होने का विचार किया गया है। यह भी उपयोगी पुस्तक है, विशेष कर स्कूल के लड़कों के लिए। पर—"वैसा गन्दा पत्र बड़े लाट विश्वविद्यालय के नाम लिखे होंगे"—इत्यादि वाक्यों को हम अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार शुद्ध नहीं मान सकते।

❋

तर्कसंग्रहखण्डनम्। पण्डित बालचन्द्र-शर्म्मा-विरचित। इसमें तर्कसंग्रह का आठ पृष्ठ में खण्डन है। पुस्तक संस्कृत में है। खण्डन के औचित्य के विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। यह काम नैयायिकों का है।

❋

विद्या नाटक। स्वामी-विद्यातीर्थ-कृत। दाम चार आने। आर० एन० श्यामनाथ, एजण्ट, नवाब-गञ्ज, कानपुर से प्राप्य। इसमें नाटक के गुण तो हमें कम देख पड़े; पर बीच में जो संस्कृत के पुराने श्लोक इसमें रक्खे गये हैं वे अच्छे हैं।

❋

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवीन भारत। सर हेनरी काटन की प्रसिद्ध पुस्तक "न्यूइंडिया" का हिन्दी-अनुवाद। अनुवादक श्रीयुक्त गणेशनारायण सोमाणी, बी० ए०। दाम डेढ़ रुपया। राजस्थान प्रेस, अजमेर, से प्रकाशित। काशी के उपन्यास-कार्य्यालय के मालिक बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा से हमें प्राप्त। यह पुस्तक हिन्दी में बहुत अच्छी निकली और समयानुकूल निकली। काशी में कांग्रेस के समय यह बिकने के लिए आ गई थी। काटन साहब इस देश के बहुत बड़े हितचिन्तक हैं। उन्होंने भारत की राजनैतिक, सामाजिक, धार्म्मिक और आर्थिक बातों का इस पुस्तक में खूब विचार किया है। भारत और इँगलैंड तथा राजा और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध का भी इसमें वर्णन है; भूमिका और देशप्रबन्ध का भी वर्णन है; राजनैतिक संस्कार और भारत-वासियों की अभिलाषाओं का भी वर्णन है। पुस्तक सर्वथा पढ़ने और मनन करने लायक़ है। भारतवासियों को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए।

⁂

हफ़ीज़ुल्लांखां का हजारा, भाग १ और २। हिन्दी-कविता का यह एक बहुत बड़ा संग्रह है। इसमें ५०० से भी अधिक पृष्ठ हैं। चित्र भी हैं। क़ीमत सिर्फ़ १।-) है। यह पुस्तक छपी हुई नवलकिशोर के छापेख़ाने की है; पर नवाबगञ्ज (कानपुर) के क़ुतुबफ़रोश लाला जगदम्बाप्रसाद ने इसे हमारे पास भेजा है। इसमें पुराने ढंग की सब तरह की कवितायें हैं; कोई विषय ऐसा नहीं जो इसमें न हो। शृङ्गार, वीर, हास्य और भक्तिरस की कविता के अनेक अच्छे अच्छे पद्य इसमें हैं। हिन्दू-देवताओं के विषय की कविता तो कोई २५० पृष्ठों में है। एक मुसल्मान सज्जन का हिन्दी में किताब लिखना और उसमें भी देवी देवताओं की स्तुति करना अनूठी बात है। ऐसे उदाहरण कम पाये जाते हैं।

⁂

हरिश्चन्द्र। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक, कवि और नाटककार बाबू हरिश्चन्द्र का यह जीवनचरित है। इसे बाबू शिवनन्दनसहाय ने लिखा है और बाबू रामदीनसिंह के पुत्र, बाबू रामरणविजयसिंह, ने खड्गविलास-प्रेस, बांकीपुर, में छाप कर, प्रकाशित किया है। इसका मूल्य १॥) है। बड़े सांचे के कोई चार सौ पृष्ठ इस पुस्तक में हैं। कई हाफ़-टोन चित्र भी इसमें हैं। चरित यथासम्भव बहुत जांच परताल करके लिखा गया है और चरित-नायक के इष्टमित्रों तक के विषय की अनेक बातों का इसमें समावेश किया गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से बाबू हरिश्चन्द्र के चरित की अनेक बातें मालूम होती हैं। उनके ग्रन्थों की समालेचना भी इसमें की गई है। उनकी कई एक चिट्ठियां भी इसमें प्रकाशित की गई हैं। उनकी जिन बातों को और लोगों ने नहीं लिखा वे भी इसमें लिख दी गई हैं। सच्चे चरितलेखक का यही धर्म्म है। बाबू हरिश्चन्द्र के अच्छे चरित का हिन्दी में न होना बहुत बड़ी न्यूनता थी; उसे खड्गविलास प्रेस के मालिक ने दूर कर दिया; यह प्रशंसा की बात है। हिन्दी पर जिनका प्रेम है उन्हें इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ना चाहिए।

⁂

Practical Telegraphy Connections। यह तारसम्बन्धिनी पुस्तक है। इसके नाम से तो ज़ाहिर होता है कि तार के connections ही का वर्णन इसमें है; पर हैं इसमें और और भी बातें। पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है वह हिन्दी, उर्दू और अँगरेज़ी, तीनों भाषाओं में, है। अँगरेज़ी इसकी दूषित है। किताब तारबाबुओं के काम की है। दाम इसके आठ आने हैं और आर्य्य एण्ड कम्पनी, अलीगढ़, से यह मिलती है।

⁂

जापानी बोलचाल। दाम आठ आने। पूर्वोक्त आर्य्य एण्ड कम्पनी, अलीगढ़, से प्राप्य। इसका विषय इस के नाम ही से प्रकट होता है। लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने यह बतलाने की कृपा नहीं की कि जापानी भाषा का ज्ञान उन्हें कैसे हुआ। इसके बिना उनकी किताब पर लोगों को श्रद्धा मुशकिल से होगी। जापानी भाषा का जो बोल चाल इस पुस्तक में है वह यदि सही है तो इस से जापान जाने वालों को बहुत मदद मिल सकती है। पुस्तक के अन्त में एक छोटा सा जापानी हिन्दी कोश भी है। तारवाली, और इस पुस्तक के भी, अख़ीर में जो दो एक गन्दे विज्ञापन हैं वे न होते तो अच्छा होता।

❋

अनन्त ज्वाला। पण्डित महेन्दुलाल गर्ग, पल्टन नं० २४, लखनऊ, ने इसे एक अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर लिखा है। मूल्य इसका आठ आने है। एक अँगरेज़ ने इसमें रूस, काला-समुद्र, और कास्पियन समुद्र और काकेशस प्रदेश की अपनी यात्रा का वर्णन लिखा है। वर्णन मनोरञ्जक है। इसके पढ़ने से रूस की बहुत सी राजनैतिक बातों के सिवा और भी कितनी ही बातें मालूम होती हैं। बाकू में जो मिट्टी के तेल के कुवें या खानें हैं उनका वर्णन इसमें सब से अधिक पढ़ने लायक़ है। वहां की ज़मीन में, भीतर, इतना तेल भरा हुआ है कि अगर किसी तरह आग पहुँच जाय तो अनन्त काल तक वह जला करे। एक ऐसी आग वहां कई हज़ार वर्षों से जल भी रही है। बाकू के तेल के कारख़ानों में जो करोड़ों मन तेल भरा था वह, रूस के बाग़ियों ने, अभी थोड़े ही दिन हुए जला कर ख़ाक कर दिया। अफ़सोस! इस पुस्तक के छापने में बहुत असावधानता हुई है; छापे की बहुत ग़लतियां रह गई हैं।

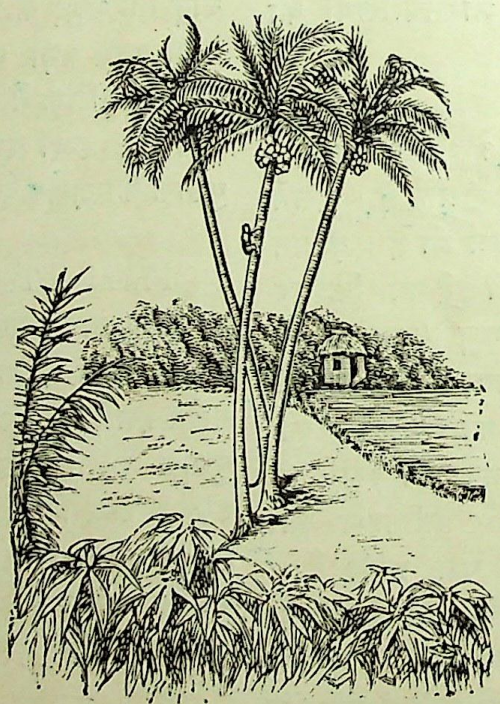

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ७] मई, १९०६ [संख्या ५

विविध-विषय।

पृथ्वी को हम जिस हालत में देखते हैं वह उसे लाखों वर्ष बाद प्राप्त हुई है। पहले वह ऐसी न थी। उसमें बड़े बड़े परिवर्तन हुए हैं। पैदा होने के अनन्त काल पीछे वह प्राणियों के रहने योग्य हुई है। पृथ्वी की अवस्था और स्थिति के परिवर्तन के साथ साथ उस पर होनेवाले पेड़ पौधे, घास फूस, लता पत्र और प्राणियों में भी परिवर्तन होता गया है। जो कुछ हम आज कल देखते हैं वह क्रम-विकास का फल है। कोई समय था जब पृथ्वी पर बहुत ही विकटाकार माँस-भक्षी जीव रहते थे। उनका नाश हुए लाखों वर्ष हो गये। पर भूगर्भ-विद्या के जाननेवालों ने इन जीवों का पता लगा लिया है। पृथ्वी के पेट से उनकी हड्डियों को खोदकर उन्होंने उनको ठठरी अजायबघरों में रख दी है। और शरीर-शास्त्र के सिद्धान्तों की सहायता से उन्होंने उन ठठरियों से उन पुरातन प्राणियों के विषय में सैकड़ों अद्भुत अद्भुत बातें जान ली हैं। इन विनष्ट हुए प्राणियों का वर्णन पढ़ने से यह मालूम होता है कि ये बड़े ही भयङ्कर जीव थे—इतने भयङ्कर कि इनकी हड्डियों को देख कर बनाये गये चित्रों को भी नेत्रपथ में लाने से डर लगता है। अमेरिका में इस तरह के कितनेही अद्भुत अद्भुत जीवों का पता लगा है। उनकी हड्डियां पृथ्वी के भीतर निखात (Fossils) द्रव्यों के रूप में पाई गई हैं। १९०१ ईसवी में एक ऐसे जीव की हड्डियां पाई गई हैं जो बड़ा ही भयङ्कर था। यह जीव ३९ फ़ीट लंबा और १९ फ़ीट ज़मीन से ऊंचा था। इसके पैर ४ फ़ीट लंबे और ३ फ़ीट चौड़े थे। पैरों का आकार चिड़ियों के पंजों का ऐसा था। पंजों में बड़े बड़े नाख़ून थे। इसके दाँतों की लंबाई ६ इंच थी। इस जीव की बनावट कुछ कुछ चिड़ियों से मिलती है। यह ऐसा भयानक रहा होगा कि इसके मारे इसके आस पास कोई और जीव जन्तु जीते न रहने पाते होंगे। यह उस युग का जीव है जिसमें मगर के आकार के मांसभक्षी जीव होते थे। इस युग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए कोई ८० लाख वर्ष हुए! अभी हाल में इसी युग के दो और जीवों का पता लगा है। ये छिपकली के आकार के, पर बड़े ही भीमकाय और भयावने, थे। इनका चित्र इस अङ्क में अमेरिका के एक काग़ज़ से दिया जाता है। चित्र में ऐसे दो जीवों के परस्पर युद्ध का दृश्य है।

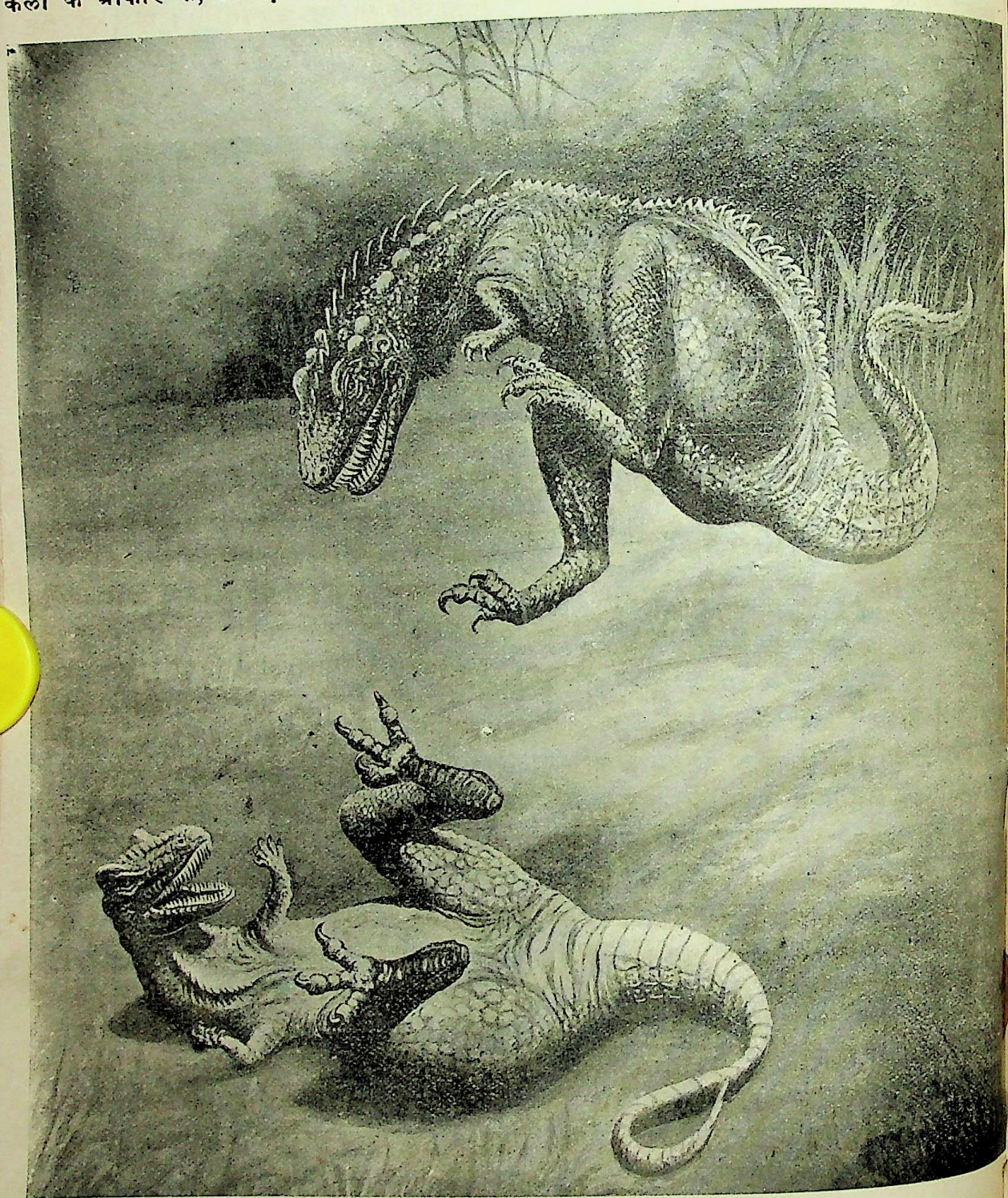

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो तीन वर्ष हुए हमने पढ़ा था कि किसीने दो चावलों पर निज़ाम, हैदराबाद, की तारीफ़ लिख कर उन्हें निज़ाम को भेंट किया है। पर उन चावलों पर क्या लिखा था, यह न मालूम था। इसका सविस्तर वृत्तान्त हमें कोचीन की एक मासिक पुस्तक में अभी हाल में पढ़ने को मिला। इन चावलों में एक चावल तो निज़ाम को भेंट किया गया है, दूसरा उनके प्रधान मंत्री महाराजा कृष्णप्रसाद को। गुलबर्गा के ज़िले में एक गाँव निम्बाल है। वहां के ज़मींदार शान्तमल्लापा ने इन चावलों को नज़र किया है। निज़ाम के चावल पर लिखा है—

हिज़ हाइनेस नवाब मीर महबूबअलीख़ां महबूबुद्दौला निज़ामुल्मुल्क बहादुर, जी० सी० वी०, वालिये रियासत दक्खिन हैदराबाद, अर्ज़दाश्त फ़िदवी कमतरीन, शान्तमल्लापा, पाटील, निम्बाल, सन् १३१३ फ़सली, शके १८२५

महाराजा कृष्णप्रसाद के चावल पर है—

राजये राजगान महाराजा सर कृष्णप्रसाद बहादुर इमारुस्सलतनत मदारुल्महाम सरकारे-आली शहर दक्खिन हैदराबाद, अर्ज़दाश्त फ़िदवी कमतरीन शान्तमल्लापा शके १८२५

यह मज़मून हमने जिस किताब से नक़ल किया है वह मराठी में है। महाराष्ट्र लोग उर्दू-फ़ारसी कम जानते हैं। इससे सम्भव है उनसे ग़लती हो गई हो। यह इबारत इतने छोटे अक्षरों में है कि बिना बहुत अच्छे "मैगनीफ़ाइँग्" ग्लास के नहीं पढ़ी जा सकती। शान्तमल्लापा ने छोटे अक्षर लिखने में कमाल किया है। प्रत्येक चावल में एक एक चाप लगा है; उसने चावल के दोनों सिरों को पकड़ रक्खा है। चावल उसके बीच में फिरता रहता है।

* *
*

आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा अपनी पत्रिका में तर्कशास्त्र पर एक लेख प्रकाशित कर रही है। समाप्त होने पर इसे अलग पुस्तक का आकार मिलना चाहिए। इस तरह की पुस्तक की हिन्दी में बड़ी ज़रूरत थी। हिन्दी के लिए यह विषय बिलकुल नया है। जैसे अंगरेज़ी में "सायन्स प्राईमरर्स" हैं वैसेही यदि हिन्दी में भी हो जाँय तो बड़ा उपकार हो। आरा की सभा क्यों न इसी विषय के लेख लिखवा कर अपनी पत्रिका में प्रकाशित किया करे? यह काम ज़रूरी है। दूसरे काम फिर हुआ करेंगे। इस तरह की पुस्तकों में भाषा की सरलता और सुबोधता पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

* *
*

कानपुर से "कनवजिया" लोगों का एक मासिक पत्र कई साल से निकल रहा है। अब जनवरी १९०६ से एक और निकलने लगा। इस कनवजिया का नाम है "कान्यकुब्ज"। कानपुर के क्राइष्ट चर्च कालेज के प्रोफ़ेसर पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०, इसके सम्पादक हैं और "लखनऊ-प्रिंटिंग प्रेस" के मालिक पण्डित रामरत्न वाजपेयी इसके मैनेजर। यह कान्यकुब्ज-महासभा का मासिक पत्र है। दाम १) रुपया साल है। इसके तीन अङ्क निकल चुके हैं। उनके देखने से जान पड़ता है कि यदि इस पत्र का सम्पादन इसी तरह होता गया तो इससे कान्यकुब्ज-समाज को अवश्य लाभ पहुँचेगा। पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, पण्डित सरयूनारायण तिवारी, एम० ए०, और पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ने इस पत्र में अपने लेख दिये हैं। कान्यकुब्जों को चाहिए कि यथाशक्ति वे इसकी सहायता करें। आज तक इस पत्र में जो लेख निकले हैं उनमें कई एक उपयोगी और उपदेशप्रद हैं।

* *
*

मित्रगोष्ठी पत्रिका की फाल्गुन की संख्या में संस्कृत के प्रसिद्ध कवि, दिनाजपुर-निवासी, पण्डित महेशचन्द्र तर्कचूड़ामणि का "काव्यतत्त्वावली" नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें प्राचीन आलङ्कारिकों की भूलें दिखलाई गई हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कई जगह पर उनके सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। तर्कचूड़ामणिजी समझते हैं कि बहुत पहले से इस देश में खण्डन-मण्डन की रीति चली आती है; इससे उनको भी ऐसा करने का अधिकार है। पर हिन्दी के किसी किसी समालोचक की राय है—"ख़ताये बुज़ुर्गां गिरफ़्तन ख़ताअस्त"। तर्कचूडामणिजी शायद इस सिद्धान्त के क़ायल नहीं।

* * *

गत फाल्गुन की संस्कृतचन्द्रिका में सौगन्धिकाहरण के कर्ता श्रीमान् विश्वनाथ कवि पर सम्पादक का एक लेख निकला है। उसमें भी इस प्राचीन कवि की कई एक व्याकरण-विषयक ग़लतियां दिखलाई गई हैं।

* * *

विज्ञान और यन्त्रविद्या के बल से पश्चिमी देशों के विद्वान् अजीब अजीब तरह की कलें बना रहे हैं। अब उन्होंने कल का एक आदमी बना डाला है। यह निर्जीव, पर सजीव की तरह काम करने वाला, आदमी तमाशे के तौर पर लंडन में दिखलाया जा रहा है। इसके भीतर विलक्षण विलक्षण पुर्ज़े लगे हुए हैं और बिजुली के तार इस तरकीब से लगाये गये हैं कि उनके ज़ोर से

यह कल, सजीव आदमी की तरह, चलती फिरती है। इसका नाम रक्खा गया है—"यनिगमरेली"। बनाने वाले ने इसमें यहां तक कमाल किया है कि यह अपना नाम तक तख़्ते पर लिख देता है। इतना ही नहीं, किन्तु यह पैर गाड़ी पर सवार भी हो सकता है। इसकी उँचाई ६ फीट है और वज़न ढाई मन। सब मिला कर इसमें ३६५ पुर्ज़े हैं। इसके पैर लोहे के हैं, कमर के नीचे का हिस्सा फ़ौलाद और लकड़ी का है और हाथ फ़ौलाद और तांबे के हैं। सिर इसका मोम का है और सारा शरीर तारों से कसा हुआ है। पर तार देख नहीं पड़ते। देखने में यह बिलकुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सजीव मालूम होता है। अमेरिका के एक वैज्ञानिक पत्र ने इसका वृत्तान्त लिख कर इसके कई चित्र भी प्रकाशित किये हैं।

* *
*

हिन्दुस्तान में रेलों की चाल चालीस मील फ़ी घंटे से अधिक नहीं है। परन्तु विलायत में रेलों की औसत चाल, फ़ी घंटा, पचास मील से कम नहीं। यदि बीच के स्टेशनों पर ठहरने का वक़्त इस हिसाब में न लिया जाय तो विलायती डाक-गाड़ियों की चाल ७० से ८० मील, फ़ी घंटे, होती है। फिर एक बात और भी है। वह यह कि कोई कोई विलायती रेल दो दो तीन तीन सौ मील बिना बीच में ठहरे चली जाती है। वहां रेल की सड़क के किनारे, जगह जगह पर, ऐसी कलें बनी हुई हैं जिनमें डाक के थैले रख दिये जाते हैं। जहां डाकगाड़ी उनके पास पहुंचती है तहां वे थैले आपसे आप गाड़ी में गिर पड़ते हैं। इन कलों में एक जाल सा लगा रहता है। उसमें कमानियां रहती हैं। गाड़ी पास आतेही डाक का काम करनेवाले गाड़ी के भीतर लगी हुई एक कल को उस जाल की तरफ़ कर देते हैं। बस, दोनों का स्पर्श होते ही डाक के थैले भड़ाभड़ गाड़ी के भीतर गिर पड़ते हैं। बीच में जहां कहीं डाक देना होता है वहां भी कलों से ही काम लिया जाता है। डाकगाड़ी से थैले, नियत स्थान पर गिरतेही, नीचे लगी हुई कलें उन्हें खींच लेती हैं। यहां ई० आई० आर० में भी डाक लेने देने का कुछ कुछ ऐसाही प्रबन्ध हुआ है।

* *
*

हर्बर्ट स्पेन्सर का नाम पाठकों ने सुना होगा। इस महात्मा को मरे अभी बहुत दिन नहीं हुए। इसे इस समय के वैज्ञानिकों का राजा कहना चाहिए। इंगलैंड में शिक्षा की दुर्दशा देखकर उसने एक किताब लिखी। उसमें उसने और और बातों के सिवा वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोष दिखलाये और यह सिद्ध किया कि वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा और सब शिक्षाओं से अधिक उपयोगी है। यह पुस्तक इतनी अच्छी हुई कि प्रायः दुनिया भर की भाषाओं में इसके अनुवाद हो गये। स्पेन्सर के सिद्धान्त अँगरेज़-महाराज को भी पसन्द आये और तदनुसार विलायत में, धीरे धीरे, शिक्षा-पद्धति में फेर फार हो रहे हैं। इंगलैंड विज्ञान-विद्या का घर है। वहां जब स्पेन्सर के बतलाये हुए दोष दूर करके वैज्ञानिक शिक्षा की उन्नति की जा रही है तब बेचारे भारत के लिए स्पेन्सर के दिखलाये हुए मार्ग से चलने की कितनी ज़रूरत है, इसका अन्दाज़ पाठक स्वयं कर सकते हैं। अतएव इस संख्या से हम स्पेन्सर की किताब के मुख्य मुख्य थलों का भावार्थ थोड़ा थोड़ा देना शुरू करते हैं। आशा है पाठक—विशेष करके विद्यार्थी और अध्यापक—इस लेखमालिका को पसन्द करेंगे।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुल्तान अब्दुल् अज़ीज़ ।

योरप की शक्तियों की इस समय मुराको पर विशेष कृपादृष्टि है । मुराको का राज्य-प्रबन्ध अच्छा नहीं । इस कारण मुराको के सभ्य और शिक्षित पड़ोसियों को आन्तरिक पीड़ा हो रही है । उनसे मुराको की राज्य-दुर्व्यवस्था देखी नहीं जाती । इससे वे उसे सुधारने की फ़िक्र में हैं ।

मुराको आफ़रीक़ा के उत्तर-पश्चिम में है । इसके उत्तर में भूमध्य-सागर और पश्चिम में अटलांटिक महासागर है । इसका असली नाम मराकुश है । मुराको उसीका अपभ्रंश है । यह बहुत पुराना देश है । इस देशवालों ने योरप की शक्तियों को कई बार परास्त किया है । पर अब उनका वह दिन नहीं । अब ज़माना बिलकुल ही बदल गया है । मुराको के पूर्व आलजीरिया नामक एक छोटा सा देश है । वह फ़्रांस के अधिकार में है । उसे फ़्रांस का उपनिवेश कहना चाहिए । पहले वहां मुसल्मानी राज्य था । सुल्तान रूम उसके सार्वभौम शासक माने जाते थे । पर कई कारणों से अनेक लड़ाई झगड़ों के बाद फ़्रांस ने उसे अपने क़ब्ज़े में कर लिया । उस पर दख़ल करके उसने अँगरेज़ों से कहा कि हम यहां की दुर्व्यवस्था दूर करके अपना दख़ल उठा लेंगे । हम सिर्फ़ यहां सुधार करने आये हैं । पर कुछ वर्ष बाद फ़्रांस ने वहां से हटने से इन्कार कर दिया । अंगरेज़ों ने इस पर कोई एतराज़ नहीं किया । मिश्र को सुधारने के इरादे से उन्होंने अपना ध्यान उस तरफ़ फेरा । अब फ़्रांस को मुराको की अव्यवस्था भी खटकने लगी है । इस कारण उस पर भी दया दिखाने का वह आयोजन कर रहा है । उधर स्पेन भी मुराको का पड़ोसी है । वह भी इस पुण्यकार्य्य में शामिल होना चाहता है । जर्मनी यद्यपि दूर है, तथापि अच्छे कामों के लिए दूर या पास का ख़याल नहीं किया जाता । दूर रह कर भी जर्मन-नरेश मुराको की सीमा का दर्शन कर आये हैं और अपने शुभ-चिन्तन से मुराको के सुल्तान को ऋणी बना आये हैं ।

इन्हीं कारणों से योरप की शक्तियों में मुराको को लेकर विषम-विवाद हो रहा है । जिबराल्टर के पास एक जगह आलज़िसीरस है । वह स्पेन के अधिकार में है । वहीं सब शक्तियों के प्रतिनिधियों ने जमा होकर मुराको-सम्बन्धी समस्याओं को हल करने की ठानी । सब जमा हुए । महीनों मीमांसा होती रही । जरमनी ने बड़े बड़े दाँव पेंच खेले । इससे मीमांसा के सिद्धान्त स्थिर करने में बहुत विलम्ब हुआ । अब सुनते हैं सब बातों का निश्चय हो गया है । और उस निश्चय को सुनाने के लिए सभा के कुछ सभ्य मुराको के सुल्तान अब्दुल अज़ीज़ के पास गये हैं ।

पाठक कहेंगे, मुराको के सुल्तान अपने देश का सुधार करें या न करें, औरों को दस्तंदाज़ी करने का क्या अधिकार ? पर योरप की राजनीति ऐसी नहीं । उसके अनुसार इस तरह दस्तंदाज़ी करना ही न्याय्य है । वहां के नीति-निपुण कहते हैं यदि आपके पड़ोस में दिन रात दंगा फ़साद और मार पीट हुआ करे तो उससे आपको कुछ तकलीफ़ पहुँचे या नहीं ? यदि रात रात भर तबला ठनके या आल्हा गाया जाय तो आपको नींद आयेगी ? यही दशा आप मुराको की क्यों न समझें । वहां के कुप्रबन्ध से पास पड़ोसी के देश आजिज़ आ गये हैं । इसलिए वे कहते हैं कि मुराको में ख़ूब अमन चैन का राज्य स्थापित करके हम अपने घर चले जायँगे और फिर सुख से सोयँगे । मुराको के बाग़ियों और डाकुओं के भेरी-नाद से फिर हमारी निद्रा भंग न होगी । इसीलिए यह सारा प्रयत्न है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस मुराको के लिए यह सब बखेड़ा हो रहा है उसका क्षेत्रफल कोई तीन लाख वर्ग मील है। क्षेत्रफल में वह फ़्रांस के आलजीरिया देश से दूना है। वहां की आबादी का ठीक हिसाब नहीं मालूम हुआ। कई अंगरेज़ ग्रन्थकारों का मत है कि वह कोई ६५ लाख है। अरब, बर्बर और यहूदी लोग वहां अधिक बसते हैं। हबशी भी कुछ हैं। बिगड़ी हुई अरबी वहां की भाषा है। पहले वहां कोई विदेशी व्यापार करने न जाने पाता था। परन्तु १८६४ ईसवी में सुलतान ने एक इक़रारनामा योरप को सब शक्तियों को लिख दिया कि आज से जो योरप-निवासी चाहे हमारे देश में आकर व्यापार करे। बस मुराको के दोष देख पड़ने का यहीं से सूत्रपात हुआ।

मुराको के सुलतान का पूरा नाम है मुलाई अब्दुल अज़ीज़। उनकी पदवी है अमीरुलमोमनीन। आप जिस वंश के हैं उसका राज्य १५ पीढ़ियों से मुराको में चला आता है। आपका जन्म २४ फ़रवरी १८७८ को हुआ था। पिता के मरने के बाद ७ जून १८९४ को आपने गद्दी पाई। आपकी राजधानी फेज़ नाम का शहर है। सुलतान अब्दुल अज़ीज़ अपनेको अली का वंशज बतलाते हैं। आपके कुमार का नाम है शाहज़ादा हसन। इस समय शाहज़ादे की उम्र कोई ८ वर्ष की होगी।

मुराको में सुलतान की सत्ता अखण्ड है। वे जो चाहें कर सकते हैं। उनकी इच्छा ही क़ानून है। राजकीय और धार्म्मिक दोनों विषयों में सुलतान की आज्ञा ही श्रेष्ठ है। अलग अलग महकमों के ६ मंत्री सुलतान के अधीन हैं। इच्छा होने पर सुलतान उनसे सलाह ले सकते हैं। पर इसका कोई नियम नहीं कि सब बात मंत्रियों से पूंछ कर ही वे करें। सुलतान की आमदनी कोई ७५ लाख रुपये सालाना है। प्रजा से कर, नज़रें और तोहफ़े इत्यादि लेने से यह आमदनी होती है।

सुलतान की राजधानी यद्यपि फेज़ में है, पर आप अकसर और जगह भी रहा करते हैं। आपकी फ़ौज में तोपों की कई बैटरियां हैं, रिसाले हैं और कोई दस हज़ार सीखी सिखाई पैदल फ़ौज भी है। काईद मैकलीन नाम का एक अँगरेज़ सुलतान के यहां नौकर है। वही इनको फ़ौज को क़वायद परेड सिखलाता है। यह साहब बहादुर फ़ौजी काम भी करते हैं और मुल्की भी। अंगरेज़ लोग इनकी बड़ी तारीफ़ करते हैं। वे कहते हैं कि इनके सुधार-मार्ग में यद्यपि अनेक कठिनाइयां हैं तथापि इन्होंने मुराको की बहुत कुछ उन्नति की है।

सुलतान को फ़ोटो लेने का बड़ा शौक़ है। आप एक अच्छे फ़ोटोग्राफ़र हैं। आपने इँगलैंड से फ़ोटोग्राफ़ी के बहुत क़ीमती सामान मंगवाये हैं। केमरा सोने का है। उसमें रत्न जड़े हुए हैं। आप केमरा लिए हुए अकसर फ़ोटो उतारा करते हैं। आपके महल में अनेक बेगमें हैं। उन तक के फ़ोटो आप उतारते हैं। इतना ही नहीं; उन्हें लोगों को दिखलाते भी हैं। अँगरेज़ों के सामने ये फ़ोटो अकसर पेश होते हैं। इस बात से सुलतान के अमीर-उमरा अप्रसन्न हैं। एक तो इस तरह के चित्र उतारना ही मुसल्मानी धर्म्म के ख़िलाफ़ है; दूसरे विकट पर्दे में रहनेवाली सुलताना बीबियों के चित्र खुल्लम खुल्ला औरों को दिखलाना तो स्वतंत्रता की हद हो गई। लोग समझते हैं कि सुलतान में पश्चिमी सभ्यता की बू भर गई है। वे इसे अनुचित समझते हैं।

सुलतान अब्दुल अज़ीज़ के दादा एक बार अपने नज़र-बाग़ में अपनी बेगमों समेत हवा खाने गये। वहां एक कृत्रिम तालाब था। उसमें छोटी छोटी नावें पड़ी थीं। सुलतान अपनी एक प्यारी बेगम को लेकर एक नाव पर सवार हुए और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल-विहार करने लगे। दुर्दैव से नाव उलट गई। सुल्तान तो किसी तरह निकल आये। पर सुल्ताना डूबने लगीं और मदद के लिए चिल्लाईं। दूर खड़े हुए एक संत्री ने उनकी आवाज़ सुनी। वह दौड़ा आया और उन्हें डूबने से उसने बचाया। इस पर बूढ़े सुल्तान बहुतही अप्रसन्न हुए। उन्होंने बेगम की जान बचाने के उपलक्ष्य में उसका सिर कटवा दिया। सुल्तान को बेगम मर चाहे जाय; पर उसके बदन पर दूसरे का हाथ न लगे! इन्हीं सुल्तान के पौत्र अपनी असूर्य्यम्पश्या बेगमों के चित्रों की प्रदर्शिनी करते हैं।

सुल्तान को विलायती चीज़ें बहुत पसन्द हैं। उन्होंने मामूली बाइसिकल, मोटर बाइसिकल, मोटर गाड़ी, मोटर नाव, गुब्बारे इत्यादि चीज़ें मंगाई हैं। १२ घोड़े की ताक़त रखनेवाला एक यंजिन भी उन्होंने मंगाया है। अपने महल के अहाते में ३ मील लंबी लोहे की पटरी सुल्तान ने बिछवाई है। दो तीन बहुत ही अच्छी गाड़ियों में इस यंजिन को जोड़ कर सुल्तान ख़ुद इसे चलाते हैं। गाड़ियों में सुल्तान की बेगमें बैठ कर मुसाफ़िरी करती हैं और सुल्तान ड्राइवरी।

सुल्तान अब्दुल अज़ीज़ योरप और अमेरिका के कलाकौशल की बड़ी तारीफ़ करते हैं। सिनिमेटोग्राफ़ की बदौलत उन्होंने सारे योरप को अपने महल में बुला लिया है। वहां के सैकड़ों दृश्य इसी यंत्र की सहायता से वे देखा करते हैं। लंडन, पेरिस और न्यूयार्क की सड़कों में गोया वे हर रोज़ घूमा करते हैं।

राजकीय बातों को सुल्तान ख़ुद देखते हैं; सब काग़ज़ात पढ़ते हैं; और हुक्म देते हैं। वज़ीरों ही की आँखों से वे नहीं देखते। उन्हें ख़ुशामद पसन्द नहीं। योरप के सर्वसाधारण की राय की वे बहुत परवा करते हैं। वहां के अख़बार पढ़ते हैं और जो जान से अपने देश का सुधार करना चाहते हैं। पर यह सुधार ही लोगों को विष हो रहा है। वे नहीं चाहते कि योरप की शिक्षा और सभ्यता का प्रचार वहां हो। ऐसेही अनेक कारणों से सुल्तान का एक प्रतिपक्षी खड़ा हो गया है। वह अकसर दंगे फ़साद किया करता है। उसने कुछ फ़ौज भी इकट्ठी कर ली है। इस कारण मुराको में कहीं कहीं अराजकता फैल गई है।

अँगरेज़ ग्रन्थकारों की राय है कि सुल्तान की योग्यता में कोई कसर नहीं। वे शिक्षा, सभ्यता और कलाकौशल के पक्षपाती हैं। पर प्रजा पर उनकी बात का असर कम पड़ता है। सुल्तान के अमीर-उमरा और अधिकारी विश्वासपात्र नहीं। वे प्रजापीड़क हैं। चाहे जिस तरह से हो रुपया कमाना ही उनका एकमात्र उद्देश्य रहता है। अधिकार की जगहें बिकती हैं। जो सबसे अधिक देता है वही पाता है। गवर्नरी तक बिकती हैं। इसी तरह ऊंचे से ऊंचे पद से लेकर नीचे से नीचे पद तक का क्रय-विक्रय होता रहता है। यदि सुल्तान प्रजा पर किसी निमित्त एक हज़ार रुपये कर लगाते हैं तो उसका कई गुना प्रजा को देना पड़ता है। कुछ गवर्नर बढ़ा देता है, कुछ कमिश्नर, कुछ ज़िले के हाकिम। इसी तरह उसकी ख़ूब वृद्धि हो जाती है। हर एक बड़े अधिकारी के अधीन एक एक जेल रहता है। जो कोई उसे अप्रसन्न करता है वह उसीमें ठूंसा जाता है। यदि प्रजा से तीन रुपये कर वसूल किया जाता है तो सिर्फ़ एक रुपया सुल्तान के ख़ज़ाने में पहुँचता है। इसीसे मुराको की दशा अच्छी नहीं।

योरप की शक्तियों को मुराको की यह दुरवस्था असह्य हो गई है। इसीसे आलजिसीरस में सभा करके वे उसे दूर करना चाहते हैं,—"परोपकाराय पुण्याय"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गा-भीष्म ।

[१]

पाठक, सुनिए कथा पुरानी ;
थे मुनिवर वशिष्ठ विज्ञानी ।
पास अष्ट वसु उनके आये ;
उनसे गये मुनीश सताये ॥

[२]

क्रोध उन्हें इससे हो आया ;
वसुओं को यह शाप सुनाया ।
"जन्म जगत् में लो तुम सारे ;
वचन अन्यथा नहीं हमारे" ॥

[३]

यह सुनकर वे सब घबराये ;
कम्पित हुए ; होश में आये ।
भागीरथी-समीप सिधाये ;
वचन विशेष विनीत सुनाये ॥

[४]

"हे सुरसरि ! विपत्ति के मारे ;
आये हैं हम पास तुम्हारे ।
जग में जननी बनो हमारी ;
करो हमें निज कृपाधिकारी" ॥

[५]

सुरसरि ने इनको स्वीकारा ;
वसु-गण अपनी पुरी पधारा ।
हुई जह्नुतनया तब नारी ;
रूप-राशि अद्भुत विस्तारी ॥

[६]

देखा नृप शान्तनु ने उसको ;
मदन-विमर्दित-तनु ने उसको ।
तब वह उस नरेश की रानी
हुई, बहुत उसके मनमानी ॥

[७]

हुए सात उसके सुत सुन्दर ;
वसुओं के अवतार मनोहर ।
उनको उसने जल में डाला ;
पहले किया हुआ प्रण पाला ॥

[८]

जब देवव्रत अष्टम बालक
प्रकटा भीष्म-प्रतिज्ञा-पालक ।
सुतस्नेह से नृप घबराया ;
सुरसरि को बहुविध समझाया ॥

[९]

युक्ति-युक्त सुन उसकी वाणी ,
द्रवित हो गई गङ्गा रानी ।
उसने वह सुत हाथ उठाया ;
इस प्रकार वर वचन सुनाया ॥

[१०]

"हे नृप मुझको सुरसरि जानो ;
बात सत्य यह मेरी मानो ।
कारण-वश जग में आई मैं ;
यहां तुम्हारे मन भाई मैं ॥

[११]

"अब मैं अपने घर जाती हूं ;
नहीं यहां रहने पाती हूं ।
सुनो बात जो बतलाती हूं ;
यह सुत तुम्हें दिये जाती हूं ॥

[१२]

"वैरी इससे घबरावेंगे ;
पार नहीं इससे पावेंगे ।
यदि कोई सम्मुख आवेंगे ;
तत्क्षण ही मारे जावेंगे ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१३]

"ब्रह्मचर्य्य व्रत इसका होगा ;
यश न कभी मृत इसका होगा ।
पण्डित होगा ; सच कहती हूं ;
अनुमति चलने की चहती हूं ॥

[१४]

"जो कोई जग में है आता ;
सुख-दुख वह दोनों ही पाता ।
विधिही यह जोड़ा निर्म्माता ;
यह न किसीसे तोड़ा जाता" ॥

[१५]

यह कह सुरसरि ने सुत दिया ;
सुरपुर का पथ उसने लिया ।
उसका चित्र विचित्र बना है ;
नृप रविवर्म्मा की रचना है ॥

शरीर-रक्षा ।

धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
—चरक

शरीरमाद्यं खलु धर्म्मसाधनम् ।
—कालिदास

[१]

शरीरही के हित काम सारे ;
शरीरही से सुख हैं हमारे ।
आत्मा नहीं धार्य्य बिना शरीर—
जैसे बिना पिञ्जर बद्ध कीर ॥

[२]

शरीर से पुण्य, परोपकार ;
शरीरही है गुण का अगार ।
शरीरही है सुर-लोक-द्वार ;
शरीरही से सुविचार-सार ॥

[३]

शरीरही से पुरुषार्थ चार ;
शरीर की है महिमा अपार ।
शरीर-रक्षा पर ध्यान दीजै ;
शरीर-सेवा सब छोड़ कीजै ॥

प्रोषितपतिका ।

प्राणप्यारे ! जीविताधार ! तुम कहां हो ? संवत् १९६२ की श्रावणी को, तुमको घर से गये चार वर्ष पूरे हो गये ; और इस होली को चार वर्ष सात मास । तुम क्या जानते होगे इतने दिन मैं कैसे जीती रही हूं ? हा ! मैं क्या जानती थी कि उस रात को तुम्हें गहना न देने से यों तुम्हारी जुदाई का पत्थर मेरे सिर पर गिरेगा । मेरी बात को तुम झूठ समझोगे । पर इसमें मेरा क्या वश है ? मैं ईश्वर को साक्षी करके कहती हूं कि मैंने गहना तुमको इसी कारण से नहीं दिया था कि कहीं तुम इस घर की सामग्री को भी जो अड़े वक्त के लिए है, उस दुश्चरित्रा पुंश्चली, बढ़ई की कन्या को न दे डालो जिस पर तुम तन-मन-धन से न्योछावर होते थे ; जिसके तुम दूकान का कुल माल चटाकर कोरमको चवालसो, हो बैठे थे । हा ! मैं जानती तो गहना पत्ता सब तुम्हें दे डालती । मैं तो उसे कभी पहनती भी न थी । वह सब तुम्हारीही तो वस्तु थी, सब घरही तुम्हारा है । मैं भी तुम्हारीही हूं । और कुछ नहीं तो तुम घर तो रहते ; मुझे देखने को तो मिलते । पर हा ! मुझ अभागिनी के भाग्य यह दुःख जो बदा था ! मेरी चतुराई ने मेरा सत्यानाश किया ।

तुम्हारे खोजने के कितने यत्न हुए । बीसियों ज्योतिषियों को तुम्हारे जन्मपत्र दिखाये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न कहनेवालों को रुपये भेंट दे दे कर तुम्हारा पता निकलवाया। हाय! वे सब झूठे निकले। किसीने कहा दो महीने में आवेंगे; किसीने कहा चार में। कोई बोला उत्तर में हैं; कोई बोला दक्षिण में। किसीने कहा पूरब, किसीने पच्छम। ऐसेही सैकड़ों रुपये ले ले कर वे रफ़ूचक्कर हुए। कई बार दुर्गापाठ हुए; सम्पुट, असम्पुट, बीसों तरह के। अघमर्षण, मृत्युञ्जय, गायत्री और न जाने कौन कौन मन्त्र जपे गये। होम हुए। पर हाय! मेरे प्रियतम को किसीने न लौटाया; न बताया कि किस कोने में छिपे बैठे हैं।

चाचाजी तुम्हारी खोज में चारों तरफ़ आस पास के छोटे बड़े शहरों में गये। देहली-दरबार में एक एक आदमी देखा; मेरठ, नौचन्दी, में बहुत दिन तक सब जगह ढूंढ़ा। भैया तुम्हें देखने लाहौर, अमृतसर, अम्बाला गये; फिर मथुरा, आगरा, इलाहाबाद, कलकत्ता और बम्बई। जेठजी देहरादून, मन्सूरी और नयनीताल की ख़ाक छान आये। पर हा! मेरे हृदयरत्न! तुम्हारा पता नहीं चला। प्यारे! सच तो बताओ, तुम कहां छिपे बैठे हो और क्या कर रहे हो? क्या इस दासी को तुम एक दम भूल गये? बेशक अपराध तो मेरा ही था। पर दण्ड तो अपराध से कई गुना अधिक पाचुकी। नाथ! अब क्षमा करो।

क्या मेरा दुःख सुनियेगा? तीन बार मैं मरती मरती बच गई हूं। न जाने अभागे प्राण क्यों नहीं निकलते? कदाचित् तुम्हारे मिलने की आशा ही इनको नहीं निकलने देती। मेरे शरीर पर अब मांस नहीं रहा। ख़ून आँसू होकर बह गया है।

मुझे रात दिन रोते देख भैया ने सोचा कि काम में लगे रहने से इसका जी लगा रहेगा। उन्होंने सौ डेढ़सौ रुपये ख़र्च करके कई तरह की मैशीनें (कपड़ा सीने आदि की कलें) मँगवाईं। जब तक भैया बैठे सिखाते रहते तब तक तो मैं आँसुओं का कटोरा पिये बैठी रहती; उनके हटते ही नयनमेघ से मूसलधार वृष्टि होने लगती। आँसुओं से भीग भीग कर मैशीन के पहियों को ज़ंग लग गया। सब बेकार धरी हैं। काम कहां से हो? मन है तो तुम्हारी सूरत में। तन है तो तुम्हारी सूरत में। तुम्हारी सूरत है और उसकी याद। मेरे हृदयेश्वर, प्राणेश्वर, और सर्वेश्वर तुम्हीं हो। मेरे इस असार संसार के सार तुम्हीं हो। तुम मुझे याद नहीं करते? न करो। चाहे जिसे याद करो। पर मेरे सर्वस्व तुम्हीं हो। आप जिस पर रीझे थे, जिसके लिए मुझसे नाराज़ हुए थे, वह एक मनियार के लड़के के साथ न जाने कहां भग गई।

हर बरसात की हरियाली, तीज और फागुन की चाँदनी, मेरे जलाने को आग लिए आती हैं। मुझे झुलसा कर, अधमरी करके, चली जाती हैं। आज की धुलैंड़ी मेरे लिए मौत का सामान इकट्ठा करके आई है। मरने से पहिले अपना दुःख अपने प्यारे प्राणाधार को निवेदन करना मुझे उचित जान पड़ा। इसलिए लोकलज्जा को जलाञ्जलि देकर अपना वृत्तान्त सरस्वती द्वारा तुम तक पहुँचाने का उपाय मैंने स्थिर किया है। तुम हिन्दी भाषा के रसिक हो; सरस्वती के प्रेमी हो। इससे इस भगवती के द्वारा अपना मनोरथ सिद्ध होने की मुझे आशा है। मेरी मौत के अब थोड़ेही दिन शेष हैं। इनमें यदि तुम्हारे दर्शन हो गये तो यह जीवन-वाटिका फिर हरी हो जायगी। नहीं तो प्यारे नवीनचन्द्र! मेरी इतनी विनती अवश्य स्वीकार कीजिये। मेरे मरने की ख़बर पाकर यदि तुम मेरे लिए एक दो बूंद आँसू गिराओगे, तो यही देवप्रसाद मेरी हृदयाग्नि को बुझाने के लिए अमृत की धारा होगी। मुझे उसीसे सन्तोष होगा। बस—

"अब उर अन्तर इतीक अभिलाष शेष
रहो तुम जहां पै तहां आनँद सने रहो।
याहि में हमारो सुख पगन लगैगो तुम
लगन लगेहू पिय मगन बने रहो" ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे दर्शन की आशा मरते दम तक और मरने के पश्चात् भी मेरे हृदय से जायगी नहीं। इसे सच समझियेा। प्राणनाथ! क्या मेरी आशा जीते जी पूरी होगी?

तुम्हारी विरह-कातरा दासी
चाँदनी।

शब्द-रहस्य।

सभी मुक्त-कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि ग्रन्थ अपरिमेय ज्ञान के भाण्डार हैं। इस भाण्डार में पूर्व-पुरुषों का अर्जित बहुमूल्य ज्ञानरत्न सञ्चित है। प्रधानतः इसी भाण्डार से पुरुष-परम्परा के द्वारा यह लोगों को हस्तगत होता चला आता है। किन्तु अनुसन्धान करके देखने से विदित होता है कि पुस्तकों के गतज्ञान का एक और अति गम्भीर ख़ज़ाना है। यह ख़ज़ाना शब्द है। एक एक शब्द भी नाना रूप के ज्ञानरत्नों से भरा हुआ है। विचार-पूर्वक ढूंढने से ये हस्तगत हो सकते हैं। साधारण शब्दों में भी मानव-हृदय की सरस-भाव-लहरी और संसार की सूक्ष्म घटनाओं की परम्परा अति विचित्र रूप से दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका परस्पर अनिर्वचनीय सम्बन्ध है। काल की संहारिणी शक्ति ग्रन्थादि को लोप और मनुष्यों के कल्पित भावों को विकृत कर सकती है, किन्तु शब्द-स्थित-ज्ञान-रहस्य को इस प्रकार के विकार वा विनाश की आशङ्का नहीं है। शब्दों का, उनकी व्युत्पत्ति के साथ, घनिष्ठ और दृढ़ सम्बन्ध है। अतएव शब्दों का उच्छेद हुए बिना उनकी व्युत्पत्ति के उच्छेद की कभी सम्भावना नहीं है। पुस्तकों में जिस का कुछ भी उल्लेख नहीं है, और जनश्रुति या प्रवादवाक्यों में जिसका कुछ भी आभास नहीं है, ऐसे सूक्ष्मतत्वों की शिक्षा बहुधा केवल शब्दों ही से मिलती है। जिन विषयों का विश्वास जातीय-ग्रन्थकर्त्ताओं की लेखनी से निकला हुआ प्रमाण नहीं दिलाता, अनेक समय, जातीयभाषा उन की विश्वस्तरूप से गवाही देती है। ढूंढ़ ढूंढ़ कर शब्दों की शिक्षा ग्रहण करने से अनेक बातों का प्रयोजनीय ज्ञान लाभ हो सकता है। शब्द-स्थित उन्हीं ज्ञानों की थोड़ी सी व्याख्या करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य है।

पहले कविता ही को भाषा की ओर दृष्टि कीजिए। कवित्व की परिचायक भाषा है। अनेक शब्दों में, मानवहृदय के साधारण और प्रयोजनीय भाव, उज्ज्वल उपमा के द्वारा विशदरूप से ग्रथित हैं। हम लोग "चूडान्त" शब्द का कभी कभी व्यवहार करते हैं। यथा "इस विषय की चूडान्त मीमांसा हुई"। इस 'चूडान्त' (चूडा+अन्त) शब्द में क्या एक उज्ज्वल उपमा वर्त्तमान नहीं है? जैसे किसी गिरिशिखर के अग्रभाग तक पहुँचने पर उसकी शेष सीमा का अतिक्रम करना कहा जाता है, वैसेही 'चूडान्त' कहने से किसी विषय की अन्तिम सीमा का भाव प्रकाशित होता है।

कविता की मर्य्यादा शब्दों की बनावट और उनके यथोचित व्यवहार ही पर अवलम्बित है। शब्दों के विचित्र सामर्थ्य को कौन काव्यप्रेमी नहीं जानता। सहस्र चित्रपट देखने पर भी हृदय का जितना विकाश नहीं होता उतना एक साधारण शब्द के कान में पड़ने से हो जाता है। 'वसन्त-कोकिला' शब्द को सुनते ही कितने सुन्दर मनोरञ्जक और सुखद चित्रपट नेत्रों के सामने सजीव चित्रित हो जाते हैं। कैसे कैसे अनिर्वचनीय मनोहर दृश्य स्मृति के पथ पर इकट्ठे हो जाते हैं। क्या कोकिला का आलाप कानों में स्पष्ट नहीं गूंजने लगता? क्या मधुमत्त मधुकरों का गुञ्जार साफ़ नहीं सुनाई देने लगता?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या मञ्जुल मल्लिकाओं के सुवास का अनुभव नासिका को नहीं होने लगता? क्या मञ्जरित रसाल की डाली पर बैठी हुई कोकिला पञ्चम में आलापती हुई देख नहीं पड़ने लगती? और क्या त्रिविध समीर अङ्ग-स्पर्श करता हुआ नहीं जान पड़ने लगता? यदि शब्दों में इतनी शक्ति न होती तो कोई क्यों काव्य पढ़ता? जैसे ज़रा अग्नि-स्पर्श से बारूद भभक उठती है वैसेही एक शब्द के कान में पड़ने से अनेक भावों का उद्दीपन हृदय में हो उठता है। अर्थात् किसी एक शब्द के उच्चारण करने, या सुनने, पर उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी पदार्थ स्मरण हो आते हैं। इसीको भावसमुच्चय (association of thoughts) कहते हैं। परन्तु शक्ति की मात्रा सब में बराबर नहीं होती है। जिसकी शक्ति जितनी तीव्र होती है वह उतना ही उत्तम कवि और काव्यानुरागी कहा जाता है। शब्दों के इस विपुल प्रभाव का अनुभव करना सहज नहीं है।

कविता की तरह नीतिशास्त्र में भी अनेक भावगर्भित शब्द विद्यमान हैं। हम लोग इन्हीं शब्दों से सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नीतितत्वों की शिक्षा पाते हैं। हम लोग जिन शब्दों को सदा व्यवहार करते हैं और सुनते हो जिन के साधारण अर्थ को छोड़ कर अन्य और कोई भाव हम को हृदयङ्गम नहीं होता है, सम्भव है, उन्हीं शब्दों में कोई सुन्दर नीति-तत्व विद्यमान हो। 'अङ्गीकार' शब्द इसका एक दृष्टान्त है। अङ्गीकार करते समय अनेक लोग इस शब्द के नैतिक भाव पर ध्यान नहीं देते। जो अपने में पहले अङ्गरूप से विद्यमान नहीं था उसको अङ्गीभूत करना ही अङ्गीकार है। दूसरे से की गई प्रतिज्ञा अङ्गीभूत हो कर रहती है; अर्थात् जब तक उचित रीति से वह सम्पन्न नहीं होती तब तक वह अपने अङ्ग के समान सदा स्मरण रहती है। 'अङ्गीकार' शब्द के नामान्तर 'स्वीकार' शब्द से भी यही भाव प्रकट होता है। मनुष्य की सबसे निकट की वस्तु, जिस पर उसका सबसे अधिक अधिकार है, अङ्ग ही है। अङ्ग ही को मनुष्य अपना कह सकता है। इधर 'स्वीकार' में 'स्वीय' शब्द का अर्थ भी अपना है। इससे 'अङ्गीकार' और 'स्वीकार' शब्द सम-भाव के बोधक हैं। 'स्वीकार' और 'अङ्गीकार' शब्दों के इस नैतिक तात्पर्य्य के हृदयङ्गम होने पर, पुरुष-परम्परागत नीति शिक्षा द्वारा, मनुष्य के चरित्र की उन्नति हो सकती है। अतएव शुद्ध भाषा ज्ञान की अपेक्षा शब्द-शिक्षा द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान कम प्रयोजनीय नहीं है।

शब्द से इतिहासतत्व की भी शिक्षा हो सकती है। प्राचीनकाल में क्षत्रियों की कुमारियां मनोमत पतिग्रहण कर सकती थीं। उनको, आज कल की तरह, अपने पिता माता के अभिमत पात्र को आत्म-समर्पण नहीं करना पड़ता था। ये बातें 'स्वयंवर' शब्द से प्रमाणित होती हैं। इस प्रथा के अस्तित्व के विषय में सन्देह करके कोई इसके विरुद्ध सहस्रों युक्तियां क्यों न दिखलावे, 'स्वयंवर' शब्द द्वारा उन सबका सहज ही में खण्डन हो सकता है। भाषागत प्रमाण अखण्डनीय है। क्योंकि जातीय आचार, विचार और पद्धति आदि बातें शब्दगत होकर हम लोगों की भाषा में मिल जाती हैं। भाषा एक प्रकार का जातीय दर्पण है जिस में प्रत्येक जाति की भीतरी अथवा बाहरी उन्नति या अवनति प्रतिबिम्बित होती है। जिस समय मनुष्य की जैसी मानसिक अवस्था रहती है उस समय की उसकी भाषा भी वैसी ही होती है।

धर्म्म-शास्त्र में भी मर्म्म-पूर्ण शब्दों का अभाव नहीं है। 'पुत्र' शब्द ही की ओर ध्यान दीजिए। 'पुत्र' के जन्म ग्रहण करते ही सांसारिक जीव बहुत से सांसारिक दुःखों को भूल जाते हैं। ऐसी अवस्था में माता-पिता के हृदय में आनन्द की सीमा नहीं रहती। उत्साह और आल्हाद उमड़ पड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग पुत्र को वृद्ध की लकुटी के समान अपना एक मात्र अवलम्ब समझते हैं, और कुल का दीपक मानते हैं। हिन्दू तो उसे अपने पारलौकिक दुःखों का भी उद्धारक समझते हैं। कारण यह है कि 'पुत्र' शब्द की व्युत्पत्ति (पुत् + त्रायते) से यह सूचित होता है—जो नरक विशेष से उद्धार करता है, उसीका नाम पुत्र है। अर्थात् पुत्र, पिता को पतित होने से बचाता है। यदि 'पुत्र' शब्द में यह भाव न होता तो उसके लिए मनुष्य इतना व्याकुल क्यों होता? हिन्दूशास्त्र में यह बात स्पष्ट लिखी हुई है कि पिण्डदान दे कर पुत्र पिता को 'पुत्' नामक नरक से उद्धार करता है। यदि लोक-रीति से देखिए तो वृद्धावस्था में भरण पोषण का भार अपने ऊपर लेकर और शारीरिक तथा मानसिक सुख देकर क्या पुत्र अपने पिता को इस योग्य नहीं कर देता कि वह निश्चिन्त भाव से भगवद्-भजन करके अपने को 'पुत्' में पड़ने, अर्थात् पतित होने से बचावे? वृद्धावस्था में पुत्र का मुँह देखकर पिता को क्या मानसिक शान्ति नहीं मिलती, जिससे बढ़ कर संसार में और कोई पदार्थ नहीं है? क्या वृद्धपिता अपने पुत्र को अपनी सांसारिक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना कर मृत्युशय्या पर शान्तिपूर्वक प्राण त्याग नहीं करता? 'पुत्र' शब्द के उच्चारण ही से आनन्द के मारे हृदय गद्गद् हो जाता है; क्योंकि पूर्वोक्त भाव हृदय में उदय हो आते हैं।

भाषा-द्वारा इस प्रकार मनोभावों को प्रकाशित करने की लालसा मनुष्य में स्वाभाविक है। जिस प्रकार बुद्धि, वृत्ति और वासना का बीज सृष्टि के आदि ही से मनुष्य की प्रकृति में रोपा गया है उसी प्रकार भाषा-द्वारा अपने हृदय के भावों को प्रकाशित करने की क्षमता भी मनुष्य को स्वभाव ही से दी गई है। इसी क्षमता से भूषित होने के कारण जीवधारियों में मनुष्य सबसे अधिक उच्च और श्रेष्ठ पदवी पर प्रतिष्ठित हुआ है। यह बात नहीं है कि सृष्टि होते ही मनुष्य एक दम व्याकरण-विशुद्ध, नाना-शब्द-समन्वित और नाना-अलङ्कार-विभूषित उत्कृष्ट भाषा को प्राप्त कर लेता है। पर हां आदि अवस्था से ही भाषा की क्षमता मनुष्य को मिली हुई है। मनुष्य अपनी भाषा का कर्ता तो अवश्य है किन्तु जिस अर्थ में वह दूरबीन और घड़ी आदि यन्त्रों का आविष्कर्ता कहा जाता है उस अर्थ में नहीं। पक्षी जिस प्रकार अपने घोंसलों को बनाते हैं, बीवर नामक जन्तु जिस प्रकार अपने वासस्थान को कौशलपूर्ण प्रस्तुत करते हैं और मधुमक्षिका जिस प्रकार अपने छत्ते को निर्म्माण करती हैं, मनुष्य भी उसी प्रकार अपनी भाषा को बनाता है और सुधारता जाता है। प्रकृति को दी हुई इस क्षमता का अधिकारी होने के कारण मनुष्य अपनी प्रथमावस्था से ही अपने सब मानसिक भावों को प्रकट करने की चेष्टा करता है और जगत् के दृश्यमान पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध सोच कर उन के नामकरण में प्रवृत्त होता है। मनुष्य की संख्या बढ़ने पर, वाक्यों के द्वारा मनोगत भावों के परस्पर प्रकट होने से लौकिक भाषा की उत्पत्ति हुई है। साधारण भाषा की यह प्रथम अवतारणा स्वाभाविक है; कारण यह है कि वस्तु और व्यक्ति विशेष के साथ शब्दों की संज्ञा का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि शब्द के उच्चारण मात्र से उससे सूचित पदार्थों का सहज ही में ज्ञान हो जाता है। अथवा यह कहना चाहिए कि उनके सजीव चित्र हृदय-पट पर खिँच जाते हैं।

सब शब्द आपही आप नहीं बनते। वस्तुगत और व्यक्तिगत गुणागुण का विचार करके उन सब का नामकरण होता है। इसीसे शब्दों के साथ शब्दार्थ विशेष का घना सम्बन्ध रहता है। यह कहना अयुक्ति नहीं, कि नाना प्रकार के विकारों से उत्पन्न हुए आन्तरिक मनोभाव बाह्य जगत् में शब्द रूप से विद्यमान रहते हैं। या यों कहिये कि निराकार मनोभावों का शब्द साकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप है। क्योंकि मनोभाव न देखे जा सकते हैं और न सुने। अर्थात् वे चक्षु और कर्णेन्द्रिय के ज्ञान के बाहर हैं। पर इन के बाह्य-स्वरूप अर्थात् शब्द और अक्षर, इन्द्रियों से अनुभव किये जा सकते हैं।

पांच आदमी मिल कर अपनी इच्छा के अनुसार घोड़े का नाम हाथी या हाथी का नाम घोड़ा नहीं रख सकते। 'घोड़ा' शब्द के साथ उस वेगगामी जन्तु का सम्बन्ध है जिस के उच्चारण से मन्दगामी, दीर्घकाय और सूंडवाले हाथी का कभी ध्यान ही नहीं हो सकता। अतएव घोड़े का नाम हाथी में अब नहीं बदला जा सकता। सब संज्ञायें सार्थक हैं। और जिस वस्तु या व्यक्ति के नाम की वे वाचक होती हैं उनके साथ उनका विशेष रूप से सम्बन्ध रहता है। इस सम्बन्ध की रक्षा करने में मनुष्य की प्रवृत्ति स्वाभाविक रहती है। यदि कोई अपने अन्धे पुत्र का नाम पद्मलोचन या किसी सांवली युवती को गौरी कह कर पुकारे, या सेवार और कीच से भरी हुई गड्ढ़ही को पुष्करिणी नाम दे तो वह लोगों के निकट अवश्य उपहास का पात्र हो। क्योंकि इन उदाहरणों में व्यक्ति और वस्तुओं के साथ नामार्थ का दृढ़ सम्बन्ध है। अतएव जब मनुष्य पहले पहल समाज-बद्ध हो कर वास करने लगते हैं, और जब सभी उक्त स्वाभाविक प्रवृत्ति के द्वारा उत्तेजित होकर अपने अपने भावों को प्रकाशित करने लगते हैं, तब परस्पर व्यवहृत शब्दों का साहश्य-निबन्धन सहज ही में हो जाता है। यह बात प्रमाण-सिद्ध है और इसी विद्या से साधारण भाषा की अवतारणा हुई है और होती भी है।

बुद्धि और विवेक आदि आन्तरिक क्षमताओं और वासनाओं का, भाषा, बाहरी प्रकाश मात्र है। आन्तरिक भावों का बहिःप्रकाश हो जाने से ही उनका नाम भाषा होता है। इसी से ग्रीक (Greek) लोगों ने विवेक और भाषा को एक ही संज्ञा दी है। भाषा जब मनोभाव का बाहरी प्रकाश है तब मनुष्यों की मानसिक उन्नति और अवनति के साथ उसकी भी उन्नति और अवनति का सम्बन्ध अवश्य है। मनुष्य की मानसिक अवस्था जब परिमार्जित और उन्नतिशील रहती है तब उसकी भाषा भी क्रमशः विकसित होती जाती है। मनुष्यमण्डली जब उत्तरोत्तर बढ़कर पृथ्वी पर इधर उधर फैल जाती है और समाज-बद्ध होकर नाना स्थानों में वास करने लगती है, तब सामाजिक अवस्थानुसार भाषा की भी वृद्धि और उन्नति होने लगती है। इसके बाद बहुत काल में विच्छिन्नावस्था को पहुंचते पहुंचते भाषा में भी विलक्षण परिवर्तन हो जाता है। इसी क्रम से पृथिवी में नाना भाषाओं की उत्पत्ति होती है।

यह सभी मानते हैं कि मानवी प्रकृति जिन उत्कृष्ट मनोवृत्तियों से अलङ्कृत है उनका मुख्य उद्देश्य यही है कि मनुष्य की उन्नति हो। इस उद्देश्य के साधन का प्रधान उपाय भाषा की वृद्धि है। बुद्धि और विवेक के बल से मनुष्य जो ज्ञान प्राप्त करता है उसीके प्रकाश और प्रचार के द्वारा सर्व साधारण के उपकार करने और उन्नति-साधन में वह समर्थ होता है। मनुष्य जब अपने प्राप्त किये हुए ज्ञान का प्रचार नहीं कर सकता, तब सामुद्रिक रत्नों के समान उसके ज्ञान से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता और न किसीको कुछ लाभ ही पहुंच सकता है। प्रकाश करने की क्षमता न रहने से उत्कृष्ट मानसिक-वृत्तियां कोई काम नहीं कर सकतीं। ऐसा होने से विवेकवान् मनुष्य निकृष्ट पशु की अपेक्षा अधिक ऊंचे स्थान पर कभी प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। अकेली भाषा ही की क्षमता पर अन्यान्य वृत्तियों की प्रयोजनीयता अवलम्बित रहती है। अकेली भाषा ही मनुष्य के मनोभावों का विकाश-द्वार है। मनुष्य के हृदय की चिन्ता उपयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में यदि विद्यमान न रहती तो उसका आन्तरिक भाव सब को क्योंकर बोधगम्य होता। युग-युगान्तर के परिश्रम से प्रतिभाशाली महात्मागण जिन सब आविष्क्रियाओं और उद्भावनाओं को इकट्ठा कर गये हैं उनको प्रकट करने के लिए यदि उपयुक्त वाक्य न बनाये जाते तो, क्या कभी वे पुरुष-परम्परागत होकर, संसार के ज्ञानालोक की वृद्धि कर सकतीं? भाषा न होने से मन को चिन्ता का प्रवाह मन ही में लय हो जाता। बाहरी जगत् के साथ उसका कोई सम्पर्क न रहता। ऐसी अवस्था में संसार का ज्ञान-भाण्डार एक दम ही शून्य हो जाता और ज्ञान-रहित मनुष्य निकृष्ट पशुओं के साथ एक ही घाट पर पानी पीता। अतएव भाषा के प्राधान्य और इसकी श्रेयता के विषय में कभी मतभेद नहीं हो सकता। ज्ञान-भाण्डार, भाषा और शब्द के रूप में, सर्व साधारण की अमूल्य सम्पत्ति है। हम लोगों के पूर्व-पुरुष बहुत यत्न और परिश्रम से जिस ज्ञान-राशि को इकट्ठी कर गये हैं उसका अधिकांश इसी भाण्डार में सञ्चित है। अनुसन्धान करके ग्रहण करने से, उसका कुछ अंश हम लोग प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन आचार, व्यवहार, जातीय उन्नति या अवनति, दार्शनिकों का गम्भीर शास्त्र-ज्ञान, वैज्ञानिकों का सूक्ष्मतत्व, नीतिवेत्ताओं की धर्म्मनीति और कवियों की कल्पना का सरस, सुखद और मनोहर प्रवाह साधारण शब्दों तक में अद्यापि भरा हुआ है।

भाषा, मनुष्य के हृदय का विकाशस्थल है। जब जो भावलहरी हृदयसरोवर में उठती है, जब जो नया विषय मानवहृदय में उद्भावित हुआ है, और जब जिस नवीन वासना का दीप हृदय-मन्दिर में प्रज्वलित हुआ है, सर्वसाधारण के जानने के लिए उसी समय वह सजीव भाषापट पर चित्रित हो गया है। वह स्पष्ट रूप से अभी तक एक एक वाक्य और शब्द में अङ्कित है। अकेले एक 'निर्वाण' ही शब्द में बौद्धधर्म्म का सारा रहस्य भरा हुआ है। बुद्धदेव ने अनेक चिन्ता और तर्क वितर्क करके जिस सिद्धान्त को निकाला था, उसका सम्बन्ध एक क्षुद्र शब्द के साथ हो जाने के कारण, आज दो हज़ार वर्ष से अधिक बीत जाने पर भी, सब लोग उसको सादर मानते हैं। ब्रह्मा के पुत्र मनु से मनुष्यमात्र की उत्पत्ति हुई है। यह पौराणिक बात है। यह 'मनुष्य' और 'मानव' आदि शब्दों की व्युत्पत्ति में झलक रही है। हिन्दुओं में बहुत दिनों से जातिभेद की प्रथा प्रचलित है। इसका प्रमाण 'यवन' शब्द है। 'यवन' की उत्पत्ति 'यु' धातु से है। इस धातु का अर्थ मिश्रित करना या मिला देना है। जो लोग जाति-विचार न करके सबके साथ मिल जुल कर भोजनादि करते हैं उन्हींका नाम 'यवन' हुआ।

शब्दों ही के आधार पर पुरातत्वज्ञ लोग इस समय यह कह रहे हैं कि आर्य्यगण किसी समय मध्य एशिया में रहते थे। और वहीं से वे भिन्न भिन्न देशों में जा बसे हैं। पितृबोधक पेटर (Pater), फादर (Father) और पिदर; करुणा, ममता और दया से पूर्ण हिन्दी माता और मा, अँगरेज़ी मामा (Mamma), अरबी उम्मी, पारसी नेना, और उर्दू अम्मा आदि शब्दों की व्युत्पत्ति की ओर ध्यान देने से प्रमाणित होता है कि रोमन, ग्रीक, जर्मन, पारसी, और हिन्दू आदि सभी पहले एक ही स्थान में रहते थे। पर भिन्न भिन्न भूमि और जलवायु के संसर्ग से उन में अब इतनी भिन्नता आ गई है। जो बात कहीं इतिहास में नहीं मिलती, पुराणों और काव्यों में जिसकी कहीं चर्चा नहीं, और जिसको सुनते ही कितने ही लोग चिहुंक उठते हैं, आज उस बात का यही शब्द अटल विश्वास दिला रहे हैं और इन्हीं शब्दों के आधार पर आज इस बात को स्वयं-सिद्ध मान कर बड़े बड़े इतिहासलेखक अपने इतिहासों और प्रबन्धों में इसका उल्लेख करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार अनुसन्धान और विचार करने से भाषा-भाण्डार में अनेक अमूल्य ज्ञान-रत्न मिल सकते हैं*।

ब्रजनन्दनसहाय।

शिक्षा।

माँ-बाप का कर्तव्य।

[१]

स्पेन्सर साहब की शिकायत है कि लोग उपयोगिता का कम ख़याल करते हैं, दिखाव का अधिक। शिक्षा के विषय में भी यही बात पाई जाती है। जैसी शिक्षा होती आई है वैसी ही लोग अपने बाल बच्चों को देते हैं। यह सिर्फ़ इसलिए कि और लोग उनकी सन्तति की प्रशंसा करें और उन्हें शिक्षित समझें। पर इस बात का लोग ख़याल नहीं करते कि जो शिक्षा मिल रही है उससे काम कितना निकलता है। स्पेन्सर ने वैज्ञानिक शिक्षा को प्रधानता दी है और दिखलाया है कि बिना इसके आदमी कोई काम—कोई उद्योग धन्धा—अच्छी तरह नहीं कर सकता। इसलिए विज्ञान-शिक्षा की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

महत्व के अनुसार मनुष्य के कर्तव्य पाँच हिस्सों में बाँटे जा सकते हैं। उनका क्रम इस प्रकार है—

(१) अपनी प्राण-रक्षा के कर्तव्य।

(२) अपने जीवन-निर्वाह के कर्तव्य।

(३) सन्तति को पालने पोसने और शिक्षा देने के कर्तव्य।

(४) सामाजिक और राजनैतिक कर्तव्य।

(५) मनोरञ्जन—अर्थात् गाने, बजाने, कविता करने और दिल बहलाने आदि, के कर्तव्य।

ये जितने कर्तव्य हैं सबके लिए जुदा जुदा तरह की शिक्षा दरकार होती है। और हर तरह की शिक्षा में प्रायः विज्ञान ही (Science) प्रधान है। इस बात को स्पेन्सर ने बड़ी ही योग्यता से सिद्ध किया है। हम पहले तीसरे प्रकार के कर्तव्यों की शिक्षा के विषय में उसका मत लिखते हैं। यह कर्तव्य बाल-बच्चों को पालने, पोसने और शिक्षा देने से सम्बन्ध रखता है।

यह कर्तव्य बहुत बड़े महत्व का है; पर इसके महत्व का कोई ख़याल नहीं करता—इसके पूरा करने के लिए कोई तैयार नहीं रहता। कल्पना कीजिए कि किसी अघटित घटना के कारण, भविष्यत् में होने वाले हमारे वंशजों को, स्कूली किताबों के एक ढेर और परीक्षा-प्रश्नों के परचों के एक विशाल बंडल के सिवा, हमारी और कोई यादगार नहीं पहुंची। इस दशा में यदि उस ज़माने का कोई पुरा-तत्ववेत्ता इन किताबों और परचों की जाँच करेगा तो उसे यह देख कर कितना आश्चर्य्य होगा कि जिन विद्यार्थियों के ये परचे और पुस्तकें हैं वे क्या आमरण ब्रह्मचारी बने रहने के लिए तैयार हो रहे थे? क्या वे गृहस्थ होकर बाल बच्चेदार होने की इच्छा नहीं रखते थे? यदि रखते थे तो फिर क्यों इन पुस्तकों और परचों में बच्चों के पालन-पोषण से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का कोई ज़िक्र नहीं? उसे यही दृढ़ विश्वास होगा कि इन बच्चों या नवयुवकों ने मरण-पर्य्यन्त विवाह न करने का प्रण किया था। अन्त में वह अपने सिद्धान्त इस तरह निश्चित करेगा—

"इन लोगों ने बहुत से विषयों के सीखने की ख़ूब तैयारी की थी। इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि यह बात इन पुस्तकों और परचों से अच्छी तरह साबित है। जिन मनुष्य-जातियों का समूल ही नाश

* एक बँगला लेख के आधार पर लिखित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गया था उनकी, और अन्य वर्तमान जातियों की भी, किताबें पढ़ने का इन लोगों को बड़ा शौक़ था। और जातियों की विलुप्त या विद्यमान भाषाओं पर इनकी बड़ी भक्ति थी। इससे निःसन्देह मालूम होता है कि इन लोगों की निज की भाषा में बहुत कम पुस्तकें पढ़ने लायक़ थीं। परन्तु सबसे बढ़ कर अचरज इस बात का ख़याल करके होता है कि बाल बच्चों के पालन पोषण और विद्याभ्यास इत्यादि का कहीं नाम को भी इन पुस्तकों में ज़िक्र नहीं। जांच से तो यही मालूम होता है कि ये लोग इतने मूर्ख न थे कि इस बहुत बड़े महत्व के विषय को न समझ सकते। इससे लाचार होकर यही कहना पड़ता है कि ये पाठ्य पुस्तकें उस ज़माने के मठवासी महन्तों ने आमरण ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा करनेवाले विद्यार्थियों ही के लिये बनाई थीं"।

बच्चों का जीवन या मरण, सुख या सर्वनाश, हित या अहित, सारी बातें, उनको लड़कपन में दी गई शिक्षाही पर अवलम्बित रहती हैं। तिस पर भी जो लोग थोड़े ही दिनों में बच्चों के माँ बाप बननेवाले हैं, अर्थात् जो विवाह हो जाने पर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले हैं, उनको बाल-बच्चों के पालने और उन्हें शिक्षा देने के विषय में भूल करभी कभी एक शब्द तक नहीं सिखलाया जाता। क्या यह बहुत बड़े आश्चर्य्य की बात नहीं? क्या यह बहुत ही अद्भुत और चमत्कारिणी घटना नहीं? क्या यह बहुत ही विलक्षण पागलपन नहीं कि भावी सन्तति का भाग्य, अविचार से भरी हुई पुरानी चाल, प्रवृत्ति, अटकल, मूर्ख दाइयों की सलाह और घर की अन्ध-परम्परा-भक्त बड़ी बूढ़ियों की समझ के भरोसे छोड़ दिया जाय? हिसाब किताब और बही-खाते का कुछ भी ज्ञान न रखने वाला कोई व्यापारी यदि कारोबार शुरू कर दे तो हम उसकी मूर्खता की ढोल पीटने लगेंगे और बहुत जल्द उसके बरबाद होने की ख़बर सुनने की आशा करेंगे। अथवा शरीर-शास्त्र का अभ्यास किये बिनाही यदि कोई चीर-फाड़ अर्थात् जर्राही का काम आरम्भ करदे तो हमें उसकी ढिठाई पर अचम्भा होगा और उसके रोगियों पर दया आवेगी। परन्तु जो मानसिक, नैतिक, और शारीरिक सिद्धान्त इस विषय के आदर्श हैं उनका ज़रा भी विचार न करके—उन पर कुछ भी ध्यान न देकर—बाल बच्चों के पालन-पोषण और विद्याभ्यास आदि कठिन काम यदि माँ बाप शुरू करदें तो हमें न तो उनकी करतूत पर आश्चर्य्य ही होता है और न उनके अन्याय की पात्र उनकी सन्तति पर दयाही आती है।

आरोग्यरक्षा के नियम माँ बाप को न मालूम रहने से उनके बाल-बच्चों को जो भोग भुगतने पड़ते हैं, उनकी जो दुर्गति होती है, उन पर जो आफ़तें आती हैं, उनका ठौर ठिकाना नहीं। हज़ारों बच्चे तो माँ बाप की असावधानी और मूर्खता के कारण पैदा होतेही मर जाते हैं। जो बचते हैं उनमें लाखों अशक्त, निर्बल और जन्म-रोगी होते हैं। और करोड़ों ऐसे नीरोग और सशक्त नहीं होते जैसे होने चाहिएं। अब इन सबको आप जोड़ डालिए तो आपको मालूम हो जायगा कि माँ बाप की नादानी के कारण सन्तति को कितनी हानि उठानी पड़ती है, कितना दुःख सहना पड़ता है, कितनी आपदाओं का सामना करना पड़ता है। लड़कपन में लड़के जिस तरह रक्खे जाते हैं और जिस तरह की शिक्षा उन्हें दी जाती है उसीके अनुसार जन्म भर उनको सुख दुःख मिलता है—यदि अच्छी शिक्षा मिली, यदि वे अच्छी तरह रक्खे गये, तो उन्हे जन्म भर सुख मिलता है, नहीं तो दुःख। पर ज़रा इस बात का तो ख़याल कीजिए कि आज कल लड़के किस तरह पाले पोसे जाते हैं। इस समय हम लोग जिस तरह लड़कों को रखते हैं और जिस तरह की शिक्षा उन्हें देते हैं उसमें यदि एक गुण होता है तो बीस दोष होते हैं। इन बातों का असर हर घड़ी लड़कों पर पड़ता है। लड़कपन में लड़कों के पालन-पोषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शिक्षण में अविचार से काम लेने, और महत्व की बातों को दैवगति या भाग्य के भरोसे छोड़ देने से जो हानि होती है उसका अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। इस तरह का अविचार—इस तरह की बेपरवाही—आजकल यहां सब कहीं प्रचलित है। इन सब बातों पर ख़याल करने से, जो हानि लड़कों को पहुंच रही है उसका थोड़ा बहुत अंदाज़ आपको ज़रूर हो जायगा। कोई इस बात का विचार नहीं करता कि पायदार मज़बूत और ख़ूब गरम कपड़े पहने बिना लड़कों को सरदी में बाहर खेलने कूदने देना, और सरदी के कारण उनके हाथ-पैरों का फटना, अच्छा है या नहीं। पर इसका विचार करना बहुत ज़रूरी बात है; क्यों कि इन इन बातों से लड़कों के भावी सुख दुःख का बहुत बड़ा सम्बन्ध है। इस तरह की बेपरवाही के कारण या तो लड़के बीमार रहा करते हैं, या उनकी बाढ़ रुक जाती है, या काम करने की शक्ति घट जाती है, या तरुण होने पर जितना बल उनके बदन में होना चाहिये उतना नहीं होता। इसका फल यह होता है कि कोई काम अच्छी तरह नहीं हो सकता—उसमें पूरी कामयाबी नहीं होती—और लड़कों के भावी सुख में बाधा आती है। इसका कारण क्या है? हमारा अविचार, हमारी नादानी, हमारी बेपरवाही! और कुछ नहीं। लड़कों को जो एकही तरह का और कम बलवर्द्धक खाना खिलाया जाता है वह क्या उनको सज़ा देने के इरादे से खिलाया जाता है? इस तरह का खाना खाने से, बड़े होने पर, उनका शारीरिक बल ज़रूर कुछ कम हो जाता है और पुरुषत्व के काम करने की योग्यता में भी थोड़ा बहुत विघ्न ज़रूर आता है। क्या लड़कों के लिए कोलाहलकारी और दौड़-धूप के खेल-कूद मना हैं? या बदन पर काफ़ी कपड़े न होने के कारण जाड़े की ऋतु में इस लिए वे बाहर नहीं निकलने पाते कि कहीं उनको सरदी न लग जाय? कुछ भी हो, पर इस तरह घर के भीतर बन्द रहने से उनके आरोग्य में ज़रूर बाधा आती है और उनकी शारीरिक शक्ति भी ज़रूर थोड़ी बहुत क्षीण हो जाती है। तरुण होने पर भी लड़कों और लड़कियों को रोगी और अशक्त देख कर माँ बाप बहुधा अपना दुर्भाग्य या एक प्रकार का ईश्वरीय कोप समझते हैं। अथवा, आज कल लोगों की जैसी बेढँगी समझ है उसके अनुसार, वे यह कल्पना कर लेते हैं कि ये बातें अपने हाथ में नहीं—ये आपदायें बिना कारण ही से पैदा हो गई हैं; या यदि किसी कारण हुई हैं तो उसका पैदा करने वाला ईश्वर है; उसे दूर करना आदमी के बस की बात नहीं। परन्तु इस बात को कौन समझदार आदमी न क़बूल करेगा कि इस तरह की तर्कना पागलपन है? यह निस्सन्देह सच है कि कभी माँ बाप के दुर्गुणों और रोगों का फल सन्तान को भी भोगना पड़ता है, अर्थात् माँ बाप में जो दोष होते हैं वे कभी कभी सन्तान को भी हो जाते हैं; परन्तु बहुधा पालन-पोषण में माँ बाप की नादानी ही के कारण लड़कों को बीमारियां हो जाया करती हैं और फिर जन्मभर उनकी तबीयत अच्छी नहीं रहती। इस सारे दुख-दर्द के, इस सारी निर्बलता के, इस सारी आपदा के, इस सारी उदासीनता के ज़िम्मेदार बहुत करके माँ बाप ही होते हैं। माँ बाप ने अपने बाल बच्चों की जान को हर घड़ी अपने क़ाबू में रखने का ठेका सा ले लिया है—उनको खिलाने, पिलाने और शिक्षा देने का भार उन्होंने हर घड़ी अपने ही ऊपर रक्खा है। पर ज़िन्दगी से सम्बन्ध रखनेवाली जिन बातों में वे, अविचार से भरी हुई आज्ञायें देकर और रुकावटें पैदा करके, बराबर उलट फेर किया करते हैं, उन बातों का ज्ञान प्राप्त करने में उन्होंने बहुत बड़ी निर्दयता की बेपरवाही की है। उन्हें सीखने की ज़रा भी कोशिश उन्होंने नहीं की। आरोग्य-रक्षा और शरीर-शास्त्र के बहुत ही सीधे सादे नियमों का भी ज्ञान प्राप्त न करने के कारण वे अपने बच्चों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरोग्य को—उनके शारीरिक बल को—बराबर क्षीण करते चले जा रहे हैं। हर साल उसे अधिकाधिक कम करते चले जा रहे हैं। इस तरह की निर्दयता और नादानी के कारण वे अपनी सन्तति ही को नहीं किन्तु सन्तति की भावी सन्तति को भी बीमारी के घर और अकाल मृत्यु के मुँह में फेंक रहे हैं।

एक ही शरीर में अनेक आत्मायें।

एक ही शरीर में दो या अनेक व्यक्तियों का जो बोध होता है और उसके समय समय पर जो अद्भुत उदाहरण पाये जाते हैं वे आज कल के विद्वानों के लिए अजीब तमाशे मालूम पड़ते हैं। अमेरिका के हार्वर्ड और येल विश्वविद्यालय के दो अध्यापकों ने बीसवीं सदी की इस नई खोज में बहुत श्रम किया है। उन्होंने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी है। उनका कथन है कि एकही शरीर में भिन्न भिन्न जनों की स्थिति कोई खेल नहीं है; वरन वह मानसिक शक्ति ही का रूपान्तर है। इस विषय पर वे यों लिखते हैं—"एक शरीर में अनेक पुरुषों की सत्ता का बोध कोई नई बात नहीं है; वह सब में होना चाहिए। क्योंकि अनेक क्षणिक-बोधों के समुदाय का नाम मन है"।

ये लोग अपने प्रस्ताव की जाँच आज कल प्रत्यक्ष उदाहरणों के द्वारा कर रहे हैं। बहुत से लोग इसको एक मनमौजी और बेतुकी बात समझते हैं। मेरी भी यही राय है। जो उदाहरण इन लोगों ने दिये हैं उन्हें सर्वसाधारण को हृदयङ्गम कराने के लिए यह लेख सम्पादित किया जाता है।

पादरी हाना का उदाहरण।

जितने उदाहरण दिये गये हैं उनमें सबसे अधिक उपयोगी हाना साहब का एक उदाहरण है। क्योंकि उसमें कही गई बातें मानस-शास्त्रवेत्ताओं ने अपनी आँखों देखी हैं। और यह उदाहरण हाल ही में हुआ है। उसमें समय भी अधिक नहीं लगा। हाना साहब का पहला इतिहास लोग भली भांति जानते थे। और वे अब तक जीवित भी हैं। फिर वे एक पढ़े लिखे आदमी हैं।

१५ अप्रैल सन १८९७ को शाम को गाड़ी पर घर को लौटते समय टामस कारसन हाना नामक पादरी गाड़ी से गिर पड़े। उनके सिर में बहुत चोट आई। वे पढ़े लिखे, धर्मात्मा और कार्य्यतत्पर पादरी हैं। उनके नाना डाक्टर थे, और पिता इँगलैंड छोड़ कर अमेरिका में बसनेवालों में से थे। गाड़ी से गिरने तक जो कुछ उनके विषय में मालूम है उससे यही ज़ाहिर होता है कि वे किसी तरह के रोगी या सनकी नहीं थे।

गिरने का परिणाम।

गिरने के बाद हाना साहब बेहोशी की दशा में उठाये गये। सांस बहुत धीमी चलती थी और जीवन प्रायः समाप्त हो गया सा जान पड़ता था। तीन डाक्टरों ने समझा कि वे मर जायँगे। उनको होश में लाने की कोशिश की गई। वे एकाएक उठ बैठे और पास के एक डाक्टर को उन्होंने ढकेलने की चेष्टा की। डाक्टरों ने समझा कि सरसाम हो गया है, इसलिए वे चारपाई पर बाँध दिये गये। जब वे चित लेटे तब बन्धन खोल दिये गये। उस समय हाना साहब अजीब तरह से ताकने लगे। न तो वे कुछ बोलते थे और न लोगों की बोली ही समझते थे। अब यह जान पड़ा कि हाना साहब तो ग़ायब हो गये और एक बच्चे की आत्मा उनके शरीर में प्रविष्ट हो गया। वे न केवल अपने आप ही को भूल गये किन्तु मामूली चीज़ों के नाम भी भूल गये। उन्हें न कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ पड़ता था, न बोल आता था, न बोझ आदि का ज्ञान होता था। वे हाथ पाँव उठाना और खाना पीना आदि सभी भूल गये। सारांश यह कि पुराने हाना साहब बिलकुल ही लुप्त हो गये और एक सद्योजात बालक उनकी जगह पर आ गया।

बालक।

और बातों में तो हाना साहब बालक ही के समान हो गये; पर उनकी बुद्धि वैसी दुर्बल न थी। यह नया जीव स्वभाव में तो लुप्त हुए हाना ही के समान था। उसकी स्मरणशक्ति भी तेज़ थी और उसमें नक़ल करने की ताक़त भी खूब थी। पीछे से उसने अपनी मानसिक शक्ति के विषय में जो कुछ स्मरण करके कहा वह ध्यान देने योग्य है।

पहले तो कमरे की सब चीज़ें हाना साहब को तसवीर के समान आँख के सामने लटकती सी जान पड़ीं। मानो वे उनकी आँख ही का अंश हैं। उनको रंग का बोध तो हुआ, पर दूरी और मुटाई का बोध न हुआ। पहले उन्होंने आँखें खोलीं; फिर हाथ हिलाये; फिर सिर हिलाया। यह देख कर एक डाकू वहां से खिसका, पर हाना ने समझा कि डाकू का खिसकना उनके हाथ चलाने का फल है। इतने में जब बिना हाथ हिलाए उन्होंने डाकू को हटते देखा तब उन्हें आश्चर्य्य हुआ। तब उन्हें बोध हुआ कि ऐसी भी चीज़ें हैं जो मुझसे सम्बन्ध नहीं रखती हैं और बिना मेरे हिल डुल सकती हैं। कुछ देर बाद हाना को मालूम होने लगा कि वे तीनों डाकू मुझसे भिन्न हैं, पर हैं एकही व्यक्ति। अतएव यदि मैं इनमें से एक को जीत लूं तो तीनों मेरे वश में हो जायँगे। पर वे, हाथ पैर कैसे उठाना होता है, यही भूल गये थे। इस कारण विवश हो कर वे पड़ रहे।

शिक्षा।

हाना ने डाकूरों की बातें करते सुना; पर वे उनकी बातों को समझ न सके। वे उनके शब्दों की नक़ल करने लगे। यह देख सब लोग हँस पड़े। दूसरे दिन उन्होंने फिर तीस चालीस शब्दों को नक़ल की। तीसरे दिन उनको नाशपाती दिखाई गई और उसका नाम बतलाया गया। तब उन्होंने नाशपाती कहना सीखा। वे बार बार नाशपाती नाशपाती कहते थे। इससे लोग उन्हें नाशपाती ला देते थे। उसे वे खा लेते थे; पर नाशपाती के साथ खाने की और कोई चीज़ न आती थी। यह उन्हें बुरा लगता। वे नाशपाती का छिलका तक खाने लगे। यह देख उनको सिखाना पड़ा कि नाशपाती में वे क्या खायँ और क्या न खायँ।

कमरे की दीवार पर लटकती हुई एक तसवीर को छूने की चेष्टा करने पर हाना साहब को दूरी का ज्ञान हुआ। उन्होंने आईने में मुँह को देख कर उसे छूने की चेष्टा की। आईना उन्हें चिकना जान पड़ा। इस पर उनको बहुत आश्चर्य्य हुआ। आईने को उन्होंने उलट दिया। पर जब उनको अपना मुँह न पकड़े मिला तब उन्होंने समझा कि वह कोई ऐसा चित्र है जो हट सकता है।

बालक हाना को यह समझते कुछ समय लगा कि और लोग मुझसे भिन्न हैं। पुरुष-स्त्री का भेद भी उन्हें नहीं ज्ञात था। एक बार एक बच्चे को देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य्य हुआ। क्योंकि वे समझते थे कि लोग उन्हींके समान बड़े होते हैं। वे अपने को अल्पवयस्क समझते थे। अपनी माता से उन्हें कुछ भी स्नेह नहीं था।

हाना के शरीरस्थ इस बालक ने शब्द उच्चारण करना शीघ्र सीख लिया। एकही सप्ताह में वह थोड़ा सा पढ़ने भी लगा, पर जो कुछ उसने पढ़ा उसे दुबारा ही सीखना पड़ा। उसे ईश्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अपने पिता का ज्ञान न था। कुछ दिन बाद उसने एक पत्र लिखा। उसमें कोई ग़लती न थी। जो शब्द एक बार वह सुनता था उसे भूलता न था। *

पुराने हाना।

अब प्रश्न यह है कि पहले हाना कहाँ गये? क्या दूसरे हाना कोई नये पुरुष थे जो पहले हाना के शरीर में रहने आये थे। उन दोनों में सिर्फ़ इतना सम्बन्ध था जितना किसी ख़ाली घर में टिकनेवाले बेगाने आदमी और घर के मालिक में होता है। एक तमाशा देखिए। पुराना हाना सपना देखने लगा। और जब उसने अपने सपने सुनाये तब उसके पिता ने देखा कि वे सपने उसकी युवावस्था में देखी गई चीज़ों के सम्बन्ध में थे। उसने सपने में देखे हुए स्थानों के नाम बतलाये; पर यह बात वह न जान सका कि वे स्थान उसने पहले भी कभी देखे हैं या नहीं। इस प्रकार अनेक पुराने स्वाप्निक सङ्केत पाने पर पहले हाना के पाने के लिए यत्न आरम्भ किये गये। पहला हाना यहूदी भाषा जानता था; पर दूसरा नहीं जानता था। यहूदी भाषा में एक पद्य का पूर्वार्ध उसे सुनाया गया। इस पर वह एकाएक बोल उठा कि, हां मुझे यह स्मरण है। फिर वह आद्योपान्त पूरा पद्य सुना गया। पर तुरन्त ही सब पद्य वह फिर भूल गया। लोगों ने पूछा कि तुम्हें क्या मालूम पड़ा? उसने कहा, मैं बहुत डर गया था। ऐसा बोध होता था कि कोई दूसरा उसके ऊपर अधिकार जमा रहा है। उसने कहा, मैं नहीं जानता मैं क्या बक गया। कुछ समझ नहीं सका। कुछ काल के अनन्तर एक पद्य, जिसे वह पहले अकसर गाया करता था, पढ़ा गया। इस पर उसने दो नाम लिए। पर वे किसके नाम हैं यह बात वह न बतला सका। पता लगाने से मालूम हुआ कि ये नाम उन स्त्रियों के हैं जिनके सामने उसने, तीन वर्ष पहले, यह गीत गाया था। इससे यह ज़ाहिर हो गया कि पहला हाना मर नहीं गया था, किन्तु कहीं सो रहा था

पहले हाना का पुनर्जीवन।

कुछ दिन बाद, हाना साहब न्यूयार्क भेजे गये। वहां उनके शरीर के भीतर सोये हुए व्यक्ति को अच्छी तरह जगाने का यत्न होने लगा। वे एक होटल में ठहराये गये। होटल ख़ूब सजा था। मनोहर बाजे बज रहे थे। गाना भी हो रहा था। तीन घण्टे के अनन्तर वे सो गये। जब वे उठे, अपने भाई से उन्होंने पूछा कि मैं कहां हूं? दूसरा हाना ग़ायब हो गया; और पहला हाना फिर प्रकट हुआ। कुछ हफ़्ते पहले गाड़ी से गिरने की बात को छोड़कर बीच की और सब बातों का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। उन्होंने समझा कि मुझे कल ही चोट लगी थी और रात भर मैं सोया था। शाम को उसने तम्बाकू पी थी। उसका गन्ध उसे मुँह में मालूम हुआ। इस पर उसे आश्चर्य हुआ।

---

* मदरसों के असिस्टएट इन्स्पेक्टर पण्डित दीनदयालु तिवारी का सबसे बड़ा लड़का, जो इलाहाबाद में एम० ए० क्लास में पढ़ता था, कुछ दिन हुए घोड़े से गिर पड़ा। सिर में सख़्त चोट लगी। इस कारण उसके मस्तिष्क में कुछ विकार पैदा हो गया। बहुत दिन तक बेहोशी की हालत रही। अनेक प्रयत्न करने पर वह कुछ बोलने लगा। पर जो कुछ पढ़ा लिखा था वह सब भूल गया। एक भैंस सामने देख पड़ी। उसका नाम पूछा गया। पर लड़के को उसका नामही स्मरण न हुआ। उसके पिता ने पूछा कि "हम कौन हैं"? इस पर लड़के ने कहा—"आप टामस हैं"! इस समय (२८ मई, ०५) इस लड़के को रीडर का एक सबक़ रोज़ पढ़ाया जाता है। मानो उसकी शिक्षा नये सिरे से फिर शुरू हुई है। धीरे धीरे स्मृति ठीक होती जाती है। आशा है लड़का शीघ्र अपनी पुरानी स्थिति को पहुँच जाय। मस्तिष्क ही में ज्ञानागार है। धक्के से उसमें व्यतिक्रम होने से यह दशा होती है। सं० स०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि पहले हाना ने बरसों से तम्बाकू नहीं पी थी। कोई ४५ मिनट तक तो यह दशा रही। पीछे वह फिर सो गया। जागने पर पहला हाना गायब हो गया और दूसरा फिर शरीर में प्रविष्ट हो आया।

हानाओं की लड़ाई।

४५ मिनट तक हाना २६ वर्ष के स्मरण वाला पुरुष रहा। पर बाद में वह ६ सप्ताह के ज्ञान वाला मात्र शेष रहा। डाक्टरों ने तरह तरह की दवाइयों का प्रयोग करना आरम्भ किया। एक बार उन्होंने थोड़ी सी भंग दी। रात भर सोने के अनन्तर पहला हाना फिर जागा। उसके ठहराने की अनेक चेष्टायें हुईं। कुछ काल तक वह सोया। जब वह जगा तब दूसरा हाना हो गया। उसे लोग नाट्यशाला में ले गये और शराब पिलाई। फिर पहला हाना जगा। कुछ काल तक वह रहा। एक बार उसे गाड़ी पर चढ़ा कर लोग गिरजा घर ले जाते थे कि वह गाड़ी ही पर कुछ सो सा गया और दूसरा हाना होकर उठा। यों ही कभी पहला, कभी दूसरा, हाना प्रकट होता रहा। अन्त में उसका जी घबरा उठा। उसे उसका जीवन बोझ मालूम होने लगा। कभी कुछ, कभी कुछ, होते रहने से हाना बहुत व्याकुल हुए। वे यह भी स्थिर न कर सके कि वे पहले या दूसरे हाना हो कर रहें। क्योंकि दो में से एक तो होना ही पड़ेगा। पर उन्हें इससे उतना क्लेश न होता था जितना कि एक दशा में दूसरी दशा का स्मरण करने से होता था। वे चाहते थे कि दूसरी का स्मरण न हो। पर होता ज़रूर था।

अन्तिम परिणाम।

एक कारण कठिनाई का और था कि पहला हाना जिन लोगों को जानता था दूसरा उन्हें पहचानता भी न था। दूसरे ने जिनसे प्रतिज्ञा की थी पहला उनके नाम से भी वाक़िफ़ न था। वे दोनों मानो किसी व्यवसाय में साझी के समान थे। कुछ काल एक साझी काम चलाता था कुछ काल दूसरा। दोनों का एक ही शरीर में रहना पहले तो असम्भव सा प्रतीत हुआ, पर कुछ समय बीतने पर दोनों एक ही में रह गये। और बीच के समय की त्रुटि भी न बोध होने लगी। अर्थात् उनका यह संस्कार जाता रहा कि हमें ६ सप्ताह सोते बीते। वे समझने लगे कि हम दो आदमी एक ही घर में रहते हैं और यह भी उन्हें स्मरण होने लगा कि हमारा अमुक समय अमुक दशा में बीता।

एन्सेल बूर्न का उदाहरण।

हाना की कथा से इसमें इतना ही भेद है कि इसमें दो व्यक्तियों ने एक शरीर में रह कर परस्पर एक दूसरे को नहीं जाना।

१७ जनवरी सन् १८८७ को रोड्स नामक शहर के निवासी एन्सेल बूर्न ने एक बैङ्क से कई हज़ार रुपये, कुछ ज़मीन ख़रीदने के लिए, निकाले और उन्हें लेकर वे एक गाड़ी पर सवार हुए। उस समय से लेकर १४ मार्च तक उनका क्या हुआ कुछ पता नहीं चला। वे ख़ुदही नहीं जान सके। एक आदमी ने, जिसने अपना नाम ए० जे० ब्राउन बतलाया, एन्सेलबूर्न के शरीर को अमेरिका पहुंचाया और उन रुपयों से मिश्री का गोदाम खोला। १४ मार्च को ए० जे० ब्राउन ग़ायब हो गया और एन्सेल बूर्न सो कर उठा। वहां वह कैसे आया यह उसे विदित न था। उसे बैङ्क से रुपये लेकर चलने तक की सिर्फ़ याद थी। उसका वज़न प्रायः १० सेर कम हो गया था। लोगों ने पहले तो उसे पागल समझा, पर पीछे से घर पहुंचाया। तीन साल बाद उस पर हिपनाटिज़्म अर्थात् प्राणपरिवर्तन की प्रक्रिया की गई। तब ए० जे० ब्राउन लौट आया। उसने कहा कि मेरा गोदाम क्या हुआ? मैं एन्सेल बूर्न और उनकी बीबी को नहीं जानता। यह क्या बात है, किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की समझ में नहीं आई। अन्त तक एन्सेल बूर्न, और ए० जे० ब्राउन ने परस्पर एक दूसरे को नहीं पहचाना। हिपनाटिज़्म की सहायता से ही ए० जे० ब्राउन प्रकट और लुप्त होते रहे।

एक कसेरे का उदाहरण।

सन् १९०४ में डाक्टर आसवर्न ने एक अख़बार में लिखा कि कुछ दिन हुए एक धनवान् कसेरा एक दिन शाम को हवा खाने के लिए निकला और एकाएक ग़ायब हो गया। दो वर्ष बाद एक और देश में एक कसेरा अपने औज़ार फेंक कर चौंक पड़ा। उसने कहा मैं यहां कैसे आया? मेरा यह नाम कैसे पड़ा? मैं तो अमुक आदमी हूं जो दो वर्ष पहले खो गया था। दो वर्ष तक कौन प्रेत उस पर सवार था, कुछ नहीं मालूम हुआ। इन दो वर्षों की बातें उसे बिलकुल याद नहीं।

डाक्टर डाना के आदमी का उदाहरण।

सन् १८९४ की "साईकालोजिकल रिव्यू" नामक-पुस्तक में डाक्टर डाना ने एक रोगी का हाल लिखा है कि वह एक बार धुवें के कारण बेहोश हो गया। जब होश में आया तब हाना के समान वह एक बालक की सी बुद्धि का आदमी हो गया। उसे तीन महीने तक लिखना पढ़ना सीखना पड़ा। तीन महीने बाद उसकी स्त्री उसके आरोग्य होने से निराश होकर चिल्ला कर रो उठी। बस उसी रात को उसके सिर में दर्द हुआ और वह सो गया। सबेरे वह पूर्ववत् हो गया। उसे उस बालक का स्मरण बिलकुल जाता रहा। उस बालक ने तीन महीने में हाना की अपेक्षा पढ़ना लिखना कुछ कम सीखा।

सैली नामक कुमारी का उदाहरण।

बोस्टन के डाक्टर नार्टन प्रिंस लिखते हैं कि एक सुशिक्षिता और कम बोलने चालनेवाली कुमारी स्त्री पर उन्होंने प्राणपरिवर्तन की क्रिया का प्रयोग किया। परिवर्तित दशा में उसने अपनी आँखें मलीं और चाहा कि वे खुल जायँ। आँखें खुल गईं और वह एक दूसरे ही व्यक्ति के अधीन बोध हुई। वह व्यक्ति अपना नाम सैली बताने लगी। यह नई व्यक्ति बड़ी नटखट और चिबिल्ली थी। पुस्तकों से यह घृणा प्रकट करती थी। पर प्रयुक्त स्त्री धर्मात्मा और सच्चरित्र थी। पहले सैली कुछ ही मिनट ठहरती थी। पर पीछे से वह कई दिनों तक ठहरने लगी। सैली प्रयुक्त स्त्री के हृदय के भाव सब जानती थी। उसकी चिट्ठियों के आशय लिखकर वह रख जाती थी और उसके रक्खे हुए टिकट चुरा लेती थी। कभी कभी उसके जेब में वह मकड़ी का जाला या साँप की केंचुली रख देती थी। सैली न केवल उसके भावों को ही जान लेती थी किन्तु उसके भावों पर अधिकार भी रखती थी और उसके साथ बुरी बुरी दिल्लगी करके उसे क्लेश पहुँचाया करती थी।

टूई और सिपाही के उदाहरण।

अमेरिका में एक विद्याव्यसनी कुमारिका थी। उसने पढ़ने में बहुत श्रम किया। इससे १८ वर्ष की उम्र में उसकी तबीयत बिगड़ गई। वह रोगी हो गई। कुछ दिन बाद उसके ऊपर एक टूई नामक स्त्री प्रकट होने लगी। वह रोगी थी। पर टूई प्रसन्नचित्त और बलिष्ठ मालूम होती थी। टूई मनमाना आती जाती थी। जाते समय वह पत्र लिख कर रख जाती थी जिससे उस रोगी कुमारिका का चित्त टूई के चले जाने पर भी प्रसन्न रहता था। कुछ दिन बाद टूई ने कहा मैं चली जाऊंगी और एक बाय नामक व्यक्ति मेरे स्थान पर आवेगा। बाय आया। वह उन दोनों से परिचित हो गई। पर टूई और बाय तभी तक ठहरे जब तक कि वह यथेष्ट आरोग्य नहीं हुई।

ऐसे ही एक सिपाही की कथा है जो भिन्न भिन्न व्यक्ति होकर दो तीन दफ़ा फ़ौज में भरती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ और होश में आने पर भाग जाने का अपराधी ठहराया गया। पर अब और ऐसी कथायें देने की ज़रूरत नहीं। इस विषय के उदाहरण बहुत हुए। जिस पुस्तक* के आधार पर यह लेख लिखा जाता है उसके कर्ता की अब राय सुनिए।

ग्रन्थकर्ता की राय।

ग्रन्थकर्ता की राय में मनुष्य का मन एक चीज़ नहीं है। आत्मा से वह पृथक् है। वह 'अहं' का बोधक नहीं है। अनेक क्षणिक बोधों के समूह का नाम मन है। इन्हीं अनेक बोधों के यथोचित योग को हम व्यक्ति या जन या आप कहते हैं। हमारी उपमा बाज़ार से दी जा सकती है। सवेरे के बाज़ार की दशा शाम को और ही कुछ हो जाती है। बाज़ार तो वही रहता है पर वहां आदमी और आ जाते हैं। इसी प्रकार हमारे बोधों का परिवर्तन होता रहता है। उन पर एक व्यक्तित्व उसी तरह रहता है जैसे मनुष्य-जाति पर उसका एक जातित्व रहता है। इन्द्रियों से अनुस्यूत तन्तुओं और भावों के सम्पर्क से मानसिक क्रियाओं की उत्पत्ति होती है।

ग्रन्थकार का आशय एक उदाहरण से और स्पष्ट हो जायगा। मन या व्यक्ति को एक स्वतन्त्र राज्य समझो। जैसे स्वतन्त्र राज्य में बहुत आदमी रहते हैं पर उनका समुदाय मिलकर वह एक ही है; उसी प्रकार क्षणिक बोध अनेक हैं, पर उन सबका समुदाय मन एक ही है। राज्य के भिन्न भिन्न विभाग और अधिकारी अनेक हैं। मानसिक बोधों के विभाग और दशायें भी अनेक हैं। जब तक राज्य के आधारभूत अधिकारी यथास्थित हैं तब तक एक राज्य है। पर जब अधिकारियों में परिवर्तन होता है तब वे उस राज्य को पूर्ववत् नहीं रहने देते। वे नये नये नियम बनाते हैं और वही राज्य और प्रकार का हो जाता है। इसी तरह मानसिक बोधों के समुदाय में परिवर्तन होने पर मनुष्य भिन्न व्यक्ति सा प्रतीत होता है। जैसे राज्य में अधिकारियों का परिवर्तन प्रकृत अवस्था में न होकर विद्रोह या शत्रु के आक्रमण आदि होने पर होता है वैसे ही मानसिक व्यक्ति का परिवर्तन भी प्रकृत अवस्था में न होकर रोग, चोट, प्राणपरिवर्तन की क्रिया अथवा नशीली चीज़ों के प्रयोग आदि से होता है।

सच क्या है?

लेखकों के कथन में कुछ सत्य ज़रूर है, पर वे उसे बहुत अधिक खींच ले गये हैं। यदि उनका कहना सत्य मान लिया जाय तो अपढ़ गँवारों का विदेशी भाषा बोलना, जैसा कि कभी कभी देखने में आया है, कैसे ठीक होगा? मन ने जिन बोधों को कभी नहीं पाया वे (विदेशी भाषा बोलना आदि) कैसे व्यक्त हो सकते हैं। हिपनाटिज़्म् अर्थात् प्राणपरिवर्तन की क्रिया से ऐसी अनेक प्रकार की विलक्षण बातें देखने में आई हैं। लंडन में एक बार हिपनाटिज़्म् की क्रिया से प्रयुक्त एक मनुष्य ने एक लेख लिखा। उसे कोई न पढ़ सका। अजायब घर में भी किसीसे एक अक्षर भी न पढ़ा गया। कुछ दिन बाद एक जापानी ने उसे बहुत पुरानी जापानी भाषा का लेख बतलाया और पढ़ कर उसका अनुवाद कर दिया। अब यदि मन बोधों का समुदाय है तो यह पुरानी जापानी लंडन के आदमी ने कब, कहां और कैसे पढ़ा? बहुत सी दशाओं में देखी हुई चीज़ ही देख पड़ती है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता; पर सर्वदा ऐसा ही होता है। अदल बदल कर प्रकट होनेवाले व्यक्तियों में भी ग्रन्थकार का सिद्धान्त संघटित नहीं होता।

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनमें मन को अनेक बोधों का समुदाय न मान कर ऐसा मानना चाहिए कि मनुष्य एक जीवधारी है। उसमें मन

* इस पुस्तक का नाम है—"Multiple Personality"। इसे बोरिस सीरिस, एम०ए०, पी०एच०डी०, और सीमोन गुडहार्ट ने मिलकर लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी एक इन्द्रिय है। वही सब बोधों को ग्रहण करता है। यदि ऐसा न माना जाय तो सैकड़ों फ़ोटो उतारनेवाले फ़ोटोग्राफ़र को भी फ़ोटोग्राफ़ों का समुदाय कहना चाहिए। पर फ़ोटोग्राफ़र फ़ोटोग्राफ़ों का समुदाय नहीं है; किन्तु उनका एकत्र करनेवाला है। इसी तरह मन बोधों का समुदाय नहीं; किन्तु ग्रहण करनेवाला है। दो व्यक्तियों के होने का कोई पक्का प्रमाण नहीं है। होना के उदाहरण से इतना ही सिद्ध होता है कि चोट लगने से मन अपनी पूर्व-संग्रहीत भावनाओं को स्मरण नहीं कर सकता है, क्योंकि भावनाग्राहक तन्तुओं में विकार पैदा हो जाता है। यही बात बाक़ी के उदाहरणों का भी कारण है। संस्कार मन को होता है, और संस्कारों के चित्र भी मन ही में रहते हैं। प्रयोजन पड़ने पर उनका स्मरण हो आता है। बहुत दिन की बात हो जाने, या रोगादि से मन के दुर्बल हो जाने, पर उनका स्मरण जाता रहता है। ध्यान देकर देखी हुई वस्तु बहुत समय बीतने पर भी याद आ जाती है। चोट आदि लगने से मन में विकार पैदा हो जाता है। इससे मन होना के समान, बिलकुल बालक का ऐसा, हो जाता है। और प्रायः सब सांसारिक बातें, हाथ पैर हिलाना आदि, उसे फिर से सीखना पड़ता है। मन पर संस्कारों के चित्र से बने रहते हैं। चित्त के संयोग से चित्र प्रत्यक्ष हो जाते हैं।

बिना पुराने संस्कार के कोई बात स्मरण नहीं हो सकती। ऊपर जो जापानी लेख का उदाहरण दिया गया है उस विषय में यदि पूरा पता लगाया जाय तो मालूम होगा कि हिपनाटिज़्म् करनेवाला वा प्रयुक्त जन अवश्य किसी समय पुरानी जापानी भाषा जाननेवाले से मिला होगा।

मधुमङ्गल मिश्र।

हमारा अधःपतन।

शङ्कर सुखमूल शोकहारी।
हे रुद्र त्रिशूल शक्तिधारी॥
टुक देख दयालु न्यायकारी।
गतगौरव दुर्दशा हमारी॥ १॥

श्रेयस्कर सत्ययुग कहाया।
अधिकार अधर्म ने न पाया॥
समझी श्रीराम की कहानी।
त्रेता की नीतिरीति जानी॥ २॥

द्वापर के अन्त की लड़ाई।
बोरों के वैर की बड़ाई॥
हारे, पर हाथ कुछ न आया।
जीते फल सर्वनाश पाया॥ ३॥

आया कलिकाल कोप जब से।
उत्पात उठे अनेक तब से॥
उद्यम के प्राण ले रहा है।
दुर्दैव दरिद्र दे रहा है॥ ४॥

याजक न रहे, न सिद्ध योगी।
सम्राट् रहे, न राजभोगी॥
व्यापार विशेष कम रहे हैं।
कोरे कङ्गाल हो रहे हैं॥ ५॥

आचार, विचार, धर्मनिष्ठा।
प्रणपालन प्रेम की प्रतिष्ठा॥
विद्या, बल, वित्त सब कहां हैं।
विज्ञान-विनोद अब कहाँ हैं॥ ६॥

खो बैठे धर्म-धीरता को।
सम्वित्, सन्तोष, वीरता को॥
निर्मल निधि न्याय की न भावै।
सुविधा न सुधार की सुहावै॥ ७॥

अगणित अनमोल ग्रन्थ खोये।
गड़बड़ कर वेद भी विगोये॥
इतिहास रहे न गुरुजनों के।
दर्शन हैं शेष दर्शनों के॥ ८॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष की ज्योति जगमगाती।
भूगोल खगोल को जगाती॥
उतरी ग्रहवेध की नली में।
डूबी अब जन्मकुंडली में॥ ९॥

वह योग-समाधि मोदकारी।
वह आयुर्वेद रोगहारी॥
जाने जिनके न अंग पूरे।
अब योगी, वैद्य, हैं अधूरे॥ १०॥

पढ़ते हैं वेद को न शर्म्मा।
लड़ना जानें न वीर वर्म्मा॥
गिन गिन गाड़ें न गुप्त धन को।
कोसें सब दास दासपन को॥ ११॥

कविराज समाज में न बोलें।
प्रतिभाशाली उदास डोलें॥
गुणियों के मुखसरोज सूखे।
फिरते हैं शिल्पकार भूखे॥ १२॥

शृङ्गार उतार भूषणों के।
उगले दुर्भाव दूषणों के॥
कविता रसभंग आजकल की।
हो जाय कहीं न और हलकी॥ १३॥

जितने मन्वादि के कथन हैं।
कर्तव्य-करील के छदन हैं॥
अब जो करतूति में भरी है।
उस विधि की जड़ बिरादरी है॥ १४॥

जो बात नई निकालते हैं।
भोलों की भूल टालते हैं॥
भटकें वे हाय रोटियों को।
चिथड़े न मिलें लँगोटियों को॥ १५॥

पाखण्ड भरी पवित्रता है।
छल बल के साथ मित्रता है॥
अस्थिर मन घर घमंड का है।
डर है तो राजदंड का है॥ १६॥

बकने को व्याकरण अलम है।
लड़ने को न्याय भी न कम है॥
विद्यावारिधि उपाधि पाई।
अब शेष रही न पंडिताई॥ १७॥

मत-भेद-पसार फूट फैली।
बिन मेल रही न एक शैली॥
भागे सुख भोग, रोग जागे।
बड़भागी हो गये अभागे॥ १८॥

उपदेश नहीं निकल रहे हैं।
कटुभाषण बाण चल रहे हैं॥
मनमाने पक्ष अड़ रहे हैं।
प्रामादिक लेख लड़ रहे हैं॥ १९॥

व्यभिचारी पेट के पुजारी।
बन बैठे बाल-ब्रह्मचारी॥
मिथ्या सब "सोऽहमस्मि" बोलें।
साकार अनेक ब्रह्म डोलें॥ २०॥

बच्चों के तेजहीन बच्चे।
कच्चे, व्यवहार के न सच्चे॥
ये भीरु भला न कर सकेंगे।
थोड़े दिन पेट भर सकेंगे॥ २१॥

बिधवा रिस रोक रो रही हैं।
लाखों कुलकानि खो रही हैं॥
जारों के गर्भ धारती हैं।
जनती हैं और मारती हैं॥ २२॥

भूखे पशु पोच लट रहे हैं।
देखो बिन काल कट रहे हैं॥
गोकुल में शोक छा रहा है।
हा याद अशोक आ रहा है॥ २३॥

घी दूध दही सदैव खाते।
सौ में दो चार भी न पाते॥
सब तीत सनेह की निचोड़ी।
कुलियों ने छाछ भी न छोड़ी॥ २४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों जी बेजोड़ ब्याज खाना ।
दीनों को रात दिन सताना ॥
समझे हैं जो सुशील इनको ।
कहते हैं वे कुशील किनको ॥ २५ ॥

जीवन भर जी लगाय लोगो ।
मन भाये भव्य भोग भोगो ॥
कहते हैं माल मस्त ऐसा ।
किसका अन्याय न्याय कैसा ॥ २६ ॥

जल का कर बीज ब्याज पोता ।
भूलें न किसान भूमि जोता ॥
ऊंचे खलियान डालते हैं ।
तौभी बस पेट पालते हैं ॥ २७ ॥

परदेशी माल आ रहे हैं ।
देशी कल्दार जा रहे हैं ॥
देखा जिनका न ठीक लेखा ।
हमको पर कुछ नहीं परेखा ॥ २८ ॥

विज्ञापन काम दे रहे हैं ।
वी. पी. पी. दाम दे रहे हैं ॥
लंठों की लूट मच रही है ।
पूँजी भरपेट पच रही है ॥ २९ ॥

कितने ही राजकर्मचारी ।
जिनके कर बाग है हमारी ॥
वेतन भरपूर पा रहे हैं ।
तिसपर भी घूँस खा रहे हैं ॥ ३० ॥

झंडा इसलाम ने उड़ाया ।
सिंहासन सिंह से छुड़ाया ॥
लूटे घर घेर घेर मारे ।
प्यारे कुल कट गये हमारे ॥ ३१ ॥

जो वैदिक धर्म खो चुके हैं ।
मोमिन मशहूर हो चुके हैं ॥
वे भाई भक्त भूल के हैं ।
प्यारे न ख़ुदा रसूल के हैं ॥ ३२ ॥

गोरे गुरु देव शिष्य काले ।
दोनों बन मुक्ति के मसाले ॥
अपनाय हमें सुधारते हैं ।
इंजील पढ़ाय तारते हैं ॥ ३३ ॥

विद्यालय दो प्रकार के हैं ।
भंडार परोपकार के हैं ॥
कहती है कान खोल शिक्षा ।
वेतन लोगे कि धर्मभिक्षा ॥ ३४ ॥

इँगरेज़ी खिलखिला रही है ।
उरदू ख़ुशगुल खिला रही है ॥
दोनों से नागरी बड़ी है ।
तौभी चुपचाप ही खड़ी है ॥ ३५ ॥

सीखे हम अङ्क बीज रेखा ।
फल भिन्न सिलेट से न देखा ॥
भूगोल खगोल जानते हैं ।
पर शब्द प्रमाण मानते हैं ॥ ३६ ॥

खाई विज्ञान की दुलत्ती ।
रस चाखा पर न पाव रत्ती ॥
विद्या की कर चुके कमाई ।
रोते हैं नौकरी न पाई ॥ ३७ ॥

बैठे चुपचाप वैद्यवर हैं ।
बोलें न हकीमजी किधर हैं ॥
सतिये जर्राह बेख़बर हैं ।
सबके आधार डाक्टर हैं ॥ ३८ ॥

झगड़ालू लड़ झगड़ रहे हैं ।
अभियोग अनेक अड़ रहे हैं ॥
न्योछावर न्याय की न देगा ।
तौ किसको कौन जीत लेगा ॥ ३९ ॥

कंगाली जी जला रही है ।
मँहँगी बरछी चला रही है ॥
भूभक्षक मुख पसारती है ।
मारी दिन रात मारती है ॥ ४० ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहों में स्यार गिन गये हैं।
सबके अधिकार छिन गये हैं॥
यदि हैं होती शक्ति तौ न मरते।
चूहों के कान हम कतरते॥ ४१॥

लंडन के ऐडवर्ड प्यारे।
स्वामी सम्राट् हैं हमारे॥
खलदल के बल निकालते हैं।
निज सुत की भाँति पालते हैं॥ ४२॥

राजा नवाब सेठ सारे।
हलचल से बच गये बिचारे॥
बेखटके फूल फल रहे हैं।
अच्छे प्रभु पाय पल रहे हैं॥ ४३॥

धरणी धन धाम दे चुके हैं।
विस्तृत विश्राम ले चुके हैं॥
शुभचिंतक राजभक्त हम हैं।
अनुरक्त गृही विरक्त हम हैं॥ ४४॥

जिनको सब देश जानते थे।
अपने शिरमौर मानते थे॥
तिनके हम हाय वंशधर हैं।
गुणहीन मलीन तुच्छतर हैं॥ ४५॥

सुखसाधन हीन हो चुके हैं।
अवनति के बीज बो चुके हैं॥
अब क्या हम और भी गिरेंगे।
अथवा फिर दैव दिन फिरेंगे॥ ४६॥

हा आग अधर्म की जली है।
आँधी अन्धेर की चली है॥
यों तौ सर्वस्वमेध होगा।
इस विधि का कब निषेध होगा॥ ४७॥

कीचड़ में केहरी पड़ा है।
गोदड़ दल घात में खड़ा है॥
गिद्धों ने घाव कर लिये हैं।
कौओं ने पेट भर लिये हैं॥ ४८॥

ऊंचा चढ़ना अचेत गिरना।
उन्नति की ओर फिर न फिरना॥
देखा दुर्दृश्य आज ऐसा।
प्रभु का यह प्यार कोप कैसा॥ ४९॥

भारत की जो दशा रही है।
कविता ने सो कथा कही है॥
अनुकूल सरस्वती रहैगी।
तौ आगे और कुछ कहैगी॥ ५०॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

राजपूतनी।

पहिला परिच्छेद।

राजपूताना के एक पहाड़ी देश में वीरनगर नामक एक गांव है। वहां भीलसिंह नामी एक मनुष्य, जो पहिले सेनापति थे, इस समय वृद्ध होकर घर बैठे हैं। उनके शरीर में लगे हुए घावों के चिन्ह, "जननी जन्मभूमि" की जय-पताका के समान अभी तक विद्यमान हैं। वृद्ध के घर में एक मात्र कन्या पन्ना और उनकी वृद्धा स्त्री हैं।

वीरनगर में आज वीराष्टमी के मेले के कारण बड़ी धूम मची हुई है। राजपूताना के कुल राजपूत एकत्र हुए हैं। यह वीरों का मेला है। यहां केवल बाज़ार में चीज़ें नहीं बिकतीं; किन्तु आई हुई वीरमंडली यहां पर अपनी वीरता दिखाती है। कोई तलवार की लड़ाई में, कोई मल्लयुद्ध में, कोई धनुर्विद्या में अपने अपने पराक्रम और रण-कौशल का परिचय देकर गौरव से भूषित होता है। पन्ना इस मेले को देखने आई है। मेला समाप्त होने के पहिले ही बड़ी भयानक आंधी उठी। एकत्र हुए मनुष्य सब तितर बितर हो गये। सभी प्राण बचाने के लिये भागने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु पन्ना ऐसे कुसमय में भी आहिस्ता आहिस्ता पैर बढ़ाती हुई चलने लगी। वह बहुत हताश हो गई थी। पिता के पास मल्लयुद्ध सीख कर उसके भुजाओं में जो बल था उसका आज थोड़ा सा परिचय देने का उसने विचार किया था, सो अवसर नहीं मिला। इसीसे प्रकृति के ऊपर वह बहुत चिढ़ गई थी। वह चाहती थी कि प्रकृति को युद्ध में ललकार कर उससे लड़े। जब सब भागने लगे, राजपूताना के असंख्य वीरगण पराङ्मुख हो कर चले, तब वह राजपूत-वन-कुसुम-कलिका एक बार ही हँस उठी। वह हँसी बड़ी ही कठोर, बड़ी ही व्यङ्गपूर्ण थी। वह हँसी हँसकर मानो ऊंचे स्वर से कहना चाहती थी—"राजपूत-कुलतिलक, धिक्कार है तुम लोगों की वीरता पर!" चलते चलते पन्ना ने अपने उन्नत विशाल वक्षस्थल और सुडौल गोल बलवान भुजाओं की ओर, बिजली की चमक में, एक बार तीव्र दृष्टि से देखा।

अकस्मात् पन्ना ने सुना, जैसे कोई करुणस्वर से चिल्ला उठा—"हम असहाय और अन्धे हैं, हमारी रक्षा करो।" उस स्वर से व्यथित होकर पन्ना ने चिल्लाकर कहा—"तुम चाहे जो हो, निर्भय रहो, मैं तुम्हारी रक्षा करूंगी।" पन्ना की आश्वासनवाणी आकाश-भेद कर गई। उसने देखा कि समीप में एक सुन्दर युवा पुरुष खड़ा है। उसके सिर पर पगड़ी है। वह बहुमूल्य कपड़े पहने हुए है। उस मूर्त्ति को देखकर पन्ना के सब अङ्ग कांप उठे। परन्तु उसी क्षण अपने को सम्हाल कर वह विपद्ग्रस्त पुरुष के समीप पहुंची और बोली—"संकोच मत कीजिये; क्या हुआ है मुझ से साफ़ साफ़ कहिये; मैं प्राण देकर भी आपकी सहायता करूंगी।"

पथिक को, पन्ना के आश्वास-वाक्य से कुछ साहस हुआ। वह कहने लगा—"हम अन्धे हैं; मेले में आये थे। आंधी के कारण सब साथी लोग न जानें कहां छूट गये हैं। इससे हम असहाय हो गये हैं।"

पन्ना ने पथिक का हाथ पकड़ कर कहा—"आप निडर होकर हमारे साथ चलिये"।

अन्धे केवल देख नहीं सकते; परन्तु उनकी स्पर्शेन्द्रिय इतनी तीव्र होती है कि चार आँखों के मिलने से नेत्रवाले को जितना सुख सम्भोग नहीं होता, हस्तस्पर्श से उनको उससे भी अधिक अनुभव होता है। पन्ना के हस्तसंयोग से पथिक के शरीर भर में बिजली की धारा दौड़ गई। पन्ना का हाथ कांपता था। पथिक इसे समझ गया। पन्ना ने पूछा—"आपका परिचय क्या मैं पा सकती हूं?"

अन्धे ने कहा—"मेरे पिता अम्बर के एक नामी धनाढ्य और वीरपुरुष हैं। मैं उनका इकलौता पुत्र हूं। पिता माता दोनों जीवित हैं। प्रायः दो वर्ष हुए मेरे दोनों नेत्र शीतलादेवी की कृपा से जाते रहे। नेत्र खुले रहने पर भी एकबारही दृष्टिहीन हो गये हैं। कितनी चिकित्सा कराई; परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। मेरा नाम अमरकुमार है"।

पन्ना के सब अंग कांप उठे। कुछ काल तक चुप रह कर वह बोली—"हमारे घर के समीप ही एक संन्यासी रहते हैं। वे अनेक प्रकार के औषध जानते हैं। उन्होंने बहुतों को आराम भी किया है। उनको दिखाने से अच्छे हो जाने की आशा है। पर, हां, आप देख नहीं सकते तो मेले में क्यों आये थे?"

पथिक ने थोड़ा हँसकर कहा—"मैं नेत्र से नहीं देखता, यह बात सच है; परन्तु वीरसमागम में उपस्थित रहना भी मुझे सुख देता है। वीर लोग जब दुन्दुभि का शब्द करते हैं, उस समय मेरा मन कैसा आनन्दित होता है, मैं वर्णन नहीं कर सकता"।

युद्ध के बाजे के शब्द से राजपूतवीर की नस नस में कैसी बिजली की धारा दौड़ जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो पन्ना भली भांति जानती थी। फिर भी वह विनय-नम्र-स्वर से बोली—"हम लोग सामान्य स्त्री हैं; इन बातों को हम क्या जानें?"

पथिक ने कहा—"इस घोर अन्धकार में आप इस तरह चलती हैं कि मालूम होता है आप इन मैदानों और रास्तों से अवश्य ही विशेष रूप से परिचित हैं"।

"जी, हां; आगे गांव की रोशनी दिखाई दे रही है। हम लोग अत्यन्त दरिद्र हैं; पिता माता वृद्ध हैं। इन सब स्थानों को बड़े कष्ट से पार करके मैं बाज़ार में तसवीरें बेच कर वृद्ध पिता-माता के भोजन का उपाय करती हूं"।

ऐसी ही नानाप्रकार की बात चीत करते करते पन्ना अपने घर के आंगन में आ पहुंची। घर एक छोटी सी पहाड़ी के ऊपर बना हुआ है। उसमें केवल दो कोठरियां हैं। ठीक जैसे प्राचीन समय के तपस्वियों के आश्रम। उस समय आकाश भी कुछ कुछ साफ़ हो चला है। अंधे को आंगन में बिठा कर पन्ना कुटी के भीतर गई। उसके पैर का आहट पाकर पालतू हरिन का बच्चा नाचता हुआ पास आकर उसके शरीर से अपना शरीर रगड़ने लगा। पन्ना ने उसके गले में हाथ डाल कर उसके मुख को चूमा और उसे विदा किया।

दूसरा परिच्छेद।

पन्ना ने पिता से अंधे के आने की ख़बर दी। भोलसिंह लाठी टेकते हुए धीरे धीरे बाहर आये; अतिथि का यथोचित सम्मान कर कोठरी के भीतर ले गये; और पन्ना को उसकी सेवा के लिये आज्ञा दी। वृद्ध के परिचय पूछने पर अंधे ने पन्ना से जो कुछ कहा था ठीक वही कह सुनाया। वृद्ध ने सुन कर थोड़ा मुँह टेढ़ा किया और धीरे धीरे उठकर बग़ल वाली कोठरी में जा अपनी स्त्री से चुपके से कुछ कहा। वृद्धा स्त्री ने कहा—"क्या यह सच है?"

अतिथि के रहने के लिए एक कोठरी ठीक की गई। यदि अंधे के नेत्र होते तो वह देखता कि उस घर का कैसा ठाट बाट है। दीवार में कहीं चमकती हुई ताँबे की ढाल छोटी छोटी तेज़ किरचों से घिरी हुई ऐसी शोभित है जैसे नक्षत्रों से घिरा हुआ चन्द्र। कहीं तेज़ बाण ऐसे रक्खे हुए हैं कि शरवन के समान प्रतीत होते हैं। कहीं घर के कोने में श्रेणीबद्ध भाले ऐसे खड़े किये हुए हैं कि देखने से जान पड़ता है मानों वे युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बीच बीच में पन्ना के हाथ से खिंची हुई रणक्षेत्र की तसवीरें भी हैं। वृद्ध पिता की जवानी के गौरवस्वरूप स्मृतिचिन्हों को पन्ना ने न जानें कितने यत्न से सजा रक्खा है। अतिथिसत्कार की कोई त्रुटि नहीं हुई। पन्ना ने अपने हाथ से अंधे को खिलाया। भोजन के उपरान्त वीणा लेकर पन्ना ने जब जातीय संगीत गाना आरम्भ किया, तब अंधा और स्थिर न रह सका। वह एकाएक बोल उठा—"जिस जन का हृदय इतना उदार है, जिसका स्वर इतना मधुर है, न जानें वह कितना सुन्दर है"। पन्ना विषाद से भरी हुई मुसकुराहट के साथ हँसी।

दूसरे दिन सवेरे पन्ना अंधे को साथ लेकर संन्यासी के पास गई। संन्यासी ने दोनों नेत्रों को भली भांति देखकर कहा आँखें आराम हो जायँगी। इस जड़ी को ले जाओ। प्रतिदिन दो बार इसके रस का लेप करना। सूर्य्य की रोशनी आखों में बिलकुल न लगने देना"। संन्यासी ने पथ्यापथ्य के विषय में भी जो जो कुछ योग्य था कह दिया। पन्ना जी जान से अंधे की सेवा करने लगी। पिता-माता को मालूम हुआ कि पन्ना दिन पर दिन दुर्बल होती जाती है।

क्रम क्रम से अंधे को दिखाई देने लगा। पन्ना के जी में आशा का संचार हुआ।

अकस्मात् एक दिन अंधे के नेत्र खुल गये। जन्म लेते ही बच्चा जैसे नई रोशनी देखकर चिल्ला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठता है, नई दृष्टि से पन्ना को देखकर अमरकुमार भी वैसे ही चिल्ला उठे और बोले—"पन्ना, तुम!"

पन्ना ने कुछ जवाब न देकर गर्दन नीची कर ली।

अमरकुमार ने फिर कहा—"तुम ने विवाह नहीं किया है?"

"नहीं। आपने?"

"मैं ने भी नहीं किया; परन्तु—"

"परन्तु" कह कर आप रुके क्यों?"

"परन्तु आज यदि मैं तुम्हें पाऊं तो विवाह कर के जीवन सार्थक करूं। तुम्हारी दया मैं इस जीवन में भूल नहीं सकता"।

पन्ना उठ खड़ी हुई। उसकी देह-लता बड़े ज़ोर से कांपने लगी। जल का रुद्ध-प्रवाह निकलने का रास्ता पाकर जिस प्रकार बड़े वेग से बहता है, पन्ना की दशा भी वैसीही हुई। वह मन के वेग को किसी प्रकार रोक न सकी। कांपते हुए कंठ से वह कहने लगी—"आज आप मेरे पास कृतज्ञता प्रकाश कर विवाह का प्रस्ताव करते हैं, किन्तु राजपूतनी कृतज्ञता के कारण कभी विवाह नहीं करती। पांच वर्ष पहिले की बात एकबार स्मरण कीजिये। मेरे उस यौवनकाल के प्रथम सुख के समय में न जानें कितना प्रेम, कितनी आशा, देकर और मेरा हृदय मन छीन कर आपने बिना अपराध मुझको किस तरह तिरस्कृत किया था, उसका एक बार स्मरण कीजिये। पिता की एकाएक बुरी अवस्था देखकर शत्रुपक्ष ने मेरे नाम में कलङ्क लगाया। आपके पिता ने, और अन्त में आपने भी, उसी पर विश्वास करके, मुझे ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। एकबार भी आपने नहीं सोचा कि मेरी और मेरे पिता की क्या दशा होगी। जिस दिन से विवाह का प्रस्ताव टूट गया उसी दिन से पिता माता दसगुने बूढ़े हो गये। उसी समय मेरा मर जाना अच्छा था। मैं मरती। राजपूतनी मरना जानती हैं। पर केवल पिता-माता के मुख को ओर देखकर मैं जीती रही। यद्यपि आपने मुझे त्याग दिया है; तथापि मैं आपको भूल नहीं गई हूं"। यह कह कर पन्ना ने कमर से एक छोटी सी छुरी निकाली। हाथी दांत की बनी हुई मुठियेवाली उस छुरी के अग्रभाग में पन्ना के हाथ से खिंची हुई अमरकुमार की तसवीर थी और उनका नाम लिखा हुआ था।

अमरकुमार पागल की तरह कूद उठे। दोनों हाथ जोड़ कर वे बोले—"पन्ना! पन्ना! क्षमा करो, क्षमा करो! उस समय तुम्हें मैंने पहचाना नहीं! अब मेरी आंखें खुली हैं। विवाह में सहमत हो, नहीं तो मैं न जीऊंगा"।

पन्ना ने फिर भी वही एक बात कही—"राजपूतनी कृतज्ञता के कारण कभी विवाह नहीं करती।"

अमरकुमार और भी दो चार दिन रहे। फिर से विदा होने का समय उपस्थित हुआ। पन्ना के पिता-माता के निकट कृतज्ञता के साथ विदा होकर अमरकुमार जाने के लिये तैयार हुए। पन्ना भी वीराङ्गना के भेष से अपनेको विभूषित कर उसी प्रथम समागम के स्थान मेले तक पहुंचाने के लिये अमरकुमार के साथ चली।

सूनसान मैदान है। पक्षीगण मधुर-स्वर से प्रातःकाल के समय शहनाई बजा रहे हैं। मिलित किन्तु विच्छेद-कातर, दोनों जन चुपचाप चल रहे हैं। किसीके मुख से एक भी बात नहीं निकलती। मिलन-सुधासागर के तीर आकर शून्यघड़ा लेकर ही फिर लौटना होगा! हाय!

क्रीड़ा-भूमि के निकट आकर पन्ना रुक गई। अमरकुमार कातर दृष्टि से पन्ना के मुख की ओर देखकर बोले—"पन्ना, मैं जाता हूं। ईश्वर यदि वह दिन दिखावे तो फिर मुलाक़ात होगी। मुझे स्मरण रखना।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस मिलने और बिछुड़ने वाले स्थान पर खड़ी होकर पन्ना जब तक हो सका, अमरकुमार की ओर देखती रही। लौटती बेर उस राजपूत-वन-कुसुम-कलिका के गालों से बहते हुए आंसू के दो बूंद ओस की तरह टपक पड़े। *

भट्टाचार्य्य।

कृत्रिम हीरा।

विज्ञान प्रतिदिन अद्भुत अद्भुत चमत्कार दिखा रहा है। उन्हींमें से कृत्रिम हीरे का बनाना भी है। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि हीरा एक बहुमूल्य रत्न है और खानों से निकलता है। अब एक फ्रांसीसी विज्ञानवेत्ता ने इसके बनाने की तरकीब निकाली है। आपका नाम है अध्यापक हेनरी म्वायसन (Prof. Henri Moissan)।

यह कहना कि आग को काम में लाना सभ्यता की जड़ है, वास्तव में बहुत ही ठीक है। विज्ञान की उन्नति में जितनी सहायता इससे मिली है किसी दूसरे पदार्थ से नहीं मिली। छोटी सी सुई से लेकर बड़े बड़े जहाज़ों तक कोई भी चीज़ बिदून आग के नहीं बन सकती।

जितने ही ज़्यादा दर्जे की गरमी पैदा करने की तरकीब ज्ञात होती जाती है उतने ही नये नये और अद्भुत अद्भुत काम इससे किये जा सकते हैं। ३६०० दर्जे की गर्मी की सहायता से लाल नाम का रत्न बनाया जाता है। यह गरमी का वह दर्जा है जिस से ज़मीन के अन्दर के क़रीब क़रीब सब खनिज पदार्थ बनते हैं। लाल मामूली पिँडोर मिट्टी है जो बहुत बड़ी गरमी से गल कर स्फटिक की शकल में हो जाती है। इस दर्जे की गरमी आक्सीजन (दाहक) और हाइड्रोजन (जलकर) गैस के जलाने से प्राप्त होती है।

मिट्टी का चूरा ऊपर लिखी हुई तरकीब से पैदा की हुई विशाल ज्वाला में गैस की सहायता से डाला जाता है। इससे वह गल जाता है और ठंढा होने पर सुन्दर चमकीले लाल की सूरत में बदल जाता है। इस तरकीब से अब बड़े बड़े लाल बनाये जाने लगे हैं। ये किसी प्रकार रंग या गुण में क़ुदरती लालों से कम नहीं होते।

लाल बनाने में सफलता होने पर विज्ञ लोगों ने अनुमान किया कि यदि ३६०० दर्जे से और भी ज़्यादा गरमी पैदा की जा सके तो और रत्न भी, जो ज़मीन के अन्दर की गरमी के कारण पैदा होते हैं, बनाये जा सकें। यह मालूम ही था कि तत्वों में हीरा और कोयला* बिलकुल एक ही चीज़ हैं। अन्तर सिर्फ़ इतना ही है कि हीरा ज़मीन के गोले के अन्दर की भीषण गरमी और अन्य कई एक कारणों से पारदर्शी पत्थर का रूप धारण करता है। अब यह सवाल दरपेश हुआ कि इन क़ुदरती शक्तियों की किस प्रकार नक़ल की जाय। पहले तो वैज्ञानिक लोग बहुत दिनों तक इसी चक्कर में रहे कि ठीक ठीक किस प्रकार हीरा बनता है। अनुमान किया गया कि पहले कोयला बड़ी प्रचण्ड गरमी से गलकर द्रव हुआ; फिर ठंढा होने पर, स्फटिक के रूप में बदल गया। मगर तब तक कोयला कभी न गलाया गया था। इस कारण यह न मालूम था कि गलाने के लिए कितनी गरमी की आवश्यकता है। इससे हीरा बनने की, अनुमान की हुई, तरकीब के सही होने में भी शक था।

---

* वङ्गभाषा के "प्रवासी" नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्र में प्रकाशित बाबू सुधीन्द्रनाथ ठाकुर के एक लेख का अनुवाद। अनुवादक

* कोयला से यहां मतलब उस तत्व से है जिससे कोयला बनता है। अँगरेजी में उसे कारबन (carbon) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त में प्रसिद्ध फ्रांसीसी वैज्ञानिक अध्यापक हेनरी म्वायसन ने हीरा बनाने की तरकीब निकाली। उनके पास एक उल्कापिण्ड (टूट कर गिरे हुए तारे) का टुकड़ा लाया गया। उसकी परीक्षा करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वह अधिकांश लोहे का था। उसके अन्दर कुछ काले काले और कुछ सफ़ेद हीरे के टुकड़े निकले। बस अब क्या था, प्राकृतिक नियमों ने स्वयं अपना परदा खोल दिया और अपना एक बड़ा भारी भेद बतला दिया। अध्यापक साहब ने सोचा कि अगर कोयला, लोहे में डाल कर गलाया जाय और वह मिश्रण यकायक ठंढा हो सके तो गला हुआ कोयला लोहे के दबाव से हीरा हो जाय।

दुनिया के प्रायः सभी पदार्थ काफ़ी गरमी पाने पर द्रव अर्थात् प्रवाही हो सकते हैं। पर गलाने के लिए हर चीज़ के लिए जुदा जुदा दर्जे की गरमी दरकार है। बर्फ़ और घी बहुत ही हलकी गरमी से गल जाते हैं। मोमबत्ती के लिए उससे कुछ ज़्यादा गरमी की ज़रूरत है। रांगा ६०६ दर्जे की गरमी से गलता है। और लोहा २४०० दर्जे की गरमी से। इसी प्रकार हरएक चीज़ के गलाने के लिए एक ख़ास दर्जे की गरमी की आवश्यकता होती है। कोयले के गलाने के लिए लोहे के गलाने की गरमी से क़रीब दुगनी गरमी दरकार होती है। इतनी गरमी केवल बिजली की भट्ठी से प्राप्त हो सकती है। ऐसी भट्ठी में ५००० दर्जे की गरमी होती है। इसकी आँच इतनी तेज़ होती है कि बालू देखते देखते पहले तो गल जाती है, फिर फ़ौरन ही भाफ बन जाती है। इस भाफ को जमा करके ठंढो करने से बालू फिर अपना असली रूप धारण करती है। इस भट्ठी से जो लपटें निकलती हैं उनकी रोशनी इतनी तेज़ होती है कि आँखों को रोशनी जाने का डर रहता है। इससे जो लोग उस जगह काम करते हैं वे काले चश्मों से अपनी आंखें सब तरफ़ ढके रहते हैं। इस भट्ठी के जलने में क़रीब डेढ़ सौ रुपये फ़ी घंटे खर्च बैठता है। अतएव इसी भट्ठी को हीरा बनाने के लिए पूर्वोक्त अध्यापक साहब काम में लाये।

बिजली की भट्ठी की सहायता से म्वायसन साहब हीरा बनाने में लगे। अनुमान से उन्होंने जो क़ुदरती हीरा बनने के कारण जाने थे उन्हीं की नक़ल उन्होंने की। पहला काम ५००० दर्जे की गरमी वाले लोहे के पानी में कोयले को गलाना था। इतनी तेज़ गरमी में लोहा स्वयं कोयले को गला देता है। इसके बाद इस लोहा—कोयला के मिश्रण को इस तरह एक दम ठंढा करना था कि उसका ऊपरी भाग ठोस हो जाय, पर अन्दर वह वैसा ही द्रव बना रहे। इस तरह जब भीतरी द्रव पदार्थ ठंढा होने लगता है तब वह बढ़ने की चेष्टा करता है। पर ऊपर का ठोस भाग ऐसा करने में बाधक होता है। इससे बहुत भारी दबाव पड़ता है और दबाव से कोयला स्फटिक के रूप में हो कर हीरा बन जाता है। कैसी सहल तरकीब है। पर, हां, बहुत ही परिश्रम, होशियारी और चतुरता दरकार है।

भीषण गरमी से गले हुए लोहे में कोयले को ठीक मिक़दार मिला कर फिर बिजली की भट्ठी में रखते हैं। इससे कोयला भी गल जाता है। फिर वह घरिया, जिसमें गला हुआ लोहा और कोयला होता है, चिमटे से पकड़ कर झट पट एक डोल पानी में डाल दी जाती है। ऐसा करने पर अति सुन्दर आतशबाज़ी की सी चिनगारियां उड़ती हैं। जितनी ही शीघ्रता से लोहा ठंढा किया जाता है उतना ही अच्छा फल भी होता है। पानी में डालने से भाफ की एक तह लोहे के चारों ओर बन जाती है। इससे गरमी शीघ्रता से नहीं निकल सकती। इस दोष को दूर करने के लिए घरिया पर गला हुआ रांगा डाला जाता है। पाठक चकरायँगे कि गले हुए रांगे से ठंढा करना कैसा? लेकिन ख़याल करने की बात है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि लोहे और कोयले का मिश्रण तो ५००० दर्जे की गरमी रखता है। और गला हुआ रांगा केवल ६०६ दर्जे की। अतएव लोहे और कोयले के मुक़ाबिले में रांगा बिलकुल ही ठंढा समझना चाहिए। इससे रांगे का स्पर्श गले हुए लोहे-कोयले के लिये बहुत ही लाभदायक होता है। मिश्रण की गरमी जल्दी जल्दी घटती जाती है और ठंढे होने को बाधक भाफ बनने नहीं पाती। ठंढा होने पर लोहा तेज़ाब की मदद से खुरच डाला जाता है। फिर सिर्फ़ कोयले के टुकड़े शेष रहजाते हैं। यही काले और सफेद हीरे हैं। सफेद हीरे कालों के मुक़ाबिले में बहुत वज़नी होते हैं। इन सबों को एक ख़ास प्रवाही पदार्थ में डालने से काले हीरे ऊपर आ जाते हैं और सफेद नीचे बैठ जाते हैं। इनमें और क़ुदरती हीरों में कुछ भी फ़रक़ नहीं होता। पर ये हीरे बहुत छोटे होते हैं। बहुत सम्भव है विज्ञान के बल से कभी बड़े बड़े हीरे भी बनाये जायँगे। इस बात की कोशिश हो रही है।

गिरिजादत्त वाजपेयी।

क्या जानवर भी सोचते हैं?

जानवरों से हमारा मतलब पशुओं से है। क्या पशु भी विचार करते हैं, सोचते हैं, समझ रखते हैं या चिन्तना करते हैं? हार्पर्स मैगेज़ीन नामक एक अँगरेज़ी सामयिक पुस्तक में एक साहब ने इस विषय पर एक लेख लिखा है। उसमें लेखक ने यह सिद्ध किया है कि जानवरों को समझ नहीं होती; वे किसी तरह का सोच विचार नहीं कर सकते—क्योंकि वे बोल नहीं सकते। जिस प्राणी में बोलने की शक्ति नहीं है उसमें विचार करने की भी शक्ति नहीं हो सकती। इस विज्ञानी के सिद्धान्तों का सारांश हम नीचे देते हैं—

आत्मतत्वविद्या के जाननेवालों का यह मत है कि जानवरों में किसी प्रकार की मानसिक शक्ति नहीं है। विशेष प्रकार की स्थिति आने से वे विशेष प्रकार के काम करते हैं। अर्थात् जैसी स्थिति होती है—जैसा मौक़ा होता है—उसीके अनुसार जानवर काम करते हैं। यह नहीं कि जैसे आदमी सब काम समझ बूझ कर करते हैं वैसे वे भी करते हों। जब कोई विशेष स्थिति प्राप्त होती है तब उसके अनुसार पशुओं को ज्ञानेन्द्रियों पर कुछ चिन्ह से हो जाते हैं। उन चिन्हों के पैदा होते ही उनकी इच्छा काम करने को चाहती है और जैसे चिन्ह होते हैं वैसे ही काम वे करने लगते हैं। पशुओं को मानसिक भावना या चिन्तना नहीं करनी पड़ती; वे इस तरह की भावनाओं को कर ही नहीं सकते। जब कोई आदमी किसी पर आघात करना चाहता है—मारना चाहता—है तब वह उससे फ़ौरन ही अपना बचाव करता है। अर्थात् ज्योंही वह आघात होने के लक्षण देखता है त्यों ही, उसी क्षण, वह पीछे हट जाता है या और किसी तरह से अपना बचाव करता है। उस समय उसे किसी तरह का सोच विचार नहीं करना पड़ता। जानवर इसी तरह बिना किसी चिन्तना, भावना या विचार के काम करते हैं। उनके सारे काम प्रवृत्ति या अभ्यास की प्रेरणा से होते हैं। हम लोग अपने उदाहरण से जानवरों की शक्तियों का अन्दाज़ करते हैं। पर यह बात ठीक नहीं है। जानवरों में मानसिक व्यापार के कोई चिन्ह नहीं देख पड़ते। किसी आन्तरिक प्रवृत्ति, उत्तेजना या शक्ति की प्रेरणा से वे सब शारीरिक व्यापार करते हैं। किसी मतलब से कोई काम करना बिना ज्ञान के—बिना बुद्धि के—नहीं हो सकता। ज्ञान दो तरह का है। स्वाभाविक और उपार्जित। स्वाभाविक पशुओं में और उपार्जित मनुष्यों में होता है। हम सब काम सोच समझ कर जैसा करते हैं जानवर वैसा नहीं करते। उनमें विचारशक्ति ही नहीं है; उनके मन में विचारों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने को जगह ही नहीं; क्योंकि वे बोल नहीं सकते। ठीक ठीक विचारणा या भावना बिना भाषा के नहीं हो सकती। भाषा ही विचार की जननी है। भाषा ही से विचार पैदा होते हैं। वाणी और अर्थ का योग सिद्ध ही है। शब्दों से अर्थ या विचार उसी तरह अलग नहीं हो सकते जैसे पदार्थों के आकार उनसे अलग नहीं हो सकते। जहां आकार देख पड़ता है वहां पदार्थ ज़रूर होता है। जहां विचार होता है तहां भाषा ज़रूर होती है। बिना भाषा के अन्तर्वेग, विषयज्ञान और विषय-प्रवृत्ति इत्यादि बातें हो सकती हैं परन्तु विचार नहीं हो सकता। पशु अपनी इन्द्रियों की सहायता से ही पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो पदार्थ समय और आकाश में विद्यमान रहते हैं सिर्फ़ उन्हींका ज्ञान पशुओं को इन्द्रियों से होता है और पदार्थों का नहीं। पशुओं में स्मरण-शक्ति नहीं होती। पुरानी बातें उन्हें याद नहीं रहतीं। यही पूर्वोक्त साहब का मत है।

इनमें से बहुत सी बातों का खण्डन हो सकता है। कुछ का खण्डन लोगों ने किया भी है। विचार क्या चीज़ है? सोचना किसे कहते हैं? सिर में एक प्रकार के ज्ञानतन्तु हैं। बाहरी जगत् की किसी चीज़ या शक्ति का प्रतिबिम्बरूपी ठप्पा जो उन तन्तुओं पर उठ आता है उसी का नाम विचार है। जितने प्रकार के शब्द सुन पड़ते हैं उनकी तसवीर सिर के भीतर तन्तुओं पर खिंच सी जाती है। यह तसवीर मिटाये नहीं मिटती। कारण उपस्थित होते ही वह नई होकर ज्ञान-ग्राहिका शक्ति के सामने आ जाती है। यह कहना ग़लत है कि बिना भाषा के विचार नहीं हो सकता। जो लोग ऐसा कहते हैं वे शायद उन शब्दसमूहों को भाषा कहते हैं जो वर्णरूपी चिन्हों से बने हैं। पर, क्या कोई यञ्जिनियर या मिस्त्री एक बड़े से बड़े मकान या मीनार की कल्पना, बिना ईंट, पत्थर और चूने इत्यादि का नाम लिए भी, नहीं कर सकता? क्या ज्यामितिशास्त्र के पण्डित को अपना मतलब सिद्ध करने के लिए वर्णरूपिणी भाषा की कुछ भी ज़रूरत पड़ती है? अथवा क्या बहरे और गूंगे आदमी ज्ञानतन्तुओं पर चित्रित चित्रों की सहायता से भावना, कल्पना, विचार या स्मरण नहीं करते?

फिर, विचार की बड़ी ज़रूरत भी नहीं देख पड़ती। क्या बिना विचारणा के काम नहीं चल सकता? सच पूछिये तो जगत् में बहुत कम विचारणा होती है। हरबर्ट स्पेन्सर तक के बड़े बड़े ग्रन्थ विचारणा के बल पर नहीं लिखे गये। स्पेन्सर ने अपने आत्मचरित में ऐसाही लिखा है। उसका कथन है कि मैंने उन्हें अपनी प्रतिभा के बल से लिखा है। मेरे मन में आपही आप उनको लिखने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसी ने मुझसे उन्हें लिखाया। दुनिया में जितने बड़े बड़े ग्रन्थ देख पड़ते हैं उनमें बहुत से ऐसे हैं जिनको उनके लिखने वालों ने अपने मस्तिष्क, अपने मन, अपनी प्रतिभा की प्रेरणा से ही लिखा है। जिस तरह मेदे के द्वारा पाचनक्रिया होने से ख़ून और पित्त पैदा होता है; जिस तरह प्रजोत्पादक अंगों के द्वारा प्रजा की उत्पत्ति होती है; उसी तरह बड़े बड़े आदमियों के प्रतिभापूर्ण मस्तकों से कविता, किताबें और इमारतों की कल्पनायें निकलती हैं।

कालिदास ने रघुवंश लिखा और भवभूति ने उत्तररामचरित। पर किस तरह उनके मन में इनके लिखने की बात आई। आपही आप। विचार करने की ज़रूरत नहीं पड़ी। पहले पहल उनके मस्तिष्क में इनके लिखने की इच्छा स्वतः सम्भूत हुई। संसार में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं हुआ जिसने अपनी इच्छा से कोई ऐसा काम किया हो जिसका, या जिसकी सामग्री का, अस्तित्व पहले ही से विद्यमान न रहा हो।

यदि कोई जानवर कोई काम किसी इरादे से करे, और, जिस ज्ञानात्मिका बुद्धि से वह इरादा पैदा हुआ हो वह बुद्धि स्वाभाविक हो तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे क्या ? उससे कोई नया सिद्धान्त नहीं निकलता। चाहे वह स्वाभाविक हो चाहे उपार्जित—बात वही रहती है। उससे ज्ञान का न होना—बुद्धि का न होना—नहीं साबित होता। ज्ञान चाहे जिस प्रकार का हो, वह है तो। ताजमहल की कल्पना करने वाले में भी ज्ञान था और घोंसला या ग़ार बनाने वाले जीवों में भी वह है। किसी में कम किसी में ज़ियादह। मकड़ी, चिड़िया, लोमड़ी और चींटी इत्यादि छोटे छोटे जीव तक अपने अपने काम से ज्ञान रखने का प्रमाण देते हैं। और ज्ञान मन का व्यापार है। ज्ञान का मन से बहुत बड़ा सम्बन्ध है। तो फिर यह कैसे कह सकते हैं कि जानवरों में मानसिक विचार की शक्ति नहीं है ?

जो कुछ हम सोचते या करते हैं वह, इन्द्रियों पर उठे हुए चित्र का कारण नहीं है। उसका कारण ज्ञान है। एक किताब या कुरसी की तसवीर मक्खी की इन्द्रियों पर भी वैसी ही खिंचेगी जैसी पालने पर पड़े हुए एक छोटे बालक की इन्द्रियों पर। पर जिसमें जितना ज्ञान होता है, जिसमें जितनी बुद्धि होती है, उसी के अनुसार सांसारिक पदार्थों या शक्तियों की ज्ञानगत मूर्तियों का महत्व, न्यूनाधिक भाव में सब कहीं देख पड़ता है। जिस भाव से हम एक किताब को देखेंगे, भैंस उस भाव से उसे न देखेगी। पर देखेगी ज़रूर और उसका चित्र भी उसकी ज्ञानेन्द्रियों पर ठीक वैसाही उतरेगा जैसा आदमियों की इन्द्रियों पर उतरता है।

इसमें सन्देह नहीं कि सोचना या विचार करना—चाहे वह ज्ञानात्मक हो चाहे न हो—मस्तिष्क की क्रिया है। अतएव उसका सम्बन्ध मन से है। और आदमी से लेकर चींटी तक, सब जीवधारियों में, अपनी अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार, मन होता है। यह नहीं कि किसी में वह बिलकुल ही न होता हो। इससे यह सिद्ध है कि जिस सिद्धान्त का उल्लेख ऊपर हुआ वह ठीक नहीं है।

विवीसेक्शन।

(Vivisection)

संसार में जितने जीव हैं उनके शरीर की गठन, उनके आकार और जीवन-प्रणाली के अनुसार बनी है। शरीर के भीतर का यंजिन भी इसी तरह का है। यंजिन की जो कलें हैं उनका काम जीवों के आहारविहार का कार्य्य-सम्पादन करना है। जो जीव आकार-प्रकार में मनुष्य के बहुत निकट हैं उनके सुख दुःख के कारण भी मनुष्य से मिलते हैं। शरीर के भीतर की कलें, जीवित दशा में, अपना काम किस प्रकार करती हैं ? कलों के टूटने, फूटने और बिगड़ने से प्राणी की क्या दशा होती है ? यह निश्चय करने के लिये जीवित जीवों को बेहोश करके अस्त्रविद्या द्वारा उनके भीतरी अङ्गों की परीक्षा की जाती है। यही काम विवीसेक्शन कहलाता है।

चिकित्सा—शास्त्र में इस काम से बड़ी उन्नति हुई है। अनेक रोगों का निदान हस्तामलक हो गया है। पाठकों ने सुना होगा कि डाक्टर लोग प्रायः सब रोगों का मूल कारण भाँति भाँति के छोटे छोटे कीड़ों का आक्रमण मानते हैं। विवीसेक्शन की क्रिया से यह बात दृढ़ता से सिद्ध हुई है। प्लेग, हैज़ा, राजयक्ष्मा आदि संघातक रोगों का पूरा पूरा तत्व जीवित जीवों की चीड़ फाड़ से जान लिया गया है। रोगों का विष जिस ढंग से अन्य पशुपक्षियों के लिये दुःखदायी होता है, उसी भांति वह मनुष्य को भी सताता है। उससे बचने के जो उपाय अन्य जीवों के लिए ठीक होते हैं वही मनुष्य के लिये भी ठीक उतरते हैं। ये सब बातें विवीसेक्शन ही के द्वारा स्थिर की जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवीसेक्शन के लाभ बतलाने के लिए एक घटना का उल्लेख किया जाता है। थोड़े दिन की बात है। डाक्टरों का यह निश्चय था कि जिस प्रकार मनुष्य का हृदय निकाल लेने से वह जीता नहीं रह सकता, गुर्दे के बिना भी उसका जीवन असंभव है। हज़ारों स्त्री—पुरुष और बच्चे गुर्दे के रोगों की मर्मयातना सहते सहते मर जाते थे। एक डाक्टर के पास एक ऐसा रोगी पहुंचा जो गुर्दे की पीड़ा से महादुखी था और तड़प तड़प कर देखने वालों को तरस दिलाता था। इस पर सब तरह की दवाइयां आज़माई जा चुकी थीं। उस समय डाक्टर साहब को एक नई बात सूझी। आपने एक कुत्ते को क्लोरोफ़ार्म देकर बेहोश किया और चीरा लगा कर उसका एक गुर्दा काट कर बाहर निकाल लिया तथा घाव को सीकर उस पर पट्टी चढ़ा दी। जब कुत्ता होश में आया तब उसके चलने फिरने और खेल कूद में कुछ भी दोष न पाया गया। वह पहले की तरह अपने मालिक के सामने उछलता, कूदता और दुम हिलाता था। इस परीक्षा के सिद्धान्त पर ही रोगी मूर्छित किया गया और रोगग्रसित गुर्दा निकाल डाला गया। घाव को सीं कर उस पर पट्टी चढ़ादी गई। जब बीमार होश में आया तब उसका सब दुख दर्द जाता रहा। अनेक दिन जीवित रह कर वह अपने परिवार का पालन पोषण करने में समर्थ हुआ।

जीवों पर चीड़ फाड़ करने का अभ्यास करने से डाक्टरों का हाथ अच्छा सध जाता है। वे नसों की गति को समझ लेते हैं। जिस भूल से चीर फाड़ ख़राब हो जाता है उससे वे चौकन्ने बन जाते हैं। इस अभ्यास का सुफल मनुष्य—मात्र को मिलता है।

अनेक सज्जन विवीसेक्शन को पसन्द नहीं करते। इस देश ही में नहीं विलायत में भी इसके ख़िलाफ़ सभा-समाजें हैं। "किसी जीव को दुख न पहुंचे" ऐसा सिद्धान्त इसका मूल कारण है। परन्तु बिना किसी जीव को कष्ट पहुंचाये मनुष्य अपना जीवन सुखपूर्वक नहीं काट सकता। मनुष्य अपने स्वच्छन्द विचरने के लिये शेर, भालू, चीता, भेड़िया आदि जीवों को अपनी बस्ती के आस पास नहीं रहने देता; महानिर्दयता से उनका वंश नष्ट करने की चेष्टा में रहता है। मेरे पास एक घोड़ा है। वह मुझे, सर्वदा, लगाम और चाबुक के डर से, मेरी इच्छा के अनुसार लादे फिरता है। मेरा कुत्ता रात भर जगकर घर की रखवाली करता है। चूहे आनन्द से घर में न फिरने पावें, इसलिये मैंने बिल्ली पाल रक्खी है। मैं अपनी गाय के बछड़े को भर पेट दूध नहीं पीने देता; नाम मात्र को थोड़ी देर गाय के नीचे रखकर सारा दूध अपने लिये निकाल लेता हूं। यदि हम लोग जीवों पर सच्ची दया दिखाना चाहें तो अपने सब काम आप करें। ईश्वर के नियमों को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। निर्बल सबल पर शासन करता है। मेरे ओढ़ने को लोई न जाने कितनी बकरियों को ऊन होगी। मेरे रेशमी कोट के लिये अनगिनत कीड़े मरे होंगे। अब तक भी अनेक जातियों में बलिदान की प्रथा है। मनुष्य अपनी जान के बदले में बकरे की जान देकर मृत्यु के पंजे से छुटना चाहता है। सारांश यह कि मनुष्य को अपनी स्थिति स्थिर रखने और अपनी वासना पूर्ण करने के लिये सब कुछ करना पड़ता है। विवीसेक्शन से जनसमुदाय के अनेक कष्ट घट रहे हैं; और ज्यों ज्यों इस क्रिया से मनुष्य का ज्ञान बढ़ता जायगा त्यों त्यों वह अनेक प्रकार के रोग-शोकों से मुक्त होता जायगा।

महेन्दुलाल गर्ग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा ।

रूस-जापान-युद्ध । प्रथम भाग । ठाकुर गदाधरसिंह-कृत । मूल्य १) रु० । पुस्तक-प्रचारक-कम्पनी, अजमेर, से प्राप्य । "रूस, जापान, कोरिया, मन्चूरिया, साइबेरिया, आदि देशों के भौगोलिक और ऐतिहासिक वृत्तान्त, उनकी सभ्यता, व्यौहार, बर्ताव, ऋतु, उपज, खनिज, खेती बारी, आदि, आदि, का ब्योरेवार वर्णन एवं समर-कौशल और रणचातुरी तथा राजनैतिक दाँव पेंच की घातें और बातें" । रूस-जापान-युद्ध के वर्णन के सिवा ये सब बातें भी इस पुस्तक में हैं । अभी यह पहला ही भाग है । पुस्तक समयोपयोगी और सुपाठ्य है । ठाकुर गदाधरसिंह की सभी पुस्तकें उपयोगी होती हैं । यह भी वैसी ही है । ठाकुर साहब सैनिक हैं । सैनिक के मुँह से लड़ाई का वृत्तान्त सुनने में जो मज़ा आता है वह औरों के मुँह से सुनने में नहीं आता । यह इस पुस्तक में विशेषता है । पुस्तक शुरू करके बिना समाप्त किये रखने को जी नहीं चाहता । भाषा सबके समझने लायक़ है । पुस्तक उपादेय है ।

❋

सनातनजैनग्रन्थ-माला । प्रथमोगुच्छकः । बंबई के निर्णयसागर प्रेस के मालिकों ने जैनियों के सनातनधर्म्मावलम्बी संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशित करना आरम्भ किया है । इस पुस्तकमालिका का यह पहला गुच्छक है । छोटे साँचे की पुस्तक है । जिल्द नामी है । छपाई ख़ूब अच्छी है । वृहत्स्वयम्भूस्तोत्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि सब मिलाकर ५ ग्रन्थ इस गुच्छक में हैं । किसी किसी की टीका भी है । इस गुच्छक का संग्रह और संशोधन श्रीयुक्त पन्नालाल-वंशीधर ने किया है । मूल्य केवल) रुपया है । उद्योग बहुत ही स्तुत्य है । जैनधर्म्मावलम्बियों को इसे अवश्य हस्तावलम्ब देना चाहिए । अन्य विद्याव्यसनी जनों को भी इसके अवलोकन से आनन्द मिल सकता है ।

❋

धात्रीशिक्षा । डाक्टर अब्दुलहकीम ख़ां के उर्दू लेखों का यह हिन्दी-अनुवाद है । अनुवादक, पण्डित वंशीधर पाठक हैं । दाम ६ आने । कायस्थ एजुकेशन कमिटी, अलीगढ़, ने इसे प्रकाशित किया है । इसमें गर्भस्थिति और बाल-रक्षा आदि बातें हैं जो स्त्रियों के लिए बहुत उपयोगी हैं । पुस्तक की भाषा यदि कुछ अधिक सरल होती तो सोने में सुगन्ध था ।

❋

शिक्षादर्पणम् । पं० कन्हैयालाल त्रिपाठी, भूतपूर्व संस्कृताध्यापक, पटना कालेज, कृत । दाम ४ आने । पुस्तक संस्कृत पद्य में है । बहुत सरल और सरस कविता में शिक्षा के नियम आदि इसमें समझाये गये हैं । प्राचीन समय के गुरु-शिष्यों के दो चार आख्यान भी इसमें हैं । इस पुस्तक के कर्ता का, कुछ दिन हुए, शरीर-पात हो गया । यह समाचार एक हिन्दी पत्र में पढ़ कर हमें खेद हुआ ।

❋

नैपोलियन की जीवनी । आदि काण्ड । अनुवादक, श्रीयुक्त पाण्डेय उमापतिदत्त शर्म्मा, बी० ए० । हिन्दी ट्रैन्सलेटिंग् कम्पनी, लोवर चितपुर रोड, कलकत्ता से प्राप्य । दाम चार आने । यह विख्यात वीर नपोलियन के चरित का प्रथम भाग है; एबट साहब की अँगरेज़ी पुस्तक से अनुवादित हुआ है । ऐसी पुस्तकों की हिन्दी में बड़ी ज़रूरत है । अनुवाद अच्छा हुआ है । भाषा क्लिष्ट नहीं; सब के समझने लायक़ है । यथास्थान पाद-टीकाओं ने अनुवाद की उपयोगिता को बढ़ा दिया है । पाण्डेयजी ने यह अनुवाद लिख कर अच्छा काम किया; पर पूरा होना चाहिए ।

❋

पञ्चाङ्ग, जंत्री और नवरोज़ । देहली-निवासी पण्डित चमनलाल जी रम्माल हर साल कई तरह के पञ्चाङ्ग निकालते हैं । सं० १९६३ के उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे पास तीन तरह के पञ्चाङ्ग, दो तरह की जंत्रियां और नवरोज़ उर्दू में भेजे हैं। सब में कुछ न कुछ विशेषता है। एक पञ्चाङ्ग बहुत मोटे देशी काग़ज़ पर बड़े बड़े अक्षरों में है। इस कृपा के लिए ज्योतिषी जी को धन्यवाद है।

❋

श्रीसरस्वती-पञ्चाङ्ग। यह १९६३ सं० का पञ्चाङ्ग गोस्वामी व्रजनाथ शर्म्मा, शीतला गली, आगरे का प्रकाशित किया हुआ है। इसमें गोस्वामी जी का "हाफटोन" चित्र भी है। इसकी भूमिका हिन्दी में है। छपाई ख़ूब साफ है। काग़ज़ भी अच्छा है।

❋

वेदधर्म्मव्याख्यानम्। प्रथम भाग। दाम ।) आने। संस्कृत रत्नाकर-कार्य्यालय, जयपुर, से प्राप्य। उस साल महाराजा जयपुर के साथ विद्यावाचस्पति पण्डित मधुसूदन जी भी विलायत गये थे। वहां, लंडन में, विद्वानों के सामने उन्होंने वेद-विषयक व्याख्यान संस्कृत में दिया था। यह वही व्याख्यान "संस्कृत-रत्नाकर" से उद्धृत करके पुस्तकाकार निकाला गया है। इससे केवल संस्कृतज्ञ ही लाभ उठा सकते हैं। हिन्दी में भी यदि इसका अनुवाद हो जाता तो बहुत अच्छा होता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ७] जून, १९०६ [संख्या ६

विविधविषय।

इस अङ्क के साथ हम राजा रविवर्म्मा—चित्रित "शङ्कर-भिल्ली" का मनोहर चित्र पाठकों की भेंट करते हैं। यह एक पौराणिक कथा के आधार पर है, जिसे प्रायः सभी पाठक जानते होंगे।

* *
*

गत एप्रिल में दो बड़ी ही भयङ्कर दुर्घटनायें हुईं। इटली में विस्यूवियस नामक एक ज्वालामुखी पर्वत है। उसका वर्णन सरस्वती में दिया जा चुका है। उसका अकस्मात् स्फोट होकर उसके ज्वालागर्भ-पेट से आग, पत्थर, राख और गली हुई धातुओं की नदियां बह निकलीं। भस्म-वर्षा से नेपल्स नगर की अटारियां और सड़कें परिपूर्ण हो गईं। आस पास के गाँव जलकर ख़ाक हो गये। अनन्त धन और जन-समूह का नाश हुआ। पर विस्यूवियस की वेधशाला के अफ़सर, एक साहब, वहां से नहीं हटे। वे विस्यूवियस की भयङ्कर स्थिति का वर्णन बराबर तारद्वारा भेजते रहे। उनके इस साहस और धैर्य्य के कारण उनको एक पदवी मिली है। हमारे महाराज सातवें एडवर्ड अपनी महारानी समेत विस्यूवियस देखने के लिए, गत मई महीने में, इटली पधारे थे। विस्यूवियस के इस विकराल स्फोट का वर्णन सरस्वती में देने का विचार है। दूसरी दुर्घटना अमेरिका के कारोलीना प्रदेश के सानफ़ान्सिस को नामक नगर का प्रायः समूल जल जाना है। यह शहर बहुत बड़ा और मनोहर था। पर भूकम्प के कारण इसके अनेक घर गिर पड़े और शहर में आग लग गई। कई दिन तक शहर जलता रहा। कई लाख आदमी बे घर द्वार के होगये। हज़ारों आदमी जल कर या दब कर मर गये। कई करोड़ रुपये की हानि हुई। इस शहर को नये सिरे से बनाने की तैयारी हो रही है। यहां के निराश्रित लोगों की मदद के लिए सब कहीं चन्दा हो रहा है।

* *
*

बंबई के श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार ने मई १९०६ से अपना आकार और भी बढ़ा दिया है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकार का इस समय हिन्दी में और कोई पत्र नहीं। लेख भी इस पत्र में अब अच्छे अच्छे निकलने लगे हैं। इसकी उन्नति से हम बहुत प्रसन्न हैं। हमारी आन्तरिक इच्छा है कि हिन्दी के और और पत्र भी ख़ूब उन्नति करके सर्वसाधारण में हिन्दी पढ़ने की रुचि उत्पन्न करें।

***

"स्टूडेंट वर्ल्ड" नाम का एक अंगरेज़ी मासिक पत्र जनवरी १९०६ से, इंडियन प्रेस, प्रयाग, से निकलने लगा है। जुबिली हाईस्कूल, लखनऊ, के हेडमास्टर मिस्टर बैनवरी, बी० ए०, इसके सम्पादक हैं। वार्षिक मूल्य ३ रुपये है। इसका सांचा सरस्वती का ऐसा है। काग़ज़ और कवर ख़ूब बढ़िया हैं। हर अङ्क में ३२ पृष्ठ रहते हैं। शिक्षाविभाग के अधिकारियों में से किसी एक का चित्र भी हर अङ्क में रहता है। कभी कभी और और चित्र भी रहते हैं। एप्रिल के अङ्क में डाक्टर थीबो का सचित्र चरित छपा है। इसकी अंगरेज़ी सरल और लेख स्कूल के लड़कों के लिए बहुत ही उपयोगी होते हैं। लड़कों के संरक्षकों को चाहिए कि यह पत्र वे ज़रूर मंगा कर लड़कों को दें।

***

बंगलोर ज़िले में आरकेर नाम का एक गाँव है। वहां दो लड़कियां एक ही में जुड़ी हुई पैदा हुई हैं। उनकी उमर इस समय कोई साढ़े तीन वर्ष की है। उनकी पीठ के नीचे का हिस्सा जुड़ा हुआ है। ३६ के अङ्क के समान दोनों की पीठें एक दूसरी के आमने सामने हैं। अर्थात् जब एक उत्तर को मुँह करके बैठती है तब दूसरी का मुँह दक्षिण को रहता है। मल-मूत्र-विसर्जन की जगह दोनों के लिए एक ही है। जब एक को उठने की हाजत होती है तब दूसरी को भी उठना पड़ता है। हाथ, पैर, सिर, टाँगें सब की जुदा जुदा हैं। इन यमल-कन्याओं के माता-पिता इनकी प्रदर्शिनी करते फिरते हैं। देखने की फ़ीस फ़ी आदमी एक आना है।

***

उत्तरी ध्रुव की सैर करने के लिए अनेक साहसी लोगों ने अनेक बार प्रयत्न किये हैं। पर पूरी पूरी कामयाबी किसीको नहीं हुई। डाक्टर नानस्यन के बाद अब एक और साहब उत्तर की ओर जानेवाले हैं—जानेवाले क्यों, उड़नेवाले हैं। आपका नाम है वाल्टर व्यलमेन। अगस्त में आप प्रस्थान करेंगे। प्रस्थान आपका एक पवन-नौका पर सवार होकर होगा। दो दफ़े पहले भी आप ध्रुव के आस पास घूम चुके हैं। आपके पवन-यान में "मोटर" के पुर्ज़े रहेंगे। उनमें गैस भरी रहेगी। मोटर में चालीस पचास घोड़ों की ताक़त रहेगी। उसी ताक़त से नौका आकाश में उड़ेगी। स्पिट्ज़बर्गेन से आप रवाना होंगे और पन्द्रह बीस मील फ़ी घंटे के हिसाब से उड़कर कोई १२०० मील की यात्रा तै करेंगे—यदि बीच ही में कोई विघ्न न हो गया तो। यदि नौका काम न देगी तो ज़मीन पर उतर कर बर्फ़ पर चलनेवाली स्लेज नाम की गाड़ी पर आप जायँगे। बेतार की तार-बर्क़ी का सामान भी आपके साथ रहेगा, जिससे आप प्रतिदिन की यात्रासम्बन्धिनी ख़बरें भेज सकें। आपको आशा है कि इस दफ़े आपको अवश्य कामयाबी होगी।

***

नागपुर की हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डली ने हिन्दी-ग्रन्थमाला नामक मासिक पुस्तक को मई १९०६ से निकालना शुरू कर दिया। इसके पहले अङ्क में चार लेख हैं।—मण्डली का निवेदन, निबन्धसंग्रह, स्वाधीनता और महारानी लक्ष्मीबाई का चरित। पुस्तक का रूप मनोहर और छपाई अच्छी है। मण्डली के उद्देश्य बहुत ऊंचे हैं। जिस तरह के लेख और ग्रन्थ वह प्रकाशित करना चाहती है उनकी बड़ी ज़रूरत है। ग्रन्थमाला का वार्षिक मूल्य साधारण ग्राहकों से ३ और स्थायी ग्राहकों से ४ रुपये है। इसके सम्बन्ध में पण्डित माधवराव सप्रे बी० ए०, देशसेवक प्रेस, नागपुर से पत्रव्यवहार करना चाहिए।

***

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डारविन साहब ने बन्दरों को आदमियों का पूर्वपुरुष बतलाया है। बन्दर ही धीरे धीरे आदमी हो गये हैं। इस बात को उन्होंने अनेक अनुमानों से सिद्ध किया है। अब एक वैज्ञानिक ने बन्दर-मनुष्य के इस सम्बन्ध को दोनों के ख़ून की परीक्षा करके सिद्ध किया है। उसने अनेक प्रकार की परीक्षायें करके यह सिद्धान्त निकाला है कि बन्दर के और मनुष्य के ख़ून में सादृश्य ज़रूर है। इससे यदि आदमी बन्दर से नहीं भी पैदा हुआ तो बन्दर और आदमी में परस्पर कोई नाता ज़रूर है। बन्दर, मनुष्य के प्र-प्र-प्र-प्रपितामह तो डारविन साहब की कृपा से सिद्ध हो गये, अब देखना चाहिए और कौन नाता निकलता है।

* *
*

मार्च १९०६ के "ज़माना" में एक लेखक महाशय उर्दू के विषय में लिखते हैं—

"नस्र की हालत नज़्म से ज़ियादह काबिल
"अफ़सोस है और आम अख़बारात की इबारत
"व इन्शापरदाज़ी देख कर मुमकिन नहीं कि
"हँसी ज़ब्त हो सके।"

वही लेखक पुराने ढंग की अनुपयोगी उर्दू-कविता के विषय में लिखते हैं—

"कोई शक नहीं कि मौलाना हाली का मुक़-
"द्दमा शायरी अकसर हज़रात के लिए इश्ते-
"आल तबा का बायस ज़रूर हुआ है। लेकिन
"ग़ुस्सा करनेवाले असल मतलब नहीं समझे।
"मौलाना हाली चाहते हैं कि उनकी क़ौम उस
"शायरी में अपना वक्त ज़ाया न करे जिससे अब
"कुछ हासिल नहीं। और अगर शौक शायरी
"मजबूर करता है तो कोई नई राह निकालना
"चाहिए। * * * * इन्होंने अकसर पुरानी शायरी
"पर सख़्ती के साथ हमले किये हैं मगर यह
"उनकी मिशन थी और नेकनीयती के साथ यह
"उनका फ़र्ज़ था कि क़ौम को पुरानी शायरी से
"जिस तरह हो सके नफ़रत दिलायें।"

ये बातें हम लोगों के भी विचार करने लायक़ हैं।

कलकत्ते के विश्वविद्यालय ने अब एक बहुत अच्छा नियम किया है। बंगाल में जो देशी भाषायें बोली जाती हैं उनमें विज्ञता प्राप्त करने, और अंगरेज़ी की उत्तमोत्तम पुस्तकों का—विशेष करके वैज्ञानिक पुस्तकों का—अनुवाद करने के लिए अब इनाम और वज़ीफ़े इत्यादि दिये जाया करेंगे। स्वदेशी भाषाओं के पुराने ग्रन्थों का सम्पादन करके उनकी विवेचना-पूर्ण आवृत्तियां निकालने और भाँति भाँति के खोज करने के लिए उत्तेजना देने के निमित्त भी यह नियम काम में लाया जायगा। बड़ी बात हुई जो यह नियम निश्चित हुआ। इस प्रान्त की गवर्नमेंट को भी इस विषय में बंगाल का अनुकरण करना चाहिए।

* *
*

आफरीक़ा की मरु-भूमि इस समय वालुकामय है। सैकड़ों कोस न कहीं पानी का नाम है, न वनस्पति का। आज तक इस मरुस्थल को किसी ने पार भी न कर पाया था। पर, हाल में गाटियर नाम के एक फ़रासीसी ने उसको पार कर लिया। वह लिखता है कि किसी समय आफरीक़ा का यह सहारा ख़ूब हरा भरा था और अच्छी तरह बसा हुआ था। उसे अनेक क़बरें वहां मिलीं; पत्थरों पर खुदी हुई पशुओं, पक्षियों और आदमियों आदि की तसवीरें मिलीं; आटा पीसने की चक्कियों के पत्थर मिले; पत्थर की कुल्हाड़ियां, तीरों के फल और दूसरे कितने ही प्रकार के अस्त्र, शस्त्र और औज़ार मिले। इस फ़रासीस-प्रवासी ने इन बातों से साबित किया है कि इस मरुस्थल में, किसी समय, करोड़ों आदमी रहते थे और कृषि इत्यादि करके आनन्द से अपना जीवन-निर्वाह करते थे। पर जैसे जैसे पानी कम बरसता गया मनुष्य इस प्रदेश को छोड़ते गये। और अब ऐसा समय है कि वहां आदमी क्या घास फूस तक का होना असम्भव है।

* *
*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलासपुर के वकील पण्डित रामराव राजाराम चिंचोलकर की मृत्यु का समाचार सुन कर हमें बहुत खेद हुआ। केवल ३० वर्ष की उमर में, ६ मई ०६ को, दिल की बीमारी से उनका शरीर-पात हुआ। महाराष्ट्र होकर वे हिन्दी के बहुत बड़े प्रेमी थे। जब तक "छत्तीसगढ़-मित्र" निकलता रहा आप का सम्बन्ध उस से बराबर बना रहा। जब नागपुर से पं० माधवराव सप्रे के उद्योग से हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डली स्थापित हुई तब उसमें भी रामराव जी शरीक हुए। आप ने इतनी दूर मध्य प्रदेश से आकर काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के डेप्युटेशन में योग दिया और कोई दो महीने तक आप काम करते रहे। रामराव जी बड़े धार्मिक, दयालु-हृदय, पावन-चरित और सरल-स्वभाव थे। सुनते हैं आप कुछ योग-साधन भी करते थे। इन सब गुणों से विभूषित होकर भी आप लोक-कल्याण-कारी कामों में बड़े उत्साह से योग देते थे। अभी कोई तीन ही वर्ष से आप ने बिलासपुर में विकालत शुरू की थी। यदि ये कुछ दिन तक जीते तो इन से बहुत कुछ देश-सेवा होने की आशा थी। परन्तु निर्दयी काल ने इन्हें बीच ही में इस लोक से खींच कर इन के इष्ट-मित्र और कुटुम्बियों को दुःख-सागर में निमज्जित कर दिया।

* * *

काशी के प्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय राममिश्र शास्त्रीजी का गतमास परलोक-वास हो गया। यह सुन कर किसे शोक न हुआ होगा? शास्त्रीजी संस्कृत के उद्भट विद्वान् और अनेक ग्रन्थों के कर्ता थे। आपने ३० वर्ष तक बनारस-कालेज में अध्यापकी करके पेनशन पाई थी। यदि आपका सचित्र जीवनचरित मिल सका तो हम उसे सहर्ष सरस्वती में प्रकाशित करेंगे।

धनुर्विद्याविशारद राना सुल्तानसिंह।

पुराने समय में हिन्दुस्तान जैसे और बातों में तत्कालीन दूसरे देशों से बढ़ा चढ़ा था वैसेही वीरता और धनुर्विद्या में भी बढ़ा चढ़ा था। शस्त्र-विद्या विषयक अद्भुत अद्भुत ग्रन्थ विद्यमान थे; यथानियम इस विद्या की शिक्षा होती थी; धनुर्विद्या-विशारद लोगों का सब कहीं आदर था। वे पूज्य समझे जाते थे; सब लोग उनसे डरते थे; और वे भी निर्बल को बलवानों के उत्पीडन से बचाते थे। परन्तु समय एक सा नहीं रहता। जिस देश की यह दशा थी उसके निवासी अब बन्दूक़ देखते ही घबरा उठते हैं, उसका चलाना तो दूर की बात है। शस्त्र रखने का उन्हें हुक्म तक नहीं। महाभारत और रामायण में धनुर्विद्या के जो अद्भुत अद्भुत प्रयोग वर्णन किये गये हैं वे इस समय बहुत कम लोगों को विश्वसनीय जान पड़ते हैं। यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। इस समय अनेक बातें ऐसी देखी जाती हैं कि यदि उनका वर्णन हमारे पूर्वज सुनते तो शायद ही वे उन पर विश्वास करते। इसी तरह जिन बातों में उन्होंने पराकाष्ठा प्राप्त की थी उन पर इस समय अब हमें विश्वास नहीं आता। बात यह है कि मानसिक शक्तियों का जिस विषय में जी लगा कर प्रयोग किया जाता है उसमें कमाल हासिल हुए बिना नहीं रहता। पुराने ज़माने में, विशेष करके क्षत्रिय लोग, धनुर्विद्या सीखने में तन्मनस्क हो जाते थे। उनका एक मात्र व्यवसाय ही यही था। इससे उनको विलक्षण सफलता होती थी। उस सफलता के सैकड़ों उदाहरण पुराणों में पाये जाते हैं।

धनुर्विद्या में परशुराम बहुत प्रवीण थे। पौराणिक बात है कि उन्होंने बाणवर्षा से समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

को पीछे हटाकर केरल देश ब्राह्मणों को दान कर दिया था। यह देश पहले जलमग्न था। दशरथ ने श्रवण नाम के एक ब्राह्मण के लड़के को, तालाब में पानी भरते समय, घड़े का शब्द सुनकर वे देखे ही शब्द-वेधी प्रयोग द्वारा, भूल से, मारा था। रामचन्द्र ने भी, लङ्का जाते समय, समुद्र को सुखाकर सेना-प्रयाण का प्रतिबन्ध दूर करने की धमकी दी थी। एक ही बाण से उन्होंने ताड़ के सात पेड़ों को छेद डाला था। भरत ने हनूमान् को बाण पर बिठा कर लङ्का में पहुंचा देने का अभिवचन दिया था। कौन कह सकता है कि इस तरह की बातें कल्पित-कहानियां हैं? इस देश की अद्भुत धनुर्विद्या के जो उदाहरण, आज कल की हमारी अत्यन्त शोचनीय स्थिति में भी, दैवात् दिखाई दे रहे हैं उनको आँखों के सामने रखकर पूर्वोक्त बातों को 'कल्पना-प्रसूत मानना अन्याय है। धनुर्विद्या की महिमा के मोह में फँस कर, अब, कुछ दिन से, कहीं कहीं, योरप-वाले भी इसकी चर्चा करने लगे हैं। पुरुष ही नहीं, स्त्रियां तक धनुर्बाण धारण करके, धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगी हैं। अनलास्त्र, पवनास्त्र, पर्जन्यास्त्र, मोहनास्त्र, शब्दवेध, सन्धान और आदान आदि प्रयोगों के वर्णन ने योरप वालों को चकित कर दिया है। सम्भव है, किसी दिन ये लोग अपने विलक्षण अध्यवसाय, परिश्रम और उत्साह से इन प्रयोगों को साध्य कर लें।

महाभारत में द्रोणाचार्य्य और उनके शिष्य अर्जुन की धनुर्विद्या-प्रवीणता के अनेक उदाहरण हैं और सब लोकोत्तर हैं। कुवें में गिरी हुई छोटी छोटी चीज़ों तक को द्रोण इषिकास्त्र से बाहर निकाल लेते थे। द्रुपद राजा के यहां मत्स्ययंत्र का भेद करके द्रौपदी को प्राप्त करने वाले अर्जुन की कथा कौन नहीं जानता? शरशय्या में पड़े हुए भीष्म के लिए बाण से पृथ्वी फोड़ कर पानी निकालने वाले सव्यसाची की प्रशंसा किसने नहीं सुनी? एकलव्य को नीच जाति का समझ द्रोणाचार्य्य ने उसे धनुर्विद्या सिखलाने से इनकार किया। तब उसने द्रोण की मूर्ति मिट्टी की बना कर अपने सामने रक्खी और धनुर्विद्या का अभ्यास आरंभ किया। वह उसमें इतना तन्मनस्क होगया कि अभ्यास करते करते कुछ दिनों में द्रोण के शिष्य अर्जुन की बराबरी करने लगा। इसके प्रायश्चित्त रूप में उस बेचारे को अपना एक अँगूठा देकर गुरु महाराज द्रोणाचार्य्य के ऋण से मुक्त होना पड़ा।

पृथ्वीराज का शब्दवेधी प्रयोग तो प्रसिद्ध ही है। शहाबुद्दीन ग़ोरी उसे क़ैद करके स्वदेश को ले गया। उसने पृथ्वीराज को अन्धा तक कर डाला। परन्तु चन्द भाट ने युक्ति से इसका पारिपत्य पृथ्वीराज से कराकर शहाबुद्दीन को प्राणदण्ड दिया। उसने पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण चलाने के कौशल की बड़ी प्रशंसा की। इस प्रयोग को शहाबुद्दीन ने देखना चाहा। लोहे के सात तवे कुछ दूरी पर टांगे गये। कंकड़ मारने से उन पर शब्द होते ही पृथ्वीराज ने उन्हें बाण से छेद दिया। चन्द ने ग़ोरी से कह रक्खा था कि वेध के समय पृथ्वीराज को उत्साहित करने के लिए आप को कोई उत्साहवाक्य ज़रूर कहना पड़ेगा। इस मंत्रणा के भीतरी अर्थ को न समझ कर शहाबुद्दीन ने इधर "शाबाश" कहा, उधर पृथ्वीराज की प्रत्यञ्चा से छूट कर, एक विषम बाण ने उसे धराशायी कर दिया।

अभी बहुत दिन नहीं हुए; दक्षिण में एक निशाने बाज़ था। उसके भाई और लड़के भी अच्छा निशाना लगाते थे। वे आमने सामने बन्दूक़ भर कर खड़े होते थे और एकही साथ फ़ायर करते थे। पर दोनों तरफ़ की गोलियां बीचही में परस्पर टकरा कर लड़ जाती थीं और चिपटी होकर दाहने बायें गिर जाती थीं। इस प्रयोग में कभी ग़लती नहीं हुई। यह बात कोचीन की एक मासिक पुस्तक ने प्रकाशित की है।

संदर्भ ग्रन्थ REFERENCE BOOK

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह के धनुर्विद्या-विशारद इस देश में पहले न मालूम कितने थे। परन्तु इस बीच में इनका प्रायः अभाव सा होगया था। बड़े हर्ष की बात है जो, मानों पुरानी ऐतिहासिक बातों को सच साबित करने ही के लिए, इस समय भी एक बहुत बड़े धनुर्विद्या-कुशल क्षत्रिय ने इस देश में जन्म लिया। आप का नाम है राना सुल्तान-सिंह। पर दक्षिण के निवासी इन्हें "राणा सर-तानसिंह कहते हैं"। १ दिसम्बर १९०५ का श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार आप के विषय में यों लिखता है।

"आप का घराना लींबड़ी राजवंश से है। इनके पूर्वपुरुष सरतानसिंहजी ने मुग़लयुद्ध के समय में उदयपुर की बड़ी सेवा की थी। अपना जान होम कर महाराज की युद्ध में रक्षा की थी। उसी समय से इनके कुटुम्ब को राना की पदवी प्राप्त हुई थी। लींबड़ी राज्य की ओर से लींबड़ी के पास ही रंगपुर में इनकी कुछ जागीर है। इनके पिता का नाम भूपतिसिंह और काका का केसरीसिंह था। सरतानसिंह जी का जन्म संवत् १९२० में हुआ था। इस समय इनकी उमर ४२ वर्ष की है। दस वर्ष की उमर से काका केसरी-सिंह जी इन्हें गोदी में बिठलाकर बन्दूक चलाना और निशाना मारना सिखलाते थे। बालकपन से ही ये प्रेम और चाव के साथ रामायण तथा महाभारत की कथा सुना करते और विचारा करते कि हमारे पहले के क्षत्रिय जब ऐसे वीर और धनुर्विद्या-पारङ्गत थे, तब क्या हम प्रयत्न करने पर कुछ भी नहीं हो सकते? शिकार में तो बालक-पन से ही प्रवृत्ति नहीं थी। निरपराध जीवों को सताना इन्हें कभी इष्ट नहीं था। परन्तु हिंसक जीवों का शिकार किया करते और महाभारत के अनुसार निशाने बाज़ी का अभ्यास बढ़ाते रहते। भेद इतना ही है कि प्राचीन वीर जब बाण से लक्ष्य भेद करते थे तब यह बन्दूक से करने लगे"।

"अभ्यास बड़ी वस्तु है। धीरे धीरे आप लक्ष्य-बेध में पारङ्गत होने लगे। अब इस समय आप तीस पैंतीस प्रकार के प्रयोग करते हैं। इन प्रयोगों को देखकर अवश्यही अपार आश्चर्य और आनन्द होता है। प्रसन्नता की बात है कि आपने अपने चिरञ्जीव पुत्र शूरसिंह जी को भी इस विद्या में पारङ्गत कर दिया है। कठिन प्रयोगों को छोड़ कर शेष प्रयोग आज कल इन्हीं से कराते हैं। एक बार आप के प्रयोगों को प्रसिद्ध वैद्यराज पंडित बालाशङ्कर बाबा भाई अचलजी के अनु-रोध से हमने भी देखा है और देखकर बहुत ही आनन्द लाभ किया है। स्वलसङ्कोच से आप के प्रयोगों का वर्णन करना तो हमसे बन नहीं पड़ता है परन्तु दो एक प्रयोग के आभास से पाठक इनकी लक्ष्यवेध-निपुणता का अनुमान कर लेंगे। आप बन्दूक को दाहने अथवा बायें कन्धे पर या टोंगे (?) बीच में रखकर खड़े बैठे या लेटे हुए हाथ से अथवा पैर से बन्दूक चला कर ठीक निशाना मार सकते हैं। चौखुटी लकड़ी पर बँधी हुई चार कुमरियों में से जिसे कहा जाय उसे चक्कर करते रहने की स्थिति में तोड़ देते हैं। श्लोक पढ़ते पढ़ते निशाना मारते हैं। जलती हुई मोमबत्ती को गोली से बुझा देते हैं, पर बत्ती में कुछ अन्तर नहीं आता। किसी के हाथ अथवा सिर में नारियल देकर उसकी नरेटी को तोड़ देते हैं, परन्तु न तो उस मनुष्य को चोट आती और न गोला टूटने पाता है। कुएँ के पानी में पड़े हुए सूखे नींबू को ऐसी गोली मारते हैं कि वह कुएँ के बाहर आ पड़ता है। यह प्रयोग को हमने तो नहीं देखा, परन्तु अभी में आपने इसे भी किया है। एक घड़े के भी चार रंग की कुमरियों को रख कर घड़े के घूमते रहने पर जिस रंग की कुमरिया को कहो उसे को बिना देखे तोड़ देते हैं। महाराजा दशरथ और पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण मारने की बात प्रसिद्ध ही है। आप भी आँखों में पट्टी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर चार रंग के रखे हुए घड़ों का शब्द सुनते और उसे मनन कर फिर घड़ों का स्थान उलट पुलट कर देने पर भी जिस रंग के घड़े को कहो उसी को तोड़ देते हैं। द्रुपद राजा की सभा में जिस मत्स्यवेध ने सब राजाओं की बुद्धि चकरा दी थी और जिसका वेध केवल अर्जुन कर सके थे वह मत्स्यवेध भी आप करते हैं। ऊपर खंभे पर एक मछली टांगी जाती है। उसके नीचे एक बड़े बर्तन में भरे हुए पानी में उसकी छाया पड़ती है। उस छाया को देख कर ही आप लटकते हुए तराज़ू में चढ़कर शरीर का गुरुत्वकेन्द्र ठीक रखते हुए ऊपर की टंगी हुई नकली मछली का वेध करते हैं।

"राना सुल्तान सिंह ने अपनी धनुर्विद्या के चमत्कार अनेक राजा महाराजाओं और अंगरेज़ अफ़सरों को दिखलाकर उनसे कितनेही प्रशंसा पत्र प्राप्त किए हैं। आप चाहते हैं कि कोई ऐसी व्यायाम-शाला बनवाई जाय जिसमें पुरानी धनुर्विद्या की शिक्षा दी जाय। ऐसा होने से यह विद्या, जो अब नष्टप्राय हो रही है, नाश होने से बच जायगी। परन्तु इस देश के दुर्भाग्य से ऐसा प्रबन्ध आज तक नहीं हुआ। ऐसे कितनेही राजा, तअल्लुकेदार, सेठ, साहूकार यहां पड़े हुए हैं जो एक नहीं ऐसी कितनीहीं शालायें खुलवा सकते हैं। पर जहां गुण की कदर ही नहीं वहां कोई क्यों इस तरह की बातों पर ध्यान देने लगा। आशा है, भारत की इस प्राचीन शस्त्र-विद्या को लोप होने से बचाने के लिये किसी न किसी धनशाली महोदय के मन में अवश्य दया का संचार होगा।"

कई महीने हुए पूना में राना सुल्तानसिंह और उनके पुत्र शूरसिंहजी ने जो मत्स्य-वेध, स्थिर लक्ष्य-वेध, भयानक-वेध, अदृश्य-वेध, शब्द-वेध आदि प्रयोग किये थे उनका वर्णन मराठी समाचार पत्रों और पुस्तकों में प्रकाशित हुआ था। उन का सारांश ऊपर श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार के अवतरण में भी आया है। उन्हींमें से दो चार प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्रयोगों का वर्णन, कुछ विस्तार के साथ, हम यहां पर देते हैं। इन प्रयोगों के करने में राना जी ने रायफल नाम की बन्दूक़ से काम लिया था और उसमें ऊपर से बारूद भरी थी। जगह कम होने के कारण कोई कोई प्रयोग उन्होंने तीस ही चालीस फुट पर रक्खे हुए निशाने को मार कर दिखलाये थे। पर अंगरेज़ी छावनियों में अनेक बार पाँच पाँच सौ गज़ के फ़ासले पर उन्होंने निशाने मार कर अंगरेज़ अफ़सरों को चकित किया है। अब उनके प्रयोगों का हाल सुनिए:—

इषिकास्त्र प्रयोग—एक कुवें में एक सूखा नींबू डाला गया। सूखा होने के कारण वह पानी पर तैरने लगा। राना जी कुवें के पास गये। नींबू को ध्यान से देख कर उन्होंने एक गोली ऐसी मारी कि वह नींबू कुवें के भीतर से उड़कर ऊपर उनके सामने तक आ गया। पर वेग कुछ कम होने के कारण वह बाहर न गिरा; फिर कुवें में चला गया। तब उन्होंने दुबारा सन्धान करके गोली मारी। इस दफ़ा वह नींबू कुवें से निकल कर बाहर आ पड़ा। इस प्रयोग के करने में राना जी ऐसी तिरछी गोली मारते हैं कि उसके धक्के से उछल कर नींबू ऊपर आ जाता है। इस प्रयोग में पहली बार नींबू बाहर नहीं गिर सका। पर भीतर से कुवें के मुँह तक आ जाना ही क्या कम करामात है?

भयानक-वेध—यह सचमुच ही बहुत भयानक वेध है। इसमें राना जी अपने पुत्र के सिर पर नारियल रखकर उसकी नरेटी को गोली से तोड़ते हैं। पर पूनेवालों ने नारियल को सिर पर रख कर तुड़वाना बहुत भयङ्कर समझा। इस लिए उनके कहने से राना जी ने नारियल को अपने पुत्र के हाथ में दिया और उन्हें कुछ फ़ासले पर खड़ा किया। उनके खड़े होते ही राना जी ने बन्दूक़ उठाई और बिना अच्छी तरह लक्ष्य किये ही बेपरवाही से उन्होंने फ़ायर कर दिया। बस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवाज़ होते ही नारियल के छिलके के टुकड़े टुकड़े हो गये। राना जी के इस लक्ष्यवेध-कौशल को देखकर देखनेवाले अवाक् रह गये। महाभारत और रामायण की जो बातें वे आज तक केवल कहानी समझते थे वे सब सच मालूम होने लगीं। साधुवाद की झड़ी लग गई।

अदृश्य-वेध। एक बहुत बड़ा चौड़े मुँह का मिट्टी का मटका रक्खा गया। उसके भीतर चार छोटी छोटी कुल्हियां रक्खी गईं। ये चारों रंगीन थीं। सब का रंग जुदा जुदा था। वे बड़े घड़े में इस तरह रक्खी गईं कि उनका ऊपरी भाग थोड़ा थोड़ा खुला था और बड़े बरतन के मुँह से देख पड़ता था। फिर बड़े मटके के भीतर घास फूस भर दिया गया जिस में छोटी कुल्हियां एक दूसरे से टकरा कर फूट न जायँ। तब एक लकड़ी बड़े बरतन के भीतर बीच में रखकर बाँधी गई। लकड़ी के ऊपर रस्सी लगाई गई। उसकी सहायता से वह बरतन एक आड़ी लकड़ी से लटकाया गया। रस्सी में खूब ऐंठन देकर वह बरतन टँगा हुआ छोड़ दिया गया। छोड़ते ही वह चक्कर करने लगा। इस अवस्था में राजा जी से कहा गया कि बरतन के भीतर रक्खी हुई अमुक रंग की कुल्हिया फोड़ दीजिए। बस कहने की देरी थी कि राना जी की बन्दूक़ से धड़ाम आवाज़ हुई और बतलाये गये रंग की कुल्हिया चूर चूर हुई देख पड़ी।

चललक्ष्य-वेध। इसके कई प्रकार हैं। कभी जलती हुई मोमबत्ती की नोक पर फायर करके राना जी सिर्फ बत्ती की लौ बुझा देते हैं, पर बत्ती जहां की तहां रहती है। कभी आप दो लकड़ियों को एक दूसरी के ऊपर आड़ी रखवाते हैं। फिर उनके चारों किनारों में मिट्टी का एक एक कुल्लड़ बँधवाते हैं। उन सब के रंग अलग अलग होते हैं। फिर उनको चक्कर दिलवाते हैं। चक्कर करते समय उनमें से जिस रंग का कुल्लड़ फोड़ने को उन से कहा जाता है तत्काल उसे [illegible] फोड़ देते हैं। ये वेध भी राना जी ने पूने में किये

मत्स्य-वेध। कोई आठ दस गज़ की उंचाई पर [illegible] कागज़ को फिरती हुई एक मछली टांगी गई। उस में दो बड़ी बड़ी आखें बनी थीं। मछली के नीचे एक प्रकाण्ड तराज़ू रक्खा गया। उस पर राना जी सवार हुए। एक पैर आपने एक पल्ले पर रक्खा, दूसरा दूसरे पर। पर तुल गुरुत्व साधने में ज़रा कठिनता हुई। तराज़ू हिलने लगा। यह देखकर दर्शकों ने समझा कि शायद इस वेध में राना जी को सफलता न होगी। परन्तु जहां राना जी ज़रा सँभले कि उन्होंने लक्ष्य वेध करही दिया। नीचे रक्खे हुए पानी के बरतन में रंगी हुई मछली की छाया देखकर मछली की जो आंख बेधने के लिए उन से कहा गया था वह बिध गई। उसे फाड़ कर गोली बाहर निकल गई। दर्शकों ने शाबाश! शाबाश! वाह वाह! से आकाश को गुञ्जायमान कर दिया। इसी मत्स्य वेध को करके अर्जुन ने द्रौपदी प्राप्त की थी। राना जी के और अर्जुन के वेध में कुछ अन्तर है पर कौशल दोनों में प्रायः तुल्य है।

शब्द-वेध। मिट्टी के चार घड़े लाये गये चारों रँगे हुये थे। सब का रंग जुदा जुदा था। घड़ों के लाने के पहले ही राना जी की आँखों पर रूमाल बांध दिया गया। तब हर एक घड़ा अलग अलग उनके पास लाया गया और हाथ से बजाया गया। रंग भी हर एक का बतला दिया गया। फिर वे घड़े दूर जाकर अदल बदल कर रक्खे गये। वहां पर वे फिर बजाये गये। पर इस दफ़े उनका रंग नहीं बतलाया गया। तब राना जी से कहा गया कि आप सफेद रंग के घड़े को लाल बनाइये। यह कहते ही राना जी की राइफल चली और सफ़ेद घड़ा चूर चूर हो गया। इस शब्द-वेध कौशल को देखकर दर्शक जन आनन्द, आश्चर्य और भक्ति से विह्वल हो उठे। पृथ्वीराज और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशरथ के जिस शब्द-वेध प्रयोग का ज़िकर ऊपर आ चुका है वह यही था।

जो वेध राना सुल्तान सिंह जी करते हैं प्रायः वे सब उनके चिरञ्जीव शूरसिंह भी करते हैं। इन पिता-पुत्र को बन्दूक़-विद्या यहां तक सिद्ध है कि जिस तरह वे चाहें चला सकते हैं। बैठकर, खड़े होकर, लेटकर, दाहिने हाथ से, बायें हाथ से, दाहिने कन्धे पर रखकर, बायें कन्धे पर रख कर, पैरों के बीच रखकर, जांघ पर रखकर चाहे जिस तरह से इनसे लक्ष्य-वेध करा लीजिए। ये कलियुग के सव्यसाची हैं। अर्जुन का नाम सव्यसाची इस लिए था कि वे दाहने-बांये दोनों हाथों से एक सा शर-सन्धान कर सकते थे। वही गुण राना सुल्तानसिंह और शूरसिंह में भी है। अन्तर इतना ही है कि अर्जुन धनुर्बाण से लक्ष्य-वेध करते थे; पर ये पिता-पुत्र गोली बन्दूक़ से।

ग्रीष्म।

[१]

गरमी आई गरमी आई ;
कैसी भारी गरमी आई ;
जो इसने सूरत दिखलाई ,
आकुलता जगभर में छाई।

[२]

देर न करो, नहीं अब धीर ;
शिमले चलो, चलो कश्मीर ;
अथवा जल्द चलो मंसूरी ,
वहीं बितावें गरमी पूरी।

[३]

ताती ताती रेत उड़ाती ;
आँधी बड़े ज़ोर से आती ;
आसमान में वह छा जाती ;
देख उसे ख़िलक़त घबराती।

[४]

बँगले में रक्खो रक्खी ही ,
काग़ज़ पर चलती चलती ही ,
स्याही सूख सूख जाती है ;
जब जल मिले, काम आती है।

[५]

हिमगिरि की चोटी से अड़ती ,
जब रवि की किरणें हैं पड़ती ,
वह भी पिघल पिघल जाता है ;
ऐसा उनसे घबराता है।

[६]

छाया भी छाया तकती है ;
तरुतल को न छोड़ सकती है ;
भूमि आगसी धग धगती है ;
झटपट लूह लपट लगती है।

[७]

झरने अगर कहीं मिल जाते ,
सिंह वहीं जाकर गिर जाते ;
जीभ निकाल हाँफते रहते ;
ज़रा न उछल कूद कुछ करते।

[८]

विकट प्यास से जब अकुलाते ,
साँप न न्योलों से डर पाते ;
दोनों पास पड़े रहते हैं ;
तो भी घात नहीं करते हैं।

[९]

आपस के घर्षण से वंश ,
पैदा कर चिनगारी अंश ;
जल बल स्वयं भस्म हो जाते ;
दुख औरों को भी पहुँचाते।

[१०]

वन में व्याप्त दवानल भारी ,
पशु, पक्षी सबका संहारी ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव जन्तु भगते फिरते हैं ;
व्याकुल जल जल कर मरते हैं ।

[११]

किसी तरह निज प्राण बचाकर ,
बैठे खग खेतों में जाकर ;
जहां तहां वट-छाया पाकर ;
बैठे हैं पशु गोल बनाकर ।

[१२]

गायों को चारा डलवाते ;
जगह जगह जो कुण्ड भराते ;
पानी की पोहें बिठलाते ;
धन्य पुरुष वे पुण्य कमाते ।

[१३]

तकिये पर अपना सिर रखकर ,
डाल दुपट्टा पतला मुख पर ,
जन सोते रहते हैं घर घर ,
दे किवाड़ अब दोपहरी भर ।

[१४]

" ठण्ढाई अच्छी बनवाओ ;
ओले के लड्डू गलवाओ ;
लाओ लाओ जल्दी लाओ ;
एक ग्लास तो देही जाओ ।

[१५]

" टट्टी छिड़को ; टट्टी छिड़को ;
है क्या कोई, टट्टी छिड़को ;
देखो तो सूखी जाती है ;
गरम हवा भीतर आती है ।

[१६]

" पंखा क्यों उठ कर न हिलाते ?
क्यों, क्या तुम तनख़्वाह न पाते ?
लेटे रहा नहीं जाता है ;
देखो स्वेद बहा आता है " ।

[१७]

धनवानों के नौकर सारे ,
पंखा खींच खींच कर हारे ;
टट्टी छिड़कें वे दम मारे ;
फिर भी यह सब सुनें विचारे ।

[१८]

मिलता है मुश्किल से पानी ;
उस पर भी है खैंचातानी ;
पनिहारिन पानी भरती हैं ;
आपस में लड़ लड़ मरती हैं ।

[१९]

" सूख न जावे कण्ठ लाल का,
गोदी के इस नये बाल का " ;
माँ बच्चे को इस विचार से ;
दूध पिलाती बड़े प्यार से ।

[२०]

प्राणों से भी प्यारों को भी ,
हृदय-स्थल के हारों को भी ,
स्त्रियां उतार दूर करती हैं ;
" हा गरमी गरमी " कहती हैं ।

[२१]

ढाके की मलमल मँगवा कर ,
मलयागरी उसे रँगवा कर ,
पोशाकें उसकी बनवा कर ,
प्रिया पहनती हैं सुख पाकर ।

[२२]

सुन्दर सुखद गुलाब-बहार ,
मृदुल मोगरे के नव हार ,
चन्दन, चन्द्र, उशीर, कपूर ,
सुख अब ये देते भरपूर ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[२३]

लीची ख़रबूज़ों का ढङ्ग ;
आम दिखाते अपना रङ्ग ;
तरबूज़ों की अजब बहार ;
करते हैं सब इनको प्यार ।

[२४]

"ठण्ढा पानी, ठण्ढा पानी,
बर्फ़-विमिश्रित सुरभित पानी"
जिनको देते श्री भगवान,
उनका बस यह रहता ध्यान ।

[२५]

दुनिया सब अतिशय अकुलाती ;
करवट बदल बदल रह जाती ;
आधी रात चली जब जाती,
नींद कहीं तब कुछ कुछ आती ।

[२६]

जो अमीर घर के होते हैं,
बहुत देर तक वे सोते हैं ;
चार घड़ी दिन चढ़े न जब तक,
बिस्तर से न उठें वे तब तक ।

[२७]

सत्यामृत जो पीते रोज़,
उन्हें नहीं ठण्ढक की खोज ;
गरमी की परवाह न करते ;
विकट काल से भी नहिँ डरते ।

[२८]

मोटे देशी वस्त्र पहन कर,
भारत-सेवा में वे तत्पर ;
हाथ जोड़ कर कहता गिरिधर,
"पूर्णव्रत कर उनको ईश्वर !"

गिरिधर शर्म्मा ।

प्रणय की महिमा ।

[१]

जो चित्त में प्रणय को रख, सावधान,
प्रारम्भ कार्य्य करते निज विद्यमान ।
पाके सदा सफलता कृत-कार्य-धन्य,
होते वही मनुज हैं, न कदापि अन्य ॥

[२]

मोद-प्रद प्रणय से जिनके विशाल,
होते विभूषित उरस्थल सर्व-काल ।
वेही मनुष्य जगती-तल में प्रधान,
हैं जानते प्रणय की महिमा महान ॥

[३]

होती जहां न प्रणय-प्रतिमा अमूल्य,
हो सत्य ही फिर न क्यों वह स्वर्ग-तुल्य ।
तो भी उसे नरक-तुल्य निकृष्ट जान,
जाते कदापि न वहां जन बुद्धिमान ॥

[४]

होता जहां प्रणय का सब काल वास,
चाहे मिलै फिर उन्हें अति तीव्र त्रास ।
आनन्द-मग्न-मन हो करके तथापि,
जाते वहां न नर-रत्न रुकें कदापि ॥

[५]

न्यायी नितान्त परमेश्वर भी महान,
देते स्वयं प्रणय को जब नित्य मान ।
है बात ही मनुज की फिर क्या ? बताओ,
तत्कीर्ति और महिमा सब काल गावो ॥

[६]

पूजा तथा जप तपादिक श्रेष्ठ कार्य,
हैं त्यागते न जिनको जन-पूज्य-आर्य ।
वे भी बिना प्रणय के द्रुत-दुःखहारी,
होते न पूर्ण फलदायक मोक्षकारी ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[७]

सम्बन्ध तोड़ सबसे अपना घनिष्ट,
होते मुनि-प्रवर जो वन में प्रविष्ट।
वे भी कभी प्रणय से तजते न नाता;
है, क्योंकि, ईश-पद-पद्म वही दिखाता।

[८]

जो चित्र देख कपि का मन में डरातीं;
जो पुष्प-सेज पर भी अति दुःख पातीं।
नारी वही प्रणय के बल से निशा में
जातीं चली गहन कानन की दिशा में।

[९]

है सत्य तो यह कि जो जन देहधारी,
आराधते न प्रणय त्रयतापहारी।
जानो इन्हें न नर; वे पशु अन्नभक्षी;
किंवा महा-अधम पक्ष-विहीन पक्षी।

[१०]

हारे अनेक सुकवि प्रतिभा-निधान;
तो भी न वे कर सके कुछ भी बखान।
गम्भीर-नीरधि समान महा अथाह,
हे मित्र, है प्रणय का महिमा-प्रवाह।

मैथिलीशरण गुप्त।

कर्तव्य-पञ्चदशी।

["Message to Yeung men" नामक चौथे नम्बर के मराठी पत्रक का भावार्थ]

[१]

दुर्भिक्ष-राक्षस जहां सबको सताता;
लाखों मनुष्य यह प्लेग-कृतान्त खाता;
नाना-विपत्ति-अभिभूत प्रजा जहां है;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है?

[२]

भूखों जहां मर रहे नर हैं करोर;
बे-वस्त्र लोग सहते नित शीत घोर;
दारिद्र-दुःख नितही बढ़ता जहां है;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है?

[३]

आरोग्य-युक्त बल-युक्त सुपुष्ट-गात;
ऐसा जहां युवक एक न दृष्टि आता;
सारी प्रजा निपट दीन दुखी जहां है;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है?

[४]

वीर्यादि दिव्य गुण का न जहां ठिकाना;
द्रोहादि दुर्गुण जहां सब ओर नाना;
धैर्यादि का अति अभाव सदा जहां है;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है?

[५]

सेवा-श्ववृत्ति सब काल जहां हमारी;
फैलीं जहां पर विदेशज वस्तु सारी;
देशी कला सकल नष्ट हुई जहां है;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है?

[६]

पाता न शिक्षण जहां शिशु-वृन्द सारा;
बाला-समूह सब मूर्ख जहां हमारा;
नाना-कला-कुशलता न कहीं जहां है;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है?

[७]

विद्वज्जन-प्रिय जहां परकीय-भाषा;
होती तिरस्कृत जहां निज मातृ-भाषा;
ऐसी अनर्थकर-रीति भला जहां है;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८]

सानन्द और सुख-युक्त जहां न नारी ;
पाते जहां पुरुष भी नित कष्ट भारी ;
तेजोविहीन शिशु-वृन्द अहो ! जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

[९]

स्वीकार लोग करते न नई सु-रीति ;
प्राचीन है--न तजते इससे कु-रीति ।
दुर्दैव-योग यह फैल रहा जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

[१०]

स्वाधीन-काम श्रम-काम जहां न प्यारे ;
दासत्व में जन जहां रममाण सारे ;
दासत्व-दुर्गुण-निमग्न सभी जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

[११]

अन्योन्य-वैर-रत वर्ग जहां समस्त ;
ज्ञानी, अज्ञान सब हैं कलह-प्रसक्त ;
साम्राज्य मोह-मद-मत्सर का जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

[१२]

उत्साह-हीन कृति-विन्मुख लोक-नेता ;
औदास्य-भाव अति दुःसह दुःख देता ;
है धर्म्म क्या ? न यह ज्ञान कहीं जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

[१३]

कर्तव्य लोग करते न जहां सदैव ,
होता सहायक वहां न कदापि दैव ;
पाता न मान यह तत्व भला जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

[१४]

है भूत काल सब स्वप्न-कथा-समान ;
चिन्ता-निमग्न निशि-वासर वर्तमान ;
नैराश्य-पूर्ण अगली गति भी जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

[१५]

अत्यन्त-दीन यह भारतवर्ष देश,
दुःखाग्नि-दग्ध विनती करता विशेष ;
अत्यल्प भक्ति मम हाय ! नहीं जहां है ;
कर्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहां है ?

सांची के पुराने स्तूप ।

आज हम सरस्वती के वाचकों को लगभग २५०० वर्ष की कुछ पुरानी इमारतों का संक्षिप्त वर्णन सुनाते हैं । वे इमारतें बौद्ध लोगों के स्तूपों का एक समूह है। इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं कि स्तूप किसे कहते हैं। जिस ने बनारस में सारनाथ का स्तूप देखा है वह स्तूप का मतलब अच्छी तरह जानता होगा। सारनाथ पर एक लेख सरस्वती में प्रकाशित हो चुका है।

किसी किसी का ख़याल है कि घर और मन्दिर इत्यादि बनाने, और पत्थर पर नक्काशी का काम करने की विद्या हम लोगों ने ग्रीस वालों से सीखी है। या, अगर सीखी नहीं, तो उनकी विद्या से थोड़ा बहुत लाभ अवश्य उठाया है। परन्तु यह बात निर्म्मूल है। ग्रीक और हिन्दुओं का संघर्ष, ईसा के पहले, चौथी शताब्दी में हुआ। परन्तु सांची के स्तूप इस बात की गवाही दे रहे हैं कि उससे भी पहले भारतवर्ष के वासियों ने अद्भुत अद्भुत मन्दिर बनाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपही आप सीख लिया था। इन स्तूपों से एक और बात का भी पता लगता है। उसके चित्र यह

उन्होंने मूर्त्तियां खोदने और दीवार उठाने का सबक़ देना शुरू कर दिया। ऐसा होना स्वाभा

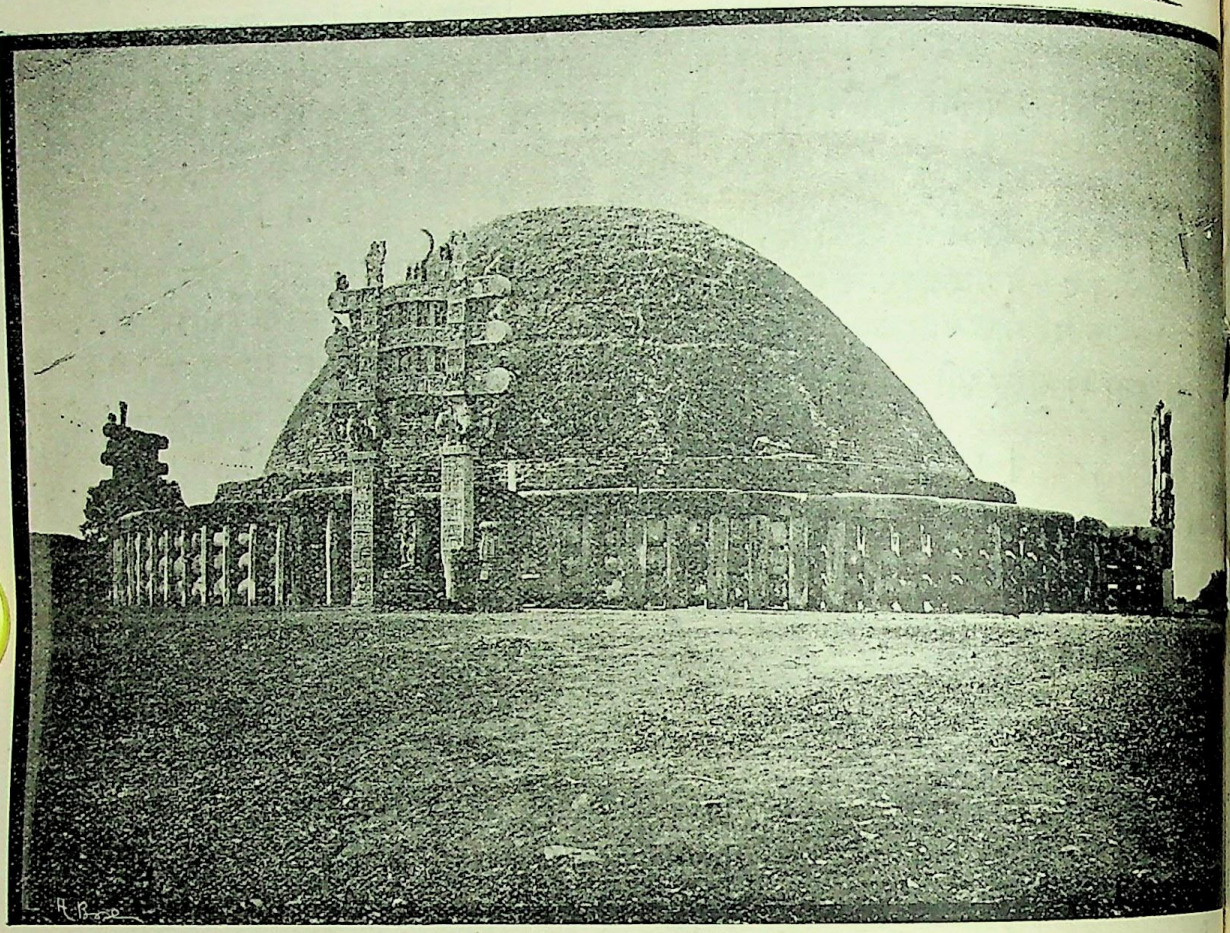

सांची के स्तूप का उत्तरी दृश्य।

ज़ाहिर करते हैं कि जिस समय ये स्तूप बने हैं उस समय, नहीं उससे भी पहले, इस देश के निवासी शिल्पकला, साधारण सभ्यता और विद्या में बहुत बढ़े चढ़े थे। जब कोई कम सभ्य या असभ्य जाति किसी सभ्य जाति का संसर्ग पाती है तब वह तत्काल ही उसकी सभ्यता की नक़ल नहीं करने लग जाती। इसके लिए कुछ समय दरकार होता है। अतएव, यदि, क्षण भर के लिए, यह भी मान लें कि ग्रीक लोगों ने ही हमको घर बनाना सिखलाया; तो यह कदापि नहीं माना जा सकता कि हमारा और उनका योग होते ही ही में नहीं आ सकता। अंगरेज़ों को इस देश में आये कई सौ वर्ष हुए। पर, हमने, इतने दिनों में, कितना कला-कौशल सीखा? इस देश में पुराने मन्दिरों और पत्थर के कामों के जो नमूने जहां तहां रह गये हैं उनका ढंग ही निराला है। अतएव वे किसी की नक़ल नहीं हैं।

बौद्धों के पुराने स्तूपों को देखकर कनिंहाम और फरगुसन इत्यादि विद्वानों को उनकी प्राचीनता और उनके शिल्पनिर्म्माण की अद्भुतता पर बड़ा आश्चर्य्य हुआ है। उन्होंने यह साफ़ साफ़ क़बूल कर लिया है कि भारतवर्ष ने इस विद्या में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत बड़ी उन्नति की थी और जब अंगरेज़ों के पूर्वज वन में वन-मानुसों के समान रहते थे तब भारतवर्ष वाले ऐसे स्तूप, मन्दिर और प्रासाद बनाते थे जिनको देखकर आज कल के कूपर्स-हिलवाले बड़े बड़े यञ्जिनियर भी आश्चर्य्य के महा-समुद्र में ग़ोता लगा जाते हैं।

डाक्टर फरगुसन का मत है कि बौद्ध लोगों की प्राचीन इमारतें पाँच भागों में बाँटी जा सकती हैं। यथा—

(१) पत्थर के विशाल खम्भे, या लाटें, जिन पर लेख खोदे जाते थे।

(२) स्तूप—जो गौतम बुध की किसी अवशिष्ट वस्तु के रक्षित रखने या किसी पवित्र घटना या स्थान के स्मरण दिलाने के लिए बनाये जाते थे।

(३) रेल्स अर्थात् पत्थर के एक प्रकार के घेरे जो स्तूपों के चारों ओर बनाये जाते थे और जिन पर बहुत बारीक नक्काशी का काम रहता था।

(४) चैत्य अर्थात् प्रार्थना-मन्दिर।

(५) विहार अर्थात् बौद्ध-संन्यासियों के रहने के स्थान।

स्तूपों का सबसे बड़ा और प्रसिद्ध समुदाय भिलसा के पास है। यह शहर सेंधिया के राज्य में है। कानपुर से जो रेल बंबई को जाती है वह भिलसा में ठहरती है। वहां स्टेशन है। भिलसा बहुत पुराना शहर है। वह बेतवा नदी के तट पर बसा हुआ है। उसका प्राचीन नाम विदिशा है। उसके आस पास अनेक स्तूप हैं। वे सब "भिलसा स्तूपों" के नाम से प्रसिद्ध हैं। पर सांची के

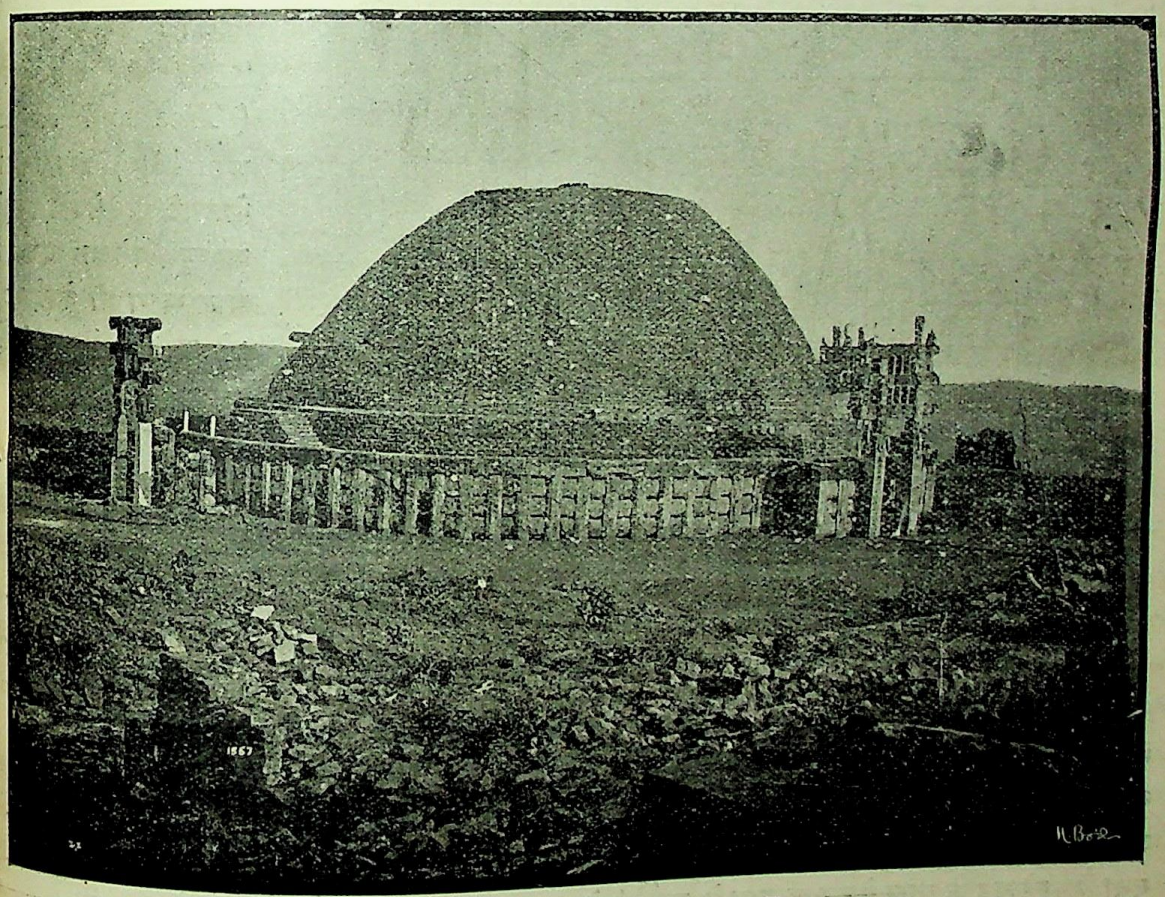

सांची के स्तूप का पूर्वी दृश्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

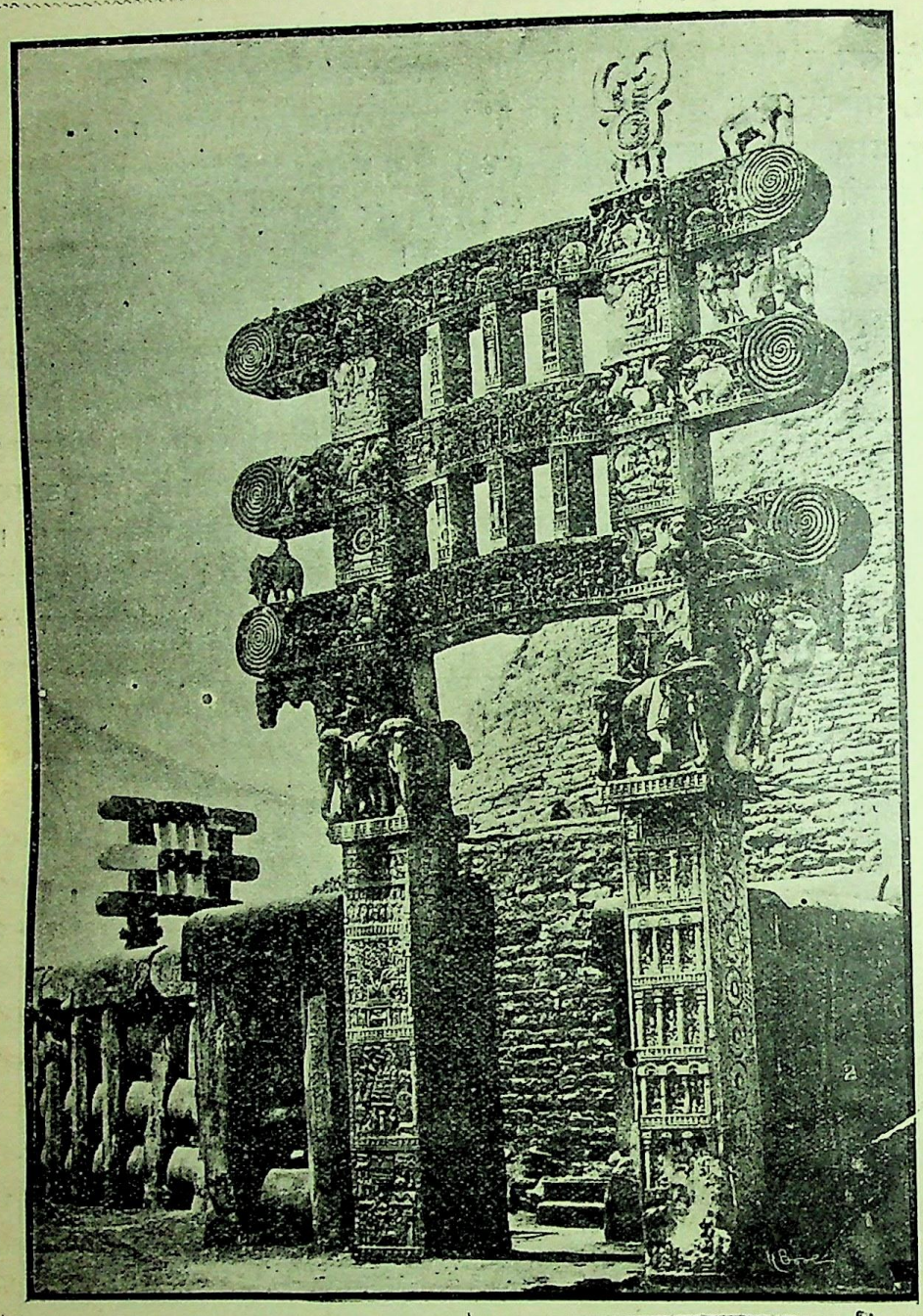

सांची के स्तूप का पूर्वी फाटक।

सभ्य-संसार को भिलसा के स्तूपों की सूचना, इस ज़माने में, सब से पहले कनिंहाम साहब ने दी; फिर फर्गुसन साहब ने। १८५४ ईसवी में कनिंहाम साहब ने "भिलसा टोप्स" नाम की एक किताब लिखी। उसमें इन स्तूपों का विस्तृत वर्णन है और इनके और इनके अवयवों के सैकड़ों चित्र भी हैं। इसके अनन्तर डाक्टर फरगुसन ने एक किताब लिखी। उसका नाम है "वृक्ष और सर्प-पूजा" (Tree and serpent worship) इस किताब के आधे हिस्से में इन स्तूपों का खूब पतेवार वर्णन है और साथ ही कोई ५० से भी अधिक चित्र भी हैं। इन्हीं किताबों की बदौलत सभ्य-संसार ने इन स्तूपों को जाना; इनकी कारीगरी कुछ कुछ उसकी समझ में आई; भारत के प्राचीन वैभव का कुछ अनुमान उसको हुआ। तब से योरप और अमेरिका तक वाले इन स्तूपों को देखने आते हैं।

स्तूप भूपाल की बेगम साहबा की रियासत में हैं। सांची भी रेल का स्टेशन है। वह भिलसा से पाँच मील आगे है। स्तूपों ही के कारण वहां यह स्टेशन बना है। स्टेशन के पास बेगम साहबा ने, दर्शकों के सुभीते के लिए, एक डाक बँगला भी बनवा दिया है।

जिन लोगों ने दुनिया भर की सैर की है उनका मत है कि मिश्र के पिरामिडों (स्तूपों) को छोड़ कर संसार में ऐसी कोई इमारत नहीं है कि देखकर उतना आश्चर्य्य, आतङ्क और पूज्यभाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

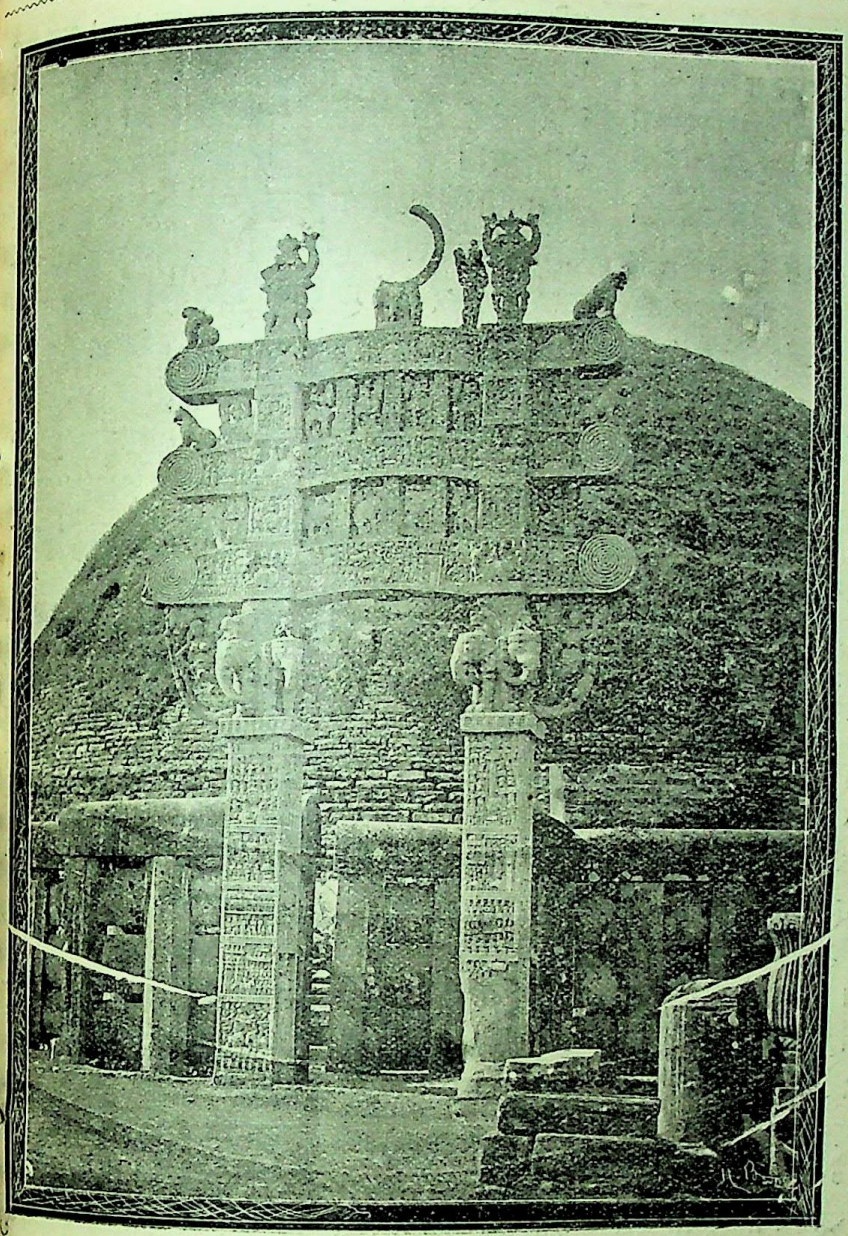

सांची के स्तूप का उत्तरी फाटक।

में उत्पन्न होता है जितना भिलसा के स्तूपों को देख कर होता है। मूर्तिभञ्जक मुसल्मानों ने इन स्तूपों पर भी हथौड़ा चलाया है और इनकी अनन्त मूर्तियों को छिन्न भिन्न कर डाला है। तथापि अभी इनका इतना अंश शेष है जिससे भारतवर्ष की प्राचीन कारीगरी का कुछ कुछ अनुमान किया जा सकता है। ये स्तूप अपने समय में इतने प्रसिद्ध थे कि सुदूरवर्ती चीन देश से भी बौद्ध परिव्राजक यहां आते थे। परन्तु बली काल ने इनको नष्टप्राय कर दिया है। ये, इस समय, घने जंगल के बीच में आ गये हैं; और जंगली जीवों ने इनको अपना घर बना लिया है।

भिलसा के बौद्ध-स्तूप पूर्व-पश्चिम १७ मील और उत्तर-दक्षिण ६ मील तक की ज़मीन में फैले हुए हैं। सब मिला कर वे ६५ हैं। इनकी तफ़सील इस तरह है—

१० सांची में। ८ सोनारी में। ७ सतधरा में। ३ अोधर में। ३७ भोजपुर में।

ये स्तूप प्रायः अशोक के समय के, अर्थात् ईसा के ३०० वर्ष पहले के, हैं। परन्तु सांची और सतधरा के स्तूप इनसे भी पुराने हैं। वे ईसा के कुछ कम ६०० वर्ष पहले के मालूम होते हैं। अर्थात् उनको बने कोई ढाई हज़ार वर्ष हुए!

भूपाल से सांची २६ मील है। वहां से कुछ दूर पर विश्वनगर किंवा वेशनगर नामक एक प्राचीन शहर के चिन्ह हैं। इस शहर का दूसरा नाम चैत्यगिरि था। बौद्धों के चैत्यनामक प्रार्थना-मन्दिरों की अधिकता के कारण इसका नाम चैत्यगिरि हो गया था। इसके आस पास अनेक मन्दिर, चैत्य और स्तूप भग्नावस्था में पड़े हैं। इससे सूचित होता है कि मालवा का यह प्रान्त किसी समय बहुतही अच्छी दशा में था। यहां पर कहीं कहीं पहाड़ियों के बीच के दर्रों में, पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इकट्ठा करने के इरादे से, प्राचीन समय में जो बाँध बाँधे गये थे, वे अब तक विद्यमान हैं। जान पड़ता है पुराने बौद्ध-भिक्षु परमार्थचिन्तक भी थे और किसानी का भी काम करते थे।

सांची के सब से प्रधान स्तूप के दक्षिण की तरफ़ जो खम्भा है उस पर, प्राचीन पाली भाषा में, "शान्ति-संघम" खुदा हुआ है। इसे कोई कोई "सन्त-संघम" अथवा "सन्तो-संघम" भी पढ़ते हैं। सांची इसी शान्ति अथवा सन्त शब्द का अपभ्रंश जान पड़ता है। बौद्ध साधु विहारों में ही रहते थे; स्तूपों में नहीं। इससे "सन्त-संघम" पाठ ठीक नहीं मालूम होता। "शान्ति-संघम" ही अधिक सयुक्तिक बोध होता है। हमने सांची के स्तूप प्रत्यक्ष देखे हैं; कई बार देखे हैं। पहले दफ़ा जब हम उन्हें देखने गये तब उनके प्राचीन वैभव का विचार करके और उनकी इस समय की भग्नावस्था को देखकर हमारी आँखों में आँसू भर आये। जिस पहाड़ी पर सांची है वह औरों से अलग है। वह वहां पर अकेली ही है। वह विंध्याचल की पर्वतमाला का एक टुकड़ा है। उसक ऊपरी भाग समतल है और कहीं कहीं पर सघन वृक्षों से आवृत है। सांची के स्तूप इस पहाड़ी के उत्तर-दक्षिण ओर हैं। पहाड़ी का यह भाग बेतवानदी के बांये किनारे से थोड़ी ही दूर पर है। इस पहाड़ी पर खँड़हर ही खँड़हर देख पड़ते हैं। इन खँड़हरों में १० स्तूप, एक चैत्य, गुप्तवंशी राजाओं के ज़माने का बना हुआ एक मन्दिर और एक विहार-इतनी इमारतों के भग्नावशिष्ट अंश हैं। अशोक के ऊंचे ऊंचे स्तम्भों के भी कुछ अंश यहां पर पड़े हैं। इन पर अशोक की घोषणा के कोई कोई अक्षर अब तक देख पड़ते हैं। चीन के परिव्राजक यात्री फ़ाह्यान ने सांची का नाम "शा-ची" लिखा है। उसका कथन है कि, जब वह इस देश में आया तब, सांची एक बहुत बड़ा राज्य था। वह कहता है कि साँची वह जगह है जहां पर गौतम बुध ने पवित्र पीतपर्णा के पेड़ को लगाया था। यह पेड़ हमेशा सात फुट ऊंचा बना रहता था; और यदि काट भी डाला जाता था तो फिर बढ़ जाता था।

पानी में उठने वाले बुलबुलों की तरह मनुष्य-जीवन नश्वर समझा गया है। जीवन की नश्वरता का स्मरण दिलाने के लिए बौद्धों ने जितने स्तूप बनाये हैं सब बुलबुले की शकल के बनाये हैं। सांची का सब से बड़ा स्तूप भी उसी शकल का है। वह सांची की पहाड़ी के पश्चिम तरफ़ है। उसके भीतर रक्खी गई कोई भी स्मारक वस्तु आज तक नहीं पाई गई। इससे अनुमान होता है कि यह स्तूप आदि बुध की यादगार में बनाया गया है। इसके चारों दरवाज़ों पर बुध की चार मूर्तियां हैं। इससे यह बात और भी अधिक दृढ़ता से अनुमान की जाती है। नैपाल में यह नियम है कि इस प्रकार के स्तूपों के दरवाज़े पर बुध की मूर्तियां अवश्य रक्खी जाती हैं। सांची के इस सब से बड़े स्तूप के भिन्न भिन्न भागों का काल इस प्रकार अनुमान किया गया है।

स्तूप—ईसा के ३०० से ६०० वर्ष पहले।

स्तूप के चारों तरफ़ का रेलिंग् यानी घेरा—ईसा के २५० वर्ष पहले।

फाटक—१९ से ३७ वर्ष ईसा के पीछे।

स्तूप की शकल कुछ कुछ अण्डाकार है। उसका सब से निचला भाग १२५ × ११८ फुट है। इस समय ज़मीन से वह ५५ फुट ऊंचा है। स्तूप के घेरे (रेलिंग) की उँचाई १० फुट से कुछ अधिक है। स्तूप के चारों तरफ़, ३३ फुट ऊंचे चार फाटक हैं। इस घेरे का गर्भसूत्र १५ फुट है। घेरे में दो दो फुट के फ़ासले पर आठ फुट ऊंचे अठकोने खंभे हैं। ये खंभे, ऊपर एक दूसरे से जोड़ दिये गये हैं। घेरे के रेल और खंभों पर संगतराशी की कारीगरी की पराकाष्ठा कर दी गई है। यही हाल फाटकों के ऊपर बने हुए तोरणों का है। शिल्पकला-विशारद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

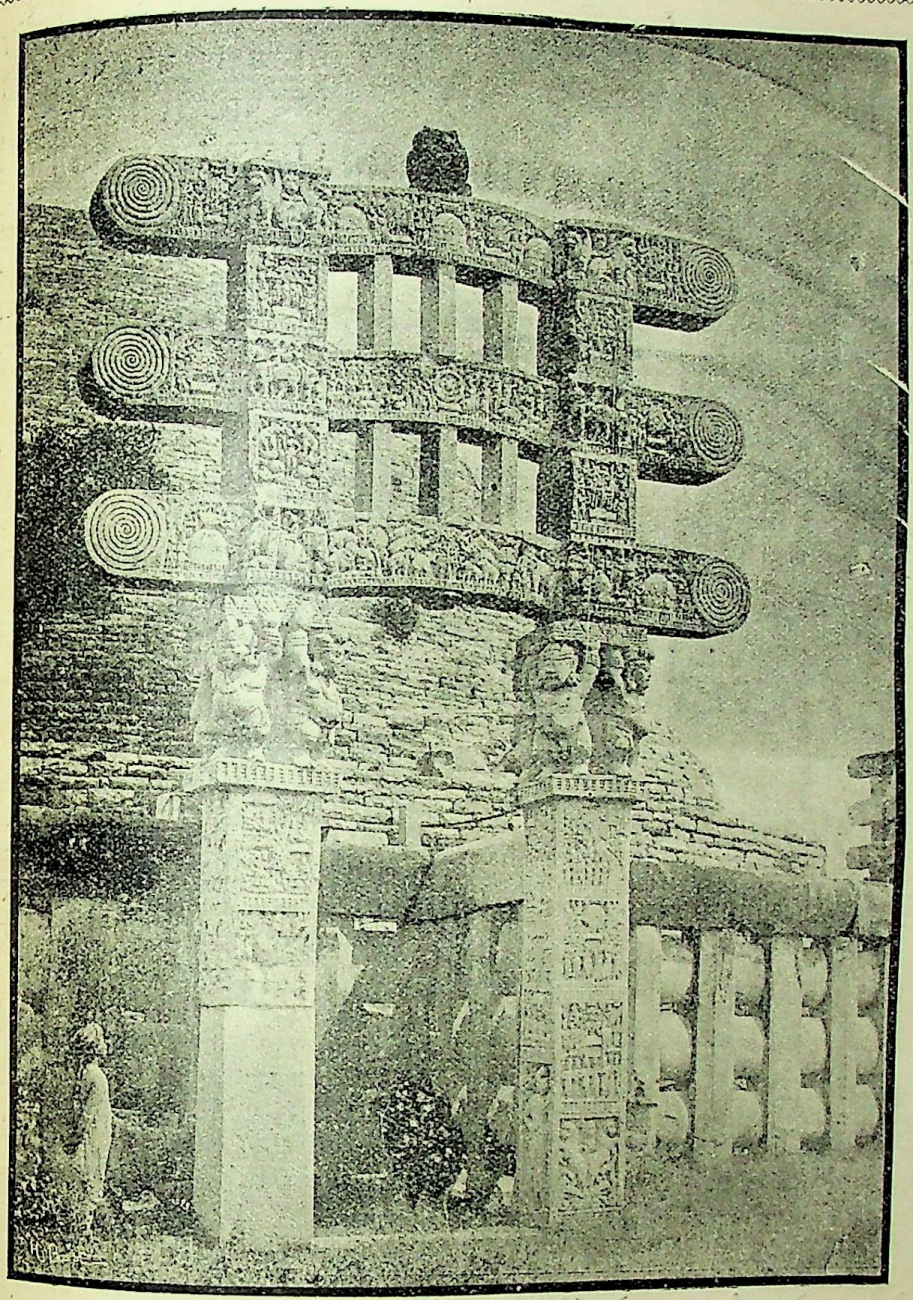

सांचो के स्तूप का पश्चिमी फाटक।

विद्वानों का मत है कि इस नमूने का ऐसा अच्छा काम हिन्दुस्तान में और कहीं नहीं है। वे कहते हैं—"The gateways are covered with elaborate sculptures, quite unequalled by any other examples known to exist in India."

स्तूप का मध्य भाग बिलकुल ठोस है। वह ईंट और गारे से बना हुआ है। परन्तु बाहरी भाग में पत्थर जड़े हुए हैं। उन पर ४ इंच मोटा चूने का पलस्तर था; पर अब वह प्रायः उखड़ गया है। पलस्तर पर रंगीन चित्रों की एक अनुपम चित्रावली ज़रूर रही होगी; यह लोगों का अनुमान है। इसके घेरे में जो पत्थर के लम्बे लम्बे टुकड़े (रेल) हैं उन पर उनके बनवानेवालों के नाम खुदे हुए हैं। इससे जान पड़ता है कि स्तूप के चारों ओर जो घेरा है वह पीछे से, क्रम क्रम से, बना है। इस घेरे के बन जाने पर फाटक और फाटकों पर तोरण बने हैं। स्तूप के दक्षिणी और पश्चिमी तोरण गिर पड़े थे। १८८२-८३ ईसवी में अंगरेज़ी गवर्नमेंट ने उनकी मरम्मत करा दी; उत्तरी और पूर्वी फाटकों की फिर से जुड़ाई कराके मज़बूत करा दिया; और स्तूप के चारों तरफ़ जो घेरा है उसकी भी मरम्मत कराके जहां जहां पर वह टेढ़ा हो गया था वहां वहां पर उसे सीधा करा दिया। घेरा, फाटक और तोरणों में जितनी मूर्तियां थी सब को साफ़ करा दिया और जंगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

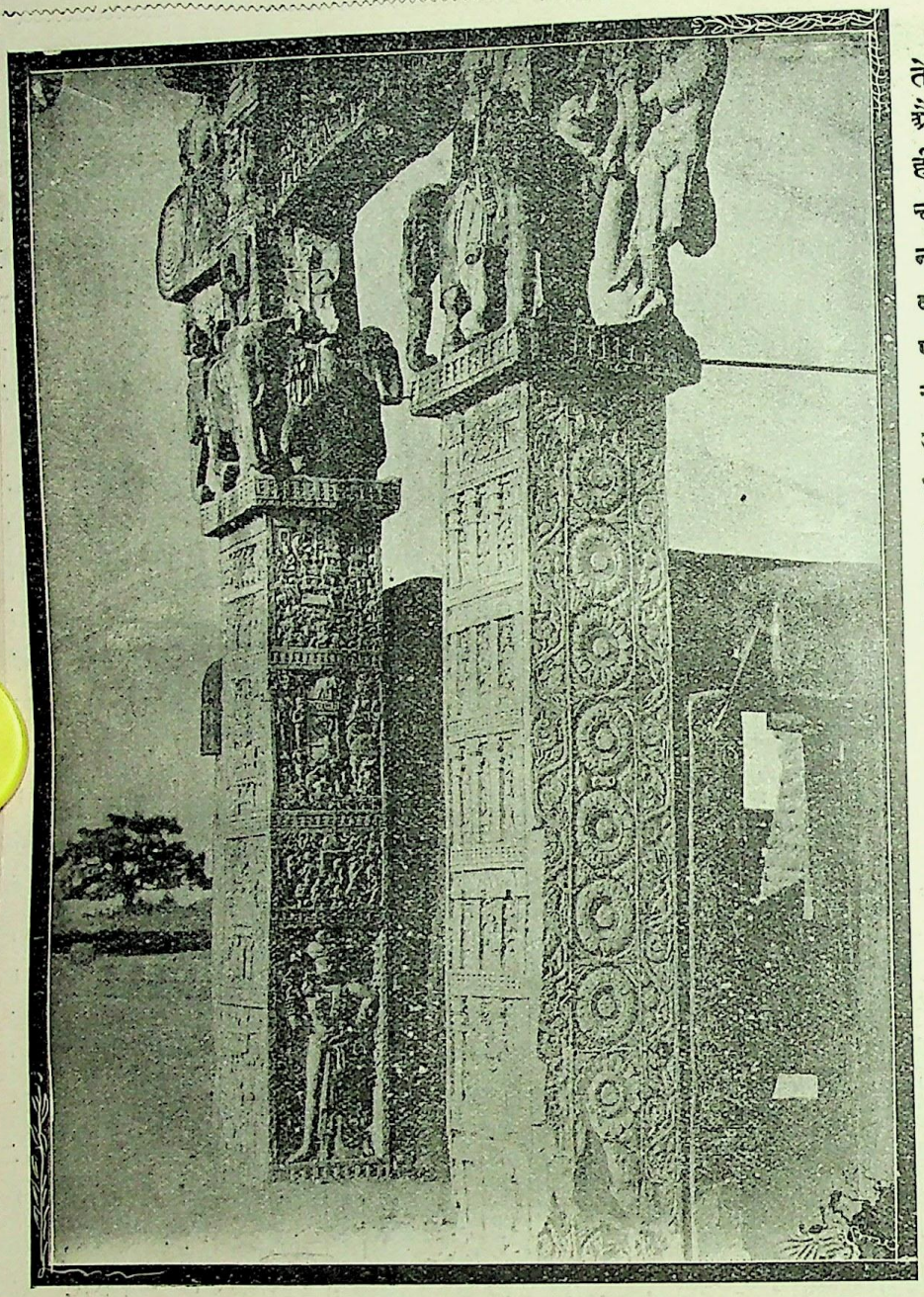

सांची के स्तूप के पूर्वी फाटक के खंभे।

भी कटवा डाला। इससे दर्शकों के आने जाने का मार्ग प्रशस्त हो गया। इस स्तूप की अनेक मूर्तियां टूट टूट कर नीचे गिर गई हैं। उनको लोग वहां से उठा ले गये हैं। जो नीचे पड़ी मिलीं अथवा वैसी ही जो अभी तक अपने स्थान पर बनी हैं, उनसे सिद्ध होता है कि इस स्तूप में अनन्त मूर्तियां थीं।

फाटकों के ऊपर जो तोरण हैं उन पर, आगे और पीछे दोनों तरफ़, बहुत ही अच्छा काम था। एक चावल भर भी जगह ऐसी न थी, जहां कोई कारीगरी का काम न हो। इन तोरणों पर गौतम बुध का जीवन-चरित चित्रित था। उनके जीवन की जितनी मुख्य मुख्य घटनायें थीं वे सब पत्थर पर खोद कर मूर्तियों के रूप में दिखलाई गई थीं। अब भी इस चित्रात्मक चरित का बहुत अंश देखने को मिलता है। इसके सिवा बौद्धों के जातक नामक ग्रन्थों में, बुध के पहले ५०० जन्मों से सम्बन्ध रखनेवाली जो गाथायें हैं, उनका भी दृश्य इन तोरणों पर खचित था। इन तोरणों को तोरण न कहना चाहिए। इनको बौद्ध-धर्म्म की पौराणिक और ऐतिहासिक बातों की सजीव तसवीर कहना चाहिए।

कई जगहों पर बुध की माता मायादेवी की मूर्ति है। वे कमल पर बैठी हैं; ऊपर छत्र है; दाहिने हाथ में नालसहित कमल का एक फूल है; दोनों तरफ़ दो हाथी हैं जो घड़ों से उन पर जल का अभिषेक कर रहे हैं। मायादेवी का स्वप्न देखना, राजकुमार सिद्धार्थ (गौतम बुध) के गर्भ में आने का समाचार सुनकर उनके पास सेवकों और कुटुम्बियों का इकट्ठा हो जाना, उन पर चमर करते हुए उनसे स्वप्न का हाल पूछना इत्यादि पूर्वी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

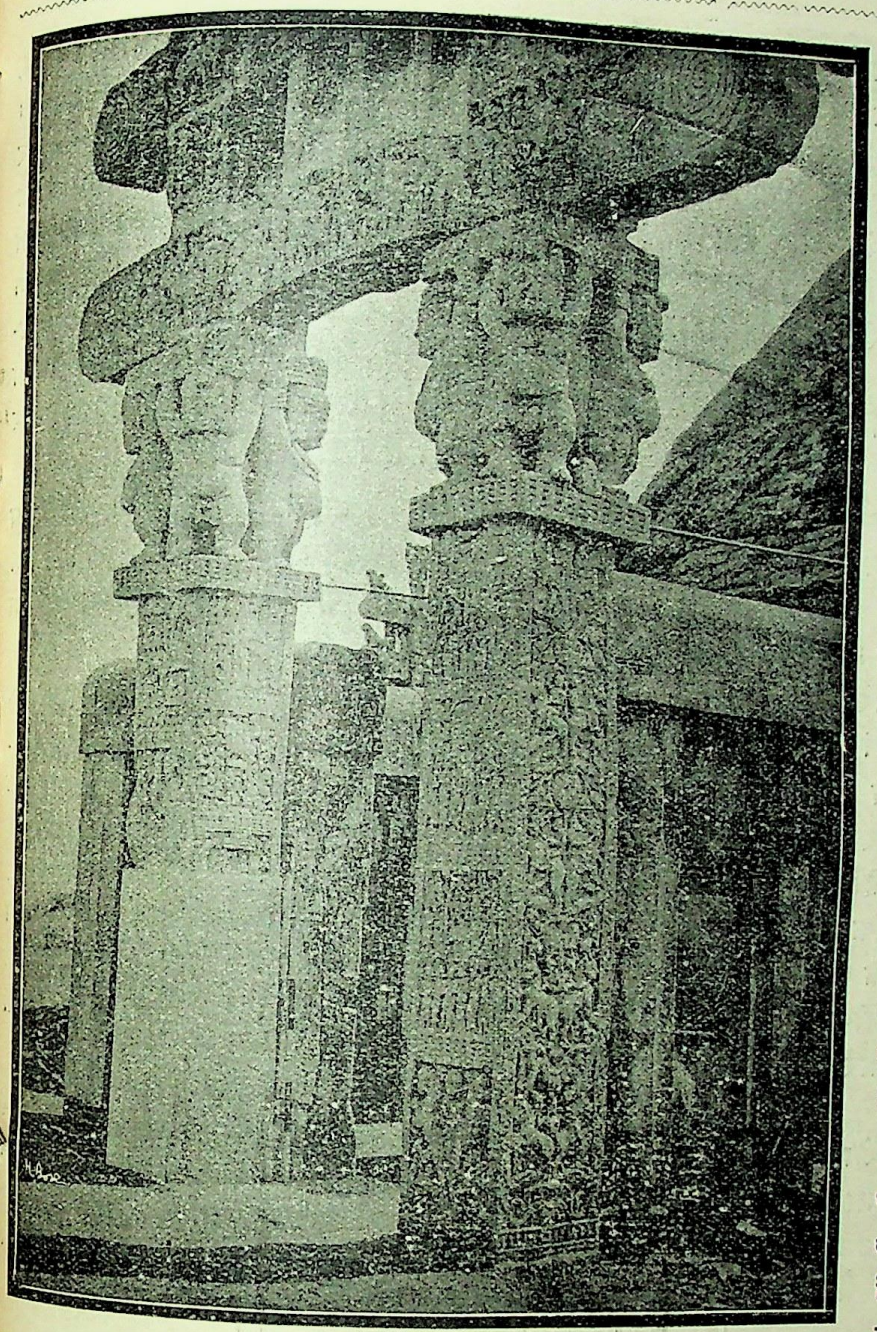

सांची के स्तूप के पश्चिमी फाटक के खंभे।

तोरण के भीतरी ओर खचित है। ईसा के ६२३ वर्ष पहले लुम्बिनी बाग़ में गौतम का पैदा होना और यशोधरा के पाने की इच्छा से, १६ वर्ष की उम्र में, धनुर्विद्या के अद्भुत अद्भुत कौतुक दिखलाना पश्चिमी तोरण के दाहिनी तरफ़वाले खंभे पर अंकित है। २९ वर्ष की उम्र तक गौतम ने ख़ूब विषयोपभोग किया। उनकी इस समय की शृङ्गारिक दिनचर्य्याओं के चित्र उत्तरी फाटक के बायें खंभे पर खुदे हुए हैं। नर्तकी स्त्रियों के नृत्य और हाव भाव आदि के चित्र भी पूर्वी फाटक के तोरण में हैं। वृद्ध, बीमार, मृतक और साधु—इन चारों को चार चार महीने के अनन्तर देख कर गौतम को विराग पैदा हुआ था। उनके विराग के ये चिन्ह भी पूर्वी और उत्तरी फाटकों पर हैं। इसी तरह स्त्री-पुत्र से विदा होना, तपस्या करना, बोधि वृक्ष के नीचे बोधिसत्वता को पाना, उपदेश करना और अन्त में निर्वाण को पहुंचना—इत्यादि शाक्यमुनि के जीवन की सारी घटनायें बड़े ही कौशल से मूर्तियों के रूप में दिखलाई गई हैं।

कहीं कहीं पर वृक्षों की, पशुओं की और स्वयं स्तूपों की पूजा किये जाने के भी चित्र इस स्तूप में हैं। रामग्राम नामक नगर में एक स्तूप है। उसकी मूर्ति यहां बनी हुई है। उसे हाथी, अपनी सूंड़ में पानी ला ला कर साफ़ कर रहे हैं और झाड़ू से उस पर की ख़ाक झाड़ रहे हैं। बरगद का एक वृक्ष है; वह एक मन्दिर से घिरा हुआ है। उसकी दाहिनी ओर, पूजा के लिए, अपने सेवक-समूह के साथ, एक राजा बैठा है। बाईं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और दैत्य हैं; घोड़े और हाथियों पर सवार राजा के सैनिक उनको कुचलते हुए चले जाते हैं। यह बड़ा ही विलक्षण दृश्य है। सैकड़ों मूर्तियां आकाश की तरफ़ हाथ उठाये प्रार्थना कर रही हैं; मनुष्य का ऐसा सिर लगाये भेड़ और शेर इधर उधर झांक रहे हैं; शाक्य मुनि का चिन्ह, चक्र, टौर ठौर पर, अपने बनानेवालों के शिल्पकौशल की प्रशंसा सा कर रहा है। हिरनों के झुण्ड के झुण्ड भागते हुए कहीं कहीं दिखाई दे रहे हैं।

दक्षिणी तोरण के ऊपर एक शहर के घेरे जाने का दृश्य बड़ा ही मज़ेदार है। यह धर्म्मयुद्ध का एक दृश्य है। गौतम बुध की कुछ अवशिष्ट चीज़ें छीनना है। इसीलिए यह युद्ध छिड़ा है और शहर को घेरना पड़ा है। जो लोग घिरे हैं वे घेरनेवालों पर भीतर से तीरों और पत्थरों की वर्षा कर रहे हैं। घेरनेवालों के पास धनुर्बाण और ढाल है। उन्हींसे वे अपना बचाव भी करते हैं और शत्रुओं पर शरवर्षा भी करते हैं। जिस चीज़ के लिए युद्ध हो रहा है वह एक सन्दूक़ के भीतर है; उसे एक हाथी अपने मस्तक पर लिए जा रहा है। उसके पीछे एक राजा है; वह रथ पर सवार है। साथ ही कई आदमी हाथियों पर आरूढ़ हैं और कई पताकाधारी भी हैं।

फाटकों पर स्त्रियों की जो मूर्तियां हैं वे सब नंगी हैं। उनकी कमर में माला के आकार की सिर्फ़ एक तागड़ी भर है। उनके केश-कलाप एक अजीब तरह से गुथे हुए हैं, और वे पीठ पर लटक रहे हैं। कान में कुण्डल हैं; गले में हार है; और कलाई में कड़े या चूड़ियां हैं। भुजा पर भी वे कोई चीज़ पहने हुए हैं। पुरुषों की कमर के नीचे का भाग ढका हुआ है। वे पगड़ी भी पहने हैं; किसी किसीकी पगड़ी आभूषणों से भूषित है। एक जगह पर एक स्तूप की पूजा हो रही है। पूजक विदेशी जान पड़ते हैं। भेष से जान पड़ता है कि वे हिमालय के पार्श्ववर्ती प्रदेश के हैं।

शस्त्रों के भी चित्र बने हैं। धनुर्बाण, भाला, तलवार, परशु और ढाल के सैकड़ों प्रतिरूप हैं। कहीं कहीं पर रथ भी बने हैं; उनको बराबर बराबर चार घोड़े खींच रहे हैं। एक आध जगह एक एक दो दो जोड़े भी घोड़ों के जुते हैं। घोड़ों का साज सामान दुरुस्त है। दुंदुभी, भेरी, मृदंग और वीणा के भी रूप हैं। चारपाइयां हैं; खूबसूरत तिपाइयां हैं; बड़ी बड़ी नावें हैं। स्त्रियां पानी भर रही हैं; अनाज साफ़ कर रही हैं; और रोटी बना रही हैं।

यह सबसे बड़े स्तूप की बात हुई। जो स्तूप इससे छोटा है उसका व्यास ३९ फुट है। उसमें भी चार फाटक हैं और चारों तरफ़ घेरा बना हुआ है। घेरे की उँचाई ७॥ फुट है। उसके भी खंभों पर फूल, पत्ती और जानवरों इत्यादि के बड़े ही सुन्दर रूप खचित हैं। दरवाज़े पर एक स्त्री हाथ में कमल लिए हुए खड़ी है। उसकी बनावट बहुत ही चित्तवेधक है। यह स्तूप ईसा के कोई २०० वर्ष पहले का है। इस पर जो लेख हैं उनकी लिपि अशोक के समय की लिपि से मिलती है। इसके भीतर अशोक के समय में हुए, बौद्ध-धर्म के अनुयायी, दस ग्यारह साधुओं की स्मारक चीज़ें मिली हैं।

तीसरे नम्बर का स्तूप बिलकुल ही बरबाद हालत में पड़ा है। उसका बहुत ही थोड़ा अंश शेष रह गया है। उसकी इमारत ईसा के कोई ५०० वर्ष पहले की जान पड़ती है। उसके भीतर बुद्ध के दो प्रसिद्ध चेलों के स्मारक पदार्थ मिले हैं।

और स्तूप बहुत छोटे हैं। उनमें कोई विशेषता नहीं है; और न उनमें किसीकी स्मारक कोई वस्तु ही मिली है।

बड़े स्तूप के दक्षिण-पूर्व गुप्तवंशी राजाओं के समय का एक छोटा सा मन्दिर है। वह करीब १७०० वर्ष का पुराना है। जिस नमूने का वह है उस नमूने का सबसे पुराना मन्दिर वही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष की इन पुरातन इमारतों की कारीगरी को देखकर यहां की पुरानी सभ्यता और शिल्प-कौशल का बहुत कुछ पता मिलता है। इन पर जो लता, पत्र, पशु, पक्षी और नर, नारियों इत्यादि की मूर्तियां हैं वे इस बात का प्रमाण हैं कि २५०० वर्ष पहले जब इस दुनिया में, दो एक देशों को छोड़ कर, असभ्यता और जंगलीपन का पूरा साम्राज्य था तब भारतवर्ष में विद्या, कारीगरी और साधारण सभ्यता किस दरजे को पहुंच गई थी। पर, इस समय, बात बिलकुल उलटी हो गई है। अफ़सोस!

परलोक से प्राप्त हुए पत्र।

एक ज़माना वह था जब कानपुर से कलकत्ते चिट्ठी का पहुँचना मुशकिल था और यदि पहुँचती भी थी तो महीनों लग जाते थे। अब गवर्नमेंट के सुप्रबन्ध की बदौलत पाँच मिनट में वहां ख़बर पहुँचती है। पुराने ज़माने का मुक़ाबला आज कल से करने पर ज़मीन आसमान का अन्तर देख पड़ता है। परन्तु रेल और तार का प्रचार हुए बहुत दिन हो गये। इससे इन बातों को देख कर अब विशेष आश्चर्य्य नहीं होता। हां, एक बात सुनकर हमारे पाठकों को शायद आश्चर्य्य हो। वह बात, पृथ्वी से परलोक तक तार लग जाना है। यह अदृश्य तार है; पर ख़बरें इससे आने लगी हैं। यदि इसी तरह उन्नति होती गई—और इस उन्नति के ज़माने में ऐसा होना ही चाहिए—तो शायद किसी दिन परलोक तक रेल भी लग जाय और डाकख़ाने खुल कर वहां और यहां के डाकख़ानों का मेल हो जाय। नई अध्यात्मविद्या चाहे जो करे।

इँगलैंड से एक मासिक पुस्तक निकलती है। उसका नाम "ब्रॉड व्यूज़" (Broad Views) है। उसमें एक लेख, अभी हाल में, अध्यात्मविद्या पर निकला है। उसका सारांश हम नीचे देते हैं। लेख का अधिकांश परलोकवासी लार्ड कारलिंगफर्ड के भेजे हुए पत्र हैं। "ब्रॉड व्यूज़" के सम्पादक ने पढ़नेवालों को विश्वास दिलाया है कि ये पत्र जाली नहीं; सच हैं।

आयरलैंड में लार्ड कारलिंगफर्ड एक प्रसिद्ध राजकीय पुरुष हो गये हैं। १८९८ ई० में उनकी मृत्यु हुई। वे पारलियामेंट के मेम्बर और ट्रेजरी (ख़ज़ाने) के लार्ड रह चुके थे। मरने के बाद उन्होंने अपने कुटुम्ब की एक स्त्री के द्वारा परलोक से ख़बरें भेजनी शुरू कीं। इस स्त्री को अध्यात्मविद्या का शौक़ था। वह बहुत अच्छी "पात्र" थी। उसके शरीर में परलोकगत आत्मायें प्रवेश करके इस लोकवालों से बातचीत करती थीं। कुछ दिन तक तो इस स्त्री के द्वारा लाट साहब ख़बरें भेजते रहे। कुछ दिन में एक और स्त्री को "पात्रता" को उन्होंने पसन्द किया। इस विषय में इस स्त्री की शक्ति ख़ूब बढ़ी चढ़ी थी। सात वर्ष तक लाट साहब को चिट्ठियां आती रहीं और इस नये "पात्र" के हाथों से लिखी जाती रहीं। लाट साहब के कुटुम्ब की जिस स्त्री के पास ये पत्र थे उसने "ब्रॉड व्यूज़" के सम्पादक को उन्हें प्रकाशित करने के लिए अनुमति दे दी है। इससे वे अब प्रकाशित किये जा रहे हैं। संक्षेप में, उनमें कही गई बातें, सुनिए—

१ जिन बातों को मैं पृथ्वी पर, पञ्चभूतात्मक शरीर में रह कर, नहीं जान सका उन्हें अब मैंने जान लिया है। मैं अब परमानन्द में मग्न हूं। पृथ्वी पर मैं सोया था; अब मैं जग रहा हूं। मुझे सख़्त अफ़सोस है, मैंने अपना मानव-जीवन स्वार्थ और बुरी बातों में व्यर्थ खो दिया। अपार दुःखों से मेरा जीवन भारभूत हो गया था। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। निराशा मुझ पर छाई हुई थी।

२ जब मैं पिछली बातें याद करता हूं, मुझे बड़ा दुःख होता है। मेरी स्वार्थ-बुद्धि बेहद बढ़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई थी। परन्तु अब मैं इस लायक़ हो गया हूं कि पुरानी भूलों का मैं निराकरण कर सकूं।

३ मुझे अभी बहुत कुछ करना है। मेरा भविष्य आशा और आनन्द से भरा हुआ है। भविष्य में मैं अपनी अनेक महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने की आशा रखता हूं।

४ मनुष्य-जीवन को एक तरह का स्कूल समझना चाहिए, परन्तु जिस अवस्था में मैं अब हूं उसकी बात बिलकुल ही भिन्न है। जो बातें, पृथ्वी पर, स्वप्न सी मालूम होती थीं वे यहां करतलामलकवत् हो रही हैं। जीवन के उद्देश्य, शिक्षण और फल का ज्ञान यहीं अच्छी तरह होता है। जितने सत्कर्म्म और सदुद्देश्य हैं वे यहां पूरे तौर पर सफल हो सकते हैं। परमात्मा की सृष्टि की रचना और उद्देश्य आदि यहां समझ में आने लगते हैं। पृथ्वी पर इन बातों का समझना कठिन था।

५ मुझे यह बात अब अच्छी तरह मालूम हो गई है कि आदमी की ज़िन्दगी सिर्फ़ उसीके फ़ायदे के लिए नहीं। उसे समझना चाहिए कि जो कुछ संसार में है वह सब उसीका है; और वह ख़ुद भी संसार ही का एक अंश है। इन बातों को ध्यान में रख कर उसे सब काम करने चाहिएं। स्वार्थ से कर्तव्य की हानि होती है। कर्तव्य-विघात ही का दूसरा नाम स्वार्थ है। संसार बहुत विस्तृत है। जो अपना कर्तव्य करना चाहते हैं, संसार में उनके लिए काम ही काम है। विश्व-रूप ईश्वरही में सब कुछ है। जो कुछ है उसे उसी के अन्तर्गत समझना चाहिए। भिन्न-भाव रखना अज्ञानता का चिन्ह है। मैं और मेरा पिता (परमेश्वर) भिन्न भिन्न नहीं; एक ही हैं। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"।

६ मेरी दृष्टि अब बहुत विस्तृत हो गई है। मैं अपने सामने अनन्त ज्ञान-राशि देख कर घबरा रहा हूं। जो चीज़ें मुझे अनन्त, आश्चर्य्य-पूर्ण और अन्धकार-मय मालूम होती थीं वे मुझे अब वैसी नहीं मालूम होतीं। उनको अब मैं बख़ूबी देख सकता हूं और उन्हें समझ भी सकता हूं।

पृथ्वी पर ७० वर्ष की उम्र पाकर आदमी सब बातों को नहीं जान सकता।

७ आध्यात्मिक विषयों में अनेक बातें गुप्त हैं मनुष्य उन सब को नहीं जान सकता। आत्मा ईश्वर का अंश है। वह मनुष्य-शरीर से भिन्न है वह अपना अस्तित्व अलग ही रखती है। वह अनादि है। वह हमेशा आगे की ओर बढ़ती है पीछे की ओर नहीं। वह धीरे धीरे अपनी उन्नति करती जाती है और अपनी शान्ति और अनुभव को बढ़ाती रहती है। मनुष्य का मन और आत्मा तभी उन्नत होते हैं जब जीवन के अनेक झंझटों को वे धैर्य्य के साथ सह लेते हैं और उनको पार करके आगे निकल जाते हैं।

८ परमात्मा की असीमता का अन्दाज़ बहुत कम आदमियों को है। उसकी सीमा नहीं। वह सब तरफ़ है। कोई जगह उससे ख़ाली नहीं। इस विश्व का कोई अंश ऐसा नहीं जो उसके अन्तर्गत न हो। जो सुख या दुख हमको मिलता है वह इस लिए कि उससे हम कुछ न कुछ शिक्षा ले सकें।

९ यह मनुष्य-शरीर अनेक जन्म-मरणों का फल है। लोग व्यर्थ इधर उधर दौड़ा करते हैं उनको ख़बर नहीं कि जिसकी उन्हें खोज है वह उन्हीं के हृदय में है।

१० यहां पर, सन्मन्दिर में बैठे हुए, मैं अपने को उसी रूप में देख रहा हूं जो मेरा यथार्थ रूप है। हम सब पूर्ण परमात्मा का एक अंश हैं। यह बात मैंने यहां आने पर जानी। आदि अन्त की भावना मनुष्य को कल्पना है। न कभी किसी चीज़ का आदि था और न किसी का अन्त ही है। मुझे इस बात का पता नहीं कि कभी किसी लोक या ग्रह की उत्पत्ति एक दम हो गई हो। जितनी चीज़ें हैं सब क्रम-विकाश-पूर्वक एक स्थिति से दूसरी स्थिति को पहुंची हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११ जो प्राणी पृथ्वी पर खूब आराम से थे और अनेक प्रकार के सुखैश्वर्य्य जिन्होंने भोगे थे उनकी गिनती सर्वोत्तम और सर्वोच्च आत्माओं में नहीं। सर्वोच्च वे हैं जिनकी अग्नि-परीक्षा हो चुकी है और जिन्होंने जीवन-मार्ग में अनेक आपदाओं को झेला है।

१२ उच्च-नीच, अमीर-ग़रीब, स्त्री-पुरुष होने का कारण है। ये भेद व्यर्थ नहीं। और और कारणों के सिवा इस कारण से भी परमात्म-ज्ञान का विकाश प्राणियों के हृदय में हो सकता है।

१३ पुनर्जन्म को लोग जैसा समझते हैं वैसा नहीं। पुनर्जन्म का मतलब "पीछे जाना" नहीं है। उसका मतलब हमेशा "आगे जाना" है। प्रत्येक जन्म में प्राणी पहले जन्म की अपेक्षा, कम से कम, एक क़दम ज़रूर आगे बढ़ता है। कुछ न कुछ ज़रूर सीखता है।

१४ मृत्यु से लोग घबराते क्यों हैं? वह एक स्थिति-परिवर्तन मात्र है। एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाना मात्र है। जिसको लोग मृत्यु कहते हैं उसके बाद अब भी मैं वही मनुष्य हूं जैसा कि पहले था। हां मेरा पार्थिव अंश वहीं पृथ्वी पर रह गया है, लेकिन जिस के कारण उस अंश का संयोग मुझसे हुआ था वह बना हुआ है। मृत्यु का आना तक मुझे नहीं मालूम हुआ। मैं मानो सो गया और जब जगा तब मैंने अपने को अपने अनेक मित्रों के पास पाया जिनको मैंने समझा था कि फिर कभी न मिलेंगे।

१५ मैं नहीं बतला सकता कि मैं किस लोक में हूं। लोक-विषयक किसी प्रश्न का मैं उत्तर नहीं दे सकता। मैं सिर्फ़ इतना ही कह सकता हूं कि "अहमस्मि" (मैं हूं)

१६ यहां समय का कोई हिसाब नहीं। कब सूर्य्य उदय होता है, कब अस्त; कब रात होती है, कब दिन; इन बातों की ख़बर यहां किसी को नहीं। जहां तक मैंने देखा, सूर्य्य यहां नहीं। उसकी यहां ज़रूरत भी नहीं।

१७ बहुधा देखा जाता है कि जो प्राणी जिस कुटुम्ब से सम्बन्ध रखता है उसी में उसका पुनर्जन्म होता है। पर मैं यह नहीं कह सकता कि कितने दिन बाद पुनर्जन्म होता है। यहां पर कितनी ही अवस्थायें मुझ से बहुत अधिक उन्नत हैं; उन तक मैं नहीं पहुँच सकता। कितनी ही मुझसे भी गिरी हुई अवस्थायें हैं। उनका बयान सुनकर मैं कँप उठता हूं। आत्म-लोक, पार्थिव-लोक के बीच में कहना चाहिए। मर्त्य और अमर्त्य एक दूसरे को रगड़ते हुए जाते हैं। यह सुनकर ज़रूर आश्चर्य्य होगा। पर बात ऐसी ही है।

पूर्वोक्त लाट साहब ने जो चिट्ठियां परलोक से भेजी हैं उनकी कुछ बातों का यह सिर्फ़ संक्षेप है। मूल लेख में न जाने क्या क्या लिखा है। यञ्जिनियर, कारीगर, नये नये आविष्कार करने वाले, जनरल, कर्नल, सिपाही इत्यादि सबकी बातें हैं। पारलियामेंट, पारलियामेंट के मेम्बर, आयरलैंड की प्रजापालन-नीति आदि का भी ज़िक्र है। इन पत्रों को पढ़ने से यह मालूम होता है कि मृत लाट साहब शायद "थियासफ़िस्ट" थे। क्योंकि जन्म-मरण, लोक-परलोक, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदि का वर्णन जो इन चिट्ठियों में है वह बहुत अंश में "थिपासफ़ी" के सिद्धान्तों से मिलता है। शायद अब तक इन बातों का यथार्थ ज्ञान औरों को नहीं था। इन पेचीदा प्रश्नों को हल करने का पुण्य इसी समाज के महात्माओं के भाग्य में था।

एक और मासिक पुस्तक में एक आत्मा के कुछ प्रश्नोत्तर छपे हैं। उनको भी हम यहां पर देते हैं—

प्रश्न—तुम कौन हो?

उत्तर—मैं एक अज्ञात आत्मा हूं। मेरी उम्र ३३ वर्ष की है। दक्षिणी आफ़रीक़ा के कोलेंज़ो नगर में मेरा शरीर छूटा था। मैं दफ़न नहीं किया गया। लड़ाई के बाद मेरा शरीर एक गढ़े में पड़ा रह गया। मैं आकाश में घूम रहा हूं। मुझे कष्ट है; क्योंकि मेरी अन्त्येष्टि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया नहीं हुई। और अब मेरा शरीर ढूंढ़ने से नहीं मिल सकता।

प्र०—तुम कहां पैदा हुए थे ?

उ०—लिंकनशायर में।

प्र०—तुमने कैसे जाना कि तुम नरक में जावोगे ? क्या किसीने तुमसे ऐसा कहा है ?

उ०—क्योंकि एक बहुत ही भयावनी शक्ति मुझे वहां ले जाने को खींच रही है। मैं जानता हूं मेरा आत्मा वहां ज़रूर गुम हो जायगा। नरक में बर्फ़ नहीं; पर वहां के कष्ट बर्फ़ से भी अधिक पीड़ा-जनक हैं।

प्र०—यदि तुम सचमुच आत्मा हो तो तुमको दुःख क्यों मिलता है ?

उ०—मुझे सब बातें वैसी ही मालूम होती हैं जैसी पृथ्वी पर मालूम होती थीं। मेरा शरीर एक प्रकार का खोखला है; मेरा आत्मतत्व उसीमें भरा हुआ है। स्याही यदि दावात से अलग कर दी जाती है तो भी वह स्याही ही बनी रहती है। इसी तरह मृत्यु के बाद आत्मा की स्थिति भी पूर्ववत् बनी रहती है। मुझे खेद है, मैं तुमसे अब फिर बात चीत न कर सकूंगा।

प्र०—क्या तुम फिर न आ सकोगे ?

उ०—"पात्र" के द्वारा आने में बहुत कष्ट होता है; आने के लिए जितनी शक्ति दरकार होती है उतनी नहीं मिलती।

प्र०—"पात्र" किसे कहते हैं ?

उ०—"पात्र" उस पार्थिव मनुष्य को कहते हैं जो अपनी शक्तियों और इन्द्रियों को कुछ काल के लिए दे देता है।

प्र०—किस तरह वह इन चीज़ों को दे सकता है ?

उ०—उस अज्ञेय परमात्मा में विश्वास के बल पर।

इटली के रोम नगर में यह प्रश्नोत्तर हुआ था।

"हिन्दू" शब्द की व्युत्पत्ति।

किसी किसी का मत है कि हिन्दू शब्द नदीवाचक सिन्धु शब्द का अपभ्रंश है और इण्डस (Indus) अर्थात् सिन्धु शब्द से ही अँगरेज़ी शब्द इण्डिया (India) की उत्पत्ति है। किसी किसी का मत है कि अरबी-हिन्द-शब्द से अंगरेज़ी शब्द इण्डिया निकला है। कोई कोई पण्डित हिन्दू शब्द की सिद्धि संस्कृत-व्याकरण से करते हैं और कहते हैं कि वह हिंसि + दो + धातुओं से बना है और हीन अर्थात् बुरे या कुमार्गगामी लोगों को दोष या दण्ड देने वाले आर्यों का नाम है। बहुत आदमी हिन्दू शब्द को फ़ारसी भाषा का शब्द मानते हैं और इसका अर्थ चोर, डाकू, राहज़न, ग़ुलाम, काला या काफ़िर आदि करते हैं। फ़ारसी में हिन्दू शब्द ज़रूर है और अर्थ भी उसका अच्छा नहीं है। इसी से इस शब्द के अर्थ की तरफ़ लोगों का इतना ध्यान गया है। सिन्धु से हिन्दू हो जाना या पुराने ज़माने में हिन्दुओं को तुच्छ दृष्टि से देखने वाले मुसल्मानों का, उनके लिए काफ़िर और ग़ुलाम आदि अर्थों का वाचक शब्द प्रयोग करना, कोई विचित्र बात भी नहीं। परन्तु पण्डित धर्म्मानन्द महाभारती न तो इन अर्थों में से किसी अर्थ को मानते हैं और न हिन्दू शब्द की आज तक प्रसिद्ध व्युत्पत्ति ही को क़बूल करते हैं। आपने पुरानी व्युत्पत्ति और पुराने अर्थ को ग़लत साबित करके हिन्दू शब्द की उत्पत्ति और अर्थ एक नये ही ढंग से किया है। आपने इस विषय पर, तीन चार वर्ष हुए, बँगला भाषा में एक लेखमालिका निकाली थी। उसके उस अंश का मतलब हम यहां पर, संक्षेप में, देते हैं।

फ़ारसी में हिन्दू शब्द यद्यपि रूढ़ हो गया है तथापि वह उस भाषा का नहीं है। लोगों का ख़याल है कि फ़ारसी का हिन्दू शब्द संस्कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिन्धु शब्द का अपभ्रंश है। यह लोगों का केवल भ्रम है। ऐसे अनेक शब्द हैं जो भिन्न भिन्न भाषाओं में एकही रूप में पाये जाते हैं। यहां तक कि उनका अर्थ भी कहीं कहीं एक हो है। पर वे सब भिन्न भिन्न धातुओं से निकले हैं। उदाहरण के लिए 'शिव' शब्द को लीजिए। संस्कृत में उसकी साधनिका तीन धातुओं से हो सकती है। पर अर्थ सब का एकही, अर्थात् कल्याण या मङ्गल का वाचक, है। यही 'शिव' शब्द यहूदी भाषा में भी है। वह अंगरेज़ी अक्षरों में "Sceva" लिखा जाता है। पर उच्चारण उसका 'शिव' होता है। वह यहूदी भाषा में 'शू' धातु से निकला है। उसका अर्थ है "लाल रंग"। 'शिव' नाम का यहूदियों में एक वीर भी हो गया है। अब, देखिए, क्या संस्कृत का 'शिव' यहूदियों के 'शिव' से भिन्न नहीं? लोग समझते हैं, संस्कृत का 'सप्ताह' शब्द और फ़ारसी का 'हफ़्ता' शब्द एकार्थवाची होने के कारण एकही धातु से निकले हैं। यह उनका भ्रम है। हफ़्ता एक ऐसी धातु से निकला है जो संस्कृत-सप्ताह शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। फ़ारसी में स (से), स (स्वाद), स (सीन), श (शीन) ऐसे चार वर्ण हैं जिनका उच्चारण एक दूसरे से बहुत कुछ मिलता है। अतएव, सप्ताह का 'स' हफ़्ता के 'ह' में कभी नहीं बदल सकता। हफ़्ता शब्द सप्ताह का अपभ्रंश नहीं। जो कोई उसे सप्ताह का अपभ्रंश समझते हैं वे भूलते हैं।

ईसा के पाँच सौ वर्ष बाद महम्मद का जन्म हुआ। उनके जन्म के कोई साढ़े सात सौ वर्ष बाद मुसल्मानों ने हिन्दुस्तान में पदार्पण किया। यदि हिन्दू शब्द मुसल्मानों का बनाया हुआ है तो उसकी उमर बारह सौ वर्ष से अधिक नहीं। परन्तु पाठकों को सुनकर आश्चर्य्य होगा कि हिन्दू शब्द ईसा के जन्म से भी कई हज़ार वर्ष पहले का है। तो फिर क्या वह वेद में है? नहीं। किसी शास्त्र में है? नहीं। जैन या बौद्धों के पुराने ग्रन्थों में हैं? नहीं। फिर है कहां? है वह अग्नि-पूजक पारसियों के धर्म्मग्रन्थ ज़ेन्दावस्ता में। जिन पारसियों को आज कल हिन्दू लोग, धर्म-सम्बन्ध में, बुरी दृष्टि से देखते हैं उन्हीं के प्राचीनतम ऋषियों और विद्वान् पण्डितों ने हिन्दू शब्द के आदिम रूप को अपने धर्म्मग्रन्थ में स्थान दिया है। वह आदिम रूप हनद् शब्द है। यहूदियों की धर्म्मपुस्तक ओल्ड टेस्टामेंट (बाइबल के पुराने भाग) में भी हनद् शब्द पाया जाता है। अब देखना है कि इन दोनों ग्रन्थों में से अधिक पुराना ग्रन्थ कौन है।

क्रिश्चियन लोगों का कथन है कि बाइबल का पुराना भाग क्राइस्ट से पाँच हज़ार वर्ष पहले का है। इसमें उनको कोई सन्देह नहीं। इसे वे पूरे तौर पर सच समझते हैं। पारसी कहते हैं—"Our Zendavesta is as ancient as the creation; it is as old as the Sun or the Moon." अर्थात् हमारा धर्म्मग्रन्थ ज़ेन्दावस्ता इतना पुराना है जितनी यह स्टष्टि; वह इतना प्राचीन है जितना सूर्य्य या चन्द्रमा"। पारसियों की यह उक्ति सच है। उसके प्रमाण—

(१) यहूदियों का धर्म्मशास्त्र, ओल्डटेस्टामेंट, हिब्रू अर्थात् इब्रीय भाषा में हैं और पारसियों की ज़ेन्दावस्ता ज़ेन्द भाषा में। हिब्रू भाषा की अपेक्षा ज़ेन्द भाषा बहुत पुरानी है।

(२) ओल्ड टेस्टामेंट में अनेक नये नये स्थानों और जंगलों का नाम है। वे स्थान और जंगल ज़ेन्दावस्ता के समय में न थे।

(३) हाल साहब और मिस्टर मलाबारी कहते हैं कि पुरानी पारसी जाति में मनु के आर्ष-विवाह के समान सभ्य-विवाह-पद्धति प्रचलित न थी। परन्तु ओल्ड टेस्टामेंट में इस प्रथा के विवाह का वर्णन है। ओल्डटेस्टामेंट के प्रचार के पूर्ववर्त्ती समाज में जिस प्रकार की विवाह-प्रथा प्रचलित थी उसका वर्णन ज़ेन्दावस्ता में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) ज़ेन्दावस्ता में यहूदी शब्द या यहूदी जाति का नाम नहीं है; पर ओल्ड टेस्टामेंट में कम से कम नौ दफ़ा पारसी-जाति का ज़िकर है।

(५) बाइबल में कई जगह लिखा है कि पारसियों ने यहूदियों को जीत कर बहुत काल तक उनके देश में राज्य किया। पर यहूदियों ने किसी ने भी पारसियों को विजय नहीं किया।

(६) अग्निपूजा पृथ्वी की प्राचीन जातियों की सबसे अधिक प्राचीन प्रथा है। ओल्ड टेस्टामेंट के समय में अग्नि-पूजा बन्द हो गई थी; पर ज़ेन्दावस्ता के समय में उसका ख़ूब प्रचार था।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि ओल्ड टेस्टामेंट से ज़ेन्दावस्ता पुराना ग्रन्थ है।

बँगला संवत् १३०६ के ज्येष्ठ की "भारती" नामक बँगला मासिकपत्रिका में भारतीसम्पादिका श्रीमती सरलादेवी बी० ए० लिखित एक प्रबन्ध छपा है। उसका नाम है "हिन्दू और निगर"। उसमें लिखा है—"हिन्दू शब्द संस्कृत सिन्धु शब्द से उत्पन्न नहीं है। * * * * ज़ेन्दावस्ता नामक पारसियों का पुराना धर्म्मग्रन्थ वेदों के समय का है। उसमें हिन्दू शब्द एक दफ़ा आया है। हारोबेरेजेति (अल्बुर्ज़) पहाड़ के पास पहले पहल ऐर्य्यन-बयेजो (आर्यनिवास) था। धीरे धीरे अहुर्मज़्दा ने (पारसियों के परमेश्वर ने) सोलह शहर बसाये। उनमें से पन्द्रहवें शहर का नाम हुआ "हप्तहिन्दव"। वेदों में इसी को "सप्तसिन्धवः" कहते हैं। ज़ेन्दावस्ता में तीरइयास्ते नामक एक पहाड़ के लिए भी एक बार, 'हिन्दव' शब्द आया है। अनुमान होता है यही 'हिन्दव' शब्द आज कल के हिन्दूकुश पर्वत का पिता है।

व्यवहार में न आने के कारण यह मूल अर्थ धीरे धीरे भूल गया। तब, बहुत दिनों के बाद, वैयाकरण लोगों ने "स्यन्द" धातु के आगे औणादिक "ऊ" प्रत्यय लगा कर, किसी तरह तोड़ मरोड़ कर समुद्रार्थबोधक सिन्धु शब्द पैदा कर दिया। यह उनकी सिर्फ़ कारीगरी मात्र है"। इत्यादि। यह बात बिलकुल नई है। इसके पहले और किसीने इसका पता नहीं लगाया। इससे मालूम हुआ कि हिन्दू-शब्द यवनों की सम्पत्ति नहीं; उसे मुसल्मानों ने नहीं बनाया। ज़ेन्दावस्ता नामक अति प्राचीन और पारसियों की अति पवित्र पुस्तक में उसका प्रयोग सबसे पहले हुआ। ज़ेन्दावस्ता ग्रन्थ वेदों का समसामयिक है। प्राचीन पारसी लोग अग्निहोत्री (अग्नि के उपासक) थे। आज कल के पुरातत्वज्ञ उनकी गिनती प्राचीन आर्यों में करते हैं।

अभी तक आपने हिन्दू शब्द का सिर्फ़ अङ्कुर देखा। अब देखिए अङ्कुरोत्पन्न वृक्ष और उसके बाद वृक्षोत्पन्न फल।

यहूदियों का धर्म्मशास्त्र, ओल्ड टेस्टामेंट, ३९ भागों में बँटा हुआ है। अथवा यों कहिए कि उसमें जुदा जुदा ३९ पुस्तकें हैं। उनमें से सत्रहवीं पुस्तक का नाम है "दि बुक आफ़ यस्थर" (The Book of Esther). इसका हिब्रू नाम है आज़्थुर। इसके पहले अध्याय में है—

Now it came to pass in the days of Ahasuerus, this is Ahasuerus which reigned, from India even unto Ethiopia, over an hundred and seven and twenty provinces".—Esther, Chapter I, Verse I.

अर्थात् आहासुरस् राजा ने इंडिया से ईथियोपिया तक राज्य किया। अब, इस बात का विचार करना है कि यह 'इंडिया' (हिन्दुस्तान) शब्द किस अर्थ का वाचक है। याद रखिए यहूदियों का ओल्ड टेस्टामेंट ग्रन्थ ईसा से पाँच हज़ार वर्ष पहले का है। वह हिब्रू भाषा में है। उसीके अँगरेज़ी अनुवाद में 'इंडिया' शब्द आया है। अच्छा, तो यह 'इंडिया' शब्द किस हिब्रू शब्द का अनुवाद है। वह पूर्वोल्लिखित 'हनद्' शब्द का भाषान्तर है। हिब्रू में 'हनद्' शब्द का अर्थ है—विक्रम, गौरव, विभव, प्रजा, शक्ति, प्रभाव आदि। यह बात ओल्ड टेस्टामेंट के अनेक अवतरणों से साबित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की जा सकती है। परन्तु उन सब प्रमाणों को देने से लेख अधिक बढ़ जायगा। इससे हम उन्हें नहीं देते। अब आज़्थुर पुस्तक से जो वाक्य ऊपर दिया गया है, उसके अर्थ का विचार कीजिए—"आहासुरस् राजा ने हनद् (शक्ति) से ईथियोपिया तक राज्य किया"। जिस तरह अँगरेज़ी में बहुधा गुणवाचक शब्द का परिचय सिर्फ़ उसके गुण के उल्लेख से होता है उसी तरह हिब्रू भाषा में भी होता है। अतएव, "हनद् से ईथियोपिया तक राज्य किया" इस वाक्य का अर्थ हुआ—"हनद् (शक्तिविशिष्ट राज्य) से लेकर ईथियोपिया तक राज्य किया"। जिनको इस बात पर विश्वास न हो वह डाक्टर हेग का बनाया हुआ अँगरेज़ी-हिब्रू व्याकरण देखने की कृपा करें।

यहूदी लोग ग्रीक लोगों से पुराने हैं। ग्रीस में एक ऐतिहासिक लेखक हो गया है। उसका नाम था मिगास्थनीज़। उसने एक जगह लिखा है—"यहूदी लोगों ने पारसियों से ज्ञान और शिक्षा और भारतवासियों से धन और प्रभुत्व प्राप्त किया था"। यहूदियों ने भारतवर्ष में व्यापार करके बहुत धन कमाया था, यह बात यहूदियों ने अपने ही लिखे हुए इतिहास में स्वीकार की है। इसके और भी अनेक प्रमाण ग्रीस और रोम विषयक पुस्तकों में पाये जाते हैं। यहूदी राजा दाऊद के पुत्र सालोमन के विश्वविख्यात मन्दिर के लिए लकड़ी, चूना, पत्थर इत्यादि मसाला हिन्दुस्तान से गया था। थराक्यूश नामक एक ग्रीक ग्रन्थकार ने लिखा है—"भारत वर्ष का विक्रम और गौरव देखकर ही यहूदी लोग इस देश को हनद् कह कर पुकारते थे"। अब देखना है कि यहूदी लोगों ने इस हनद् शब्द को पाया कहां से? पाया उन्होंने पारसियों की ज़ेन्दावस्ता से। प्रमाण—

(१) यहूदियों के देश में बहुत काल तक पारसियों ने राज्य किया। उनके राज्य-काल में यहूदी-अदालतों में ज़ेन्द भाषा राज-भाषा थी। शिक्षित लोग ज़ेंद भाषा ही बोलते थे। वे लोग ज़ेन्दावस्ता पढ़ते थे। इससे पारसियों के हिन्दव शब्द से यहूदी ज़रूर परिचित रहे होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

(२) यहूदियों ने ज़ेन्दावस्ता से अनेक देश, पर्वत और नदियों आदि के नाम लिये हैं। यथा—

ज़ेन्द भाषा।	हिब्रू भाषा।
तराशश् (Taurus)	तरश्
मोश्जा	मोशजा
मज़्दाहा	मेशाया (Messiah)
काशा	कोशा
अर्द्जु	इयारजउ

(३) हिब्रू भाषा कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं। वह ज़ेन्द भाषा से उत्पन्न है। अतएव यह बात अखण्डनीय सत्य है कि ज़ेन्द भाषा के हिन्दव शब्द ने ही हिब्रू भाषा में हनद् रूप धारण किया। इसकी पुष्टि में अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

पाठक, आपने महाजनों की मुँड़िया लिपि देखी है। न देखी होगी तो उसकी विशिष्टता से आप ज़रूरही वाकिफ़ होंगे। उसमें अकार, इकार, उकार आदि की मात्रायें नहीं होतीं। इससे बाबा, बीबी, बूबू, बेबो सब एकही तरह लिखे जाते हैं। अपेक्षित शब्द पढ़ने वाले अपनी बुद्धि से पढ़ लेते हैं। इसी कारण से कभी कभी मामा की मामी, किश्ती की कुश्ती, घड़ा का घोड़ा और "अजमेर गये" का "आज मर गये" हो जाता है। हिब्रू भाषा भी ऐसी ही है। उसमें भी इकार, उकार आदि नहीं हैं। वह दाहने हाथ की तरफ़ से लिखी जाती है। उसकी पुत्री अरबी और पौत्री फ़ारसी भाषा है। इन दोनों भाषाओं में ज़ेर, ज़बर और पेश आदि चिन्हों के प्रयोग से वैय्याकरणों ने अकार, इकार और उकार का उच्चारण किसी प्रकार निश्चित कर लिया है। पर हिब्रू में यह बात अब तक नहीं हुई। उसकी वर्णमाला में सिर्फ़ दो ही एक स्वर हैं; सो भी अपरिस्फुट। चिन्हों के द्वारा अनेक शब्दों का उच्चारण होता है। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या होता है कि बहुत स्थलों में इकार का लोप हो जाता है। देखिए—

ज़ेन्द।	हिब्रू।
किरियाद्	करयोयद्
शिकिना	सकना
हिशिया	अशयः
हिजर्द्	यजानुद्
बिरजोद्	बर्जाद्

यदि हम यह कह दें कि हिब्रू में इकार है ही नहीं तो भी अत्युक्ति न होगी। जो शब्द ख़ास हिब्रू का नहीं है उसमें पूरा इकार नहीं होता; उच्चारण में इकार होने से भी वह लिखा नहीं जाता। यथा—

हिब्रू उच्चारण।	हिब्रू लिखावट।
जिहोवा	जहोवा
इज़्रिल	अज़्रल्
इश्राइल	यश्रहिल
इजाया	आजाया
इयाकुब	आकूब
मरियम्	मरम्

अतएव ज़ेन्द शब्द "हिन्दव" की इकार यदि हिब्रू में उड़ जाय तो आश्चर्य्य ही क्या है? अच्छा, इकार तो यों गई; अब यह बतलाइए कि "हिन्दव" का 'व' कार कहां और किस तरह गया? सुनिए, उसका भी हम पता बतलाते हैं। हिब्रू भाषा में त, थ, द, च, छ, झ, ड, आदि अक्षरों का उच्चारण होने से व, फ ओ और य का लोप हो जाता है। दृष्टान्त—

हिब्रू शब्द।	उच्चारण में लोप।
तोवा	तोहा
अस्थुवा	अस्थुहा
सन्दव	सन्द अथवा सनद्
गदव्	गद्
दाडदव्	दाडद्
आदावो	आदाहा

अतएव पारसियों की ज़ेन्दावस्ता का पवित्र हिन्दव शब्द हिब्रू भाषा में "हनद्" हो गया।

जो कुछ यहां तक लिखा गया उससे यह सिद्धान्त निकला कि—

(१) हिन्दू शब्द पहले ज़ेन्दावस्ता में प्रयुक्त हुआ।

(२) पारसी लोग इस शब्द के स्रष्टिकर्ता हैं।

(३) यहूदियों ने इसे अपनी भाषा में लेकर हनद् कर दिया।

हिन्दुस्तान से ग्रीक लोग बहुत दिनों से परिचित थे। उनको इस देश की ख़ूब अभिज्ञता थी। जिस रास्ते से ग्रीक लोग हिन्दुस्तान आते थे उस रास्ते में एक पहाड़ पड़ता था। कई कारणों से उन्हें उसके पास ठहरना पड़ता था। इस रास्ते का वर्णन उन्होंने आहासुरस् राजा की पुस्तक में पढ़ा था। बर्फ़ से ढकी हुई और बहुत ऊंची पर्वत-माला को रास्ते में देखकर ग्रीक लोगों ने अपने साथियों से उसका नाम पूछा। उन्होंने कहा इसका नाम हम नहीं जानते। पर उनके साथ एक पुरोहित भी था। उसने कहा—"मैंने सुना है कि इसके एक तरफ़ हनद् देश की सीमा है और दूसरी तरफ़ ईथियोपिया राज्य की राजनैतिक सीमा"। इसी ईथियोपिया राज्य का हिब्रू नाम है कुश (Cush)। बाइबल (ओल्ड टेस्टामेंट) की पहली पुस्तक, जेनेसिस, के दूसरे अध्याय के तेरहवीं आयत में है—

"And the name of the second river is Gihon: the same is it that compasseth the whole of Ethiopia."

जहां पर यह आयत है उसके किनारे, टीका में, लिखा है कि ईथियोपिया को यहूदी लोग कुश कहते थे। मूल हिब्रू में ईथियोपिया नहीं है उसकी जगह कुश ही है। इसी कुश शब्द ने ग्रीक भाषा में कोश (Cosh) रूप धारण किया। कोश शब्द चेतना-विशिष्ट पुल्लिङ्ग है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कोश, ईथियोपिया राज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम है। हिब्रू भाषा की तरह ग्रीक भाषा के व्याकरण के अनुसार भी कोश शब्द गुणवाचक है। हिब्रू भाषा में कुश या कोश शब्द का अर्थ सीमा भी होता है और पर्वत भी होता है। इसी कुश या कोश से 'कोः' और "कोहे" शब्द निकले हैं जिनका अर्थ अरबी और फ़ारसी भाषा में पर्वत है। पुराने ज़माने में इस देश की पश्चिमी सीमा हिन्दूकुश पर्वत था। रघु के दिग्विजय में, महाभारतोक्त गान्धारी के विवाह-वर्णन में, और पुराने भूगोल में इस बात का प्रमाण मिलता है कि हिन्दू-कुश के आस पास भारतीय राजाओं का राज्य था; पर उसके आगे न था। इन्हीं कारणों से ग्रीक लोगों ने हनूद् देश की सीमा के, अथवा हनूद् देश के सीमाज्ञापक पर्वत के, अर्थ में इस पहाड़ का नाम "हनूद् कोश" (Handkosh) रक्खा। यह बात युक्तिसङ्गत और सन्देह-हीन है। ग्रीक भाषा में पर्वत शब्द पुल्लिङ्ग और चेतनावान् है। अपभ्रंश होते होते वह हनूद्कोश से "इण्डिकस" हो गया। यही 'इण्डिकस" अँगरेज़ी राज्य में इण्डिया (India) हुआ। अब देखिए, ज़ेन्दावस्ता का हिन्दव हिब्रू भाषा में हुआ हनूद्। हिब्रू भाषा का हनूद् ग्रीक भाषा में हुआ हनूद्कोश-इण्डिकस। ग्रीक भाषा का इण्डिकस अँगरेज़ी में हुआ इण्डिया!

हिन्दूकुश से अटक के किनारे तक जो लोग रहते हैं वे पश्तूभाषा बोलते हैं। ये लोग फ़ारस के आदिम निवासी हैं। फ़ारसी से उनकी भाषा बहुत मिलती है। धर्म्मान्तर ग्रहण करने के पहले ये लोग भी पारसियों की तरह अग्निपूजक थे। इन्हीं पश्तू बोलने वाले भारतवासियों ने, अर्थात् ज़ेन्दावस्ता को मानने वाले अग्निसेवक पुराने पारसियों के वंशधरों ने, हनूद् शब्द के आगे ह्रस्व उ प्रयोग करके, उसे 'हन्दु' के रूप में बदल दिया। पश्तू-व्याकरण के अनुसार हनूद् और हिनूद् शब्द के उत्तर ह्रस्व उ प्रत्यय करने से "युक्त" अर्थ होता है। उ प्रत्यय होने से हनूद् अर्थात् शक्ति, गौरव, विभव, प्रभाव इत्यादि महिमायुक्त जाति सूचित होती है। क्योंकि पश्तू-व्याकरण के नियमानुसार उ प्रत्यय "गुणवाचक जाति या गुणवाचक पुरुष के आगे होता है"। प्राचीन आर्य्य-हिन्दू जाति के गौरव, पवित्रत्व और विभव आदि को देखकर ही पश्तू बोलने वालों ने उ प्रत्यय का प्रयोग किया था। पश्तू भाषा में हनूद् और हन्दु शब्द गौरववाचक हैं। इसके प्रमाण में पश्तूभाषा के दो पद्य नीचे पढ़िए—

पुश्रो लबोदे जङ्गोर फेजोयान्।
उरो उरो नन् लाखियाल् लदे जङ्गेरे
हनूदु जेल् फाल्गो॥ १॥

देवाट् देरन् जु ज़रर् उहे रम्।
क़त्लेबे पत्वे देश् तर् गो
हनूदु एन् साँ डेरो॥ २॥

इस प्रकार ज़ेन्दावस्ता का 'हिन्दव' शब्द पश्तू में 'हन्दु' तक पहुँचा। सिक्खधर्म्म-प्रवर्तक गुरु नानक के सैनिक शिष्यों ने गुरुमुखी भाषा में उसे 'हिन्दु' कर दिया। नानक के पहले यह शब्द हिन्दव, सिन्धव, हनूद्, और हन्दु तक रहा। हिन्दुवंशावतंस सिक्खों ने अन्त में उसे "हिन्दु" के रूप में परिवर्तित कर दिया। जो लोग कहते हैं कि हिन्दू-शब्द सीमाबद्ध है वे बड़े ही भ्रान्त हैं। कहां फ़ारस, कहां यहूदी देश, कहां ग्रीस, कहां आहासुरस का राज्य! सब कहीं वही प्राचीन हिन्दू नाम!

इस विवेचन से सिद्ध हुआ कि हिन्दु-शब्द का अर्थ है विक्रमशाली, प्रभावशाली आदि। सुप्रसिद्ध फ़रासीसी लेखक जाकोलियेत् (Jaquoliette) ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है—"असाधारण बल और असाधारण विद्यावत्ता के कारण पूर्वकाल में भारतवर्ष पृथिवी की सारी जातियों का आदरपात्र था"। जिस हिन्दूजाति की साधुता, वीरता, विद्या, विभव और स्वाधीनता आदि देख कर पारसी, यहूदी, ग्रीक और रोमन लोग मोहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गये और मुसलमान-इतिहास-लेखकों ने जिस देश को स्वर्ग-भूमि कहकर उल्लेख किया, क्या उसी देश के रहने वाले काफ़िर, काले, ग़ुलाम, कदाकार और परस्वापहारी कहे जा सकते हैं? यह बात क्या कभी विश्वास योग्य मानी जा सकती है? हिन्दू-शब्द कदर्थबोधक नहीं। हिन्दू-शब्द गौरव, गरिमा, विक्रम और वीरत्व का व्यञ्जक है। तो कहिए, क्या आप अब हिन्दू-नाम छोड़ना चाहते हैं? जो ज्ञान, विज्ञान और सर्वशास्त्रीय तत्वों का आदर्श है; जो प्राणशीतलकारी ब्रह्म-विद्या का आकर है; जो विक्रम और विभव की खानि है। वही पवित्र और प्रशस्त हिन्दू-नाम हमारे मस्तक की मणि है; हमारे देश का गौरव है; हमारी जाति के महत्व का व्यञ्जक है; और वही इस अधःपतित, अर्द्धमृत, पदानत भारतीय आर्य्यजाति के जातीय-जीवन का पुनरुद्दीपक है। हिन्दू एक ऐसा शब्द है, एक ऐसा नाम है, जिसके उच्चारण से भग्न-हृदय में फिर आशा का सञ्चार हो जाता है; क्षीण-देह में बल-स्रोत फिर वेग से बहने लगता है; अन्तःकरण में जातीय-गौरव का फिर अभ्युदय हो आता है, और मन में ब्रह्मानन्द का अतर्कित अनुभव होने लगता है। तब हिन्दू-नाम हम छोड़ें क्यों?

शिक्षा।

माँ-बाप का कर्तव्य।

[२]

जब हम आरोग्य-शिक्षा से आगे बढ़ कर नैतिकशिक्षा की तरफ़ आते हैं तब वहां भी हम इसी तरह की नादानी और अज्ञानता देखते हैं। वहां भी हमें माँ-बाप की बेपरवाही और मूर्खता के उदाहरण मिलते हैं। लड़कपन में बच्चों के पालन-पोषण का भार सिर्फ़ माँ पर रहता है। इससे उनको सबसे पहली शिक्षा माँ से ही मिलनी चाहिए। अब ज़रा कम उम्र की माँ, और उसके बच्चों को खिलाने पिलानेवाली दाई, की योग्यता का विचार कीजिए। माँ के जारी किये हुए क़ानूनों पर तो ज़रा ध्यान दीजिए। अभी थोड़े ही साल हुए कि वह मदरसे में पढ़ती थी। वहां उसके दिमाग़ में हज़ारों शब्द, नाम और तारीख़ें कूट कूट कर भरी गई थीं। दिन रात उसने उन्हें रट रट कर याद किया था। उसे किसी बात के सोचने या समझने का शायद कभी मौक़ा ही नहीं दिया गया। अर्थात् उसकी विचार-शक्ति को ज़रा भी प्रौढ़ता नहीं प्राप्त हुई। लड़कों के कोमल मन को किस तरह की शिक्षा देनी चाहिए—इस विषय का एक शब्द भी वहां उसको नहीं सिखाया गया। इस दशा में ख़ुद कोई नई शिक्षा-प्रणाली सोच कर निकालने की तो बात ही नहीं। उसे इस तरह की शिक्षा का गन्ध भी मदरसे में नहीं मिला, फिर वह बेचारी बाल-शिक्षा को नई तरकीब निकाले कैसे? यह तो मदरसे की शिक्षा का हाल हुआ। मदरसा छोड़ते और विवाह होने के बीच के वक़्त में भी सन्तति के पालन-पोषण की शिक्षा उसे नहीं मिली। वह गाने-बजाने, बेल बूटे काढ़ने, क़िस्से कहानियों की किताबें पढ़ने और आज इसके यहां कल उसके यहां जलसों और दावतों में शरीक होने में गया। इस समय तक उसने इस बात का कुछ भी विचार नहीं किया कि लड़के बाले होने पर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी आ पड़ेगी। जो मानसिक शिक्षा, इस तरह की ज़िम्मेदारी उठाने में, स्त्री को थोड़ी बहुत मदद पहुँचाती है उस शिक्षा का शायद ही कुछ अंश कभी उसे मिला हो। अब देखिए उसी पर एक ऐसे प्राणी के पालने पोसने और शिक्षित करने का भार आ पड़ा जिसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियां प्रतिदिन बढ़ती रहती हैं। ज़रा इस नादानी पर तो ध्यान दीजिए, कि जिस काम का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं, जिसे वह बिलकुल ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं जानती, उसीको अब उसे करना है। और काम भी ऐसा जो, उस विषय का पूरा पूरा ज्ञान होने पर भी, अच्छी तरह नहीं हो सकता। पर इसी महा कठिन काम के करने का बीड़ा, माँ के नये पद को पानेवाली इस युवती को उठाना पड़ा। ऐसी माँ को ऐसा कठिन काम करने में कहां तक कामयाबी हो सकती है, इसका फ़ैसिला पाठक ही करें। वह इस बात को बिलकुल नहीं जानती कि मनोवृत्तियां किस तरह की होती हैं? उनकी कैफ़ियत क्या है? वे किस तरह बढ़ती हैं और किस तरह एक दूसरी के बाद पैदा होती हैं? उनका काम क्या है? उनका उपयोग कहां आरम्भ होता है और कहां समाप्त? वह यह समझती है कि कोई कोई मनोवृत्तियां सर्वथा बुरी हैं और कोई कोई सर्वथा भली। पर यह समझ उन वृत्तियों में एक के विषय में भी ठीक नहीं। यह ख़याल बिलकुल ही ग़लत है कि कोई कोई वृत्ति सर्वथा बुरी और कोई कोई सर्वथा अच्छी होती है। फिर, एक और बात भी ध्यान देने लायक़ है। जिस शरीर के पालने-पोसने की ज़िम्मेदारी उस पर है उस शरीर को बनावट से वह जैसे अनभिज्ञ होती है वैसे ही जुदा जुदा दवाइयों और चिकित्साओं का जो असर उस शरीर पर पड़ता है उससे भी वह अनभिज्ञ होती है--उसका भी ज्ञान उसे नहीं होता। इन बातों के न जानने से बच्चों को हर घड़ी जो कष्ट भोगने पड़ते हैं—उन पर हर घड़ी जो आफ़तें आती हैं—वे बहुत ही भयङ्कर हैं। इस अज्ञान के कारण जो परिणाम होते हैं उनको हम प्रतिदिन अपनी आँखों से देखते हैं। वे छिपे नहीं हैं। उनसे अधिक हानिकारक परिणाम और क्या हो सकते हैं? माँ को न तो यही ज्ञान होता है कि कौन सी मानसिक वृत्तियां भली हैं और कौन सी बुरी। और न उन वृत्तियों के कारण और परिणाम ही का ज्ञान होता है। अतएव मनोवृत्तियों को रोकने या उनके काम में विघ्न डालने से जो हानि बहुधा होती है वह हानि उससे कहीं बढ़कर है जो भले बुरे की परवा न करके उन्हें यथेच्छ अपना काम करने देने से हो सकती है। अर्थात् यह प्रवृत्ति भली है या बुरी, इसका विचार न करके बच्चे को अपनी इच्छा के अनुसार रहने देने से उतनी हानि नहीं होती जितनी कि बहुधा बेसमझे बूझे उसकी किसी प्रवृत्ति को—उसके मन के किसी झुकाव को—बुरा समझ कर रोकने से होती है। बच्चे को जिन कामों के करने की आदत होती है, और जिनसे उसे लाभ के सिवा हानि हो भी नहीं सकती, उनको करने से वह उसे रोकती है। वह समझती है कि ऐसे कामों से बच्चे को हानि पहुँचेगी। वह नहीं जानती कि उसका रोकना ही हानिकर है। इस तरह की रुकावट से बच्चा ना ख़ुश रहता है; वह चिड़चिड़ा हो जाता है; और लाभ के बदले उसे ज़रूर हानि पहुँचती है। बच्चे के साथ इस तरह पेश आने से माँ-बेटे में वैमनस्य हो जाता है और परस्पर जैसा स्नेह रहना चाहिए नहीं रहता। जिन कामों को माँ अच्छा समझती है उन्हें वह धमकी या लालच देकर बच्चे से कराती है। अथवा वह बच्चे को यह सुझाती है कि ये काम करने से सब लोग तुम पर ख़ुश होंगे और तुम्हारी तारीफ़ करेंगे। इस तरह वह उससे वे काम कराती है। बच्चे के मन की वह बिलकुल परवा नहीं करती। ऊपरी मन से यदि बच्चे ने उसका कहना मान लिया तो इतने ही से वह कृतार्थ हो जाती है। वह समझती है कि बस मेरा कर्तव्य हो चुका। इस तरह के बर्ताव से बच्चे को कोई अच्छी शिक्षा तो मिलती नहीं—वह कोई अच्छी बातें तो सीखता नहीं—हां दम्भ, डर और ख़ुदग़रज़ी की शिक्षा उसे मिल जाती है। एक तरफ़ तो वह बच्चे को सच बोलने की शिक्षा देती है दूसरी तरफ़ वह ख़ुद अपने ही बर्ताव से झूठ के नमूने उसके सामने रखती है। वह बच्चे से कहती है कि यदि तुम सच न बोलोगे तो मैं तुमको यह सज़ा दूंगी, वह सज़ा दूंगी। पर, जब बच्चा झूठ बोलता है तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने कहने के मुताबिक़ वह सज़ा नहीं देती। यह झूठ का नमूना नहीं है तो क्या है? यही नमूना लड़कों को झूठ बोलना सिखला देता है। एक तरफ़ तो वह यह सिखाती है कि आदमी को आत्म-संयमन करना चाहिए—अपने आपको क़ाबू में रखना चाहिए—दूसरी तरफ़ ज़रा ज़रा सी बात के लिए, वह अपने छोटे छोटे बच्चों पर बिगड़ उठती है और क्रोध करती है। क्या इसी का नाम आत्म-संयमन है? जिस तरह बड़े होने पर संसार के सारे व्यवसायों में भले-बुरे कामों का भला-बुरा परिणाम होने देना शिक्षा का सबसे अच्छा तरीक़ा है—स्वाभाविक रीति पर ऐसे परिणामों से फिर चाहे जितना सुख या दुःख हो—उसी तरह लड़कपन में बच्चों को सुमार्गगामी बनाने के लिए उनको जो शिक्षा दी जाय उसमें भी इसी तरीक़े से काम लेना चाहिए और बच्चों के भले-बुरे कामों का भला या बुरा परिणाम होने देना चाहिए। परन्तु बेचारी माँ को इस तरह की शिक्षा के तरीक़े का स्वप्न में भी ख़याल नहीं होता। कार्य्य-कारण-भाव का निश्चय न होने से, अर्थात् बच्चों के पालन-पोषण से सम्बन्ध रखनेवाली शिक्षा यथाशास्त्र न प्राप्त करने से, और बच्चों के मन के जुदा जुदा तरह के भावों का ज्ञान न होने के कारण उन भावों के अनुसार बच्चों के साथ बर्ताव करने का सामर्थ्य उसमें न होने से, वह मनमाने तरीक़े से उन्हें रखती है। आज वह अपने बच्चों से एक तरह का बर्ताव करती है, कल और तरह का। जो उसके मन में आता है वही उसका क़ानून है। उसीके अनुसार वह बच्चों का शासन करती है—उसीके अनुसार वह उन पर हुकूमत करती है। इससे बहुत बड़ी हानि होती है। परन्तु बच्चों की समझ जैसे जैसे बढ़ती जाती है वैसे वैसे उनके मन की वृत्ति मनुष्य-जाति के स्वभाव-सिद्ध नैतिक भावों की तरफ़ अधिक अधिक झुकती जाती है। इससे छोटी मोटी विपरीत बातों का असर बच्चों पर कम पड़ता है। और जितना बिगड़ते हुए वे मालूम होते हैं उतना नहीं बिगड़ते। यदि बच्चों में यह वृत्ति स्वभाव-सिद्ध न होती तो माँ के ऐसे अशास्त्रीय और अनुचित शिक्षण के कारण वे बरबाद होने से न बचते। माँ का ऐसा अन्याय-पूर्ण क़ानून उनको संसार में किसी काम का न रखता।

शेक्सपियर का "हैमलेट"।

अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर का सर्वोत्तम नाटक हैमलेट समझा जाता है। शेक्सपियर ने इसे उस समय लिखा था जब उसकी प्रतिभा प्रौढावस्था को पहुँच गई थी; उसकी प्रसिद्धि ख़ूब हो चुकी थी; उसका भरोसा अपनी प्रतिभा के विषय में दृढ़ हो गया था; और उसे सर्वसाधारण की प्रसन्नता के लेहाज़ से अपने विचारों को तोड़ने मरोड़ने की आवश्यकता नहीं रही थी। अर्थात् उस समय शेक्सपियर की लेखिनी को शब्दों के चुनने के लिए रुकना नहीं पड़ता था; वह सरसर दौड़ती हुई उसके विचारों को प्रकाशित करती जाती थी। शब्द-शास्त्र शेक्सपियर के विचारों का दास सा हो गया था।

इस नाटक पर जितनी लेख-मालायें और जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं यदि वे सब इकट्ठा की जायँ तो एक पूरा पुस्तकालय बन जाय। इस पर टीका, टिप्पणी और समालोचना की पुस्तकों की, साहित्य में, इतनी भरमार है कि कुछ ठिकाना नहीं। इन समस्त पुस्तकों के समूह को हैमलेट-लिटरेचर, अर्थात् हैमलेट-साहित्य, कहते हैं। इँगलैंड और अमेरिका के लेखकों को जाने दीजिये, जर्मनीवालों तक ने अपनी भाषा में इस नाटक के ऊपर अनेक पुस्तकें लिख डाली हैं। भारतवर्ष की भांति जर्मनी भी अपने दर्शन-शास्त्र के लिए मशहूर है। वहां भी बड़े बड़े दार्शनिक और विचारशील मनुष्य हो गये हैं। हैमलेट में शेक्सपियर ने अपना सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दार्शनिक ज्ञान भर दिया है। सांसारिक जीवन में विचार और कार्य को कौन कौन स्थान देना चाहिए; विचार के आतिशय्य से कार्य्य की न्यूनता होती है; कार्य के अत्याधिक्य से विचार में न्यूनता आती है—इन्हीं बातों को समझाने के लिए शेक्सपियर ने हैमलेट लिखा है। तो क्या आश्चर्य यदि जर्मनी-वाले उसे बहुत पसन्द करें, और उस पर बड़ी बड़ी पुस्तकें लिख डालें।

जर्मनी के प्रसिद्ध ग्रन्थकार और दार्शनिक गेटे (Goethe) का मत है कि एक छोटे से घड़े के अन्दर एक बड़े भारी वृक्ष के बीज के उग आने से जो परिणाम होता है हैमलेट उसी परिणाम का उदाहरण है। वृक्ष के बढ़ने से घड़ा टूट जायगा। उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जायँगे। बहुत थोड़ी कार्य-शक्तिवाले मनुष्य पर एक बड़े भारी कार्य का भार डाल देने से वह दब जायगा। उसका सारा जीवन नष्ट हो जायगा। गेटे के इस मत से बहुत लोग सहमत नहीं हैं। उनकी राय में हैमलेट पूरी कार्यशक्ति रखता था। वह यदि करता तो बहुत कुछ कार्य कर सकता था; परन्तु वह इतना अधिक सोच-विचार और आगा-पीछा करता था, कि उसकी सारी कार्य-शक्ति विचारों ही में ख़र्च हो जाती थी। काम करने के लिए उसके पास कुछ भी शक्ति बाक़ी नहीं रहती थी। इसीसे उसे अपने कार्यों में निष्फलता हुई।

इन दोनों मतों में कौन ठीक है, और कौन नहीं? हैमलेट में कार्यशक्ति थी ही नहीं; अथवा उसकी सारी शक्ति विचारों ही में ख़र्च हो जाती थी? निर्बल मनुष्य अपने ऊपर एक बड़े भारी काम का भार लेकर अपना सारा जीवन नष्ट कर डालता है; या सबल मनुष्य का भी बल विचारातिशय्य से जाता रहता है? इन बातों को समझने के लिए हैमलेट नाटक की कहानी का जान लेना आवश्यक है।

डेनमार्क देश का एक राजा हैमलेट नामक था। उसकी गर्टरूड नाम की बहुत प्यारी रानी थी। राजा और रानी में परस्पर बड़ा प्रेम था। रानी से राजा को एक पुत्र हुआ। उसका नाम रक्खा गया हैमलेट।

एक दिन राजा अपने बाग़ में अकेला सो रहा था। क्लाडियस नामक उसके भाई ने राजा को सोता देख उसके कान में ज़हर डाल दिया। उससे राजा की मृत्यु हो गई। राजा की मृत्यु के दो ही महीने बाद क्लाडियस ने गर्टरूड से अपना व्याह कर लिया और डेनमार्क का राजा बन बैठा। उसने प्रजा में यह ख़बर उड़ा दी कि राजा को सोते में साँप ने काट लिया। इसीसे उसकी मृत्यु हुई। पर यह किसी को ख़बर न लगी कि सोते हुए राजा को डँसने वाला साँप स्वयं उसका भाई ही था। "मेरी मां पिता से बड़ा प्रेम रखती थी। उस प्रेम को वह अमर बतलाती थी। उसी माँ ने मेरे पिता के मरने के दो ही महीने बाद मेरे चचा से व्याह कर लिया और मेरे पिता को वह भूल गई"! यह सोच कर आत्माभिमानी कुमार हैमलेट को यह बात बहुत बुरी लगी। माँ के नये व्याह के उत्सव में भी वह शरीक न हुआ। ग़मी के काले कपड़े भी उसने नहीं उतारे। माँ समझती थी कि बेटे को बाप के मरने ही से इतना दुःख है। वह यह नहीं जानती थी कि उसका ही व्यवहार बेटे के दुःख का कारण था।

ईसाइयों के पुराने मत के अनुसार मरने के समय पापों के विषय में ईश्वर से क्षमा मांगने से मनुष्य अपने पापों से छूट जाता है। यदि मरते समय किसी कारण से मनुष्य क्षमा न माँग सके तो उसकी आत्मा को पर्गेटरी में रहना पड़ता है। पर्गेटरी एक प्रकार का नरक समझिये। वहां मनुष्यात्मा को नाना प्रकार के कष्ट दिये जाते हैं। उन कष्टों को भोगने के बाद मनुष्य अपने पापों से मुक्त होकर वैकुण्ठ में जाता है। पर्गेटरी को, वास्तव में, एक प्रकार की परलोक की चौकी समझना चाहिये। पर्गेटरी में दिन भर आत्मा क़ैद रहती है; पर रात को उसे इधर उधर फिरने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इजाज़त मिलती है। परन्तु कौओं के बोलते ही उसे फिर पर्गेटरी में पहुँच जाना पड़ता है। हैमलेट के पिता की आत्मा की भी यही गति हुई। सोते समय मृत्यु होने से पापों की क्षमा हैमलेट का पिता न माँग सका। इसीलिये उसकी आत्मा को भी पर्गेटरी में वास करना पड़ा। हर रात को वह वहां से निकलती और हैमलेट की तलाश में इधर उधर फिरती।

हैमलेट के पिता की आत्मा को यह फ़िक्र थी कि हैमलेट से मिलकर वह अपनी मृत्यु का भेद कहे। इसी फ़िक्र में वह महल के सामने रात को टहला करती थी। पहरेवालों ने एक दिन उसे देख लिया। इसकी ख़बर उन्होंने हैमलेट के परम मित्र होरेशियो को दी। दूसरे दिन होरेशियो ने स्वयं उसे देखा और हैमलेट से जाकर कहा। हैमलेट को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। दूसरे दिन, रात को, वह स्वयं उससे मिलने के लिये होरेशियो के साथ पहरे पर गया। ठीक आधी रात को प्रेतात्मा दिखलाई दी। उसने इशारे से हैमलेट को अपने पास बुलाया और उसे कुछ दूर एकान्त में ले जाकर अपनी मौत का सारा हाल कहा। उसने कहा, हैमलेट, यदि तू अपने बाप का सच्चा पूत है तो मेरी हत्या का बदला ले। लेकिन ख़बरदार, अपनी मां को तू मत सताना। उसका अन्तःकरण स्वयं उसकी चुटकियाँ लेगा और वह स्वयं अपने किये पर पछतावेगी। बस यही सज़ा उसके लिये काफ़ी है। इतना कह कर वह प्रेत-आत्मा अन्तर्हित होगई।

हैमलेट के चित्त का अजब हाल था। आत्मा की बात सच है या झूठ। यदि सच है तो बदला लेना ज़रूरी बात है। पर कहीं मेरे पिता के स्वरूप में आकर शैतान तो नहीं मुझे बहका गया है, कि मैं मनुष्य-हत्या करूँ; पापी बनूँ; और नरक का वासी होऊँ। ऐसेही विचारों में डूबता उतराता हैमलेट अपने साथियों के पास लौट आया। उनसे उसने इस घटना को गुप्त रखने की क़सम ले ली; और स्वयं यह विचार अपने मन में दृढ़ कर लिया कि मैं पागल बन जाऊँ, और इस बात की तहक़ीक़ात करूँ कि जो कुछ प्रेतात्मा ने मुझसे कहा है वह ठीक है या नहीं। दूसरे दिन से हैमलेट पागलों की तरह चेष्टा और व्यवहार करने लगा।

शेक्सपियर की प्रतिभा इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि उसने हैमलेट के पागलपने को इतनी योग्यता के साथ दरसाया है कि आज कल भी बड़े बड़े समझदारों को भ्रम हो जाता है कि हैमलेट वास्तव ही में पागल था, वह बनावटी पागल न था। कोई कोई डाक्टर हैमलेट को पढ़ कर अपनी सारी डाक्टरी इसी की खोज में ख़र्च कर देते हैं कि हैमलेट वास्तव पागल था या थोड़े दिनों के लिये पागल बन गया था। कोई कहता है कि वह बनावटी पागल था। कोई कहता है, नहीं, वह वास्तव में पागल था। कोई कोई यह भी कहते हैं कि न तो वह सच्चा पागल था और न बनावटी ही। सब कोई अपने अपने सिद्धान्त की पुष्टि में हैमलेट नाटक से प्रमाण निकाल लाते हैं। प्रतिभा की यह चरम सीमा है। इससे बढ़ कर और कौन नाटककार पागलपने को दृश्य-काव्य में स्पष्ट कर सकता है? ऐसे डाक्टर हैमलेट-साहित्य-संसार में पागल-डाक्टर के नाम से मशहूर हैं।

अब हैमलेट के चचा और उसकी मां इत्यादि को यह फ़िक्र हुई कि हैमलेट के पागल हो जाने का कारण क्या है। मां समझती थी कि अपने पिता की मृत्यु के दुःख ही से वह पागल हो गया है। पापी क्लाडियस अपने मन ही मन डर रहा था, कि कहीं इसे अपने पिता की मृत्यु का ठीक ठीक हाल तो नहीं मालूम हो गया जो यह पागल बनकर मुझ से बदला लेने की फ़िक्र में हो।

राजा के महल में पोलोनियस नामक एक वृद्ध कंचुकी था। संस्कृत नाटकों में कंचुकी वृद्ध ब्राह्मण हुआ करता है। यह शेक्सपियर का कंचुकी भी एक वृद्ध राजनैतिक पुरुष था। पोलोनियस को कंचुकी क्या राजमन्त्री कहना चाहिये। क्योंकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह डेनमार्क के राज्यकार्य्य में भी योग देता था और राजा उसकी राय से सारे काम करता था। पोलोनियस के उफेलिया नामक एक रूपवती लड़की थी। हैमलेट उस पर मोहित था। पोलोनियस को इसकी ख़बर लग गई थी। पर उसने अपनी लड़की को हैमलेट से मिलने की मनाई कर दी थी। "कहां एक कंचुकी की लड़की और कहां राजपुत्र; भला तेरा और उसका क्या सम्बन्ध"? अपने पागलपन के दिनों में भी हैमलेट एक बार उफेलिया से मिला। वह उससे अपने पिता की आज्ञानुसार कुछ रुखाई से पेश आई। इस पर हैमलेट ऊटपटाँग बातें करके चला आया। पोलोनियस को इसकी भी ख़बर लगी। वह दौड़ता हुआ क्लाडियस के पास आया और कहने लगा—"हुज़ूर मैं जान गया"। भई क्या जान गये? "मैं जान गया कि हैमलेट क्यों पागल हो गया है? वह पागल है, इसमें तो कोई शक ही नहीं। अब देखना चाहिए कि उसके पागलपन का कारण क्या है"। अच्छा कहिए तो क्या कारण है? "कहता हूं; अगर मेरी बात सच न निकले तो मेरा सिर उतार लिया जाय। आपको मालूम है कि मेरे एक लड़की है, या मैं एक लड़की का बाप हूं। बात एक ही है चाहे यों कहिए चाहे यों"। भई मतलब की बात कहो। यह तो हम जानते ही हैं कि तुम्हारे एक लड़की है। "हुज़ूर हैमलेट मेरी लड़की पर मोहित था। पर मैंने अपनी लड़की को उससे मिलने से मना कर दिया। इसीसे हैमलेट पागल हो गया है। बस उसके पागल होने का कारण प्रेम है"। गर्टरूड को पोलोनियस की बात सच मालूम हुई। पर क्लाडियस बड़ा काइयाँ था। उसे पूरा पूरा विश्वास न हुआ। उसने चाहा कि इस बात की कुछ और परीक्षा लेनी चाहिए। इसलिए उसने यह मन्तव्य निश्चित किया कि उफेलिया अकेली हैमलेट के पास भेजी जाय और क्लाडियस और पोलोनियस छिप कर देखें कि उन दोनों में क्या क्या बातें होती हैं।

शेक्सपियर ने पोलोनियस से उसका फ़र्ज़ बड़ी ही योग्यता के साथ अदा कराया है। बूढ़े आदमी अकसर बातूनी होते हैं। वे बातें बहुत सी करते हैं पर उनसे मतलब थोड़ा ही निकलता है। पोलोनियस राज-कर्मचारी था। उसकी सारी उम्र राजनैतिक प्रपंचों में मत्था खपाने में बीती थी। अब वह बुड्ढा हो गया था। उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता कुन्द हो गई थी। वह सठिया गया था। पर भला वह अपनी आदत कैसे छोड़े? अब भी उसे अपनी तीव्र बुद्धि का घमण्ड था। अब भी उसे इस बात का दावा था कि जो मैं समझता हूं वही ठीक है। इसका नतीजा यह हुआ कि वह अपनी ही बात को सर्वोपरि समझने लगा। बुड्ढों के मत को बदलना प्रायः असम्भव होता है। उनकी मानसिक शक्ति निर्बल हो जाती है। वे पुराने ही ढर्रों पर चलते हैं। नवीन मार्गों की तरफ़ उनकी बुद्धि जाती ही नहीं।

हैमलेट और उफेलिया की भेंट कराई गई। पहिले तो हैमलेट की कुछ कुछ इच्छा हुई कि उफेलिया पर अपना भेद प्रकट कर दूँ और उसे भी अपने रहस्य का भेदी बना लूँ। पर कुछ सोच-समझ कर उसने ऐसा न किया। उसने उफेलिया से पूछा कि तेरा पिता कहां है। पिता की आज्ञाकारिणी पुत्री झूठ बोली। उसने कहा—"घर पर"। उफेलिया की असत्यता पर हैमलेट को घृणा हुई और उसका मन उससे हट गया। वह फिर ऊटपटाँग बातें बकने लगा। उसकी बातों का अर्थ न तो वृद्ध पोलोनियस ही समझ सका और न धूर्त क्लाडियस ही। हाँ उफेलिया बेचारी को बड़ा रंज हुआ। वह स्वयं हैमलेट पर मुग्ध थी। अपने प्रेमपात्र के पागलपन से वह क्योंकर दुखी न होती? उसके सुकुमार चित्त पर बड़ा आघात पहुँचा।

इस भेंट का एक परिणाम और भी हुआ। वह यह कि हैमलेट का मन स्त्रीमात्र की ओर से खट्टा हो गया। अपने जीवन भर में उसे केवल दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों से काम पड़ा था। एक तो उसकी माँ से, दूसरी उफेलिया से। माँ तो प्रेम की कसौटी पर पूरी न उतरी। अपने पूर्वपति की मृत्यु के दो ही महीने बाद उसने दूसरा व्याह कर लिया। रही उफेलिया, वह अपने भावी पति से झूठ बोली। बस, हैमलेट का सिद्धान्त पक्का हो गया कि सभी स्त्रियां असत्यवादिनी होती हैं। उनकी बातों में सत्यता का लेश तक नहीं रहता। दो स्त्रियों के अपराध से स्त्रीमात्र पर झूठ बोलने का आरोप आ गया! इस तरह का आरोप लगाना मनुष्य में स्वाभाविक है। सफ़ेद चीनी को खाकर बच्चा सफ़ेद चूने को भी मीठा समझ लेता है, पर मुँह फटने पर वह अपने पहिले सिद्धान्त को बदलता है। तब वह समझता है कि—"जितनी चीज़ें सफ़ेद हैं सब मीठी नहीं होतीं"। दो चार हिन्दुस्तानियों को झूठा और दग़ाबाज़ पाकर अँगरेज़ लोग समझने लगते हैं कि सभी "काले आदमी" झूठे और दग़ाबाज़ होते हैं। इसी तरह कई हिन्दुस्तानी आदमी एक आध अँगरेज़ की लात खाकर सब अँगरेज़ों को लत्तू समझने लगते हैं। ऐसा समझना तर्क-शास्त्र-संगत नहीं। पर किया क्या जाय, बात स्वाभाविक है। और सच्चे नाटककार का कर्तव्य है कि जो बात संसार में जैसी हो उसे वह वैसा ही दरसावे। सब बातों के याथार्थ्य भाव की शिक्षा देना, अर्थात् जो बात जैसी होनी चाहिए उसे वैसा ही दिखाना, आदर्श-पथ-प्रदर्शक नाटककार का काम है। उसके पात्र अलौकिक—साधारण मनुष्यों से पृथक्-होते हैं। पर वास्तविक अर्थात् सच्चे नाटककार के पात्र सांसारिक होते हैं। अर्थात् वे संसार में पाये जाते हैं। भवभूति की सीता जैसी स्त्रियां संसार में नहीं होती। उनको सीता जैसी होने की कोशिश करनी चाहिए, यह दूसरी बात है। पर कालिदास की शकुन्तला जैसी स्त्रियां सांसारिक हैं। वे संसार में बहुधा पाई जाती हैं।

इधर क्लाडियस हैमलेट के पागलपन का कारण ढूँढ़ने में लगा था। उधर हैमलेट को यह फ़िक्र थी कि किसी तरह यह निश्चित हो जाय कि जो बात प्रेतात्मा ने कही है वह वास्तव में ठीक है या नहीं। उन्हीं दिनों डेनमार्क में एक नाटक मण्डली का आगमन हुआ। हैमलेट ने उससे ठीक कर लिया कि वह एक ऐसे नाटक का अभिनय करे जिसकी घटना बिलकुल वैसी ही हो जैसी कि प्रेतात्मा ने कही थी। केवल पात्रों के नाम और स्थानादि बदल दिये जायँ। इस नाटक के लिये हैमलेट ने ख़ुद भी कुछ लेख-सामग्री दी थी। इस नाटक का नाम हैमलेट ने "माउस ट्रैप" (Mouse-trap) अर्थात् "चूहेदान" रक्खा था। क्योंकि इस नाटकाभिनय द्वारा क्लाडियस के अन्तःकरण के रहस्य का पकड़ना ही हैमलेट को अभीष्ट था।

यहां पर शेक्सपियर ने यह दिखलाया है कि "नाटकान्तरनाटक" के व्याज से नाटक के अभिनय से क्या क्या लाभ होते हैं। इन लाभों में से एक विशेष लाभ तो यह है कि अभिनय के देखने से लोगों के छिपे हुए मनोराग प्रायः प्रकट हो जाते हैं। कहते हैं कि हत्याभिनय देख कर कई हत्यारों ने अपना अपराध क़बूल कर लिया। "चोर की डाढ़ी में तिनका" यह कहावत झूंठ नहीं है। पापी को सदा यही शङ्का बनी रहती है कि कहीं मेरा पाप न प्रकट हो जाय। इस भय का इतना भारी प्रभाव उसके मन पर पड़ता है कि साधारण से भी साधारण बात को देख कर वह सहम जाता है। जेलख़ाने से भागे हुए अपराधी को पत्ते का खड़कना भी डरा देता है। वह समझता है कि पुलिस आ पहुंची। तो क्या आश्चर्य्य जो अपने किये हुए पाप का हूबहू अभिनय देख कर पापी अपने मन का भाव प्रकट कर दे। नाटकाभिनय द्वारा दूसरे का मनोभाव जान लेना, शिथिल भावों को उत्तेजित कर देना, कल्पना-साहचर्य्य के नियम के अनुसार मनोरागों को बढ़ा देना इत्यादि हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक प्रकार के लाभ दृश्य काव्य से होते हैं। कविवर भवभूति ने भी उत्तर रामचरित में एक ऐसे ही नाटकान्तरनाटक का प्रयोग किया है। अभिनय में वन-वासिनी सीता की करुणा-जनक दशा को देख कर "सीताविवासनपटु" राम मूर्छित हो जाते हैं। उनको यह ध्यान नहीं रहता है कि यह अभिनय है, वास्तविक घटना नहीं। अभिनय को देख कर कठोर कलेजे के पुरवासी-जन भी आर्द्र हृदय होकर सीता का फिर ग्रहण करना उचित समझते हैं।

डेनमार्क के राज-महल में इस अभिनय के करने का प्रबन्ध हुआ। क्लाडियस और गर्टरूड को भी तमाशा देखने के लिये न्योता दिया गया। वे लोग आये। उन्हें क्या ख़बर थी कि उन दोनों ही की परीक्षा के लिये यह प्रपंच रचा गया है। हैमलेट और होरेशियो भी इन दोनों के चेहरों के चढ़ाव उतार को देखने के लिये एक तरफ़ बैठे। अभिनय प्रारम्भ हुआ। रङ्गभूमि पर नक़ली राजा और रानी ने प्रवेश किया। आपस में प्रेम की बातें होने लगीं। "मैं अनन्त काल तक अपना प्रेम निबाहूंगी"। "क्या तुम मेरे मरजाने के बाद भी दूसरा ब्याह न करोगी"? "नहीं कभी नहीं; स्त्री के लिये दूसरा विवाह करना मानों पहिले पति को दुबारा मारना है"। इत्यादि बातें होती रहीं। इसके बाद रानी की जांघ पर सिर रखकर राजा सो गया। रानी उसे सोता छोड़ नैपथ्य में चली गई। यहां तक तो क्लाडियस देखा किया। पर जब उस नक़ली राजा के भाई ने, विष की शीशी लेकर, रङ्गभूमि में प्रवेश किया और सोते हुए राजा के कान में विष डाल दिया तब क्लाडियस से न रहा गया। उसके चेहरे पर भय, क्रोध और घबराहट के निशान व्यक्त हो आये। अभिनय को अन्त तक वे देखे ही वह उठ खड़ा हुआ और अपने सोने के कमरे में चला गया। उसके पीछे गर्टरूड भी चली गई। अभिनय भी यहीं समाप्त हुआ।

अब हैमलेट को पूरा यक़ीन हो गया कि मेरे पिता का घातक क्लाडियस ही है; और जो कुछ उस प्रेतात्मा ने कहा था वह सच है। पहिले भी इसमें कोई सन्देह न था। यदि हैमलेट चाहता तो प्रेतात्मा के कहने के बाद ही अपने पिता की मृत्यु का बदला चुका लेता। परन्तु बहुत आगा पीछा करने की तो हैमलेट की आदत ही पड़ गई थी। वह इतना सोच विचार करता था कि उसी में उसका सारा समय चला जाता था और सारी शक्ति ख़र्च हो जाती थी। काम करने का उसे मौक़ा ही नहीं मिलता था। हैमलेट की तरह यदि कोई सोच विचार करे तो शायद वह पेट के लिए रोटी भी न पका सके। ऐं रोटी पकायें? शायद पकाने में हाथ जल जाय। जलने से उसमें छाला पड़ जाएगा। फिर यदि छाला कच्चा ही फूट जाय तो हाथ पक उठैगा। पकने पर डाक्टर को दवा करनी होगी। और यदि चिकित्सा में कुछ गड़बड़ हो गई तो ज़हरबात हो जायगा। ज़हरबात जल्दी अच्छा नहीं होता। शायद उससे कहीं मेरी मौत ही न हो जाय! इसलिये रोटी न पकाना चाहिये। चलो बिना खाये ही रहें। हैमलेट इसी तरह का आदमी था। संसार के दुःखों से घबरा कर वह सोच रहा है। "आत्महत्या करके इन दुःखों से क्यों न हम मुक्त हो जायँ? ऐं आत्महत्या करें? उससे क्या होगा? मौत होगी। संसार के सारे दुःखों से छुटकारा मिलेगा। पर मौत क्या है? मौत भी एक प्रकार की नींद है। नींद में स्वप्न दिखलाई देते हैं। कोई कोई स्वप्न बड़े ही दुखदायी होते हैं। ऐसा न हो, मौत की नींद में भी स्वप्न दिखलाई दें। तो फिर आत्मघात से क्या लाभ? कुछ भी नहीं। कुछ समझमें नहीं आता, क्या करें क्या न करें?" हैमलेट की विचार-परम्परा इसी तरह की थी।

गर्टरूड को ख़याल हुआ कि हैमलेट ने क्लाडियस का अपमान किया है। इसलिये धिक्कारने के लिये उसने हैमलेट को अपने कमरे में बुलवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेजा। हैमलेट बरामदे में से होकर अपनी मां के पास जाने लगा। रास्ते में एक कमरे में उसने क्लाडियस को हाथ जोड़े हुए ईश्वराराधन में मग्न देखा। यदि हैमलेट चाहता तो उसी क्षण क्लाडियस का काम तमाम करके अपने बाप की मौत का बदला चुका लेता। परन्तु हैमलेट का तो स्वभाव ही था कि ज़रा ज़रा सी बात पर वह घण्टों विचार किया करता था। वह सोचने लगा "यदि इस समय मैं इसे मारता हूँ तो यह सीधा वैकुण्ठ को चला जायगा। क्योंकि यह इस समय ईश्वर की उपासना कर रहा है। इसने मेरे पिता का सोते में घात किया। उनको नरक-वास का दुःख भोगना पड़ा। इसके बदले मैं इसे वैकुण्ठ भेज दूँ! यह बदला कैसा? यह तो इसके साथ बड़ा भारी उपकार होगा। चलो जाने दो। और किसी अच्छे मौक़े पर देखा जायगा"। हैमलेट ने एक बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ से जाने दिया।

हैमलेट आगे चल कर अपनी मां के सामने पहुँचा। हर काम में दख़ल देने वाला पोलोनियस एक पर्दे के पीछे छिपकर दोनों की बातें सुनने लगा। माता और पुत्र में बातें होने लगीं। माता ने कहा—"हैमलेट, तूने अपने बाप को बहुत कुपित कर दिया है"। "माता आपने मेरे पिता को बहुत ही असन्तुष्ट किया है"। "हैं, यह तू क्या बकता है"?। "बकता क्या हूँ अपने पूर्वपति को भूल जाना, उसकी मृत्यु के बाद ही उसके घातक से विवाह कर लेना, क्या नीचता नहीं?"। "हैमलेट मैं तेरी माता हूँ। तू मुझसे ऐसी बातें करता है"?। "हां; अफ़सोस है कि आप मेरी माता हैं; मैं चाहता हूँ कि आप मेरी माता न होतीं"। यों ही कड़ी कड़ी बातें माता और पुत्र में होने लगीं। गर्टरूड क्रुद्ध होकर यह कहती हुई उठ खड़ी हुई कि "तू मुझसे ऐसे तिरस्कार के साथ बातें करता है। मैं जाती हूं। मैं उन लोगों को भेजूंगी जिनसे तू अधिक प्रतिष्ठा के साथ पेश आएगा"। पर हैमलेट ने उसे ज़बर्दस्ती पकड़ कर बिठाल लिया और कहा कि अभी कुछ और सुनती जाओ। गर्टरूड समझी कि यह पागल तो है ही, कहीं मुझे मार न डाले। इससे वह लगी चिल्लाने "दौड़ो दौड़ो"। गर्टरूड के स्वर से स्वर मिलाकर पर्दे के पीछे से पोलोनियस भी चिल्लाने लगा—"दौड़ो रे दौड़ो" हैमलेट ने समझा कि यह क्लाडियस है और पर्दे के इसी तरफ़ से तलवार का एक ऐसा वार किया कि पोलोनियस का काम तमाम हो गया। उसकी जीवन-यात्रा का अन्त हुआ और इस वियोगान्त नाटक का प्रथम कारुणिक दृश्य भी समाप्त हुआ।

पोलोनियस की लाश को बाहर निकाल कर हैमलेट ने जाना कि उसके हाथ से पोलोनियस का ख़ून हुआ है। इसका उसे रंज हुआ। पर अब रञ्ज करने से क्या होता था। माता और पुत्र में फिर वार्तालाप आरम्भ हुआ। हैमलेट ने बड़ी बड़ी युक्तियों से अपनी माता को समझा दिया कि उसने बड़ा भारी पाप किया है। तब उसके हृदय-चक्षु खुले और उसने प्रतिज्ञा की कि आगे वह पश्चात्तापादि के द्वारा अपने पाप का प्रायश्चित्त करेगी। क्लाडियस को पोलोनियस की मौत का हाल सुनकर बड़ी ही बेचैनी हुई। उसे पोलोनियस के मरने का शोक नहीं हुआ, किन्तु उलटा उसे एक प्रकार का सन्तोष सा हुआ। उसने सोचा कि ख़ैर हुई जो मैं पर्दे के पीछे न था। अगर मैं होता तो मेरी ही मौत होती। स्वार्थी को सब जगह अपना ही ख़याल रहता है। उसकी बेचैनी इस बात से हुई कि अब भण्डा फूट गया है। हैमलेट को मेरे पाप का पता लग गया है। अब वह मुझसे अपने बाप के मारने का बदला लेने की फ़िक्र करेगा। इसलिये उसका मेरे पास रहना ठीक नहीं। किसी प्रकार हैमलेट का काम करना चाहिये। बहुत सोच विचार कर उसने एक तरकीब निकाली। उसने गर्टरूड से कहा कि पोलोनियस के वध की ख़बर फैलने पर साधारण प्रजा बिगड़ खड़ी होगी और न जानें हैमलेट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ क्या कर बैठे। इसलिए हैमलेट का यहां से हटा देना आवश्यक है। इस तरह समझा बुझा कर उसने गर्टरूड को हैमलेट के इँगलैंड भेजने पर राज़ी किया और झटपट एक जहाज़ तैयार करा कर हैमलेट को इँगलैंड की ओर रवाना कर दिया। उसके साथ उसने दो दरबारी कर दिये और उनको इँगलैंड के राजा के नाम एक पत्र दे दिया। उस पत्र में क्या लिखा था सो आगे चल कर मालूम होगा।

हैमलेट को बड़ी चिन्ता थी कि मुझको क्लाडियस इँगलैंड क्यों भेज रहा है। ज़रूर कुछ दाल में काला है। एक रात को वह पड़ा पड़ा यही सोच रहा था कि उसके जी में न जानें क्या आया। वह अपनी कोठरी से बाहर निकल कर अँधेरे में टटोलता हुआ उन दोनों दरबारियों के कमरे में पहुँचा। वहां से वह उनका एक पैकेट चुपके से उठा लाया। अपने कमरे में पहुँच कर उसने उस पैकेट को खोला। उसमें उसे एक पत्र मिला। लिफ़ाफ़े की मुहर तोड़ कर जो उसने पत्र पढ़ा तो वह दंग रह गया। उसमें इँगलैंड के राजा को लिखा था कि ये दो दरबारी हैमलेट को तुम्हारे पास लिये आते हैं। तुम पत्र पाते ही हैमलेट को मार डालना, देर मत करना। पत्र की बात पढ़कर हैमलेट को भी एक चाल सूझी। उसने तुरन्त एक दूसरा पत्र लिखकर उसी लिफ़ाफ़े में बन्द कर दिया। उसमें उसने लिख दिया कि ये दो दरबारी तुम्हारे पास आते हैं। इन्हें इँगलैंड पहुँचते ही तुरन्त मारडालना। हैमलेट की अँगुली में उसके पिता का नाम खुदी हुई एक अँगूठी थी। उसीसे उसने लिफ़ाफ़े पर मुहर कर दी और जहां से लिफ़ाफ़ा लाया था वहीं उसे रख आया। किसके सर आई थी और किसके सर पड़ी।

दूसरे दिन हैमलेट के जहाज़ पर एक लुटेरों के जहाज़ ने एकाएक हमला किया। दोनों जहाज़ों में खूब लड़ाई होने लगी। हैमलेट भी बड़ी बहादुरी के साथ लड़ने लगा। दोनों जहाज़ नज़दीक आकर बिलकुल एक दूसरे से भिड़ गये। हैमलेट जोश में लड़ता हुआ लुटेरों के जहाज़ पर चढ़ गया। इतने में उसका जहाज़ उससे अलाहदा हो गया और वह लुटेरों के हाथ क़ैद हो गया। डेनमार्क का जहाज़ इँगलैंड की ओर रवाना हो गया।

लुटेरों ने जब जाना कि हैमलेट डेनमार्क का राजकुमार है तब उन्होंने यह सलाह की कि चलो हैमलेट को डेनमार्क ले चलें और इसके बदले में वहां के राजा से बहुत सा रुपया लें। इस तरह लुटेरों के साथ हैमलेट फिर डेनमार्क को लौट चला।

जो समझते हैं कि हैमलेट में कार्य्य करने की शक्ति ही नहीं थी, उनको यहां पर ज़रा ध्यान देना चाहिये। काम पड़ जाने पर, और बहुत सोच विचार करने के लिये समय न मिलने पर, हैमलेट काम कर भी डालता था। लुटेरों से दिल खोल कर लड़ना, पत्र का विषय बदल देना, इत्यादि बातें इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

पोलोनियस के एक लारेटीज़ नामक पुत्र भी था। वह फ़्रांस देश के पेरिस नगर में विद्याध्ययन कर रहा था। लारेटीज़ बड़ा तुन्द मिज़ाज, और हठी युवक था। उसके मन में जो कुछ आता था वह विना परिणाम सोचे ही कर बैठता था। उसमें विचार करने की शक्ति थी ही नहीं। पर कार्य्य करने की शक्ति उसमें बेहद थी। उसको हैमलेट का पूरा उलटा समझिये। जिस बात की हैमलेट में अधिकता थी वह इसमें थी ही नहीं, और जिस की हैमलेट में कमी थी, वह लारेटीज़ में भर पूर थी। लारेटीज़ और हैमलेट इन दो पात्रों की साथ साथ तुलना करके शेक्सपियर मानों यह शिक्षा दे रहा है कि मनुष्य को सांसारिक जीवन में कौन स्थान कार्य्य को और कौन विचार को देना चाहिये। अस्तु।

जब लारेटीज़ ने अपने पिता की मृत्यु का हाल सुना तब वह झट पैरिस से डेनमार्क आ पहुँचा। यहां आकर उसने बड़ा उपद्रव मचाना शुरू किया। तमाम नगर के लोगों को उसने जमा किया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप उनका सरदार बन कर राजविप्लव करने की ठहरादी। बहुत आदमियों को लेकर वह क्लाडियस के महल पर चढ़ गया। और क्लाडियस से उसने पूछा—"मेरे पिता की मौत का क्या कारण है? ठीक ठीक बतलाइये, नहीं तो मैं बड़ा अनर्थ करूँगा"। क्लाडियस बड़ी कूटनीति का आदमी था। उसने सोचा कि इससे बिगाड़ करना ठीक नहीं, मेल कर लेना चाहिये। वह उसे समझा बुझा कर एकान्त में ले गया और उसके पिता के मारे जाने का सारा हाल कह सुनाया। उसने कहा, जो तुम्हारे पिता का मारने वाला है वह मेरा भी शत्रु है। फिर उसने हैमलेट को इँगलैंड भेजने और अपनी चालबाज़ी का हाल कह कर लारेटीज़ का क्रोध शान्त किया। इन दोनों में अभी बातें हो ही रही थीं कि क्लाडियस के पास हैमलेट का पत्र पहुँचा कि मैं लौटा आरहा हूं। क्लाडियस को हैमलेट के इस तरह बचकर निकल आने पर बड़ा आश्चर्य्य हुआ और अपनी चाल के चूक जाने पर बड़ा रञ्ज। पर क्लाडियस के मस्तिष्क में धूर्तता की मात्रा कम न थी। उसने उसी क्षण एक और चाल सोच निकाली और अपनी इस नवीन चाल को काम में लाने का साधन उसने लारेटीज़ को बनाना निश्चय किया। उसने लारेटीज़ से कहा कि मैंने एक और तरकीब सोच निकाली है। यदि तुम्हें वास्तव में अपने पिता की मृत्यु का शोक है, और तुम अपने पिता की मृत्यु का बदला चुकाना चाहते हो, तो तुमको चाहिए कि तुम मेरी बात मानो। लारेटीज़ क्लाडियस की बातों में आगया। उसने प्रतिज्ञा की कि मैं अवश्य आप की बात मानूंगा। तब क्लाडियस ने इस तरह कहना प्रारम्भ किया—"देखो लारेटीज़, तुम पटेबाज़ी में खूब प्रवीण हो। तुम्हारे दाँव पेच की नगर में बड़ी प्रसिद्धि है। हैमलेट को भी पटेबाज़ी का बड़ा शौक़ है। वह तुमसे स्पर्धा करता है। और पहिले कहा भी करता था कि यदि मौक़ा मिले तो लारेटीज़ के साथ पटेबाज़ी खेलूँ। अब हैमलेट लौटा आरहा है। मैं उसे तुम्हारे साथ शर्त लगाकर खेलने के लिये उत्तेजित करूंगा। तुम एक तेज़ तलवार अचानक हाथ में ले लेना और उसीसे खेलना और आँख बचाकर हैमलेट के किसी मर्म स्थान पर घाव लगा देना"। लारेटीज़ को यह बात बहुत पसन्द आई। उसने अपनी ओर से भी उस चालबाज़ी में नमक मिर्च लगाया। अर्थात् उसने कहा कि मैं एक बड़ा कारी ज़हर जानता हूं। तलवार की नोंक को उसी में मैं बुझा रक्खूंगा। उससे ज़रा सा भी घाव लग जाने पर आदमी कभी जीता नहीं बच सकता। इसपर क्लाडियस ने कहा कि मैं एक ग्लास में शराब की जगह विष भर रक्खूंगा और यदि मैं देखूंगा कि तुम हैमलेट के घाव नहीं लगा सके तो मैं उसे अपने पास बुला कर शराब के धोखे विष पिला दूँगा। ये दोनों इस प्रकार सलाह करके पृथक् हुए।

उधर हैमलेट इँगलैंड न जा कर लौटा आ रहा है। इधर उस पर मोहित हुई उफेलिया का हाल सुनिये। हैमलेट के पागल होने का तो उसे शोक था ही। अपने पिता की मृत्यु के शोक से वह और भी अधीर हो गई। अपने ही प्रेमपात्र के हाथ से अपने पिता को मृत्यु भला वह कैसे सह सकती थी? हैमलेट तो जान बूझ कर पागल बना था, पर उफेलिया सचमुच ही शोकातिशय्य से पागल होगई। कभी वह अपने पिता का नाम लेकर रोती, कभी हैमलेट का। अपनी प्रमादावस्था में उसे फूलों से बड़ा शौक़ हो गया था। फूलों को तोड़ तोड़ कर वह उनका हार बनाती और कभी आप पहिनती कभी औरों को पहनाती। कभी वह हँसती, कभी रोती, कभी अपने घर रहती, कभी हैमलेट के घर जाती। निदान यों ही वह पागल सी फिरा करती। एक दिन फूलों की माला पहिने, सिर पर फूलों का मुकुट धारण किये, कमल के फूलों को तोड़ने के लिए उफेलिया एक नदी में कूद पड़ी। थोड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देर तो वह पानी के ऊपर उतराती रही। उस समय उसको अपनी दशा की सुध भी नहीं थी। वह फूलों को तोड़ते तोड़ते गाती रही। पर थोड़ी देर में कपड़े भीग जाने से उसका बोझ भारी हो गया। नदी की लहरें उसे ऊपर न सँभाल सकीं। अन्त में सुकुमार उफेलिया नदी में डूब गई। इस दुःखान्त नाटक का यह दूसरा कारुणिक दृश्य भी समाप्त हुआ।

इधर लुटेरे हैमलेट को डेनमार्क के किनारे उतार गये। हैमलेट ने होरेशियो को भी अपने आने की ख़बर भेज दी थी। वह उसे रास्ते ही में जामिला और दोनों मित्र साथ साथ नगर की ओर रवाना हुए। इन दोनों का रास्ता एक क़ब्रिस्तान से होकर था। वहां एक मज़दूर उफेलिया के लिये, उस समय, क़ब्र खोद रहा था। उसे हैमलेट और होरेशियो खड़े होकर देखने लगे। मज़दूर ज़मीन में गड़ी हुई पुरानी लाशों की हड्डियां, और खोपड़ियां, मिट्टी पत्थर की तरह खोद खोद कर, फेंक रहा था। जिसको सारी उम्र क़ब्रें खोदने में बीती उसे हड्डियों और खोपड़ियों से हिचकिचाहट कैसी? परन्तु विचार-शील हैमलेट की विचारधारा ज़रा ज़रा सी बात पर बह निकलती थी। वह भला खोपड़ियों को देखकर कैसे रुकती? आप मृत्यु और जीवन का ध्यान करते हुए होरेशियो से कहने लगे—"क्यों भाई होरेशियो, क्या मनुष्य का यही अन्तिम परिणाम है? जो विकट अहङ्कारी थे; जिनके आगे बड़े बड़े मस्तक झुकाते थे; आज वही कीड़ों की ख़ूराक बन रहे हैं! देखो यह खोपड़ी इस मज़दूर के फावड़े ने यहां फेंक दी है। न जाने यह किस आदमी का सिर हो। शायद यह किसी बड़े वकील की खोपड़ी हो। अब इनसे पूछिये कि आपकी वकालत कहां गई? झूठ को सच और सच को झूठ बनाना कहां गया? जो बे रुपया बात नहीं करते थे आज वही कुलियों की लात खा रहे हैं। मानहानि का मुक़दमा क्यों नहीं चलाते? अदालतें तो मौजूद हैं। क्या इसी दिन के लिए अपने भाइयों को लूटा था? अफ़सोस! होरेशियो, बतला सकते हो कि आज रोम देश का महाप्रतापी सीज़र क्या कर रहा है? वह मर गया; मर कर मिट्टी हो गया। क्या आश्चर्य, यदि उसी मिट्टी को खोदकर किसी किसान ने अपनी दीवार में लगाया हो। जो ज़मीन पर पैर नहीं रखते थे, जिनके दरवाज़े मस्त हाथी झूमते थे, जिनके बलविक्रम के आगे पृथ्वी थर्राती थी, अहा—

"तिनकी आजु समाधि पर बैठो पूछत काक।
को हौ तुम अब का भये, कहां गये करि साक॥"

ये दोनों यों ही बातें कर रहे थे कि सामने से उफेलिया की अर्थी आती हुई दिखलाई दी। उसके साथ साथ लारेटीज़ और अन्य दरबारियों के सिवा क्लाडियस और गर्टरूड भी थे। हैमलेट को उफेलिया की मृत्यु का हाल अभी नहीं मालूम था। उसे क्लाडियस और गर्टरूड को देखकर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। सब बात जानने के लिए हैमलेट और होरेशियो एक ओर छिप रहे। गर्टरूड को उफेलिया के मरने से बहुत रंज था। "जो मेरी पुत्रबधू होती, जिसकी सुखशय्या को मैं फूलों से सजाती, आज उसीकी ताबूत पर मैं फूल बिखेर रही हूं"। ये विचार कुछ ऐसे न थे जो गर्टरूड के चित्त को व्यथित न कर देते। यद्यपि गर्टरूड ने दूसरा विवाह कर लिया था, यद्यपि वह अपने पूर्वपति को भूल गई थी, तथापि उसे अपने इकलौते पुत्र हैमलेट से बड़ा प्रेम था, और यही एक बड़ा भारी कारण था जिससे क्लाडियस हैमलेट के साथ एकदम कोई बुराई नहीं कर सकता था। कुछ देर में पुरोहित मृतक-संस्कार करा चुका और उफेलिया की लाश क़ब्र में रक्खी गई। उस पर मिट्टी डाली जाने ही को थी कि लारेटीज़ यह कहता हुआ क़ब्र में कूद पड़ा कि लो मुझे भी जीता ही उफेलिया के साथ गाड़ दो। यह देख कर हैमलेट से भी न रहा गया। वह भी अपने छिपे हुए स्थान से निकल कर क़ब्र में कूद पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐं, लेरेटीज़, तेरी यह मजाल कि तू मेरे सामने उफेलिया के लिए इतना प्रेम ज़ाहिर करे। प्रेमी के प्रेम के सामने भ्रातृप्रेम क्या वस्तु है? तुम लोग मेरे ऊपर मिट्टी डालो। मुझको जीवित ही प्यारी उफेलिया के साथ दफ़न कर दो। इतनी मिट्टी डालो कि वह ऊंचे से ऊंचे पर्वत शिखर से भी ऊंची हो जाय। मेरे प्रेम को ऐसे ऐसे चालीस भाइयों का भी प्रेम नहीं पा सकता"। क़ब्र के भीतर ही दोनों में हाथापाँहीं होने लगी। लोगों ने दोनों को बाहर निकाल कर बीच बराव कर दिया। गर्टरूड ने कहा "हैमलेट तो पागल हैही; लारेटीज़, तू इसकी बातों पर क्यों ध्यान देता है"? क्लाडियस ने उसे याद दिलाई कि अभी पटेबाज़ी खेलना है। निदान दोनों युवक किसी तरह शान्त हुए। उनमें मेल करा दिया गया।

कुछ दिनों बाद क्लाडियस ने हैमलेट को लारेटीज़ के साथ पटेबाज़ी खेलने पर राज़ी किया। हैमलेट बेचारा सीधा सादा आदमी था। वह इसकी चाल में आगया। खेल के लिए एक विशेष दिन नियत किया गया। नियत दिन सब दरबारी लोग अखाड़े में जमा हुए। क्लाडियस और गर्टरूड भी अपनी अपनी कुर्सियों पर बैठे। पटेबाज़ी प्रारम्भ हुई। दो चार हाथ हो चुकने पर क्लाडियस ने हैमलेट से कहा "बेटा तू थक गया सा जान पड़ता है। आ ज़रा सी शराब पी ले"। पर हैमलेट ने कहा, "अभी नहीं, ज़रा और थक कर पीऊंगा"। खेल जारी रहा। हैमलेट ने दो चार हाथ लारेटीज़ के लगा दिये। अन्त को जब खेल में दोनों को जोश आया तब लारेटीज़ ने मौक़ा पाकर हैमलेट के बदन में अपनी तलवार की ज़हरीली नोक से घाव लगा दिया। पर गड़बड़ में उसके हाथ से तलवार छुट पड़ी। हैमलेट ने उसे उठाकर उसी ज़हरीली नोक से लारेटीज़ के भी घाव किया। यह सब एक क्षण भर में हो गया। गर्टरूड को कुछ प्यास मालूम हुई। उसने शराब के धोखे पास ही रक्खा हुआ ज़हर का प्याला उठाकर पी लिया। पीते ही उसे मूर्छा सी मालूम हुई। क्लाडियस ने कहा, "हैमलेट के शरीर में से ख़ून टपकता हुआ देखकर प्यारी गर्टरूड को बेहोशी आ रही है"। पर गर्टरूड ने आख़िरी दम भरते हुए कहा--"नहीं, बेटा हैमलेट, बेहोशी नहीं—ज़हर"। वह इतनाही कहने पाई थी कि उसके प्राण निकल गये। हैमलेट ने चिल्ला कर कहा--"सारे रास्ते रोक लो। देखो कोई जाने न पावै। तलाश करो यह किसका काम है?"

लारेटीज़ ने, जिसका जीवन अब तब हो रहा था, लड़खड़ाती हुई ज़बान से सारा भेद हैमलेट से कह दिया। वह बोला "इधर उधर तलाश करने की कोई ज़रूरत नहीं। इस ख़ून ख़राबे का मूल कारण वह सामने बैठा तेरा चचा ही है। बस उसीसे तू समझ ले। हैमलेट, तू कोई आध-घंटे से अधिक नहीं जी सकता और मैं तो स्वयं अपने ही तीर का शिकार हुआ। ले मैं चला। जैसा मैंने किया वैसा पाया"। इससे अधिक वह कुछ और न कह सका। उसका गला सूख गया। कुछ मिनट बाद उसके प्राणपखेरू उड़ गये। क्लाडियस ने उठकर भागना चाहा। पर हैमलेट ने वही ज़हरीली तलवार उसके कलेजे के पार कर दी और प्याले का बचा बचाया विष ज़बरदस्ती उसकी हलक़ के नीचे उतार दिया। "मुझे बचाओ, हाय रे मैं मरा" कहता हुआ क्लाडियस वहीं गिर पड़ा। स्वार्थी धूर्त क्लाडियस के पापमय जीवन का अन्त हुआ। कुछ देर बाद हैमलेट की आत्मा ने भी परलोक का रास्ता लिया। और इस वियोगान्त नाटक का अन्तिम, महाकरुण, दृश्य भी समाप्त हुआ। डेनमार्क के राजवंश का अन्त हुआ। उस देश की सूनी गद्दी एक अन्य देश के राजा के हाथ लगी। केवल होरेशियो इस दुःख-कहानी को कहने के लिए इस संसार में रह गया।

सूर्यनारायण दीक्षित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा ।

न्यायदर्शनम् । गोतम ऋषि-कृत न्यायशास्त्र का यह हिन्दी-अनुवाद है। ऊपर संस्कृत-सूत्र हैं नीचे अनुवाद। अनुवाद की भाषा बहुत कठिन नहीं है। इससे सूत्रों का तात्पर्य्य समझ में आ जाता है। अनुवादक इसके श्रीयुक्त तुलसीराम स्वामी हैं। "स्वामी-मैशीन-प्रेस", मेरठ, से ॥=) में यह पुस्तक मिलती है। न्यायसूत्रों का एक और भी अनुवाद इसके पहले हो चुका है। वह श्रीयुक्त शालग्राम शास्त्री, अध्यापक, गवर्नमेंट कालेज, अजमेर, का किया हुआ है। उसका नाम है—"न्यायतत्वबोधिनी"। दोनों पुस्तकें अच्छी हैं।

❋

आर्य्यधर्म्मेन्द्रजीवन। यह स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित है। दाम १॥) रुपये। वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर, से प्राप्य। मास्टर आत्माराम जी की सहायता से इसे श्रीयुक्त "रामविलास शारदः" ने लिखा है। आज तक स्वामी जी के जितने चरित हिन्दी में निकले हैं यह सबसे बड़ा है। इसमें स्वामीजी के कई चित्र भी हैं। इसको पढ़ने से स्वामीजी के विषय की बहुत सी नई नई बातें मालूम होती हैं। स्वामीजी के कुछ पत्रों की नक़ल भी इसमें है। इसका उपोद्घात बहुत बड़ा है। १२१ पृष्ठों में वह समाप्त हुआ है। वह श्रीयुक्त आत्माराम अमृतसरी का लिखा हुआ है। इस उपोद्घात में बहुत सी बातें आक्षेपयोग्य हैं। पुराण बनानेवाले ठग थे; शङ्कराचार्य्य योगाभ्यासी न थे; उनको उपवेद पढ़ने का अवसर नहीं मिला; मूर्तिपूजा को नष्ट करने के लिए उन्होंने भारी यत्न किये; जगत् मिथ्या, ब्रह्म सच्चा—यह सिद्धान्त भ्रामक है—ऐसी अनेक बातें इसमें हैं। इससे यह सूचित होता है कि जो कुछ थे स्वामी जी थे। उनकी बराबर आज तक भारतवर्ष में कोई नहीं हुआ। अस्तु।

❋

रामायण। तुलसीदास-कृत। हिन्दी-टीका-सहित। यह सटीक रामायण त्रैमासिक पत्रिका के रूप में निकलने लगा है। वार्षिक मूल्य २) रु० है। टीकाकार श्रीयुक्त बुलाकीदास, ५५ भिखारीदास लेन, बनारस, से मिलता है। इसकी पहली संख्या में बालकाण्ड का कुछ अंश छपा है। मूल का शब्दार्थ भी है और भावार्थ भी। शङ्का-समाधान नहीं है। कवि का आशय सीधी तरह सरल भाषा में समझाने की चेष्टा की गई है। जहां प्रमाणों की ज़रूरत जान पड़ी है वहां रामायण ही से प्रमाण दिये गये है।

❋

अधखिला फूल। पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय-कृत। मूल्य ॥=) मात्र। सरस्वती के पाठकों में से बहुतेरों ने इस पुस्तक का नाम सुना होगा और इसे पढ़ा भी होगा। यह ठेठ हिन्दी में है। इसकी भाषा वैसी ही है जैसी पण्डित अयोध्यासिंह की "ठेठ हिन्दी का ठाठ" नामक पुस्तक की है। इस तरह की भाषा की यह दूसरी पुस्तक है। इस पुस्तक की भूमिका में जो सम्मतियां प्रकाशित हुई हैं उनसे स्पष्ट है कि "ठेठ हिन्दी का ठाठ" विद्वानों को बहुत पसन्द आया। बहुत सम्भव है यह "अधखिला फूल" भी पसन्द आवे। क्योंकि इसमें भी वैसे गुणों की कमी नहीं है। इसकी भूमिका बहुत खोज से लिखी गई है। उसके देखने से भाषा-विषयक अनेक बातें मालूम होती हैं। यद्यपि पण्डित अयोध्यासिंह की कई बातों से हम सहमत नहीं; यद्यपि हम अमरित, इसतिरी, सराप, भरुका आदि शब्दों के प्रयोग के पक्षपाती नहीं; और यद्यपि हम "कश्चित संज्ञा" आदि शब्दों का लिखना भी अच्छा नहीं समझते, तथापि हम इतना ज़रूर कहेंगे कि इस पुस्तक की भाषा बहुत सरल और कहानी मनोरञ्जक है। यथासम्भव इसमें अन्य भाषा का शब्द नहीं आने पाया। यह इसमें विशेषता है।

❋

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नागरी रीडर नं० २। पं० छुट्टनलाल-स्वामी-कृत। स्वामी-मैशीन प्रेस, मेरठ से प्राप्य। दाम १ आना। धर्म्म और नीति विषयक पाठ अच्छे हैं। पर वेद, उपनिषद्, दर्शन, पञ्चमहायज्ञ आदि विषयों के वर्णन से पुस्तक क्लिष्ट होगई है।

❋

कृषि-सिद्धान्त। बाबू लालजीसिंह-रचित। मूल्य डेढ़ आना। इसमें खेती की पुरानी कहावतें हैं। "उनका अर्थ और सिद्धान्त" भी हैं। पुस्तक किसानों और ज़मीदारों के काम की है।

❋

माप-नियम-दर्पण। इसे पं० गजाधरप्रसाद, स्कूल-माष्टर, सिरसा, इलाहाबाद, ने बनाया है। दाम डेढ़ आना। पैमाइश के अच्छे अच्छे क़ायदे इसमें हैं। नार्मल, मिडिल और पटवारियों के स्कूलों के लड़कों के लिए यह उपयोगी है।

❋

विदेशी खांड़ और हिन्दू धर्म्म। मूल्य आध आना। लाला रामनारायण "बुकसेलर", इटावा, ने इसका संग्रह किया है। विषय नाम ही से स्पष्ट है।

❋

वैदिक जीवन। प्रथम भाग। मूल्य चार आने। कर्ता श्रीयुक्त शिवनाथ जी। इसमें—"वेदही मनुष्य की सारी धार्म्मिक आवश्यक्ताओं को पूर्ण कर्ता है"—इस विषय का वर्णन है।

❋

देशी रूमाल। राजा मंडी, आगरा, से हरविलास बेनीराम जी ने दो स्वदेशी रूमाल कृपा करके भेजे हैं। एक रूमाल रंगीन है, दूसरा सादा। जिनको स्वदेशी चीज़ पर प्रेम है उनका काम ऐसे रूमालों से अच्छी तरह निकल सकता है।

❋

गुरुकुल-विद्यालय का वृत्तान्त। हरद्वार के पास कांगड़ी में आर्य्यप्रतिनिधि-सभा, पञ्जाब, ने जो गुरुकुल खोला है उसके शिक्षण और प्रबन्ध-विषयक नियमों और उपनियमों आदि का यह संग्रह है। संग्रहीता इसके लाला मुन्शीराम जी हैं। वही इस विद्यालय के अधिष्ठाता भी हैं। इस विद्यालय में संस्कृत, अंगरेज़ी और विज्ञान आदि सिखलाने के लिए दस बारह अच्छे अच्छे विद्वान् अध्यापक हैं। जो विषय इस विद्यालय में सिखलाये जाते हैं वे प्रायः सभी उपयोगी हैं। प्रबन्ध भी उत्तम मालूम होता है। "वृत्तान्त" के अख़ीर में छपी हुई सरटीफ़िकटें इस का प्रमाण हैं। विद्यार्थियों के स्नान, भोजन, वस्त्र, बर्ताव, चिकित्सा आदि तक के नियम निश्चित हैं। पढ़ने पढ़ाने के नियम तो हैं ही। जिस प्रकार की शिक्षा के लिए यह विद्यालय खोला गया है वह इसमें अच्छी तरह दी जा रही है।

❋

अद्भुत प्रायश्चित्त। बाबू ब्रजनन्दन सहाय, वकील, आरा, ने इसे लिख कर प्रकाशित किया है। दाम ढाई आने। यह एक छोटा, पर अच्छा, सामाजिक उपन्यास है।

मनोरञ्जक श्लोक।

न वै ताडनात्तापनाद्वन्हिमध्ये
न वै विक्रियात्क्लिश्यमानोऽहमस्मि।
सुवर्णस्य मे मुख्यदुःखं तदेकं
यतो मां जना गुञ्जया तोलयन्ति॥

मुझे ताड़नासे क्लेश होता है, न आग में तपाने से क्लेश होता है और न अनेक प्रकार की विक्रियाओं (विकार) होने ही से क्लेश होता है। मुझ सुवर्ण के लिए सबसे बड़ा दुःख यही है, जो (अज्ञानी) जन मेरी तुलना गुञ्जा से करते हैं। मुझे गुञ्जा से तोलते हैं, यह भाव।

रामजीलाल शर्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ७] जुलाई, १९०६ [संख्या ७

विविध विषय।

लेडबीटर नाम के एक साहब ने एक किताब अँगरेज़ी में लिखी है। उसका नाम है—"दि अदर साइड आफ़ डेथ" (The Other Side of Death) इस किताब में अनेक अपूर्व अपूर्व बातें हैं। कोई कोई वेदान्त-विषय बड़ी ही विचित्रता से लिखे गये हैं। मृत्यु के विषय में लेडबीटर साहब कहते हैं—"मरने में कोई तकलीफ़ नहीं होती। मरने के बाद आदमी को ऐसा मालूम होता है मानों वह सोते से जग उठा है। वह घर की सब चीज़ों को पूर्ववत् देखता है। घर के आदमियों को, और उसे देखने के लिए आये हुए मित्रों को भी, वह देखता और पहचानता है। वह पूर्ववत् देख सकता है, सुन सकता है, सोच सकता है, छू सकता है। वह अकसर अपने मन में कहता है—'मैं मरा नहीं; मैं जीता हूं और पहले की अपेक्षा मेरा जीवन अब अच्छा है'। उसे मृत होने का ख़याल तब होता है जब उसे मालूम होता है कि उसकी बात और लोग नहीं सुन सकते। उस समय वह कुछ घबरा जाता है। एक बार एक जनरल की कुछ क्षण के लिए मृत्यु हो गई। जगने पर वह कहने लगा—'यदि मैं मर गया हूं, तो मैं कहां हूं? यदि यही स्वर्ग है तो मैं इसे बहुत नहीं समझता। यदि यही नरक है तो जैसा बुरा मैंने इसे सुन रक्खा था वैसा नहीं है'। इसी तरह जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख, जीवात्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक आदि से सम्बन्ध रखनेवाली बातें इस पुस्तक में हैं।

* * *

गत मई के अन्त में मराठी-ग्रन्थकारों की एक सभा पूना में हुई। उसमें बहुत कुछ उपयोगी काम हुआ। सब लोगों ने मिलकर एक साहित्य-परिषद् बनाई। यह परिषद् मराठी की प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज करके उनकी व्यवस्था करेगी। इस सभा में कई विद्वानों ने बहुत अच्छे अच्छे व्याख्यान दिये। मिस्टर तिलक ने कहा कि जब तक ग्रन्थकार अपने ग्रन्थों के पढ़ने वालों को कोई विशेष तत्व समझा देने का प्रयत्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं करते तब तक किसी भाषा की यथेष्ट उन्नति नहीं होती।

* * *

भारतवर्ष के प्रायः सभी शिक्षित लोग मिस्टर जान मार्ले के नाम से परिचित होंगे। आपही आज कल महाराज एडवर्ड की मंत्रि-सभा (Cabinet) में भारतवर्ष के मंत्री हैं। आप भूतपूर्व प्रधानमंत्री मिस्टर ग्लाडस्टोन के शिष्य, उपासक और अनुयायी हैं। आप उनके जीवनी-लेखक भी हैं। मैकमिलन कम्पनी ने मार्ले से ग्लाडस्टोन की जीवनी लिखवाई थी। जीवनी तीन भागों में छपी थी। प्रत्येक भाग के लिखने के लिए मैकमिलन ने मार्ले को ४९९९५) रुपये दिये थे—अर्थात् तीनों भागों के लिए १४९९८५) याने कुछ कम डेढ़ लाख रुपये दिये! उसी मैकमिलन कम्पनी ने हाल में लार्ड रांडल्फ़ चर्चिल की एक जीवनी उनके पुत्र मिस्टर विन्स्टन चर्चिल से लिखवाई है। यह जीवनी दो भागों में समाप्त हुई है। प्रत्येक भाग के लिए मैकमिलन ने मिस्टर चर्चिल को साठ हज़ार रुपये दिये हैं, अर्थात् दोनों के लिए १२०००० याने एक लाख बीस हज़ार रुपये! क्या कोई हिन्दुस्तानी पुस्तक-प्रकाशक अपने किसी सुलेखक को एक ग्रन्थ के लिए दस हज़ार भी देगा? यहां तो ग्रन्थ-कर्त्ता लोग केवल छपाई की भिक्षा मांगते फिरते हैं, पर सेठजी और बाबू साहब पूछते तक नहीं!*

* * *

जो लोग हमारे पास समालोचना के लिए दवाइयां भेजते हैं उनसे प्रार्थना है कि जिन दवाइयों की परीक्षा सहज ही में हो सकती है और जिनकी परीक्षा से किसी तरह की हानि की सम्भावना नहीं है सिर्फ़ वही दवाइयां हमारे पास समालोचना के लिए भेजी जांय। औरों की आलोचना सरस्वती में न प्रकाशित होगी। कुछ सज्जन दवाइयों इत्यादि की समालोचना से विज्ञापन का काम निकालना चाहते हैं। यह अनुचित है। उदाहरणार्थ—जिसे श्वास या अर्श रोग नहीं है वह समालोचना के लिए आई हुई इन रोगों की औषधियों के गुण-दोष किस तरह बतला सकता है? क्या दवा भेजनेवाले यह आशा रखते हैं कि वह इन रोगों के रोगियों का पता लगावे और उन्हें दवायें देकर दवा-सेवन का फल प्रकाशित करे? पर इस तरह की आशा रखना भूल है।

* * *

मित्रगोष्ठी-पत्रिका की चैत्र की संख्या में श्रीमहेशचन्द्र तर्कचूडामणि का काव्यतत्त्वावली नामक जो प्रबन्ध मुद्रित हुआ है उसमें प्राचीन प्रसिद्ध कवि भवभूति की कविता में, अनेक स्थलों पर, दोष दिखलाये गये हैं। भवभूति ने कितने ही पद्य ऐसे लिखे हैं जो कालिदास के पद्यों की छाया जान पड़ते हैं। इस बात को भी तर्कचूडामणिजी ने दिखला कर भवभूति पर आक्षेप किया है। अन्त में "किं महाकवेर्दोषोद्घाटनेन" कह कर आपने लेखनी को विश्राम दिया है।

* * *

स्विटज़रलैंड के एक कारीगर ने एक ऐसी घड़ी बनाई है जो बोलती है। उसमें एक ऐसी कल लगी हुई है जिससे आदमी की सी आवाज़ आती है और उसी आवाज़ से वह वक़्त बतलाती है। जितने बजे होते हैं, वह बोल कर बतला देती है। बोलने की आवाज़ तेज़ होती है और बीस फ़ुट तक सुनाई देती है*।

* * *

पृथ्वी पर चलनेवाली पैरगाड़ियां तो अब यहां घर घर विराज रही हैं; पर अमेरिका में जल पर दौड़नेवाली पैर-गाड़ियां भी धड़ाके से चलती हैं। रेल की बराबर भागनेवाली मोटरकार भी अब यहां बड़े बड़े शहरों में भक भक करती जाती हुई देख पड़ती हैं। कुछ दिनों में अब मोटर-नावें भी यहां

* यह नोट बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा का भेजा हुआ है। स० सं०

* यह नोट पं० बाबूलाल का भेजा हुआ है। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलने लगेंगी। अमेरिका और इँगलैंड में तो वे बहुत दिनों से चल रही हैं। पैर-गाड़ियों में भी मोटर लगाने का प्रबन्ध हुए बहुत दिन हुए। ये गाड़ियां भी इस देश में अब अधिकता से चलने लगी हैं। परन्तु हमारे पाठकों में बहुतों ने शायद यह न सुना होगा कि योरप के विज्ञान-वाचस्पतियों ने मोटर की स्केट नामक खड़ाऊं तक बना डाली

हैं। पेरिस के कान्स्टैंटाइन नामक एक साहब ने ये खड़ाऊं बनाई हैं। इन्हें खड़ाऊं भी कह सकते हैं; बूट भी कह सकते हैं; गाड़ी भी कह सकते हैं। इनमें मोटरकार की तरह के छोटे छोटे चार रबरदार पहिये होते हैं। उन्हींमें कल कांटे लगे रहते हैं। उनके ऊपर खड़े होने के लिए जगह होती है। सवार होनेवाला बूट पहन कर उसी पर खड़ा हो जाता है और सबूट पैर को उससे बाँध लेता है। खड़ाऊं के पहियों के नीचे गैस और तार से भरे हुए बक्स रहते हैं। उन्हींमें दो नलियां लगी रहती हैं जिनको सवार होनेवाला कमरपट्टे से बाँध लेता है। उसीमें एक चाभी रहती है जो स्केट-खड़ाऊं को चलाती या इच्छानुसार खड़ी कर देती है। स्केटों का वज़न सिर्फ़ ७ सेर है। चाभी फिराते ही स्केट दौड़ने लगते हैं और उनके ऊपर खड़ा हुआ आदमी भी भगा चला जाता है। ये स्केट ३ से लेकर २५ मील तक फ़ी घंटे के हिसाब से दौड़ सकते हैं। साफ़ समतल रास्ते में आदमी आराम से इनके ऊपर सवार होकर दौड़ सकता है। कोई तकलीफ़ नहीं होती। थकावट भी बहुत कम मालूम होती है। पेरिस में अनेक बार इनकी परीक्षायें हुईं और ठीक पाये गये। इन पर सवार होकर लोग अकसर दौड़ते हैं। घुड़दौड़ की तरह नरदौड़ के लिए इन्हें लोग काम में लाने लगे हैं। किसी दिन ये स्केट इस देश में भी ज़रूर ही पधारेंगे।

* * *

मेकडानल साहब का नाम पाठकों ने शायद सुना होगा। आप विलायत के आक्सफ़र्ड विश्व-विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक हैं। आपने एक पुस्तक बहुत ही अच्छी लिखी है। उसमें संस्कृत-साहित्य का इतिहास है। कुछ दिन हुए विलायत की रायल एशियाटिक सोसाइटी का एक जलसा हुआ था। उसमें आपने अपने एक व्याख्यान में यह कहा कि जो अँगरेज़-अधिकारी हिन्दुस्तान में वहां की प्रजा पर सत्ता चलाने और राज्य का काम काज करने जाते हैं वे बिलकुल ही संस्कृत नहीं जानते। इस कारण वे अपना काम अच्छी तरह नहीं कर सकते। उनके लिए संस्कृत सीखना बहुत ज़रूरी बात है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के ज़माने में "सिविल सरविस" वालों को संस्कृत सीखने के लिए बहुत ताकीद की जाती थी। पर अब वह बात नहीं। इस समय हर साल ५० से ऊपर "सिविल सर्वेंट" होकर लोग हिन्दुस्तान जाते हैं। परन्तु उनमें से एक को भी संस्कृत नहीं आती। यह क्यों?

* * *

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनारस के हिन्दू कालेज की सातवीं वार्षिक रिपोर्ट देखने से मालूम होता है कि यह कालेज खूब तरक्की कर रहा है। अब इसमें एम० ए० तक की पढ़ाई होती है। जो अध्यापक रक्खे गये हैं, बहुत योग्य और अनुभवशील हैं। परीक्षाओं के नतीजे भी बहुत अच्छे होते हैं। लड़कों के रहने के लिए जो बोर्डिंग-हाउस है उसका प्रबन्ध उत्तम है। धार्म्मिक शिक्षा देने और लड़कों को सदाचरणशील बनाने की ओर इस कालेज के कार्य-कर्ताओं का खूब ध्यान है। काश्मीर, नैपाल, आसाम, पंजाब, बंगाल, मदरास, बंबई और गुजरात तक के लड़के इसमें पढ़ते हैं। महाराजा काश्मीर की संस्कृत-पाठशाला का प्रबन्ध भी अब इसी कालेज के कार्यकर्ताओं के हाथ में है। और और जगहों के कितने ही स्कूल अब इसके अधीन हो गये हैं। उनमें धार्म्मिक-शिक्षा इसी कालेज के नियमानुसार दी जाती है। अब लड़कियों की भी शिक्षा का इसमें प्रबन्ध हो गया है। श्रीमती एनी-बेसंट के परिश्रम और अध्यवसाय का यह फल है। रिपोर्ट के पढ़ने से कालेज-विषयक अनेक ज्ञातव्य बातें मालूम होती हैं। किसी दिन हिन्दू-विश्वविद्यालय हो जाने के लक्षण यह कालेज दिखला रहा है।

* * *

मार्च १९०६ की "सरस्वती" में बारा (कोटा) के श्रीयुत शिवप्रसाद दलपतराम पण्डित का एक नोट छपा है। उसमें उन्होंने आर० पी० करकरिया के एक लेख की चर्चा की है, जो बंबई एशियाटिक सोसाइटी के किसी जलसे में पढ़ा गया था। उसमें कहा गया है कि अकबर की मृत्यु विष खाने से हुई।

यह बात कहां तक सत्य है इसके जानने की चेष्टा करनी चाहिए। एकबारगी ऐसी विलक्षण और प्रचलित मत से विरुद्ध बात को मान नहीं लेना चाहिए। अकबर की नीति चाहे जैसी रही हो, पर उसे ऐसा दुष्टात्मा मान लेने से पहिले कुछ विशेष प्रमाण ढूंढ़ लेना चाहिए। अब तक लोगों ने उसे व्यभिचारी, कुटिल आदि ही कहा था, पर अब वे उसे हत्यारा भी कहने लगे हैं। जहां तक ज्ञात हुआ है केवल दो ही जगह इसका उल्लेख मिलता है। एक तो बूंदी के पुराने काग़ज़ातों में, दूसरे किसी पोर्टुगीज़ के ग्रन्थ में। बाबू सतीशचन्द्र मित्र, बी० ए०, ने अपने "प्रतापसिंह" नामक ग्रन्थ में, इस विषय में, अष्टम परिच्छेद के अन्त में, जो नोट दिया है उसका अनुवाद यह है—

"बूंदी के राजदफ़्तर के काग़ज़ात से जाना जाता है कि जब मानसिंह अपने भानजे खुशरू को दिल्लीश्वर बनाने की चेष्टा कर रहे थे, तब अकबर ने उनसे नाराज़ होकर उनके विनाशसाधन के अभिप्राय से विष का लड्डू प्रस्तुत कराया। परन्तु भूल से अच्छा लड्डू मानसिंह को दे दिया और आप विषाक्त लड्डू खा गया। उसीसे अकबर की मृत्यु हुई (१६०५)।" पाठकगण महात्मा टाड कृत राजस्थान के द्वितीय खण्ड में बूंदी का इतिहास देखें। एक पोर्टुगीज़ ऐतिहासिक ने भी इस घटना का समर्थन किया है।"

मैंने टाड साहब के राजस्थान को देखा। उसमें मुझे यह लेख मिला—

In this portion of the Boondi memoirs is related the mode of Akber's death. He had designed to take off the great Raja Maun by means of a poisoned confection formed into pills. To throw the Raja off his guard, he had prepared other pills which were innocuous; but in his agitation he unwittingly gave these to the Raja, and swallowed those which were poisoned. (Tod's Raja Sthan, Vol. II, Annals of Haravati, Boondi, Chapter III.)

बूंदी के काग़ज़ात में तो राजा मानसिंह पर विष-प्रयोग करने का यत्न होना लिखा है, पर उस पोर्टुगीज़ ग्रन्थकार के विषय में नहीं कह सकते कि उसने क्या लिखा है। मि० करकरिया ने मानसिंह के स्थान पर ग़ाज़ी ख़ां का नाम लिखा है। क्या उन्होंने और कोई प्रमाण पाये हैं? यदि उन्हें विशेष प्रमाण मिले भी हों तो भी वे अधिक विश्वसनीय नहीं कहे जा सकेंगे, क्योंकि उनकी भी गिनती पूर्वोक्त प्रमाणों ही में की जायगी जिससे वे परस्पर विरोधी होकर अपना मूल्य खो बैठेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अङ्क में वंगभाषा के "साहित्य" नामक मासिकपत्र की तृतीय जिल्द में बा० नगेन्द्रनाथ गुप्त* लिखित "अकबरशाह की मृत्यु" शीर्षक लेख का भावानुवाद दिया जाता है। उसमें इस विलक्षण बात का कुछ भी आभास नहीं मिलता†।

* * *

अध्यापक जगदीशचन्द्र वसु का नाम पाठकों ने सुना ही है। आपने अपने वैज्ञानिक आविष्कारों से संसार को चकित कर दिया है। दो तीन वर्ष हुए आपने जड़ पदार्थों में भी चेतनता साबित की थी। अब आपने एक और अद्भुत आविष्कार किया है। यह आविष्कार पौधों से सम्बन्ध रखता है। इस विषय में "प्लेंट रेस्पांज़" (Plant Response) नामक एक बहुत बड़ा ग्रन्थ आपने अँगरेज़ी में लिखा है और कई एक नये नये यंत्र भी बनाये हैं। आज तक वनस्पति-विद्या-विषयक जो सिद्धान्त निश्चित हुए थे उनमें से कितने ही सिद्धान्तों को अध्यापक वसु ने खण्डित कर डाला है। आपने सिद्ध कर दिखाया है कि जो शक्ति-विशेष चेतनावान् पदार्थों में है वही जड़ पदार्थों में भी है और वही पौधों में भी है। प्राणि-वर्ग और पौधों में जिस तरह आपने अभेद प्रतिपादन किया है उसे सुन कर आश्चर्य्य-चकित होना पड़ता है। आप का मत है कि जैसे मनुष्य-देह एक प्रकार का यंत्र है वैसे ही वनस्पति-वर्ग भी है। दोनों में सञ्चालना उत्पन्न करने और सुख-दुःख का अनुभव कराने वाली एकही शक्ति है। वसु महाशय ने इस पुस्तक में जीवों के जन्म, वृद्धि और मृत्यु का भी बड़ी ही योग्यता से विचार किया है और अनेक नई नई बातों का पता लगाया है। सजीव और निर्जीव में आपने अभेद-भाव ही नहीं सिद्ध किया; किन्तु यह बात तक आपने सप्रमाण और परीक्षापूर्वक सिद्ध कर दिखाई है कि शरीरतत्त्व और जड़तत्त्व में भी मूलगत कोई भेद नहीं। एक ही शक्ति सब का शासन, नियमन और सञ्चालन करती है। परमात्मा की जिस सर्व-व्यापिनी शक्ति का गुणगान इस देश के तत्त्ववेत्ता मुनि अनादि काल से करते आये हैं यंत्रों के द्वारा प्रत्यक्ष परीक्षा करके उसके अस्तित्त्व को साबित करनेवाले इस आधुनिक विज्ञानाचार्य्य मुनि को शतशः साधुवाद।

हर्बर्ट स्पेन्सर।

यह संसार प्रकृति और पुरुष का लीला-स्थल है। बिना इन दोनों का संयोग हुए संसार क्या, कुछ भी नहीं बन सकता। संसार में दृष्टादृष्ट जो कुछ है प्रकृति का खेल है; पर उस खेल का दिखाने वाला पुरुष है। प्रकृति का दूसरा नाम पदार्थ है और पुरुष का दूसरा नाम शक्ति। जितने पदार्थ हैं सब में कोई न कोई शक्ति विद्यमान है। पानी से भाफ, भाफ से मेघ और मेघों से फिर पानी। रुई से सूत, सूत से कपड़े और कपड़ों से फिर रुई। बीज से वृक्ष, वृक्ष से फूल, फूल से फल और फल से फिर बीज। इसी तरह संसार में उलट फेर लगा रहता है और प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त रहनेवाली शक्ति-विशेष इसका कारण है। जब से सृष्टि हुई तब से प्रकृति-पुरुष का झंझट जो शुरू हुआ तो अब तक बराबर चला जा रहा है। यदि प्रकृति निर्बल और पुरुष प्रबल हो जाता है तो उसे विद्वान् लोग उत्क्रान्ति कहते हैं और इसकी विपरीत घटना को अपक्रान्ति कहते हैं। संसार में जितने व्यापार हैं सबका कारण इस उत्क्रान्ति और अपक्रान्ति ही के आघात-विघात हैं। जिन नियमों—जिन सिद्धान्तों—के अनुसार यह सब होता है उनकी विवेचना करनेवालों का नाम तत्वदर्शी है। ऐसे तत्वदर्शियों के शिरोमणि हर्बर्ट स्पेन्सर का संक्षिप्त चरित सुनिए।

---

*भूतपूर्व सम्पादक ट्रिबिउन, वर्त्तमान सम्पादक इंडियन पीपुल।
†यह नोट बाबू प्रमथनाथ भट्टाचार्य्य का भेजा हुआ है। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इँगलैंड के डर्बी नामक शहर में २७ एप्रिल १८२० को स्पेन्सर का जन्म हुआ। उसका पिता वहां एक मदरसे में अध्यापक था और चचा पादरी था। ख़र्च अधिक था। स्कूल की नौकरी से जो आमदनी होती थी उससे काम न चलता था। इससे स्पेन्सर का पिता लड़कों के घर जाकर पढ़ाया करता था। इसमें अधिक मेहनत पड़ती थी, जिसका फल यह हुआ कि वह बीमार हो गया और मदरसे से उसे इस्तेफ़ा देना पड़ा। जब उसकी तबीयत कुछ अच्छी हुई तब उसने कला-बत्तू की डोरियां तैयार करने का एक कारख़ाना खोला। उसमें उसे नुक़सान हुआ। जिसने जन्म भर अध्ययन और अध्यापन किया उससे इस तरह के काम भला कैसे हो सकते थे? अन्त में कारख़ाना बन्द करना पड़ा। तब स्पेन्सर के पिता ने अपना एक मदरसा अलग खोल लिया। इसमें उसे कामयाबी हुई और घर का ख़र्च अच्छी तरह चलने लगा।

हर्बर्ट स्पेन्सर लड़कपन में बहुत कमज़ोर था। सात आठ वर्ष की उमर तक उसने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा। उसकी कमज़ोरी देखकर उसका पिता भी कुछ न कहता था। उसने अपने लड़के पर पढ़ने लिखने के लिए कभी दबाव नहीं डाला। हर्बर्ट को छोटी ही उमर में विज्ञान का चसका लग गया था। वह दूर दूर तक घूमने निकल जाया करता था और तरह तरह के कीड़े मकोड़े और पौधे लाकर घर पर जमा करता था। इसे ही उसकी विज्ञान-शिक्षा का प्रारम्भ समझिए। पिता इन बातों से अप्रसन्न न होता था। वह उलटा पुत्र को उत्साहित करता था। उसका कहना था कि जो बात तुम्हें अच्छी लगे वही करो। इसीसे स्पेन्सर कीट-पतङ्गों के रूपान्तर और पौधों में होनेवाले फेरफार देखने ही में कई वर्ष तक लगा रहा।

मिल की तरह स्पेन्सर ने भी किसी मदरसे में शिक्षा नहीं पाई। घर ही पर स्पेन्सर के पिता और चचा ने उसे शिक्षा दी। हां, कुछ दिन के लिए एक मदरसे में वह गया था। वहां उसकी क्लास में १२ लड़के थे। वहां पाठ सुनाने का समय आने पर हर्बर्ट बेचारे को एक दम सब लड़कों से नीचे जाना पड़ता था। पर गणित इत्यादि वैज्ञानिक शिक्षा का समय आते ही वह सब से ऊपर पहुँच जाता था। प्रायः प्रतिदिन ऐसा ही होता था। स्पेन्सर का पिता अच्छा विद्वान् था और चचा भी। इससे वे दोनों जब मिलते थे तब किसी न किसी गंभीर शास्त्रीय-विषय की चर्चा ज़रूर करते थे। उनकी बातें स्पेन्सर ध्यान से सुनता था और उनसे बहुत फ़ायदा उठाता था। पुत्र की प्रवृत्ति वैज्ञानिक विषयों की ओर देखकर पिता ने उसे और भी अधिक उत्तेजना दी और अपनी सारी विद्याबुद्धि ख़र्च करके पुत्र के हृदय पर शास्त्र के मोटे मोटे सिद्धान्त खचित कर दिये। इससे यह न समझना चाहिए कि स्पेन्सर को पुस्तकावलोकन से प्रेम न था। प्रेम था और बहुत था। परन्तु विशेष करके वह शास्त्रीय विषयों ही की पुस्तकें देखा करता था।

स्पेन्सर को पहले पहल "सैंडफर्ड ऐंड मर्टन (Sandford and Merton) नाम की किताब पढ़ाई गई। उसे स्पेन्सर ने बड़े चाव से पढ़ा। कुछ दिन में उसे पढ़ने का इतना शौक़ बढ़ा कि दिन दिन रात रात भर उसके हाथ से किताब न छूटती थी। उसकी माँ न चाहती थी कि वह इतनी मेहनत करे, क्योंकि वह बहुत कमज़ोर था। इससे रात को वह अकसर स्पेन्सर के कमरे में सोने के पहले यह देखने जाया करती थी कि कहीं वह पढ़ तो नहीं रहा। उसे आती देख स्पेन्सर मोमबत्ती को गुल करके चुप चाप पड़ा रहता था, जिसमें उसकी माँ समझे कि वह सो रहा है। पर उसके चले जाने पर वह फिर पढ़ना शुरू कर देता था।

कोई ११ वर्ष की उम्र में स्पेन्सर की कमज़ोरी जाती रही। वह सशक्त हो गया। वह पढ़ता भी था और घूमता फिरता भी था। इससे उसके दिमाग़ पर अधिक बोझ नहीं पड़ा और इसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके शरीर में बल भी आगया। स्पेन्सर बड़ा निडर और साहसी था। एक दफ़ा वह अपने चचा के घर से अकेला अपने घर पैदल चला आया। पहले दिन वह ४८ मील चला, दूसरे दिन ४७ मील! बिना सबूत के स्पेन्सर किसी की बात न मानता था। चाहे जो हो जब तक वह उसकी बात की सचाई को सबूत की कसौटी पर न कस लेता था, या खुद तजरिबे से उसको सचाई को न जान लेता था, तब तक कभी उस पर विश्वास न करता था। यह विलक्षणता उसमें लड़कपन ही से थी। यह आदत उसकी मरने तक नहीं छूटी। इसी के प्रभाव से उसने पूर्व-तत्व-ज्ञानियों के सिद्धान्तों को चुप चाप न मानकर सबकी परीक्षा की और उनके खण्डनीय अंश का कठोरता-पूर्वक खण्डन किया।

सोलह सत्रह वर्ष को उमर तक स्पेन्सर को घर पर ही शिक्षा मिलती रही। इतने दिनों में उसने गणित-शास्त्र, यंत्र-शास्त्र, चित्र-विद्या आदि में अच्छा अभ्यास कर लिया। स्पेन्सर को संस्कृत की समकक्ष लैटिन और ग्रीक आदि पुरानी भाषाओं से बिलकुल प्रेम न था और विश्वविद्यालय में इनको पढ़े बिना काम नहीं चल सकता। इससे वह किसी कालेज में भरती न हुआ। अब मुश-किल यह हुई कि कालेज की शिक्षा पाये बिना नौकरी कैसे मिल सकेगी। उस समय रेलवे ही का महकमा ऐसा था जहां विश्वविद्यालय की सर्टीफिकेट दरकार न होती थी। इस कारण स्पेन्सर ने रेलवे का काम सीखना शुरू किया और १७ वर्ष की उम्र में वह यञ्जिनियर हो गया। आठ वर्ष तक वह इस काम को करता रहा। पर विद्या का उसे ऐसा व्यसन था कि इसके आगे रेलवे का काम उसे अच्छा न लगा। उसे छोड़ कर वह अलग हो गया। नौकरी की हालत में एक यञ्जिनि-यरी की सामयिक पुस्तक में वह लेख भी लिखता रहा था। इससे लिखने में उसे अच्छा अभ्यास हो गया। १८४२ ईसवी में उसने नानकन-फारमिस्ट (Non-Conformist) नामक पुस्तक में "राजा का वास्तविक अधिकार" नाम की लेखमालिका शुरू की। वह पीछे से पुस्तकाकार प्रकाशित हुई।

इसके बाद स्पेन्सर "यकनोमिस्ट" (Economist) नामक एक सामयिक पुस्तक का सह-कारी सम्पादक हो गया और कोई ५ वर्ष तक बना रहा। सम्पादकता करना और लेख लिखना ही अब उसका एक मात्र व्यवसाय हुआ। इसमें उसने बहुत तरक़्क़ी की। कुछ दिनों में वह लण्डन चला आया और वहीं स्थिर होकर रहने लगा। यहां पर उसने "वेस्ट मिनिस्टर रिव्यू" (Westminister Review) में लेख लिखने शुरू किये। इससे उसका बड़ा नाम हुआ। लिखने का अभ्यास बढ़ता गया। धीरे धीरे उसकी लेखन-शक्ति बहुत ही प्रबल हो उठी। ३० वर्ष की उम्र में उसने "सोशल स्टेटिक्स" (Social Statics) नाम की किताब लिखी। इसमें सामाजिक और राजनैतिक विषयों का उसने बहुत ही योग्यतापूर्ण विचार किया। उसकी विचार-शृङ्खला और तर्कना-प्रणाली को देख कर बड़े बड़े विद्वानों ने दाँतों के नीचे उँगली दबाई। यह जितना ही निर्भय था उतना ही सत्यप्रिय भी था। उस समय तक इन विषयों पर विद्वानों ने जो कुछ लिखा था उसका जितना अंश स्पेन्सर ने प्रामादिक समझा सबका बड़ी ही तीव्रता से खण्डन किया। प्रायः सबसे प्रति-कूलता, सबकी समालेचना, सबका खण्डन उसने किया। किसीको आपने नहीं छोड़ा। पर इस पुस्तक का आदर जैसा होना चाहिए था नहीं हुआ।

स्पेन्सर की बुद्धि का झुकाव विशेष करके सृष्टि-रचना और अध्यात्म-विद्या की तरफ़ था। यह प्रवृत्ति प्रतिदिन बढ़ती ही गई और प्रतिदिन वह इन विषयों में अधिकाधिक निमग्न रहने लगा। वह धीरे धीरे उत्क्रान्ति-वादी हो गया। उत्क्रान्ति के १६ सिद्धान्त उसने निकाले। संसार के सारे दृष्टादृष्ट व्यापार इन्हीं नियमों के अनुसार होते हैं। इस बात को सप्रमाण सिद्ध करने के लिए उसने अपरिमित श्रम किया। १८४६-४७ में उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नया यंत्र बना कर उसका "पेटेंट" भी प्राप्त किया। पर उससे उसे विशेष लाभ न हुआ। शायद अपनी अर्थकृच्छता दूर करने ही के लिए उसने ऐसा किया। तथापि उसने अपनी निर्धनता की कुछ भी परवा नहीं की। उसके कारण वह कभी दुःखित नहीं हुआ। अपना काम वह बराबर करता गया। जिन जिन सिद्धान्तों का पता उसे लगता गया उन उनको वह बड़ी योग्यता, आस्था और निर्लोभता के साथ प्रकट करता गया। यह सृष्टि क्या ईश्वर ने पैदा की है, या पदार्थों में ही कोई ऐसी शक्ति है जिसके कारण वे आप ही आप उत्पन्न हो गये हैं? जन्म क्या है, पुनर्जन्म क्या है, मरण क्या है, धर्म्म क्या है, पाप-पुण्य क्या है, सुख-दुःख क्या है? संसार में जितनी घटनायें होती हैं, किन नियमों के अनुसार होती है? दिन रात वह इन्हीं बातों के विचार और मनन में संलग्न रहता था। इन विषयों के मनन का अभ्यास उसने यहां तक बढ़ाया कि संसार में कोई भी ऐसा शास्त्रीय-विषय शेष न रहा जो उसके मानसिक विचारों की कसौटी पर न कसा गया हो। सब विषयों का उसने विचार कर डाला। उसकी बुद्धि नये नये सिद्धान्तों के निकालने की एक विलक्षण यंत्र बन बैठी। कोई ५० वर्ष तक उसने यह काम किया और अपने नये नये सिद्धान्तों के द्वारा सारे संसार को चकित और स्तम्भित कर दिया।

प्रसिद्ध विद्वान् डारविन, स्पेन्सर का समकालीन था। १८५१ के लगभग उसने "आरिजिन आफ स्पिशीज़" (Origin of Species) अर्थात् "प्राणियों की उत्पत्ति" नाम की पुस्तक लिखी। उसमें उत्क्रान्ति, किंवा परिणतिवाद, के आधार पर उसने प्राणियों की उपपत्ति सिद्ध की। परन्तु इस उपपत्ति के अनेक सिद्धान्त स्पेन्सर ने पहले ही से निश्चित कर लिये थे। इस बात को डारविन ने साफ़ साफ़ स्वीकार किया है।

डारविन की पूर्वोक्त पुस्तक के निकलने के कोई चार वर्ष बाद स्पेन्सर की "मानसशास्त्र के मूलतत्व" (Principles of Psychology) नामक पुस्तक निकली। इसके लिखने में स्पेन्सर ने इतनी मेहनत की कि सिर्फ़ १८ महीने में यह पुस्तक उसने तैयार कर दी। इस कारण उसकी नीरोगता में बाधा आगई। तबीयत उसकी बहुत ही कमज़ोर हो गई और कोई दो ढाई वर्ष तक वह कोई नई किताब नहीं लिख सका। हां, दिल बहलाने के लिए सामयिक पुस्तकों में वह कभी कभी लेख लिखता रहा। इस बीच में स्पेन्सर का यश दूर दूर तक फैल गया। "मानसशास्त्र के मूलतत्व" लिखने से उसका बड़ा नाम हुआ। वह अब एक विचक्षण दार्शनिक गिना जाने लगा। इस पुस्तक ने तत्वज्ञान के प्रवाह को एक बिलकुल ही नये रास्ते में ले जाकर डाल दिया।

किसी नये लेखक या नये विद्वान् के गुणों की क़दर होने में बहुधा बहुत दिन लगते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर ने यद्यपि ऐसी अच्छी अच्छी किताबें लिखीं; परन्तु उनकी बहुत ही कम क़दर हुई। स्पेन्सर की पहली किताब "सोशल स्टटिक्स" को किसी प्रकाशक या पुस्तक-विक्रेता ने लेना और छपा कर प्रकाशित करना मंज़ूर न किया। तब स्पेन्सर ने उसकी ७५० कापियां ख़ुद ही छपवाईं। इनमें से कुछ तो उसने मुफ़्त बांट दीं और बाक़ी किताबों के बिकने में कोई चौदह पन्द्रह वर्ष लगे! यही दशा "मानसशास्त्र मूलतत्व" की हुई। उसे भी छपाना किसी ने स्वीकार न किया। अन्त में स्पेन्सर ही ने उसे भी प्रकाशित किया। उसे भी बिकने में दस बारह वर्ष लगे। इन किताबों को उसने किताब बेचने वालों को कमीशन पर बेचने के लिए दे दिया था। स्पेन्सर को इन किताबों के लिखने से धनसम्बन्धी लाभ तो कुछ हुआ नहीं, हानि ख़ूब हुई। उसने जान लिया कि इस तरह की किताबों की क़दर नहीं है। हां, यदि वह उपन्यास लिखता तो उसे ख़ातिरख़्वाह आमदनी होती। जब इँगलैंड में इस तरह की किताबों का इतना अनादर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ तब यदि हिन्दुस्तान में इनको कोई न पूछे तो आश्चर्य्य ही क्या है ?

यद्यपि स्पेन्सर की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं रही तथापि वह अपनी निर्धनता के कारण विचलित नहीं हुआ। उसे आडम्बर बिलकुल पसन्द न था। इससे उसका ख़र्च भी कम था। जो कुछ उसे मिलता था उसी में वह सन्तुष्ट रहता था। यद्यपि अपनी पूर्वोक्त दोनों पुस्तकें छपाने में उसका बहुत सा रुपया बरबाद हो गया तथापि उसने किसीसे आर्थिक सहायता नहीं ली। कुछ उदार लोगों ने उसकी सहायता करना भी चाहा; पर उसने कृतज्ञतापूर्वक उसे लेने से इनकार कर दिया। पुस्तक-प्रकाशन में स्पेन्सर की कोई १५,००० रुपये की हानि हुई। यह सुन कर अमेरिका के कुछ उदार लोगों ने उसे २२,५०० रुपये भेजे। परन्तु उसने यह रुपया भी लेना नहीं स्वीकार किया।

हर्बर्ट स्पेन्सर की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक "सिस्टम आफ़ सेन्थैटिक फ़िलासफ़ी" (A System of Synthetic Philosophy) अर्थात् संयोगात्मक-तत्वज्ञान-पद्धति है। १८६० ईसवी में उसे स्पेन्सर ने लिखना शुरू किया। बीच में उसे धन-सम्बन्धी और शरीर-सम्बन्धी यद्यपि अनेक विघ्न उपस्थित हुए तथापि ३६ वर्ष तक अविश्रान्त परिश्रम करके उसे उसने समाप्त करके ही छोड़ा। इस पुस्तक में उसने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़ी ही योग्यता से किया है। संसार में जो कुछ दृश्य अथवा अदृश्य है सबकी उपपत्ति उसने अपने उत्क्रान्ति मत के आधार पर सिद्ध कर दिखाई। इस प्रचण्ड पुस्तक को उसने पाँच भागों में विभक्त किया और दस जिल्दों में प्रकाशित कराया। उनका विवरण इस तरह है—

१ फ़र्स्ट प्रिन्सिपल्स (First Principles) अर्थात् प्राथमिक सिद्धान्त १ जिल्द

२ प्रिंसिपल्स आफ़ बायोलजी (Principles of Biology) जीवन-शास्त्र के मूलतत्व २ जिल्द

३ प्रिंसिपल्स आफ़ साइकालजी (Principles of Psychology) मानसशास्त्र के मूलतत्व २ जिल्द

४ प्रिंसिपल्स आफ़ सोशियालजी (Principles of Sociology) समाजशास्त्र के मूलतत्व ३ जिल्द

५ प्रिंसिपल्स आफ़ एथिक्स (Principles of Ethics) नीतिशास्त्र के मूलतत्व २ जिल्द

स्पेन्सर के इस ग्रन्थ ने उसे इस नश्वर संसार में अमर कर दिया। उसका नाम देश देशान्तर में विदित हो गया। वह वर्तमान युग के तत्व-ज्ञानियों का राजा माना जाने लगा। इस पुस्तक के प्रथम भाग के दो खण्ड हैं। एक का नाम अज्ञेय-मीमांसा (The Unknowable) और दूसरे का ज्ञेय-मीमांसा (The Knowable) है। हमारी प्रार्थना है कि जो सज्जन इस पुस्तक को पढ़ सकते हों वे एक बार अवश्य पढ़ें; और स्पेन्सर के प्रकृति-पुरुष आदि विषयक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करें; और इस बात का भी विचार करें कि इस विषय में इस देश के तत्वज्ञानियों और स्पेन्सर के सिद्धान्तों में क्या तारतम्य है।

इस इतनी बड़ी पुस्तक के प्रकाशित करने में स्पेन्सर को अनेक कठिनाइयां हुईं। किसीने उसे छापना न मंजूर किया। छापे कोई क्यों? कोई ऐसी किताबों को पूंछे भी? निदान लाचार हो कर स्पेन्सर ने इस पुस्तक के थोड़े थोड़े अंश को त्रैमासिक पुस्तक के रूप में निकालना शुरू किया। परन्तु फिर भी ग्राहकों की कमी रही। उसे बरा-बर घाटा होता गया। जब वह इस पुस्तक की पहली तीन जिल्दें निकाल चुका तब हिसाब करने पर उसे मालूम हुआ कि कोई ११ वर्ष में उसे अठारह हज़ार रुपये का घाटा रहा! स्पेन्सर ही ऐसा था जो इतना घाटा उठा सका। अब उसने इरादा किया कि इस पुस्तक की अगली जिल्दों का प्रकाशित होना बन्द कर दिया जाय। परन्तु सौभाग्यवश बन्द करने का समय नहीं आया। जैसे जैसे उसकी प्रसिद्धि होती गई वैसे ही वैसे उसकी किताबों की बिक्री भी बढ़ती गई। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो घाटा स्पेन्सर ने उठाया था उसे पूरा होने में २४ वर्ष लगे। इसके बाद उसे यथेच्छ आमदनी होने लगी और फिर कभी उसे अपनी आर्थिक अवस्था के सम्बन्ध में शिकायत करने का मौक़ा नहीं मिला। उसने अपनी किसी किसी किताब के छपाने और प्रकाशित करने में, बिक्री से होने वाली आमदनी का कुछ भी ख़याल न करके, हज़ारों रुपये ख़र्च कर दिये। समाजशास्त्र-सम्बन्धी अकेली एक पुस्तक के छपाने में उसने कोई ४४ हज़ार रुपये बरबाद कर दिये! इस बहुत बड़ी रक़म के ख़र्च करने के विषय में उसने विनोद के तौर पर लिखा है कि यदि मेरी उम्र १०० वर्ष से भी अधिक हो तो भी मुझे इस रुपये के वसूल होने की कोई आशा नहीं।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने और भी कितनी ही उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से दो चार के नाम हम नीचे देते हैं—

१ फैक्ट्स ऐंड कामेंट्स (Facts and Comments) यथार्थता और टीका।
२ एसेज़ (Essays) निबन्ध, ३ जिल्द।
३ वेरियस फ्रैगमेंट्स (Various Fragments) बहुत सी फुटकर बातें।
४ दि स्टडी आफ़ सोशियालजी (The Study of Sociology) समाजशास्त्र का अध्ययन।
५ यजुकेशन (Education) शिक्षा।

इनके सिवा उसने और भी कितनी ही छोटी बड़ी किताबें लिखी हैं।

स्पेन्सर की किताबों में "शिक्षा" बहुत ही उपयोगी किताब है। योरप, अमेरिका और एशिया सब कहीं इसकी बेहद क़दर हुई है। कोई बीस बाईस भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। चीनी, जापानी, अरबी यहां तक कि संस्कृत तक में इसका रूपान्तर किया गया है। आज तक इसकी लाखों कापियां छप कर बिक गई हैं। इसका हिन्दी-अनुवाद आरम्भ किये हमें कई महीने हुए, अब वह समाप्तप्राय है। यह पुस्तक सर्वमान्य है। शिक्षा के विषय में यह अद्वितीय है। विद्वानों की ऐसी ही राय है। इसमें शिक्षा की जैसी मीमांसा की गई है वैसी आज तक किसी ने नहीं की। शारीरिक, मानसिक और नैतिक सब प्रकार की शिक्षाओं की, बड़ी ही योग्यता से, इसमें मीमांसा हुई है। स्पेन्सर ने विज्ञान-विद्या ही को सब से अधिक उपयोगी और सब से अधिक मूल्यवान् शिक्षा ठहराया है। परन्तु, अफ़सोस, हिन्दुस्तान में इसी शिक्षा की सब से अधिक नाक़दरी है।

१८८२ ईसवी में स्पेन्सर ने अमेरिका का प्रवास किया। जहां जहां वह प्रकट रूप से गया वहां वहां उसका बड़ा आदर हुआ। राजकीय और नैतिक शास्त्रों के उत्कर्ष के लिए फ्रांस में एक प्रसिद्ध विद्या-पीठ है। उसकी एक शाखा तत्वज्ञान से सम्बन्ध रखती है। उसमें विख्यात विद्वान् यमरसन की जगह पर कुछ काल तक वह निबन्धकार रहा। परन्तु वह बड़ा ही निस्स्पृह और स्वाधीनचेता था। योरप, और अमेरिका के-विशेष करके इँगलैंड के-विश्वविद्यालयों ने उसे दर्शन-शास्त्र की शिक्षा देने के लिए कितने ही ऊंचे ऊंचे पद देने की इच्छा प्रकट की; परन्तु उसने कृतज्ञतापूर्वक उन्हें अस्वीकार कर दिया। स्वाधीन रहकर अपनी सारी उम्र उसने विद्या व्यासङ्ग में ख़र्च कर दी और अपने अभूतपूर्व तत्वज्ञानपूर्ण ग्रन्थों से अपना नाम अमर करके संसार को अनन्त लाभ पहुँचाया।

स्पेन्सर की उम्र के पिछले पाँच सात वर्ष अच्छे नहीं कटे। वह अकसर बीमार रहा करता था। कोई दस पन्द्रह वर्ष पहले से वह एकान्त वास करने लगा था। वह बहुत कम मिलता जुलता था। अपने सांसारिक काम समाप्त करके वह मृत्यु की राह देखने लगा था। अन्त में वह आ गई और ८४ वर्ष की उम्र में, ८ दिसंबर १९०३ को, वह उसे इस लोक से उठा ले गई। पर उसका अक्षय्य यश, पूर्ववत्, किम्बहुना उससे भी अधिक, प्रकाशित हो रहा है। उसे ले जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या कम कर देने की किसी में शक्ति नहीं। स्पेन्सर ने लिख रक्खा था कि मरने पर मेरा मृत शरीर जलाया जाय, गाड़ा न जाय। ऐसा ही किया गया और उसका नश्वर पञ्चभूतात्मक शरीर अग्नि के संस्कार से फिर पञ्चभूतों में जा मिला। शव-दाह की प्रथा जिन लोगों में नहीं है उन्हें स्पेन्सर के उदाहरण पर विचार करना चाहिए। इस देश के निवासियों में श्यामजी कृष्ण वर्म्मा पहले सज्जन हैं जिन्होंने आक्सफर्ड विश्वविद्यालय से एम० ए० की पदवी पाई है। स्पेन्सर की श्मशान-क्रिया के समय वे वहां उपस्थित थे। थोड़ा सा समयोचित भाषण करने के बाद उन्होंने १५ हज़ार रुपया ख़र्च करके स्पेन्सर के नाम से एक छात्रवृत्ति नियत करने का निश्चय किया। इस निश्चय का वे पालन भी कर रहे हैं। इँगलैंड के इस ब्रह्मर्षि-तुल्य वेदान्तवेत्ता का इस तरह भारत वर्ष के एक विद्वान् द्वारा आदर होना कुछ कौतूहल-जनक अवश्य है। सच है, दर्शनशास्त्र की महिमा यह बुड्ढा भारत अब भी ख़ूब जानता है।

स्पेन्सर शान्तिभाव को बहुत पसन्द करता था। वह युद्ध के खिलाफ़ था। बोरयुद्ध का कारण उस समय के उपनिवेश मन्त्री चेम्बरलेन साहब थे। उन पर, उनके इस अनुचित काम के कारण, स्पेन्सर ने अप्रसन्नता प्रकट की थी। उसके मरने के बाद उसकी जो एक चिट्ठी प्रकाशित हुई है उसमें उसने जापान को शिक्षा दी है कि यदि तुम अपना भला चाहते हो तो योरपवालों से दूरही रहो और योरप की स्त्रियों से विवाह करके अपनी जातीयता को बरबाद न करो। नहीं तो तुम किसी दिन अपनी स्वाधीनता खो बैठोगे।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने यद्यपि पाठशाला में शिक्षा नहीं पाई और यद्यपि वह संस्कृत की तरह की ग्रीक और लैटिन इत्यादि भाषाओं के ख़िलाफ़ था। यहां तक कि वह ग्रीक भाषा का एक शब्द तक नहीं जानता था। तथापि वह बहुत अच्छी अँगरेज़ी लिखता था और अपने मन का भाव बड़ी ही योग्यता से प्रकट कर सकता था। उसकी तर्कशक्ति अद्वितीय थी। जिस विषय का उसने प्रतिपादन किया है, जिस विषय में उसने बहस की है, उसे सिद्ध करने में उसने कोई बात नहीं छोड़ी। उसकी प्रतिपादन-शक्ति ऐसी बढ़ी चढ़ी थी कि जो लोग उसकी राय के ख़िलाफ़ थे उनको भी उसकी तर्कना सुन कर उसके सामने सिर झुकाना पड़ता था। पर, खेद की बात है, उसकी क़दर उसी के देश, इँगलैंड में, और देशों की अपेक्षा बहुत कम हुई। सच है, हीरे की क़दर हीरे की खान में कम होती है।

स्पेन्सर का मत है कि विज्ञान पढ़ने से मनुष्य अधार्म्मिक नहीं होता। विज्ञान से धर्म्मनिष्ठा अधिक बढ़ती है। जो लोग ऐसा नहीं समझते उन्होंने विज्ञान की महिमा को जाना ही नहीं। इस विषय पर उसने "शिक्षा" नाम की अपनी पुस्तक में बड़ी ही विज्ञता-पूर्ण बहस की है। उसने लिखा है कि ज़रा ज़रा सी बातों पर वाद-विवाद करके व्यर्थ समय नष्ट करना और सृष्टि-रचना में परमेश्वर ने जो अगाध चातुर्य्य दिखलाया है उस पर ज़रा भी विचार न करना बड़े ही आश्चर्य्य की बात है। परन्तु पीछे उसका मत कुछ और ही तरह का हो गया था। जिस स्पेन्सर ने सृष्टि-सम्बन्धिनी एक "अगम्य अमर्य्याद, और सर्वव्यापक शक्ति" की महिमा गाई उसी ने "विश्व-कर्म्मा, जगन्नायक और सर्वशक्तिमान् ईश्वर" की अपने समाज-घटना-शास्त्र में कड़ी समालोचना की। यह शायद धर्म्मश्रद्धा में उसकी अशक्तता का कारण हो। क्योंकि धर्म्म-विषयक बातों में श्रद्धा ही प्रधान है।

स्पेन्सर ने पचास साठ वर्ष तक अविश्रान्त ग्रन्थ-रचना की। उसके ग्रन्थों को पढ़कर संसार के सुशिक्षित लोगों के विचारों में ख़ूब फेर फार हो रहे हैं। आशा है कि इस फेर फार के कारण सांसारिक जनों का कल्याण होगा। स्पेन्सर का विद्याभ्यास दीर्घ, ज्ञान-भण्डार अगाध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और परिश्रम अप्रतिहत था। वह अत्यन्त कर्तव्य-निष्ठ, दृढ़-निश्चय और निर्लोभी था। उसके समान तत्वज्ञानी योरप में बहुत कम हुए हैं। किसी किसी का मत है कि तत्वज्ञानियों में अरिस्टाटल, बेकन और डारविन ही की उपमा उससे थोड़ी बहुत दी जा सकती है। ईश्वर करे इस महादार्शनिक की पुस्तकों का अनुवाद इस देश की भाषाओं में हो जाय जिससे इस बूढ़े वेदान्ती भारतवर्ष के निवासियों को भी उसके सिद्धान्त समझने में सुभीता हो।

पवन-दूत।

पवन प्रणाम तुम्हें करता हूं
हाथ जोड़ कर बार हज़ार;
सावधान हो विनय हमारा
सुन कर करिए पर-उपकार।
अथवा प्राण तुम्हीं हो मेरे
तुमको क्या समझाना है;
प्रिया-पास जावो, थोड़ा सा
सन्देसा कह आना है॥ १॥

कोई जगह नहीं है जग में
जहां नहीं तुम जाते हो;
इस कारण से जाने लायक़
मुझको तुम्ही दिखाते हो।
सिवा तुम्हारे और न कोई
जाने का रखता मक़दूर;
क्योंकि जहां प्रियतमा होयगी
होगा पहरा खड़ा ज़रूर॥ २॥

वारिधि कूदि तनय तेरा ही
चला गया लङ्का के बीच;
सीता से मिल नगर जलाया;
कुछ न कर सका रावण नीच।
जिसके सुत की करनी ऐसी,
उसका क्या फिर करूँ बखान?
तनिक सहायक होजा मेरा
मुझे जान कर दुखी महान॥ ३॥

ठीक पता चलता जो उसका,
तो क्यों तुमको दौड़ाता?
होती जहां वहीं मैं जाता
जी मेरा चाहे जाता।
मोत समीर न तुमको तो भी
होना है कुछ भी हैरान;
उसके लक्षण बतलाता हूँ
जिससे तुम लोगे पहचान॥ ४॥

शारद-चन्द्र तुल्य उसका मुख;
चलती है गज-चाल अनूप;
फीका पड़ जाता है उसके
आगे जातरूप का रूप।
बायें गाल बीच तू तिल को
शोभा जब देखेगा मीत,
तब तेरी गति रुक जावेगी
कर लेना प्यारी-परतीत॥ ५॥

एक बात मत मित्र भूलना,
गाँठ बाँध रखना मन में;
दक्षिण से चल कर न कहीं तुम
लगना उसके कृष-तन में।
नहीं, हानि होगी अति मेरी,
उसे मरा तुम पावोगे;
अपयश होगा तुम्हें, सँदेशा
मेरा किसे सुनावोगे॥ ६॥

नीरद छाये हों समीर जो
चारों ओर प्रिया के घर,
बड़े वेग से तुम चल उनको
कर देना चट तितर बितर।
दमक दामिनी की घन-गर्जन
सह न सकूँ मैं होकर नर;
तब वह उसे सहेगी कैसे?
नारि-हृदय है कोमलतर॥ ७॥

व्यथा विरह की विरही जाने,
नहीं पवन मालूम तुझे;
यदि तुझ पर भी बीत चुकी हो
तो कुछ कहना नहीं मुझे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात इस तरह जाकर कहना,
जिसमें मिलना होय ज़रूर ;
फैलै सुयश जगत में तेरा
मुझ विरही का दुख हो दूर ॥ ८ ॥

बड़ी बड़ी आँखें हैं उसकी ,
भिड़े परस्पर उरज, सुकेश ,
मधुर वचन, है देह दूबरी ,
सभी भाँति सब अंग सुवेश ।
कमल गन्ध उठता रहता है
रहती प्रिया नित्य जिस ठौर ;
मँड़राते उस पर मतवाले
मधुकर यहां वहां से दौर ॥ ९ ॥

राह देखती हो जो मेरी
खिड़की पर वह खड़ी उदास ,
धीरे धीरे तुम भी निधरक
जाना चले उसीके पास ।
जो उसकी आँखों में आँसू
हों, तो तुरत सुखा देना ;
तुम भी थके रहोगे प्यारे ,
अपनी प्यास बुझा लेना ॥ १० ॥

जो आने पर राज़ी हो तो
उसे साथ ही ले लेना ;
मम मिलाप की मित्र नहीं तो
आशा तुम उसको देना ।
जो कुछ हालत मेरी है सो
साफ़ साफ़ कहना उससे ;
उसका भी कुछ समाचार तुम
आकरके कहना मुझसे ॥ ११ ॥

फिरती बार सँदेसा सुन कर
उसके पदकमलों की धूर ,
थोड़ी सी तुम लेते आना
होगा मेरा भला ज़रूर ।
जब जब बिना प्रिया के देखे
आँखें ये घबरावेंगी ,
करते ही उस रज का अंजन
ठंढी हो हो जावेंगी ॥ १२ ॥

कहीं किसी नौका के ऊपर
यदि तुम हो वारिधि के बीच ,
तो उस नौका सहित इधर ही
मित्र प्रिया को लाना खींच ।
अथवा उसको रोके रहना
नहीं निकल जाने पावे ;
ख़बर भेज देना तुम प्यारे
जिसमें हम ख़ुद आजावें ॥ १३ ॥

मम वियोग से मूर्छित जो वह
होगी पड़ी विकल अबला ;
तेरा स्पर्श अमित सुखदायक
उसे लगेगा बहुत भला ।
नेत्र सफल तेरे भी होंगे
इसमें शङ्का नहीं समीर ;
बिखरे केश वदन पर देखे
कंचन सा अधखुला शरीर । १४ ॥

लिखती हो जो पत्र मुझे तो
वहीं पास तू जाना बैठ ,
देख देख कर सुख पावेगा
वदन-भाव भौंहों की ऐंठ ।
सात्विक भाव उसे जब होगा
वदन स्वेद से छावेगा ,
उसे पोंछने को तब तेरा
चञ्चल चित ललचावेगा ॥ १५ ॥

करती हुई ध्यान मेरा यदि
सखी साथ बैठी हो मौन ,
उसके हृदय अचानक लगकर
ध्यान भंग मत करना पौन ।
अथवा यदि कुछ मेरी बातें ,
करती हों वे आपस में ,
सावधान हो सब सुन लेना
विघ्न नहीं करना उसमें ॥ १६ ॥

बात चीत करने में तुमको
यदि हो कोई अन्देशा ,
भूल जाव सब बात हमारी
मत कहना कुछ सन्देशा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक काम करना ही होगा
तो भी तुमको मीत समीर ;
प्यारी अंग अंग से लगकर
आकर मेरे लगो शरीर ॥ १७ ॥

भेंट न हो तेरी उससे, तो
मीत उसी द्वारे की धूल ,
किसी भाँति थोड़ी सी लेते
आना, तू मत जाना भूल ।
चूम चूम कर उसी धूल को
अपना दिल बहलाऊंगा ;
कभी हँसूंगा, कभी विकल हो
रोऊंगा, या गाऊंगा ॥ १८ ॥

तेरे जाने के पहले ही
निकल जायँ यदि उसके प्रान ,
तो भी एक काम तू करना
भूल न जाना पवन सुजान ।
चुटकी भर प्यारी के तन की
लादेना तू ख़ाक मुझे ,
भस्म रमा कर जोगी हूँगा
होगा अनुपम पुण्य तुझे ॥ १९ ॥

तेरे आने के पहले जो
मैं मर जाऊं मीत समीर ,
धीरज धर कर मेरा कारज
करना, होना नहीं अधीर ।
जिस धरती पर फूँका जाऊँ
वहीं पहुँचना तू भी आय ,
कह देना उसका सन्देसा
कोई बात छूट नहिं जाय ॥ २० ॥

समय एक ही में हम दोनों
मर जावें यदि मीत समीर ,
करके अपना वज्र कलेजा
तो फिर करना यह तदबीर ।
मेरी ख़ाक और उसकी भी
किसी भाँति कर देना एक ,
हाय इस तरह ही पूरी हो
मिलने की यह मेरी टेक ॥ २१ ॥

इतना काम अवश्य कीजिए ,
तुझे शपथ है मीत समीर ,
अपना दास समझ तू मुझको
जब तक मेरा बना शरीर ।
तुझे बहुत क्या मैं समझाऊँ
तू ही मन में देख विचार ;
जितने काम जगत में, उनमें
सबसे अच्छा पर-उपकार ॥ २२ ॥

रामचरित उपाध्याय ।

THE POET AND LIBERTY.

The Poet—'Thy birth-place—where, young Liberty'?
Liberty —"In graves, 'mid heroes' ashes".
The Poet—'Thy dwelling—where, sweet Liberty'?
Liberty —"In hearts, where free blood dashes".

⁂

The Poet—'Thy best hope—where, dear Liberty'?
Liberty —"In fast up-winging time".
The Poet—'Thy first strength—where, proud Liberty'?
Liberty —"In thine oppressors' crime".

⁂

The Poet—'Thy safety—where, stray Liberty'?
Liberty —"In lands where discords cease".
The Poet—'Thy glory—where, bright Liberty'?
Liberty —"In universal peace".

(ERNEST JONES)

कवि और स्वतन्त्रता ।

(भावार्थ)

[१]

कवि— हे स्वतन्त्रते ! जन्म तुम्हारा
—कहां ? बता, यह प्रश्न हमारा ।

स्वतन्त्रता—शूर देशहित तजते जहां
प्राण, जन्म मेरा है वहां ॥

[२]

कवि— बता, निवास कहां तेरा है ?
यह भी एक प्रश्न मेरा है ।

स्वतन्त्रता—उष्ण रक्त जिन हृदयों भीतर
बहता, वहीं वास मम सुन्दर ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[३]

कवि— कौन दुःख तेरे हरता है ?
आशा पूर्ण कौन करता है ?

स्वतन्त्रता—काल, जगत का उन्नतिकर्ता
आशापूरक दुख का हर्ता ॥

[४]

कवि— शक्तिमूल तव कहां बता दे ?
है किस जगह मुझे दिखला दे ?

स्वतन्त्रता—प्रजापीड़ना होती जहां
शक्तिमूल मम रहता वहां ॥

[५]

कवि— कहां निडर हो रहती तू है—
जाना कहीं न चहती तू है ?

स्वतन्त्रता—जहां न भेद-विरोध-विकास
वहीं निडर मैं करती वास ॥

[६]

कवि— कब तू जन्म सफल जानेगी ?
कब कृतार्थता तू मानेगी ?

स्वतन्त्रता—शान्तिराज्य जब पाऊंगी मैं,
तब कृतार्थ हो जाऊंगी मैं ॥

एक के दो दो ।

ज़ारों वर्ष नहीं, लाखों वर्ष हो गये, एक राजा रहता था। उसके प्रताप से शेर और बकरी एक ही घाट में पानी पीते थे।

धरती पर जितने राजे थे, इस राजा का राज उन सबसे बड़ा था। वर्षों तक चलते जाओ, तो भी उसका ओर छोर नहीं मिलता था।

राजा का भाण्डार लक्ष्मी जी की दया से बड़े बड़े रत्नों से ठसाठस भरा रहता था। इतना धनी राजा और दूसरा नहीं था।

राजा के पास एक माणिक था। वह बहुत बड़ा और बहुत चमकदार था। उसकी चमक के सामने केरोसिन लम्प की रोशनी भी हलकी मालूम होती थी।

यह माणिक राजा को बहुत प्यारा था। राजा इसके लिये अपनी जान तक दे डालने को तैयार रहते थे। क्योंकि वह अकेला माणिक सात राजाओं की दौलत के बराबर था।

माणिक का हाथ लगना तो दुर्लभ ही था, पर, राजा के पास एक और रत्न था जिसके देखने को राजा प्रजा सभी की आंखें ललचाया करती थीं, जिसके पाने के लिये बड़े बड़े राजकुमार बरसों राजा की ड्योढ़ी पर हाथ बांध कर खड़े रहते थे।

यह रत्न राजा की एकलौती बेटी थी। इस रत्न के नेत्र-रत्नों की चमक के सामने चाँद सूरज भी लजाया करते थे।

पर, राजा जी अपने दोनों रत्नों की बड़ी सावधानी से रखवाली किया करते। एक को नीले मखमली अस्तर से मढ़े हुए सुनहरे बक्स में रख कर दिन रात सन्त्रियों के पहरे में रखते थे; दूसरे को हर घड़ी अपने पास। दूर से देखने के सिवा उन दोनों के पास आने का हुक्म किसी को न था।

राजा जी समझते थे कि हमारा माणिक दुनिया भर में सब से बड़ा, सबसे आबदार और सब से क़ीमती है। इस माणिक के रखने से वे अपने को बड़ा भाग्यशाली समझते थे, और दूर दूर से कोई बड़ा आदमी आता तो उसे माणिक दिखला कर पूछा करते थे कि "आपने इसकी बराबरी वाला दूसरा माणिक भी कहीं देखा है ?"

एक दिन किसी दूसरे राजा का दूत इनकी सभा में आया। राजा जी ने उसे अपना माणिक दिखा कर पूछा, "कहिए, इसकी बराबरी का दूसरा माणिक भी आपने कभी देखा है ?"

पर, राजदूत का जवाब सुनकर राजा जी की अक़्ल चकरा गई। राजदूत ने कहा, "धर्मावतार, इसके सच्चे माणिक होने में कोई सन्देह नहीं। पर हमारी राजधानी में भी एक ऐसा ही माणिक है। वह भी किसी बात में इससे घट कर नहीं"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं ! राजदूत कहता क्या है ?—राजा जी बड़ी बड़ी आँखें फाड़ फाड़ कर घूरने लगे। उनकी बोली बन्द हो गई। उन्होंने समझा कि मैं सपना देख रहा हूं।—"मेरे माणिक की बराबरी का दूसरा माणिक ?—हैं !—यह कहता क्या है ?"

राजा को ग़ुस्सा हो आया। वह चिल्लाकर बोला, "जोड़ा ? मेरे माणिक का जोड़ा ? नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेरे माणिक का जोड़ा !"

राजदूत ने हाथ जोड़ कर बड़ी अधीनता से कहा, "कृपानिधान, आप जो कुछ कहते हैं सो सच है। पर मैं भी झूठ नहीं कहता। ऐसे माणिक दो ही हैं। और दोनों एक दूसरे से बढ़ कर हैं।

जलती हुई आग में जैसे घी पड़ जाता है—नहीं, नहीं, मिट्टी के तेल के कनस्टर में जैसे दिया सलाई लग जाती है,—राजा जी की भी वही दशा हो गई। वह भक से जल उठे,—राजदूत को कान पकड़ कर उन्होंने निकलवा दिया,—मारे ग़ुस्से के वे थर थर कांपने लगे। सब लोग डरके मारे, जिधर जिसको जगह मिली अपनी अपनी जान लेकर जा छिपे।

इसी तरह एक दिन और एक रात बीत गई। दूसरे दिन राजा जी के क्रोध की आग कुछ शान्त हुई। उन्होंने महामन्त्री को बुलाकर हुक्म दिया,—"अभी जाकर ख़बर ले आओ, उस राजदूत की बात सच है या नहीं।"

महामन्त्री ने चुने हुए भेदियों को भेष बदलवा कर दूसरे माणिकवाली राजधानी में भेजा। बात सही थी। महामन्त्री जी ने डरते डरते राजा जी से सच बात कह दी। राजा बेचारे बहुत घबराये। कुछ सोच समझ कर दूसरे माणिकवाले राजा को उन्होंने लिख भेजा कि आप जितना दाम चाहें मैं देने को तैयार हूं। अपना माणिक मेरे हाथ बेच डालिए।

पर वह राजा भी दबने वाला न था। उसने भी राजा के दूतों को कान पकड़ कर अपनी राजधानी से बाहर निकलवा दिया, और अपने माणिक पर कड़ा पहरा खड़ा करवा दिया कि कोई उसे चुरा न ले जाय।

पर पहले माणिकवाले राजा को चैन न पड़ी। वह रात दिन मारे बेचैनी के छटपटाया किया। निदान, महामन्त्री की सलाह से उसने सब जगह डुग्गी पिटवा दी कि जो कोई मेरे माणिक का जोड़ा ला देगा, मैं उसे अपनी बेटी ब्याह दूंगा।

पर किसकी ऐसी ताक़त थी कि माणिक का जोड़ा ला देता ? न कोई उसे लाया, न बेटी का ब्याह हुआ, और न राजा जी को ही चैन मिला। मारे सोच के दिनों दिन राजा जी सूख सूख कर लकड़ी होने लगे।

इतने में एक दिन किसी राजकुमार ने राजकुमारी को देख लिया। देखते ही उसका कलेजा फड़क उठा। वह इसी ताक में लगा कि किसी तरह यह राजकुमारी मुझको मिल जाय।

वह राजकुमार बड़ा चतुर था। ख़ूब पढ़ा लिखा था। उसने सभा में जाकर झुक कर राजा जी को नमस्कार किया और कहा, "महाराजाधिराज, आप बड़े सोच में पड़े हैं। आपको क्या चाहिए, मुझसे कहिए। मैं आपका हुक्म बजा लाऊंगा।"

राजा जी बोले, "तुम बड़े चतुर मालूम होते हो। मुझे अपने माणिक का जोड़ा चाहिए। तुम उसे ला दोगे ?"

कुमार ने कहा, "महाराज, दोनों माणिक आपही के पास हैं !" राजा ने कहा, "चलो जाओ जी, तुम निरे घनचक्कर हो। मेरे पास दो होते तो मैं आज न जाने क्या कर डालता !"

यों कह कर राजा जी उस लड़के को जवाहिरख़ाने में ले गये, और माणिक दिखाकर कहा "देखो, एक ही तो है"।

राजकुमार ने जवाब दिया, "महाराज ! वह बात न हुई। एक तो दोही के बराबर है न ?"

राजा जी ने झुंझला कर कहा, "कैसे पागलपने की बातें कर रहे हो ? एक कहीं दो के बराबर होता है ?"

"हां महाराज, एकही दो है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि एक बराबर है दो के।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारे ऐसे पागल ही एक को दो बतलावेंगे।"

"नहीं महाराज, आप कहें तो मैं दिखा दूं। एक दो के बराबर है।"

राजा जी कुछ ऐसे वैसे राजा तो थे ही नहीं। वह बड़े समझदार थे। उन्होंने समझा, यह लड़का है तो क्या इसकी बातें शायद सच ही हों। उन्होंने कहा, "अच्छा, तुम्हारे कहने का क्या सबूत है?"

"सबूत? अच्छा, महाराज, सब पंडितों को बुलवावें, मैं उनके सामने साबित कर दूंगा कि एक दो के बराबर है।"

फिर क्या था। हुक्म देने भर की देर थी कि एक बड़ा भारी मण्डप रचा गया। बड़े बड़े विद्वान् दूर दूर से बुलाये गये। राजा जी राजकन्या को लेकर सभा में जा बैठे। तब राजकुमार ने एक ऊंची जगह पर एक काला तख़्ता लगवाया और आप खड़िया लेकर उसके पास जा खड़ा हुआ।

राजा ने कहा, "अब देर मत करो, झटपट बता दो कि एक किस तरह दो के बराबर हो सकता है?"

राजकुमार ने कहा, "महाराज! अभी लीजिए। मैं अभी यह बात सब लोगों के सामने साबित किये देता हूं। पर पहले यह बतलाइए कि मुझे क्या इनाम मिलेगा।"

राजा ने कहा, "जो तुम्हारी बात सच निकले तो मैं अपनी इस कन्या से तुम्हारा ब्याह कर दूंगा और अपना सारा राज तुम्हीं को सौंप दूंगा।"

राजकुमारी भी उस समय वहीं थी। उसने तो समझा था कि मुझे जन्म भर कुँवारी ही रहना पड़ेगा। ब्याह का नाम सुन कर, और सामने ऐसे सुन्दर युवा को देखकर, उसने लाज से अपना सिर नीचा कर लिया। उसके लजाते हुए चांद से मुखड़े को देखकर राजकुमार का कलेजा और भी फड़क उठा। उसने चिल्ला कर कहा—

"सुनिये पंडित लोगो! महाराज ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे मत भूलिये। अब देखिए, एक बराबर है दो के।"

यों कह कर उसने तख़्ते पर लिखा— अ=क्ष

"मान लीजिए कि अ बराबर है क्ष के।"

सब लोग कहने लगे "ठीक है।" सब लोग अपनी जानकारी दिखलाने के लिये अपने पगड़ीदार सिर हिलाने लगे।

राजा ने कहा, "मैंने भी इसे मान लिया।" कुमार ने कहा, "तब अ क्ष=क्ष^{२} के।" तख़्ते पर उसने लिखा— अ क्ष = क्ष^{२}

चारों तरफ़ से "ठीक, ठीक" की आवाज़ गूंजने लगी। राजकुमार ने कहा, "अब हम दोनों में से अ^{२} घटाते हैं।" अ क्ष—अ^{२}=क्ष^{२}—अ^{२}

अब तो बहुत से दरबारी चकराने लगे। पर जो गणित समझते थे, वे लोग अपनी पगड़ियां अब भी हिलाने लगे। राजा ने भी इसको समझ लिया।

राजकुमार ने कहा, "इससे अब यह नतीजा निकलता है—अ (क्ष—अ) = (क्ष + अ) (क्ष—अ)"

इन अंकों के देखते ही सब दरबारियों को चकाचौंध आने लगी। पर राजज्योतिषी और दो एक और भी पंडितों ने कहा, "हां, हां, ठीक है।"

राजकुमार ने कहा, "देखिए, दोनों पदों में (क्ष—अ) शामिल है। बीजगणित के क़ायदे से, उसे दोनों में से निकाल दें तो दोनों बराबर रहेंगे—

अ=क्ष+अ

"पर हम पहले मान चुके हैं कि अ और क्ष दोनों बराबर हैं। इसलिये क्ष की जगह अ लिख दें तो कुछ हर्ज नहीं—

इसलिये अ=अ+अ
यानी अ=२ अ
यानी १=२

यों लिखकर, राजकुमार हट कर तख़्ते के बग़ल में खड़ा हो गया। तख़्ते पर यह लिखा था—

अ=क्ष
अ क्ष=क्ष^{२}
अ क्ष—अ^{२}=क्ष^{२}—अ^{२}
अ (क्ष—अ)=(क्ष+अ) (क्ष—अ)
अ=क्ष+अ
अ=अ+अ
अ=२ अ
१=२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब ज़रा राजा जी की ओर देखिए। मारे घबराहट के उनके कलेजे में लोहार की धौंकनी धौंक रही थी। ज़ोर से चिल्ला कर आप कहने लगे—

"ठीक है! ठीक है! मैंने भी लड़काई में बीज-गणित का समीकरण सीखा था। तुम्हारे गणित की शुद्धता में ज़रा भी अन्तर नहीं। ठीक है! ठीक है! एक बराबर दो के! एक माणिक दो के बराबर हो गया!! ठीक है! एक के दो दो हो गये!!!"

राजा को मगन देख कर सब लोग भी मगन हुए। चारों तरफ़ गहगहे बाजे बजने लगे। राजकुमार को सब लोग राजकुमारी के सामने ले आये। उसने लजाते लजाते कुमार के गले में जयमाल पहना दी।

एक के दो दो हो गये। पार्वतीनन्दन।

अकबरशाह की मृत्यु।

बाबर से लेकर औरंगज़ेब तक जितने मोग़ल-बादशाह हुए, सभी विचित्रवीर्य और प्रतापी थे; परन्तु उनमें अकबरशाह प्रधान थे। जगत् के चक्रवर्त्ती राजाओं में अकबर स्मरणीय हैं। सब तरह से यदि देखा जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि इनके तुल्य सर्वांश में श्रेष्ठ और उदारचरित राजा ने जगत् में और कभी जन्म-ग्रहण नहीं किया। सुलेमान इनकी अपेक्षा बहुदर्शी और ज्ञानी थे; अलेकज़ाण्डर और नेपोलियन इनकी अपेक्षा दिग्विजयी शूरवीर थे; हारून-अल्-रशीद प्रजापालन में अधिक यत्न करते थे; परन्तु अकबर सब गुणों से युक्त उत्तम लक्षण वाले सौभाग्यवान् राजा के आदर्शस्थानीय थे। सीज़र और हानीबाल के तुल्य यद्यपि वे युद्धविशारद नहीं थे, तथापि युद्धस्थल में उनका पराक्रम देखकर सब चमत्कृत होते थे। बारह वर्ष की अवस्था में सिंह के समान युद्ध करते थे। इनके तुल्य धनी कोई नहीं हुआ। राजकार्य में इनकी जैसी दक्षता और निपुणता थी उसका परिचय इनका विस्तृत साम्राज्य दे रहा है। हिन्दू और मुसल्मानों का वैरभाव इन्हीं ने छुड़ाया। इन्हीं के गुणों से मोहित होकर चन्द्र-सूर्य-वंशी राजपूतों ने इनके दरबार को भूषित किया, और इनके साथ विवाहसूत्र में वे ग्रथित हुए। विलासप्रिय तो वे अवश्य थे, परन्तु भोगविलास में कभी अधिक समय नहीं बिताते थे। महत्व के सभी लक्षण उनमें वर्त्तमान थे। आठ पहर में एक पहर से अधिक वे नहीं सोते थे। कुबेर के तुल्य अक्षय भाण्डार के अधीश्वर होकर भी वे ऐश में दिन नहीं बिताते थे; नित्य व्यायाम करते थे। पारमार्थिक तत्व में भी वे मनोनिवेश करते थे। पंडित, शास्त्री और मौलवियों के साथ शास्त्र-चर्चा में वे सारी रात बिता देते थे। पैदल बहुत दूर तक चलने से वे हिचकते या थकते नहीं थे। इतने बड़े राज्य के सब कार्य की आप स्वयं देख भाल करते थे। उनकी बुद्धि और दृष्टि सर्वतोमुखी थी। सिन्धुप्रदेश की मरुभूमि में जन्म लेकर बाल्यावस्था में भिक्षुक के लड़के की तरह वे देश देश में मारे मारे फिरे। पिता हुमायूं की मृत्यु के अनन्तर वे हिन्दुस्तान के बादशाह तो हुए, पर मोग़लराज्य उस समय बहुत छोटा था। अकबर के प्रताप, कौशल और गंभीर राजनीति के बल से वही राज्य काबुल से लेकर बंगाल तक विस्तृत हुआ। बहुत से इतिहासों में उनकी अतुल कीर्त्ति का वर्णन है। उनके जेष्ठ पुत्र जहांगीर के स्वलिखित आत्मचरित में उनके सम्बन्ध में बहुत सी बातें हैं। जहांगीर अपने पिता को देवता के तुल्य समझते थे।

रामायण-महाभारत में जो सब आजानुलम्बबाहु और सिंहविक्रम राजाओं की कथा पाई जाती है अकबर उसी जाति के पुरुषसिंह थे। तैमूर के वंश वाले वास्तव में तुर्की थे; उनको मोग़ल कहना भ्रम है। अकबर सर्वसुलक्षणयुक्त असाधारण-कान्ति-विशिष्ट, तुर्की-राजवंश-भूषण थे। उनका शरीर लंबा, रंग लाल गेहूं के समान, नेत्र कृष्ण तारा वाले, और भौंहें काली और मिली हुई थीं। नासिका के ऊपर एक काले रंग का तिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। बादशाह मत्त हाथी के तुल्य बलवान् थे। दस मन लोहे का बड़ा भारी सांकड़ा लेकर प्रतिदिन वे व्यायाम करते थे। जिस हाथी को दूसरा कोई वशीभूत नहीं कर सकता था, अकबर उसे वश में लाते थे। एक हाथी की पीठ पर से कूद कर वे दूसरे हाथी पर सवार हो जाते थे। जब कोई हाथी मतवाला होकर महावत को मार डालता और दूसरे हाथी को पास नहीं आने देता था, तब बादशाह किसी पेड़ अथवा दीवार पर चढ़ कर उस हाथी की गर्दन पर कूद पड़ते थे और उसे अंकुशद्वारा वशीभूत करते थे।

जहांगीर ने अकबरशाह के ऐश्वर्य का जो वर्णन किया है उसमें अत्युक्ति दोष रहने पर भी, सोने और जवाहिरात में उनके समान धनी बादशाह आज तक पैदा नहीं हुआ। यह बात सभी स्वीकार करते हैं। उनके ख़ज़ाने में इतनी मोहर और हीरा मोती थे कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती। उनकी आज्ञा से राज-प्रासाद के एक कोषागार का धन एक बार तौला गया था। चार सौ तुला-दण्डों के द्वारा पांच महीने तक रुपया तौला गया। तो भी धन का ढेर नहीं चुका। फ़ीलख़ाने में बत्तीस हज़ार हाथी रहते थे। इनके खाने के लिये प्रतिदिन चार लक्ष मुद्रा व्यय होता था। बादशाह के शिकार के लिये बारह सौ हरिन और बारह हज़ार दूसरे जानवर रहते थे। जिस देश में जो चीज़ दुर्लभ, बहुमूल्य और आश्चर्य-कारिणी थी, अकबर ने उसे संग्रह किया था। अकबर बड़े विद्यानुरागी थे। गद्य और पद्य की रचना में वे विशेष निपुणता रखते थे। हिन्दी भाषा में भी वे पद्य-रचना करते थे। धर्म-सम्बन्धी तर्कवितर्क वे बहुत पसन्द करते थे। संस्कृतज्ञ पंडितों का वे बड़ा सम्मान करते थे। सब की अपेक्षा न्याय-शीलता ही उनके चरित्र में अधिक बड़ा गुण था। हिन्दू और मुसलमानों के साथ किसी प्रकार वे पक्षपात नहीं करते थे। उनके दरबार में महाराज मानसिंह सब से श्रेष्ठ अमीर थे।

जिस समय अकबरशाह बहुत बीमार थे, उस समय अमीरों में युवराज सलीम के विरुद्ध साज़िश चल रही थी। प्रसिद्ध इतिहासकार अबुलफ़ज़ल की हत्या के कारण अकबर युवराज से बहुत अप्रसन्न हो उठे थे। ऐसे ही अवसर में महाराज मानसिंह और दूसरे अमीरों ने मानसिंह के भानजे सलीम के जेष्ठ पुत्र ख़ुशरू को सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाने की चेष्टा की। सलीम क़िले के बाहर ही रहते थे। सायंकाल एक बार बीमार पिता को वे देखने जाते थे। उनकी अनुपस्थिति में मानसिंह आदि अमीरगण बादशाह के कान में बहुत सी भली बुरी बातें कहा करते थे। अकबरशाह अपनी प्रतिभा और बहुदर्शिता के बल से समझ गये कि जेष्ठ पुत्र को वञ्चित कर पौत्र को राज्य-भार अर्पण करने से गृह-विच्छेद और लड़ाई झगड़े की शंका है। अकबर यह भी जानते थे कि सलीम राज-कार्य में अयोग्य नहीं है। एक दिन उन्होंने युवराज सलीम को एकान्त में बुलाकर सचेत रहने के लिये कहा, और यह भी कहा कि "तुम हर रोज़ यहां मत आया करो। जब आओ अकेले हरगिज़ न आओ; चंद मुहाफ़िज़ों को साथ लेकर आया करो"। दूसरे दिन बादशाह की आज्ञा के बिना ही चक्रान्तकारियों ने दुर्ग का द्वार बंद कर दिया। युवराज ने जाकर देखा कि द्वार बंद है, और फाटक के ऊपर तोपें चढ़ी हुई हैं। इससे विवश होकर उसे लौट जाना पड़ा।

इस समय मानसिंह ने युवराज को पत्र लिखा कि दरबार के अमीर और सरदार ख़ुशरू के पक्ष में हैं। इस कारण युवराज भी उसी प्रस्ताव में सहमत हों। सलीम ने पत्र का उत्तर कुछ न देकर अपने पुत्र परवेज़ को बादशाह के पास भेजा और कहला भेजा कि मैं बीमार हूं इस कारण आ नहीं सकता। अकबर ने शय्या पर लेटे ही लेटे हाथ उठाकर युवराज की नीरोगता के लिये प्रार्थना की और युवराज को कहला भेजा कि—"ऐसे वक़्त पर तुम मेरे पास क्यों नहीं रहे? तख़्त के सम्बन्ध में कोई झगड़ा नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर तुम मुझे देखने क्यों नहीं आते ?" सुअवसर पाकर कई एक अमीरों ने कहा "शाहज़ादा सलीम ने फ़ौज लेकर क़िले को घेर लिया है। हुज़ूर अगर कुछ दिनों तक यमुना के उस पार जाकर रहें तो अच्छी बात है।" अकबर ने कहा—"क्या तुम लोगों ने क़िले का फाटक बंद कर दिया है जो शाहज़ादे ने फ़ौज इकट्ठी की है ?" मिर्ज़ा अज़ीज़ कोका ने उस मौक़े पर पूछा—"शाहजादा खुशरू के लिये बादशाह का क्या हुक्म है ?" बीमार बादशाह ने क्लिष्ट स्वर से उत्तर दिया—"ख़ुदा के ही हुक्म से सब होता है; वह जिसको देता है उसी को सल्तनत मिलती है। पर लोगों की बात से मालूम होता है कि तुम मेरी मौत चाहते हो। अगर मेरे जाने का वक्त क़रीब है तो अपने बड़े लड़के सलीम को छोड़ और किसको राज दे जाऊंगा ? ख़ुशरू को बंगाल की सूबेदारी मैंने दी।" बादशाह की इस दृढ़ता को देख कर चक्रान्तकारी गण डर गये। मानसिंह आदि अमीरों ने एक एक करके युवराज का अभिवादन किया। ख़ुशरू ने स्वयं आकर पिता को सिर नवाया।

अकबरशाह ने मृत्यु आसन्न जानकर युवराज के पास अपना राजवेष और सिर से पगड़ी खोलकर भेज दी और कहला भेजा कि—"सलीम तुमको न देखने से मेरा जी घबरा रहा है।" सलीम बादशाह का प्रसाद धारण कर तत्क्षण पिता के पास आकर उपस्थित हुए। उन्होंने आकर देखा कि बादशाह का उर्ध्व श्वास चलना शुरू हो गया है। सलीम को देखकर अकबर ने कहा—"उमरा को मेरे पास बुलाओ"। उनके पास आने पर बादशाह ने चारों ओर देखकर कहा—"तुम लोग मेरे अज्ञात अपराधों को क्षमा करो।" फिर स्पष्ट स्वर से वे कहने लगे—"मेरी सल्तनत में जो अमन और चैन का हज़ उठाया उसे याद करो; मेरे दरबार की दौलत को याद करो; मैंने अख़ीर वक्त में दुनयवी ख़ाहिशें छोड़कर ख़ुदावन्द पाक में दिल लगाया है। काबा शरीफ़ के लिये चांदनी बनवाई है। मेरी क़बर पर तुम लोग अश्के-मुहब्बत मिस्ल मोती के गिराना। सुबह इबादत के वक्त मुझको याद करना। जब जाड़े में तेज़ और ठंढी हवा चले तब याद करना कि इन हाथों ने कितना सोना तक़सीम किया है। मेरी जान इस तारीक पिंजड़े से उड़ भागने के लिये घबरा रही है। जिस सीने के मुक़ाबिले में ज़मीन बहुत छोटी जान पड़ती थी उसमें अब दम का आधा हिस्सा भी नहीं रहा।" बादशाह चुप हुए। युवराज सलीम ने रोदन करते करते पिता के चरणों पर मस्तक रक्खा। उसके अनन्तर उठकर धीरे धीरे तीन बार पिता की शय्या की प्रदक्षिणा की। बादशाह ने संकेत द्वारा युवराज को—"फ़तेह-उल्-मुल्क" नाम की तलवार अपने हाथों से कमर में बांधने का अनुरोध किया।

उस दिन तो बादशाह जीवित रहे। दूसरे दिन युवराज के सामने बादशाह ने मीरन, सदरे-जहां, को बुलाकर "कलमे शहादत" पढ़ने के लिये कहा। कलमा पढ़ने के पहिले युवराज को आलिंगन कर कहा—"बेटा, यह आख़िरी मुलाक़ात है। इस ज़मीन पर फिर हम लोगों की मुलाक़ात न होगी। महल में जो बेगमात हैं उनकी हिफ़ाज़त करना तुम्हारा पहला फ़र्ज़ है। अब तक उनको जो वेतन माहवार दिया जाता है, वह बराबर उनको मिलता रहे। जो बातें मैंने तुमसे कही हैं उनको मत भूलना। मेरे नौकरों और मेरी ग़रीब रिआया की परवरिश करना। मुझको हमेशा याद रखना।" यह कहकर बादशाह संसार-चिन्ता से विरत हुए। सदरे-जहां कलमा पढ़ने लगे—"ला इलाहा इल्लल्लाह, मुहम्मदुर रसूलल्लाह!" बादशाह भी स्पष्टता से कलमा पढ़ने लगे। इस प्रकार शान्त भाव से अकबरशाह की मृत्यु हुई। मृत्यु के पहिले उनके नेत्र में एक बूंद आंसू देख पड़ा था।

मृतदेह को सुगन्धित जल में स्नान कराकर उस पर नाना प्रकार के सुगन्ध-द्रव्य लगाकर उसे बहुमूल्य वस्त्रों से आवृत किया। युवराज सलीम ने दुर्ग के द्वार तक मृतदेह को स्वयं वहन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। द्वार के बाहर आकर सलीम के पुत्रों और प्रधान कर्मचारियों ने मृतदेह को वहन करना आरम्भ किया। आगरे से कुछ दूर पर "सिकन्दरा" नाम स्थान में अकबरशाह की समाधि हुई। यह स्थान दर्शनीय है। प्रमथनाथ भट्टाचार्य्य।

प्राचीन भारत के विश्वविद्यालय* ।

वैदिक समय में मुश्किल से ऐसे गुरुकुल थे, जो आज कल के विश्वविद्यालयों से किसी बात में मिलते हों। पुराने ज़माने के ऋषि एक या दो विद्यार्थियों को अपने आश्रम में शिक्षा देते थे। और वे बदले में अपने गुरु की सेवा पुत्रवत् करते थे। जितने समय तक विद्यार्थी अपने आचार्य्य के साथ रहते थे उतने समय तक उनको ज़िन्दगी की ज़रूरियात सेंत मेंत मिलती थीं। विद्याध्ययन के समाप्त होने पर वे अपने सामर्थ्य के अनुसार, और कभी कभी गुरु की इच्छा के अनुसार, दक्षिणा देते थे। राजा, महाराजा, सेठ, साहूकार गुरु की कृतज्ञता के ऋण से उऋण होने में बड़ी उदारता के साथ शिष्य की सहायता करते थे। एक भी उदाहरण इस बात का नहीं मिलता है कि कोई विद्यार्थी फ़ीस देकर या प्रतिफल के वादे पर किसी आचार्य्य से पढ़ते रहे हों। जिस शिक्षा को आचार्य्य लोग बड़ी उदारता से देते थे उसके पलटे में वे शिष्यों से कुछ पाने की आशा न रखते थे।

इस उदारभाव ने उनको शिष्यों की दृष्टि में उच्चतम बना दिया था। गुरु अपने शिष्य का धर्म्म-पिता था। जिस दिन शिष्य अपने गुरु के पवित्राश्रम में प्रवेश करता था उस दिन मानो उसका दूसरा जन्म होता था। गुरु की तत्वावधानता में वह आत्मिक, धार्म्मिक और मानसिक शिक्षा का समय, जो बीस वर्ष था, व्यतीत करता था। यही भारत के द्विज-जातियों की उत्पत्ति का आदि कारण था। जहां तक हम को मालूम है, आर्य्यों की अन्य शाखाओं में ऐसी उत्तम रीति कहीं प्रचलित नहीं है। केवल भारत के आर्य्य आत्मिक शिक्षा से मन तथा आचार के सुधार की आवश्यकता को समझे थे। इसी कारण से नवयुवकों की आत्मिक शिक्षा का संस्कार, आत्मोन्नति के लिये जीवन का अत्यावश्यकीय अंग समझ, बड़े उत्सव के साथ मनाया जाता था। इस रिवाज का सानी दूसरे देशों के इतिहास में नहीं पाया जाता। जो दीक्षा आत्मा तथा शरीर की शुद्धि के लिये दी जाती थी, और जिससे स्वर्गीय राज्य में प्रवेश करने के लिये मनुष्य का दूसरा जन्म समझा जाता था, उसमें सांसारिक बातों की शिक्षा का लेश मात्र भी नहीं था। यह तो बच्चों तक को भी दी जाती है; परन्तु द्विजन्म-संस्कार की दीक्षा के योग्य केवल ८ से लगा कर १३ वर्ष तक के बालक ही समझे जाते हैं। भारत वर्ष के आर्य्यों का यह दीक्षा-संस्कार अत्यंत प्राचीन काल से चला आता है। इसका उनको उचित अभिमान है। इस संस्कार का मूल सिद्धान्त यह था कि मनुष्य मात्र ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करके ब्रह्म में लीन होने के अधिकारी बनें।

पौराणिक समय में ऋषियों की गुरु-दीक्षा की रीति ने काया पलट कर गुरु-कुल-विद्यालय का रूप धारण किया। बहुत से युवा तथा बालक शिष्य एक शिक्षा-गुरु के पास साहित्य और विज्ञान का अध्ययन करने लगे। इसी समय से शिक्षा-गुरु और दीक्षा-गुरु के कार्य्य अलग अलग हो गये। दीक्षा-गुरु आत्मिक उपदेशक थे, जो धर्म्मसंबन्धी गुप्त रहस्यों को अपने शिष्यों से प्रकट करते थे। पहिले दोनों कार्य्यों का भार ब्राह्मणों ही पर था। क्योंकि हमें मालूम है कि पाण्डवों तथा कौरवों की आदि सांसारिक शिक्षा ब्राह्मण गुरु द्रोण तक, कृप के द्वारा ही प्राप्त हुई थी। द्रोणाचार्य्य से ही उन्होंने धनुर्वेद सीखा था। धन्वन्तरि महाराज से बहुत

* साहित्य-परिषद, कलकत्ता, के एक अधिवेशन में राय शरच्चन्द्रदास बहादुर सी० आई० ई० की वक्तृता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से शिष्यों ने आयुर्वेद में शिक्षा पाई थी। उस समय, जैसा कि मनु महाराज कहते हैं, शिष्य अपने गुरु की सेवा करके ऋषि-ऋण से उऋण होते थे। प्रत्येक से पृथक् पृथक् अथवा सब शिष्यों से इकट्ठा फीस लेने की प्रणाली न थी। परन्तु बुद्ध के समय में विश्व-विद्यालय-शिक्षा की पद्धति का प्रचार होने लगा। यह शिक्षा अधिक व्यय से प्राप्त होती थी। महात्मा बुद्ध की ही प्रतिभा के प्रताप से बौद्ध संन्यासी छायादार वृक्षों के निकुञ्जों में बैठ कर, धार्म्मिक उपदेश तथा आत्मिक-शिक्षा से सर्वसाधारण को लाभ पहुंचाते थे। ये बौद्ध संन्यासी अनेागरिक कहलाते थे। कुञ्ज आराम कहलाते थे। वहां अनेागरिक लेाग रहते थे। ये इन आरामों में मुमुक्षु बौद्ध साधु, सांसारिक तथा पारमार्थिक शिक्षा, पहुंचे हुए महात्माओं से प्राप्त करते थे। ये भारत-वर्ष के सबसे प्राचीन विद्यालय थे, जिनमें सर्व-साधारण शिक्षा पाते थे। परन्तु समय पाकर यही आराम विहार बन गये, जेा संन्यासियों के निवासस्थान हुए। बुद्ध के निर्वाण प्राप्त होने पर शिष्यों ने प्रतिष्ठा के कारण उनके शव को समाधि में रखा जिसको चैत्य कहते हैं। पहले चैत्य एक स्तूप के समान आराम में बनाये जाते थे। वहीं पर उपदेशक महात्मा रहते थे। परन्तु धीरे धीरे इन स्तूपों के स्थान में ईंट, चूना अथवा पत्थर की समाधियां बनने लगीं। बाद में इन समाधियों ने नाना प्रकार के मन्दिरों का रूप धारण किया। धीरे धीरे इन चैत्यों को ढालकर छोटे छोटे खिलौने के रूप में बनाना बड़ी ख़ूबी का काम समझा जाने लगा। महाराजाधिराज अशोक ने महात्मा बुद्ध के स्मरणार्थ ८४,००० चैत्यों के बनाने की आज्ञा दी थी। वे चैत्य ठोस थे। समय के हेर फेर से इनकी जगह वृहदाकार मन्दिर बनने लगे। इन मन्दिरों में पवित्र धर्म्म-ग्रन्थ रखे जाते थे। बुद्ध गया के ऊंचे नौमंज़िले मन्दिर में, जिसे लेाग महागंधेाला कहते थे, भूतपूर्व बुद्धों की मूर्तियां रखी थीं। नालंदा में धर्म्मगंज के विश्वविद्यालय के रत्नोदधि नामक नौमंज़िले मन्दिर में महायान और हीनयान बौद्ध सम्प्रदाय के धर्म्मग्रन्थ रक्खे थे। ओदन्तपुरी के विहार के मन्दिर में, जेा इन दोनों से ऊंचा था, बौद्ध तथा वैदिक ग्रन्थ रहते थे। यह अलेग्ज़ांड्रिया के पुस्तकालय की तरह मुहम्मद बिनसाम के सेनापति बख़्तियार ख़िलजी की आज्ञा से सन् १२०२ ई० में जला दिया गया।

तक्षशिला का विश्वविद्यालय।

पौराणिक समय के पहले तक्षशिला वैदिक विद्या का प्रधान स्थान था। यही चीन देश के ग्रन्थों के अनुसार गीटी (Goeti) नामक राज्य की राज-धानी था। इसमें कुछ सन्देह नहीं है, कि यूनान के पूर्वी राज्य की स्थापना के पहले सीता और पक्षु नाम की नदियों के बीच कोक्स देश (आज कल का कसगरिया) गीटी-राज्य का एक अंग था। क्योंकि चीनियों ने उस देश को उस समय तक अपने राज्य में सम्मिलित नहीं किया था। चीनी ग्रन्थों से मालूम होता है कि बहुत से बौद्ध साधु पूर्व समय में चीन गये थे। उनके नाम संस्कृत नामों से मिलते जुलते हैं। वे पार्थिया से आये थे। भरत तथा तङ्ग नामक बौद्ध साधु, जिन्होंने पहिले पहिल संवत् ६५ में, महाराजा हैम्मिटी के राज्य काल में चीन में बौद्ध मत का प्रचार किया था, गान्धार देश के निवासी थे। उसकी राजधानी तक्षशिला थी। कुछ ग्रन्थकार अनुमान करते हैं कि चीनियों के गीटो और यूनानियों के सीदी एक ही हैं। यही शाक्य जाति के पूर्वज थे। यूनान के पूर्वी राज्य के स्थापित होने पर गीटी-राज्य का सूर्य्य अस्त होने लगा। परन्तु तक्षशिला ईसा के जन्म के एक शताब्दी पहले तक वैसा ही गुलज़ार बना रहा। परन्तु इसके बाद उसके विषय में हमें कुछ नहीं मालूम। कहते हैं कि संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण-केसरी पाणिनि और गूढ़ राजनीतिज्ञ चाणक्य, जिनकी सहायता से महाराज चन्द्रगुप्त ने मगध-राज्य स्थापित किया था, तक्षशिला में ही शिक्षित हुए थे। उस समय यहां विश्वविद्यालय था जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या के १८ अंग, पृथक् पृथक् विद्यालयों में, पढ़ाये जाते थे। हर एक विषय का अलग अलग अध्यापक था। तक्षशिला में शिल्पकला, चित्रकारी, मूर्तिकारी और दस्तकारी सिखाई जाती थी। यह भी सुनने में आता है कि आत्रेय ऋषि, जिन्होंने चित्रकारी के विषय में एक पुस्तक लिखी है, तक्षशिला में आयुर्वेद के आचार्य्य थे। बुद्ध के ऐतिहासिक जीवनचरित्र की कथा में उनके वैद्य, जीवक, का वृत्तान्त है। उससे उस समय की शिक्षा-प्रणाली का पूरा पता लगता है।

तक्षशिला का विश्वविद्यालय सम्पूर्ण रूप से वैदिक गुरुकुल था। उसका प्रभाव पूर्व में मगध और प्राच्य तक, पश्चिम में ईरान तक और उत्तर में बैक्ट्रिया (Bactria) तक फैला हुआ था। इन सब स्थानों के विद्यार्थी यहां पर विद्योपार्जन करने आया करते थे। इसी से वैदिक विद्या का प्रकाश दूर दूर तक फैल गया था। अध्यापक सतीशचन्द्र ने बुद्ध की जीवनी में राजवैद्य जीवक का सविस्तर हाल लिखा है। इसी जीवक ने मगध-नरेश बिम्बसार तथा महात्मा बुद्ध को उनके दुःखदायी रोगों की चिकित्सा करके अच्छा किया था। वह दक्षिणी बिहार के राजगिरि नामक नगर का निवासी था। आयुर्वेद के अध्ययन करने तथा ६४ कलाओं में भी दक्ष होने की अभिलाषा से उसे तक्षशिला जाना पड़ा था। वहां यह आयुर्वेद के अध्यापक आत्रेय से मिला और अपनी इच्छा उनसे प्रकट की। ऋषि ने पूछा "तुम क्या गुरु-दक्षिणा दोगे"। जीवक ने उत्तर दिया कि "मैं मगध से इतनी दूर चलकर विद्योपार्जन करने आया हूं। चलते समय मैं ने अपने माता पिता तथा बन्धुवर्ग से अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। अतएव मैं आपको आर्थिक दक्षिणा नहीं दे सकता। विद्याध्ययन के बाद मैं खुद ही आपका हो जाऊंगा"। इस उत्तर से प्रसन्न होकर आत्रेय जी ने जीवक को पढ़ने की आज्ञा दे दी। यहीं पर जीवक ने सात वर्ष तक आयुर्वेद पढ़ा। अन्तिम परीक्षा के समय उससे तक्षशिला के आस पास, १५ कोस के व्यास में जितनी वनस्पति, घास, जड़ी, बूटी इत्यादि थी, सब के गुण पूछे गये। चार दिन की परीक्षा के बाद जीवक ने अध्यापक से कहा कि यहां के सब पौधों में कुछ न कुछ ओषधिजात गुण अवश्य है।

पन्द्रह वर्ष हुए कि यारकन्द में बावर नामक हस्तलिखित संस्कृत वैद्यक-ग्रन्थ पृथ्वी से खोद कर निकाले गये थे। उनको डाक्टर हार्नली ने पढ़ा और बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया है। वे काश्गर-ब्राह्मी लिपि में लिखे हुए हैं। उनके पठन से ज्ञात होता है कि किसी समय गान्धार देश में मगध की अपेक्षा संस्कृत का अधिक प्रचार था।

श्रीधन्यकटक।

सिद्ध नागार्जुन बड़े भारी वैद्य और रसायन-शास्त्र के ज्ञाता थे। उनको बौद्ध लोग दूसरा बुद्ध समझते थे। उनको समझ में विदर्भ, अथवा अमरावती, में कृष्णानदी के बायें तट पर श्रीधन्य-कटक नामका विश्वविद्यालय था। बौद्ध तथा वैदिक विद्या का वह उत्कृष्ट श्रेणी का विद्यालय था। तिबत के इतिहास-वेत्ता कहते हैं कि दापंग नामक बड़े भारी मठ में, जो लासा के पास बना हुआ है, ७७०० महन्त रहते हैं। उसमें एक विश्वविद्यालय भी है। वह श्रीधन्यकटक के नमूने का बनाया गया है। दापंग मठ के विश्व विद्यालय में ६ विद्यालय हैं। श्रीधन्य-कटक का वर्णन नालंदा और विक्रमशिला के विहारों में रखा हुआ है।

नालन्दा का विश्वविद्यालय।

प्राचीन भारत में दूसरा विश्वविद्यालय नालंदा का था। यह सब बौद्ध-विश्वविद्यालयों में अधिक प्रसिद्ध था। मगध के रहनेवाले इसे धर्म्मगञ्ज के नाम से पुकारते थे। इसका पुस्तकालय, जो भारत में सबसे बड़ा था, रत्नोदधि नामक नौमंज़िले मकान में था। यह ईसा के जन्म को पूर्ववाली प्रथम शताब्दी में उन्नतदशा में था। इसके पहले अध्यापकों में नागार्जुन बहुत प्रसिद्ध थे। तब से लेकर ईसा की आठवीं शताब्दी तक इस विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बड़ा नाम रहा। इसके बाद पालवंशी राजाओं की कृपा से ओदन्तपुरी के प्रसिद्ध विहार की प्रसिद्धि हुई। चीनी परिव्राजक हुएनसंग ईसा की सातवीं शताब्दी में नालन्दा में आया और बुद्ध-विषयक संस्कृत-साहित्य की शिक्षा प्राप्त की। उस ने इसका बहुत अच्छा वर्णन लिखा है।

ओदन्तपुरी।

मगध देश में पालवंश के स्थापित होने के पूर्व इस महाविहार की नींव पड़ी थी। उसीके पास एक बड़ा भारी नगर था जो पालवंश के राजाओं के समय में मगध देश की राजधानी था। धीरे धीरे यह मठ इतना प्रसिद्ध हो गया कि कुल प्रान्त के प्रान्त का नाम विहार हो गया। इसी मगध को, जिसका आजकल का प्रसिद्ध नाम बिहार है। ब्राह्मण लोग मैहा कहते थे। परन्तु धीरे धीरे लोग, इस नाम को भूल गये। राजा महिपाल (जिसको लोग महापाल भी कहते हैं) के समय में हीनयान सम्प्रदाय के एक सहस्र और महायान सम्प्रदाय के पांच सहस्र साधु ओदन्तपुरी में रहते थे। पाल-राजाओं ने ओदन्तपुरी में साधुओं के लिए एक विश्वविद्यालय स्थापित किया था। उसीके साथ उन्होंने वैदिक और बौद्ध ग्रन्थों का एक बड़ा भारी पुस्तकालय भी खोला था। उसको सन् १२०२ ई० में यवनों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया। मठ और महन्तों का भी नाश कर दिया। शाक्य का वृहत् मठ ओदन्तपुरी के नमूने पर बनाया गया था। वह तिबत के आचार्य्यों का मुख्य स्थान था और चीन देश के तातारवंशी राजाओं के अधिकार में था। शाक्य मठ ने साधुओं की शिक्षा में भी ओदन्तपुरी ही का अनुकरण किया था। शाक्य मठ के प्रधानाचार्य्य, जो मठ के संरक्षक भी थे, मञ्जुश्री के अवतार समझे जाते थे। मञ्जुश्री, बौद्धों के मतानुसार, विद्या की देवता हैं।

विक्रमशिला का विद्यालय।

गङ्गा के बायें तट पर, एक पहाड़ी की चोटी पर, विक्रमशिला नामक देव-विहार बना हुआ था। इसे महाराजा धर्म्मपाल ने आठवीं शताब्दी के मध्य में बनवाया था। मँझले मंदिर के चारों ओर, विहार से थोड़ी दूर पर, १०७ मन्दिर और भी बने हुए थे। वे सब एक दीवार से घिरे हुए थे। राजा ने बहुत से पूजा-पाठ करनेवाले नियत करके वहां पर एक विश्वविद्यालय भी खोला। उसमें ६ बड़े बड़े विद्यालय थे। उनमें शिक्षा देने के लिये १०८ पण्डित नियुक्त थे। विज्ञान-मन्दिर नामक मठ के साधु प्रज्ञा-पारमिता ग्रन्थ का अध्ययन करते थे। राजा भयपाल के शासन-काल में विश्वविद्यालय की निगरानी का भार ६ "द्वार"-पण्डितों पर था। महात्मा जटारि ने एक सत्र खोला था जहां विक्रमशिला के विद्यार्थियों को मुफ़्त में भोजन मिलता था। मठ के ४ फाटकों पर चार विद्यालय थे जहां विद्यार्थी बेरोकटोक पढ़ सकते थे। उनके अधिष्ठाता द्वार-पण्डित थे। मुख्य विद्यालय में जो दो पण्डित अध्यात्मविद्या के अध्यापक थे वे विद्यालय के प्रथम तथा द्वितीय स्तम्भ कहलाते थे। अन्य चार फाटकवाले विद्यालयों के विद्यार्थियों के निर्वाहार्थ जो ४ सत्र खोले गये थे उनकी आर्थिक सहायता देश के राजा, महाराजा तथा धनाढ्य करते थे। ईसा की दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वारेन्द्र के राजा सनातन के एक पुत्र ने दूसरा सत्र विहार में विद्यार्थियों के लिये बनवाया था। यही राजकुमार बौद्ध साधु होकर जटारि नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह विश्वविद्यालय ४०० वर्ष तक अच्छी तरह चलता रहा। इसका संरक्षक राजा हुआ करता था। इसका प्रबन्ध ६ सभासदों की एक समिति के द्वारा होता था। जिसका सभापति प्रधान पुरोहित हुआ करता था, समिति का निर्णय विहार के शासक को शिरोधार्य्य था। यही शासक महोदय विहार के विद्यार्थियों की धार्म्मिक शिक्षा और उनके अच्छे आचरण के लिए उत्तरदाता थे।

अनुवादक { उदयनारायण वाजपेयी।
वेङ्कटेशनारायण त्रिपाठी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा।

माँ-बाप का कर्तव्य।

[३]

अच्छा अब बच्चों की बुद्धि-विषयक शिक्षा का विचार कीजिए। क्या इस शिक्षा के सम्बन्ध में भी गड़बड़ नहीं है? क्या इसका भी प्रबन्ध वैसा ही ख़राब नहीं है? मान लीजिए कि बुद्धि-विषयक सब बातें यथा-नियम होती हैं। मान लीजिए कि बच्चों की बुद्धि का विकास भी नियमानुसार ही होता है। अतएव मानना पड़ेगा कि बिना इन नियमों का ज्ञान हुए बच्चों की शिक्षा अच्छी तरह नहीं हो सकती। जिस तरीक़े से बच्चों को ख़याल करना और ख़यालात को इकट्ठा करके उन्हें याद रखना सिखलाया जाता है उस तरीक़े का पूरा ज्ञान हुए बिना ये काम अच्छी तरह नहीं हो सकते। बिना इस ज्ञान के शिक्षा को सम्भव समझना निरा पागलपन है। पर, आज कल, दोही चार शिक्षक ऐसे होंगे जो मनोविज्ञान का कुछ भी ज्ञान रखते होंगे। और, माँ-बाप की तो बात ही न पूछिए। उनमें तो शायद ही किसीकी पहचान इस शास्त्र से होगी। जिस शास्त्र में मन के गुण-धर्म्म और उसकी शक्तियों का विचार किया गया है उसीकी जब यह दशा है, तब कैसे सम्भव है कि मानसिक नियमों का ख़याल रख कर बच्चों को शिक्षा दी जासके। अतएव जैसी शिक्षा बच्चों को मिलनी चाहिए, और जैसी मिल रही है, उसमें आकाश-पाताल का अन्तर है। शिक्षा की जो प्रणाली इस समय प्रचलित है वह बहुत ही दूषित और बहुत ही शोचनीय है; और होनी ही चाहिए; क्योंकि सब सामान ही वैसा है। यही नहीं कि जो शिक्षा दी जाती है वही दूषित है; नहीं, जिस तरीक़े से वह दी जाती है वह तरीक़ा भी दूषित है। जिन बातों की शिक्षा दी जानी चाहिए उनकी तो दी नहीं जाती; दी जाती है व्यर्थ, अनुपयोगी और अनुचित बातों की। फिर जो ऊटपटांग की बातें लड़कों के दिमाग़ में ज़बरदस्ती भरी जाती हैं वे ठीक क्रम से भी नहीं भरी जातीं। न शिक्षा ही ठीक है; न क्रम ही ठीक है; न तरीक़ा ही ठीक है। कुछ भी ठीक नहीं। न उचित शिक्षा ही का प्रबन्ध है; न उचित क्रम ही का प्रबन्ध है; और न उचित तरीक़े ही का प्रबन्ध है। माँ बाप समझते हैं कि किताबों से जो ज्ञान प्राप्त होता है—जो शिक्षा मिलती है—बस वही विद्या है। विद्या की सीमा वे इतना ही परिमित समझते हैं। इसी ख़याल से वे अपने छोटे छोटे बच्चों के हाथ में समय से बरसों पहले ही किताबें पकड़ा देते हैं। इससे उनकी बड़ी हानि होती है। शिक्षक लोग यह नहीं समझते कि किताबें शिक्षा प्राप्त करने का गौण साधन हैं। वे प्रधान साधन नहीं। उनसे जो शिक्षा मिलती है वह प्रत्यक्ष शिक्षा नहीं, अप्रत्यक्ष है। जब प्रत्यक्ष साधनों की सहायता से शिक्षा न मिल सकती हो तभी अप्रत्यक्ष साधनीभूत किताबों की सहायता लेनी चाहिए। सीधे सादे तरीक़े से प्रत्यक्ष शिक्षा मिलना असम्भव होने पर ही किताबों से शिक्षा प्राप्त करना मुनासिब कहा जा सकता है। जिन चीज़ों को आदमी ख़ुद न देख सके उन्हींको उसे दूसरों की आँखों से देखना चाहिए। इसी तरह जिस शिक्षा को लड़के प्रत्यक्ष रीति से ख़ुद ही न प्राप्त कर सकते हों उसीके लिए उन्हें किताबों की मदद पहुँचाना मुनासिब है। किताबों से कुछ सीखना मानों दूसरों की आँखों से देखना है। पर इस बात को शिक्षक बिलकुल ही भूल जाते हैं। इस पर वे ध्यान ही नहीं देते। इसीसे प्रत्यक्ष रीति से जानी जाने लायक़ बातों को भी वे अप्रत्यक्ष रीति से लड़कों को सिखलाते हैं। थोड़ी उम्र में जो ज्ञान लड़कों को आपही आप होता रहता है वह बड़े महत्व का है—वह अनमोल है। लड़कपन में लड़कों की बुद्धि बहुत शोधक होती है। बुद्धि की यह शोधकता—ज्ञान प्राप्त करने की यह लालसा—उनमें स्वाभाविक होती है। वह आपही आप पैदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है। पर शिक्षक महाशय इस स्वभावसिद्ध ज्ञान-लिप्सा पर धूल डालते हैं। लड़कपन में बच्चे बड़े कौतूहल और ध्यान से हर एक बात को देखते और उसके विषय में पूछ पाछ करते हैं। उनके कौतूहल का निवारण न करके उसे रोक देना या सुनी अनसुनी कर जाना बहुत बुरा है। उनकी ज्ञानलिप्सा का प्रतिबन्ध करना बहुत हानिकारी है। प्रतिबन्ध न करके उसे और उत्तेजना देनी चाहिए। लड़के जिस बात को पूछें उसे बताना चाहिए। वे जिस चीज़ के विषय में कोई बात जानना चाहें उसका यथासम्भव पूरा पूरा और सच्चा हाल उनसे कहना चाहिए। परन्तु शिक्षक ऐसा नहीं करते। वे करते क्या हैं कि जो बातें लड़कों की समझ के बाहर हैं और जिनको सीखना उन्हें नागवार मालूम होता है उन्हींको लड़कों की आँखों के सामने लाने और उनके दिमाग़ में भरने का वे यत्न करते हैं। वे ऐसी बातें लड़कों को सिखलाने की कोशिश करते हैं जिन्हें सीखने में न तो लड़कों का मनही लगता है और न वे उन्हें समझ ही सकते हैं। शिक्षकों का मन अन्ध-भक्ति या अन्ध-परम्परा में डूबा रहता है। उसकी प्रेरणा से वे प्रत्यक्ष विद्या का आदर नहीं करते, करते हैं विद्या की तसवीर का—विद्या के प्रतिबिम्ब का। उनके हृदय में नक़ली ही शिक्षा की भक्ति का वेग अधिक होता है। इससे उनको यह नहीं सूझता कि जब घर, द्वार, खेत, खलिहान, गली, कूचे आदि में देख पड़नेवाली चीज़ों का ज्ञान अच्छी तरह हो जाय तभी इनके आगे की चीज़ों का ज्ञान प्राप्त करने की साधन, किताबें, लड़कों के हाथ में देनी चाहिएं। वे नहीं जानते कि नये नये तरीक़ों से घर और पास पड़ोस से दूर की चीज़ों का ज्ञान प्राप्त करने का वही उपयुक्त समय है। उसके पहले लड़कों के हाथ में किताबें देने की कोई ज़रूरत नहीं। इस तरीक़े से शिक्षा देना सिर्फ़ इस कारण से ही मुनासिब नहीं कि अप्रत्यक्ष रीति से प्राप्त हुए ज्ञान की अपेक्षा प्रत्यक्ष रीति से प्राप्त हुआ ज्ञान अधिक मूल्यवान है, किन्तु इस कारण से भी कि जिन चीज़ों की शिक्षा लड़कों को दी जाने को है उनका तजरिबा पहले ही से उनको जितना अधिक होगा उतना ही अधिक, किताबें पढ़ते समय, उन चीज़ों का बयान उनकी समझ में आवेगा—उतना ही अधिक अच्छी तरह वे उन चीज़ों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। एक दोष यह भी है कि यह रूढिप्राप्त या परम्परागत शिक्षा—यह रस्मी तालीम—बहुत जल्द शुरू कर दी जाती है और जिन नियमों के अनुसार मन की शक्तियां बढ़ती जाती हैं उनकी कुछ भी परवा न करके यह जारी रक्खी जाती है। मानसिक शक्तियों में तो उन्नति होती जाती है; पर इस शिक्षा-प्रणाली में उन्नति नहीं होती। वह जैसी की तैसी जारी रहती है। मूर्त विषयों का ज्ञान पहले होना चाहिए। अमूर्त विषयों का पीछे। जो चीज़ें आँखों के सामने रहती हैं उनसे सम्बन्ध रखनेवाली शिक्षा हो चुकने पर, उन चीज़ों की शिक्षा होनी चाहिए जो आँखों के सामने नहीं रहतीं। दृश्य विषयों की शिक्षा के बाद अदृश्य विषयों की शिक्षा देना मुनासिब है। ज्ञानप्राप्ति में इसी क्रम से काम लेना चाहिए और सीधी सादी बातों की शिक्षा से शुरू करके कठिन बातों की शिक्षा तक पहुंचना चाहिए। परन्तु इस नियम की ज़रा भी परवा नहीं की जाती और अमूर्त और अत्यन्त कठिन विषयों की शिक्षा उदाहरण के लिए व्याकरण की, जो बहुत पीछे शुरू होनी चाहिए, बिलकुल बचपन ही में शुरू कर दी जाती है। इसी तरह, लड़कों को, बचपन ही में, भूगोल-विद्या जिस क्रम से सिखलाई जाती है वह क्रम भी ठीक नहीं। राजकीय व्यवस्था के अनुसार जुदा जुदा देशों और खण्डों के जो विभाग होते हैं उनके नाम और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली शुष्क बातें बचपन ही में पढ़ाई जाती हैं। इस तरह की मुर्दा बातें सीखने में लड़कों का मन नहीं लगता और उनका बहुत सा समय नष्ट जाता है। इन बातों को, कुछ दिन बाद, लड़कों के ज़रा बड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर, सिखलाना चाहिए। इनका सम्बन्ध समाज से है। अतएव सामाजिक शिक्षा के साथ इनकी शिक्षा होनी उचित है। इस तरह की भूगोल-विद्या तो इतना जल्द शुरू कर दी जाती है; पर प्राकृतिक भूगोल, अर्थात् वह विद्या जिसमें पृथ्वी के आकार और रूप आदि का वर्णन रहता है और जिसके सीखने में लड़कों का मन लगता है, और जो उनकी समझ में भी आ सकती है, प्रायः नहीं सिखलाई जाती। उसे सिखलाने की बहुत कम कोशिश होती है। प्रत्येक विषय के सिखलाने का क्रम ठीक नहीं। जितने विषय हैं उनकी शिक्षा में नियमों की प्रायः बिलकुल ही परवा नहीं की जाती। कौन विषय किस क़ायदे से सिखलाना चाहिए, इस बात पर बहुधा कोई ध्यान नहीं देता। परिभाषा, व्याख्या, नियम और सिद्धान्त पहले ही सिखला दिये जाते हैं। पर जिन चीज़ों के विषय में ये बातें सिखलाई जाती हैं उनसे लड़कों की, तब तक, प्रत्यक्ष पहचान ही नहीं होती। वे उन्हें देख ही नहीं पाते। चाहिए कि ये बातें, सृष्टिक्रम के अनुसार, उदाहरणों के द्वारा, सिखलाई जायँ। संसार में प्रत्येक चीज़ को देखने के बाद जिस क्रम से उसके प्रत्येक अङ्ग का ज्ञान होता है उसी क्रम से शिक्षा भी होनी चाहिए। जिस चीज़ के विषय की शिक्षा दी जाय उस चीज़ के सृष्टि-सम्बन्धी क्रम और नियम का ज़रूर ख़याल रखना चाहिए। और उन्हीं के अनुसार लड़कों को सब बातें बतलानी चाहिएं। जिन लड़कों ने कभी महासागर, या पहाड़, या डमरू-मध्य नहीं देखा उनके पढ़ने की किताबों के शुरू ही में इनकी परिभाषा आदि का देना क्रम और नियम के बिलकुल ही ख़िलाफ़ है। फिर, इन सब दोषों से बढ़ कर दोष, तोते की तरह, हर बात को रट कर याद कर लेने की आदत है। यह आदत बहुत ही बुरी है। इस आदत ने लड़कों की बुद्धि का सत्यानाश कर डाला है। देखिए इसका नतीजा क्या होता है। बच्चों की बुद्धि-सञ्चालना में रोक टोक करने—उसे यथेच्छ न विचरण करने देने—और उनसे ज़बरदस्ती पुस्तकें रटवाने, से उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ बचपन ही में कुण्ठित हो कर आगे बिलकुल ही मन्द हो जाती है। उनकी बुद्धि की तीव्रता जाती रहती है। जिन विषयों के समझने की योग्यता नहीं है उन्हें सिखलाने, और बिना किसी विषय को अच्छी तरह समझाये उसके सम्बन्ध के साधारण नियम या सिद्धान्त बतलाने, से बच्चों की बुद्धि बेतरह गड़बड़ में पड़ जाती है। इस तरह के नियम या सिद्धान्त ठीक ठीक उनकी समझ ही में नहीं आते। जो जिस बात को जानता ही नहीं वह उसके सिद्धान्त कैसे अच्छी तरह समझ सकेगा? शिक्षा का जो तरीक़ा आज कल जारी है वह लड़कों को ज़रा भी इस लायक़ नहीं होने देता कि वे ख़ुद भी कुछ सोच-विचार कर सकें और अपनी निज की खोज से अपने आप के शिक्षक हो सकें। यह तरीक़ा दूसरों के ख़यालात को लड़कों के मग़ज़ में भरना सिखला कर उन्हें बिलकुलही आलसी, निकम्मा और परमुखापेक्षी बना देता है। बहुत बचपन में विद्याभ्यास के वज़नी बोझ का दिमाग़ पर दबाव पड़ने से लड़कों की मानसिक शक्तियां चूर हो जाती हैं। इन सब कारणों से बहुत ही कम लड़के पूरे विद्वान् और योग्य निकलते हैं। परीक्षायें ख़तम होते ही किताबें उठाकर ताक़ पर रख दी जाती हैं; फिर, लड़के भूल कर भी कभी उनकी तरफ़ नहीं देखते। सीखी हुई बातों में—सम्पादन किये हुए ज्ञान में—व्यवस्था न होने, अर्थात् यथानियम और यथाक्रम शिक्षा न मिलने, के कारण शिक्षित विषयों का बहुत सा हिस्सा जल्द भूल जाता है। जो कुछ रह जाता है वह भी न रहने के बराबर है। उसमें भी कुछ जोर नहीं रहता। क्योंकि लड़कों को यही नहीं मालूम रहता कि मदरसे में सीखी हुई विद्या से व्यवहार में काम किस तरह लेना चाहिए। यह उन्हें सिखलाया ही नहीं जाता कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम काज में विद्या का कैसे उपयोग करना चाहिए। विद्या को किस तरह तरक़्क़ी देना चाहिए। किसी चीज़ का सही सही ज्ञान प्राप्त करने, किसी विषय की बारीक ख़ोज़ करने, और अपने आप, स्वाधीनतापूर्वक, किसी बात का विचार करने, की बहुत हो थोड़ी शक्ति लड़कों में होती है। इन सब बातों के सिवा प्राप्त किये गये ज्ञान का बहुत सा हिस्सा व्यवहार में बहुत ही कम काम देता है। उसकी क़ीमत बहुत ही कम होती है। सारांश यह कि लड़कों की शिक्षा में अत्यन्त उपयोगी और अत्यन्त महत्व से भरे हुए ज्ञान का एक बहुत बड़ा समूह फटकने तक नहीं पाता। वह बिलकुल ही निकाल बाहर किया जाता है।

यह हाल लड़कों की शिक्षा का है। और ऐसा होना ही चाहिए। माँ-बाप की जैसी स्थिति है उससे इस बात का अनुमान भी किया जा सकता है। माँ-बाप की दशा देखकर अनुमान से भी यह बात जानी जा सकती है कि जो हाल लड़कों की शिक्षा का इस समय है वही हो सकता है। जैसा कारण वैसा ही कार्य्य। लड़कों की शारीरिक, नैतिक और बुद्धि-विषयक शिक्षा इतनी दोष-पूर्ण है कि उसका ख़याल करके डर मालूम होता है। शिक्षा-प्रणाली के इतना दोष-पूर्ण होने का बहुत कुछ कारण ख़ुद माँ-बाप हैं; क्योंकि जिस ज्ञान की बदौलत, जिस विद्या की बदौलत, जिस शिक्षण की बदौलत लड़कों की शिक्षा ठीक तौर पर हो सकती है उससे वे बिलकुल ही कोरे हैं। उसका लेश भी उनमें नहीं। किसी बहुत ही पेचीदा सवाल को हल करने के लिए जिन नियमों या सिद्धान्तों के जानने की ज़रूरत है उनपर जिस आदमी ने शायद ही कभी ध्यान दिया है वह यदि सवाल को हल करने चले तो उससे क्या उम्मेद की जा सकती है? क्या यह सम्भव है कि वह उस सवाल को हल कर सके? चमड़े की चीज़ें तैयार करने, घर बनाने, या रेलगाड़ी और जहाज़ चलाने, की विद्या सीखने के लिए बहुत दिन तक उम्मेदवारी करनी पड़ती है। बहुत दिन तक काम सीखना पड़ता है। तो क्या मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियों को तरक़्क़ी देने—उनको विकसित करने—का काम इतना सीधा है कि बिना किसी तरह की तैयारी के हर आदमी उसका प्रबन्ध और देख भाल कर सकता है? यदि नहीं कर सकता—और यदि यह काम संसारिक कामों में एक को छोड़ कर और सबसे अधिक पेचीदा है, और उसकी ठीक व्यवस्था करना बहुत ही कठिन है—तो उसे अच्छी तरह करने के लिए पहले से कुछ भी तैयारी न करना क्या पागलपन नहीं? दिखाव के जो काम हैं, बन ठन कर दूसरों पर अपना असर डालने के जो काम हैं, उनके बलिदान से—उन पर ध्यान न देने से—विशेष हानि नहीं; पर शिक्षा-सम्बन्धी इस अत्यन्त ज़रूरी और अत्यन्त महत्व के काम में बेपरवाही करने से बहुत बड़ी हानि है। अतएव इस काम में उदासीनता दिखलाना मुनासिब नहीं। जब बाप झूठे सिद्धान्तों को, अविचार और दुराग्रह-वश, बिना जाँच पड़ताल के, सच समझ कर, उनके अनुसार काम करने के कारण, लड़कों में पितृस्नेह का नाश कर चुकता है, उनमें बेगानियत पैदा कर चुकता है, अपने कड़े बर्ताव से उनको अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करने को विवश कर चुकता है, उन्हें बरबाद कर चुकता है, और मामला इस नौबत का पहुंचने पर वह ख़ुद भी विपद में पड़ चुकता है तब उसकी आखें खुलती हैं, तब उसे ख़याल होता है कि ग्रीस के प्राचीन कवि और करुण-रस-प्रधान नाटकों के कर्ता ऐयसकिलस का हाल लड़कों को मालूम होता चाहे न होता, पर स्वभाव-शास्त्र का अभ्यास उनके लिए बहुत ज़रूरी था। तब वह समझता है कि यदि इस शास्त्र को वे पढ़ते तो बहुत अच्छा होता। एक विशेष प्रकार के बुख़ार से अपने बड़े लड़के के मरने पर जब माँ रोने बैठती है; जब कोई स्पष्टवक्ता डाक्टर यह कह कर उसके सन्देह को पुष्ट करता है कि बहुत अधिक विद्याभ्यास करने से यदि तुम्हारे लड़के का शरीर क्षीण न हो जाता तो वह बच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता; जब ऐसे दुःख के समय में, दुःख और अनुताप की पीड़ा से वह बेहद व्याकुल होती है, तब उसे इटली के प्रसिद्ध कवि दान्ते की मूल कविता, कवि की ही भाषा में, पढ़कर कितना सन्तोष हो सकता है? कितना समाधान हो सकता है?

इससे यह बात अच्छी तरह ध्यान में आ सकती है कि सांसारिक कारोबार से सम्बन्ध रखनेवाले इस तीसरे भाग, अर्थात् बाल-बच्चों के पालन-पोषण और उनकी शिक्षा, की उचित व्यवस्था करने के लिए जीवनशास्त्र के ज्ञान की बहुत बड़ी ज़रूरत है—आदमी को ज़िन्दगी से सम्बन्ध रखनेवाले नियमों का जानना बहुत आवश्यक है। बच्चों के यथोचित पालन-पोषण और शिक्षण के लिए शरीर-शास्त्र की मोटी मोटी बातें, और मानस-शास्त्र के मूल-तत्वों, का थोड़ा बहुत ज्ञान होना ही चाहिए। बिना उसके काम नहीं चल सकता। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत आदमी इस बात को सुनकर हँस पड़ेंगे। माँ-बाप से इन गहन शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने की आशा रखना उनकी दृष्टि में बेहूदापन मालूम होगा। यदि हम यह कहते कि जितने माँ-बाप हैं सबको इन शास्त्रों का पूरा पूरा ज्ञान होना चाहिए तो यह बात ज़रूर हंसने ही लायक़ थी, तो हमारा यह कहना ज़रूर उपहास्य था, तो हमारी यह तजवीज़ ज़रूर बेहूदा थी। पर बात ऐसी नहीं। हम यह नहीं कहते। यदि माँ-बाप को इन शास्त्रों की सिर्फ़ मुख्य मुख्य बातें और उनको अच्छी तरह समझा सकने के लिए थोड़े से उदाहरण मालूम हो जाँय तो हम इतना ही ज्ञान काफ़ी समझते हैं। इतने ही से बाल-बच्चों के पालने, पोसने और उनको शिक्षा देने का काम निकल सकता है। इससे अधिक हम और कुछ नहीं कहते। इन शास्त्रों की इतनी शिक्षा बहुत थोड़े दिनों में दी जा सकती है। इस तरह की शिक्षा का कार्य्य-कारण-भाव यदि तर्कना द्वारा बुद्धिस्थ न कर दिया जासके, यदि दलीलों से उसकी योग्यता न समझाई जा सके तो न सही; विधि-निषेध-भाव से ही यह शिक्षा दी जाय। इस बात को करना अच्छा है, इस बात को करना बुरा—इतना ही समझा देना काफ़ी होगा। कुछ भी हो, जो बातें हम नीचे लिखते हैं उनके विषय में मत-भेद नहीं हो सकता। उनके ख़िलाफ कोई कुछ नहीं कह सकता। वे बातें ये हैं—

(१) बच्चों के शरीर और मन की तरक्की कुछ विशेष प्रकार के नियमों के अनुसार होती है।

(२) यदि माँ-बाप इन नियमों की ज़रा भी परवा न करेंगे, यदि इनका बिलकुल ही पालन न करेंगे, तो बच्चे कभी जीते न रहेंगे।

(३) यदि माँ-बाप इन नियमों की थोड़ी ही परवा करेंगे, यदि इनके पालन में थोड़ा ही ध्यान देंगे, तो बच्चों के शरीर और मन में बहुत से दोष पैदा हुए बिना न रहेंगे।

(४) यदि माँ-बाप इन नियमों की पूरी पूरी परवा करेंगे, यदि इनको पूर्णरीति से पालेंगे, तभी बच्चों के शरीर और मन निर्दोष होंगे।

तो अब आपही इस बात का फैसला कीजिए कि जिन लोगों के किसी न किसी दिन बाल बच्चे होने की सम्भावना है क्या उनको उचित नहीं कि वे ज़रा उत्साहपूर्वक इन नियमों के सीखने की कोशिश करें?

प्रश्नोत्तररत्नमाला का कर्ता।

प्रश्नोत्तररत्नमाला नामक ३२ श्लोकों का पुस्तक देखने में बहुत छोटा है; परन्तु उसका उपदेश अमूल्य और सर्वमान्य होने के कारण प्राचीन काल से ही वह रत्नों को माला के समान कंठ में धारण करने योग्य माना जाता है। भिन्न-धर्मावलंबी भी उसके उपदेश को आदर के साथ स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु जैन तो उसे अपने एक आचार्य्य का रचा हुआ मानते हैं। उस परमोपयोगी पुस्तक के कर्ता के विषय में बहुत कुछ मतभेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कोई तो उसे यतीन्द्र शुकदेवजी* का रचा हुआ बतलाते हैं, कोई शंकराचार्य्य† को उसका कर्ता मानते हैं। श्वेतांबरी जैन उसे अपने आचर्य्य विमल‡ की कृति प्रकट करते हैं, और दिगंबरी जैनों के भंडार से मिली हुई प्रतियों के अंत में लिखा है, कि "विवेक से राज्य छोड़ने वाले राजा अमोघवर्ष§ ने विद्वानों की उत्तम अलंकार रूप यह रत्नमाला रची"।

इस प्रकार भिन्न भिन्न चार पुरुष उसके कर्ता माने जाते हैं, जिनमें से कोई एक उसका कर्ता होना चाहिये। उक्त पुस्तक में वेदवाक्य के सेवन, विष्णु और शिव की भक्ति तथा सेवा का उपदेश‖ होने, और जैनों के उपासनीय देवताओं का नाम न होने से स्पष्ट है, कि वह जैनी नहीं किन्तु किसी वेदधर्मानुयायी का रचा हुआ है। और संभव है, कि विमल को उसका कर्ता प्रकट करने वाला अंतिम श्लोक जो श्वेतांबरियों के भंडार की प्रति में लिखा मिलता है, किसी जैन विद्वान् ने पीछे से उसमें धर दिया हो। इसी प्रकार शुकदेवजी और शंकराचार्य्य को उसका कर्ता मानने के लिये कई एक प्रतियों के अंत में उनका नाम होने के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है। ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उसका तिबती भाषा में अनुवाद हुआ, जिसमें लिखा है कि 'वह पुस्तक बड़े राजा अमोघवर्ष ने रचा था'। और दिगंबर जैनों के भंडार से मिली हुई पुस्तक में भी वैसाही लिखा मिलता है। अतएव अमोघवर्ष नामक कोई राजा उसका कर्ता होना चाहिए।

अमोघवर्ष नाम नहीं, किन्तु उपनाम अर्थात् विरुद है, जो दक्षिण में राज्य करने वाले राष्ट्रकूट (राठौड़) वंश के चार राजाओं ने और मालवे के परमार राजा मुंज ने धारण किया था। इन अमोघवर्ष उपनाम वाले पांच राजाओं में से राठौड़ राजा अमोघवर्ष प्रथम और परमार राजा मुंज* ये दो ही विद्वान् और कवि थे। अन्य तीन राजाओं को सरस्वती देवी की प्रसादी मिलने का कोई प्रमाण नहीं मिलता, और न उनमें से एक भी ६ वर्ष से अधिक राज्य करने पाया था।

---

* इति श्रीशुकयतीन्द्रविरचिता प्रश्नोत्तरमाला समाप्ता ॥ बंगाल एशियाटिक् सोसाइटी का जरनल, जिल्द १६, भाग २ पृ० १२३५।

† इति श्रीमच्छङ्कराचार्य्यविरचिता प्रश्नोत्तरमाला समाप्ता ॥ राजा राजेन्द्रलाल मित्र संगृहीत हस्तलिखित संस्कृत पुस्तकों की सूची, जि० २, पृ० ३५५।

‡ रचिता सितपटगुरुणा विमला विमलेन रत्नमालेव। प्रश्नोत्तरमालेयं कंठगता किं न भूषयति ॥ इंडिअन् एण्टिक्वेरी, जि० १६, पृ० ३७८।

§ विवेकात्त्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका। रचिताऽमोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥ इंडिअन ऐण्टिक्वेरी, जि० १९, पृ० ३७८। बंबई गेज़ेटिअर, जि० १, भा० २, पृ० २०१।

‖ सेव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यं ॥ ८ ॥ ... ॥ कार्या प्रिया का शिवविष्णुभक्तिः ... ॥ १० ॥ ... ॥ किं कर्म कृत्वा न हि शोचनीयं कामारिकंसारिसमर्चनाख्यं ॥२०॥ ...॥ उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्। वाक्कायचित्तैः सुखदं यमघ्नं मुरारिपादांबुजमेव चिन्त्यम् ॥ २४ ॥ ... ॥ किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः ..... ॥ ३० ॥

* मालवे के परमार राजा हर्ष का पुत्र मुंज, जिसके उपनाम अमोघवर्ष और वाक्पतिराज (... श्रीभोज इत्यात्मजः। प्रीत्यायोग्य इति प्रतापवसतिः ख्यातेन मुञ्जाख्यया यः स्वे वाक्पतिराजभूमिपतिना राज्येऽभिषिक्तः स्वयम् ॥ ४३ ॥ धनपालरचित तिलक-मंजरी पृ० ५ ॥ ... ॥ श्रीमदमोघवर्षदेवापराभिधानश्रीमद्वाक्पतिराजदेवपृथ्वीवल्लभश्रीवल्लभनरेन्द्रदेवः कुशली..... ॥ वाक्पतिराज [मुंज] का संवत् १०३६ का दानपत्र, इण्डिअन ऐण्टिक्वेरी, जि० १४, पृ० १६०) मिलते हैं, प्रसिद्ध विद्वान् था और उसकी सभा में धनपाल (तिलकमंजरी का कर्ता), पद्मगुप्त (नवसाहसांकचरित का रचयिता), धनंजय (दशरूपक का कर्ता), धनिक (दशरूपावलोक का रचयिता) हलायुध और अमितगति आदि कई विद्वान् थे। उसका रचा हुआ कोई पुस्तक इस समय उपलब्ध नहीं है, तथापि उसके रचे हुए श्लोक सुभाषितावलि और अलंकार के पुस्तकों में मिलते हैं, और उसकी विद्वत्ता की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की है (... यः सर्वविद्याऽधिना—श्रीमुञ्जेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृतः ॥ ५३ ॥ तिलकमंजरी पृ० ६ ॥ ... ॥ सरस्वतीकल्पलतैककन्दं वन्दामहे वाक्पतिराजदेवम्। यस्य प्रसादद्रुमण्यनन्यकवीन्द्रचीर्णे पथि संचरामः ॥ १ । १८ ॥ ... ॥ अतीते विक्रमादित्ये गतेस्तं सातवाहने। कविमित्रे विशश्राम यस्मिन्देवी सरस्वती ॥ ११ । ९३ ॥ नवसाहसांकचरित। ... ॥ गते मुञ्जे यशःपुञ्जे निरालम्बा सरस्वती ॥ प्रबंधचिंतामणि, पृ० ६३)॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त दोनों विद्वान् राजाओं में से परमार मुंज (अमोघवर्ष) भी उसका कर्ता नहीं ठहर सकता, क्योंकि उक्त पुस्तक के अंत में स्पष्ट लिखा है कि "विवेक से राज्य छोड़नेवाले राजा अमोघवर्ष ने उसे रचा"। यह कथन मुंज के वास्ते यथार्थ नहीं हो सकता, क्योंकि वह विवेक (वृद्धावस्था) के कारण राज्य छोड़ वानप्रस्थ होने नहीं पाया; किन्तु कल्याण के चौलुक्य (सोलंकी) राजा तैलप पर चढ़ाई करने के समय क़ैद होकर मारा गया* था।

उपर्युक्त कथन राठौड़ राजा अमोघवर्ष प्रथम के वास्ते सार्थक हो सकता है। क्योंकि वह विद्वान् था, कविराज उसकी उपाधि थी, 'कविराजमार्ग' नामक अलंकार का ग्रन्थ भी उसने कनडी† भाषा में रचा था, जो उक्त विषय में प्रमाण रूप माना जाता है। ६० वर्ष के लगभग राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र कृष्णराज (अकालवर्ष) दूसरे को राज्य देकर वह वानप्रस्थ‡ हुआ था। और दिगंबर जैनों का, जिनके भंडार की पुस्तक में उसका नाम मिलता है, आश्रयदाता§ वही था। अतएव प्रश्नोत्तररत्नमाला का कर्ता राठौड़ राजा अमोघवर्ष प्रथम ही होना चाहिए।

गौरीशङ्कर हीराचन्द्र ओझा।

---

* मुंजराज, प्रबंध-प्रबंधचिंतामणि पृ० ५५—६३।

† अमोघवर्ष कर्नाटक देश का राजा था, जहां की मातृभाषा कनडी थी।

‡ अमोघवर्ष प्रथम का राज्याभिषेक शक संवत् ७३७ (विक्रम संवत् ८७२) में हुआ था। शक संवत् ७९७ (वि० सं० ९३२) के पूर्व उसने राजकार्य छोड़ दिया था और श० सं० ७९९ (वि० सं० ९३४) तक तो वह विद्यमान था, (जिसके पीछे किसी समय उसका देहान्त हुआ होगा) ऐसा प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्रों से निश्चय होता है। अतएव यदि राज्य छोड़ने के बाद उसने प्रश्नोत्तरमाला की रचना की हो तो उसका समय वि० सं० ९३२ के निकट स्थिर होता है।

§ जैसे ईसवी सन् की १२ वीं शताब्दी में गुजरात के चौलुक्य राजा कुमारपाल के दरबार में श्वेतांबरी जैन पंडितों का अच्छा सम्मान रहा और हेमचन्द्र सूरि (हेमाचार्य) को राजा के गुरु कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वैसे ही अमोघवर्ष के राज्य में दिगंबरी जैन विद्वानों का बहुत कुछ आदर हुआ और उनमें से जिन सेनाचार्य को उसने अपने गुरु का पद दिया। (इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघं बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यं। मलिनितपरकाव्यं तिष्ठता दाशशांकं भुवनमवतु देवस्सर्वदामोघवर्षः॥ ७१॥ श्रीवीरसेन-मुनिपादपयोजभृंगः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्। तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम्॥७१॥ इत्यमोघवर्षपरमेश्वरपरमगुरुश्रीजिनसेनाचार्यविरचिते मेघदूत-वेष्टितवेष्टिते पार्श्वाभ्युदये भगवत्कैवल्यवर्णनं नाम चतुर्थ-स्सर्गः॥ ४॥ जिनसेन-सूरि-रचित पार्श्वाभ्युदयकाव्य—बंबई की एशियाटिक् सोसाइटी का जर्नल, जि० १८, पृ० २२४॥ ...॥ यस्य प्रांशुनखांशुजालविलसद्धारान्तरा-विर्भवत्पादाम्भोजरजःपिशङ्गमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः। संस्मर्ता स्वम-मोघवर्षनृपतिः पूतोहमद्येत्यलं सश्रीमाञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम्॥—जिनसेनाचार्य के शिष्य गुणभद्ररचित उत्तरपुराण के अंत की प्रशस्ति, श्लोक १०)

विसूवियस का विषम स्फोट।

पृथ्वी के पेट में अपार गरमी भरी हुई है। उसका ऊपरी भाग तो ठंढा है; पर भीतरी गरम। कुँवे के भीतर उतरने पर बहुत गरमी मालूम होती है। यदि दूर तक पृथ्वी खोदी जाती है तो गरम पानी निकलने लगता है। गरम पानी के कितने ही चश्मे पहाड़ों से निकलते हैं। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वी के भीतर गरमी है—अथवा यों कहिए कि आग जल रही है। यह आग धीरे धीरे ठंढी होती जाती है; अर्थात् पृथ्वी के पेट की गरमी धीरे धीरे कम हो रही है। यह वैज्ञानिक नियम है कि जो चाज़ ठंढी होती जाती है वह सिकुड़ती है। गरमी से पदार्थों का आकार कुछ बड़ा हो जाता है और सरदी से कम।

पृथ्वी के भीतर सब कहीं बराबर गरमी नहीं है; कहीं अधिक है कहीं कम। जो भाग बहुत अधिक गरम है वह जब ठंढा होता है तब कम गरम भागों की अपेक्षा अधिक सिकुड़ जाता है। इसका फल यह होता है कि उसके और कम गरम भागों के बीच की जगह ख़ाली रह जाती है। वहां पर महाभयङ्कर कन्दरायें सी बन जाती हैं और उनके ऊपर पृथ्वी के कम गरम भाग मेहराबों की तरह खड़े रह जाते हैं। ये मेहराबें जब अपने ऊपर का वज़न नहीं सँभाल सकतीं तब गिर जाती हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके ऊपर वाले भूभाग उन्हींके साथ इस वेग से नीचे को कन्दराओं में जा पड़ते हैं कि उनके गिरने से बड़ी ही भीषण गरमी पैदा हो जाती है। इसे गरमी नहीं, प्रचण्ड ज्वाला कहना चाहिए। यदि ये घटनायें कहीं समुद्र के पास हुईं और समुद्र का जल दरारों से होकर वहां तक पहुंच गया तो उसकी भाफ हो जाती है। यह भाफ ऊपर निकलने की कोशिश करती है और यदि कहीं थोड़ा भी मार्ग निकलने का मिल गया तो हाहाकार करती हुई पृथ्वी के ऊपर आ जाती है। वही ज्वालामुखी पर्वत हो जाते हैं। जिस समय पृथ्वी के पेट की यह भीषण गरमी और भाफ ऊपर निकलने की कोशिश करती है उस समय उसका वेग भीतर ही भीतर दूर तक फैल जाता है और पृथ्वी कँपने लगती है। इसी को भूकम्प कहते हैं। पर ऊपर निकलने को जगह मिल जाने से कम्प बन्द हो जाता है और ईंट, पत्थर, राख, भाफ और गली हुई चीज़ों के समूह बड़े ही हृदय-विदारी शब्द करते हुए ज्वालामुखी के मुँह से निकलने लगते हैं।

ज्वालीमुखी पर्वतों के होने के कई एक वैज्ञानिक कारण बतलाये जाते हैं; परन्तु आज कल पूर्वोक्त कारण अधिक मान्य समझा जाता है। जनवरी ०५ की सरस्वती में लिखा गया था कि कुछ दिनों से इटली का विख्यात ज्वाला-गर्भ पर्वत, विस्यूवियस, फिर ज्वाला उगलने के लक्षण दिखला रहा है। गत एप्रेल में यह अनुमान प्रत्यक्ष हो गया। कई दिन तक विस्यूवियस ने बड़ी ही भयङ्कर अग्नि-वर्षा की। इस के कुछ ही दिन बाद अमेरिका के कैली फार्निया प्रदेश की राजधानी सानफ्रांसिसको के विध्वन्स होने की ख़बर आई। तीन मिनट के भूकम्प ने वहां की अनेक इमारतों को भूमिसात् कर दिया। इस कारण कितने ही घरों में आग लग गई और प्रायः तीन चौथाई शहर जल कर ख़ाक हो गया। यह बहुत ही सुन्दर और बहुत ही बड़ा शहर था। आग लगने के कारण अनन्त धन और जन-समूह का नाश हो गया। इसका वर्णन पाठकों ने अख़बारों में पड़ा ही होगा। इसकी सोलह सोलह बीस बीस मंज़िला इमारतें गिर गईं और आग लग कर राख हो गईं। वैज्ञानिकों की राय है कि सानफ्रांसिसको का भूमिकम्प और विस्यूवियस की अग्नि-वर्षा, दोनों घटनायें, एक ही कारण से हुईं। यह कारण वही है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

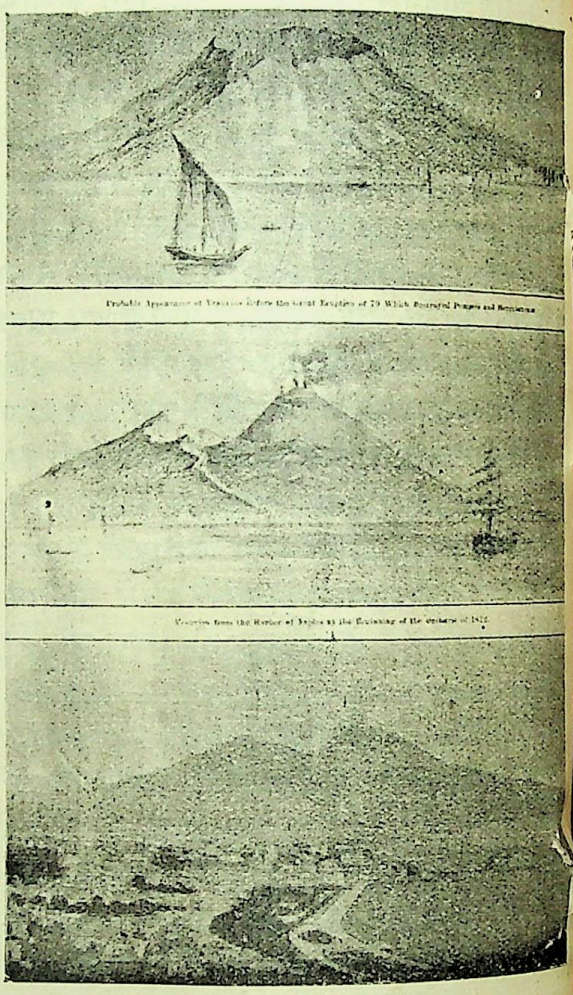

विस्यूवियस के स्फोट का दृश्य।

इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता कि कब से ज्वाला-वमन करने की शक्ति विस्यूवियस में आई। किसी किसी का ख़याल है कि वह अनादि काल से ज्वालामुखी है। उसके ज्वाला उगलने का पहला वर्णन ७९ ईसवी का है। यह इतना प्रलयंकर स्फोट था कि विस्यूवियस के अग्नि-गर्भ मुख से निकली हुई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राख से पाम्पिआई और कीचड़ से हरक्यूलेनियम ये दो शहर बिलकुल ही दब गये। इसके बाद २०३ और ४७२ ईसवी में फिर दो छोटे छोटे स्फोट हुए। पर इनसे विशेष हानि नहीं हुई। १५०० ईसवी तक सब छोटे बड़े मिला कर ९ स्फोट हुए। इसके बाद १५०० से १६३१ तक विस्यूवियस बिलकुल ही शान्त रहा। इस बीच में एटना नाम के ज्वालामुखी ने खूब आग उगली और नोवा नाम का एक और नया ज्वालामुखी ज़मीन के पेट से निकल आया। कोई डेढ़ सौ वर्ष बाद विस्यूवियस के उदर में फिर आग भभकी। १६ दिसम्बर १६३१ को फिर भयङ्कर स्फोट हुआ। ख़ाक और पत्थरों की वर्षा शुरू हुई। पास के पाँच सात नगरों का नाश हो गया। नेपल्स के भी बरबाद हो जाने के लक्षण दिखाई देने लगे। पर वह बच गया। हज़ारों आदमियों का नाश हुआ। वे जल कर, झुलस कर और दब कर मर गये। १७३७, १७६० और १७६७ में फिर अग्निस्फोट हुए। उनसे भी बहुत कुछ हानि हुई। १७७९ के स्फोट में २००० फीट की उँचाई तक जलते हुए पत्थर उड़े। १७९४ का स्फोट और भी अधिक भयङ्कर था। इसमें जलते हुए पदार्थों की तरल नदियां बह निकलीं और समुद्र में जा मिलीं। १९वीं शताब्दी में १० स्फोट हुए। इनमें कई स्फोट बड़े भयङ्कर थे। एप्रिल १८७२ का स्फोट सबसे अधिक भीषण था। इस दफा विस्यूवियस के चारों तरफ़ जलते हुए तरल पदार्थों की नदियां बड़े ही वेग से बहीं। ४००० फीट की उँचाई तक आग, पत्थर और गली हुई चीज़ें उड़ीं। राख तो ८००० फीट की उंचाई तक उड़ी। तरल अग्नि की नदियां बह कर नेपल्स के पास तक पहुँच गईं। पर शहर किसी तरह जलने से बच गया। इस स्फोट से कितने ही नगर विध्वन्स हो गये। १८९५ में फिर एक स्फोट हुआ। पर इससे बहुत ज़ियादह हानि नहीं हुई।

यद्यपि अनेक प्रकार के यन्त्र बनाये गये हैं जिनसे भूकम्प की सूचना पहिले ही से हो जाती है और ज्वालामुखी पर्वतों के भावी स्फोट का भी ज्ञान हो जाता है। तथापि अनेक बार देखा गया है कि इन यन्त्रों ने अपना काम ईमानदारी से नहीं किया। वे इस प्रकार की सूचना देने के लिए ज़रूर हैं; परन्तु बहुधा वे इन दुर्घटानाओं का समाचार पहले ही से देने में असमर्थ हो जाते हैं। विस्यूवियस में भी एक वेधशाला है। उसमें अनेक प्रकार के बहुमूल्य यंत्र हैं और एक विद्वान् वैज्ञानिक हमेशा वहां रहते हैं। वे विस्यूवियस के दैनिक रंगढंग का हिसाब रखते हैं। पर गत एप्रिल के आरम्भ में विस्यूवियस ने जो सहसा विकराल अग्नि-वर्षा शुरू कर दी उसकी उनको भी ख़बर नहीं थी। एकाएक भूमिकम्प होकर विस्यूवियस के मुँह से आग, पत्थर, राख और भाफ की वर्षा आरम्भ हो गई।

विस्यूवियस के और कई स्फोटों की तरह यह स्फोट भी बहुत भयानक था। इसमें पत्थरों की बेहद वर्षा हुई। उसके डर से हज़ारों आदमी भग भग कर विशेष मज़बूत घरों में जा घुसे; पर राख और पत्थरों की इतनी मोटी तह मकानों की छतों पर जमा हो गई कि उसके वज़न से छतें गिर पड़ीं और आदमी नीचे दब कर मर गये। जो बस्तियां पर्वत के नीचे, थोड़ी थोड़ी दूर पर थीं, उनका तो एकदमही संहार हो गया। वे बिलकुल ही ध्वस्त होगईं। बड़े बड़े क़सबे, समूचे के समूचे, नष्ट हो गये—कोई जल गये, कोई राख पत्थर के नीचे दब गये, कोई गिर कर भूमिसात् हो गये। मनुष्यों और पशुओं का कितना नाश हुआ, इसका हिसाब लगाना कठिन है। कोसों तक जहाँ खेत, वाटिकायें और अंगूर के बाग खड़े थे वहां हरियाली की जगह ख़ाक बिछ गई।

विस्यूवियस के एक शिखर पर जो वेधशाला है वह ऐसी जगह है और इतनी मज़बूत है कि १८७२ ईसवी के स्फोट से भी उसे कम हानि पहुँची थी और इससे भी कमही पहुँची है। वहां के अध्यक्ष, अध्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक मट्टी, स्फोट के समय, वेधशाला के किवाड़ और खिड़कियां बन्द किये हुए बराबर भीतर बैठे रहे। यद्यपि उनके कितने ही यन्त्र टूट फूट गये और उन्हें बहुत कष्ट हुआ तथापि वे वहां से नहीं हटे। उन्होंने स्फोट-सम्बन्धी बहुत सी बातें जानी हैं। शीघ्रही वे सर्व-साधारण के लाभ के लिए प्रकाशित की जायंगी। उनकी इस वीरता और निर्भयता पर प्रसन्न होकर इटली के बादशाह ने, सुनते हैं, कोई ख़िताब दिया है।

विलायती अख़बारों में इस स्फोट का वर्णन लिखे जाने तक धुँवें के बादल विस्यूवियस के आस पास दूर दूर तक छाये हुए थे। यहां तक कि पास की खाड़ी में अँधेरे के कारण जहाज़ों का आना जाना तक बन्द था। इससे विस्यूवियस का डील डौल अच्छी तरह देखने को नहीं मिला। परन्तु लोगों का अनुमान है कि जैसा ७९ ईसवी में हुआ था वैसा ही इस दफ़ा भी पर्वत का ज्वालागर्भ शिखर गिर कर चूर्ण होगया होगा। इसके सिवा और भी कितने ही रद बदल हुए होंगे। यह अजीब पहाड़ है। इसके शिखर इसी तरह टूटा फूटा करते हैं और फिर धीरे धीरे, भीतर के पदार्थ ऊपर आ आ कर, उन्हें ऊंचा किया करते हैं या नये नये शिखर पैदा कर देते हैं।

एक साहब ने विस्यूवियस के इस नये स्फोट का आंखों देखा हाल प्रकाशित किया है। वे कहते हैं कि स्फोट के एक दिन पहले इस बात की कुछ भी ख़बर लोगों को न थी कि कल विस्यूवियस आग उगलना शुरू करेगा। २४ घण्टे बाद विस्यूवियस के ज्वालागर्भ मुंह से धुएं के बादल निकलने लगे। धीरे धीरे उनका परिमाण बढ़ा। धुवां नेपल्स तक पहुँचा और सारे शहर में छा गया। कुछ देर में ज़ोर से हवा चलने लगी और उसके साथ ही "गड़ाम" की आवाज़ सुन पड़ी। बस फिर क्या था, प्रलय सी होने लगी। कलेजे को कँपानेवाली महाविकराल गड़गड़ाहट शुरू हुई। आकाश-पाताल एक करने वाली विकट गर्जना को सुनकर लोग एक दम घबरा उठे। किवाड़ और खिड़कियां टूटने लगीं और यह मालूम होने लगा कि तोपों की बाढ़ पर बाढ़ दागी जा रही है। दूसरे दिन सवेरे सुन पड़ा कि विस्यूवियस के मुँह से निकली हुई तरल अग्निधारा ने कई गाँव जला दिये। पर कुछ गाँववाले मरने से बच गये। वे धारा के पहुँचने के पहले ही भग गये थे। विस्यूवियस के मुँह तक जो रेल बनी थी वह बिलकुल ही बरबाद होगई। ख़ाक और धुवां चारों तरफ़ छा गया। नेपल्स में दिन की रात हो गई। विस्यूवियस धुवें के भीतर घुस गया। उसका कोई भाग न दिखलाई देने लगा। तीन दिन तक यही दशा रही। कोई विशेष बात नहीं हुई। चौथे दिन बिजली की शकल की आग की लपटें विस्यूवियस के ऊपर उठने और कई सौ फीट आसमान में घुसने लगीं। पत्थर, राख और अग्नि-धारा ने अनेक गाँव और नगर उजाड़ दिये। अनन्त जीवों का नाश कर डाला। जब विस्यूवियस कुछ शान्त हुआ तब देखा तो हरी घास, हरी पत्ती, हरे पेड़, हरे पौधे एक दमही नष्ट होगये थे। सब कहीं राख और धुवें का रंग व्याप्त था। आदमियों का रंग भी वैसा ही होगया था। तब तक कुछ कुछ अंधेरा छाया हुआ था। उसीमें लोग भूतों की शकल के बने हुए इधर उधर घूम रहे थे। नेपल्स के होटल ख़ाली होगये थे। लोग भग कर रोम चले गये थे। इटली के बादशाह और हमारे राजेश्वर एडवर्ड और उनकी महारानी विस्यूवियस के देखने को पधारीं। करोड़ों की धन-सम्पत्ति जो इस स्फोट से नष्ट हुई है और जो हज़ारों आदमी मरे और बे घर द्वार के होगये हैं उन पर दया करके दयाशील जन चन्दा कर रहे हैं। इटली के बादशाह ने बहुत कुछ मदद की है। हमारे राजेश्वर ने भी कुछ दिया है।

स्फोट के शुरू होने पर विलायती पत्रों में जो तार प्रकाशित हुए थे उनका संक्षिप्त आशय देकर हम इस लेख को समाप्त करते हैं। ८ एप्रिल को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपल्स से ख़बर आई कि विस्यूवियस का स्फोट फिर शुरू हुआ। आकाश में ४५० फीट तक आग की ज्वाला उड़ रही है। हर भयङ्कर नाद के बाद पृथ्वी के पेट में गड़गड़ाहट होती है। आस पास की ज़मीन हिल रही है। गाँव और नगर जल रहे हैं। आदमी मारे डर के पागल की तरह भग रहे हैं। भगोड़ों से नेपल्स भर गया है। कोई दो लाख आदमी बे घर-द्वार के होकर भग आये हैं। राख बरस रही है। नेपल्स राख के भीतर घुसा जा रहा है। ९ तारीख़ को ख़बर आई की रेत की वृष्टि के कारण बाहर निकलना कठिन होगया है। कीच की भी वर्षा हो रही है। इससे सड़कों पर गाड़ियां नहीं चल सकतीं। आज आग के रूप में गली हुई भूगर्भ की चीज़ों की नदियां बहने लगी हैं। उन्होंने अनेक सुन्दर सुन्दर बस्तिओं का समूल नाश कर दिया। विस्यूवियस के पास एक जगह ज़मीन फ़ट गई। उससे आग की तरल धारा, २०० गज़ चौड़ी, बोसकोट्रिकेसी नगर की तरफ़ बही। यह देख कर नगरवासियों ने जीने की आशा छोड़ दी। वे पागल से होगये और जिसको जो मार्ग मिला उसीसे वह भागा। सब लोग भगने न पाये थे कि वह अग्नि-सरिता आ पहुंची और शहर के भीतर से होकर निकल गई। अनन्त हानि हुई। १० एप्रिल को भस्म-वर्षा कुछ कम होगई; पर ११ को फिर वह प्रबल हो उठी। सरकारी हुक्म से नेपल्स में, मकानों के छतें कहीं कहीं, उतार दी गई हैं। जिसमें राख के वज़न से वे गिर न जाँय। कई इंच गहरी रेत और राख शहर में सब तरफ़ बिछ गई है।

विस्यूवियस के शान्त होने पर आदमी फिर अपने उजड़े हुए घरों को लौटने लगे। अब तक शायद कितने ही मकान फिर से बन गये हों। किसी किसी विषय में मनुष्य के धैर्य्य और उसकी सहनशीलता का विचार करके आश्चर्य्य होता है। जिस विस्यूवियस ने अनेक बार प्रलय करके असंख्य धन और जन का नाश किया उसीके पास जा जा कर फिर आदमी बस गये। इस दफा भी वही हो रहा है। उस साल मारटिनीक और सेंट विंसेंट में जो स्फोट हुआ था उससे कोई ५० हज़ार आदमी मरे थे। पर वहां भी अब पूर्ववत् बस्ती होगई है। सान फ़ानसिसको भी नये सिरे से बन रहा है और आबाद हो रहा है। इसी तरह कुछ दिनों में विस्यूवियस के पास के उजाड़ गाँव और नगर भी फिर पूर्ववत् आबाद हो जायंगे। क्या ही अच्छा हो यदि किसी अच्छे विषय में ना कामयाबी होने पर, आदमी इसी तरह के सहनशीलत्व, धीरज, उद्योग और परिश्रम से काम लें।

मङ्गल ग्रह तक तार।

पृथ्वी के पूत का नाम मङ्गल है। वह पृथ्वी ही से उत्पन्न है। कहते हैं पृथ्वी और मङ्गल का पिण्ड पहले एक ही था। किसी कारण से वह पृथ्वी से टूट कर अलग हो गया और एक नया ग्रह बन गया। छोटा होने के कारण जल्दी ही वह प्राणियों के रहने योग्य हो गया। पृथ्वी पर प्राणियों की बस्ती होने के पहले ही मङ्गल में हुई होगी और वहां के मनुष्य यहां वालों की अपेक्षा अधिक सभ्य, समझदार और शिक्षित होंगे। विज्ञानियों का अनुमान ऐसा ही है।

इटली के मारकोनी साहब को पाठक जानते होंगे। इन्होंने बेतार की तारबर्क़ी निकाली है। अब उसका प्रचार इस देश में भी हो रहा है। उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि हमारी बेतार की तारबर्क़ी दसही वर्ष बाद पृथ्वी से मङ्गल तक बराबर जारी हो जायगी! इसे हँसी न समझिए। मारकोनी साहब सचमुच ही इस बात का दावा करते हैं कि मङ्गल तक उनका तार १० वर्ष में ज़रूर लग जायगा। ईथर नामक पदार्थ जो हवा से भी पतला है सारे विश्व में व्याप्त है। उसीकी करामात से बेतार की तारबर्क़ी चलती है। जिस समय युवराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलायत से हिन्दुस्तान आते थे उस समय स्वेज़ की नहर तक उनके पास जहाज़ में विलायत से बेतार के तार आया करते थे। नदी, समुद्र, पहाड़, पहाड़ी, जंगल, बियाबान, नगर, क़सबे—इत्यादि पार करने में इन ख़बरों को ज़रा भी बाधा नहीं पहुंचती थी। २१०० मील की दूरी बात कहते ये ख़बरें तै कर डालती थीं। जब ऊंचे ऊंचे पहाड़ लाँघने में इनको कोई कठिनता नहीं मालूम होती तब साफ़ सुथरे आकाश-मार्ग को तै करने में क्या मालूम होने लगी? हां मामला दूर का है। इसलिए तार भेजने के लिए बिजली की ताक़त ख़ूब अधिक दरकार होगी। वह अमेरिका के नियागरा प्रपात से प्राप्त की जायगी। बस, फिर ५,००,००,००० मील दूर, आकाश में, २०० शब्द फ़ी मिनट के हिसाब से ख़बरें भेजी जाने में कुछ भी देरी न लगेगी!

अजी साहब आपकी ख़बरें मङ्गल-ग्रहवाले पढ़ेंगे किस तरह? और वहां कोई रहता भी है? इन बातों का पता लगाना औरों का काम है। मारकोनी साहब का नहीं। वे सिर्फ़ ख़बर भेजने का बन्दोबस्त करदेंगे। मङ्गल में आदमियों को खोज कर उन्हें पृथ्वी की ख़बरों का जवाब देने लायक़ बनाना औरों का काम है। यह काम भी लोग धड़ाके से कर रहे हैं।

मङ्गल के जो छायाचित्र लिये गये हैं उनसे प्रकट होता है कि इस ग्रह में कितनी ही नहरें हैं। वे ख़ूब लम्बी, चौड़ी और सीधी हैं। वे प्राकृतिक नहीं हैं; आपही आप नहीं हो गई। उनके आकार को देखने ही से मालूम होता है कि वे आदमियों की बनाई हुई हैं। और बहुत होशियार आदमियों ने उन्हें बनाया होगा। हम लोगों से तो वे ज़रूर ही अधिक होशियार होंगे। कला कौशल में वे हमसे बहुत बढ़े चढ़े होंगे। ऐसे सभ्य, शिक्षित और कलाकुशल आदमी हमारी ख़बरें न पढ़ सकेंगे? ज़रूर पढ़ सकेंगे। हम लोग अँगरेज़ी में ख़बरें भेजेंगे। हमसे सैकड़ों गुना अधिक विद्वान् और विज्ञान-निधान होने के कारण वे धीरे धीरे, यहीं बैठे बैठे, हमारी अँगरेज़ी सीख लेंगे। और फिर अपनी भाषा वे हमें सिखलायेंगे। अँगरेज़ी की मदद से वे यह काम बहुत आसानी से कर सकेंगे।

जितनी आकर्षणशक्ति पृथ्वी पर है उसकी एक ही तिहाई मङ्गल पर है। इससे यहां के विज्ञानियों ने हिसाब लगाया है कि मङ्गल के आदमी कुम्भकर्ण के भी काका होंगे। वे बहुत ही भीमकाय और विशालबली होंगे। मान लीजिए कि पृथ्वी के आदमियों की अपेक्षा मङ्गलवाले तिगुने बड़े हैं। अब यदि वे पृथ्वी पर किसी तरह आजायँ तो उनका वज़न यहां के आदमियों की अपेक्षा २७ गुना अधिक हो! एक साहब की राय है कि मङ्गली मनुष्यों की छाती बहुत चौड़ी होगी। श्वासोच्छ्वास में मनों हवा पीने और बाहर निकालने के लिए उनके मङ्गलियों के ऐसे बड़े बड़े गलफड़े होंगे। उनकी नाक लम्बी और हाथ नीचे पैरों तक लम्बे होंगे।

दो एक आदमियों ने अध्यात्मविद्या के बल से पात्रों को आध्यात्मिक नींद में करके उनसे कहा, "पृथ्वी पर नहीं; मङ्गल पर हो। बतलाओ तो सही तुम क्या देख रहे हो"? उन्होंने कहा—"हम विलक्षण प्रकार के भीमभूधराकार प्राणी देख रहे हैं। उनके पंख हैं। उनकी गरदन बहुत लम्बी है। वे मज़े में जहां चाहते हैं उड़ते फिरते हैं। वे भी आदमी ही हैं। फ़र्क़ इतना ही है कि डील डौल में वे बहुत बड़े हैं।"

बिजली की काफ़ी शक्ति मिलने पर मङ्गल ही तक नहीं, किन्तु उससे भी सौ गुना दूर ख़बरें भेजी जा सकेंगी! किसी दिन नेपच्यून नाम के अत्यन्त दूरवर्ती ग्रह में भी तार घर खुल जायगा। और उसका लगाव पृथ्वी से हो जायगा। क्यों, कोई भी ग्रह ऐसा न रहेगा जिस पर तारघर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हो। पर पहले मङ्गल ही तक ख़बर भेजने की कोशिश की जायगी। क्योंकि वहां वाले विज्ञान में बहुत कुशल जान पड़ते हैं और जल्द अँगरेज़ी सीख कर हमारी ख़बरों को पढ़ लेंगे और अपनी भाषा भी हमें जल्द सिखला देंगे। जिस दिन पहले पहल ख़बर मङ्गल में पहुंचेगी उस दिन शायद हम पर मङ्गलवाले बेतरह बिगड़ उठें और हमें ख़ूब झाड़ फटकार बतलावें। वे शायद कह उठें—"अरे मूर्खो, तुम्हें हम लोग हज़ारों वर्ष से पुकार रहे हैं पर तुम अब जगे हो"!

डाक्टर जी० थीबो पी० एच० डी०, सी० आई० ई०।

डाक्टर थीबो का नाम सरस्वती के अनेक पाठकों ने सुना होगा। प्रयाग के प्रसिद्ध म्योर-कालेज के आप प्रधान अध्यापक थे। २४ एप्रिल १९०६ को आपकी पेनशन हो गई। ५५ वर्ष की उम्र हो जाने से अपने मुलाज़िमों को गवर्नमेंट ज़बरदस्ती पेनशन दे देती है। इसी नियम का बर्ताव थीबो साहब के भी साथ हुआ। यदि गवर्नमेंट उन्हें पेनशन न देती तो वे अभी बहुत दिन तक म्योर-कालेज की अध्यक्षता कर सकते। क्योंकि वे अभी तक ख़ूब हृष्ट पुष्ट और नीरोग हैं और उनकी मानसिक शक्तियों में किसी प्रकार का प्रत्यवाय नहीं आया।

डाक्टर थीबो की जन्मभूमि जर्मनी है। पहले इस देश में कीलहार्न, बूलर, हार्नली, स्टीन आदि कितने ही जर्मन विद्वान् विद्या-विभाग में थे। ये सब विद्वान् संस्कृतज्ञ थे। इसलिए इन्होंने संस्कृत भाषा की ख़ूब सेवा की और नई नई पुस्तकों और नई नई बातों का पता लगाया। पर धीरे धीरे ये सब जहां के तहां हो गये। थीबो साहब अन्तिम जर्म्मन हैं। सो उन्हें भी पेनशन हो गई। अब अँगरेज़ों को भी संस्कृत का शौक़ हुआ है। इस लिए गवर्नमेंट जर्म्मन-विद्वानों को हिन्दुस्तान भेजने की कोई ज़रूरत नहीं समझती। अब तो, सुनते हैं, कालेजों में अँगरेज़ ही संस्कृत पढ़ावेंगे। हिन्दुस्तानियों से सिर्फ़ छोटा मोटा काम लिया जायगा। संस्कृत पढ़ाने का काम तो शायद एक न एक दिन अँगरेज़-पण्डितों के हाथ में चला ही जायगा। पर अध्यापकी के साथ साथ यदि पुरोहिती के काम का भी चार्ज यही लोग ले लें तो बड़ी दिल्लगी हो।

डाक्टर थीबो के पूर्वज प्रसिद्ध पुरुष थे। वे अच्छे अच्छे ओहदों पर थे। विद्वत्ता भी उनमें कम न थी। उनके प्रायः सब गुणों ने थीबो साहब का आश्रय लिया है। संस्कृत से इनको लड़कपन ही से शौक़ है। हीडलबर्ग और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में अध्ययन करके थीबो साहब लंडन गये। वहां तीन चार वर्ष वे मैक्समूलर साहब के साथ रहे। उनकी सङ्गति से थीबो साहब की संस्कृत-विद्या ख़ूब विशद हो गई। १८७५ ईसवी में अँगरेज़-महाराज ने उन्हें अँगरेज़ी और संस्कृत पढ़ाने के लिए अध्यापक नियत किया। वे बनारस-कालेज को भेजे गये। उनके पहले इस पद पर बड़े बड़े विद्वान् रह चुके थे। पर तनख़्वाह कम होने के कारण कोई इस जगह पर बहुत दिन तक नहीं ठहरा।

डाक्टर थीबो का पहले पहल नाम सुल्व-सूत्रों पर एक लेख लिखने के कारण हुआ। इस लेख में डाक्टर साहब ने दिखलाया कि वैदिक समय में ज्यामिति-शास्त्र का थोड़ा बहुत ज्ञान इस देश के पण्डितों को ज़रूर था। क्योंकि यज्ञ में वेदी और हवनकुण्ड आदि बनाने के जो नियम वैदिक-साहित्य में पाये जाते हैं वे इसी शास्त्र के अनुसार हैं। डाक्टर थीबो को गणित-शास्त्र से भी प्रेम है। इन्होंने ज्योतिष पर जो निबन्ध लिखे हैं उनमें इस बात का प्रमाण मिलता है। जब ये काशी से प्रयाग बदल आये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और म्योर-कालेज में अँगरेज़ी और दर्शन-शास्त्र के अध्यापक हुए तब इन्होंने अपने गणित-शास्त्र के ज्ञान को और भी उन्नत किया। अवकाश पाने पर ये गणित-शास्त्र का अभ्यास करते थे और यदि कोई बात समझ में न आती थी तो गणितशास्त्र के अध्यापक बाबू रामनाथ चैटर्जी से पूछ लेते थे। अपनी जाति या अपने पद का इन्हें ज़रा भी घमण्ड न था और न अब है। अपने से कम महत्व के पद-वाले हिन्दुस्तानियों से कोई बात पूछने में इन्हें कभी पसोपेश नहीं हुआ।

अँगरेज़ी और संस्कृत पढ़ाने के लिए बनारस-कालेज में जो अध्यापकी का पद था वह १८७७ ईसवी में तोड़ दिया गया। इस पद पर थीबो साहब सिर्फ़ दो वर्ष रहे। इसके बाद कुछ दिन तक इन्होंने स्कूलों के इन्पेक्टर का काम किया। परन्तु शीघ्र ही ये बनारस-कालेज के अध्यक्ष, अर्थात् प्रिंसिपल, कर दिये गये। १८८८ ईसवी तक आप इस पद पर रहे। संस्कृत की प्रथम, मध्यम और आचार्य्य परीक्षायें इन्हीं ने निकालीं। कुछ दिन के लिये ये पञ्जाब के रेजिस्टरार हो गये। पर फिर इसी प्रान्त को लौट आये और प्रयाग के म्योर-कालेज में अध्यापक हुए। तब से अन्त तक वे इसी कालेज में रहे। गफ साहब के पेनशन लेने पर ये म्योर-कालेज के अध्यक्ष हो गये।

थीबो साहब छोटे छोटे कालेजों के ख़िलाफ़ हैं और थोड़ी उम्र में बड़ी बड़ी परीक्षाओं का पास कर लेना भी आपको पसन्द नहीं। आपकी राय है कि अच्छे अच्छे कालेजों में उपयुक्त उम्र के लड़कों को रखने ही से लाभ है। कच्ची उम्र में विद्या कच्ची रह जाती है और छोटे छोटे कालेजों में पढ़ाई अच्छी नहीं होती।

अब आपको इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रजिस्टरार का पद मिला है। टेक्स्टबुक कमिटी के मेम्बर भी आप पूर्ववत् बने रहेंगे। इस कमिटी में शामिल रह कर थीबो साहब ने बहुत कुछ काम किया है। संस्कृत और हिन्दी की किताबों के चुनने में तो इन्होंने जो काम किया है वह बहुत ही प्रशंसनीय है। हिन्दी के प्रेमी शायद यह न जानते होंगे कि थीबो साहब शुद्ध और परिमार्जित हिन्दी के कितने पक्षपाती हैं और जो लोग अफ़सरों की हां में हां मिला कर हिन्दी को उर्दू बनाने की सिफ़ारिश करते हैं उनकी राय का इन्होंने कितना विरोध किया है। अभी बहुत दिन नहीं हुए, गवर्नमेंट ने हिन्दी-उर्दू की रीडरों के लिए इनाम की नोटिस दी थी। रीडरें जब बन कर तैयार हुईं और एक विशेष कमिटी में पेश की गईं तब थीबो साहब एक बहुत ही प्रसिद्ध और प्रभावशाली पुस्तक-प्रकाशक को रीडरों के ख़िलाफ़ राय देने से ज़रा भी नहीं हिचके। कारण यह था कि उनमें अनुचित बातें थीं। आपकी न्यायशीलता का यह उत्तम उदाहरण है।

डाक्टर थीबो ने पञ्चसिद्धान्तिका और शङ्कर तथा रामानुज भाष्ययुक्त वेदान्त-सूत्रों का निज-सम्पादित बहुत उत्तम संस्करण प्रकाशित किया है। वराहमिहिर पर आपने टिप्पणियां लिखी हैं और मीमांसा तथा ज्योतिष वेदाङ्ग पर कितने ही निबन्ध लिखे हैं। अपनी मातृभाषा जर्मन में भी आपने बहुत से लेख लिखे हैं। जर्मन होकर भी आप अच्छी अँगरेज़ी लिखते और बोलते हैं।

आपकी योग्यता से प्रसन्न होकर गवर्नमेंट ने आपको सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित किया है*।

---

* "स्टूडेंट वर्ल्ड" के आधार पर लिखित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा ।

[१]

वर्षा आई वर्षा आई—जलदों ने जल-नदी बहाई ।
देखो घोर घटा नभ छाई—बूँदों की है झड़ी लगाई ॥

[२]

घनता ख़ूब हो गई घन में—शीतलता पृथ्वी के तन में ।
हरे हो गये तरुवर वन में—बढ़ा मोद कृषकों के मन में ॥

[३]

मेंढ़क लगे गीत सब गाने—केकीकुल आनन्द मनाने ।
जम्बू, निम्बू पके रसाला—फूले नीप, कदम्ब, तमाला ॥

[४]

इन्द्रधनुष की छटा निराली—बीरबहूटी लाली लाली ।
शोभामयी हुई हरियाली—सबका चित्त लुभानेवाली ॥

[५]

करते नृत्य मयूर मनोहर—पर फैलाये सुन्दर सुन्दर ।
झिल्ली की जब धुन सुन पाते—विरही सकल विकल हो जाते ॥

[६]

झूले देखो पड़े हुए हैं—खंभ द्वार पर गड़े हुए हैं ।
झूल रहीं नारी मदमाती—रूपराशि वरणी नहिँ जाती ॥

[७]

हे दयालु हे त्रिभुवन-नायक—जगदीश्वर निज-जन-सुखदायक ।
इसी तरह तुम जल बरसावो—भारत का सन्ताप मिटावो ॥

बालचन्द्र शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा ।

छान्दोग्योपनिषद्-भाष्यम् । श्रीमत्काव्यतीर्थ पण्डित शिवशङ्कर शर्म्मा विरचित । बड़े साँचे की कोई एक हज़ार पृष्ठ की पुस्तक । छपाई और काग़ज़ सब उत्तम । वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, में मुद्रित। वहीं से प्राप्य । दाम ३ रुपये । इसमें, ऊपर, बड़े अक्षरों में मूल, फिर मामूली अक्षरों में पदच्छेद, फिर संस्कृत भाष्य, फिर हिन्दी अनुवाद है। इसके सिवा शब्दों का हिन्दी में अर्थ, शङ्का-समाधान और समीक्षा भी है। पुस्तक दिव्य है। इसे ख़ूब उपयोगी करने में कोई कसर नहीं की गई। भाष्यकार ने बड़ा काम किया है। इससे अच्छा शायद ही और कोई संस्करण इस पुस्तक का कहीं छपा हो। संस्कृत में कहीं कहीं भ्रम हो गया है। इतना ही दोष इसमें जान पड़ता है।

❋

पद्म-चन्द्र कोश । जुब्बल-नरेश महाराना श्रीपद्म-चन्द्र जी की आज्ञा से लाहौर के फोरमन क्रिश्चन कालेज के संस्कृताध्यापक पं० गणेशदत्त शास्त्री ने इसकी रचना की है और लाहौर-संस्कृत-पुस्तकालय के मालिक, लाला मेहरचन्द लक्ष्मणदास, ने निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, में छपवाकर इसे प्रकाशित किया है। प्रकाशक ही इसे ३) रुपये में बेचते हैं। पुस्तक की छपाई उत्तम है। जिल्द भी अच्छी है। कोई २० हज़ार संस्कृत शब्द इसमें हैं। इसमें संस्कृत शब्दों के लिङ्ग और प्रकृति, प्रत्यय आदि से निकले हुए अर्थों के सिवा धातुओं के गण, पद, वे सकर्म्मक हैं या अकर्म्मक, सेट हैं या अनिट, इत्यादि बातें भी हैं। शब्द-सिद्धि जानने के प्रायः सब उपकरण इसमें दिये हुए हैं। अर्थ प्रत्येक शब्द का हिन्दी में है। स्कूल और कालेज के विद्यार्थियों के सिवा और लोगों के लिए भी यह कोश उपयोगी है। दाम भी अधिक नहीं। बड़े बड़े नामी विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है।

मनोरञ्जक श्लोक ।

खलो मृगयते दोषान् गुणपूर्णेऽपि वस्तुनि ।
वने पुष्पफलाकीर्णे पुरीषमिव शूकरः ॥

गुणों से भरी हुई चीज़ में भी दोष ढूंढ़ते फिरना खल आदमी का स्वभाव ही होता है। फूलों और फलों से परिपूर्ण वन में भी शूकरराज गन्दगी ही ढूंढ़ा करते हैं।

गच्छ शूकर भद्रं ते वद सिंहो मया जितः ।
पण्डिता एव जानन्ति सिंहशूकरयोर्बलम् ॥

शूकरजी, तशरीफ़ ले जाइए और मज़े उड़ाइए। अपने भाईबन्दों से कह दीजिएगा कि मैंने शेर को पछाड़ दिया। आपके और शेर के पराक्रम को समझदार ही जानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

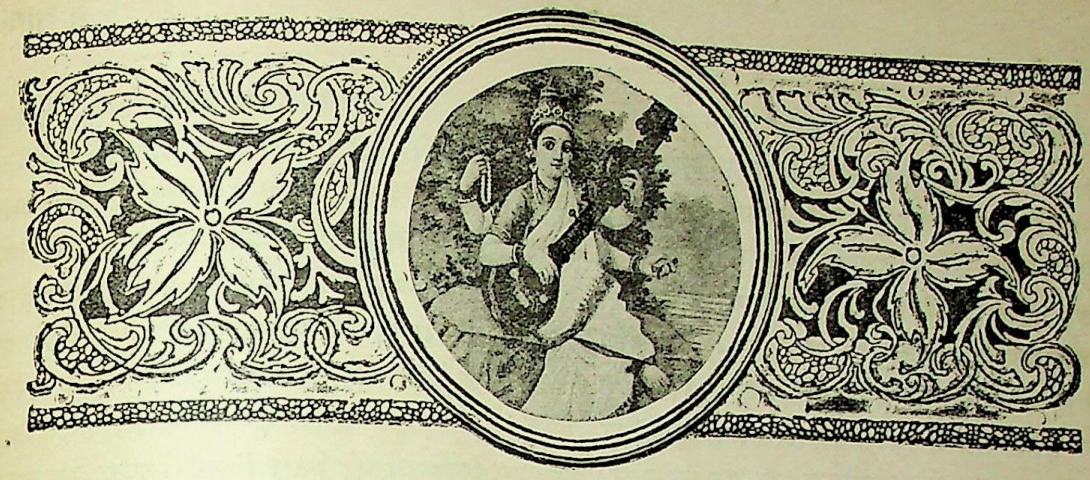

सरस्वती।

भाग ७] अगस्त, १९०६ [संख्या ८

विविध विषय।

इस देश की भाषाओं के सम्पादकों की तो कोई बात ही नहीं, यहां के अँगरेज़ी अख़बारों के सम्पादकों तक को गवर्नमेंट कोई चीज़ नहीं समझती। पर विलायत में सम्पादक प्रजा के नेता समझे जाते हैं। उनका बड़ा मान है। जरमनी और इँगलैंड में बहुत समय से वैमनस्य चला आता है। इँगलैंडवाले अब इस वैमनस्य को दूर करने की फ़िक्र में हैं। इससे उन्होंने जरमनी के मुख्य मुख्य चालीस सम्पादकों को लंडन आने के लिए निमंत्रण दिया है। उनका सम्मान राजाओं का ऐसा होगा। जो जर्मन-सम्पादक इँगलैंडवालों के ख़िलाफ़ सख़्त से सख़्त लिखते आये हैं वे इँगलैंड के बड़े बड़े राजकीय पुरुषों के मेहमान होंगे। बड़े बड़े लार्डों के साथ भोजन करेंगे। लार्डस और कामन्स् लोगों के दोनों पारलियामेंटों के अधिवेशन देखेंगे। लार्ड चैन्सलर उनकी अभ्यर्थना करेंगे। लंडन में और उसके आस पास जितने दर्शनीय स्थल हैं सब उन्हें दिखलाये जायँगे। लार्ड मेअर चाय पिला कर उनका सम्मान करेंगे। लंडन के सम्पादक उनको एक दिन खाना खिलायँगे। शेक्सपियर की जन्मभूमि की सैर कराने के लिए वे स्ट्राटफ़र्ड भेजे जायँगे। थियेटरों में उन्हें अच्छे अच्छे खेल दिखाये जायँगे। सारांश यह कि उन्हें प्रसन्न करने के लिए कोई बात उठा न रक्खी जायगी। २१ से २७ जून तक जर्मन-सम्पादकों की नाज़बर्दारी होने को थी। अतएव अब वह हो चुकी होगी।

* *
*

चपड़ा लाख से बनता है। मिर्ज़ापुर में चपड़े का बड़ा व्यवसाय होता है। वहां इसके कई कारख़ाने हैं। यह मोहर लगाने के काम तो आता ही है। इसके सिवा इससे रंग और वारनिश भी बनते हैं। योरप और अमेरिका में इसका बड़ा ख़र्च है। वहां इस देश से बहुत चपड़ा जाता है। इसकी माँग प्रायः हमेशा ही बनी रहती है। इससे इसका भाव प्रतिदिन चढ़ता ही जाता है। यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिन के लिए गिर भी जाता है तो पुराने माल का स्टाक कम होते ही फिर चढ़ जाता है। इस भाव की चढ़ती से तंग आकर अमेरिकावालों ने, नक़ली नील की तरह, जेपोन नामक एक चीज़ से चपड़े का काम लेना शुरू कर दिया है। इस चीज़ का पता लगे कोई १५ वर्ष हुए। पर अब वह धातु की चीज़ों के ऊपर वारनिश के तौर पर लगाया जाने लगा है और अच्छी तरह वार्निश का काम देता है। तांबा, पीतल, जरमन सिलवर, निकल और एल्यूमीनियम के ऊपर जेपोन का जिला खूब खिलता है। लकड़ी और काग़ज़ की बनी हुई चीज़ों पर भी यह लगाया जाता है। इस्पिरट से जितने वारनिश बनाये जाते हैं उन सबसे जेपोन कई बातों में अच्छा है। पर अभी तक इसका सर्वव्यापी प्रचार नहीं हुआ। आशा है, धीरे धीरे इसका प्रचार ज़रूर बढ़ेगा। इस देशवाले चपड़े के व्यवसाइयों को होशियार हो जाना चाहिए।

* * *

ज्योतिषी श्रीनिवास महादेव शर्म्मा (रतलाम) ने, कुछ समय हुआ, हिन्दी-समाचार-पत्रों में ज्योतिष-विषयक कुछ प्रश्न प्रकाशित कराये थे। वे प्रश्न ज्योतिष के फलित-भाग से सम्बन्ध रखते थे। पर आज तक आपको उनके उत्तर नहीं मिले। इसलिए आप उनको दुहराते हैं। आपके प्रश्न ये हैं—(१) ग्रह क्या पदार्थ हैं? (२) उनके नाम, स्वभाव, गुण, भिन्न भिन्न राशियों के स्वामित्व आदि किस आधार पर कल्पना किये गये हैं? (३) नवग्रहों का बारह राशियों के द्वारा पृथ्वी के प्राणियों पर क्यों असर होता है? (४) मनुष्यों से ग्रहों का क्या सम्बन्ध है और किस तरह ग्रह मनुष्यों को भिन्न भिन्न प्रकार का शुभाशुभ फल देते हैं? (५) अशुभ फल-सूचक ग्रह शान्ति द्वारा कैसे शुभ फल देने लगते हैं? जो कोई इन प्रश्नों का सर्वोत्तम उत्तर "सप्रमाण, सयुक्तिक और वर्तमान प्रथा के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाणों सहित ७५ पृष्ठों में लिख कर आगामि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा-पर्य्यन्त" ज्योतिषी जी के पास भेजेगा उसे ज्योतिषी जी २० रुपये नक़द और एक पदक (मालूम नहीं किस चीज़ का) भेंट करेंगे। उत्तरों का विचार एक सभा में होगा। हिन्दी, मराठी या गुजराती में उत्तर होने चाहिएं। परन्तु यदि हिन्दी में हों तो और भी अच्छा है।

* * *

जापानियों की किस किस विषय में तारीफ़ की जाय। उनकी सभी बातें आश्चर्य्यजनक हैं। उन्होंने रूस-जापान युद्ध में सत्तर अस्सी हज़ार रूसियों को क़ैद किया। उनको लिखना पढ़ना न आता था। इसलिए उनको पढ़ाने की ठहरी। वे पढ़ाये गये। किताबें उनके लिए स्विटज़रलैंड से मंगाई गईं। रूस के अत्याचार से तंग आकर कुछ रूसी स्विटज़रलैंड में जा बसे हैं। उन्होंको लिखी हुई पुस्तकें जापानियों ने मंगाईं। उनमें सीधी सादी भाषा में यह लिखा गया है कि रूस में किस प्रकार का अन्याय हो रहा है; प्रजा को कौन कौन सी तकलीफ़ें मिल रही हैं; वहां राज्य कैसा होना चाहिए; अधिकारियों को किस तरह काम करना चाहिए, इत्यादि। यही सब बातें रूसी क़ैदियों को जापानियों ने पढ़ाईं। यह सब पढ़ कर रूसी अब अपने देश गये हैं। रूस-नरेश और रूसी अधिकारियों को इनका इन बातों में पण्डित होना भला क्यों पसन्द आवेगा? पर जापानियों की युक्ति और दूरदर्शिता की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

* * *

बाइसिकल अर्थात् पैरगाड़ी के टायर (पहिए) पहले सिर्फ़ ठोस होते थे। इस कारण उसकी रफ़्तार भी कम थी और ऊंची नीची ज़मीन पर सवार को दचके भी बेढ़ब लगते थे। इन ऐबों को एक साहब ने एक दिन अकस्मात् दूर कर दिया। इँगलैंड में एक जगह ब्यलफ़ास्ट है। वहां डनलप नामक एक साहब रहते थे। आप जानवरों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाकूरी का पेशा करते थे। मालूम नहीं आप अभी ज़िन्दा हैं या मर गये। आपके लड़के को बाइसिकल पर सवार होने का बड़ा शौक था। लड़के की उमर १४-१५ वर्ष की थी। एक दिन डनलप ने अपने बेटे को ऊंची नीची ज़मीन पर बेतरह दचके खाते देखा। इससे उसके मन में यह बात आई कि क्या ये ऐब किसी तरह दूर नहीं हो सकते? इतने में उसकी नज़र सामने एक बाग़ में रक्खे हुए नल पर पड़ी। नल बहुत मोटी किरमिच का था। बस आपने उसीके भीतर रबर की एक पतली नली भर कर बेटे की पैरगाड़ी के पहियों पर चढ़ा दिया और नली में हवा भर दी। फिर क्या था, सवाल हल हो गया। बेटे ने तेज़ी के साथ गाड़ी दौड़ाई और दचके भी बन्द हो गये। कुछ दिनों बाद डनलप साहब ने ऐसे पहिए बनाने का कारख़ाना खोल कर करोड़ों रुपया कमाया। आज कल आप जिस बाइसिकल को देखिए उसीमें अकसर डनलप ही के बनाये टायर आपको देख पड़ेंगे।

* *
*

अमेरिका के डेटन (ओहिओ) नामक नगर में राइट नाम के दो भाई रहते हैं। बहुत दिनों से वे पवन-नौका या आकाश-यान बनाने के उद्योग में थे। अब सुनते हैं, कई वर्ष के परिश्रम से उन्हें सफलता हुई है। उन्होंने एक ऐसी हवाईनाव बना ली है जो हवा से वज़नी है; पर हवा में ख़ूब तेज़ी से उड़ सकती है। इस तरह की यह पहली नौका है। इसका वज़न कोई दस मन है। इस वज़न में तीन मन वज़नी एक मोटर-यञ्जिन भी शामिल है। यह नाव आपसे आप ज़मीन से ऊपर को उठती है; और चलानेवाले की इच्छा के अनुसार, जिस तरफ़ वह ले जाना चाहे, जाती है। ज़मीन पर उतरने में भी किसी तरह का गड़ बड़ नहीं होता। इच्छित स्थान पर वह मज़े में उतर आती है। तीन चार वर्ष से इस हवाई नाव की परीक्षा हो रही थी। सब मिलाकर १६० बार यह आकाश में उड़ी। पर थोड़ी ही देर तक। अधिक देर तक यह आकश में नहीं ठहर सकी। पर सुधार होते होते अब यह यहां तक सुधर गई है कि घंटों आकाश में दौड़ा करती है। कभी कभी यह घंटे में ४० मील के हिसाब से दौड़ती है। इसके बनानेवालों ने अभी इसका "पेटेंट" नहीं लिया। वे इसे लड़ाई के मैदान में काम में लाने के लिए फ़्रांस की गवर्नमेंट के हाथ बेचने की बात चीत कर रहे हैं।

* *
*

हिन्दी में, इस समय, कई नये नये पत्र निकलने लगे हैं। लखनऊ से "आनन्द" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकला है। इसमें हँसी-दिल्लगी की बातें ख़ूब रहती हैं। लाहौर से "स्वदेश-बन्धु" नाम का एक पत्र निकला है। यह भी साप्ताहिक है। इसका आकार कुछ बड़ा है। इसमें राजनैतिक लेख अधिक रहते हैं। बंबई से तो कई नये नये पत्र निकले हैं। उनमें से "शर्म्मनसमाचार" तो शायद बन्द हो गया; पर "ज्ञानसागरसमाचार" बराबर निकलता जाता है। अब जून १९०६ से एक और साप्ताहिक पत्र वहां से निकलने लगा है। इसका नाम है "स्वदेशी"। इसमें इसके नामानुकूल कभी कभी अच्छी भावपूर्ण कवितायें प्रकाशित होती हैं। "कान्यकुब्ज-बन्धु" नाम का एक मासिकपत्र कलकत्ते से निकलने लगा है। दो अङ्क निकल चुके हैं। यह कान्यकुब्जों का तीसरा मासिक पत्र है। दूसरा अङ्क देखने से पत्र होनहार मालूम होता है। आयुर्वेद-महोपाध्याय पं० शङ्कर दाजी शास्त्री पदे अपने "सद्वैद्यकौस्तुभ" नामक मासिक पत्र को, बहुत दिन बन्द रख कर, फिर नासिक से निकालने लगे हैं। इसमें वैद्य-विद्या-विषयक अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। ओषधियों का सचित्र वर्णन जो इसमें रहता है विशेष उपयोगी होता है। "महाजन-सञ्जीवनी" नामक एक मासिकपत्रिका रावलपिण्डी से प्रकाशित होने लगी है। इसका आकार "सरस्वती" का ऐसा है। काग़ज़ और छपाई अच्छी है। लेख भी अच्छे अच्छे निकलने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिएं। इनके सिवा और भी कई एक मासिक और साप्ताहिक पत्र निकले हैं। हिन्दी के लिए यह पत्राधिक्य श्रेयस्कर है। पर पत्र निकाल कर उसे जारी रखने और अच्छे अच्छे लेखों से उपयोगी बनाने की चेष्टा करना चाहिए।

* * *

इलाहाबाद ज़िले में एक जगह बराँव है। खेद की बात है वहां के तअल्लुकेदार राय महावीर-प्रसाद नारायणसिंह का शरीरपात हो गया। आप हिन्दी के बड़े प्रेमी थे। सुनते हैं आप विद्या-व्यसनी और सद्धर्म्मपरायण भी थे।

* * *

जुलाई के आरम्भ में नागपुर की हिन्दी-ग्रन्थ-माला का दूसरा नंबर निकल गया। इसके आरम्भ में "स्वदेशी-आन्दोलन और बायकाट" पर एक लेख बहुत ही अच्छा है। लेख के आरम्भ में "देशो-पालम्भ" नामक एक कविता है। उसके पिछले दो पद्य हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

हे देश! सप्रण विदेशज वस्तु छोड़ो;
सम्बन्ध सर्व उनसे तुम शीघ्र तोड़ो।
मोड़ो तुरन्त उनसे मुँह आज से ही;
कल्याण जान अपना इस बात में ही॥

हे दीन-देश! तव निंद्य परावलम्ब
नाशै समूल सुखकारिणि शक्ति अम्ब।
त्यागो तुरन्त विष-तुल्य विदेश-वस्तु;
सानन्द पाठक! कहो तुम भी 'तथास्तु'॥

पं० माधवराव सप्रे, बी० ए०, इस मासिक पुस्तक को खूब उपयोगी बनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

* * *

कुछ दिन हुए पेरिस में खिलौनों की एक प्रदर्शिनी हुई थी। उसमें अनेक अजीब अजीब खिलौने दिखलाये गये थे। एक घड़ी भी उनमें थी। उसमें अलार्म अर्थात् जगाने की घण्टी लगी थी। इसके सिवा उसमें एक ऐसा भी पेंच था जिससे उसके पास रक्खा हुआ गैस का लैम्प भी उसके बजते ही जल उठता था। वह लैम्प एक अँगेठी में लगा हुआ था। अँगेठी के ऊपर देगची में आलू वग़ैरह उबलने का सामान था। लैम्प जलते ही वे उबलने लगते थे। जब तक घड़ी का मालिक उठे और प्रातःकालीन क्रिया से निश्चिन्त हो तब तक उसके लिए पका पकाया कलेवा भी तैयार हो जाय। ख़ूब!

रीवां-नरेश सर वेङ्कटरमणसिंहजूदेव, जी० सी० एस० आई०।

सरस्वती के किसी पिछले अंक में वैकुण्ठवासी महाराज, सर रघुराजसिंह जू देव, जी० सी० एस० आई०, का जीवनचरित प्रकाशित हो चुका है। आज मैं उक्त महाराज के सुयोग्य आत्मज, वर्त्तमान महाराज का संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त पाठकों को समर्पण करता हूं।

यह महाराज इस राज्य के संस्थापक महाराज व्याघ्रदेव से, जो इस देश में १३ वीं शताब्दी में आये थे, ३२ वीं पीढ़ी में हैं। इनका जन्म श्रावण कृष्ण तृतीया, सं० १९३३, में हुआ था। विधाता की वामगति से श्रीमान् को पितृसुख बहुत काल तक न रहा; अर्थात् श्रीमान् पूरे तीन वर्ष के भी नहीं होने पाये थे कि इन के सुयोग्य पिता का वैकुण्ठ-वास हो गया। वैकुण्ठ-वासी महाराज ने अपना अंतिम समय निकट आया देख, दो तीन वर्ष पूर्व ही से, राजप्रबन्ध का भार वृटिश गवर्नमेंट के हस्तगत कर दिया था। इस कारण श्रीमान् का लालन, पालन और अध्ययन उक्त गवर्नमेंट के निरीक्षण में हुआ। कृपालुपुर के सरदार लाल गोविन्दसिंह, कर्नल लाल कल्याणसिंह, लाल अमरसिंह, लाल जगोत्तमसिंह, लाल रघोत्तमसिंह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा लाल पहलवान सिंह, पिता की जीवितावस्था में आप के शरीररक्षक रहे। किन्तु उनका वैकुण्ठवास होने पर केवल कर्नल लाल कल्याणसिंहजी अपने शेष जीवन तक श्रीमान् के शरीर-रक्षक रहे। उसके बाद लाल अर्जुनसिंह जी नियत किये गये जो अद्यावधि विद्यमान हैं। और, इस समय, महाराज कुमार की शरीर-रक्षा का भार भी इन्हीं के ऊपर है।

शिक्षा।

ब्रिटिश गवर्नमेंट की इच्छा थी कि श्रीमान् को इन्दौर या अजमेर के बड़े विद्यालयों में शिक्षा दी जाय। किन्तु राज्य के एक मात्र आधार का बाल्यावस्था में इतनी दूर जाना सरदारों तथा राजभक्त प्रजा को असह्य जान पड़ा। इस कारण मातृगण के अनुरोध से श्रीमान् की शिक्षा का प्रबन्ध राजधानी रीवां तथा सतना ही में किया गया। श्रीमान् के साथ पढ़ने के लिए राज्य के बड़े बड़े रईसों के बालक लाल जनार्दनसिंह, लाल माधवसिंह, लाल रामप्रताप सिंह, लाल बृकोदरसिंह, लाल सूर्य्यबलीसिंह, पं० काशीनाथ, पं० नारायणप्रसाद पांडे तथा लाल अवधेश्वरप्रसादसिंह की एक पाठशाला नियत की गई; और शिक्षा का मुख्य भार डाक्टर गोल्डस्मिथ को दिया गया। उनके अधीन दो देशी विद्वान्, अर्थात् रायसाहब पंडित पूर्णमल जी चतुर्वेदी एम० ए० और पंडित देवीदासजी अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा के लिए रक्खे गये। पंडित रामरत्न पौराणिक संस्कृत भाषा की शिक्षा के लिये नियत किये गये। डाक्टर गोल्डस्मिथ साहब के स्वदेश जाने के बाद उनके काम का भार सुयोग्य डाक्टर गिमलेट साहब को दिया गया। कुछ ही काल में श्रीमान् ने अंग्रेज़ी, संस्कृत और हिन्दी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। राज्य का काम काज देखने के निमित्त आपको कुछ कुछ फ़ारसी और उर्दू की भी शिक्षा दी गई।

एम० ए०, बी० ए० इत्यादि परिक्षाओं में पास कराने के अभिप्राय से श्रीमान् की शिक्षा दी नहीं गई, और न ऐसी शिक्षा राजाओं के लिये आवश्यक ही है। आप को भाषाओं के ज्ञान के बाद केवल वे विषय अभ्यास कराये और बतलाये गये जो भविष्यत् में राज-कार्य्य के लिए उपयोगी हों। अर्थात् अंग्रेज़ी और संस्कृत भाषा के लिखने पढ़ने और बोलने चालने का अभ्यास कराने के बाद श्रीमान् को इन भाषाओं के साहित्य, विज्ञान, भूगोल और इतिहास पढ़ाये गये; अंग्रेज़ी और देशी क़ानून का अभ्यास कराया गया। श्रीमहाराज रघुराजसिंह जी के पुत्र और महाराज विश्वनाथसिंह जी के पौत्र के लिए संस्कृत और हिन्दी के साहित्य की तो बात ही क्या है, अंग्रेज़ी में भी आपने शेक्सपियर इत्यादि प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के ग्रन्थ पढे और समझे हैं। विज्ञान-विषयक शिक्षा स्वयं डाक्टर गिमलेट ने, बहुमूल्य यंत्र विदेश से मँगा कर, और श्रीमान् के सम्मुख उन्हें रखकर, दी। अंक, बीज तथा रेखासम्बन्धी गणित भी श्रीमान् ने सीखा है। अंकगणित का श्रीमान् को असाधारण ज्ञान है। लड़कपन ही से श्रीमान् को इतिहास विशेष प्रिय है। आपकी स्मरण-शक्ति प्रशंसनीय है; कठिन से कठिन विदेशीय नाम आदि बात की बात में आपको याद हो जाते हैं; और फिर वे उन्हें कभी नहीं भूलते। यह कहना अत्युक्ति नहीं, कि ये गुण आप में दैवदत्त हैं। बड़े बड़े आदमियों की जीवनी पढ़ने में श्रीमान् की विशेष अभिरुचि है। इस कारण दरबार के पुस्तकालय में संसार के प्रायः सभी बड़े लोगों के जीवन-चरित मँगाये गये हैं।

श्रीमान् को लड़कपन ही से युद्ध विद्या (Military Science) के सीखने की अभिरुचि थी। अपने आमोद-प्रमोद के समय में भी आप सैनिकों के साथ वार्त्तालाप करते तथा क़वायद सीखते थे। फल यह हुआ कि थोड़ी ही उमर में आप हथियार चलाना, घोड़े पर चढ़ना, सैन्य-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचालन और व्यूहरचना आदि में निपुण हो गये।

जब श्रीमान् कुछ सयाने हुए तब इन्हें राज-कार्य्य का व्यावहारिक काम भी दिखलाया और सिखलाया जाने लगा। राज्य के प्रत्येक भाग में दौरा करा कर स्थान स्थान के प्रत्येक प्रकार के काम इनके हृदय में खचित कराये गये। दौरे के साथ ही इस देश में सैर कराने का भी प्रबंध किया गया, और क्रमशः श्रीमान् को भारत के बड़े बड़े नगर, कलकत्ता से पेशावर और बम्बई तक, दिखाये गये। इस तरह श्रीमान् भारत के प्रत्येक भाग की रीति भांति और चाल ढाल से परिचित हो गये।

राज्याधिकार और विवाह।

इसी बीच श्रीमान् की उमर प्रायः १५ वर्ष की हो गई और चारों तरफ़ से विवाह की चर्चा सुनाई देने लगी। आज जयपुर के लोग आते हैं; कल उदयपुर के लोग जन्म-कुण्डली माँगते हैं; परसों काठियावाड़ के राजाओं के सरदार सेवा बजाते हैं; अन्य दिन रतलाम आदि मध्यभारत के राजदूत उपस्थित होते हैं। पर कहा है—"भावी बड़ी प्रबल होती है।" अतः अन्त में डुमरांव की सेवा स्वीकार हुई और मातृगण तथा सरदार-समूह की सम्मति से वहीं विवाह निश्चय हुआ। इसके लिए सामयिक गवर्नर जेनरल की भी सम्मति पाई गई। अतः १८९१ ई० में वहां के महाराज श्री १०८ राधाप्रसादसिंहजी की एक मात्र पुत्री से विवाह हो गया। कुछ काल बाद द्विरागमन भी हो आया।

१८९५ ई० का वर्ष आया। इसी के साथ श्रीमान् के बालिग़ होने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ। आप राज-काज का भार सँभालने के योग्य समझे जाने लगे। इससे १५ नवम्बर को कर्नल बार साहब, जो मध्यभारत के सामयिक एजेण्ट गवर्नर जेनरल थे, रीवां पधारे। आप ने एक सर्वसाधारण दरबार किया और उसमें ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से महाराज रघुराजसिंहजी का सौंपा हुआ धन, राज्य, कोष, भंडार और शासनाधिकार श्रीमान् को सौंपा। उसी दरबार में श्रीमान् ने राव बहादुर लाल जनार्दन सिंह को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी और ख़ान बहादुर मौलवी रहमान अलीखां को, सतना में, ब्रिटिश एजेण्ट के यहां, राज्य-प्रतिनिधि नियत किया। राज्य के सुपरिनटेंडेंट के दफ़्तर के सब अमले दरबार-आफ़िस में बदल आये। शेष सब राज्यप्रबंध यथापूर्व बना रहा।

सिंहासनारूढ़ होने के दिन ही श्रीमान् की प्रथम आज्ञा, राज्यलिपि उर्दू के स्थान में देवनागरी कर देने की हुई। राज्य के बड़े बड़े कर्म्मचारियों को संदेह था कि सहसा ऐसी आज्ञा से राजकाज में गड़बड़ होगी। पर यह कुछ न हुआ। श्रीमान् हिन्दी के बड़े प्रेमी हैं; इस के गुण और सरलता से परिचित हैं। इससे आप विचार में दृढ़ रहे; और जहां तक मुझे ज्ञात है, मैं कह सकता हूं कि इस उत्तमोत्तम आज्ञा से राज्य-कार्य्य में ज़रा भी विघ्न नहीं पड़ा। यहां तक कि नागरी सीखने में राज्य के बूढ़े से भी बूढ़े मुसलमान कर्म्मचारी को भी विशेष कष्ट नहीं हुआ। छः महीने के बाद जब हिन्दी-लिपि लिखने में परीक्षा ली गई, तब प्रायः सब कर्म्मचारी अच्छे पाये गये। और जो दो चार आलसी अयोग्य निकले, उन्हें हिन्दीलिपि सीख लेने के लिये ६ महीने की और मोहलत मिली।

राज्याधिकार पाने के कुछ ही दिन बाद श्रीमान् का दूसरा विवाह राठौर-वंशावतंस वर्त्तमान रतलाम-नरेश की सौभाग्यवती भगिनी से हुआ; जिनसे श्रीमान् की प्रथम संतान हुई। पर अभाग्य वश वह कुमार दीर्घजीवी न हुए। दो वर्ष बाद, अर्थात् १२ मार्च सन् १९०३, को श्रीयुत उज्जैनिन महारानी साहिबा के गर्भ से वर्त्तमान महाराज कुमार का जन्म हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् बड़े विद्यानुरागी हैं; अपनी प्रजा में विद्योन्नति करना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। आपने राज्याधिकार प्राप्त होते ही सतना में, निज नाम-युक्त एक स्कूल खोलने की आज्ञा दी। यह स्कूल खूब उन्नति कर रहा है। इसमें बिना फ़ीस लिये इलाहाबाद विश्व-विद्यालय की यंट्रेन्स और स्कूल फाइनल की परीक्षा तक पढ़ाई होती हैं। दीन विद्यार्थियों के लिए छात्र-वृत्ति का भी प्रबन्ध है। रीवां-राजधानी में पहले ही से एक हाई स्कूल है। उसमें भी यंट्रेंस तक पढ़ाई होती है। और संस्कृत पढ़ाने का भी प्रबंध है। संस्कृत के दो एक विद्यार्थी प्रतिवर्ष पंजाब यूनिवर्सिटी की विशारद और शास्त्री परीक्षा में उतीर्ण होते हैं। इस समय, यह स्कूल पहले की अपेक्षा अधिक उन्नति पर है। इस स्कूल के साथ राजकुमारों के लिए एक बोर्डिंग हौस भी है। उसके एक भाग में राज्य के दीन विद्यार्थियों के भी ठहरने का प्रबन्ध है। इस स्कूल में कुछ ऊपर २००) रुपये प्रति मास की छात्रवृत्ति नियत है, जिससे राजकुमारों और राज्य के दीन विद्यार्थियों को विद्याध्ययन में बहुत सहायता मिलती है। इन दो अंगरेज़ी पाठशालाओं के सिवा राज्य के प्रत्येक बड़े गाँव में हिन्दी और उर्दू की पाठशालायें हैं। उनका प्रबन्ध एक इन्स्पेक्टर के अधीन है।

प्रजा के रोगनिवारणार्थ राज्य के छोटे छोटे गाँवों में भी अस्पताल हैं। वहां रोगियों को बिना मूल्य औषधियां दी जाती हैं। राज्य के मुख्य मुख्य नगर रीवां, सतना और उमरिया में बड़े बड़े अस्पताल हैं। इनमें वर्त्तमान समयानुसार सब तरह के अस्त्र उपस्थित रहते हैं। ऐसे सुसज्जित और उत्तमोत्तम औषधियों से पूर्ण अस्पताल, अंगरेज़ी राज्य के प्रयाग ऐसे बड़े बड़े नगरों में भी कदाचित् ही निकलेंगे। सब से बड़ा गुण इस राज्य के औषधालयों में यह है कि दीन और धनी को सब तरह की उपयोगी औषधियां वे रोक टोक दी जाती हैं। इस कारण यहां और शहरों की तरह औषधियों की दुकानों की आवश्यकता नहीं है। राज्यारूढ़ होते ही श्रीमान् ने निज नाम को चिरस्थायी रखने के निमित्त सतना में एक "वेंकट आई हास्पिटल" (Vankat Eya Hospital) अर्थात् नेत्रौषधालय खोल दिया; जिसमें नेत्र-रोगों के ज्ञाता बहुत अच्छे अच्छे डाक्टर रक्खे गये हैं। यहां प्रतिवर्ष हज़ारों आदमियों के नेत्र-रोग निर्मूल होते हैं। इसमें एक यह भी विशेषता है कि दीन रोगियों को बिना मूल्य ऐनक भी दिये जाते हैं।

राज्याधिकार पाने के एक ही वर्ष बाद (१८९६-९७ में) अति घोर दुर्भिक्ष पड़ा। यह दुर्भिक्ष रीवां ही में नहीं, किन्तु भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक भाग में पड़ा। श्रीमान् का नम्र चित्त और दयालु स्वभाव निज प्रजा को अन्न से दुखी न देख सका। अतएव उनकी सहायता के लिए आपने अनेक प्रयत्न किये। जो लोग काम करने के योग्य समझे गये उनके लिए राज्य के प्रत्येक भाग में उनके सहायतार्थ काम खोले गये। जो रईस और ख़ानदानी थे और लज्जावश ऐसे काम नहीं कर सकते थे उनको गुप्त सहायता दी गई। जो ऐसी सहायता से भी अपनी मर्य्यादा-भंग समझते थे, उनको बिना ब्याज राजकोष से ऋण दिया गया। इस तरह उस वर्ष इस काम में प्रायः पच्चीस लाख रुपया ख़र्च हुआ। दो ही वर्ष बाद (१८९९-१९०० में) राज्य के दक्षिणी भाग में फिर कुछ दुर्भिक्ष पड़ा। इसका भी उचित प्रबंध किया गया।

पहले दुर्भिक्ष के सुप्रबंध से प्रसन्न होकर महारानी विक्टोरिया ने भारतवर्ष का सब से उच्च मानसूचक पदक, जी० सी० एस० आई० (Grand Knight Commander of the Most Exalted Order of the Star of India) देकर महाराज को सम्मानित किया। लार्ड एलगिन ने, कलकत्ते में, एक दरबार करके इस पदक से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमान् को भूषित किया। लाट साहब ने अपनी वक्तृता में श्रीमान् के सुप्रबंध से ब्रिटिश गवर्नमेंट की प्रसन्नता प्रकट की।

इस बीच में राज्य के पहले दीवान लाल रामानुजप्रसादसिंह सी० आई० ई० वृद्ध हो चले। इससे उनकी सेवा के उपलक्ष्य में श्रीमान् ने उन को उनके वेतन का आधा पेंशन कर दिया। और उनकी जागीर इत्यादि पूर्ववत् बहाल रक्खी। उनके स्थान में नायब दीवान राव लाल प्रतापसिंह बहादुर, दीवान और लाल वेणीबहादुरसिंह नायब-दीवान नियत किये गये। ये दोनों महाशय पूर्वोक्त प्राइवेट सेक्रेटरी, राव लाल जनार्दनसिंह बहादुर, के यथाक्रम जेठे और मझले भाई हैं।

इस राज्य के प्रत्येक भाग में खनिज पदार्थ बहुतायत से पाये जाते हैं। विशेष कर यहां कोयला, लोहा, ताँबा और अबरक़ ख़ूब निकलता है। अल्यूमिनियम का भी कहीं कहीं पता लगा है। कई वर्षों से उमरिया के आस पास कोयले की खानि खोदी जाती है। पहले यह काम गवर्नमेंट अपने ख़र्च से करती थी। और उसका हानि लाभ वह ख़ुद उठाती थी। राज्य को गवर्नमेंट से सिर्फ़ कुछ कर (Royalty) मिलता था। १९०२ से श्रीमान् ने वहां के कुल कारख़ाने को १३ लाख रुपया देकर गवर्नमेंट से मोल ले लिया। और वहां का कुल काम एक अंगरेज़ मैनेजर की, जो कि पहले ही समय से वहां नियत था, निगरानी में कर दिया। अब इस खानि से दरबार को बहुत आमदनी होती है। आशा है कि दरबार इसी तरह और और खनिज द्रव्यों के निकालने का भी यत्न करेगा।

रीवां का आधे से अधिक भाग अभी तक अछूते जंगल से व्याप्त है, जिसमें अच्छी अच्छी लकड़ियों के सिवा चिरौंजी, लाख और कत्था आदि की भी उपज विशेषता से होती है। जंगल के पुराने सुपरिंटेंडेंट की मृत्यु के बाद श्रीमान् को किसी निपुण कर्म्मचारी को नियत करने की इच्छा हुई। इससे मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट से पं० तीर्थप्रसाद उधार लिये गये। उनके सुप्रबंध से जंगल की आमदनी पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ गई है। किन्तु सुना जाता है कि अब भी उसमें उन्नति की जगह है।

१९०४ ई० के मई महीने में इस राज्य के दो बड़े ही सुयोग्य कर्म्मचारी अर्थात् प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल लाल जनार्दनसिंह राव बहादुर और नये दीवान राव लाल प्रतापसिंह बहादुर का एक ही पाख में शरीरान्त हो गया। ये दोनों महाशय राज्य के बड़े ही शुभचिन्तक थे। इनकी सहसा मृत्यु से राज्य-प्रबंध में कुछ शिथिलता भी हुई। कर्नल राव जनार्दनसिंह बहादुर श्रीमान् के हार्दिक सखा और सहपाठी थे। इनकी जगह की पूर्त्ति इन्हींसे हो सकती थी। इनकी सेवा से प्रसन्न होकर श्रीमान् ने इन्हें एक ही बार में २५००० रु० वार्षिक आमदनी की ज़मीन जागीर देकर ताला का ठाकुर बनाया था। यह ज़मीन अब तक उनकी विधवा स्त्री और एक मात्र पुत्र के अधिकार में है। इतनी आमदनी की ज़मीन, कहा जाता है, किसी महाराजा ने, एक ही बार में, कभी किसी को नहीं दी।

सेना-विभाग के नायक (कमाण्डर इन चीफ) पहले श्री लाल बलदेवसिंहजी थे। जून १९०३ ई० में, उनके शरीरान्त होने पर, श्रीमान् ने इस जगह पर अपने प्राइवेट सेक्रेटरी कर्नल राव जनार्दनसिंह बहादुर को नियुक्त किया। किन्तु एक ही वर्ष बाद जब उनकी भी मृत्यु हो गई तब से श्रीमान् ही अपनी सेना के सेनापति हैं। तभी से कर्नल महताबसिंहजी को आपने फ़ौज का बख़्शी (Military Secretary) नियत किया है। इनके सिवा सेना में बहुत से सिक्खसरदार तथा अन्य अनेक सुशिक्षित युवा बघेल हैं।

पूर्वोक्त प्राइवेट सेक्रेटरी और दीवान के मरने के बाद श्रीमान् ने अपने असिस्टेंट सेक्रेटरी पं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकीप्रसाद चतुर्वेदी, एम० ए०, एल० एल० बी० को प्रधान सेक्रेटरी बनाया और दीवान का पद तोड़ कर, दो कमिश्नर नियत किये। एक रेविन्यू (Revenue) महकमे का दूसरा जुडिशल (Judicial) महकमे का। इन पदों पर क्रमशः लाल वेणीहहादुर सिंह और राय देवीप्रसाद बहादुर नियत हैं। फ़ौजदारी के मुख्य अधिकारी कुँवर रामसिंह जू, और दीवानी के बाबू अनमोल सिंह जी बी० ए० हैं।

स्वभाव और दिनचर्य्या।

श्रीमान् का स्वभाव अत्यंत सरल है। आप साधारण वस्त्र के प्रेमी हैं। अलंकार इत्यादि आप बहुधा नहीं धारण करते हैं। अपनी प्रजा पर श्रीमान् का बहुत प्रेम है। राज-काज के योग्य, जहां तक इस राज्य के निवासी, हिन्दू या मुसलमान, मिल सकते हैं, वही लिये जाते हैं। हफ़्ते में एक या दो बार आप प्रजा की अरज़ियां ख़ुद लेते हैं। नित्य श्रीमान् सेना को देखते हैं। आप निपुण शिकारी हैं; ऐसा कोई वर्ष नहीं जाता है जिसमें आप दो चार शेर न मारते हों। श्रीमान् को अपने निशाने का इतना विश्वास है कि सिंह का शिकार आप प्रायः ज़मीन पर ही से करते हैं। श्रीमान् कान के कच्चे नहीं। किन्तु यदि कोई कर्म्मचारी, चाहे वह कितना ही बड़ा अधिकारी क्यों न हो, राजनियमों के विरुद्ध काम करते पाया जाता है तो उसे श्रीमान् न्यायालय में अवश्य दे देते हैं और अपराध सिद्ध हो जाने पर निःसंकोच हो कर उसे दंड देते हैं। इसी से बहुत से लोग श्रीमान् को निश्शील कहते हैं। किन्तु मेरे विचार में तो सत्यशील इसी को कहते हैं। अयोग्य और अपराधी पुरुषों पर शील और दया करना मानों सर्प इत्यादि विषधर जीवों को दूध पिलाना है।

सब से अनोखा गुण श्रीमान् में यह है कि आप में राजमद और युवावस्था के कोई भी दुर्व्यसन नहीं हैं*। यही कारण है कि श्रीमान् शरीर से अत्यंत पुष्ट और नीरोग रहते हैं। भारत-वर्ष के साधारण रोग अर्थात् ज्वर, सर्दी और खांसी आदि को छोड़ कर और कोई रोग श्रीमान् को हुआ कभी सुनने में नहीं आया। सैनिक सिपाहियों के साथ, उन्हीं की तरह शस्त्रास्त्र से सज्जित होकर, १० से १५ मील तक पैदल जाना आप के लिए एक मामूली बात है। घोड़े की पीठ पर पचास से साठ मील तक जाना आप कुछ समझते ही नहीं। जेठ की प्रचण्ड धूप, सावन भादों की घन घोर वर्षा और हेमन्त के असह्य जाड़े में, मैदान में ख़ेमे के भीतर रहना, अथवा जंगल में मृगों के पीछे दौड़ना आपको कष्टदायक नहीं मामूल होता। राजसी भोजन तो सर्वदा होता ही है, किन्तु साधारण सिपाहियों की तरह भोजन से भी आप तृप्ति मान सकते हैं। ऐसा सुना गया है कि एक दफ़ा शिकार में अपने हाथ से घोड़े की शुश्रूषा करके अँगेठी पर अपने ही हाथ से भोजन बना कर आपने खाया है।

आप से हर पुरुष बिना रोक टोक मिल सकता है। ख़ुद भी आप सायंकाल प्रजा का सुख दुख जानने के लिए राजधानी और राज्य के गावों में अकेले, या दो एक विश्वासी आदमियों के साथ, पर्य्यटन करते हैं। साधारण प्रजा के भी विवाहादि उत्सव में, उसके द्वार को आप अपने निज शुभागमन से सुशोभित करते हैं। कर्म्मचारियों के यहां भी जाने में आप को प्रायः कम संकोच होता है। कभी कभी गुप्त रीति से बड़े बड़े कर्म्मचारियों के घर पर जाकर, उनकी योग्यता अयोग्यता का परिचय लिया करते हैं। इसका फल यह हुआ है कि श्रीमान् को निज-राज्य-संबंधी कोई भी बात अज्ञात नहीं है। इस

* मालूम नहीं महाराजा रीवां ने दो विवाह क्यों किये! चरित-लेखक महाशय को इसका कारण लिख देना था। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आपको उचित प्रबंध और न्याय करने में बहुत सुगमता होती है, अन्याय होने की कभी संभावना नहीं रहती।

श्रीमान् सब का यथायोग्य आदर सत्कार करते हैं; सबका निवेदन कान देकर सुनते हैं; और उन्हें उचित उत्तर देकर संतुष्ट करते हैं। सबके गुण और अवगुण को निधड़क और निस्संकोच उसीके सम्मुख आप कह देते हैं। यदि कभी किसीके लिए आपके मुँह से, अनजान, कोई बात अयोग्य या अनुचित निकल जाती है, तो ज्ञात होने पर, आप उस पर पश्चात्ताप करते हैं और अपनी भूल स्वीकार करने में कभी संकोच नहीं करते।

कर्म्मचारियों को योग्यतानुसार पदवृद्धि देने में भी श्रीमान् कभी त्रुटि नहीं करते। कालकर्म्मानुसार योग्यता कैसे हो अँधेरे में क्यों न पड़ी हो, सौभाग्यवश, यदि श्रीमान् की सुदृष्टि उस पर पड़ जाय, तो उसका उद्धार करने की आप सदैव इच्छा रखते हैं।

जीतनसिंह।

समालोचक-लक्षण।

[१]

जिनके द्वारा शङ्कर संसार न होगा।
जिनके द्वारा सद्धर्म-प्रचार न होगा॥
जिनके द्वारा लौकिक-व्यवहार न होगा।
जिनके द्वारा परलोक-सुधार न होगा॥
ऐसे ग्रन्थों पर जिसे रोष आता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[२]

जिनसे विवेक-द्रुम के दल झड़ जाते हैं।
जिनसे हित-हरि के पंख उखड़ जाते हैं॥
जिनसे व्रतबन्धन ढीले पड़ जाते हैं।
जिनसे सबके सब ढंग बिगड़ जाते हैं॥
उन बातों पर जो कभी न पतियाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[३]

जो पक्षपात पामर को मार भगावे।
अन्याय-असुर के उर में आग लगावे॥
झूँठी सहृदयता के गढ़ गीत न गावे।
मनमन्दिर में समता की ज्योति जगावे॥
उस न्याय निरङ्कुश को जो अपनाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[४]

विज्ञान-शिल्प-वाणिज्य-प्रचारक प्यारे।
नानाविध-विषय-विशारद न्यारे न्यारे॥
प्रतिभाशाली सम्पादक, सुकवि, हमारे।
सज्जन भाषा-साहित्य-सुधारक सारे॥
जो इन सबके सादर सद्गुण गाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[५]

सब यंत्र कलाकौशल के काम सँभालो।
नूतन आविष्कारों के नाम निकालो॥
कृषि-विद्या और रसायन में रस डालो।
कोरी कहानियों के कलबूत न ढालो॥
जो इस प्रकार उन्नति की मूल जमाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[६]

हम राजभक्त उन्नति की गैल गहेंगे।
कर देशी-वस्तु-प्रचार प्रसन्न रहेंगे॥
फटकार मार आघात अनेक सहेंगे।
पर बार बार "वन्देमातरम्" कहेंगे॥
ऐसे प्रण को जो घर घर पहुँचाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[७]

जिनके सब सुन्दर गद्य लेख पढ़ते हैं।
उनके कुपद्य-कण्टक उर में गढ़ते हैं॥
कुछ केवल कविता के बल से बढ़ते हैं।
बिरले चम्पू रच रच ऊँचे चढ़ते हैं॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कविकुल में तीनों दल दरसाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[८]

व्याकरण-केहरी से न कभी डरती है।
पिङ्गल काटे सौबार नहीं मरती है॥
साहित्य-मत्त-गज के मग में चरती है।
तुकियों के उर-वन में विहार करती है॥
उस कविता-कुत्ती को जो धमकाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[९]

कुछ काट छाँट कर आशय इधर उधर के।
छल का बल पाय छपाये पोथा घर के॥
व्यवसाय-सखा शुभचिन्तक भारत भर के।
बन बैठे ग्राह महाविद्या-सागर के॥
ऐसे घटियों को जो नग बतलाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१०]

कुछ ग्रन्थ किसी भाषा के पढ़ लेते हैं।
टूटी फूटी कविता भी गढ़ लेते हैं॥
मिथ्याभिमान-कुञ्जर पर चढ़ लेते हैं।
लड़भिड़ कलङ्क माथे पर मढ़ लेते हैं॥
इनका घमंड जिसकी ठोकर खाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[११]

छन्दों की छाती पर पग धर देते हैं।
रसरीति नायिका जो की भर देते हैं॥
तुक जोड़ समस्या पूरी कर देते हैं।
भूषण-समूह के कान कतर देते हैं॥
इस कविमण्डल में जो न कभी जाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१२]

अब तो मुख परकीया से सत्वर मोड़ो।
इनके शठ धृष्ट सेवकों के सिर तोड़ो॥
सुखमूल स्वकीया का शुभ संग न छोड़ो।
समयानुसार रसपति का सार निचोड़ो॥
जो कवि नायक जी को यों समझाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१३]

आपस में लड़ते हैं नाना मत-वाले।
अपने अपने अनुकूल ग्रन्थ गढ़ डाले॥
अब करते हैं पत्रों के कालम काले।
पढ़ देखो सबके लेख प्रसंग निराले॥
इस कलकल को जो निष्फल बतलाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१४]

भोजन को माँगें राज भोग की भिक्षा।
पीते रहते हैं दूध और आमिक्षा॥
ये क्या जाने कहते हैं किसे तितिक्षा।
देते फिरते हैं तत्वमसी की शिक्षा॥
इनके गन्धर्व-नगर को जो ढाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१५]

भगवान भास्कर भारत छोड़ सिधारे।
हा दैव! दुरे दैवज्ञ-सुधाकर-तारे॥
जातक-ताजक-तम ने फल-पटल पसारे।
बन गये ग्रहों के ठेकेदार भरारे॥
जिसको इनका संवाद नहीं भाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१६]

उपदेशक दल के लुंड मुंड लीडर हैं।
जातीय-सभा के सभ्य महा मिस्टर हैं॥
देशी सुधार के सर सर प्रोफ़ेसर हैं।
सब हैं परन्तु कोरी घेंघें के घर हैं॥
इनकी ध्वनि सुन जिसका जी मचलाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[१७]

करताल चिकारा ढोल बजानेवाले।
बे जोड़ तुक्कड़ों के पद गानेवाले॥
हाहा हूहू पर तान उड़ानेवाले।
वैदिक दल के गन्धर्व कहानेवाले॥
इनके पीछे जिसकी धिक् धिक् धाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१८]

पढ़ मूल ग्रन्थ को अर्थ प्रयोजन जाने।
फिर गद्य पद्य के गौरव को पहचाने॥
उस ग्रन्थ-प्रणेता को अरि मित्र न माने।
अनुभूत निबन्धों के गुण दोष बखाने॥
जिसके मन में यों सत्य समा जाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[१९]

जिस आगम का आशय न समझ में आवे।
उस पै न वृथा अटकल की लाग लगावे॥
जब अर्थ भाव मन में समस्त भर जावे।
तब जैसा हो वैसा लिख लेख बतावे॥
सब तंत्रों का मर्म भाव जिसको आता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

[२०]

लिख नाम ग्रन्थ का, क़ीमत और ठिकाना।
फिर जिल्द, छपाई, काग़ज़ के गुण गाना॥
कहि ग्रन्थकार को कविवर पिण्ड छुड़ाना।
सब की रचना को खोटी खरी बताना॥
जिसका न लेख ऐसा रसीद-दाता है।
वह वीर समालोचक पदवी पाता है॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

अक्षर एक।

[१]

अक्षर है शुभनाम विश्वपति परमेश्वर का;
परमेश्वर है एक नियन्ता सचराचर का;
है यह मेरा प्रश्न सभी से हाथ उठा कर,
है वह जग में कौन कहे जो दो परमेश्वर?
इसलिये द्वैत की भावना
अनुचित जान बिसारिये;
हे भारतवासी मित्रगण!
अक्षर एक प्रचारिये।

[२]

श्याम, गौर इत्यादि रङ्ग वा वर्ण किसी का;
तथा विप्र इत्यादि जाति वा वर्ण किसी का;
अक्षर भी है वर्ण, नहीं यह किसका जाना?
इस पर एक विचार विशद मेरे मन माना;
इक अक्षर जब होगा चलित,
भेद सकल खो जायगा,
यह भरतखण्ड इस व्याज से,
एक वर्ण हो जायगा।

बरसाती कविता।

[१]

भ्रमर कदम्बन पै गान कै उड़ान लागे
होत बलहीन विरहीन तन थर थर।
ललित हरित लहरान लागे तरुवर,
सीरी सीरी चलन समीर लागी सर सर।
दामिनि के जोर चहुं ओर ते लखान लागे,
चातक चकोर मोर सोरन के भर भर।
झर झर धर धर धार बांधि घूमि घन,
नभ में सघन घहरान लागे घर घर* ॥

[२]

मेघ बहुरङ्गी चारु अवली किराचिन की,
कौंधा-रूप-इञ्जन की आगी उठै बर बर।

* स्वर्गवासी कविवर ललित कृत—इनका जीवनचरित, कविता की बानगी समेत, शीघ्र पाठकों की भेंट करने का विचार है। "पूर्ण"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीठी करै सीटी-धुनि कूक पिक मोरन की,
तार-"गर-गट्ट"-शब्द दादुर की टर टर।
नीलगिरि-विन्ध्याचल-चौकिन करत पार,
खेप भरि लाई जो झरत नीर छर छर।
धावती रँगीली रेलगाड़ी भूप पावस की,
होत व्योम-मारग में शोर घोर "घर घर"॥

[३]

ठहरान न दैहै सदा नभ में
तुम्हैं देहै उड़ाय हवा खन में।
जल डारि के सूखते धानन में
जस लीजिये तातें उदारन में।
बदली जो बयार तो दैहै झराय
सबै कन रेत पहारन में।
गुन ग्राहक यार बलाहक जू!
लगे नाहक पैन की बातन में॥

[४]

चाँदनी चमेली चारु सावनी रसालन में
बकुल लवंगन कदंबन सघन में।
पूरन सरस ऋतु पावस के आवत ही
भई है बहाली हरियाली बाग बन में।
पादप वे रूरे जौ लौं आतप सों झूरे रहे,
उन्नति निहारी भारी रावरे तनन में।
अरक जवास! आप जग तें उदास ऐसे
झरसत कैसे बरसात के दिनन में?

राय देवीप्रसाद (पूर्ण)

द्रव्य-माहात्म्य।

आवागमन के महान् दुःख से मुक्त होने तथा परलोक में अटल आनन्द से रहने के लिए, जैसे मनुष्यमात्र को निरन्तर परमात्मा का चिन्तन करना परम धर्म है, उसी प्रकार सामाजिक आवश्यकताओं से मुक्त होने तथा इस लोक में परम आनन्द से रहने के लिए द्रव्यदेव का क्षण क्षण चिन्तन करना भी मनुष्यमात्र का परम धर्म है। जैसे परमात्मा की उपासना से जीव सदा के लिए मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, आपकी उपासना से हम आजन्म सामाजिक-बन्धनों में रहते हुए भी अपने को मुक्त समझते हैं। परमात्मा की प्राप्ति का साधन न करने से जैसे मनुष्य का जीवन निष्फल माना जाता है उसी प्रकार आपकी प्राप्ति का साधन न करने से भी हम समाज में तुच्छ गिने जाते हैं। जैसे—ज्ञान से, कर्म से, उपासना से, मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है—उसी प्रकार बल से, बुद्धि से, उद्योग से, हम आपको प्राप्त कर सकते हैं।

बिना ईश्वर के भक्त बने, ईश्वर के समीप तो क्या, हमें ब्रह्मलोक, इन्द्रलोक, चन्द्रलोक में भी ठौर नहीं मिलता। उसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, आपके विशेष कृपापात्र हुए बिना अपने भारत-सम्राट् के पास तो कौन कहे, हमें स्वदेशी नृपति-गणों के समीप भी इच्छित आसन नहीं मिलता। हे द्रव्यदेव, जैसे त्रिलोकवन्दित परमात्मा को छोड़ कर केवल आपकी प्राप्ति का साधन करनेवाला लोक में निन्दनीय समझा जाता है वैसे ही सर्वजन-पूजित, विभवप्रदायक आपसे द्वेष करके केवल परमात्मा से राग करनेवाला मनुष्य भी सुयश, कीर्ति, और प्रशंसा का पात्र नहीं हो सकता।

हे द्रव्यदेव, यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जैसे परलोक के लिए परमात्मा हमारा उपास्य देव है उसी प्रकार लोक के लिए आप हमारे उपास्य देव हैं। सृष्टि के आदि से परमात्मा की पूजा और उपासना इस देश में प्रचलित है; परमात्मा की प्रशंसा में अनेकों पुराण बन चुके हैं; स्वयं वेद भगवान् भी परमात्मा की स्तुति निरन्तर गाते रहते हैं; परन्तु हे द्रव्यदेव, यह दृश्यमान जगत् स्वयं आप ही से उत्पन्न हुआ है। आपके विना हमारा एक कार्य भी नहीं सिद्ध हो सकता। यह जान कर भी आपकी प्रशंसा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० अम्बिकादत्त व्यास को छोड़ कर और किसीने एक साधारण स्तोत्र तक नहीं बनाया। तब कौन कह सकता है कि इस कृतघ्नता से, आप इस देश से कुपित न हुए हों? आप अवश्य कुपित हुए होंगे। यही सोच विचार कर मैंने आपकी प्रसन्नता के लिए एक छोटा सा स्तोत्र लिखने का प्रयत्न किया है। हे द्रव्यदेव, स्तोत्र का प्रथम अध्याय आप श्रवण कर चुके। इसका सारांश केवल इतना ही है कि लोक में आनन्द चाहनेवालों के लिए आप वैसे ही पूज्यदेव हैं—जैसे परलोक में आनन्द चाहनेवालों के लिए परमात्मा।

इति प्रथमाध्याय।

हे द्रव्यदेव, जैसे परमात्मा अनेक विशेषणों से युक्त है उसी प्रकार आप भी हैं। परमात्मा विश्वव्यापी है सही; परन्तु अदृश्य है। पर हे द्रव्यदेव, आप विश्वव्यापी भी हैं और दृश्यमान भी। जैसे परमात्मा का आदि-अन्त जानने में कोई भी समर्थ नहीं हुआ, उसी प्रकार आपका जन्म-स्थान कहां है? और आपका यह विराट् स्वरूप, दृश्यमान जगत् के प्रलय के बाद कहां दफ़न होगा, कौन कह सकता है? जैसे इस विराट् ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं सबमें, परमात्मा ही की सत्ता विराजमान है—सूर्य्य में उष्णता, शशी में शीतलता, अग्नि में दाहिका शक्ति परमात्मा ही की शक्ति है—उसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, इस विशाल विश्व में हम जो कुछ देखते हैं वह सब स्वयं आप ही हो। सूर्य्य चाहे रेडिअम धातु के बने हों, चाहे प्रज्वलित अग्निराशि के पिण्ड हों, अथवा कश्यप मुनि के पुत्र, विश्वकर्मा के जामाता हों—तो भी उनका भौतिक शरीर ज़रूर आप ही से बना है। इसी प्रकार रजनीविहारी, औषधवृन्द के नायक, हमारे चन्द्रदेव और प्राणिमात्र को स्थान देनेवाली यह वसुन्धरा देवी भी आपही से बनी है। 'द्रव्य' शब्द का अर्थ शास्त्रकारों ने ऐसा ही किया है।

हे द्रव्यदेव, हमारे सदृश अल्पज्ञ, जगज्जाल में फँसा हुआ मनुष्य आपकी महिमा को भले ही न जाने; परन्तु प्राचीन शास्त्रकार और तत्व-वेत्ता लोग आपकी महिमा को ख़ूब जानते थे। उन महानुभावों का कथन है कि आप ईश्वर के बड़े पुराने मित्र हैं। आप कल्पान्तर में भी परमात्मा से विलग नहीं होते। हे द्रव्यदेव, विलग होकर आप जाते कहां? किसे सामर्थ्य है कि आपको विराम के लिए जगह दे? इसीसे कई आचार्यों का मत है कि परमात्मा आपको अपनी इच्छा में ही रखता है। बहुतों के मत में तो परमात्मा की वाणी ही में आप निवास करते हैं। परमात्मा के हृदय में संकल्प होते ही आप उठ खड़े होते हैं। इस विस्तृत विश्व की रचना में आप परमात्मा को विशेष सहायता देते हैं। जैसे कुम्हार और मिट्टी का मेल होते ही अल्प ही काल में अनेक घड़े बन जाते हैं, उसी प्रकार परमात्मा से आपका मेल होते ही अनेकों ब्रह्माण्ड की रचना अल्प काल ही में हो जाती है। समग्र सृष्टि में चेतनता का बीज डालने से परमात्मा का नाम पुरुष, और प्राणिमात्र का उत्पत्ति-स्थान होने से आपका नाम शास्त्रकारों ने प्रकृति प्रसिद्ध किया है। हे द्रव्यदेव, हमें संदेह होता है कि विद्वानों के मुँह से आप अपना नाम "प्रकृति" सुन कर कुपित होते होंगे। यही कारण जान पड़ता है जो आपको ऐसा कहनेवाले कपिल, कणाद, गौतम आदि शास्त्रकार विद्या से भरे पुरे तो रहे, परन्तु आपसे कोरे ही बने रहे। किन्तु, हे द्रव्यदेव, आपको विचारना चाहिए कि परोपकारी लोग आत्ममर्यादा पर दृष्टि नहीं डालते। परोपकार में धन और मर्यादा आदि की हानि तो होती ही है। लाभ तो केवल आत्मानन्द का होता है—जो बड़े बड़े राजाओं को भी दुर्लभ है। आपसे छिपा नहीं है कि परमात्मा को, देवताओं के उपकार के लिए, समुद्रमन्थन के समय, स्त्री का रूप लेना पड़ा था। आपके तो केवल नाम ही में हेरफेर हुआ है।

हे द्रव्य, परमात्मा विश्वव्यापी है, तो भी उसे केवल ज्ञानी ही ढूंढ़ा करते हैं। कितने मनुष्य तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे हैं जो यह भी नहीं जानते कि परमात्मा है क्या चीज़ ? और न परमात्मा के जाने बिना उनका कुछ काम ही अटक रहता है। प्रतिकूल इसके क्या ज्ञानी, क्या अज्ञानी, आपके पीछे सभी पड़े रहते हैं। यहां तक कि अल्पवयस्क बालक भी आपके लिए हाथ पसारता है। आपके ही लिए लोग विलायत तक भागे फिरते हैं। आप ही की खोज में लोग विदेशों में ख़ाक छानते फिरते हैं। और तो क्या, हे द्रव्यदेव, आपके प्रेम में आकर बहुत से लोग अपने प्रिय धर्म और ईश्वर को भी तिलाञ्जलि दे बैठते हैं। बधिर मनुष्य चाहे परमात्मा की कथा को भले ही न सुन पावे, परन्तु आपकी वार्ता वह केवल संकेत मात्र से ही जान लिया करता है। जैसे कार्य को देख कर कारण और कर्ता का ज्ञान होता है उसी प्रकार जब तक आपके विराट् स्वरूप इस जगत् को हम देखते हैं तभी तक हम परमात्मा को देखते अथवा उसका अनुमान कर सकते हैं। जब आपका यह विराट्स्वरूप, वृहद् विश्व, नष्ट हो जायगा तब, परमात्मा को जाननेवाला भी कोई शेष न रहेगा; क्योंकि परमात्मा का अस्तित्व अथवा उसकी कारीगरी हम वहीं देख सकते हैं जहां आप हैं। प्रथम मैं अपने शरीर ही को देखता हूं तो बोध होता है कि यदि पञ्चद्रव्य के परमाणुओं से वह गठित न होता तो मेरा जीवात्मा, जो परमात्मा का अंश है, कहां रहता ? यदि यह कहा जाय कि जीवात्मा तो अन्तरिक्ष में भी रहता है तो वह हमारे किस काम का ? क्योंकि हमें उसका ज्ञान ही नहीं हो सकता। जो मनुष्य जीवात्मा को परमात्मा का अंश नहीं मानते उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि परमात्मा का सर्वव्यापी न्याय जो पूर्वकृत-कर्म-फल भोगाने के लिए तैनात है, पञ्चद्रव्य-जनित शरीर-रूपी जेल में ही जीवात्मा को क़ैद करता है और कर्मानुसार उसे साधारण अथवा कठिन दण्ड देता है। हे द्रव्यदेव, यदि आपके परमाणुओं से बना हुआ मेरा यह शरीर न होता तो जीवात्मा को क्रमशः उन्नति करने का भी कोई मार्ग न मिलता। जैसे क़ैदी अपने ही चाल चलन से कभी कभी क़ैद से छोड़ दिया जाता है; छोटे जेल से बड़े जेल में भेज दिया जाता है; अच्छे स्थान से काल-कोठरी में बन्द किया जाता है उसी प्रकार जीवात्मा अपने किये हुए अच्छे कर्मों से शरीर-रूपी जेल से कभी सदा के लिए मुक्त कर दिया जाता है और कभी ज्ञानशून्य तमोमय स्थान, अर्थात् पशु-शरीर में क़ैद किया जाता है। सारांश यह कि परमात्मा का अंश, अथवा परमात्मा का सर्वव्यापी न्याय, मनुष्यों को वहीं देख पड़ता है जहां आप से बना हुआ कोई पदार्थ होता है।

हे द्रव्यदेव, जैसे परमात्मा के विषय में लोगों का सिद्धान्त है कि—

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥

इसी प्रकार यदि आपके विषय में भी माना जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। क्योंकि काष्ठ को सुन्दर रँगदार बनाकर कौन नहीं आपको प्राप्त कर सकता है ?

पाषाण के विषय में तो कुछ विशेष कहना ही न होगा; क्योंकि परमात्मा ने अपना अधिक चमत्कार पाषाण-मूर्ति ही में दिखलाया है। आजकल पाषाणमूर्तियां राव रंक सभी से पूजित होकर चारों फलों को दाता हो रही हैं। इसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, आपभी अपनी विशेष महिमा पाषाण में ही दिखलाते हैं। आप ही की दया से कोहेनूर, स्वदेशी नृपतिगण और मुसल्मान सम्राटों के आदर का पात्र बना था। हमारी एम्प्रेस विक्टोरिया के, जिनके सामने बड़े बड़े राजा महराजा सर झुकाते थे, सर चढ़ा यदि कोई पदार्थ था तो कोहेनूर ही था। अभी हाल में आपने ट्रांसवाल के एक पाषाण में अपनी विशेष झलक दिखलाई है। उसका मूल्य १२,००,००० रुपया, अनुमान किया गया है। वह, हमारे वर्तमान भारत-सम्राट्, सप्तम एडवर्ड, का कृपापात्र बना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे द्रव्यदेव, अब रही बात मृत्तिका की, सो वह तो आपका निवासस्थान ही है। यदि न्यूनता किसी बात की है तो हमारे भाव की; हमारे उद्योग की।

हे द्रव्यनारायण, जब मनुष्य इस गूढ़ तत्व के समझने में असमर्थ होता है कि परमात्मा सर्व-व्यापी है, कोई स्थान नहीं जहां परमात्मा न हो, कोई वस्तु नहीं जिसमें परमात्मा न हो—और जब इस अज्ञानता के कारण मनुष्य बहुधा पापाचरण में प्रवृत्त होने लगता है, तब परमात्मा अपनी असीम दया से, लोकोपकारार्थ, राम, कृष्ण—आदि अवतार ग्रहण करता है। उसी प्रकार, हे द्रव्य, जब हम में इतनी बुद्धि नहीं रहती कि यह दृश्यमान जगत् स्वयं आप ही हैं; अथवा इस संसार में जितनी चीज़ें देख पड़ती हैं सबमें आप ही की सत्ता है, तब आप भी लोकोपकारार्थ नाना प्रकार के अवतार ग्रहण करते हैं। उन अवतारों के नाम हैं—हीरक, नीलम, पन्ना, पुखराज, सोना, चाँदी, ताँबा, ऐल्यूमिनियम आदि। जैसे राम, कृष्ण आदि अवतारों के बाद सर्वव्यापी परमात्मा का नाम केवल ज्ञानी ही पुरुषों के मुँह से सुनने में आता है, विशेष चर्चा इन्हीं अवतारों की रहती है और परमात्मा के स्थान में पूजा भी इन्हीं अवतारों की हुआ करती है—उसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, जब आप सोना, चाँदी, रुपया, पैसा, आदि का आधुनिक अवतार ग्रहण कर लेते हैं तब आपकी पुरातन-मर्यादा, विश्वव्यापकता का लोप होकर आपके स्थान में आपके अवतारों ही की चर्चा चारों ओर चला करती है। इस अज्ञानता को दूर करने के लिए कृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है—"हे अर्जुन, संसार के प्राणिमात्र में मेरा ही, अर्थात् ईश्वर का ही, चमत्कार है। यदि किसीकी समझ में यह बात न आवे तो ख़ास ख़ास चीज़ों में मेरा चमत्कार मानना ही चाहिए।" उसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, संसार में जितनी चीज़ें हैं सबमें आप ही का चमत्कार है। यदि ऐसा हम न समझ सकें, तो वस्तु-विशेष में हमें अवश्य आपको मानना पड़ेगा। जैसे ईश्वर कुल पुस्तकों में नहीं, परन्तु सामवेद में अधिक रहता है। उसी प्रकार आप सब काग़ज़ों में नहीं; परन्तु नोट में, चेक में, हुण्डी में, अधिक रहते हैं। ईश्वर वज्र नामी अस्त्र में; आप तोप में, बन्दूक़ में। ईश्वर उच्चैःश्रवा घोड़े को अधिक पसंद करता है; आप जर्मनी के उस घोड़े को जिसका मूल्य ४०,००० रुपया तक लग चुका है। ईश्वर पीपल वृक्ष में अधिक रहता है; आप लाख, रबर, मूंगा, इस्पञ्ज, महागनी आदि वृक्षों में। ईश्वर आम्रफल में रहता है; आप अंगूर, अख़रोट, पिस्ता, बादाम आदि में। ईश्वर मनुष्यों के मध्य ब्राह्मण में; आप अँगरेज़ों में। ईश्वर मथुरा में, अयोध्या में, पुरी में; आप केवल लंडन में। ईश्वर विष्णु-रूप से क्षीर-समुद्र में; आप मोती-रूप से अनेक समुद्रों में बसते हैं।

हे द्रव्यदेवता, जैसे ईश्वर के दस अवतार हैं वैसे ही आपके भी दस अवतार विद्वानों ने माने हैं। विशेषता केवल आपमें इतनी ही है कि आपका दसवां अवतार, कनक नाम का, हो चुका है, पर ईश्वर का दसवां, कल्की नाम का, अवतार अभी होने को है। ईश्वर के दसों अवतारों के नाम सर्वसाधारण जानते हैं; परन्तु आपके अवतारों के नाम सब मनुष्य नहीं जानते। अतः मैं उन्हें लिख देता हूं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, व्योम, काल, दिक्, आत्मा और मन।

इति द्वितीयाध्याय।

हे द्रव्यदेव, महीपों के मुकुटमणि, रविकुल-कमल-दिवा-कर सत्यसिन्धु, सीतापति, रामचन्द्र जी महाराज और योगिओं के मुकुटमणि, यदुकुल-कुमुद-कला-धर, प्रेमरूप, नन्दनन्दन, श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज, परमात्मा के अवतार होने से त्रैलोक्यपूजित हैं। उसी प्रकार सुख-संचारक आनन्दप्रद, जंगल में मंगल देनेवाले, रंक से राव बनानेवाले, रमणीय रूपराज, आप ही के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवतार होने से मनुष्यमात्र से पूजित हो रहे हैं। जैसे राम, कृष्ण को जो मनुष्य परमात्मा के सदृश त्रैलोक्य का ईश और त्रिदेवों का देव नहीं मानता वह, वर्तमान समय में, निन्दित माना जाता है, उसी प्रकार आपके आधुनिक अवतार रुपए, पैसे का जो मनुष्य आदर सत्कार नहीं करता वह लोक में निन्दनीय होने के अतिरिक्त आजन्म दुखी बना रहता है। इसी कारण मैं आप को देवों का देव समझता हूं, क्योंकि यह देखा जाता है कि जिस मनुष्य पर आप कृपा करते हैं वह यदि अकुलीन हो तो भी कुलीन; पढ़ा न हो तो भी पण्डित बन जाता है। अर्थात् केवल आप ही की दया से अन्य सब गुण, जो मनुष्य की प्रशंसा और मर्यादा के कारण हैं, स्वयं उसके शरीर में आ चिपटते हैं। जिसके माता पिता दरिद्र होने के कारण, वाजि शब्द की तरह दो ही अक्षरों के शब्द से अपने पुत्र का नामकरण करते हैं, वही मनुष्य आप की कृपा से अपने नाम को, राय बहादुर और सी० आई० ई० आदि की अगाड़ी पिछाड़ी लगा कर बढ़ा लेता है। भर्तृहरि जी ने सच कहा है—

यस्यास्ति वित्तः स नरः कुलीनः
स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

विपरीत इसके हे द्रव्यदेव, जब आप हमसे रुष्ट होकर कहीं अन्यत्र चले जाते हैं, तब अन्य सब गुण भी हम को छोड़ भगते हैं। आपके विमुख होते ही हमसे संसार मुख फेर लेता है और क्षणमात्र में हम कुछ के कुछ बन जाते हैं। अर्थात् बुद्धिमान् से बुद्धिहीन, बली से निर्बल, गुणज्ञ से गुणहीन, धनी से निर्धनी, दाता से सूम और जनाबआली से तुम।

हे मर्यादा-महीप, हमारे हाथ, पैर, चक्षु, श्रवण और बुद्धि पूर्ववत् बनी रहती है; पर केवल आपसे हीन होते ही हम सर्वगुणहीन, दीन, मलीन हो जाते हैं। जिस पाण्डित्य से हम प्रशंसा के पात्र और अनेकों में बुद्धिमान् समझे जाते थे वही पाण्डित्य, आपसे हीन होते ही, याचने का हेतु, हो जाता है और हम स्वयं याचक हो जाते हैं। सच है—

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव
अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥

हे द्रव्यदेव, यद्यपि इस भूतल में उत्तम से उत्तम भोग के पदार्थ और आनन्द की सामग्री उपस्थित है; परन्तु केवल आप के विना हमें एक भी प्राप्य नहीं। जिन वस्तुओं को देख कर धनिकों की आँखें तृप्त होती हैं, उन्हीं वस्तुओं को देख कर हमारी आँखें ललचा कर रह जाती हैं; हृदय में अपने अभाग्य पर पश्चात्ताप होने लगता है। हे द्रव्य देव, "एकै साधे सब सधै सब साधे सब जायँ"। यह वाक्य केवल आपही पर घटित होता है। जो मनुष्य साधन द्वारा आपको प्राप्त कर लेता है उसे इस संसार में कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रह जाती। उसका घर विभव की खानि बन जाता है। मूर्ख होने पर भी उसे अनेक पण्डित घेरे रहते हैं; निर्बल होने पर भी अनेकों बलवान् उसे अपनी कला दिखाने आया करते हैं; स्वरहीन होने पर भी अनेक मधुररागवाले गन्धर्व उसे अपनी तान सुनाया करते हैं; कुरूप होने पर भी अनेक सुरूपवान् मनुष्य उसका मुँह देखा करते हैं। सारांश यह कि—"सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति"।

हे द्रव्य, हम अपने माता पिता के प्यारे पुत्र, अपनी स्त्री के पूज्य पति, अपने पुत्र के आदरणीय पिता तभी हो सकते हैं जब हमारे साथ आप हों। हम देखते हैं कि जिस के एक भी सम्बन्धी नहीं उसे अनेक सम्बन्धी, जिसके कोई भी मित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं उसे अनेक मित्र आपकी कृपा होते ही मिल जाते हैं। जिसे हम जानते भी नहीं वह भी हमारा परम मित्र और जहां हमारा पसीना टपके वहां रक्त बहाने को तैयार रहता है। हमारा घर मनुष्यों की भीड़ से तीर्थ-स्थान बना रहता है। प्रतिकूल इसके जहां आप की अकृपा हुई, फिर कहां के मित्र कहां के सम्बन्धी? जैसे रात के चले जाने से सारे तारे चल बसते हैं, अथवा रहते भी हैं तो बिना रात के नहीं दिखाई पड़ते, उसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, जहां आप तशरीफ़ ले चले तहां मित्र आदि ढूँढ़े भी नहीं मिलते। जो बिना आवश्यकता ही अपना सर्वस्व देने को तैयार रहते थे वे, आप से हीन होते ही, बात के रवादार भी नहीं होते। हे द्रव्य, हम साफ़ साफ़ कहते हैं कि पिताहीन के पिता, मित्रहीन के मित्र, बुद्धि-हीन के ज्ञान, विपद्-ग्रस्त के धैर्य्य, निःसहाय के सहायक, परिवार-हीन के परिवार, रोगी के औषध, मूर्ख के पाण्डित्य, कुरूप के सौन्दर्य्य, निर्बल के बल, कम बोलनेवालों के गाम्भीर्य्य और अकु-लीनों के कुलीनत्व भी केवल आप ही हैं। इसलिए हमें उचित है कि मन, वच, काय, से हम आप की सेवा करें; आपकी प्राप्ति का साधन करें। क्योंकि आप की विशेष सहायता बिना हम वैसे ही हैं जैसे बेकूक घड़ी, बेस्टीम यंजिन।

हे द्रव्यदेव, लोग कहते हैं कि इस संसार में उसी मनुष्य का जन्म लेना सफल है जो लोक में सब भोग्य वस्तुओं को भोग ले और परलोक के लिए कुछ धर्म का संचय कर ले। परन्तु हम देखते हैं कि आप के बिना न तो हम लोक ही में आनन्द पाते हैं और न परलोक के लिए धर्म ही का संचय कर सकते हैं। क्योंकि कोई भी ऐसा कार्य्य नहीं जिसके आरम्भ में "जै गणेश मङ्गल करन" की तरह प्रथम आप की आराधना न करनी पड़े। द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का नित्य पञ्चयज्ञ करना धर्म है, परन्तु उन में से तीन यज्ञ, अर्थात् अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव और अतिथि-सत्कार आपके बिना कदापि नहीं हो सकते। आप ही कहिए, आपके बिना हम घी, दूध आदि पुष्टिकारक और सुगन्धित पदार्थ अग्नि में हवन करने के लिए कहां पावेंगे? कूकर, कौवे, पापी, रोगी, पतित आदि को भोजन दिये बिना हमारा भूत-यज्ञ कैसे पूर्ण हो सकेगा? जब अपने ही पेट की पड़ी है तब अतिथि-सत्कार हमसे कैसे हो सकता है? इसीसे हम कहते हैं कि आप की सेवा और आप की प्राप्ति के लिए उद्योग करना हमारा परम-कर्तव्य है।

इति तृतीयाध्याय।

परमात्मा की प्राप्ति के साधन में जैसे आचार पहला धर्म माना गया है, उसी प्रकार, हे द्रव्य देव, आप की प्राप्ति के साधन में भी हमें अपने आचार का सुधार प्रथम कर्तव्य है। जैसे सूर्योदय के पूर्व, ऊषाकाल में, शय्या से उठ कर, शौचादि से निवृत्त हो, स्नान करके परमात्मा के ध्यान में मग्न होना और यह प्रार्थना करना उचित है कि हे ईश्वर, हमारा आज का कर्तव्य जो कुछ हो वेद-प्रणिहित हो, आपकी प्राप्ति का मुख्य सहायक हो, हमसे आपकी इच्छा के प्रतिकूल कोई काम न हो; उसी प्रकार हमें, प्रातःकाल उठ कर आप की प्राप्ति का यत्न सोचना और यह प्रार्थना करना उचित है कि आज आपके साथ हम कोई अनुचित व्यवहार न करें। जो काम करें आप की प्राप्ति का मुख्य सहायक हो।

जैसे परमात्मा की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों का निग्रह अत्यन्त उचित है, उसी प्रकार, हे द्रव्यदेव, आपकी प्राप्ति के साधन में भी अधिक नहीं तो पांच इन्द्रियों को अवश्य वशीभूत रखना उचित है। यथा—

(१) चक्षु से ललित-ललनाओं के लावण्य, हाव, भाव, कटाक्ष और मंद मुसकान का निरीक्षण मना है।

(२) नासिका से प्रायः सारी सुगंधित वस्तुओं के सूंघने का व्यसनी बन जाना मना है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) श्रवण से वेश्याओं की मोहिनी तान, उनकी पञ्चबाण के बाणरूपी शब्दों से भरी हुई वाणी सुनना मना है।

(४) रसना से मांस का स्वाद लेना, शराब पीना और अधिक व्यय से प्राप्त भोजन की धुन में लगे रहना मना है।

(५) अतनु होने पर भी तनुधारियों से अधिक शक्ति-शाली मनसिज-देव के सहायकों के फेर में पड़ना मना है।

हे द्रव्यदेव, यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापी है तथापि उसके अवतार, शालिग्राम आदि मूर्तियों को अपवित्र स्थान में ले जाना जैसे मना है वैसेही आपके आधुनिक अवतार शुक्लाम्बरधारी रौप्य-नारायण को वेश्याओं के मकानों और चरस, गांजा, भङ्ग, शराब और मांस की दुकानों पर ले जाना मना है।

मनु भगवान् ने मनुस्मृति में लिखा है कि जो मनुष्य धर्म की रक्षा करता है उसे धर्म भी पापों से रक्षित रखता है। यदि, कोई मनुष्य, हिंसा-रूपी पाप से बचने की इच्छा से, मांस-भक्षण करना छोड़ देता है, तो उसका पाषाण-रूपी हृदय नवनीत सा कोमल हो जाता है। जो मनुष्य पहले पशुहिंसा से नहीं हिचकते वही धर्म की सहायता से दूसरे प्राणिओं के लिए अपनी जान तक देने में कसर नहीं करते। जो मनुष्य कभी स्वप्न में भी दुखी नहीं हुआ उसको धर्म के लिए दूसरों के लिए क्षण क्षण पर दुखी होना पड़ता है। जिन्हें दूसरों को दुख देते हँसी, खेल या एक प्रकार का कौतूहल जान पड़ता है, वही मनुष्य धर्म की सहायता से किसी के साथ कटु वचन कहने में भी भयभीत होते हैं। जिन्हें एक पग चलना कठिन है उन्हें धर्म की सहायता से सैकड़ों कोस के दूरस्थ तीर्थ घर आँगन जान पड़ते हैं। सारांश यह कि जो जितना ही अधिक धर्म का प्रत्येक बातों में विचार करता है उसे धर्म भी उतनी ही अधिक रक्षा करने में नहीं चूकता। उसी प्रकार हे द्रव्यदेव, जो जितना ही आप का आदर करता है, आप से प्रेम करता है, उससे आप भी उतना ही प्रेम करते हैं। रक्षित धर्म की तरह आप उसे विपद् में सहायता देते हैं। जैसे एक सुहृद्-मित्र अपने मित्र के मरणानन्तर उसकी सन्तानों तक की शुभाकांक्षा करता रहता है उसी प्रकार अपने सेवकों और मित्रों के वंशजों का पालन पोषण करने तथा उन्हें सुख देने में आप भी नहीं चूकते। यदि हम किञ्चिन्मात्र भी अपना चित्त आप की तरफ़ लगाते हैं तो आप अपनी अपार दया से उसमें अधिक सफलता प्रदान करते हैं। क्योंकि देखा गया है कि जो मनुष्य एक रुपया जमा करने की इच्छा करता है उसे यह धुन समा जाती है कि मेरे पास किसी यत्न से दो रुपये हो जाते, फिर दो के तीन, तीन के चार। इसी प्रकार वह निन्नानवें के फेर में पड़ कर १०० रुपया पूरा किया चाहता है। फिर सौ से, दो सौ, चार सौ की धुन सवार होती है। तात्पर्य यह कि मनुष्य ने जहां केवल मन से आपका चिन्तन करना प्रारम्भ किया तहां झट आप उसकी उन्नति में सहायता देने लगते हैं।

छोटे छोटे बच्चे जो बाज़ार में दो चार पैसे की कौड़ियां बेचा करते हैं उन्हें तो आप शीघ्र ही अपना लेते हैं। आप उनके विनोदार्थ चार पैसे के पाँच बन जाते हैं। उनका साहस नित्यप्रति ऐसी लौटा फेरी करने में बढ़ता जाता है। बाल-अवस्था से ही उनमें कोई दुर्व्यसन नहीं घुसने पाता। दुर्व्यसनी तो वे जब हों, जब आपसे प्रेम न करें। भला आपका सेवक होकर दुर्व्यसनी कैसे हो सकता है?

हे द्रव्यदेव, जैसे परमात्मा चारों वेदों के वक्ता को या अत्यन्त सुरूपवान् को अधिक नहीं चाहता; चाहता केवल सदाचरणी और अपने भक्त जन को है; उसी प्रकार आप भी उन्हीं मनुष्यों को चाहते हैं जो आपके साथ अपना सदाचरण दिखलाते हैं; आपके सदैव भक्त बने रहते हैं; आपको कभी अपने पास से पृथक् नहीं करते और यदि पृथक् भी करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तो ऐसे स्थान में जहां आप दिन दूने रात चौगुने होते रहते हैं और पाँच के बदले दस होकर आते हैं।

यह सर्वसम्मत बात है कि जिस समय जिस वस्तु का अभाव हो उस समय उसी वस्तु की प्राप्ति की ओर अधिक ध्यान देना उचित है। शिशिर में ग्रीष्मोपयोगी वस्त्र बनाना बुद्धिमत्ता नहीं, न ग्रीष्म में शिशिरोपयोगी। जो दुःख उपस्थित हो उसका निवारण प्रथम कर्तव्य है। इस समय ध्यानपूर्वक विचारने से यही विदित होता है कि इस देश में इस समय अनेक देवी देवता डेरा जमाये हुए हैं। कोई बिरला ही घर होगा जिसमें आलस्यदेव न निवास करते हों। फूटदेव, वैमनस्यदेव तो प्रत्येक मनुष्य के हृदयमन्दिर में स्थापित से हैं। कामदेव की तो इस देश पर इतनी दया है कि अल्पवयस्क बालक से जरठ पर्य्यन्त को वे अपना सेवक बनाये हुए हैं। निद्रादेवी के अङ्क में कौन नहीं सुख से बहुमूल्य समय को नष्ट करता है? यदि इस देश में अभाव है तो केवल द्रव्यदेव का, जिनके बिना मनुष्य अपने को मनुष्य ही नहीं कह सकता। नीति-निपुणों का तो कथन है कि जिस मनुष्य में विद्या, तप, दान, शील, गुण, धर्म न हो वह मनुष्य पुच्छ-हीन पशु के समान पृथ्वी पर केवल भार स्वरूप है। वास्तव में यह उनका कथन सत्य भी है। भला द्रव्यदेव की सहायता के बिना कौन B. A., L. L. B., (बी० ए०, एल० एल० बी०,) कहला सकता है, न्यायालय का प्रधानवक्ता Barrister at Law (बैरिस्टर ऐट ला) कोई कैसे बन सकता है? षट्शास्त्री, साहित्याचार्य और दैवज्ञराट् होने में भी द्रव्यदेव ही मुख्य सहायक होते हैं। बिना द्रव्यदेव के दानी और शीलवान् भी कोई नहीं बन सकता। यदि कोई पूर्वसंस्कार से दरिद्रता में पण्डित अथवा गुणी हो भी गया तो उसका आदर कहीं भी नहीं होता। उसके सब गुण तृण से भी तुच्छ गिने जाते हैं। इसलिए इस देश के मनुष्यमात्र को उचित है कि इस श्लोक को क्षण क्षण पर स्मरण करता रहे—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वन्हिना।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे॥

अर्थात् जाति रसातल को जाय और गुणगण उस से भी अधिक नीचे जायँ। शील पर्वत से गिर कर नष्ट हो जाय और कुटुम्ब के लोग अग्नि में जल जायँ। शूरता-रूपी शत्रु पर वज्र पड़े। हमको केवल द्रव्य ही से काम है; क्योंकि उसके बिना ये सब गुण तृण के टुकड़े के समान हैं।

हे द्रव्यदेव, आपका स्तोत्र समाप्त हुआ। अब हम आपसे केवल यह वरदान चाहते हैं कि जैसे हमारे पूर्वजों पर आपकी कृपादृष्टि थी वैसही हम लोगों पर भी बनी रहे। इस देश के निवासी महात्माओं से हमारा यह निवेदन है कि वे लोग अब यह कहना छोड़ दें कि संसार माया का खेल है; रुपया पैसा तुच्छ है; केवल परमात्मा की आराधना सारभूत है। क्योंकि ऐसे उपदेश से देश में जो अनर्थ हो रहा है वह उन्हें अविदित नहीं है। उन्हें केवल इस श्लोक का उपदेश करना उचित है कि—

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम्।
तृतीये नार्जितो धर्मश्चतुर्थे किं करिष्यति?

यमुनाप्रसाद पाण्डेय।

काल की आत्म-कहानी।

अलख अगोचर मेरा रूप।
मैं हूं विमल ब्रह्म अनुरूप॥
कहते हो जो उसे अनादि।
तो मेरा भी कहीं न आदि॥१॥

जो कुछ हुआ दृष्टि को ओट।
उस पर की मैंने ही चोट॥
दिखता है जो वस्तु-विकाश।
उसे करूंगा मैं ही नाश॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे का भी वस्तु-विकार।
पावेगा मुझसे संहार॥
सब पर सम मेरा अधिकार।
नमन करे मुझको संसार॥३॥

जहां नहीं मैं, ठौर विशेष।
ऐसा नहीं जगत में शेष॥
बीत न पावे एक निमेष।
सकल सृष्टि में करूं प्रवेश॥४॥

वस्तुमात्र में सम-विस्तार।
तो भी नैन न सकें निहार॥
केवल सुन सकते हैं कान।
मेरे अनुपम नाम-विधान॥५॥

क्षण, पल, घटिका, वासर, मास।
वत्सर, युग मम नाम उजास॥
ये सब दिये तुम्हारे नाम।
पर मैं समवर्ती गुमनाम॥६॥

मेरे आदि अन्त का मान।
सके नहीं कोई भी जान॥
मेरा सत्वर गमन अबाध्य।
उसका रोधन महा असाध्य॥७॥

मुझसे नहीं किसी को रोक।
मुझे न कोई सकता टोक॥
मुझमें समा सके संसार।
ऐसा है मेरा विस्तार॥८॥

और सूक्ष्म भी ऐसा वेश।
जहां कहो, मैं करूं प्रवेश॥
मेरा अद्भुत अगम शरीर।
समझो उसको "टेढ़ी खीर"॥९॥

चाहे जिसका प्रादुर्भाव।
अथवा हो अत्यन्त अभाव॥
रोना-हँसना समझूं पोच।
दोनों का कुछ मुझे न सोच॥१०॥

ऊजड़ हो अथवा आबाद।
पावे कोई हर्ष-विषाद॥
भले-बुरे सब एक समान।
"बाइस पंसेरी सब धान"॥११॥

समझ बूझ कर योगायोग।
जो करते मेरा उपयोग॥
वे ही मेरे सच्चे भक्त।
मैं भी उन ही पर अनुरक्त॥१२॥

जिनने मुझे लिया पहिचान।
वे सुकर्म में रखते ध्यान॥
चाहे मुझे जायँ वे भूल।
पर मैं सदा रहूं अनुकूल॥१३॥

जो मुझसे होते प्रतिकूल।
वही फांकते निश्चय धूल॥
ज्ञानी को वृन्दारक*-वृक्ष।
अज्ञानी पर रञ्च न लक्ष॥१४॥

जो मेरा करते नहिं मान।
व्यर्थ जान करते अवसान॥
उन्हें न भूलूं मैं त्रयकाल।
जब तक करूं नहीं पामाल॥१५॥

इसके लिए पढ़ो इतिहास।
उसमें मेरा पूरा भास॥
बड़े बड़े बल-विक्रम-वान।
हुए, रहे ना नाम निशान॥१६॥

नाम उन्हींके हैं अवशेष।
जिनने समझा मुझे विशेष॥
जिसने मुझको आँख दिखाई।
उसकी मैंने धूल उड़ाई॥१७॥

हीरा, पन्ना, मोती, लाल।
इनसे मेरा मोल विशाल॥
क़दर करें वे जो गुणवान।
शाक-वणिक क्या समझें मान॥१८॥

---

* सुरतरु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो ग़रीब, चाहे श्रीमन्त।
मूरख-पण्डित, सन्त-असन्त॥
इनका मुझको नहीं विचार।
सबके साथ तुल्य व्यवहार॥१९॥

जो मुझसे रहते प्रतिकूल।
कभी न जग उनके अनुकूल॥
होते ही उनके अनुकूल।
वज्र होय जूही का फूल॥२०॥

यदि समुद्र मानो संसार।
तो मैं उसकी लहर अपार॥
मिलता कभी न मेरा पार।
केवल गया ब्रह्म से हार॥२१॥

मृग-शिशु पड़े सिंह मुख-बीच।
तो निश्चय हो उसकी मीच॥
वैसा ही है मेरा हाल।
मुझको समझो जग का काल॥२२॥

निर्गुण-सगुण, अबल-बलवान।
बाल-तरुण सब एक समान॥
नीच, ऊंच, ज्ञानी, अज्ञान।
सबका हो मुझमें अवसान॥२३॥

महि में मनुज, सिंह, गजराज।
नभ में खग, रवि, ग्रह, द्विजराज।
जल में नक्र-चक्र सरताज।
पर मेरा सब जग में राज॥२४॥

अनिल, अनल, दिनकर, निशिराज।
कहीं कहीं है इनका राज॥
तो भी कतिपय ऐसे देश।
जिनमें इनका नहीं प्रवेश॥२५॥

पर देखो कर दिल में ग़ौर।
ख़ाली मुझसे तनिक न ठौर॥
आतप, शीत और दिन रात।
इनने खाई मुझसे मात॥२६॥

ग्रीस, मिश्र, टर्की, ईरान।
किया इन्होंने मेरा मान॥
मैंने भी उनको सिरमौर।
बना दिया था करिये ग़ौर॥२७॥

मेरा जबसे छोड़ा ध्यान।
अधःपतन का हुआ निदान॥
दुनिया नई और योरोप।
इनकी देखो बढ़ती ओप॥२८॥

अमर-बेल सी इनकी वृद्धि।
सब कामों में होती सिद्धि॥
जब ये देंगे मुझे बिसार।
तब निश्चय होंगे निस्सार॥२९॥

भारत का जब मुझ पर ख़्याल।
था, तब वह भी मालामाल॥
जबसे छोड़ा मेरा ख़्याल।
तबसे ही है वह पामाल॥३०॥

जो अब भी मेरा सम्मान।
करे, बढ़े तो उसका मान॥
कह देता हूं मैं ललकार।
मुझ बिन सभी यत्न बेकार॥३१॥

भारतवासी ऐसे ढीठ।
"जिस रुख़ हवा, दीजिए पीठ"॥
झूठी करके यह कहनूत।
मनमानी करते करतूत॥३२॥

मैं उनके आया हूं हाथ।
अब भी मुझे झुकावें माथ॥
करें काम जो मुझको देख।
"मारे कौन रेख पर मेख"?॥३३॥

अगला पिछला वैर बिसार।
करें काम मिल सोच विचार॥
यदि हिम्मत अब के दी हार।
तो कर दूंगा मैं संहार॥३४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखो नन्हाँ सा जापान।
बड़ों बड़ों के काटे कान॥
उसने समझा मुझे अमोल।
मैंने दी इज़्ज़त जी खोल॥३५॥

ऐसी मेरी आत्म-कहानी।
समझें कोई बिरले ज्ञानी॥
करके अब बा-अदब सलाम।
करता हूं मैं ख़तम कलाम॥३६॥

(बाल-बोध)

सय्यद अमीरअली।

विकास-सिद्धान्त।

विकास-सिद्धान्त, प्राकृतिक विज्ञान की एक शाखा है। संसार में जितने पदार्थ हैं—जड़ अथवा चेतन—सब का विकास हुआ करता है। वे एक आकार से दूसरे आकार को प्राप्त हुआ करते हैं। यह विकास, अथवा आकार-परिवर्तन, बहुत धीरे धीरे होता है। जिस क्रिया से कोई वस्तु या वस्तु-स्थिति कुछ समय तक एक सी रह कर, दूसरी वस्तु या वस्तु-स्थिति को अपना स्थान दे देती है, उस क्रिया का नाम विकास है। इसी परिभाषा को ध्यान में रख कर सौर जगत् का विकास, वनस्पति-वर्ग का विकास, प्राणिवर्ग का विकास, मनुष्य-जाति का विकास आदि पारिभाषिक शब्दों की सृष्टि हुई है। पश्चिमी देशों के विद्वानों ने इस सिद्धान्त पर बड़े बड़े ग्रन्थ लिख डाले हैं। इन ग्रन्थों का तत्व यह है कि—"वर्तमान, भूत से उत्पन्न हुआ है और भविष्यत् का उत्पादक है"। अथवा यों कहिए कि—"वर्तमान काल भूत का जात और भविष्यत् का जनक है"। इसी बात को इस तरह भी कह सकते हैं कि—"अन्त में कोई चीज़ ऐसी नहीं जो आदि में न रही हो"।

विकास-सिद्धान्त से हमारा मतलब Evolution theory से है। इसे परिणतिवाद भी कह सकते हैं; क्योंकि इसके अनुसार एक प्रकार की स्थिति दूसरी स्थिति में परिणत होती जाती है। जितने जीवधारी हम जगत् में देखते हैं सब विकास का परिणाम हैं। वे ऐसे पूर्वजों की सन्तति हैं जो डील डौल में उनसे सीधे सादे थे। उनके भी पूर्वज ऐसों के वंशज थे जो उनसे भी अधिक सीधे सादे थे। इसी तरह, दूर तक, भूत-कालिक जीवों का पता लगाते चले जाने से जीव-विज्ञान के विद्वान् ऐसी स्थिति तक पहुँच जाते हैं जिसके आगे उनकी गवेषणा की गति नहीं है। इससे लाचार होकर उन्हें वहीं ठहर जाना पड़ता है। पर ठहराव से इस सिद्धान्त को धक्का नहीं पहुँचता। जिन प्रमाणों पर इस सिद्धान्त की भित्ति स्थापित हुई है वे निर्विवाद हैं—वे प्रत्यक्ष हैं—अतएव अच्छी तरह बोधगम्य हैं। पहले पहल जब कोई चीज़ बनती है सर्वाङ्ग सुन्दर और सब तरह से परिपूर्ण नहीं बनती। क्रम क्रम से उसमें उन्नति होती है। उन्नति के साथ साथ उसका सादापन भी कम होता जाता है और पेचोदगी बढ़ती जाती है। सृष्टि का भी यही हाल है। शुरू शुरू में जो जीव या पदार्थ पैदा हुए थे वे वैसे न थे जैसे इस समय हमें देख पड़ते हैं। प्राचीन जीवधारियों और पदार्थों का पता लगाने में जिन्होंने नाम पाया है उन्होंने इस बात को ख़ूब प्रबल प्रमाणों से सिद्ध कर दिखाया है। कुछ विज्ञानियों का ख़याल था और कुछ का अब भी है कि यह सृष्टि जैसी है वैसी ही पैदा हुई थी। ऐसा न मानने से स्रष्टा में अल्पज्ञता का दोष आता है और यदि ईश्वर ही स्रष्टा है तो उसे अल्पज्ञ कहना उसकी तौहीन करना है। परन्तु अनेक पाश्चात्य पण्डितों ने इस प्रकार की कल्पना को निःसार प्रमाणित किया है और क्रम-विकास सिद्धान्त को सब तरह से निर्दोष ठहराया है। विकास-सिद्धान्त को मानने से ईश्वर में अल्पज्ञता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का दोष आ भी नहीं सकता। जिस युग या जिस समय में, जिस तरह के जीवधारियों, वनस्पतियों और पदार्थों की आवश्यकता थी ईश्वर ने अपनी इच्छारूप प्रेरणा से उचित फेर फार कर के वैसेही पैदा कर दिये। इसमें उसकी तौहीन कैसे हुई? संसार की स्थिति के अनुसार वस्तुमात्र में स्थिति-परिवर्तन करनेवाले में अल्पज्ञता का दोष कैसे आ सकता है? उसे तो सर्वज्ञ अथवा ज्ञानि-शिरोमणि कहना चाहिए।

विज्ञानियों ने पहले पहल मनुष्य की उत्पत्ति और विकास का विचार किया; फिर दूसरे जीव-धारियों का; फिर वनस्पति-वर्ग का; फिर भाषा का। सब का पूर्व पूर्व पता लगाने से उन्हें मालूम हो गया कि अपनी अपनी जाति की उत्पत्ति अपने ही वर्ग की किसी शाखा से है। जब उन्होंने अपनी खोज को और आगे बढ़ाया तब उन्हें मालूम हुआ कि इस जगत् में जो कुछ जड़ अथवा चेतन है, क्रम-विकास सबके पीछे लगा हुआ है। सबकी परिणति का—सबके विकास का—एकही कारण है। इसी आधार पर एक अलग शास्त्र बन गया। यह शास्त्र अभी परिपक्वता को नहीं पहुँचा। इस की कितनी ही शाखायें हो गई हैं। विद्वानों की खोज अभी जारी है और प्रतिदिन नई नई बातें मालूम होती जाती हैं। इस सम्बन्ध में "आरिजिन आफ़ स्पिशीज़" नाम की किताब लिख कर डारविन साहब ने बड़ा नाम पाया। यह किताब उनकी बीस पच्चीस वर्ष की मेहनत का फल है। विकास-सिद्धान्त के आधार पर डारविन साहब ने ही यह सिद्ध किया कि मनुष्य की उत्पत्ति बन्दर से है। अर्थात् बन्दर हम लोगों के पूर्वपुरुष हैं। उनके आकार में क्रम क्रम से परिवर्तन होते होते आदमी की सृष्टि हुई है। उत्पत्ति-सिद्धान्त पर जो पुस्तकें अँगरेज़ी में निकली हैं, उनमें इन बातों का खूब विस्तृत विचार किया गया है।

हम अपनी आँखों से देखते हैं कि वृक्ष बीज का विकास है। बीज से अङ्कुर, अङ्कुर से पौधा और पौधे से पेड़ पैदा हो जाता है। प्रकृति की प्रेरणा इस विकास या परिणाम का कारण है। कोई ऐसी शक्ति है जो खुद तो नहीं देख पड़ती, पर अपने कार्य्य वह प्रत्यक्ष दिखला देती है। जिस शक्ति ने अङ्कुर से पेड़ पैदा कर दिया वह प्रत्यक्ष नहीं, पर उसका कार्य्य, अङ्कुर से लेकर पेड़ तक, प्रत्यक्ष है। यही हाल प्रत्येक वस्तु की जाति, वर्ग या वंश का है। बरगद के वृक्ष को हम जिस रूप रंग या डील डौल का देखते हैं, वह उसे एक दम नहीं मिल गया। वह हज़ारों, नहीं, लाखों वर्ष के विकास का फल है। पहले वह कुछ और ही तरह का था। धीरे धीरे उसे वर्तमान आकार-प्रकार प्राप्त हुआ है। जो शक्ति बीज से वृक्ष पैदा करती है वही वर्ग-विशेषों में परिवर्तन भी पैदा करती है। यहां पर भी उस का कार्य्यमात्र देख पड़ता है; खुद वह अदृश्य रहती है। जिस तरह सीधे सादे एक छोटे से अण्डे या बीज से शुतुरमुर्ग़ ऐसे प्रकाण्ड पक्षी और बरगद ऐसे प्रकाण्ड पेड़ पैदा हो जाते हैं, उसी तरह ये जितने पशु, पक्षी, पेड़ और पौधे आदि हैं सब शुरू में बहुत ही सीधे सादे पूर्वजों से पैदा हुए हैं। इनके आदिम पूर्वज सादगी के अवतार थे।

कोई वस्तु ऐसी नहीं जो सदा एक ही अवस्था या आकार में रहती हो। एक ही तरह के बीज से पैदा हुए पेड़ों में कुछ न कुछ भेद ज़रूर होता है। एकही माता-पिता की सन्तति के रूप-रंग में थोड़ा बहुत भेद ज़रूर होता है। इस भेद का कारण जल, वायु, स्थान, साहचर्य्य आदि हो सकते हैं। ये कारण ऐसे हैं जिनका भावी सन्तति पर असर पड़ने की उतनी सम्भावना नहीं रहती। पर बीज-गत विशेषता के कारण जो परिवर्तन होते हैं उनका असर भावी सन्तति पर ज़रूर पड़ता है। इन परिवर्तनों का परिणाम होते होते प्रत्येक वर्ग के पूर्वजों और वंशजों में इतना अन्तर हो जाता है कि उनका जन्य-जनक भाव तक मुशकिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पहचाना जा सकता है। अतएव यदि जुदा जुदा डील डौल और रूप रंग के चार भाइयों का पिता एक हो सकता है, तब पेड़, पशु, पक्षी आदि के प्रत्येक वर्ग का एकही पूर्वज से पैदा होना भी सम्भव हो सकता है। बहुत सम्भव है बरगद और पीपल एक ही पूर्वज की सन्तति हों और इमली और आँमला भी एक ही से उत्पन्न हुए हों। पशुओं में शेर, बाघ, चीता, तेंदुवा, और बिल्ली के सादृश्य को देख कर कौन न क़बूल करेगा कि ये सब एक वर्ग के हैं और घोड़ा, गधा और खच्चर दूसरे वर्ग के हैं? अतएव किसी समय इनका उत्पादक भी एकही रहा होगा। यही अनुमान जलचरों और पक्षियों के विषय में हो सकता है। यहां तक कि संसार का सर्व-श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य भी इसी सिद्धान्त के अन्तर्गत है। हज़ारों वर्ष से भूगर्भ में गड़ी हुई जीवों की जो हड्डियां मिली हैं उन्होंने सिद्ध कर दिखाया है कि पहले मगर की तरह के किसी किसी जीव के पर होते थे। वे जल में भी रहते थे, थल में भी, और आकाश में भी। सम्भव है पक्षियों की उत्पत्ति ऐसे ही जीवों से हुई हो। वैज्ञानिकों की व्याख्याओं को सुनकर कौन कह सकता है कि पक्षियों का उत्पादक किसी ज़माने में एक ही न रहा होगा? इसी तरह पशु भी यदि किसी एक ही जीव-विशेष से पैदा हुए हों और अनन्त काल बीत जाने पर धीरे धीरे उनके वे सब भेद हो गये हों जिन्हें हम इस समय देखते हैं तो क्या आश्चर्य्य? इसी सिद्धान्त के अनुसार यह भी सम्भव है कि जितने प्राणी हैं सबका उत्पादक किसी समय एकही रहा हो। और उसी एक को हमारा वेदान्त-शास्त्र परब्रह्म, परमात्मा, आदि-पिता कहता हो। कौन कह सकता है कि उसीसे यह सारी सृष्टि नहीं विकसित हुई? कौन इस बात का पक्का प्रमाण दे सकता है कि किसी समय फिर यह उसी में न लीन हो जायगी?

सारे जीवधारियों की सृष्टि देश, काल और अवस्था के अनुसार हुई है। जिस समय पृथ्वी पर जल की अधिकता थी, थल बहुत ही कम था, उस समय, पहले पहल, मछलियों की सृष्टि हुई। इस अनुमान को विज्ञान-शास्त्र के विद्वानों ने अनेक प्रमाणों से दृढ़ किया है। इसके बाद ऐसे जीव उत्पन्न हुए जो जलचारी भी थे और थलचारी भी। उन्हीं से पक्षियों की उत्पत्ति हुई। उनके बाद केवल थलचारी पशु और मनुष्य पैदा हुए। नीच वर्ग के प्राणियों की उत्पत्ति पहले हुई और उच्च जाति के प्राणियों की पीछे। उच्चता के साथ साथ शरीर की बनावट आदि में विशेषता आती गई। यह बात भी विकास-सिद्धान्त के अनुसार ही हुई। क्योंकि सीधे से टेढ़े की उत्पत्ति होना इस सिद्धान्त का एक मूल मंत्र है और यह बहुत दुरुस्त है। संसार में भी हम यही देखते हैं। साधारणता पहले और विशेषता पीछे होती है।

जो प्रकृति अनेक प्रकार के जीव-जन्तु पैदा करती है वही उनका नाश भी करती है। यदि जितने प्राणधारी पैदा हों सब बने रहें और विकास-सिद्धान्त के अनुसार उनकी शाखा-प्रशाखाओं की सन्तति बराबर ही बढ़ती चली जाय तो न सबके खाने को ख़ूराक मिले और न रहने को जगह। इसलिए प्रकृति ने इसका प्रबन्ध पहले ही से कर दिया है। जितने बीज बोये जाते हैं पहले तो सब उगते ही नहीं। और जो उगते हैं उनमें सब से अधिक बलिष्ठ पौधे ही ज़िन्दा रहते हैं। निर्बल पौधे बलिष्ठों से दब कर कुछ दिनों में मर जाते हैं। जीवधारियों की भी यही दशा है। अनेक जीव गर्भ ही में नष्ट हो जाते हैं। अनेक कुछ दिन जीकर मर जाते हैं। अनेक परस्पर एक दूसरे को खा जाते हैं। इसी से आज तक जीव-जन्तुओं के कितने ही वर्ग नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। संसार में जीवन-निर्वाह का बड़ा विकट झंझट जीवों के पीछे लगा हुआ है। जो सबल होने के कारण अपना जीवन अच्छी तरह निर्वाह कर सकते हैं वे ही जीते रहते हैं। शेष नाश को प्राप्त हो जाते हैं। देश और काल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की व्यवस्था के अनुसार जीवों को अनेक प्रतिकूल बातों का सामना करना पड़ता है। उनसे वही पार पा सकते हैं जो अधिक सबल और उनके सहने की अधिक शक्ति रखते हैं। निर्बल का कहीं ठिकाना नहीं। स्वयं प्रकृति भी, जो सबल और निर्बल दोनों ही को पैदा करती है, निर्बल का पक्ष न लेकर सबल का ही लेती है। अतएव सिद्ध है कि संसार में निर्बल का गुज़ारा नहीं। इससे मनुष्य को सदा सबल बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

विकास-सिद्धान्त अभी बाल्यावस्था में है। कोई दिन ऐसा आवेगा जब यह अपने आविष्कारों से संसार को और भी अधिक चकित कर देगा। यह विषय इतना कठिन है कि इसकी दो ही एक मोटी मोटी बातें हमने यहां लिखना उचित समझा। किसी समय, इस विषय पर, एक लम्बा लेख प्रकाशित करने का इरादा है।

शङ्कराचार्य्य और मण्डन मिश्र का संवाद।

कुछ दिन हुए पुराने काग़ज़ों में हमें अपनी १५ वर्ष की पुरानी एक नोटबुक मिली। "शङ्करविजय" नामक काव्य पढ़ते समय जो जो स्थल हमें विशेष महत्वपूर्ण जान पड़े थे उन पर इस नोटबुक में कुछ विचार थे। उन्हें देख कर हमें शङ्कराचार्य्य और मण्डन मिश्र के संवाद का स्मरण हो आया। इस संवाद से बहुत सी शिक्षायें ग्रहण की जा सकती हैं। अतएव संस्कृत-श्लोक-सहित हम इसे यहां पर प्रकाशित करते हैं।

शङ्कराचार्य्य का चरित कई संस्कृत-ग्रन्थों में वर्णन किया गया है। पर उन सबमें माधवाचार्य्य-संग्रहीत शङ्करविजय का विशेष आदर है। शङ्कर और मण्डन का वार्तालाप उसीके आठवें सर्ग में है। मण्डन मिश्र पूर्व-मीमांसा के अनुयायी अर्थात् कर्म्मकाण्डी थे। उनका पाण्डित्य-सौरभ दिगन्त-व्यापी था। शङ्कराचार्य्य ने उनको शास्त्रार्थ में परास्त करके अद्वैत-वेदान्तवादी बनाना चाहा। उस समय शङ्कर प्रयाग में थे। वहां से उन्होंने नर्म्मदातट पर बसी हुई माहिष्मती नामक नगरी को प्रस्थान किया। वहीं मण्डन रहते थे।

माहिष्मती में शङ्कर शहर के बाहर एक बाग़ में उतरे और आह्निक कृत्यों से निवृत्त होकर मण्डन मिश्र का घर ढूंढ़ते हुए चले। मार्ग में उन्हें मण्डन की दो दासियां मिलीं। वे पानी भरने जा रही थीं। उनसे शङ्कर ने मण्डन मिश्र के घर का पता पूछा। दासियों ने कहा—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥१॥
फलप्रदं कर्म्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥२॥
जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥३॥

अर्थात् जिस दरवाज़े पर पिंजड़े में बन्द शुकों की स्त्री शुकी या मैना आदि पक्षियों को यह कहते सुनना कि वेद स्वतः प्रमाण हैं या परतः प्रमाण हैं? सुख दुःख इत्यादि फल कर्म्म देता है या सर्व-शक्तिमान् अजन्मा ईश्वर देता है? संसार नित्य है या अनित्य? उसीको मण्डन पण्डित का मकान समझना।

इससे मण्डन पण्डित के पाण्डित्य का अन्दाज़ा हो सकता है। जिसकी दासियां इतनी पण्डिता, जिसके शुक शास्त्रार्थ-वाक्यों के उच्चारण में इतने प्रवीण, वह अवश्य ही दिग्गज पण्डित रहा होगा। मण्डन की दासियों से घर का पता सुन कर शङ्कर उसके द्वार पर पहुँचे। देखा तो दरवाज़ा बन्द है। इससे शिष्यों को तो वहीं छोड़ा। आप आकाश-मार्ग से उसके आँगन में जा उतरे। यहां पर बहुत सी शङ्कायें हो सकती हैं। शङ्कराचार्य ऐसे महात्मा माहिष्मती में पहुंचे। वे बाहर बाग़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पड़े रहे! फिर खुद ही मण्डन का मकान ढूंढ़ते चले! ऐसे विश्वविदित पण्डित के दरवाज़े पर क्या कोई ऐसा न था जो उनके आने की ख़बर मण्डन को करता और तब तक उनका आदर-सत्कार भी करता? फिर आकाश-मार्ग से जाना कैसा? परन्तु इन शङ्काओं के उत्थान की यहां कोई आवश्यकता नहीं। शङ्कराचार्य्य तो प्रयाग से माहिष्मती तक आकाश-मार्ग ही से गये थे। उन्होंने परकायप्रवेश भी किया था। इसके सिवा और भी कितने ही लोकोत्तर काम किये थे। फिर शङ्करविजय एक काव्य है; इतिहास नहीं। मण्डन के विषय में भी लिखा है कि व्यास और जैमिनि उनके यहां विद्यमान थे। अतएव शङ्का-समुद्भावना न करके शङ्कर और मण्डन की सिर्फ़ दुरुक्तियां सुनिए।

मण्डन के आँगन में उतर कर आचार्य्य ने देखा कि मण्डन मिश्र श्राद्ध में निमन्त्रित होकर आये हुए वेदव्यास और जैमिनि के पाद-प्रक्षालन कर रहे हैं। शङ्कराचार्य्य जाकर व्यास और जैमिनि के पास बैठ गये। संन्यासी के रूप में शङ्कर को इस तरह उन दो महात्माओं के पास बैठते देख मण्डन को क्रोध हो आया। इस पर मण्डन मिश्र और आचार्य्य में परस्पर जो उत्तर प्रत्युत्तर हुए वे सुनने लायक़ हैं। विशेषता इनमें यह है कि जो कुछ मण्डन ने कहा या पूछा उसका प्रायः और ही अर्थ करके आचार्य्य ने उत्तर दिये। सुनिए—

मण्डन—"कुतो मुण्डी"। मुण्डी (अर्थात् सिर मुँडाये हुए) तू कहां से आया? इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि शरीर के किस भाग से तूने मुण्डन किया है?

शङ्कर—"आगलान्मुण्डी"—गले तक मुण्डन किया है।

मण्डन—"पन्थास्ते पृच्छ्यते मया"। मैं तेरा रास्ता पूछता हूं। यह कर्म्मवाच्य प्रयोग है। अतएव उसी वाच्य में यदि इसका अनुवाद किया जाय तो हो—"तेरा रास्ता मुझसे पूछा जाता है"। इसी पिछले अर्थ को लक्ष्य करके आचार्य्य कहते हैं—

शङ्कर—"किमाह पन्थाः"। रास्ते ने क्या कहा? इस तरह के उलटे उत्तर सुन कर मण्डन कुपित हो उठे और बोले—

मण्डन—"त्वन्माता मुण्डेत्याह"—उसने (रास्ते ने) कहा कि तेरी माँ मुण्डा है।

शङ्कर—"तथैव हि"। बहुत ठीक कहा। पूर्वोक्त संस्कृत उत्तर-प्रत्युत्तरों का एक श्लोक हो गया। यथा—

"कुतो मुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छ्यते मया।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि॥"

शङ्कराचार्य्य ने "तथैव हि" कह कर साथ ही यह श्लोक पढ़ा—

"पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मण्डन।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम्॥"

मण्डन, तूने ही रास्ते से प्रश्न किया। तुझी को रास्ते ने जवाब में कहा कि "तेरी माता मुण्डा है"। मैंने तो रास्ते से कुछ पूछा ही नहीं। इसलिए रास्ते का उत्तर मेरे लिए नहीं, तेरे ही लिए है। अर्थात् रास्ते ने तेरी ही माँ को मुण्डा बतलाया। यह सुन कर मण्डन और भी अधिक कुपित हुए। आप कहते हैं—

मण्डन—"अहो पोता किमु सुरा?" क्या तूने सुरा पी है? यहां पर "पीता" शब्द के अर्थ "पी गई" और "पीली" दोनों हो सकते हैं।

शङ्कर—"नैव श्वेता यतः स्मर"। नहीं, सुरा पीत नहीं होती श्वेत होती है। उसके रंग को याद कीजिए।

मण्डन—"किं त्वं जानासि तद्वर्णं"। क्या तू उसके वर्ण को जानता है?

शङ्कर—"अहं वर्णं भवान् रसम्"। मैं तो सिर्फ़ उसके वर्ण को ही जानता हूं, पर आप तो उसके ज़ायक़े से भी परिचित हैं! संन्यासियों को शराब छूना मना है। जब मण्डन ने शङ्कर पर उसके रंग जानने का दोष लगाया तब उन्होंने मण्डन को सुरापायी कह कर अपने ऊपर आये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए आक्षेप का वारण किया। पूर्वोक्त संस्कृत वाक्यों के मेल से यह श्लोक बना—

"अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर।
किं त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान् रसम्॥"

इस पर मण्डन का कोप और भी बढ़ा। उन्होंने यह श्लोकार्ध कहा—

"मत्तो जातः कलंजाशी विपरीतानि भाषसे।"

अर्थात् कलंज नामक मांस का खानेवाला तू मत्त (मतवाला) होकर विपरीत बातें कह रहा है। "मत्तो जातः" का अर्थ "मतवाला होगया" भी होता है और "मुझसे पैदा हुआ" भी होता है। संन्यासियों को मांस खाना बहुत मना है। इससे ऐसे घृणित आरोप को सुनकर और पिछले अर्थ को लक्ष्य करके शङ्कर ने दूसरा श्लोकार्द्ध कह कर उस श्लोक को पूरा कर दिया। आपने कहा—

"सत्यं ब्रवीति पितृवत् त्वत्तो जातः कलंजभुक्॥"

जैसे तू, पिता, कलंजाशी होकर विपरीत बातें बकता है वैसे ही तुझसे उत्पन्न हुआ कलंजाशी, जो विपरीत बातें कहता है तो ठीक ही करता है। जैसा बाप, वैसा बेटा!

मण्डन—"कन्यां वहसि दुर्बुद्धे! गर्धभेनापि दुर्वहाम्।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति?"

गधे से भी मुश्किल से वहन की जाने लायक़ इतनी भारी गुदड़ी को तो तू लिए हुए फिरता है, पर शिखा और यज्ञोपवीत क्या इतने भारी हैं कि तुझसे न उठते? वाह रे दुर्बुद्धे!

शङ्कर—"कन्यां वहामि दुर्बुद्धे! तव पित्रापि दुर्भराम्।
शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति॥"

रे दुर्बुद्धे! मैं जो कन्था वहन करता हूं वह तेरे बाप से भी मुश्किल से उठाई उठती (मण्डन के पिता को शङ्कर ने गधा बनाया) और शिखा यज्ञोपवीत से मुझको ही नहीं श्रुति (वेद) को भी बोझ मालूम होता है। क्योंकि श्रुति में लिखा है कि संन्यासी को इनकी ज़रूरत नहीं—"अथ परिव्राड् विवरणवासा मुण्डोपरिगृहम्"।

मण्डन—"त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्तः परिरक्षणे।
शिष्यपुस्तकभारेच्छोर्व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता॥"

अपनी विवाहिता स्त्री की रक्षा नहीं हो सकती, इसलिए उसका त्याग करके शिष्य और पुस्तकों के इस बोझ की रक्षा रखनेवाले तेरी ब्रह्मनिष्ठा ख़ूब ज़ाहिर हो रही है!

शङ्कर—"गुरुशुश्रूषणालस्यात्समावर्त्य गुरोः कुलात्।
स्त्रियः शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्म्मनिष्ठता॥"

गुरु की सेवा-शुश्रूषा में आलस्य के कारण गुरु के कुल से समावर्तन करके (घर आकर) स्त्रियों की सेवा करनेवाले तेरी कर्म्मनिष्ठा ख़ूब जगमगा रही है!

मण्डन—"स्थितोऽसि योषितां गर्भे ताभिरेव विवर्धितः।
अहो कृतघ्नता मूर्ख! कथं ता एव निन्दसि॥"

रे मूर्ख, जिन स्त्रियों के गर्भ में तू रहा और जिन्होंने पालपोस कर तुझे इतना बड़ा किया उन्हीं की तू इस तरह निन्दा करता है! इस कृतघ्नता का भी कहीं ठिकाना है?

शङ्कर—"यासां स्तन्यं त्वया पीतं यासां जातोऽसि योनितः।
तासु मूर्खतम! स्त्रीषु पशुवद्रमसे कथम्?"

रे मूर्खतम, जिनका तूने दूध पिया और जिनसे तू उत्पन्न हुआ उन्हींमें तू पशुओं के समान रममाण होता है! आश्चर्य्य और कृतघ्नता की हद होगई!!!

मण्डन—"वीरहत्यामवाप्तोऽसि वह्नीनुद्वास्य यत्नतः"।

गार्हपत्य, दाक्षिण और आहवनीय इन तीनों प्रकार की अग्नियों का नाश करके तू वीरहत्या (इन्द्र-हत्या) का पापी हुआ है। क्योंकि श्रुति में लिखा है—"वीरहा वा एष देवानां योऽग्नीनुद्वासयति"। और संन्यासी इन तीनों प्रकार की अग्नियों को दूर करके संन्यास ग्रहण करता है।

शङ्कर—"आत्महत्यामवाप्तस्त्वमविदित्वा परं पदम्"।

परन्तु परम पद को न जान कर तू तो आत्म-हत्या का पापी हुआ है। इसका भी तो विचार कर। "असन्नेव स भवति" इत्यादि श्रुति इस बात का प्रमाण है।

मण्डन—"दौवारिकान् वञ्चयित्वा कथं स्तेनवदागतः"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाज़े पर द्वारपालों की वञ्चना करके—उनकी नज़र छिपा कर—चोर की तरह तू कैसे घर में घुस आया ?

शङ्कर—"भिक्षुभ्योऽन्नमदत्वा त्वं स्तेनवद्रोक्ष्यसे कथम्" ॥

अतिथिरूप भिक्षुओं को अन्न (उनका भाग) न देकर चोर की तरह तू उसे कैसे खाता है ?

इस प्रकार शङ्कराचार्य्य की बातों के उत्तर देने में असमर्थ होकर मण्डन ने एक और ही चाल चली। वे बोले—

मण्डन—"कर्म्मकाले न सम्भाष्य अहं मूर्खेण सम्प्रति"।

इस समय मैं कर्म्म (श्राद्ध) कर रहा हूं। अतएव तुझ मूर्ख के साथ मैं बातचीत नहीं करना चाहता। इस श्लोकार्द्ध में यतिभङ्ग दोष है। इस को लक्ष्य करके शङ्कर कहते हैं—

शङ्कर—"अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभङ्गेन भाषिणा"।

यतिभङ्ग अर्थात् पाठ-विच्छेद-युक्त भाषण करके तूने अपना ज्ञान ख़ूब दिखलाया।

मण्डन—"यतिभङ्गे प्रवृत्तस्य यतिभङ्गो न दोषभाक्"।

जो यति (संन्यासी) का भङ्ग करने पर उतारू है उसका यति (विच्छेद या विराम स्थान) भङ्ग सदोष नहीं समझा जाता।

शङ्कर—"यतिभङ्गे प्रवृत्तस्य पञ्चम्यन्तं समस्यताम्"।

"यतिभङ्ग" इस समास को षष्ठी-तत्पुरुष नहीं, किन्तु पञ्चमी-तत्पुरुष समझ और "यति का भङ्ग" अर्थ न करके "यति से भङ्ग" अर्थ कर। अर्थात् तू यति का भङ्ग करने पर नहीं किन्तु यति से भङ्ग होने पर प्रवृत्त हुआ है।

मण्डन—"क ब्रह्म क च दुर्मेधाः क संन्यासः क वा कलिः।
स्वाद्वन्नभक्ष्यकामेन वेषोऽयं योगिनां धृतः" ॥

कहां ब्रह्म, कहां दुर्बुद्धि ? कहां संन्यास, कहां कलि ? गृहस्थों को वञ्चित करके सुस्वादु भोजन करने ही के लिए तूने यह संन्यासियों का रूप धारण किया है।

शङ्कर—"क स्वर्गः क दुराचारः क्वाग्निहोत्रं क वा कलिः।
मन्ये मैथुनकामेन वेषोऽयं कर्म्मिणां धृतः" ॥

कहां स्वर्ग, कहां दुराचार ? कहां अग्निहोत्र, कहां कलि ? मेरी समझ में सिर्फ़ विषय-सेवन की इच्छा से तूने यह कर्म्मकाण्डियों का रूप धारण किया है।

इस प्रकार जब दुरुक्तियों की मात्रा बहुत ही बढ़ी तब वेदव्यास और जैमिनि ने मण्डन को समझा बुझा कर शान्त किया। अन्त को मण्डन की स्त्री सरस्वती को मध्यस्थ बना कर शङ्कर ने मण्डन के साथ शास्त्रार्थ किया और उसे परास्त किया। तब मण्डन की स्त्री ने शङ्कर को शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया। उसने जब स्त्री-पुरुष-विषयक शास्त्र में शङ्कर से प्रश्न किया तब उनसे उत्तर न बन पड़ा। इसलिए कुछ दिनों की मोहलत लेकर शङ्कर ने इस शास्त्र को भी, एक मृतक राजा के शव में प्रवेश करके, पढ़ा और वहां से लौट कर यथा-समय सरस्वती को भी उन्होंने शास्त्रार्थ में जीता।

वर्षा।

मनभाई यह वर्षा आई ;
प्रभु ने कैसी इसे बनाई।
जग को जीवन देती है यह ;
सबको ख़ुश कर देती है यह ॥१॥

मन में प्रमुदित हो किसान अब
निज निज काम कर रहे हैं सब।
चला रहे हल कोई कोई,
बीज बो रहे कोई कोई ॥२॥

"कृषि-विज्ञान सीख कर जो ये
काम करें, सुख पावें तो ये।
सब चीज़ें अच्छी उपजावें ;
अपना दुख दारिद्र नसावें ॥३॥

धनी शीघ्र ही ये हो जावें ;
"भारत का भी नाम बढ़ावें"।
जो हैं विबुध, सुमति, विज्ञानी ;
इन्हें देख यों कहते वाणी ॥४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े बड़े बादल घिर आये ;
आसमान में देखो छाये ।
मन माना पानी बरसाया ;
कृषकजनों का मन हरषाया ॥५॥

आँखों को सुख देनेवाली
जङ्गल में छाई हरियाली ।
वीरबहूटी-यूथ पड़े हैं ;
ज्यों पन्ने में लाल जड़े हैं ॥६॥

बांका, विकट, मनोहर, चोखा,
लोचन-सुखकर, बड़ा अनोखा ।
रङ्ग बिरङ्गा धनुष चढ़ा है ;
बच्चों का आनन्द बढ़ा है ॥७॥

देखो बोल रहे हैं दादुर ;
कूक रही कोकिला मधुरतर ।
मोर नाचते हैं मदमाते ;
केका की ध्वनि खूब सुनाते ॥८॥

"पी पी" शब्द पपीहा करता ;
विरही जन की सुध बुध हरता ।
याद दिलाता है गिरिधर की ;
व्रज-बाला के प्राणेश्वर की ॥९॥

इसके मुख की "पी पी" सुनकर ,
प्रेममत्त ईर्षा—पर होकर ।
कहतीं कोई सखियां भोली—
"बोल सदा तू पी पी बोली" ॥१०॥

सबके मन में मोद बढ़ाती,
हवा केतकी की है आती ।
बादल से फुररी गिरती हैं ;
सबके हृदय सरस करती हैं ॥११॥

तरु कदम्ब के फूल रहे हैं ;
वहीं प्रेमि-जन झूल रहे हैं ।
राग मलार मनोहर गाते ;
मधुर-राग-रस हैं टपकाते ॥१२॥

घनश्याम की छटा दिखाती ;
रसिकजनों के चित्त लुभाती ;
काली काली बहुत सुहाती ;
जामुन, कोयल, बदली, भाती ॥१३॥

श्यामघटा छाई है सुन्दर ;
बिजली कोंध रही है फिर फिर ।
ज्यों ज्यों घन करते हैं गर्जन ,
त्यों त्यों रागरङ्ग करते जन ॥१४॥

बाबू कर पर कर निज रखकर ,
बैठे रहते हैं कुरसी पर ।
और न कुछ उनसे बन पड़ता ;
वचन-मेह बस मुँह से झड़ता ॥१५॥

लगा मेह-झड़ जब होता है ;
दिन मालूम नहीं होता है ।
दो दो तीन तीन दिन तक रवि
नहीं दिखाता है अपनी छवि ॥१६॥

कुँआँ, बावड़ी, कुण्ड, झील, सर,
सभी लबालब गये खूब भर ।
कूड़ा करकट आदि बहातीं ,
नदियां छोड़ किनारे जातीं ॥१७॥

दीपक जलते जहां कहीं हैं ;
जाते विविध पतंग वहीं हैं ।
नहीं चैन से पढ़ने देते ;
उड़ उड़ दौड़ दौड़ दुख देते ॥१८॥

जो कच्चे घर में रहते हैं ,
कष्ट बहुत ही वे सहते हैं ।
पानी चूता है घर-भीतर ;
हो जाता सामान सभी तर ॥१९॥

रोटी करनेवाले जन सब
दियासलाई रगड़ रगड़ अब ।
चूल्हा फूंक फूंक सुलगाते ;
रो रो देते आग जलाते ॥२०॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशी धुस्से कम्बल, छाते,
काम बहुत ही हैं ये आते।
जो जन कुछ भी समझदार हैं,
इनका करते बड़ा प्यार हैं ॥२१॥

देखो पर्वत हैं हरियाये;
हरियाली से हैं सब छाये।
साज प्रकृति ने खूब सजाये;
लता, वृक्ष, लहलहे बनाये ॥२२॥

गिरिधर शर्म्मा।

परमात्मा की परिभाषा।

वह कौन सी वस्तु है जो (१) एक होकर भी अनेक है; (२) कुछ न होकर भी कुछ है; (३) निराकार होकर भी साकार है; (४) ज्ञानवान् होकर भी ज्ञानहीन है; (५) दूर होकर भी पास है; (६) सूक्ष्म होकर भी महान् है; (७) महासागर में बुलबुलों के समान अनन्त जगत् जिसमें लीन हो जाता है; (८) जो चल होकर भी अचल है; (९) जो सूर्य, चन्द्रमा, तारागण और अग्नि न होकर भी उन सब को प्रकाशक है; (१०) जो अन्धकारमय होकर भी प्रकाशवान् है; (११) पल होकर भी युग है और युग होकर भी पल है; (१२) अज्ञात होकर भी ज्ञात है; (१३) सूक्ष्म होकर भी सब कहीं विद्यमान है; (१४) सर्वमय होकर भी कुछ नहीं है; (१५) अहङ्कार होकर भी निरहङ्कार है; (१६) प्राप्त होकर भी अप्राप्य है; (१७) जिसमें यह सारी सृष्टि लीन हो जाती है और यथासमय फिर विकास को प्राप्त होती है; (१८) और रूपहीन होकर भी जिसमें हज़ारों हाथ और हज़ारों आँखें हैं?

इस वस्तु का नाम है ब्रह्म, परब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर अथवा परमात्मा। अब पूर्वोक्त लक्षणों का स्पष्टीकरण सुनिए—

(१) वह एक है, क्योंकि उसका भेद नहीं हो सकता। जितने भेद हैं सब उसी की सत्ता पर अवलम्बित रहते हैं। इसीसे वह अनेक-रूपी मालूम होता है। (२) वह कुछ नहीं है, क्योंकि उसकी भावना नहीं हो सकती; इन्द्रिय और मन उसकी कल्पना करने में सर्वथा असमर्थ हैं। वह कुछ इस लिए है, क्योंकि जितने पदार्थ हैं सब की सत्ता का कारण वही है। (३) उसका कोई रूप नहीं, इसलिए वह निराकार है। पर निराकार होकर भी वह साकार है; क्योंकि वह स्वयं ही आकारहीन बुद्धि या ज्ञान है। (४) जब मनुष्य की तरह की कोई सज्ञान चीज़ उसका आश्रय लेती है तब वह ज्ञानवान् मालूम होता है। पर जब मिट्टी या पत्थर के समान किसी अज्ञान चीज़ का उससे सम्बन्ध हो जाता है तब वह ज्ञानहीन जान पड़ता है। (५) वह दूर है, क्योंकि न तो इन्द्रियों ही से वह जाना जा सकता है और न मन ही से। वह अत्यन्त पास इसलिए है कि हमारी आत्मा का एक मात्र आधार वही है। (६) वह सूक्ष्म है; क्योंकि आँखें उसे नहीं देख सकती हैं। वह महान् है; क्योंकि संसार की सज्ञानता का एक मात्र वही कारण है। (७) परमात्मा महासागर के समान है। सूर्य, चन्द्र, तारागण और जगत् उसके बुलबुले हैं। बुलबुले महासागर से जुदा नहीं होते। जिस चीज़ का महासागर है उसी के बुलबुले भी होते हैं। तिस पर भी उनका नाम बुलबुला रक्खा गया है। अर्थात् महासागर से उनकी भिन्नता दिखलाई गई है। पर भिन्नता का कारण है नाम और आकार। बुलबुला एक ऐसी चीज़ है कि उसका ध्यान करते ही समुद्र का भी ध्यान मन में आ जाता है। वह समुद्र से जुदा नहीं रह सकता; क्योंकि वह उसी का अंश है। इसी तरह यह संसार परमात्मा से भिन्न नहीं है। पर जो यह भिन्नता जान पड़ती है उसका कारण केवल नाम और आकार की भिन्नता है। जब बुलबुला नष्ट हो जाता है तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका आकार भी नष्ट हो जाता है। इसी तरह अनेक रूप और अनेक आकार का यह जगत् भी परमात्मा में लीन होकर नष्ट हो जाता है। (८) वह सर्वव्यापी है; इस लिए वह चलेगा कहां? उस पर गति का आरोप करने से जान पड़ता है कि वह चलता है। यह आरोप ही इस भासमान गति का कारण है। (९) वह स्वयं ज्योतिर्मय है। सूर्य, चन्द्रमा और तारागण इत्यादि में जो प्रकाश है वह उनका नहीं। ये व्योमवर्ती पिण्ड एक प्रकार के प्रतिबिम्ब मात्र हैं। उनमें जो ज्योति है वह स्वयं ज्योतिर्मय परमात्मा की ज्योति की छाया है। (१०) उसका ज्ञान ठीक ठीक नहीं हो सकता; उसकी बातें ठीक ठीक समझ में नहीं आतीं। इससे वह अन्धकारमय जान पड़ता है। पर उसमें ज्ञान की पराकाष्ठा है; इससे वह प्रकाशवान् कहा जाता है। (११) काल, अर्थात् समय, मन के अन्तर्गत है। पर, परमात्मा समय के अन्तर्गत नहीं; वह उसके बाहर है। समय का आरोप मात्र उस पर किया गया है। इसी से वह पल या युग जान पड़ता है। अर्थात् पल या युग के आकार को लोगों ने उस पर आरोपित कर दिया है। जो जीव समय के बहिर्भूत हो जाता है और समाधि की अवस्था में शुद्ध-बोध-स्वभाव परमात्मा का परिचय प्राप्त कर लेता है, उसे वह सब कहीं, और सब समय में विद्यमान देख पड़ता है। जो समय के भीतर है उसके लिए समय की न्यूनता या अधिकता का ख़याल करना भी ग़लत है। क्योंकि जो समय सुख में थोड़ा जान पड़ता है, वही दुःख में बढ़ जाता है। विपत्ति के समय राजा हरिश्चन्द्र को एक रात बारह वर्ष के बराबर बीती थी। (१२) जो चीज़ें मन के अन्तर्गत हैं वही जानी जा सकती हैं। परमात्मा मन की सीमा के बाहर है, इससे संसार की और चीज़ें जिस तरह जानी जाती हैं, उस तरह वह नहीं जाना जा सकता। जितनी चीज़ें देख पड़ती हैं उनके ज्ञान के उस तरफ़ भी कुछ ज्ञेय ज़रूर होता है। पुस्तक का ज्ञान होने पर उसे किसने बनाया, कहां छपाया और उसमें क्या लिखा, इत्यादि बातें फिर भी जानने को बाक़ी रह जाती हैं। उनके जान लेने पर भी कुछ न कुछ ज्ञेय अवश्य रह जाता है। इन्हीं कारणों से यद्यपि मामूली तौर पर ईश्वर का ज्ञान नहीं होता; तथापि सूक्ष्म विचार करने से उसका ज्ञान ज़रूर होता है; क्योंकि संसार में जो कुछ देख पड़ता है, उस सबका आदि कारण वही है। यथार्थ बात तो यह है कि वही हमारी आत्मा है। वही हमारा प्राण है। अतएव वह हमारे अत्यन्त निकट है और जितनी चीज़ें हमने जानी हैं उन सबसे अधिक वह जानने लायक़ है। हमारी आत्मा परमात्मा ही का अंश है। फिर बतलाइए, अपने से अधिक आदमी और किस चीज़ को जान सकेगा?

आदमियों का विश्वास है कि यह संसार सत्य है; मायामय नहीं। इसी से उनको परमात्मा का ज्ञान नहीं होता। इस झूठे विश्वास का नाश हो जाने पर उसकी प्राप्ति में देर नहीं लगती। परमात्मा की माया के सङ्कोच और विकास से ही संसार का लय और पुनर्जन्म होता है। वेदान्त का सब से बड़ा सिद्धान्त यही है। यह सिद्धान्त इतने महत्त्व का है कि इसके आधार पर जितने विरोधी मत हैं सब का समाधान हो जाता है। (१३) परमात्मा का परिपूर्ण ज्ञान न मन से ही हो सकता है और न इन्द्रियों से ही। इसी से वह सूक्ष्म कहा जाता है। पर वस्तुमात्र के अस्तित्व का कारण भी वही है। अतएव इस विस्तृत विश्व में वह सब कहीं विद्यमान है। वह है कहां नहीं? क्या किसी चीज़ का अस्तित्व बिना उसके भी सम्भव है? (१४) जितने घट मिट्टी के हैं यथार्थ में सब मिट्टी ही है। इसी तरह संसार में जितने आकार प्रकार और शकल सूरत के पदार्थ देख पड़ते हैं सब ब्रह्ममय हैं। सब परमात्मा के रूप हैं। अतएव वह सर्वमय है। परन्तु परमात्मा स्वयं आकार-हीन है; वह आकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर है; उसकी कोई मूर्ति नहीं है। अतएव वह कुछ नहीं है। अर्थात् जिसका कोई आकार ही नहीं उसका कुछ होना किस तरह ध्यान में आ सकता है? (१५) वह अहङ्कार है; क्योंकि उसे अपने आप का ज्ञान है। यह बात हर घड़ी आदमियों के मुँह से 'मैं' शब्द के निकलने से सूचित होती है। 'मैं' का मतलब है 'अहम्'। वह परमात्मा की विद्यमानता का निर्भ्रान्त सूचक है। पर अहङ्कार हो कर भी वह निरहङ्कार है; क्योंकि संसार में ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसका वह विषय हो सके; जिसकी उसे अपेक्षा हो; जिसके जानने की उसे ज़रूरत हो। (१६) अनन्त क्लेश उठाने पर योगियों को परमात्मा का ज्ञान होता है। पर जब उसका ज्ञान हो जाता है तब योगियों को यह मालूम होता है कि उनको कोई ऐसी चीज़ नहीं मिली जो उनके पास पहले ही से न रही हो। उनको उस समय जान पड़ता है कि परमात्मा पहले ही से उनके हृदय में विद्यमान था; वही उनके अस्तित्व का कारण था। परन्तु अविद्या के कारण इतने दिनों तक वे यह समझे थे कि उन्होंने उसे खो दिया है; वह उनके पास नहीं। (१७) प्रलय होना, लीन होना या नाश को प्राप्त होना आदि वाक्यों का तात्पर्य्य पदार्थों के अत्यन्ताभाव से नहीं है। जब सृष्टि का क्षय हो जाता है तब उसका सिर्फ़ रूपान्तर हो जाता है; उसका सर्वथा नाश नहीं हो जाता। जिन चीज़ों की सृष्टि बनी है उनका रूपमात्र बदल जाता है। प्रलय के समय सृष्टि का व्यक्त, प्रकट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष रूप अव्यक्त अर्थात् अप्रकट अवस्था को पहुँच जाता है। पर उसका बिलकुल विध्वंस नहीं हो जाता। सृष्टि फिर भी बनी रहती है; पर अन्य रूप में। उसका बीज परमात्मा में लीन रहता है और उसी से, यथासमय, फिर पहले की तरह जगत् का विकास होता है। (१८) माया की लपेट यदि छूट जाय तो परमात्मा रूपहीन जान पड़ने लगे। जब तक माया है तभी तक वह रूपवान् है। व्यक्तिविषयक माया की लपेट के साथ वह आत्मा के रूप में और विश्वजनीन अर्थात् संसारात्मक माया के योग से वह ईश्वर के रूप में भासित होता है। पिछली अवस्था में परमेश्वर ही सृष्टिमय जान पड़ता है। जब सृष्टि ही परमेश्वर हुई तब उसमें अनन्त हाथ, पैर और आँखों की क्या कमी?

परमात्मा एक है—अकेला है। अर्थात् वह अद्वितीय है। वही देखता है और वही देखा जाता है। उसके बिना देखना संभव ही नहीं। सोने की अँगूठी को गला कर उसकी शकल बिगाड़ देने से सोना फिर भी बना रहता है। उसी तरह संसार के आकार को बिगाड़ देने से—उसका नाश हो जाने से—उसका सार अंश, अर्थात् परमात्मा, पूर्ववत् शेष रह जाता है। न उसका आदि है, न उसका अन्त है। वह सच्चिदानन्द है। संसार मायामय है; वह एक प्रकार का स्वप्न है। उसे कभी सच्चा न समझिए। विद्वान् इस बात को कभी नहीं भूलते। वे संसार को एक विलक्षण ऐन्द्रजालिक खेल समझते हैं। जितने नाम और रूप हैं सब को वे परमात्मा ही में लीन समझते हैं। क्योंकि परमात्मा ही उनका सत्व है; वही उनका सार है। इस तरह की धारणा मन में दृढ़ हो जाने से ईश्वर की अनन्तरूपता उनके ध्यान में आ जाती है। ऐसे महात्माओं की दृष्टि में सूर्य्य, चन्द्रमा और तारागण आदि इस तरह लुप्त हो जाते हैं जिस तरह महासागर में जल-बिन्दु। उनके लिए न जन्म है न मृत्यु। वे दोनों उनकी दृष्टि में तुल्य हैं। क्योंकि जब वे स्वयं ही आत्मरूप हो गये तब जन्म और मृत्यु का भेद उन्हें क्योंकर मालूम हो सकता है? ऐसे महात्मा आत्मानन्द का अनुभव करते करते उसी में लीन हो जाते हैं।

[योगवासिष्ठ से]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवनागरी में गवर्नमेंट-गज़ट।

यद्यपि भारतवर्ष में समाचार-पत्रों का प्रचार और प्रभाव इतना नहीं, जितना अन्य सभ्य देशों में हैं, तथापि इनकी चर्चा और उपयोग यहां भी दिनों दिन बढ़ते ही जाते हैं। सच पूछिये तो समाचार-पत्र आज कल एक बहुत बड़ी शक्ति रखते हैं। क्या राजा क्या प्रजा, सभी को अपने विचार प्रकट करने के लिये इन्हीं की शरण लेनी पड़ती है। प्रजा को किसी प्रकार का क्लेश हुआ और समाचार-पत्रों ने चट उसे राजा के कान तक पहुंचाया। इसी तरह यदि राजा को कोई बात बतलानी हुई तो समाचार-पत्रों में प्रकाशित होते ही वह प्रजा तक पहुंच जाती है। अन्यान्य देशों में सरकारी काररवाई उन देशों की ही भाषाओं में हुआ करती है। इससे प्रजा को सरकारी बातों के जानने में बड़ा सुभीता रहता है। परन्तु भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश होने के कारण इस में अनेक भाषायें और लिपियां प्रचलित हैं। और राजकीय प्रधान भाषा अँगरेज़ी है। अतः हमारी सरकार को अपने विचार प्रकट करने के लिए भाषान्तर की आवश्यकता होती है। सरकारी क़ायदे, क़ानून, मसविदे, हुक्म इत्यादि पहले अंगरेज़ी में लिखे जाते हैं। उसके बाद उनका भाषान्तर होता है। यों तो सरकारी बातों को बहुतेरे समाचार-पत्र प्रकाशित किया ही करते हैं, परन्तु सरकार के विचार पहले पहल बाज़ाप्ता सरकारी गज़टों (Government Gazettes) ही में प्रकाशित होते हैं। ये गवर्नमेन्ट या सरकारी गज़ट प्रत्येक प्रान्त में जुदे जुदे हैं और एक गज़ट सारे भारत के लिए है। इसे "गवर्नमेंट-गज़ट आफ़ इण्डिया" कहते हैं। जहां तक हम जानते हैं, इन सरकारी गज़टों में बहुतेरे प्रान्तिक गज़ट, अँगरेज़ी न जाननेवाली प्रजा के लाभ और सुभीते के लिए, अपने अपने प्रान्त की भाषा में भी अनुवादित होकर प्रकाशित होते हैं। निस्सन्देह इसमें प्रजा का बहुत बड़ा लाभ है। जो समाचार सीधे सरकार की ओर से प्रजा को मिलते हैं वे ऐसे समाचारों की अपेक्षा, जो इधर उधर घूम घाम कर उनके पास पहुंचते हैं, अधिक विश्वसनीय समझे जाते हैं। फिर, सभी उपयोगी समाचार जो सरकारी गज़टों में निकला करते हैं, अन्य समाचार-पत्रों द्वारा न प्रजा तक पहुंचते हैं और न पहुंचाये ही जा सकते हैं। कारण यह है कि अन्यान्य समाचार-पत्रों को इस काम के सिवा प्रजा की और प्रकार की भी सेवा करनी पड़ती है।

इस से दो बातें सिद्ध हुईं। एक तो सरकार की ओर से सरकारी गज़टों के निकलने की आवश्यकता, दूसरे इन गज़टों का ऐसी भाषाओं में भी प्रकाशित होना जिनके द्वारा प्रजा सरकारी समाचारों और मन्तव्यों को समझ सके। आनन्द की बात है, सरकार ने इस विषय की तरफ़ बहुत कुछ ध्यान दिया है। उसकी ओर से गज़ट भी निकलते हैं। और वे ऐसी भाषा में भी होते हैं जिसे प्रजा समझले। परन्तु इसमें एक छोटी सी त्रुटि है जिसे हम सरकार और देवनागरी के पक्षपातियों पर प्रकट करना चाहते हैं। वह यह है कि संयुक्त प्रदेश से जो सरकारी गज़ट निकलता है उसका अनुवाद केवल उर्दू भाषा और फारसी अक्षरों ही में प्रकाशित किया जाता है। जिस समय सरकार हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों की उपयोगिता से अनभिज्ञ थी उस समय सरकारी गज़ट का केवल उर्दू में निकलना विशेष न खटकता था। परन्तु सर अन्टनी मेकडानल्ड के समय से सरकार को यह बात भली भांति विदित हो गई है कि हिन्दी बोलनेवालों और देवनागरी अक्षरों को व्यवहार में लानेवालों की संख्या अन्य-भाषा-भाषियों और अन्यलिपि के प्रयोग करनेवालों की अपेक्षा बहुत अधिक है। तब से सरकार ने देवनागरी अक्षरों को सरकारी न्यायालयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में प्रचलित कर दिया और समन्स इत्यादि फ़ारसी और नागरी दोनों ही अक्षरों में लिखे जाने लगे। परन्तु कुरीतियां धीरे ही धीरे निर्मूल हुआ करती हैं और सरकारी नियमों का यथेष्ट पालन भी धीरे ही धीरे होता है। सरकारी गज़टों की जो केवल उर्दू और अँगरेज़ी ही में निकलने की पुरानी चाल थी उसमें अब तक परिवर्तन न होने का कारण, हमारी समझ में, दृष्टि-दोष ही (over-sight) समझना चाहिये। क्योंकि इस प्रान्त के गवर्नमेंट-गज़ट के हिन्दी भाषा और देव-नागरी अक्षरों में भी प्रकाशित होने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह एक ऐसा विषय है जिसके विरुद्ध कुछ कहा ही नहीं जा सकता। जब और सरकारी काररवाइयां देवनागरी अक्षरों में होने लगी हैं तब सरकारी गज़टों की हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों में निकलने की तो और भी आवश्यकता है। जब ये गज़ट अँगरेज़ी और फ़ारसी अक्षरों में निकलते हैं तब देवनागरी में भी क्यों न निकलें? इसी लिपि का तो यहां सब से अधिक प्रचार है।

हम अपनी न्यायशीला सरकार से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा करके इस कमी को भी पूरा कर दे। नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी ने इस विषय पर विचार नहीं किया, यह आश्चर्य्य की बात है! हिन्दी-समाचार-पत्रों से हमारी विनय है कि वे इस विषय की चर्चा करके सरकार का ध्यान इस ओर खींचें। हमें भरोसा है, प्रयत्न करने से सरकार शीघ्र ही हमारे विनय पर ध्यान देगी और हमारी आशा पूर्ण करेगी।

देवीप्रसाद शुक्ल।

वर्षा-ऋतु।

क्या सुन्दर वर्षा-ऋतु आई;
प्यारी लगती सबको भाई।
छटा महा अद्भुत दिखलाई;
पर विरही-जन को दुखदायी ॥१॥

जो जन गरमी से जलते थे;
विपिन-दवानल से बलते थे।
इसने सबका प्राण बचाया;
आकर जल्दी जल बरसाया ॥२॥

जो नदियाँ दिन दिन घटती थीं;
तट से भी नीचे हटती थीं।
वे उमड़ी हैं अब भर पूर;
करता है कलोल पय-पूर ॥३॥

सूख सूख कर गिर जाती थीं;
या तरु ही में मुरझाती थीं।
वे सब अब लहलहा रही हैं;
मज़ा पत्तियां दिखा रही हैं ॥४॥

घिरे देख नभ में घन घोर,
मोर मोरनी करते शोर।
मस्ती में आ नाच रहे हैं;
जल वर्षा का जांच रहे हैं ॥५॥

कोकिल कोमल कुहुक सुनाते;
पी रसाल-रस हो मदमाते।
बन्दी से विरुदावलि गाते;
मानो मीठा मधु टपकाते ॥६॥

चातक रह रह शोर मचाते;
कामिनियों के चित्त चुराते।
जिसको सुन विरही घबराते;
आख़िर घर आही तो जाते ॥७॥

जिनके पति विदेश से आये;
औ बनारसी साड़ी लाये।
उनको भाग्य न बरणी जाती:
मन ही मन वे अति सुख पातीं ॥८॥

जिनके पति विदेश में छाये;
वर्षा में भी भवन न आये।
वे दुख अति अपार पाती हैं;
प्रतिदिन कृष होती जाती हैं ॥९॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जङ्गल की हरियाली देखो ;
तरुओं की नत डाली देखो।
बीरबहूटी लाली देखो ;
सबकी छुटा निराली देखो ॥१०॥

क्या सुन्दर पर्वत की शोभा ;
जिसे देख मुनिजन-मन लोभा।
झरने ज़ोर शोर से झरते ;
सब का मन आल्हादित करते ॥११॥

मेघ-नाद सुन कर अति भारी,
सिंह नाद करता भयकारी।
बली प्रकृति ऐसी ही चहते ;
पर उत्कर्ष नहीं वे सहते ॥१२॥

उसको सुन वन-जीव डराते ;
पर्वत छोड़ शीघ्र भग जाते।
और किसी जंगल में जाते ;
जहाँ न सिंह-नाद सुन पाते ॥१३॥

उपवन हुए महा सुखदायी ;
नभ में मेघ-मालिका छाई।
फूल डाल में फूल रहे हैं ;
वे भी मानों झूल रहे हैं ॥१४॥

लता मालती की सुखदायी ;
कैसी अपनी छवि छिटकाई।
डालें झुक झुक झूम रही हैं ;
उन पर तितली घूम रही हैं ॥१५॥

कलित ललित जल भरे सरोवर ;
खिले कमल कल्हार मनोहर।
मधुप-वृन्द उन पर आ आ कर ;
गूंज रहे मकरन्द पान कर ॥१६॥

बीता दिवस यामिनी आई ;
मानो नई कामिनी आई।
मुख सुन्दर उसने दिखलाया ;
युवक-जनों का मन हुलसाया ॥१७॥

ऐसा बादल-दल घिर आया,
दिन-रजनी का भेद मिटाया।
पता ठीक इसका तब मिलता ;
जब चकवा चकई से मिलता ॥१८॥

क्या सुहावनी यह वर्षा है ;
इसे देख जन-मन-हर्षा है।
जो यह ऋतु हर साल न आती ;
मृत्यु प्राणियों की हो जाती ॥१९॥

धन्य सच्चिदानन्द महेश्वर ;
ऋतुपरिवर्त्तन जिन पर निर्भर।
जिनका अंश जीव भी होकर ;
भूल रहा माया में फँस कर ॥२०॥

तोभी दीनदयालु दया कर ;
पालन करते हैं करुणाकर।
यों जग में सज्जन जो रहते ;
पर-उपकार वचन मन चहते ॥२१॥

जो करते पर का उपकार ;
आकर क्षण-भङ्गुर संसार।
वे ही नर हैं यशी कहाते ;
शेष मही का बोझ बढ़ाते ॥२२॥

कविता मिष यह विनय बना कर ;
सुजन जनों को आज सुनाकर।
दीनबन्धु से यह कहता हूं ;
भारत की उन्नति चहता हूं ॥२३॥

श्रीमुरारि वाजपेयी (काव्यतीर्थ)

हिन्दी-प्रदीप।

इस समय हिन्दी के जितने समाचारपत्र निकल रहे हैं दो एक को छोड़ कर हिन्दी-प्रदीप सब से पुराना है। मासिक पुस्तकों में तो यही सबसे ज्येष्ठ है। इसे निकलते २७ वर्ष होचुके। जब से यह निकलने लगा तबसे कितने ही मासिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और साप्ताहिक-पत्र निकले और अस्त होगये। पर हिन्दी-प्रदीप जारी है। बीच बीच में इस पर कितने ही अरिष्ट आये, परन्तु टल गये। यदि यह पत्र किसी और भाषा में निकलता होता तो इसकी रजत-जुबिली हो गई होती। पर अभागी हिन्दी के यह भाग्य कहां? प्रदीप किसी तरह चलता है यही ग़नीमत है।

हिन्दी-प्रदीप के सम्पादक पं० बालकृष्ण भट्ट कायस्थ-पाठशाला, प्रयाग, में संस्कृताध्यापक हैं। आप अँगरेज़ी भी जानते हैं। संस्कृत में, काव्य आपका प्रिय विषय है। आपकी सहृदयता प्रशंसनीय है। कोई काव्य, नाटक, या चम्पू ऐसा नहीं जिसकी आपने सैर न की हो। भारतीभवन में संस्कृत के जो अनेक अच्छे अच्छे काव्य-ग्रन्थ हैं वे आपही की सलाह से मँगाये गये थे। सैकड़ों उत्तमोत्तम सामयिक श्लोक आपको कण्ठ हैं। आपसे वार्तालाप करने में बड़ा आनन्द आता है। आप व्याकरण और ज्योतिष विद्या में भी ख़ूब प्रवीण हैं। अफ़सोस इस बात का है कि आपके नेत्र विकृत होगये हैं। उनसे आप बहुत तंग रहते हैं। हद से ज़ियादह आंखों से काम लेने का यह फल है। आज हम आपके प्यारे हिन्दी-प्रदीप का कुछ हाल लिखते हैं।

कोई ३० वर्ष हुए, इलाहाबाद में, कालेज के थोड़े से विद्यार्थियों ने, हिन्दी की उन्नति के लिये, "हिन्दीवर्द्धिनी" नाम की एक सभा स्थापित की। कुछ दिनों तक इस सभा के मेम्बरों में हिन्दी की उन्नति का बड़ा जोश था। उसी जोश में यह निश्चय हुआ कि समाचारपत्र, हिन्दी की उन्नति का सर्वोत्तम साधन है। सभा के कई एक मेम्बर धनाढ्य घराने के थे। उनको भी यह बात अच्छी लगी। पांच पांच रुपये के हिस्से करके तत्काल ही थोड़ा सा रुपया इकट्ठा किया गया और यह ठहरी कि एक वर्ष तक एक पत्र अवश्य ही निकले। यदि पत्र के ग्राहक बढ़े और लोगों का मनोरञ्जन हुआ तो पत्र जारी रहेगा नहीं तो बन्द कर दिया जायगा। उसी समय बाबू हरिश्चन्द्र अपने किसी निज के काम से प्रयाग गये थे। वहां हिन्दी-वर्द्धिनी-सभा के मेम्बरों की उत्कट वासना हिन्दी की ओर देख वे बड़े प्रसन्न हुए और आप भी उसके मेम्बर होगये। पत्र निकालने में यथासाध्य सहायता देने के लिये आपने अभिवचन दिया और "कवि-वचन-सुधा" के बहुत से ग्राहकों की नामावली भेज दी।

सितंबर १८७७ से हिन्दी-प्रदीप निकलना शुरू हुआ। परन्तु "मूँड़ मुड़ाते ही ओले पड़े" की मसल ख़ूब ही चरितार्थ हुई। उसी समय प्रेस-ऐक्ट का जन्म हुआ। प्रदीप में कई लेख ऐसे निकले कि वह स्थानीय कर्मचारियों की आंख का काँटा होगया। साल में कई बार मजिस्ट्रेट साहब के यहां उसके मैनेजर और सम्पादक की तलबी बराबर होती गई। यह तमाशा देख जो लोग चन्दा देकर इसके मेम्बर हुए थे उन्होंने अपने रुपये से हाथ धोया। प्रदीप की शिरकत से वे दस्तबरदार हुए। अपनी उन्नति के आगे हिन्दी की उन्नति का उत्साह भंग हो गया। कोई कोई तो स्वदेश और स्वभाषा के इतने प्रेमी निकले कि पांच रुपये देकर हिन्दी-प्रदीप का शेयर लेना उन्होंने बहुत बड़ा अपराध समझा। वे सोचने लगे कि इस पाप का प्रायश्चित्त किस तरह हो जो आगे कभी किसी के मुँह से यह न निकल जाय कि छात्र-दशा में ये भी हिन्दी के हितैषी थे और एक ऐसे पत्र में शरीक थे जो गवर्नमेंट के ख़िलाफ़ लेख लिखने में बदनाम था। अस्तु यह तै पाया कि पत्र बन्द कर दिया जाय।

उस समय भट्ट जी के लेख विहारबन्धु, कवि-वचनसुधा और काशीपत्रिका आदि में छपा करते थे। भट्टजी तो चाहते ही थे कि कोई ऐसा पत्र मिल जाता तो उसमें अपनी इच्छानुसार लिखा करते। अतएव प्रदीप को सर्वथा बन्द होते देख उसका कुल भार उन्होंने अपने ऊपर ले लिया और धड़ल्ले के लेख आप उसमें लिखने लगे। एक बार रामलीला और मुहर्रम एक साथ आ पड़े। उस मौक़े पर मुसलमानों ने हिन्दुओं को कुछ तकलीफ़ पहुंचाई। इसपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदीप में एक लेख "न नीचो यवनात्परः" लिखा गया। इस कारण मुसलमानों की एक बड़ी सभा हुई और उसमें सम्पादक पर मुक़द्दमा क़ायम करने की सलाह ठहरी। पर लायल साहब ने, जो उस समय यहां के लेफ़्टिनेंट गवरनर थे, मुक़द्दमा चलाने की इजाज़त न दी। मुसलमानों से १० महीने बाद किसी तरह प्रदीप का पिण्ड छूटा। यह बात हमने भट्ट जी ही से सुनी है। उनसे यह भी हमने सुना है कि उनके तीव्र लेखों के कारण अप्रसन्न होकर शहर के कुछ लोगों ने बदमाशों को उनके पीछे लगा दिया था जिन्होंने भट्ट जी को बहुत तंग किया। उस समय "Indian union" नामक एक अँगरेज़ी साप्ताहिक-पत्र प्रयाग से निकलता था। उसमें इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया और यूनियन ने भट्टजी की बहुत सहायता की। इतना होने पर भी प्रदीप के लेखों का ढंग भट्टजी ने नहीं बदला। राजकीय विषयक लेख वे बराबर लिखते ही गये। १३ वर्ष तक प्रदीप इसी ढंग पर चलता रहा। एक से एक कड़े लेख निकलते रहे। अन्त को यह सोच कर कि "फलं न किञ्चिद् अशुभा समाप्तिः" कौन रोज़ उठ झंझट में फसता रहे, हिन्दी-प्रदीप केवल साहित्य और समाज-विषयक पत्र कर दिया गया।

जबसे हिन्दी-प्रदीप साहित्य-विषयक मासिक-पत्र हुआ तबसे उसमें अनेक उपयोगी और मनोहर लेख निकले हैं। प्राचीन संस्कृत-कवियों के जीवन-चरित लिखने में यह पत्र अद्वितीय है। आज तक इसमें कालिदास, श्रीहर्ष, बिल्हण, गोवर्द्धन, भवभूति, दण्ड, विक्रमादित्य, भारवि, क्षेमेन्द्र, हरिश्चन्द्र आदि कितने ही कवियों के चरित निकल चुके हैं। श्रीमद्भागवत, वाराही-संहिता, भगवद्-गीता और सप्तशती आदि पुस्तकों की समालोचनायें भी निकली हैं। इसके कुछ बहुत ही अच्छे लेखों की नामावली हम नीचे देते हैं—

कविता-सम्बन्धी	नाटक
१ कवियों की सूझ का अनोखा ढंग	१ नलदमयन्ती नाटक
२ उपयुक्त क्रिया	२ किरातार्जुनीय नाटक
३ ,, विशेषण	३ आचार-विडम्बन (प्रहसन)
४ ,, उपमा	४ जैसा काम वैसा परिणाम (प्रहसन)
५ नई गढ़ंत के नये नये अर्थ	उपन्यास
६ क्षेमेन्द्र की उक्तियां	१ भाग्य की परख
७ संस्कृत-लोकोक्ति	२ सौ अजान एक सुजान
	३ हमारी घड़ी

प्राचीनदेश, नगर, नदी, पर्वतों आदि का वर्णन भी प्रदीप में निकल चुका है। नृपति-चरितावली-नामक लेखमाला में इस देश की छोटी बड़ी रियासतों का हाल भी छप चुका है। हँसी दिल्लगी की बातें भी इसमें कभी कभी रहती हैं। इसके पुराने अङ्कों में "परसन" नाम के एक लेखक के लेख बहुत ही हास्यरस-पूर्ण हैं। भट्ट जी के लेख प्रायः नये होते हैं। किसी की छाया या अनुवाद नहीं।

इसके सम्पादक में न्यायप्रियता का गुण सबसे बढ़ कर है। अपनी समझ के मुताबिक़ जो उचित और न्याय्य होता है वही आप लिखते हैं। इनके लेखों से यह नहीं मालूम होता कि आप किस सम्प्रदाय या पन्थ के हैं। कभी आप आर्य्यसमाज के अनुयायियों की सी बातें करने लगते हैं, कभी सनातन-धर्म्मियों की सी। बाल-विवाह के आप बेहद ख़िलाफ़ हैं। कुछ न कुछ आप इस पर लिखा ही करते हैं।

भट्ट जी के नेत्र विकृत रहते हैं। इस कारण पहले यह पत्र यथासमय नहीं निकलता था। यहां तक कि दो एक दफ़ा बन्द भी होगया। पर अब कई महीने से यह ठीक समय पर निकलता है। भट्ट जी के चिरञ्जीव जनार्द्दन, जो अभी छात्रावस्था में हैं, भट्ट जी को बहुत कुछ सहायता करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह युवक बहुत होनहार है और आशा है, किसी समय यह हिन्दी का अच्छा लेखक होगा।

हिन्दी की दशा कुछ ऐसी बुरी है कि अच्छे से भी अच्छे पत्र को बहुत कम लोग पढ़ते हैं। इस कारण बेचारे हिन्दीप्रदीप को आज कोई २८ वर्ष में न मालूम कितना घाटा उठाना पड़ा है। बीच में जो नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, उसकी सहायता न करती तो वह अब तक बुझ गया होता। हमें आशा है, हिन्दी के इस इतने पुराने पत्र को हिन्दी के हितैषी ज़रूर जीवित रक्खेंगे। २४ पृष्ठ के मासिकपत्र का वार्षिक मूल्य १॥=) बहुत नहीं है। यदि चार पाँच सौ ग्राहक भी इसके होजायं तो यह अमर होजाय और लेख भी इसमें विशेष अच्छे निकलने लगें। क्योंकि—"सर्वारम्भास्तण्डुलाः प्रस्थमूलाः"। अभी इसके ग्राहकों की संख्या बहुत ही कम है। पर भट्ट जी की धीरता और विद्याभिरुचि प्रशंसनीय है जो इस दशा में भी वे इसे बराबर निकाले जाते हैं—और समय पर।

भट्ट जी से एक हमारी प्रार्थना है। वह यह है कि समय के रंग ढंग को देख कर उन्हें अपने लिखने का तर्ज़ अब कुछ बदल देना चाहिए और जिन विषयों पर वे अकसर लिखा करते हैं उनमें भी परिवर्तन करना चाहिए।

पुस्तक-परीक्षा।

सौ अजान और एक सुजान। यह एक कल्पित कथा है। हिन्दी-प्रदीप के सम्पादक श्री पण्डित बालकृष्ण-दीक्षित ने इसकी रचना की है। ८ आने में उन्हीं से मिलती है। हिन्दी-प्रदीप से उद्धृत करके पुस्तकाकार प्रकाशित की गई है। इस आख्यायिका को लोगों ने बहुत पसन्द किया था। इसी से भट्ट जी ने इसे अलग छपाया है। बुरी संगति में पड़ कर अमीर आदमियों के लड़के किस तरह बिगड़ जाते हैं और सच्चे शुभचिन्तकों की सहायता से उनका किस तरह उद्धार होता है। यह बात इसमें खूब दिखलाई गई है। पुस्तक सदुपदेश-पूर्ण है। जगह जगह पर संस्कृत के उत्तमोत्तम सुभाषित हैं। कहीं कहीं पर कादम्बरी और दशकुमार-चरित के वर्णन-वैचित्र्य की छटा देख पड़ती है। उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारों की लंबी लंबी लड़ियों ने भाषा को बहुत ही परिष्कृत कर दिया है। निशा-वर्णन, वर्षा-वर्णन, मध्यान्ह-वर्णन, हुमावेगम का रूप-वर्णन और चन्दू का उपदेश, इस प्रकार की भाषा के उदाहरण हैं। पुस्तक हिन्दी की अच्छी आख्यायिकाओं में गणना के योग्य है। इसमें एक मात्र दोष यह है कि एक आध जगह इसकी भाषा-प्रणाली में एक-देशीय-पन आ गया है और प्रबन्ध समाप्त करने में कुछ जल्दी कर दी गई है।

❋

कार्य्य-विवरणी। यह भारत-धर्म्म-महामण्डल की रिपोर्ट है। शुरू से लेकर फाल्गुन, संवत् १९६१ तक का विवरण इसमें है। इसके देखने से जान पड़ता है कि महामण्डल अपना काम अच्छी तरह कर रहा है। कितनी ही शाखा-सभायें और प्रान्तिक-मण्डल उसने स्थापित किये हैं। हर एक प्रान्त से एक एक पत्र निकलता है। प्राप्ति भी उसकी ख़ासी है। उसका हिसाब रक्खा जाता है। बड़े बड़े राजे, महाराजे, विद्वान् और अमीर आदमी उसके सहायक हैं। उपदेशक नियत हैं जो उपदेश देते फिरते हैं। कई एक पाठशालायें खोली गई हैं जहां विद्यार्थियों को विद्यादान दिया जाता है। धर्म्म-प्रचार, विद्या-प्रचार, ग्रन्थ-संग्रह और शास्त्र-प्रकाश आदि कितने ही अच्छे अच्छे काम करने का बीड़ा मण्डल ने उठाया है।

❋

जापानीय स्त्री-शिक्षा। पं० महेन्दुलाल गर्ग कृत। जापानी स्त्री-शिक्षा का वर्णन है। बहुत अच्छा है। महेन्दुलाल जी की सभी पुस्तकें उपयोगी हुआ करती हैं। आप हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। हम लोगों का स्त्री-धर्म्म जापानी स्त्री-धर्म्म से बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों में मिलता है। यह इस पुस्तक से अच्छी तरह मालूम होता है। ३९ पृष्ठ की पुस्तक का दाम चार आने कुछ अधिक जान पड़ता है। इस पुस्तक में "उनको बेइज्ज़त किया जाय," "विदेशियों को भगा दिया जायगा"—इत्यादि प्रयोग विचारणीय हैं। इस सूचना के लिए हम गर्ग महाशय से क्षमा माँगते हैं।

❋

हिन्दी-सिद्धान्त-प्रकाश। आरा की नागरी-प्रचारिणी सभा ने, इस नाम के लेख अपनी पत्रिका के कई अंकों में जो प्रकाशित किये थे वही अब पुस्तकाकार निकले हैं। दाम आठ आने हैं। ऐसी पुस्तक की हिन्दी में बड़ी ज़रूरत थी। अफ़सोस यही है कि यह पुस्तक इतनी छोटी निकली और बहुत कम बातों का विचार इसमें किया गया। यद्यपि इसके सब सिद्धान्तों से हम सहमत नहीं, तथापि इसमें कहे गये कितने ही सिद्धान्त उपयोगी और स्वीकार्य्य हैं। जो लोग हिन्दी लिखते पढ़ते हैं उन्हें तो इस पुस्तक को अवश्य देखना चाहिए और यथासम्भव इसके सिद्धान्तों का अनुसरण भी करना चाहिए।

❋

लखनऊ की नवाबी। प्रथम खण्ड। बाबू ठाकुरप्रसाद खत्री (सिद्धेश्वरी, काशी) कृत। मूल्य १२ आने। पृष्ठ संख्या १६०। छपाई, काग़ज़ आदि सब सामग्री अच्छी है। इसे लखनऊ के नवाब वज़ीर नसीरुद्दीन हैदर की दिनचर्य्या कहना चाहिए। १८३५ ईसवी के क़रीब एक अँगरेज़ ने नवाब के यहां १००० रु० महीने की नौकरी कर ली। आप का काम था नवाब वज़ीर की हां में हां मिलाना और गप्पें हांकना। उन्हीं की अँगरेज़ी-पुस्तक का यह अनुवाद जान पड़ता है। पुस्तक सचित्र और बहुत मनोरञ्जक है। पढ़ने में ख़ूब दिल लगता है। नवाब के खाने पीने, नाच कूद, शिकार सिंगार आदि का इसमें अच्छा वर्णन है। एक ख़ूनी घोड़े, नन्हीं नामक एक काश्मीरिन और जनरल बख़्तावर सिंह के विषय में जो कुछ लिखा गया है उससे नसीरुद्दीन के स्वभाव का अच्छा परिचय मिलता है। एक तुच्छ अँगरेज़ नाई नसीरुद्दीन की नाक का बाल था। उसकी भी लीला विलक्षणता से ख़ाली नहीं। नवाब को वह खुले ख़ज़ाने लूटता था; पर वह ख़ुशी से उसे लूटने देता था। ऐसे ही अँगरेज़ों ने इस पुस्तक में दो एक जगह पर हिन्दुस्तानियों के चाल चलन पर अनुचित आक्षेप किये हैं। यह पढ़ कर अफ़सोस हुआ। जिनका चाल चलन ख़ुद ही ख़राब है उनका दूसरों पर टीका टिप्पणी करना सिर्फ़ उनकी ढिठाई है। इस पुस्तक में भूमिका और सूचीपत्र की कमी है। कई जगह शब्द अशुद्ध छप गये हैं और भाषा भी एक आध जगह व्याकरण-सम्मत नहीं है। परन्तु इन दोषों के होते भी पुस्तक पढ़ने लायक़ है। इसमें कही गई बातें सब ऐतिहासिक हैं।

मनोरञ्जक श्लोक।

दो एक काव्य-मर्मज्ञ महाकवियों की राय है कि सरस्वती में अच्छी कविता नहीं छपती। जितनी छपती है, ख़राब। यह सुन कर एक मित्र ने सरस्वती को लक्ष्य करके यह अन्योक्ति भेजने की कृपा की है:—

कमलिनि! मलिनीकरोषि चेतः किमिति बकैरवहेलिताऽनभिज्ञैः?
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दाः।

हे कमलिनि, इन अनाड़ी बकों की की हुई अवहेलना से तुझे अपना मन भला क्यों मलिन करना चाहिए? जगत् में तेरे परिपक्व मकरन्द के मार्मिक ये हज़ारों मधुप जीते रहें! मार्मिक मिलिन्दों के रहते तुझे बकों की क्या परवा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

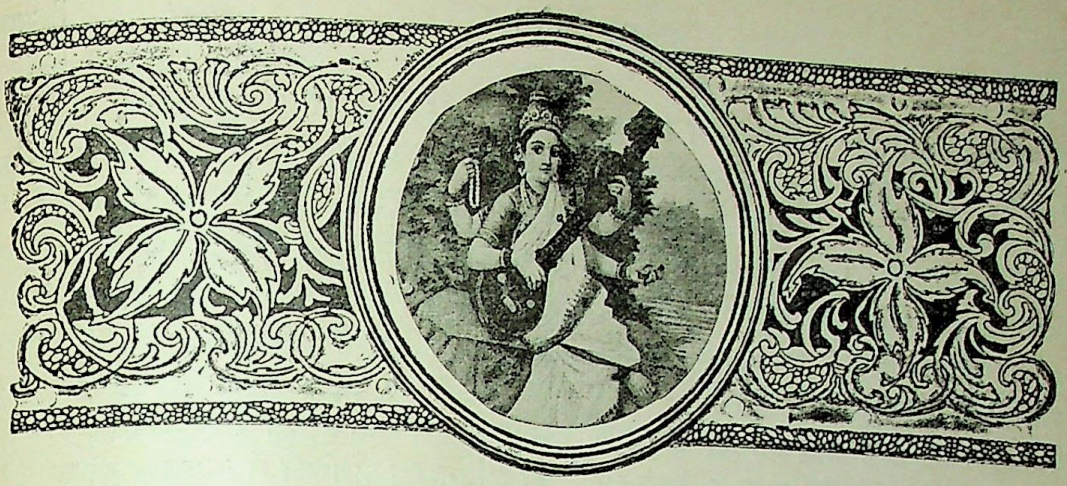

सरस्वती।

भाग ७] सेप्टम्बर, १९०६ [संख्या ९

विविध विषय।

एक चित्र का ब्लाक बन कर आने में कुछ विलम्ब हो जाने के कारण गत मास की सरस्वती कोई एक सप्ताह देर से निकली। इस अत्यल्प देरी ने सरस्वती के कितने ही प्रेमियों को अधीर कर दिया। अनेक पत्र हमारे पास देरी का कारण जानने के लिए आये। कानपुर के कई सज्जनों ने तो तीन मील दूर आकर खुद ही हमसे इसका कारण पूछने की कृपा की। इससे प्रकट है कि सरस्वती अपने पाठकों की कितनी प्यारी चीज़ है। इस अनन्य कृपा—इस प्रेम—के लिए हम सरस्वती के प्रेमी पाठकों के बहुत कृतज्ञ हैं और धन्यवादपूर्वक विनय करते हैं कि सरस्वती के यथासमय निकालने में कोई त्रुटि नहीं की जाती। परन्तु दुर्घटनायें कहां नहीं हो जातीं? अतएव इस अपरिमार्जनीय विलम्ब के लिए हम लोग क्षन्तव्य हैं।

* * *

प्रयाग से "हिन्दुस्तान रिव्यू" नामक प्रसिद्ध मासिकपत्र जो श्रीयुक्त सच्चिदानन्दसिंहजी बैरिस्टर एट ला, द्वारा सम्पादित होकर निकलता है, उसकी गत जुलाई की संख्या में सम्पादक महाशय ने "सरस्वती" की बहुत ही प्रशंसा-पूर्ण समालोचना की है। इसके लिए "सरस्वती" आपको धन्यवाद देती है। आपकी आलोचना "सरस्वती" के लिए निःसंशय बहुत उत्साहवर्द्धक है। यदि आत्म-श्लाघा का डर न होता तो हम उसे यहां पर सानुवाद उद्धृत करते।

* * *

अंगरेज़ी में शब्दों के हिज्जे करने के नियम बहुत ही भ्रष्ट हैं। एक ही प्रकार के वर्णों का कहीं पर कुछ उच्चारण होता है, कहीं पर कुछ। कहीं दो दो तीन तीन वर्ण व्यर्थ रक्खे जाते हैं। कहीं पर वर्णों के मूल उच्चारण पर ध्यान ही नहीं दिया जाता; शब्दों के बीच में आने पर उनका उच्चारण और ही कुछ हो जाता है। इस अव्यवस्था को थोड़ी बहुत दूर करने के लिए अमेरिका के प्रेसीडंट रूज़वेल्ट साहब ने अपने राजकीय बल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक घोषणापत्र निकाला है। अब राजकीय काग़ज़-पत्रों में उच्चारण के अनुसार वर्णव्यवस्था रक्खी जायगी। जिन शब्दों में यह परिवर्तन होगा उनकी एक सूची प्रकाशित की गई है। अब through की जगह "thru", plough की जगह "plow" और pedagogue की जगह "pedagog" इत्यादि लिखा जायगा। व्यर्थ अक्षर न लिखने की कोशिश की जायगी। अर्थात् हमारी देवनागरी-वर्णावली की नक़ल होगी—जैसा बोला जायगा वैसा ही लिखा भी जायगा। इसे देख कर कोई कोई अंग-रेज़-लेखक बिगड़े हैं। क्यों? उनकी भाषा ख़राब हो जायगी! सुधरेगी नहीं!!!

* * *

पृथ्वी का पेट बहुत दिनों से बिगड़ सा रहा है। बरसों से उसमें गड़गड़ाहट जारी है। वायु बेतरह चक्कर लगा रहा है। कभी कभी बेढब उद्गार निकलते हैं और उसका शरीर हिल उठता है। इससे उस पर रहनेवालों पर आपदाओं का पहाड़ फट पड़ता है। कभी यह दशा आसाम में होती है, कभी कांगड़े की तराई में, कभी जापान में, कभी विस्यूवियस में और कभी कैलीफार्निया में। इस बार, अगस्त में, इसका लीला-स्थल दक्षिण-अमेरिका का चिली प्रान्त था। इस भूकम्प ने सैन्टियागो और बालपरेशो नामक दो बड़े बड़े नगरों को प्रायः उद्ध्वस्त कर दिया। कई एक छोटे छोटे टापुओं को तो समूल ही निर्मूल कर डाला। कितने ही गाँव और क़सबे भी तबाह हो गये। हज़ारों मरे और घायल हुए। लाखों बे घर द्वार के हो गये। करोड़ों रुपये की सम्पत्ति का संहार हो गया। आदमियों के पेट के विकार तो हमारे विज्ञापनबाज़ वैद्यराट् एक ही चुटकी चूरन देकर उड़ा डालते हैं, पर पृथ्वी केपेट के विकार उड़ानेवाले कोई वैज्ञानिक वीर सामने नहीं आते।

* * *

हम लोगों को अपनी ही भाषा सीखने का उत्साह नहीं होता, और और प्रान्तों की भाषा सीखने का तो नाम ही न लीजिए। यदि पेट न होता तो शायद ही कोई अँगरेज़ी सीखता। उसके सीखने का उत्साह सिर्फ़ उदर-दरी भरने के लिए है। पर अँगरेज़ों को देखिए, वे ऐसे विद्या-व्यसनी हैं कि अन्यान्य भाषायें सीखने में वे जन्म भर लगे रहते हैं। कानपुर के क्राइस्ट-कालेज के प्रधानाध्यापक एक पादरी साहब हैं। आपको तुलसीदास और कबीरदास की कविता से बेहद प्रेम है। आप कबीर की कविता का अँगरेज़ी में अनुवाद भी कर रहे हैं। दक्षिण की द्राविड़ भाषायें बड़ी कठिन हैं, परन्तु पादरी पोप तामील भाषा सीख कर उसके पण्डित हो गये हैं। कुछ समय हुआ, लंडन में, रायल एशियाटिक सोसायटी के एक जलसे में, भारत के सेक्रेटरी आफ़ स्टेट, मॉर्ले साहब, ने पादरी साहब को, उनकी तामील भाषा की विद्वत्ता के उपलक्ष्य में, सोसायटी की तरफ़ से सोने का एक पदक पहनाया। पादरी साहब की राय है कि तामील भाषा बड़ी मधुर है। उसका साहित्य उत्तमोत्तम पुस्तकों से भरा हुआ है। उसमें क्यूराल, नलदी-वर और चिन्तामणि आदि बहुत बड़े बड़े ग्रन्थ विद्यमान हैं। क्यूराल में कोई डेढ़ हज़ार श्लोक हैं और चिन्तामणि में तीन हज़ार। तीसरे ग्रन्थ में जीवकन नामक राजा का चरित है। ये पुस्तकें रामायण और महाभारत की तरह की हैं। हमने कुछ दिन इस भाषा के सीखने का यत्न किया, परन्तु बहुत कष्टसाध्य मालूम हुआ। इससे, और समयाभाव से, हमें इस उद्योग से विरत होना पड़ा।

* * *

अमृतबाज़ार-पत्रिका के पहले सम्पादक बाबू शिशिरकुमार घोष ने, कुछ दिन से, एक मासिक-पत्र अँगरेज़ी में निकालना शुरू किया है। इसमें आध्यात्मिक विषय रहते हैं। अमेरिका के "वाशिं-ग्टन पोस्ट" नामक अख़बार से एक लेख इस पत्र में उद्धृत किया गया है जिसमें लिखा है कि कीलर नामक फ़ोटोग्राफ़र परलोकगत आत्माओं के चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले सकता है। दो आदमियों ने अपने मृत-कुटुम्बियों के चित्र उससे तैयार कराये और उसने तैयार कर दिये। इन आदमियों के इज़हार एक अमेरिकन अफ़सर के सामने हुए। उसके तसदीक़ किये हुए ये इज़हार "वाशिंग्टन पोस्ट" ने छापकर प्रसिद्ध किये हैं; वही, बूढ़े शिशिर बाबू ने भी प्रकाशित किये हैं। अभी तक मुक्त आत्मायें "चक्र" में आकर हँसती, खेलती, बोलती और लिखती ही थीं; अब वे केमरा के सामने आकर कपने चित्र भी उतरवाने लगीं!

* * *

गत जुलाई की सरस्वती में हर्बर्ट स्पेन्सर का जो चरित प्रकाशित हुआ है उसके सम्बन्ध में बाबू गोकुलानन्दप्रसाद वर्म्मा ने कुछ नोट्स भेजे हैं। उन्हें हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

(१) हर्बर्ट स्पेन्सर की शादी नहीं हुई थी। उसने अपना विवाह किया ही नहीं। उसको विवाह करने की कभी इच्छा हुई भी नहीं। यद्यपि वह सौन्दर्य्य-प्रिय था; पर कवि न था। वह सौन्दर्य्य-सेवक और रसिक न था। जार्ज इलियट एक बहुत नामी औरत होगई है। उपन्यास लिखने वालों में वह बहुत मशहूर कही जाती है। उसके उपन्यासों को साहित्य-समालोचक लोग प्रथम स्थान देते हैं। जार्ज इलियट स्पेन्सर की समकालीन थी। दोनों में प्रगाढ़ मैत्री थी। इलियट बहुत ही सुन्दरी थी। लोगों का कुछ दिनों तक सन्देह था कि स्पेन्सर उस पर आसक्त है। पर यह सन्देह ग़लत निकला। स्पेन्सर ने अपनी जीवनी में स्पष्ट लिखा है कि मैं इलियट पर आसक्त नहीं था। बल्कि वह इलियट का हेनरी लुइस पर प्रेम देख कर बहुत ख़ुश हुआ था।

एक बार स्पेन्सर के सामने उसके दोस्तों ने किसी भले आदमी की एक बहुत ख़ूबसूरत लड़की को बुलवा भेजा और उसके आने पर स्पेन्सर से पूछा, "कहिए यह कैसी है?"। स्पेन्सर ने कहा—"इसका सिर सुडौल नहीं है"। उन दिनों स्पेन्सर Physiognomy पर विचार कर रहा था। Physiognomy उस विद्या को कहते हैं जिसके द्वारा किसी का मुँह देख कर उसके स्वभाव का हाल जाना जाता है। स्पेन्सर के हृदय में उस सुन्दरी का सौन्दर्य्य प्रवेश नहीं कर सका। दूसरी बार, जब स्पेन्सर नामी हो चुका था, उसके एक मित्र ने उससे कहा—"अच्छा हुआ जो तुमने अपनी शादी नहीं की; अगर शादी करते तो इतनी दार्शनिक पुस्तकें संसार को भेंट न कर सकते"।

एक समय स्पेन्सर किसी होटल में ठहरा था। वहां एक औरत भी ठहरी थी जो बिलियर्ड खेलने में बहुत प्रवीण थी। देखने में वह बहुत रूपवती थी और अविवाहिता भी थी। स्पेन्सर ने उसके साथ बिलियर्ड खेलने की इच्छा प्रकट की। यह देख सब लोग बहुत चकित हुए। भीड़ इकट्ठी होगई। दोनों खेलने लगे। बहुत देर तक खेल होता रहा। स्पेन्सर ने आख़िर जीत ही कर खेल को छोड़ा। जब लोगों ने पूछा कि "आप इस तरह जीतने के लिए क्यों परेशान थे?" तब उसने जवाब दिया, "भाई, अगर इस सुन्दरी से मुझे विवाह करना होता तो मैं बिलियर्ड में अवश्य हार जाता। पर जब मेरी यह इच्छा है ही नहीं तब मैं कुवाँरा होकर क्यों इस कुवाँरी से हार मानूं?।"

एक बार एक युवती ने स्पेन्सर से पूछा—"संसार के लोग प्रेमवार्ता में क्यों इतना अधिक जी लगाते हैं? सबको प्रेमजाल में फँसना है—क्या इसका यही कारण है?" स्पेन्सर ने कुछ उदासीनता दिखला कर कहा—"हां, यह भी एक कारण है; पर प्रधान कारण यह है कि प्रेम इस संसार में सब वस्तुओं से अधिक प्रिय है"।

(२) दो स्त्रियों ने इस साल एक पुस्तक छपवाई है जिसका नाम है Home life with Herbert Spencer। अर्थात् "स्पेन्सर के साथ गार्हस्थ जीवन"। उसमें लिखा है कि तेईस बरस तक होटल में रह कर सन् १८८९ में स्पेन्सर को इच्छा हुई कि एक मकान लेकर वहां अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर के तौर पर रहूं। उसने एक मकान लिया। उसमें दो साझीदार भी थे और दोनों युवतियां थीं। स्पेन्सर इन दोनों के साथ हिल मिल गया। पर वह हिलना-मिलना कैसा था? हमारे देश के परमहंसों की तरह। वे दोनों स्पेन्सर को बच्चों की तरह टहलाती फिराती और खिलाती पिलाती थीं। यह अजीब किताब है। इसमें इन दोनों युवतियों ने स्पेन्सर की बेवक़ूफ़ियों का संग्रह किया है जो असल में बेवक़ूफ़ियां नहीं किन्तु परमहंसों के लक्षण हैं।

(३) हर्बर्ट स्पेन्सर पढ़ता बहुत कम था; सोचता अधिक था। प्रसिद्ध लेखक कारलाइल ने क्रामवेल की जीवनी लिखी है। सब पढ़े-लिखे लोगों ने उसको पढ़ा। पर स्पेन्सर ने उसे उलट कर देखा तक नहीं। जब एक मित्र ने उससे इसका कारण पूछा तब उसने कहा—"मैं इस ग्रन्थ की कुल जानने योग्य बातों को समालोचनाओं में पढ़ चुका हूं। अब फिर उनके दोहराने के लिए मुझे समय नहीं है"।

* * *

अमेरिका के चार्ल्स लिंज़े नामक एक कारीगर ने एक घूंसेबाज़ आदमी कल का बनाया है। यह निर्जीव आदमी सजीव आदमियों से घूंसेबाज़ी करता है। लड़ाई में कोई आदमी, चाहे कैसा ही चतुर और सबल क्यों न हो, उससे पेश नहीं पाता। वह घूंसे की सीधी ही मार नहीं मारता, दाहने बायें भी मार करता है और अपने मुक़ाबिल के आदमी को वार को भर सक अपने बदन पर नहीं लगने देता। वह वार करने से पहले पीछे नहीं हटता। उसके आघात बिना पूर्व-सूचना के सहसा होते हैं। इस कारण उसके साथ लड़नेवाले को बेहद होशियार रहना पड़ता है, क्योंकि उसे इस बात का इशारा ही नहीं मिलता कि कब और किस तरफ़ उस पर आघात होगा। इस कल के आदमी का शरीर सब तरफ़ झुक सकता है। इससे इसके प्रतिपक्षी के घूंसे यदि इस पर पड़ते हैं तो एक ही जगह नहीं पड़ सकते—कभी इधर कभी उधर पड़ते हैं। यह

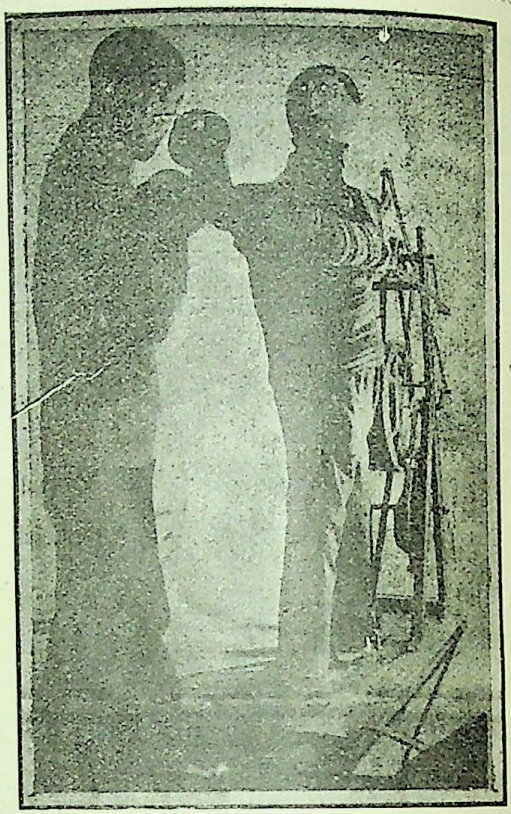

आदमी बिजली के मोटर से चलाया जाता है और इसका प्रतिपक्षी जितनी जल्दी घूंसों का

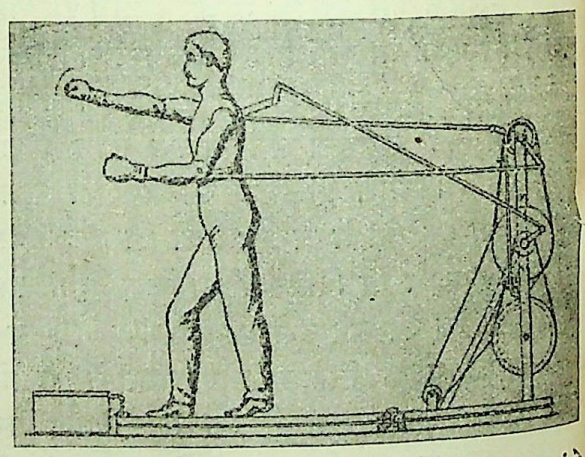

जवाब दे सकता है उतनी ही जल्दी यह घूंसे बरसाता है। नौसिखिये लोग इसके साथ घूंसेबाज़ी सीख भी सकते हैं। उनके साथ घूंसों की वर्षा को यह कम कर देता है।

* * *

आज तक तेज़धार वाले औज़ार सिर्फ़ लोहे या ईसपात ही के बनते थे। पर अब सोने, चाँदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तांबे को लोहे के समान कड़ा करके उनके औज़ार बनाने की तरकीब अमेरिका के एक साहब ने निकाली है। चीर-फाड़ के लिए डाक्टर लोगों को जो बहुत ही बारीक नोक और धार के शस्त्र दरकार होते हैं उन्हें आपने सोने के बना डाला है। इनकी धार ईसपात के शस्त्रों से भी तेज़ है। ये खूब काट करते हैं; बहुत कम मैले होते हैं; कभी ज़ंग इनमें नहीं लगता। सबसे बड़ा गुण इनमें यह है कि रोगियों के दूषित रुधिर आदि के स्पर्श से इनमें विशेष दोष नहीं आता। ज़रा ही धोने धाने से इनमें आया हुआ दोषांश जाता रहता है।

* * *

बिजनौर के ज़िले में एक जगह नजीबाबाद है। वहां की "मोरिस-शक्कर-प्रचार-निषेधक सभा" के मन्त्री मुंशी श्रीप्रसाद लिखते हैं कि "स्वदेशी पवित्र खांड और विदेशी अपवित्र खांड के बने हुए माल, चीनी, मिश्री इत्यादि की" जो सबसे सुगम और सन्तोष-जनक पहचान बतलावेगा उसे सभा की तरफ़ से ५०) रुपये का इनाम मिलेगा।

* * *

अमेरिका में हिन्दू-धर्म्म की जड़ जमाने की जो कोशिशें हो रही हैं उनका एक प्रत्यक्ष फल वहां फला है। इस देश के स्वामी त्रिगुणातीत को पाठक शायद जानते होंगे। उन्होंने सानफ्रांसिसको में एक हिन्दू-मन्दिर बनवा दिया है। अभी, कुछ दिन हुए, उसकी प्रतिष्ठा थी। यह मन्दिर अमेरिका की "वेदान्त-मिशन" नामक सभा के प्रबन्ध से बना है। इसमें कोई देव-मूर्ति नहीं स्थापित की गई। यह सिर्फ़ अमेरिका के वेदान्तियों के व्याख्यान इत्यादि देने के लिए है। इसमें हिन्दुओं के वेदान्त और दर्शन-शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली बातों पर विचार हुआ करेगा। मूर्ति की जगह, रामकृष्ण परमहंस का एक पूरे क़द का चित्र इसमें रक्खा गया है।

* * *

अमेरिका के वेलमैन साहब उत्तरी ध्रुव की हवा खाने जानेवाले हैं। यह ख़बर पाठक सुन चुके हैं। आप पवन-नौका में सवार होकर जायँगे। आइसलैंड इत्यादि ध्रुव के निकटवर्ती देशों में बर्फ़ की अधिकता है। बर्फ़ ही पर लोगों को चलना

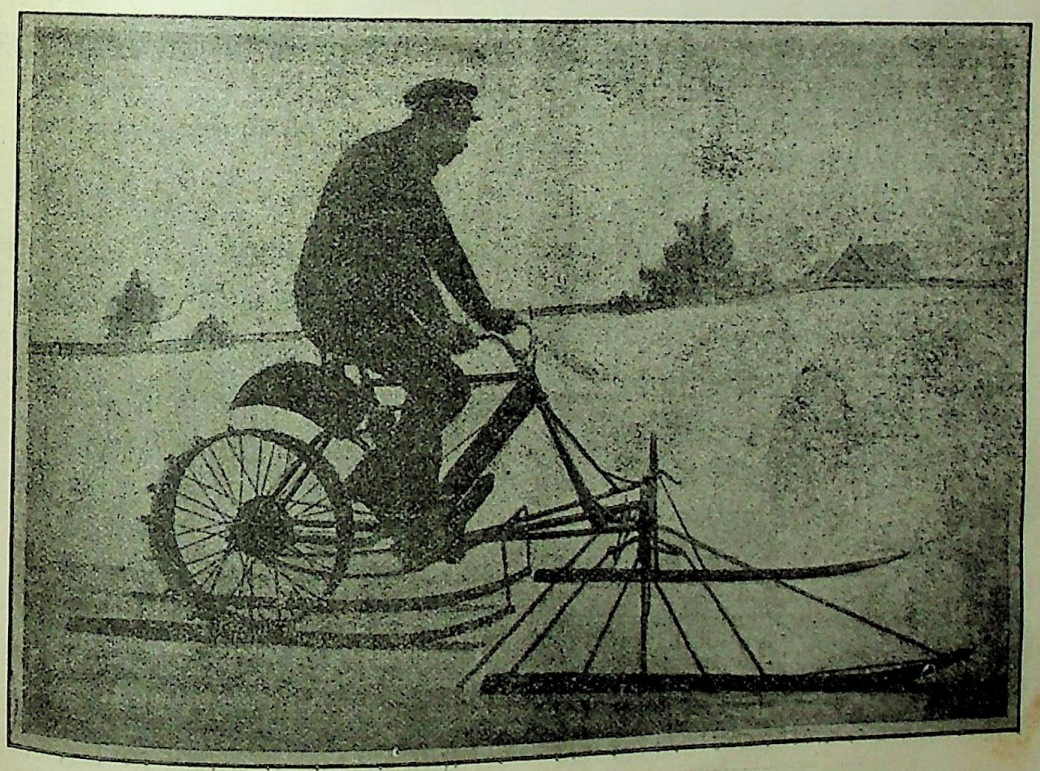

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ता है। गाड़ियां भी बर्फ़ ही पर चलने योग्य वहां के लोगों ने बनाई हैं। वे बिना पहियों की होती हैं और कुत्ते या बारहसिंहे उन्हें घसीटते हैं। वेलमैन साहब को अपने सफ़र के लिए बर्फ़ पर चलने लायक़ एक विचित्र गाड़ी की ज़रूरत हुई। गाड़ी नहीं, बर्फ़ पर चलनेवाली बाइसिकल—पैर गाड़ी। सो भी पैर से चलाने की नहीं, "मोटर" के ज़ोर से आप ही आप चलनेवाली। पहले बहुत दिनों तक आपको तंग होना पड़ा। किसीने आपको आपकी अभिलषित गाड़ी न बना दी। सब कारख़ानेवालों ने जवाब दे दिया। पर अन्त में आपको कामयाबी हुई। अमेरिका के वाशिङ्गटन टौन की "मिलर एंड ब्रदर कंपनी" ने बर्फ़ पर चलनेवाली मोटर पैरगाड़ी बना दी। इसकी शकल सूरत बड़ी ही अजीब है। चिकने बर्फ़ पर एक घंटे में यह ३० मील तक जा सकती है। पर जाती है घसिटती हुई। इसके पहियों में लोहे के बड़े बड़े दाँत हैं। "मोटर" का बल पाते ही ये दाँत गाड़ी को आगे की तरफ़ चलाने में ख़ूब ज़ोर लगाते हैं।

* * *

विलायत में लेडी हेरनी सेमरस्यट की वक्तृत्व-शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी है। उनकी राय है कि पहले ही पाँच मिनटों में वक्ता को चाहिए कि वह श्रोताओं के चित्त को अपनी तरफ़ आकृष्ट करले। नहीं तो फिर मुश्किल से यह काम होगा। फिर, सुननेवाले उसकी वक्तृता को चाव से शायद ही सुनें। यदि वक्तृता का विषय बहुत गंभीर हो तो बीच में कोई ऐसी हँसी दिल्लगी की बात कह देनी चाहिए जिससे सुननेवाले सहसा हँस पड़ें। पर इस हँसी के मौक़े को हाथ से न जाने देना चाहिए। हँसने और रोने का सम्बन्ध बहुत पास पास का है। हँसने के बाद यथेष्ट सामग्री उपस्थित होते ही ज़रूर आँसू निकल पड़ते हैं। अतः यदि बोलनेवाले को कोई ऐसी बात कहनी है जिससे सुननेवालों के चित्त पर ख़ूब असर पड़े तो उसे, उस बात को, हँसना बन्द होते ही कह डालना चाहिए। बोलने में आवाज़ का भी ख़ूब ख़याल रखना चाहिए। कई प्रकार के स्वरों में बोलने का अभ्यास रखना बहुत ज़रूरी है। कुछ पूछना हो तो आवाज़ को ऊंचा कर देना चाहिए; किसीको धिक्कारना हो तो उतार देना चाहिए; यदि कोई विशेष प्रकार के मनोविकार व्यक्त करने हों तो आवाज़ को तदनुकूल बदल देना चाहिए। पर जब इस तरह की कोई ज़रूरत न हो तब अपनी स्वाभाविक आवाज़ से बोलना चाहिए।

* * *

क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर, के प्रोफ़ेसर पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०, द्वारा सम्पादित होकर "कान्यकुब्ज" को निकलते आठ नौ महीने हो गये। यह मासिकपत्र इतना सस्ता है कि साल में सिर्फ़ एक रुपया ख़र्च करने से हर महीने इसके कोई ४० पृष्ठ पढ़ने को मिलते हैं। इसके प्रकाशक से प्रार्थना है कि वे भी इसके रंग, ढंग और छपाई वग़ैरह की तरफ़ विशेष ध्यान रक्खें। इसके आठवें अङ्क में "कान्यकुब्ज-अबला-विलाप" नामक एक कविता छपी है। उसे हम अन्यत्र उद्धृत करते हैं। कविता सामाजिक है और, नमूने के तौर पर, सिर्फ़ इस बात के दिखलाने के लिए दी जाती है कि "कान्यकुब्ज" में किस विषय के लेख रहते हैं।

* * *

गत वैशाख के "प्रवासी" में बाबू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर अङ्कित एक चित्र प्रकाशित हुआ है। उसका नाम है "विरही यक्ष"। कालिदास-कृत प्रसिद्ध मेघदूत काव्य में जिस यक्ष की कथा है उसी का यह कल्पित चित्र है। इस चित्र की प्रशंसा अनेक चित्र-विद्या-विशारद महाशयों ने की है। वर्षा ऋतु आ गई है। मेघ आकाश में छाये हुए हैं। एक पर्वतीय शिला पर एकान्त में यक्ष बैठा हुआ है। पर्वत पर वर्षाकालीन वृक्षों और लताओं में फूल खिल रहे हैं। चिड़ियां इधर उधर उड़ रही हैं। ऐसे समय में यक्ष, मेघ को दूत मान कर, अपनी प्रियतमा यक्षिणी के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले जाने के लिए अपना सन्देश कह रहा है। यह चित्र प्रवासी-सम्पादक श्रीयुक्त बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय से प्राप्त करके कृतज्ञताप्रकाश्य-पूर्वक सरस्वती की इस संख्या में दिया जाता है।

महामहोपाध्याय पण्डित महेशचन्द्र न्यायरत्न, सी० आई० ई०।

बंगाल के प्रसिद्ध पण्डित महामहोपाध्याय महेशचन्द्र न्यायरत्न, सी० आई० ई०, के नाम से हिन्दी के बहुतेरे पाठक परिचित होंगे। इन्होंने कई वर्षों तक कलकत्ता-संस्कृत-कालेज के प्रोफ़ेसर और प्रिन्सिपल का काम किया। हाल ही में इनका देहान्त होगया है। न्यायरत्न की मृत्यु से वंगभूमि ने अपना एक शिरोरत्न खो दिया। इसमें सन्देह नहीं। इनके जीवन की बहुत सी बातें काम की हैं। इसलिए इनकी संक्षिप्त-जीवनी सरस्वती के पाठकों की सेवा में भेंट की जाती है।

जन्म और बाल्यकाल।

हवड़ा ज़िले में नारीट नाम का एक गांव है। वहीं, तारीख़ २२ फ़रवरी १८३६ ई० को, महेशचन्द्र का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम हरिनारायण तर्कसिद्धान्त था। ये भट्टाचार्य्य-वंश के कुलीन ब्राह्मण थे। इनके पूर्वपुरुष संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। पंडिताई के लिये इनका घराना प्रसिद्ध था।

लड़कपन में ये बड़े खिलाड़ी थे। आठ बरस की अवस्था तक इनका बाल्यकाल खेल कूद ही में बीता। यद्यपि खेल में इनका जी बहुत लगता था तो भी वंश-गुण का प्रभाव इनमें कम न था। इनके लड़कपन ही में इनकी बुद्धि का परिचय लोगों को मिल चुका था।

अध्ययन।

नवें बरस इनका विद्यारम्भ हुआ। घर ही पर इनके पिता स्वयं इन्हें पढ़ाने लगे। ग्यारह बरस तक इनकी पढ़ाई घरही पर हुई। इतने काल में इन्हें संक्षिप्तसार व्याकरण तथा अमरकोश आदि कई ग्रन्थ कंठ कराये गये।

बारहवें बरस में घर की पढ़ाई समाप्त हुई और ये मेदिनीपुर ज़िले के रसिकगंज नामक गाँव में उस समय के विख्यात वैयाकरण पण्डित ठाकुरदास चूड़ामणि के पास व्याकरण पढ़ने के लिये भेजे गये। इस समय इनकी समझ अच्छी हो चली थी। अब इन्हें पढ़ाने में ताड़ना की आवश्यकता न थी। गुरु ठाकुरदास चूड़ामणि को इनकी तीव्र बुद्धि का परिचय इनके आने के कुछ ही दिन बाद मिल गया। इससे तुरंत ही ये गुरु के प्रिय छात्र बन गये। भारतवर्ष में सर्वत्र पढ़ाई की प्राचीन प्रथा यह थी कि बालक किसी अध्यापक की पाठशाला में सौंप दिये जाते थे। जितने दिन वे वहां पढ़ते उतने दिन उन्हें गुरु ही के घर रहना पड़ता, वहीं खाना सोना पड़ता और पढ़ने से जो समय बचता उसमें सेवा की भांति गुरु के घर का काम काज भी करना पड़ता था। आज कल का बोर्डिंग्स्कूल उस समय गुरु का घर ही था। इसी प्राचीन-प्रथानुसार महेशचन्द्र का अध्ययन आरम्भ हुआ। जैसे ये तीव्रबुद्धि थे वैसे ही गुरु-भक्त भी थे। गुरु के घर का काम काज और उनकी सेवा दूसरे छात्रों की अपेक्षा ये विशेषतर जी लगा कर और बड़े भक्ति-भाव से करते थे। दिन को ये अपने पाठ का विचार करते और रात को गुरु महाराज के खेत खलिहान की रखवारी करते थे। एक बार इनके गुरु-परिवार में कई व्यक्तियों को शीतला निकलीं। उस समय इन्होंने जान पर खेल कर सब की सेवा शुश्रूषा की जिससे इनकी गुरु-भक्ति सब पर भली भांति प्रकट हो गई। एक बार एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैयायिक पण्डित, चूड़ामणि जी के यहां आये। उन्होंने महेशचन्द्र की तीव्र बुद्धि और तर्कना-शक्ति देख कर कहा—"यह बालक आगे एक नामी नैयायिक होगा।"

१८५२ ई० में महेशचन्द्र गवर्नमेंट-संस्कृत-कालेज में पढ़ने की इच्छा से कलकत्ता आये। संस्कृत-कालेज की पाठ्य-प्रणाली इन्हें अच्छी न लगी। इससे ये कालेज में नाम न लिखा कर विशेष विशेष विषयों का अध्ययन भिन्न भिन्न पण्डितों के पास करने लगे। न्याय-शास्त्र इन्हें सब से अधिक प्रिय था। इससे इन्होंने पहले अपने चचा पं० ठाकुरदास चूड़ामणि से न्याय पढ़ना आरंभ किया। पीछे स्मृति का अध्ययन भी करने लगे, जिसके अध्यापक एक तो पूज्यपाद इनके पिता ही थे, दूसरे इनके नातेदार दुर्गादास तर्कवाचस्पति। पूर्वोक्त विषयों में इन्होंने शीघ्र ही योग्यता प्राप्त करली। अनन्तर और कई विषयों का अध्ययन इन्होंने संस्कृत-कालेज के अध्यापकों के घर पर जाकर किया। विशेष कर पण्डित जयनारायण तर्कपञ्चानन से इन्होंने न्याय तथा अलङ्कारादि साहित्य के विषय पढ़े। तर्कपञ्चानन इन्हें पुत्रवत् मानते थे और ये भी पिता के समान उनकी भक्ति करते थे। तर्कपञ्चानन जी के जीवन पर्य्यन्त उनके, और महेशचन्द्र के, बीच परस्पर पिता-पुत्र का भाव बना रहा।

परमहंस ज्योतिःस्वरूप नाम के एक पंजाबी सन्यासी उस समय कलकत्ते में रहते थे। उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। उन्हीं से महेशचन्द्र ने वेदान्त शास्त्र तथा श्रीहर्ष-कृत खण्डन-खण्ड-खाद्य का अध्ययन किया। इसके बाद पण्डित कालीनाथ तर्करत्न से इन्होंने ज्योतिश्शास्त्र पढ़ा। इसी समय इनकी कलकत्ते की पढ़ाई समाप्त हुई और आगे पढ़ने के लिये ये काशी जी गये।

१८६१ ई० में इनकी पढ़ाई काशी जी में आरम्भ हुई। यहां इन्होंने भिन्न भिन्न पण्डितों के पास उपनिषद्, योग और पूर्व-मीमांसा के ग्रन्थों का अध्ययन किया। इनके सब से अन्तिम अध्यापक काशी के प्रसिद्ध संन्यासी कैवल्य-प्राप्त श्री स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती थे। वेदान्त विषय के ग्रन्थ इन्होंने उनसे बहुत जी लगा कर और भक्ति के साथ पढ़े। स्वामी जी भी इन्हें बहुत मानते थे। काशी में ग्रिफ़िथ साहब से भी इनका परिचय हुआ। साहब उस समय काशी के क्वीन्सकालेज के प्रिन्सिपल थे। इन्हों ने महेशचन्द्र को एक बढ़िया प्रशंसा-पत्र दिया। बस यहीं काशी में इनका अध्ययन-काल समाप्त हुआ।

कार्य्यकारिता।

१८६३ ई० में ये काशी से फिर कलकत्ते लौट आये। यहां इन्होंने महाराज कमलकृष्ण की सहायता से एक "चतुष्पाठी" (संस्कृत-पाठशाला) स्थापित की। यह पाठशाला शीघ्र ही चल निकली और इसके द्वारा महेशचन्द्र का पाण्डित्य धीरे धीरे फैलने लगा।

उस समय कलकत्ता-गवर्नमेंट-संस्कृत-कालेज के प्रिन्सिपल मिस्टर ई० बी० कावेल थे। महेशचन्द्र इन्हें संस्कृत-दर्शन-शास्त्र पढ़ाते थे। कावेल साहब को इनका पाण्डित्य अच्छी तरह मालूम हो गया था। उन्हीं की सिफ़ारिश से महेशचन्द्र १८६४ ई० में संस्कृत-कालेज के एक सहकारी प्रोफ़ेसर की जगह पर नियत हुए। उस समय तक ये अँगरेज़ी बिलकुल नहीं जानते थे। कालेज में नियत होने पर इन्होंने अँगरेज़ी सीखना आरंभ किया। अंगरेज़ी के नवसिखिये महेशचन्द्र जब कभी कावेल साहब के साथ अंगरेज़ी बोलते थे तब साहब को इनकी सामान्य भूलों पर हँसी आती थी। पर इससे साहब इनके साथ आदर में कमी नहीं करते थे। साहब समझते थे कि ये संस्कृत के पूरे विद्वान् हैं, पर अंगरेज़ी नहीं जानते। धीरे धीरे महेशचन्द्र ने काम चलाने भर को अंगरेज़ी भी सीख ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस साल ये कालेज में नियत हुए उसी साल बंगाल-गवर्नमेंट के आदेश से इन्हें कावेल साहेब के साथ नदिया ज़िले की संस्कृत-पाठशालायें देखने के लिए घूमना पड़ा। इस काम में साहब को इन्होंने अच्छी सहायता दी, जिस के लिये उन्होंने सरकार के यहां इनकी खूब प्रशंसा की।

कालेज में इनकी उन्नति हो चली। थोड़े ही दिनों के बाद ये स्मृतिश्रेणी के प्रोफ़ेसर बनाये गये। १८७६ ई० में "हायर एजुकेशनल सर्विस" के दर्जे में इनकी तरक्की हुई। अब तक बंगाल में किसी देशी पण्डित को यह दर्जा नहीं मिला था। कावेल साहेब इन्हें जी से चाहते थे और इनकी उन्नति के लिये सर्वदा यत्न करते थे। उसी का फल यह हुआ कि १८७७ ई० में ये संस्कृत-कालेज के प्रिन्सिपल के पद पर नियत हुए।

प्रिन्सिपल होने पर महेशचन्द्र ने संस्कृत-शिक्षा के फैलाने और उसके गौरव दिखाने के विषय में कई काम किये, जिनसे उनकी स्मृति बंगाल में बहुत दिनों तक बनी रहेगी। इन्हीं के प्रयत्न से उपाधि-परीक्षा की नींव पड़ी। बंगाल-गवर्नमेंट ने जो इक्कीस हज़ार रुपया वार्षिक संस्कृत-शिक्षा के लिए देने की व्यवस्था की है सो इन्हीं के अनवरत उद्योग का फल है। जब सरकार की सहायता से संस्कृत-शिक्षा का यथेष्ट कार्य्य चलना संभव न हुआ तब बंगाल के धनी मानी लोगों से भी इन्होंने इसके लिये अनुरोध किया और उसका फल भी अच्छा ही हुआ।

एक बार संस्कृत-कालेज से स्मृति-श्रेणी उठा दी गई थी। उस समय महेशचन्द्र ने अच्छी तरह दिखाया कि स्मृति-श्रेणी उठा देने से संस्कृत-शिक्षा में हानि होगी। सरकार की यह राय पसन्द आई और स्मृति-श्रेणी फिर ज्यों की त्यों रखी गई।

कालेज में पहले सब छात्रों को ५) मासिक फ़ीस देनी पड़ती थी। इन्होंने २० छात्रों को २) मासिक फ़ीस पर पढ़ने की आज्ञा दिलाई।

एक बार संस्कृत-कालेज से अंगरेज़ी-कालेज-विभाग उठा देने की राय हुई थी; पर महेशचन्द्र ने कह सुन कर उसे उठने नहीं दिया।

कालेज की छात्र-संख्या जब घटने लगी तब इन्होंने महारानी स्वर्णमयी तथा और कई देश-हितैषी व्यक्तियों के यहां से रुपया संग्रह किया। इस रुपये से सौ छात्रों की फ़ीस देने की व्यवस्था की गई जिससे छात्र उत्साहित होकर बढ़ने लगे।

इनकी पढ़ाने की शैली प्रशंसनीय थी। कठिन से कठिन विषय भी ये सहज में समझा देते थे। जो छात्र एक बार भी इनसे पढ़ता वह सदैव इन्हीं से पढ़ने की इच्छा रखता था।

इनके कामों से सरकार में इनकी बहुत बड़ाई हुई जिसका फल यह हुआ कि १८८७ ई० में इन्हें सरकार से सी० आई० ई० की उपाधि मिली।

१८८७ ई० में, बड़े लाट लार्ड डफ़रिन के समय में, इन्हीं के प्रस्ताव और उद्योग से पण्डितों को "महामहोपाध्याय" और मौलवियों को "शम्स्-उल्-उल्मा" की उपाधियां देने की प्रथा चली। पहले पहल उस बरस इन्हींको महामहोपाध्याय की उपाधि मिली।

संस्कृत-शिक्षा के उन्नतिविषयक कार्य्यों के अतिरिक्त इन्होंने सर्वसाधारण के उपकारार्थ और भी बहुत से अच्छे अच्छे काम किये हैं। उनमें से मुख्य मुख्य कार्य्यों के विषय में नीचे लिखा जाता है—

१८८६ ई० में हवड़ा, हुगली आदि कई ज़िलों में भारी अकाल पड़ा था। उस समय इन्होंने सरकार तथा अन्यान्य देशी व्यक्तियों से सहायता लेकर दीन दुखियों को भूखों मरने से बचाया था। उस समय ये स्वयं अकालपीडित गांवों में जाकर भोजनादि के प्रबन्ध की देख भाल करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दार्जिलिंग में इन्हींके यत्न से देशी प्रवासियों के रहने का स्थान बना, जो आज भी इनकी उपकारिता का परिचय दे रहा है।

कलकत्ता-मेडिकल-कालेज में इन्हींके उद्योग से वर्त्तमान हिन्दू-होटल (छात्रालय) की नींव पड़ी जिससे देशी विद्यार्थियों का बहुत उपकार हुआ।

अपने गांव में इन्होंने एक हाईस्कूल स्थापित करवाया जिसमें ये आप भी साहाय्य करते थे। इन्हीं के प्रस्ताव और उद्योग से हबड़ा ज़िले में कई नई सड़कें और रेलवे लाइनें खोली गईं, जिनसे सर्वसाधारण को बहुत लाभ पहुंचा।

पक्के सनातनधर्म्मावलम्बी होने पर भी न्यायरत्न एक दम अन्धपरम्परा के पक्षपाती नहीं थे। वर्त्तमान-हिन्दू-समाज में जिन जिन शास्त्रविरुद्ध और दम्भ-मूलक बातों का प्रचार हो गया है उनके उठाने की ओर सदा इनका ध्यान रहता था। उनके निम्नलिखित कर्य्यों से यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है—

इन्होंने देखा कि यद्यपि ज्योतिश्शास्त्र के ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है कि ग्रहादि की गति के परिवर्त्तनानुसार तिथ्यादि निकालने की रीतियों में भी परिवर्त्तन अवश्य होना चाहिये; पर साधारण पण्डित लोग इन सब बातों का विचार न करके आँख मूंद कर पुरानी रीतियों के अनुसार ही पञ्चाङ्ग बनाते आते हैं, जिससे वह अशुद्ध हो जाता है और उसके अनुसार गणना करने से फल ठीक न मिलने के कारण भारतीय ज्योतिश्शास्त्र पर धब्बा लगता है। इससे ग्रहादि की चाल पर विचार करके पञ्चाङ्ग बनाना चाहिए। अपने इस विचार को इन्होंने कई मननशील पण्डितों पर प्रकट किया। प्रायः सब लोगों को इनकी सूचना अच्छी लगी और सबकी राय से, १२९६ वङ्गाब्द से, "विशुद्ध-सिद्धान्त-पञ्जिका" नामक संस्कृत-बँगला-पञ्चाङ्ग प्रकाशित होने लगा जो अब तक प्रति वर्ष प्रकाशित होता है। पर दुर्भाग्य की बात है कि सर्वत्र इसका अनुकरण न हुआ।

कलकत्ते में जब पहले पहल पानी की कल लगी तब बहुतेरे कट्टर हिन्दू लोग कल का जल पीने से इनकार करने लगे। सरकार की ओर से इस पर न्यायरत्न की सम्मति ली गई। इन्होंने तत्कालीन सनातन-धर्म्म सभा में यह बात उठाई और सभा की सम्मति से "यन्त्रोद्धृत-जलशुद्धि-व्यवस्था" नाम की छोटी सी पुस्तक लिखी जिस में कल का पानी पीना समर्थन किया गया। इस व्यवस्था से किसी को कल का पानी पीने में आपत्ति न रही। कलकत्ते के निवासियों—विशेषतः प्रवासी लोगों—के लिये यह बहुत अच्छा हुआ; क्योंकि यदि कल का पानी पीने की व्यवस्था न होती तो हिन्दू-प्रवासियों के लिये यहां रहना कठिन हो जाता।

बहुतेरे प्रतिष्ठित पण्डितों की सम्मति से समुद्र-यात्रा के ऊपर भी ये व्यवस्था लिख गये हैं, जिसमें हिन्दूशास्त्रानुसार समुद्र-यात्रा का समर्थन किया गया है। इनकी यह व्यवस्था बहुतों को अच्छी नहीं लगी और उसके खण्डन में बंगभाषा में "काला पानी" वा "हिंदूमते समुद्र-यात्रा" नामक प्रहसन की रचना हुई। कई जगह इसका अभिनय भी हुआ; पर न्यायरत्न ने इसकी कुछ परवा न की। वे स्वतन्त्र रूप से अपने सिद्धान्त पर डटे रहे।

काशी के पंडा लोग यात्रियों को तंग करके उनसे दक्षिणा वसूल किया करते थे। सुनते हैं एक बार इन्होंने वहां के मैजिस्ट्रेट से पंडों के अत्याचार की ये सब बातें कहीं। मैजिस्ट्रेट को भी इनकी राय अच्छी लगी और उन्होंने पंडों के नेताओं को बुलाकर समझाया और सबकी सम्मति से दक्षिणा लेने का प्रतिबन्ध कर दिया। इस नियम के अनुसार यात्री लोगों पर जो ज़बरदस्ती की जाती थी सो बन्द हो गई। मालूम नहीं यह बात अब तक है या नहीं। यदि है तो यह बड़े उपकार की बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायरत्न गवर्नमेंट के शुभचिन्तक और प्रियपात्र थे। गवर्नमेंट इनकी बातों पर बहुत विश्वास करती और इनके प्रस्तावों पर विशेष मनोयोग के साथ ध्यान देती थी। प्रायः सभी सरकारी सभासोसायटियों में इनकी पूछ होती थी और इनकी बातों का आदर होता था। सरकार को इस देश की सच्ची दशा जनाने और उसके अनुचित प्रस्तावों के खण्डन में ये डरते न थे। अपनी विद्वत्ता से ये और प्रान्तों में भी सम्मानित होते थे। इनमें एक विशेष गुण यह था, जो और बंगालियों में प्रायः कम पाया जाता है कि ये सब प्रान्तों के पण्डित और विद्वानों का आदर करते थे; केवल बंगालियों ही के पक्षपाती न थे। इनका स्वभाव यद्यपि कोमल था तथापि ये कुछ असहनशील थे। अपनी बात रखने का इन्हें बड़ा आग्रह था। उनका नीचे लिखा कार्य्य इस बात को पुष्ट करता है—

एक बार इनकी संकलित एंट्रेन्स-परीक्षा की संस्कृत-सेलेक्शन्स की पुस्तक में कुछ भूलें हो गई थीं। बहुतों ने इस पर आपत्ति उठाई। न्यायरत्न ने "प्रकृत-कथा" नाम की एक छोटी सी पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने उन सब अशुद्धियों को शुद्ध सिद्ध कर दिया। प्रतिवादियों को फिर मुंह खोलने का अवसर न रहा। यद्यपि न्यायरत्न का यह कार्य्य कुछ प्रशंसनीय नहीं हुआ, तथापि यह इनके पाण्डित्य का परिचयदायक है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार की परिपाटी भारतवर्ष में प्राचीन काल से चली आती है। अथवा यों कहिए कि भारत की भूमि में ही एक विशेष गुण है कि यहां के पण्डित लोग अपने पाण्डित्य-गौरव की रक्षा के लिये अशुद्धियों को शुद्ध कर दिखाने में अपनी विद्वत्ता दिखाते आये हैं। संस्कृत के "सारस्वत व्याकरण" आदि कई ग्रन्थों का निर्म्माण इस विषय का जागरूक प्रमाण है। न्यायरत्न भी उसी गौरवप्रिय भारत की सन्तान थे। इससे यदि उन्होंने ऐसा किया तो कुछ बुरा न किया।

सुनते हैं अपनी वाक्पटुता से लोगों को प्रसन्न करने में ये बड़े प्रवीण थे। इनका यह सिद्धान्त था और बहुधा ये कहा भी करते थे कि इस देश के धनी मानो लोग यहां की दीन प्रजा की ओर ध्यान नहीं देते। उनके धन का अधिकांश व्यर्थ व्यय होता है। इससे उन्हें समझा कर अथवा प्रसन्न करके उनसे रुपया निकालना और उसे परोपकार में लगाना विद्वानों का कर्तव्य है। अपने इसी सिद्धान्त के अनुसार ये कृपण से भी कृपण लोगों से अपने वचन-चातुर्य के प्रभाव से रुपया वसूल करके सर्वसाधारण के उपकारी कामों में लगाते थे। गवर्नमेंट के विषय में भी इनकी कुछ ऐसी ही धारणा थी। इससे सरकार से भी देशहितार्थ रुपया वसूल करने में ये त्रुटि न करते थे। ये नाम पाने के भी भूखे थे। कुछ तो अपनी नामवरी के लिये और कुछ परोपकार के लिए सहायता लेने में ये सरकार के पूरे पक्षपाती थे। उनकी इस ख़ुशामद-परस्ती के कारण वंगप्रान्त के कुछ विद्वान् उनसे उदासीन रहते थे। पर इस उदासीनता की उन्हें ज़रा भी परवा न थी। जिस सिद्धान्त पर वे चलते थे उस पर अचल थे।

इन्होंने "तुलसीधारण-मीमांसा", "लुप्तसंवत्सर-मीमांसा" आदि कई पुस्तकें लिखी हैं। विशेष कर इनकी पुस्तकें संस्कृत ही में हैं। इनके सिवा, "काव्यप्रकाश", "मीमांसा-दर्शन", "कृष्ण-यजुर्वेद-संहिता" और "कुसुमाञ्जलि" इन संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों की टीकायें भी इन्होंने लिखी हैं, जिनमें से पिछली तीन टीकायें बंगाल एशियाटिक सोसायटी से अनुमोदित होकर प्रकाशित हुई हैं। स्कूल की छोटी छोटी और कई किताबें इन्होंने बनाई हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शेष जीवन।

तारीख़ १९ फरवरी १८९५ से इन्हें सरकार से पेन्शन मिली। तब से ये बराबर काशी जी में रहते थे। गत कई वर्षों से इनका स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था। इससे जाड़े के दिनों में तो ये काशी में रहते; पर और दिनों में कलकत्ते चले आते थे। इस बार कलकत्ते आये; पर फिर काशी लौट जाने का सौभाग्य न हुआ। गत तारीख़ ११ अप्रेल को इन्हें ज्वर आया। दूसरे दिन १०॥ बजे दिन को इनकी मानव-लीला की इतिश्री हुई। इन के तीन पुत्र वर्तमान हैं—एक डाक महकमें में उच्चपदस्थ हैं। दूसरे कलकत्ता-हाइकोर्ट के वकील हैं और तीसरे अफ़ीम के महकमें में उच्च कर्म्मचारी हैं। इनके पुत्र अंगरेज़ी के पूरे विद्वान् तो हैं, पर अफ़सोस! संस्कृत का पाण्डित्य इन्हीं के साथ गया।

स्वयं यथेष्ट धनवान् न होने पर भी अपनी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता के द्वारा न्यायरत्न ऐसे ऐसे कार्य्य कर गये जो बड़े बड़े अमीर और राजाओं से भी होने कठिन हैं। इससे इस बात का अच्छा उदाहरण मिलता है कि विद्वान् और बुद्धिमान् व्यक्ति को धन की कमी नहीं। वह अपनी चतुराई से बड़े बड़े धनिकों का चित्त आकर्षित कर सकता है और उनके साहाय्य से बड़े बड़े कार्य्यों का सम्पादन कर सकता है। "विद्या-धनं सर्वधन-प्रधानम्"। यशोदानन्दन अखौरी।

कुम्भ में छोटी बहू।

मिरज़ापुर के पास "पँड़रा" में पण्डित रामनारायण मिश्र वास करते हैं। जाड़े का मौसम है। सवेरे का वक़्त है। घर की मालकिन आँगन में बैठी घाम ले रही है। भोलवा की माँ (मज़दूरनी) गाय की सानी में लग रही है। मालकिन के पास ही उनकी दो पोतियां और एक पोता खेल रहे हैं। मालकिन जो न्यायाधीश बन कर उन लोगों के झगड़े का निपटेरा भी बीच बीच में करती जाती हैं। उधर क्षण क्षण में बड़ी बहू को जल्द रसोई बनाने की ताकीद भी करती जाती हैं।

रसोईघर में बड़ी बहू रसोई बनाती है। छोटी बहू एक थाल में रख कर चाँवल बीन रही है। दोनों, देवरानी जेठानी, में इधर उधर की बातें हो रही हैं। छोटी बहू बोली—"जेठानी जी, अब की तो कुम्भ का बड़ा भारी मेला है। चलो न हम लोग भी नहा आवें। फिर तो अब कहीं जाके बारह वर्ष में ऐसा कुम्भ पड़ेगा। तब तक तो न जाने 'कौन राजा, कौन योगी'। कहीं बीच ही में मर गई तो चलो छुट्टी हुई। मन का हौसला मन ही में रह जायगा।"

बड़ी बहू ने एक ऊँची सी साँस लेकर कहा,—"अरे कहां की बात? भला हम लोगों को कौन ले जायगा? सुनती हूं वहाँ तो लाखों आदमियों की भीड़ होगी। तब भला हम लोगों का वहां गुज़ारा कहाँ?"

"ए लो, जब तुम्हीं ऐसी दिल तोड़नेवाली बातें कर रही हो तब तो उन लोगों का क्या कहा जाय? वहाँ तो तीरथ की जगह जाना है। जो ज़ोर दे कर कहोगी तो क्या जेठ जी न ले जायँगे? मेरा मन तो कहता है, ज़रूर ले जायँगे। क्योंकि कहीं नातेदारी में तो जाना ही नहीं है, कि बिना बुलाये कैसे जायँ? रही भीड़ की बात, सो तुमने अच्छी कही। अरे भला तीरथ में भीड़ न होगी तो और कहाँ होगी? काशी में विशेश्वर अन्नपूर्णा के मन्दिर में क्या कम भीड़ होती है? तो क्या हम लोग दर्शन करने को नहीं जातीं? और सब जाने दो, ग्रहण लगने पर भी तो करोड़ों आदमियों की भीड़ होती है। फिर हम लोग कैसे नहा आती हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी बहू की ऐसी दलीलों से भरी हुई बातें सुन, बेचारी बड़ी बहू लाचार हो कर बोली, "अच्छा भाई! तुम हमारे लाला जी (देवर) को कह सुनकर राज़ी करो। बस सब ठीक हो जायगा। जाने लगना तो मुझे भी साथ ले लेना। अब तो मैं दाल छौंकती हूं। ए लो, तुम से बातें करती रही, दाल में नमक डाला कि नहीं, सो भूल ही गई।"

इतने ही में भोलवा की महतारी एक टोकरी गोबर लेकर आई और खड़ी होकर कहने लगी, "का हो बहू, का सल्लाह होत बाय? पयाग जी नहाए चलत जाबः का? हे भाई, हम हूं के लियावत चलः"। छोटी बहू उस पर नाराज़ हो कर कहने लगीं; "मर निगोड़ी, इतना चिल्लाती है क्यों? क्या गले में बाँस अँटका है?"

भोलवा की महतारी कुछ धीरे से घिघिया कर कहने लगी—"ए मोर बहू, अब मैं न चिलैबों। तोहरे पच के गोड़ ले पड़त है। जाये लाग्यः तौ हम हूं के लेत जायः"।

बड़ी बहू बोली, "अरे कहाँ की पागल है रे सूत न कपास, जुलाहे से मटकौअल! जा कौन रहा है? जब जायँगे तब देखा जायगा। अभी तक तू गोबर पाथने नहीं गई? जा"।

भोलवा की माई तो किसी सूरत टली। पर छोटी बहू के मन में ऐसी खलबली उठी कि, जैसे समुद्र में लहरें। कल छोटी बहू अपनी बुआ के घर गई थी। वहाँ सुन आई कि बुआ के घर के सब लोग और उनके अड़ोस पड़ोस के सब लोग कुम्भ के मेले में जायँगे। बस, अब छोटी बहू को चैन कहां? अब तो पेट में चुहियां कूदने लगीं। मन में छटपटी सी मच गई और रह रह के जाने का उपाय सोचने लगी। "हाय मेरा जाना कैसे होगा?" आप किसी तरह घर के आदमियों को फुसला कर राज़ी भी करती हैं। और मन ही मन डर भी रही हैं, कि कहीं कोई रोक न दे। फिर बड़ी मुशकिल होगी। तब तो कोटि उपाय करने पर भी बारह वर्ष तक कुम्भ नहीं मिलने का। सबसे अधिक चिन्ता, जो छोटी बहू की जान मारे डालती है, यह है कि जब रामदेई और भाभी (फुफेरी बहिन और भौजाई) कुम्भ-मेले से लौट कर अनोखी अनोखी बातें कहेंगी तब हमको उनका मुँह ताकना पड़ेगा।

(२)

अब अमावास्या के दो ही चार रोज़ बाक़ी हैं। छोटी बहू को सिवा कुम्भ नहाने के और किसी बात का फ़िकर ही नहीं है। गोद में एक साल का बच्चा है। वह बेचारा अब समय पर दूध तक नहीं पाता। भला उसके तेल उबटन की कौन चलावे। उस दिन बच्चे को तेल, उबटन तो किया ही नहीं; पर, हां, झट तेल उबटन की कटोरी लेकर सास के पास जाकर आप बोलीं, "अम्मा, इस साल तो तुम्हारे बहुत ही पैर फट गये हैं। लाओ ज़रा तेल उबटन कर दें"। सास देवता मन ही मन अकचका कर कहने लगीं,—अरे, आज बहू को कहां से इतनी भक्ति उमड़ पड़ी! आज पूरब से पच्छिम में तो सूरज नहीं उदय हुआ? और दिन तो बुलाने पर भी नहीं आती थी; उलटा बहाना करके चली जाती थी। आज क्या है? चलो, अच्छी बात है। ऐसे मौक़े को हाथ से न जाने देना चाहिए। वे बोलीं, "हां बेटा, आओ तुम लोगों को तो फ़ुर्सत ही नहीं मिलती,"। यह कह कर वे पाँव पसार कर बैठ गईं। छोटी बहू हलके हाँथों से उबटन लगाने लगीं। उधर उनका बच्चा रोने लगा। सास ने बहुतेरा कहा "रहने दो, जाओ, पहले ललल्लू को चुप करो, तब लगाना" पर छोटी बहू ने एक न सुनी; पैर मलती ही रहीं। इधर उधर की बातें करते करते आप कहने लगीं,—"क्यों अम्मा! तुम कभी कुम्भ नहाने गई थीं कि नहीं?"

"नहीं बेटा, कहाँ का नहाना, कहाँ का धोना! तुम्हारे चाचाजी को तो यह कुछ भाता ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे तो कहते हैं, 'मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा'। घर में बैठी राम राम किया करो। एक बेर बड़ी मुश्किल से भाभी जी के संग प्रयाग जी गई थी। सो भी मेले में नहीं।"

"चलो इस बार नहा आओ और हम लोगों को भी नहला लाओ।"

"अरे बेटा! हम लोगों को कौन लिवा जायगा? तुम्हारे लाला का तो दम फूलता है। वे इस ठण्ढ में जाने से रहे। हरनारायण (बड़ा लड़का) तो घर ही पर नहीं। और होता भी तो उसे छुट्टी कहां? रहा शिवनारायण (छोटा लड़का) सो वह तो अंगरेज़ी पढ़ कर पूरा कृस्तान ही बन गया है। दिन रात देवता, पित्तर को चूल्हे या भाड़ में फेंका करता है?"

इतने में मिश्र जी पोती का हाथ थाम्हे आ पहुँचे और हँस कर बोले—"ले, तुम्हारी कितनी सेवा होती है और तुम इतने पर भी झँखा करती हो कि मेरे हाथ पैर का करनेवाला कोई नहीं।"

"मिश्रानी जी बोलीं,—"अरे नहीं सुना, छोटी बहू प्रयाग जाने को कहती हैं।"

"प्रयाग! कुम्भ के मेले में!! राम राम!!! वहां पर जाना बहू-बेटियों का काम नहीं।"

ससुर के मुँह से ऐसी बात सुन कर छोटी बहू मन ही मन कुढ़ गई और झट पट काम ख़तम कर अपने कमरे में जा घुसी। वहाँ पति जी से क्या क्या बातें हुईं सो तो मैं जानती नहीं, पर, हां, छोटी बहू की हमजोली सखी-सहेलियों से यह अवश्य मालूम हुआ कि अन्त में शिव-नारायण खिजला कर कहने लगे—"कुम्भ कुम्भ करके तो तुमने हमारे नाकों दम कर दिया। न जाने कहाँ से तुम्हारे सिर पर कुम्भ-कर्ण की प्रेतात्मा सवार हो गई है। जाना हो तो अपने भाई के साथ चली न जाओ। मेरा सिर मत खाओ। जाओ, वहां बच्चे को ले कर जाड़े में मारना हो तो मार डालो।"

"वह लड़का तो तुम्हारे ही घर पर मरा था ना, तब मैं उसे कहाँ लेगई थी। सच तो यह है कि जिस की मौत आ जायगी, उसे कहीं कोई रोक नहीं सकता।"

अन्त में छोटी बहू की बुआ और उनके बेटे के बहुत चिरौरी विनती करने पर, बड़ी मुश्किल से, लोग छोटी बहू को प्रयाग भेजने पर राज़ी हुए। अब छोटी बहू मारे ख़ुशी के फूले अङ्ग नहीं समाती। झट पट थोड़ा सा पकवान बना, सब सामान ठीक कर, गठरी मोटरी बाँध, जाने के लिए तैयार हो गई। उसके फुफेरे भाई शंकर-दयाल उन्हें विदा कराने आये। छोटी बहू घर में सब से विदा होने गईं। बड़ी बहू बोलीं—"लो भाई, तुम तो पुन्य करने चलीं और हम सब जहाँ की तहाँ पड़ी रह गईं। जाव, राजी ख़ुशी लौट आओ"। मिश्रानी जी लल्लू (छोटी बहू के लड़के) को गोद में ले कर दुलारने लगीं। शिबू की खोज कराई पर वे न मिले। तब वे शंकर-दयाल से कहने लगीं—"देखो, मैं तुम्हारे भरोसे बहू को जाने देती हूं। इस बच्चे के सँभालने का भार तुम्हारे ऊपर है। मेरे लल्लू को कोई तक़लीफ़ न होने पावे।"

"नहीं, माँ जी; आप बे फ़िक्र रहिए। किसी बात की चिन्ता न कीजिए। मैं सब को बहुत आराम से ले जाऊंगा। और मेरे घर के लोग भी तो सब जा रहे हैं। ईश्वर की कृपा से, और आप के आशीर्वाद से, हम सब लोग राज़ी ख़ुशी लौट आवेंगे।"

छोटी बहू जाकर इक्के पर बैठ गईं। मिश्रानी जी ने पोते का मुँह चूम कर उसे बहू की गोद में दे दिया। उनकी आखें भर आईं।

करुणार्द्र स्वर से वे कहने लगीं,—"जिस दिन से लल्लू जनमा उस दिन से बराबर मेरे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास रहा है। आज पहला दिन है कि मैं उसे अपनी आखों से अलग करती हूं। देखो शंकर, ख़बरदार रहना"।

छोटी बहू तो गई; पर बेचारी भोलवा की माँ मुँह ताकते ही रह गई। उस रात को छोटी बहू अपनी बुआ के घर रहीं। दूसरे दिन उन्होंने वहां से प्रस्थान किया।

(३)

मिरज़ापुर के रेलवे स्टेशन के मुसाफिर-ख़ाने और प्लैट-फ़ार्म पर बड़ी भीड़ है। जिस ओर दृष्टि डालिए उस ओर नर-मुण्ड ही दृष्टिगोचर हो रहा है। जहाँ देखिए वहीं माल, असबाब और गठरियों का ढेर लगा है। यथासमय गाड़ी अपना विशाल वपु लेकर आ खड़ी हुई। शंकर-दयाल ने बड़ी हिफ़ाज़त से सबको ले जाकर रेल में बिठा दिया। उनके साथ एक आहार-प्रिय ब्राह्मण देवता भी थे। उन्होंने गठरी, मोटरी, पिटारा आदि सब ढोकर गाड़ी में रख दिया। और वहीं एक कोने में जाकर आप बैठ गये। अभी गाड़ी छूटने में कुछ देर है। शंकरदयाल लल्लू को गोद में लेकर प्लैट-फ़ार्म पर खड़े हैं। इतने ही में शिवनारायण दौड़ते हुए आ पहुंचे। शंकरदयाल अकचका कर पूछने लगे, "तुम कहां?" शिवनारायण ने कहा,—"लल्लू जब तुम्हारे साथ आया तब मैं घर पर न था। आने पर सुना कि सब लोग चले गये। लल्लू को देखने के लिए चित्त घबराया, सो आज सबेरे उठते ही स्टेशन पर उसे देखने चला आया"।

लल्लू तो पिता को पाकर बड़ा ही आनन्दित हुआ। मारे ख़ुशी के पिता के गले से वह जा लिपटा। इतने में पहली घंटी हुई। शिवनारायण शङ्करदयाल से (छोटी बहू की तरफ़ देखते हुए) बोले, "तुम लोग अच्छी तरह बैठ गये न? अच्छा, मेरा नमस्कार लो। लल्लू, अब तुम अपने मामा के पास जाव"।

लल्लू भला पिता को क्यों छोड़ने लगा। उसने बड़े ज़ोर से रोना शुरू किया। शङ्करदयाल हँसकर बोले, तुम्हें तो इस समय घबराया हुआ आते देख ऐसा मालूम हुआ कि मानो किसी ख़ूनी असामी को गिरफ़्तार करने को तुम आ रहे हो। आख़िर को तुमने एक बखेड़ा खड़ा ही कर दिया। आओ बच्चा लल्लू, मेरे पास आओ, इन्हें जाने दो। मैं तुम्हें मिठाई दूंगा"।

पिता-पुत्र परस्पर एक दूसरे की ओर प्रेम-भाव से देख ही रहे थे कि रेल-राँड़ ने सीटी दे दी। इतने ही में ब्राह्मण-देवता ने घबराहट के स्वर में शिवनारायण से कहा—"भैया, मैं जल्दी में शङ्करदयाल के यहां पुजहाई और एक कटोरे में पेड़ा और थोड़ा सा दही भूल आया हूं। जाकर उसे मेरी माताजी के पास गाँव में अवश्य भिजवा देना; नहीं तो ख़राब हो जाँयगे"।

आग खाती, पानी पीती, धुआँ फेंकती, रेल हड़ हड़ाती हुई चली। मानों वह संसार की अनित्यता का सजीव दृष्टान्त दिखला गई। जहां कुछ देर पहले इतना कोलाहल मचा था, जहां इतना चहल पहल था, अब वहां बिलकुल सन्नाटा छा गया। अब छोटी बहू भली भाँति सुचित्त होकर बैठीं और अपनी बहिन राम-देई से कहने लगीं—"सब लोग तो कहते थे, रेल में बड़ी भीड़ होगी, तुम लोगों को बैठने तक को जगह मुशकिल से मिलेगी। सो वह सब तो झूंठी बात थी। सिर्फ़ लोगों का एक बहाना भर था, जिसमें मैं न जाऊं। अरे हमारी सासराम, वे देखने को तो हैं सीधी; पर हैं बड़ी खोटी। खुटाई उनकी नस नस में भरी है। उनको ज़िन्दगी तो तालो कुंजो सँभालते और जेठानीजी को चूल्हा-चौका करते बीत जायगी। वे लोग कभी तीरथ, व्रत, दान, पुन्य न करेंगी और न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों को करने देंगी। उन लोगों को तो यह सब सोहाता ही नहीं।" राम-देई ने भी छोटी बहू की हां में हां मिला दी।

आज अमावास्या का दिन है। आज प्रयागराज में त्रिवेणी के तट पर एक अपूर्व दृश्य दिखाई दे रहा है। यदि सत्य ही मर्य्यादा-पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी वन-यात्रा करते समय सबसे प्रथम यहीं पर टिके थे, तो क्या इसीसे तो नहीं इसकी महिमा इतनी ऊंची हो गई है? क्या इसीसे तो नहीं यह प्रयाग हिन्दू-सन्तान के पवित्र मुख से "तीर्थ-राज" के नाम से पुकारा जाने लगा है? धन्य हिन्दू-सन्तान, धन्य! तुम्हारे इस दृढ़ धर्म्म-विश्वास को धन्य! जिस समय अन्य धर्म्मावलम्बियों को लिहाफ़ से मुँह निकालना कठिन जान पड़ता है उस समय से लकर सूर्य्यास्त तक बर्फ़ से भी अधिक ठण्ढे पानी में आबालवृद्धवनितायें सहर्ष, आनन्दपूर्वक, ग़ोता लगाती हैं। धन्य हिन्दू-जाति! धन्य हिन्दू-कुल! तुम्हारे पवित्र चरणों में इस क्षुद्र लेखिका का एक बार—नहीं, शत बार—नहीं, सहस्र बार—नहीं, कोटि बार सादर प्रणाम है। भाई हिन्दू! तुम्हारे पास अब कोई बल नहीं है। है केवल धर्म्मबल! ईश्वर तुम्हारे इस महान धर्म्मबल को अटूट रक्खे। केवल यही मुझ दासी की हार्दिक कामना है।

आज वेणी-तट की वालुका ने मानो सजीवता को प्राप्त कर लिया है। बेचारे दरिद्र भारतवासी कैसे आनन्द से त्रिवेणी में स्नान करके अक्षय्य पुण्य का सञ्चय कर रहे हैं। किसीके पास अङ्गाच्छादनोपयोगी वस्त्र है; किसीके पास वह भी नहीं। किसीके पास भर पेट खाने को है; किसीके पास वह भी नहीं। किन्तु इस समय, इस पवित्र भूमि में, सभी समभाव से आनन्द-उपभोग कर रहे हैं।

इसी अगण्य मानवसमूह के बीच हमारी पूर्व-परिचिता छोटी बहू भी दिखलाई पड़ीं। बाँध के नीचे जहां कुछ भीड़ कम थी वहीं पर भाई, भौजाई, ननद और बुआजी के सहित लल्लू को गोद में लिए आप खड़ी हैं। छोटी बहू ने शङ्करदयाल से कहा "भैया! आज लल्लू ने अभी तक कुछ खाया नहीं। इसके लिए कुछ ला दो"। शङ्करदयाल ने कहा—"अच्छा, ठहरो, ला देता हूं।"

इतने में एक विशालाकार हाथी बिगड़ गया। उसके बिगड़ने के साथ ही सारे मेले में हलचल मच गया। शङ्करदयाल ने लल्लू को अपनी गोद में ले लिया और आप भरसक सबकी हिफ़ाज़त करने लगे। इसी धक्के में पड़ कर शङ्करदयाल की माँ मुँह के बल जा पड़ीं, जिससे उनके घुटने में भारी चोट लगी। शङ्करदयाल ने लल्लू को छोटी बहू के हवाले किया और आप माता की सेवा में लगे। इतने में पुलिसवालों ने, साधुओं का अखाड़ा निकल जाने पर, नहानेवालों के लिए रास्ता (जो अब तक रोक रक्खा गया था) खोल दिया। बस फिर क्या पूछना था; मानों मनुष्यरूपी महासागर में तूफ़ान आगया। सभी के जी में यह तरंग उठी कि मैं ही सबसे पहले ग़ोता लगाकर पुण्य का ढेर उठा लूं। आँधी की भाँति आदमी पर आदमी गिरने लगे। इस भीड़ में पड़ कर बेचारी छोटी बहू अपने साथियों से अलग जा पड़ी। वह भीड़ में पड़ कर कभी दस हाथ पीछे को जाती थी; कभी दस हाथ आगे। इस समय उस बेचारी की अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो रही थी। इतने में एक ऐसा भारी धक्का आया कि लल्लू माँ की गोद से अलग जा पड़ा। छोटी बहू चिल्ला चिल्ला कर रोने लगीं; सबसे बच्चे को उठाने के लिए विनती करने लगीं; और रह रह कर द्रौपदी की भाँति "भैया, भैया!" कहके पुकारने लगीं। पर "नक़ारख़ाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है"? जब किसीने भी उस निस्सहाया, दीन, अबला की गोहार न सुनी तब लाचार होकर वह आपही लड़के को उठाने के लिए झुकी थीं कि वह भी औंधे मुँह जा पड़ीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी अवस्था में ज़रा सिर का उठाना भी बड़े बड़े पराक्रमी पुरुषों के सामर्थ्य से बाहर था। तब उस बेचारी अबला की कौन गिनती? इस शोचनीय, करुणोत्पादक दृश्य का वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। सहृदय पाठक पाठिकायें आप ही उसका अनुभव कर लेंगी।

उधर शङ्करदयाल की बुरी दशा थी। नहाना, धोना तो अलग रहा, दिन भर के भूखे प्यासे सब को खोज रहे हैं। दोपहर के बाद रामदेई और उनकी स्त्री रोती, कलपती क़िले के नीचे मिलीं। रामदेई के गले से चम्पाकली न जाने कहां गिर गई थी। उनकी स्त्री की नाक में नथ नदारद। साथ ही नाक का एक हिस्सा भी ग़ायब। मानों वे, शूर्पणखा की "ट्रू कापी" (सच्ची नक़ल) बन गई हों। बदन का तमाम कपड़ा ख़ून से सराबोर हो रहा था। उधर झोंपड़े में पड़ी माताराम कह रही हैं, "भाई! किसी न किसी सूरत लँगड़े लूले सबका ही पता लगा; पर छोटी बहू का भी कहीं कुछ पता ठिकाना है? जो ब्राह्मण देवता संग आये थे, गठरी और सन्दूक़चा गाड़ी पर उतारते, चढ़ाते तो उन्होंने बड़ी मुस्तैदी दिखाई थी; पर इस समय शायद पेट की ज्वाला बुझाने के लिए चुपके से कहीं मुँह छिपा बैठे हैं। आख़िर ठहरे तो पेड़ा-दहीवाले ही न?"

अब छोटी बहू के लिए शङ्करदयाल को बड़ी घबराहट पैदा हुई। वे सोचने लगे; "शिवनारायण और उनके घर के लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे? हाय! अब मैं उन लोगों के सामने कौन सा मुँह लेकर जाऊंगा? और मुझे जाने का साहस हो कैसे होगा? वे लोग क्या न कहेंगे कि आप तो चले आये, पर मेरी बहू को कहां छोड़ आये? ऐसे वक़्त में मैं क्या जवाब दूंगा? वे लोग यही समझेंगे कि हम लोगों ने पराया जान कर, संग छूट जाने पर, ज़ियादा खोजने की चेष्टा न की होगी"।

हे भगवान! मैंने कौन सा ऐसा घोर पाप किया था जिसके बदले मेरे सिर पर यह कलङ्क का भारी बोझ रक्खा जा रहा है? हाय स्त्रियों की बात में पड़कर मुझे कैसी दुर्गति भोगनी पड़ी है! मुझे मौत आके गोद में रख लेती तो अच्छा था। अब मैं कहां जाऊं? कहां ढूंढूं? कहीं भी तो उनका पता नहीं लगता"।

इस तरह तन क्षीण मन मलीन होकर पागल की तरह एक एक जगह को वे दस दस बार ढूंढ़ने लगे। कभी त्रिवेणी के तीर, कभी झोंपड़ों के भीतर, कभी मुर्दों के ढेर में और कभी पुलिसवालों के यहां। अन्त में एक बुढ़िया की ज़बानी यह पता मिला कि पुलिस ने ज़ियादा घायल होने के कारण छोटी बहू को अस्पताल भेज दिया। यह सुनने के साथ ही शङ्करदयाल वहां जा पहुंचे तो देखा कि छोटी बहू एक खाट में पड़ी हैं। उनके कलेजे में ऐसी गहरी चोट लगी है मानों किसीने एक भारी पत्थर से कुचल डाला हो। शङ्करदयाल को देखते ही ज़ख़मी छाती को दोनों हाथों से पीट पीट कर लल्लू लल्लू कहके वे रोने लगीं।

"भैया, भैया! तुम मेरे लल्लू को ला दो। हाय! अभी तक मेरे लल्लू ने कुछ खाया न होगा। लाओ, जल्दी जाकर उसे ले आओ। मैं उसे खिलाऊंगी, अब अँधेरा हो रहा है। लल्लू किसके पास सोवेगा? मैं कौन सा मुँह लेकर घर जाऊंगी? जब अम्मा लल्लू को गोद से लेने आएंगी, तब मैं क्या कहूंगी? भैया! एक बार जाकर तुम फिर खोजो। कहीं इधर उधर पड़ा होगा। उठा लाओ।"

अरी अभागिन छोटी बहू! अब तेरे बच्चे का इस धराधाम में एक चिन्ह भी नहीं। उसका वह मक्खन सा कोमल शरीर लाखों आदमियों के पैर तले पड़कर सत्तू हो गया! इस समय इस शोकातुरा माता की व्याकुलता और मर्म्म-भेदी कातरोक्ति लिखने में यह जड़ लेखनी समर्थ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आख्यायिका-पाठक और पाठिकाओं में जिस किसी ने इस करुणोत्पादक दृश्य को अपनी आँखों देखा होगा, वही इस पुत्रवियोगिनी जननी के हार्दिक-भाव का कुछ कुछ अनुभव कर सकेंगे। छोटी बहू को रोते रोते रक्त वमन होने लगा और कुछ ही देर बाद वे बेहोश हो गईं।

दूसरे दिन तार पाने पर शिवनारायण प्रयाग पहुंचे। वहां यह शोकदायक घटना सुनकर पहले तो वे खूब रोये। छोटी बहू भी उन्हें देखते ही मुँह ढाँप कर रोने लगीं। थोड़ी देर बाद शिव-नारायण, शङ्करदयाल से कहने लगे—"पुण्य का फल तो हाथों ही हाथ मिल गया। अब किसी सूरत से इन्हें घर ले चलने का बन्दोबस्त होना चाहिए। छोटी बहू रोती हुई कहने लगीं—"अब मैं घर न जाऊंगी। मैं अपने लललू के ही पास जाऊंगी।" छोटी बहू की दशा देखने से ज्ञात भी यही होता था कि उन्हें ईश्वर शीघ्र ही उनके लललू के पास भेज देगा।*

वङ्ग-महिला।

वानस्पतिक-सज्ञानता।

सरस्वती की किसी पिछली संख्या में अध्यापकाचार्य्य जगदीशचन्द्र वसु की "प्लैंट रेसपांज़" (उद्भिज्जों की प्रतिवाक्यता) नामक पुस्तक का ज़िक्र हो चुका है। इस पुस्तक में वर्णन किये गये विषय पर श्रीजगदानन्दराय ने "प्रवासी" में एक लेख लिखा है। लेख छोटा, पर मनोरञ्जक है। उसका सारांश हम नीचे देते हैं—

पेड़, पौधे, लता आदि के दो विभाग किये जा सकते हैं। एक तो वे जिन पर किसी तरह का आघात करने से उस आघात के अनुभव का प्रमाण वे प्रत्यक्ष देते हैं। और दूसरे वे जो प्रत्यक्ष नहीं देते। लाजवन्ती की गिनती पहले प्रकार में है और आम, जामन, कटहल आदि की दूसरे प्रकार में। लाजवन्ती को छूने या उस पर तिनके इत्यादि से आघात करने पर उसके पत्ते, डंठल समेत, नीचे झुक जाते हैं। इसी का नाम आघात-अनुभूति है। यह बात हम प्रत्यक्ष देख सकते हैं। आम, जामन इत्यादि पेड़ों पर पत्थर मारने या कुल्हाड़ी-चलाने से वे भी इसी तरह आघात-अनुभूति करते हैं। पर उनको अनुभूति प्रत्यक्ष देखने को नहीं मिलती। क्योंकि उनके शरीर की बनावट लाजवन्ती इत्यादि के शरीर की बनावट से जुदा है। अतएव शरीर-रचना में विचित्रता होने के कारण वे अपनी टहनियों और डालियों को झुका कर लोगों को अपनी दुःखानुभूति प्रत्यक्ष दिखलाने में असमर्थ हैं। तथापि उनको आघातों की अनुभूति होती ज़रूर है। इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि प्रकारान्तर से यह अनुभूति जानी जा सकती है। यदि किसी आदमी को कोई मारने लगे तो वह हाथ-पैर फटकार कर और मुँह से चीत्कार करके आघात के दुःख को प्रकाशित करता है। परन्तु यदि उसके हाथ-पैर मज़बूती से बाँध दिये जायँ और मुँह में कपड़ा भर दिया जाय तो वह अपनी अनुभूति को प्रत्यक्ष प्रकाशित करने में असमर्थ हो जायगा। आम, नींबू और जामुन आदि वृक्षों की भी यही दशा है। उनके शरीर की रचना हाथ-पैर बँधे हुए मनुष्य की शरीर-रचना के समान समझनी चाहिए। इसी से उनकी आघात-अनुभूति आदमी प्रत्यक्ष नहीं देख सकता। वसु महाशय ने यन्त्र-द्वारा इस अप्रत्यक्ष वेदनानुभव को भी प्रत्यक्ष कर दिखाया है।

आघात-अनुभूति का प्रत्यक्ष प्रमाण डाल, पत्ते आदि का झुक कर लटक जाना है। और अप्रत्यक्ष

---

* मेरी पूजनीया जननी श्रीमती नीरदवासिनी घोष रचित (हस्तलिखित) बङ्गभाषा के एक गल्प का अनुवाद। अनुवादिका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण आहत स्थान से बिजली के प्रवाह का अनाहत स्थानों की तरफ़ प्रवाहित होना है। यह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभूति उद्भिज्ज मात्र में पाई जाती है। प्राणियों में इसका होना तो कुछ बात ही नहीं। जिन उद्भिज्जों की आघात-अनुभूति प्रत्यक्ष देखने को मिलती है उनमें भी विद्युत्प्रवाह-रूपी कम्पन होता है और जिनमें प्रत्यक्ष देखने को नहीं मिलती उनमें भी। यन्त्रों की सहायता से लिये गये आम, नींबू आदि पेड़ों के आहत स्थलों से भीतर ही भीतर बहे हुए विद्युत्प्रवाह के चित्रों के द्वारा अध्यापक वसु ने इस तरह के पेड़ों की अनुभूति को प्रत्यक्ष दिखा दिया है।

चार पांच वर्ष हुए, अध्यापक वसु ने, जड़ और चेतन में प्रकम्पन होने के जो प्रमाण दिये थे वे इसी विद्युत्प्रवाह पर अवलम्बित थे। आप

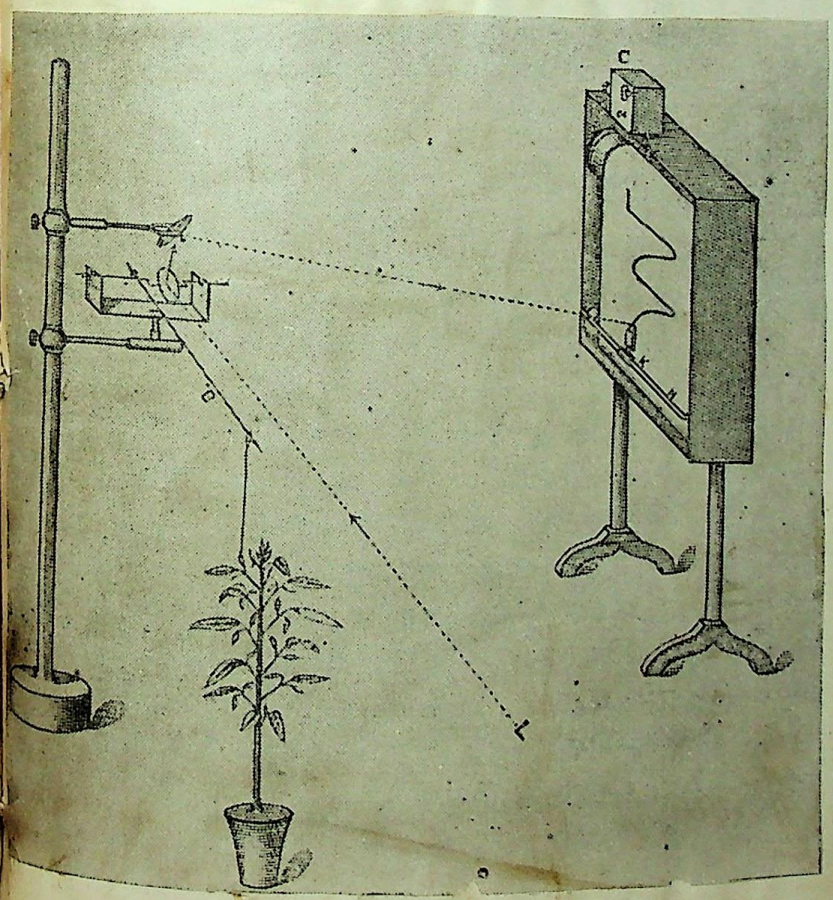

के इस आविष्कार पर कितने ही पाश्चात्य पण्डितों को विश्वास नहीं आया। उनका भ्रम दूर करने ही के लिए, वसु महाशय ने, नये आविष्कार करके यह नई किताब लिखी है। अपने नये यन्त्रों की सहायता से उन्होंने अब यह बात निःसन्देह साबित करदी है कि विद्युत्प्रवाहरूपी अप्रत्यक्ष कम्पन, शाखा और पत्र आदि के नम्रीभवनरूपी प्रत्यक्ष अनुभूति की छाया मात्र है।

मनुष्य और पशु-पक्षियों के शरीर पर आघात होने से आहत स्थान पर जो शरीराणु होते हैं वे पीडित होकर उस जगह से हटने की चेष्टा करते हैं। जितने प्राणी और जितने उद्भिज्ज हैं सब की आघात-अनुभूति इसी आणविक विकार का फल है। अनुभूति-ज्ञान प्राप्त करने के बाद, जब वे इस विकार से निर्मुक्त हो जाते हैं तब फिर प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। उद्भिज्जों के भीतर आणविक-विन्यास विकृत होने पर विकार के साथ ही साथ कई एक लक्षण देख पड़ते हैं। उद्भिज्जों के शरीर के भीतर जो छोटे छोटे कोष होते हैं उनके जलीय अंश के बाहर निकलने और आहत-स्थान से सुस्थ स्थान की तरफ़ विद्युत्प्रवाह के बहने को वसु महाशय ने विकार-अनुभूति का प्रधान लक्षण बतलाया है। सुस्थ अर्थात् अविकृत अवस्था में उद्भिज्जों के शरीर के भीतरी कोष जल से भरे हुए रहते हैं। परन्तु आघात होते ही आणविक आकार में परिवर्तन हो जाता है और उसके कारण कोषों का भीतरी जल सवेग बाहर निकल कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनाहत स्थानों के भीतर प्रवेश करता है। इसी से आहत स्थानों के कोष सङ्कुचित हो कर वहां के डाल-पात को झुकाने की चेष्टा करते हैं।

अध्यापक वसु ने एक ऐसा यन्त्र बनाया है जिसमें, आघात होने पर पौधों में जो उत्थान और पतन होता है वह अङ्कित हो जाता है। उसका चित्र पिछले पृष्ठ में देखिए—

यंत्र के बांई तरफ़ आलूमिनियम या और किसी धातु का एक "B" चिन्हित तार है। उस के नीचे की नोक में एक पतला रेशमी धागा बँधा हुआ है। धागे का दूसरा छोर नीचे एक पौधे के पत्ते से संलग्न है। तार की ऊपरी नोक एक और तार से लम्बरूप में दृढ़ता से संयुक्त कर दी गई है। इस दूसरे तार में एक छोटा सा गोल शीशा है। अब "L" चिन्हित रेखा को देखिए। वह निश्चल प्रकाश की किरणों का मार्ग है। प्रकाश पहले पूर्वोक्त शीशे पर पड़ता है; फिर उसका प्रतिबिम्ब उसके ऊपर भी जो एक और छोटा सा शीशा है उस पर पड़ता है। और अन्त में वह प्रतिबिम्ब दाहिनी तरफ़ के यंत्र पर पड़ता है। इस यंत्र में एक काग़ज़ लगा रहता है। कल्पना कीजिए कि चित्र में जिस पौधे का आकार आप देखते हैं वह लाजवन्ती का है। जिस पत्ते से रेशमी धागा बँधा हुआ है उसे आपने छुवा। छूतेही वह नीचे की तरफ़ गिर गया। गिरने से धागे पर खिँचाव पड़ा। इससे पूर्वोक्त दोनों तार भी खिँचे और उनके खिँचाव के कारण वे दोनों शीशे भी चञ्चल हो उठे। अतएव उनका प्रतिबिम्ब भी कम्पन-अङ्कना करनेवाले यन्त्र के काग़ज़ पर चञ्चल हो कर पड़ा। जब तक पत्ता झुका रहेगा काग़ज़ पर प्रकाश का प्रतिबिम्ब एक स्थिर बिन्दु के आकार में देख पड़ेगा। पर जब वह पत्ता फिर उठने लगेगा तब वह तार-संलग्न-दर्पण भी धीरे धीरे अपने पूर्वस्थान को आने लगेगा और उसके साथ ही प्रतिफलित प्रकाशबिन्दु भी बांई से दाहिनी तरफ़ चलना आरम्भ करेगा। इस प्रकार पत्ते का उत्थान और पतन होने से यन्त्र-स्थित काग़ज़ पर प्रकाश के बिन्दु को हम एक सरल मार्ग में क्रमागत बांये से दाहिने जाते हुए देखेंगे। परन्तु साधारण काग़ज़ पर आलोक-बिन्दु का कोई स्थायी चिन्ह नहीं रहता। इस कारण अध्यायक वसु फ़ोटोग्राफ़ का काग़ज़ व्यवहार करते हैं। उस पर जो प्रकाश-बिन्दु की वक्र रेखायें पड़ती हैं वे फ़ोटोग्राफ़ी की "डेवलपिंग्" (Developing) प्रक्रिया द्वारा स्पष्ट कर ली जाती हैं। अच्छा अब नीचे का चित्र देखिए—

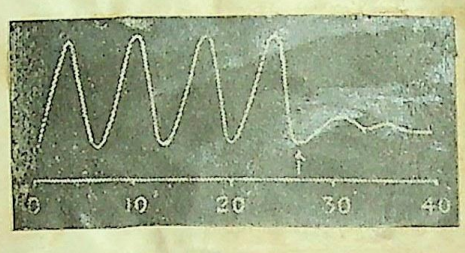

यह पूर्वोक्त रीति से लिया गया, एक पौधे के पत्ते के उत्थान और पतन का चित्र है। आहत होने से जब पत्ता नीचे गिरा तब तार खिँच गया और इस चित्र के बांई तरफ़ जो रेखा है वह फ़ोटोग्राफ़ के काग़ज़ पर खिँच गई। जब पत्ता फिर उठा तब नीचे को तरफ़ आनेवाली दूसरी रेखा आपसे आप खिँच गई। इसी तरह चार दफ़े पत्ता गिरा और चार ही दफ़े उठा। इस उत्थान-पतन की ज्ञापक चारों रेखायें काग़ज़ पर खिँच गईं। इसके बाद उस पत्ते के डंठल में विष प्रवेश कर दिया गया। विष देने के बाद जब आघात किया गया तब ज़रा सा टेढ़ा मेढ़ा उत्थान-पतन होकर रह गया। यह बात चित्र के दाहिनी तरफ़ जो वक्र-रेखा है उससे स्पष्ट है। अर्थात् विष-प्रयोग के कारण पौधा चेष्टाहीन हो गया। अतएव पूर्ववत् उसमें उत्थान और पतन नहीं हुए। इस चित्र से यह भी साफ़ साफ़ मालूम होता है कि किस बार पत्ता कितना नीचे गिरा और उसे उठने में कितना समय लगा। पाठक देखेंगे कि पहली दफ़ा पत्ते को गिर कर उठने में कोई ८ मिनट लगे। मिनटों के चिन्ह चित्र में दिये हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी तरह जीवधारियों की भी आघात-अनुभूति के चित्र वसु महाशय के यन्त्र में खिँच जाते हैं। इन बातों का होना उद्भिज्जों में सज्ञानता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्राणियों और उद्भिज्जों की प्रत्यक्ष वेदनानुभूति के चित्र तो इस तरह तैयार किये जाते हैं; अब अप्रत्यक्ष वेदनानुभूति के चित्रित किये जाने की तरकीब सुनिए। क्योंकि कितने ही उद्भिज्ज वेदना की अनभूति तो करते हैं; पर मनुष्य उसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकते।

जैसा ऊपर कहा गया है, जितने जीवधारी या जितने उद्भिज्ज हैं आहत होने से उनके शरीर में आहत स्थान से बिजली की धारा सुस्थ स्थान की ओर बहने लगती है और आघात की वेदना के जाते रहने पर धीरे धीरे वह प्रवाह कम होकर एकदम ही लोप हो जाता है। जो जीव या उद्भिज्ज प्रत्यक्ष वेदनानुभूति दिखलाते हैं उनमें भी यह बात पाई जाती है और जो नहीं दिखाते उनमें भी। अर्थात् कोई कोई प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से आघात-अनुभूति करते हैं।

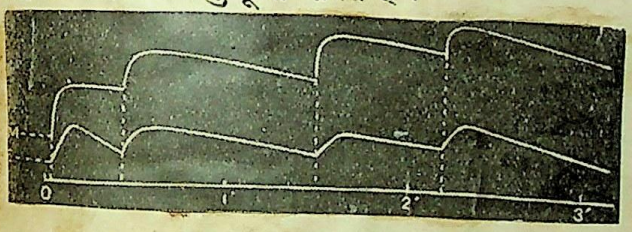

ऊपर का चित्र देखिए। यह एक विशेष प्रकार के पौधे के आन्तरिक कम्पन का चित्र है। यह पौधा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरह से आघात का अनुभव करता है। इस चित्र में "M" चिन्हित जो रेखायें हैं वे, प्रत्यक्ष पत्तों और टहनियों को नीचे गिरा कर जो वेदना उसने अनुभव की, उसकी ज्ञापक हैं। पर साथ ही उसने जो अप्रत्यक्ष वेदनानुभव किया उसकी प्रमाण-भूत "E" चिन्हित रेखायें हैं। अब देखिए दोनों प्रकार की रेखायें सर्वथा एक सी हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं। अतएव यह सिद्ध है कि दोनों प्रकार की अनुभूति एक ही आघात से उत्पन्न उत्तेजना के दो भिन्न भिन्न विकाश हैं। अब इन प्रमाणों को देख कर कोई वैज्ञानिक यह नहीं कह सकता कि जो पेड़-पौधे अपनी टहनियों या पत्तों को नहीं झुका देते उनमें वेदना के अनुभव करने की शक्ति नहीं। मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव, जन्तु, लता, वृक्ष आदि सबमें एक प्रकार की चेतनता है। अतएव सबको आघात-ज्ञान होता है। सबमें ईश्वर की सत्ता विद्यमान है। यह हमारे तत्वदर्शी महात्माओं का निश्चित सिद्धान्त है। उसीकी पुष्टि अध्यापक वसु वैज्ञानिक प्रक्रिया से करके भारत का मुख उज्ज्वल कर रहे हैं।

कान्यकुब्ज-अबला-विलाप।*

प्यारे पिता, पुत्र-वर, भाई-
बन्धु आदि जो सारे हैं,
ससुर, जेठ, देवर, पति, पुरजन
जो जग-बीच हमारे हैं।
दया-दृष्टि करिये थोड़ी सी
सुनिए हम क्या कहती हैं;
अबला होकर सबलों के घर
किस प्रकार हम रहती हैं॥ १॥

कितने ही तुम मजिस्ट्रेट जज
न्यायासन के अधिकारी;
बड़े शरम की बात दुःख जो
पावें तुमसे ही नारी।
अब तक रहीं पेट में डाले
दुख अपने भारी भारी;
पर अब नहीं सही जाती है
विपति मर्म्म-क्रन्तनकारी॥ २॥

अपनी दशा याद करते ही
फटा कलेजा जाता है;

---

* "कान्यकुब्ज" से उद्धृत। स० सं०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल पेट के भीतर से वह
मुँह में आ आ जाता है।
किया कौन अपराध हाय कुछ
नहीं समझ में आता है;
निरपराध निर्बल नारी-गण
वृथा सताया जाता है॥ ३॥

यदि न जगत में होवें हम तो
नाश नरों का हो जावे;
रक्खी रहे बुद्धि, विद्या, बल,
काम नहीं कुछ भी आवे।
ध्रुव, प्रह्लाद, व्यास, शङ्कर ने
जन्म हमीं से पाया है;
मनुज-रत्न जो हुए सभी को
हमने गोद खिलाया है॥ ४॥

जिस घर में हम नहीं, शीघ्र ही
बियाबान हो जाता है;
क़दम हमारे पड़ते ही वह
नन्दन वन बन जाता है।
दुख में हम जी जान होम कर
साथ तुम्हारा देती हैं;
तुम्हें खिला कर रूखा सूखा
जो बचता खा लेती हैं॥ ५॥

"जहां हमारा आदर होता
वहीं देवता करते वास;
जहां निरादर होता वह घर
हो जाता है सत्यानाश"।
देखो खोल पोथियां अपनी
यह मनुजी की वानी है;
तुम में से किससे किससे यह
गई यथाविधि मानी है? ६

सच पूछो तो हम, हे भाई,
अपने घर की महरानी;
ख़ुशियों में हम ख़ुशी मनावें
दुख में ज़रा न घबरानी।

पड़ने पर विपत्ति हमसे ही
मिलता तुम्हें दिलासा है;
"भोरु" बनाया तिस पर हमको
तुमने अजब तमाशा है॥ ७॥

इज़्ज़त और आबरू सारी
जिस पर तुम इतराते हो,
सोचो ज़रा, बन्धु-वर प्यारे,
उसे कहां से पाते हो?
अगर नेकचलनी में हमसे
ज़रा भूल हो जाती है;
चाहो यत्न करो तुम लाखों
फिर न हाथ वह आती है॥ ८॥

पति को देव-तुल्य हम मानें
बच्चों की भी दासी हैं;
सेवा सदा करें नहिँ सोचें
भूखी हैं या प्यासी हैं।
धर्म्म-कर्म्म तुम जिसे पुकारो
उसे हमी में पाओगे;
सोचो समझो अभी, नहीं तो
फिर पीछे पछतावोगे॥ ९॥

यदि अभाग्यवश अपने पति का
चिर-वियोग दुख पाती हैं;
परिणामों पर ध्यान न देकर
जीती ही जल जाती हैं।
दुराचरण में तुम्हें देख रत
बिलख बिलख रह जाती हैं;
वश कुछ नहीं करें क्या तुमसे
केवल हाहा खाती हैं॥ १०॥

पैदा जहां हुईं हम घर में
सन्नाटा छा जाता है;
बड़े बड़े कुलवानों का तो
मुँह फीका पड़ जाता है।
कन्या नहीं बला यह कोई
यही चित्त में आता है;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी किसी के ऊपर मानों
वज्रपात हो जाता है ॥ ११ ॥

हे भगवान् ! भला फिर क्यों तुम
हमें हाय उपजाते हो ?
क्या न हमारे लिए ठिकाना
कहीं और तुम पाते हो ?
नारी, नर, दोनों ही जग में
यदि प्रभु तुम्हीं पठाते हो ;
तो कहिए किस लिए दयामय !
पक्षपात दिखलाते हो ॥ १२ ॥

जो बच गईं मौत के मुँह से
जल्द बड़ी हो जाती हैं ;
माता, पिता, बन्धुवर्गों के
हुक्म सदैव बजाती हैं ।
काम महा मैले घर के सब
करने में न लजाती हैं ;
जो कुछ मिल जाता खा पीकर
खुशी खुशी सो जाती हैं ॥ १३ ॥

कूड़ा, करकट, बर्तन, चौका,
गोबर सदा उठाती हैं ;
शिक्षा और कला-कौशल में
इतना ही सिख पाती हैं ।
जो विद्या पुरुषों को सुखकर
सुधा-सदृश मङ्गलकारी ;
वही हमारे लिए विषम विष,
विमल बुद्धि की बलिहारी ॥ १४ ॥

ब्याह योग्य होने पर दुःखित
होतीं, लाजों मरती हैं ;
काँटे सी सबके आँखों में
निशि दिन खरका करती हैं ।
कितनी ही आमरण कुवाँरी
हममें से रह जाती हैं ;
मन ही मन सन्ताप-ताप से
तन चुपचाप जलाती हैं ॥ १५ ॥

यदि कुलीन निर्धन के घर में
जन्म हमारा होता है ;
तो अबला-समुदाय जन्म भर
हाय सभी सुख खोता है ॥
बीस वर्ष में यदि विवाह,
गौना मुश्किल से होता है ;
पति-घर की ताड़ना याद कर
ज़ार ज़ार वह रोता है ॥ १६ ॥

खाने को न पेट भर मिलता
नथ, बिछिया बिक जाती हैं ;
ज़रा ज़रा सी भी बातों पर
नित डंडे हम खाती हैं ।
ज़िन्दा ही जलती रहतीं हम,
जब दुख अति अधिकाता है ;
फिर पापी तन पिता-भवन में
आकर आश्रय पाता है ॥ १७ ॥

इस झूठी कुलीनता को है
गिन कर लाख बार धिक्कार ;
जिसके कारण हम अबला सब
पातीं इतना दुःख अपार ।
किस मुँह से तुम न्यायी
परमेश्वर के सम्मुख जावोगे ?
क्या कह उसके अटल न्याय से
परित्राण तुम पावोगे ॥ १८ ॥

यदि अभाग्य से कहीं हमारे
हुआ सुहागिलपन का नाश ;
यहीं हमें जीते हो मिलता
रौरव-नरक-कुण्ड का वास ।
जिसने पुरुष-जाति को जग में
न्यायाधीश बनाया है,
उसी निठुर ने सब सहने में
वज्र हमें उपजाया है ॥ १९ ॥

महा मलिन से मलिन काम हम
करती रहती हैं दिन रात ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुखी देख पति, पिता, पुत्र को
व्याकुल हो कृश करतीं गात।
हे भगवान, हाय! तिस पर भी
उपमा कैसी पाती हैं;
"ढोल-तुल्य ताड़न-अधिकारी"
हमीं बनाई जाती हैं! ॥ २० ॥

कभी कभी गुड़िया सी
बचपन ही में ब्याही जाती हैं;
जिसके कारण हो अति दुःसह
दुःख जन्म भर पाती हैं।
प्यारे पिता, बन्धुवर, तुम कब
भला होश में आवोगे?
कब हम दुखी दीन अबलाओं
पर तुम दया दिखावोगे ॥ २१ ॥

पढ़े लिखे जो नहीं, जिन्होंने
शिक्षा नहीं कभी पाई,
उनके साथ बात तक करते
सकुचाते हो हे भाई।
पर हम जो घर में ही रहतीं,
जिनसे सब सुख पाते हो,
उन्हें मूर्ख रखने में क्यों तुम
ज़रा नहीं शरमाते हो? २२

सबके सब दिन नहीं बराबर
जाते, इसमें नहीं विवाद;
कभी अवश्य मिलेगी हमको
भी दुनिया में चुप की दाद।
है हमको विश्वास हृदय से
आगे वह दिन आवेगा;
जो अन्याय हो रहा उसका
सब हिसाब चुक जावेगा ॥ २३ ॥

छोड़ो सब कुरीतियां कुल की,
छोड़ो अब तो निठुराई;
बहुत हो चुका कनवजियापन
सुनिए हे प्यारे भाई।
जिसमें बनै बात वह करिए,
रख लीजिए हमारी लाज;
दुख-सागर में डूब रहा है
अबलाओं का जीर्ण जहाज ॥ २४ ॥

भेड़ियों की माँद में पले हुए लड़के।

कोई चालीस पचास वर्ष पहले इन प्रान्तों में बेशुमार भेड़िये थे। अब भी हैं; पर कम हैं। जब से गवर्नमेंट ने इनाम मुक़र्रर किया तब से नट और कञ्जर लोगों ने इनकी संख्या कम कर दी। पहले ये लोग भेड़ियों को न तो पकड़ते थे और न मारते थे। वे उलटा उनकी रक्षा करते थे। उनसे उन्हें प्राप्ति थी। भेड़िये छोटे छोटे लड़कों को उठा ले जाया करते थे। ऐसे लड़कों के बदन पर जो ज़ेवर होता था वह उनकी माँद के भीतर या इधर उधर पड़ा रहता था। उसे ये लोग लाकर बेंच लिया करते थे। इसी से भेड़िये इनके यजमान हो रहे थे।

हमारा जन्म-स्थान गङ्गा के किनारे है। गङ्गा में बहुत लम्बा और घना कछार है। गङ्गा के किनारे किनारे अनेक नाले हैं। कुछ नाले दूर दूर तक चले गये हैं। चारों तरफ़ ज़मीन बेहद ऊंची नीची है। छोटी छोटी झाड़ियां भी बहुत हैं। इससे यहां अब भी बहुत भेड़िये रहते हैं। वे कभी कभी गाँव के भीतर तक चले आते हैं और घर से बकरियों और बछड़ों को उठा ले जाते हैं। कोई दो वर्ष हुए, एक बार एक भेड़िया एक ऊंची दीवार—कोई छ हाथ ऊंची—कूद कर भीतर से एक बहुत बड़ी बकरी उठा ले गया। बकरियां, घर के भीतर, मज़बूत रस्सियों से बँधी रहती हैं। पर भेड़िये इतने ज़ोरावर होते हैं कि एकही झटके में वे रस्सी को तोड़ डालते हैं और अपना शिकार उठा ले जाते हैं। यदि रस्सी बहुत मज़बूत हुई और तोड़े न टूटी तो बकरियों की गरदन वे ऐसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफ़ाई से काट देते हैं जैसे किसी ने तलवार से काट दी हो। इस दशा में सिर रस्सी में बँधा रह जाता है और धड़ भेड़िये की पीठ पर लद कर बाहर चला जाता है।

एक दिन, जुलाई १९०५ में, शाम के वक़्त, गङ्गा के किनारे, हम, एकान्त में घूम रहे थे कि बड़े बड़े दो भेड़िये हमें कुछ दूर पर देख पड़े। हमारे पास सिर्फ़ एक पतली छड़ी थी। पर हम जानते थे कि भेड़िये अकसर आदमियों पर हमला नहीं करते। उनको देख कर हम एक पेड़ से पीठ भिड़ा कर खड़े हो गये। वे दोनों भेड़िये हमारे सामने से होकर निकले। जब हमारे और उनके बीच में कोई दस गज़ का फासला रह गया तब उन दोनों ने अपने बदन के रोयें इतने फुलाये कि वे दूने मोटे मालूम देने लगे। उन्होंने बदन को फुला कर हमारी तरफ़ सिर्फ़ एक नज़र से देखा और चलते हुए। हमने घर आकर लोगों से इस का ज़िक्र किया। इस पर भेड़ियों का महाभारत शुरू हुआ। कई बुड्ढे आदमियों ने कोई सौ वर्ष तक के भेड़ियों के पुराने क़िस्से कह सुनाये। मालूम हुआ कि हमारे गाँव से, पुराने ज़माने में, कई लड़कों को भेड़िये उठा ले गये हैं। पड़ोस के गाँव से, एक दफ़ा, एक भेड़िया एक ब्राह्मण के तीन वर्ष के लड़के को उठा ले गया। वह चार पाँच वर्ष तक भेड़ियों की माँद में रहा। एक दिन वह भेड़ियों के साथ बाहर खेल रहा था कि किसी ने देखा। तब वह पकड़ा गया। बड़ी मुशकिलों में उसने अन्न खाना सीखा। वह बहुत दिन तक जीता रहा; पर जब तक रहा गूंगा रहा और सिवा गाय भैंस चराने या कण्डे पाथने के और किसी काम के लायक़ वह नहीं हुआ। हमने यह तो ज़रूर सुन रक्खा था कि भेड़ियों की माँद में लड़के पाये गये हैं। पर इतना पतेवार हाल हमने उसी दिन सुना। सुनकर हमें बड़ा कुतूहल हुआ।

इसके कुछ ही दिनों बाद हमने मेजर-जनरल सर्लू० यच० स्लीमन की एक किताब अँगरेज़ी में पढ़ी। वाजिद अली शाह के समय में स्लीमन साहब लखनऊ में रेज़िडेण्ट थे। जब मुल्क की हालत बहुत ही अबतर हो गई तब गवर्नर जनरल के हुक्म से स्लीमन साहब सब बातों को प्रत्यक्ष देखने के लिए दौरे पर निकले। यह दौरा १८४९-५० ईसवी में उन्होंने किया। इसी दौरे का वृत्तान्त, दिनचर्य्या (Diary) के रूप में, पूर्वोक्त पुस्तक में है। अवध में एक ज़िला सुल्ताँपुर है। २८ दिसम्बर १८४९ को स्लीमन साहब उसी के पास, कुछ दूर पर, ठहरे थे। यहां उनको अनेक लड़कों का पता लगा जो भेड़ियों की माँद में पाये गये थे। उन सबका हाल साहब ने अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया है। उसे ही हम यहां पर लिखते हैं। इस पुस्तक के भेड़ियों वाले भाग को पढ़ कर हमने उसका ज़िक्र अपने एक मित्र से, कानपुर में, किया। उन्होंने इस विषय का एक प्रत्यक्ष देखा हुआ उदाहरण हमसे कह सुनाया।

उन्होंने कहा—यह बात कोई ३० वर्ष की है। हमारे यहां शोरे का काम होता था। हमारी उम्र उस समय दस ग्यारह वर्ष की होगी। हमारे गोदाम में बहुत आदमी काम करते थे। उनमें से कुछ कञ्जर भी थे। उनको कहीं ख़बर लगी कि, कानपुर से थोड़ी दूर पर, किसी भेड़िये की माँद में एक लड़का है। वे वहां गये और खोद कर उसको निकाल लाये। हम शाम को जब स्कूल से आये, हमने सुना कि गोदाम में एक अजीब लड़का आया है। हमने बस्ते को घर पर पटका और गोदाम को भगे। वहां जाकर हमने देखा कि आदमियों की भीड़ लगी है। भीड़ के भीतर एक नौ दस वर्ष का लड़का रस्सी से बँधा हुआ बैठा है। उसके बदन पर लम्बे लम्बे बाल हैं; नाखून बढ़ रहे हैं; आँखें ख़राब हो रही हैं; पलकें पक सी गई हैं; हाथ पैर के बल चलने से घुटनों और हथेलियों का चमड़ा कड़ा हो गया है; पैर कुछ टेढ़े हो गये हैं और बदन से बुरी बदबू आ रही है। छेड़ने पर वह सिर्फ़ हू हू हू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता था। इसके सिवा वह और कुछ न बोल सकता था। हम नहीं कह सकते कि फिर उसका क्या हुआ और वह कहां गया।

अच्छा अब स्लीमन साहब की किताब में लिखी हुई बातें सुनिए। जो कुछ उन्होंने लिखा है उसे हम वैसे ही हिन्दी में अनुवादित किये देते हैं। सुनिए—

सुल्ताँपुर से १० मील पर एक जगह चाँदौर है। वहां एक लड़का है। ढाई वर्ष हुए वह एक भेड़िये की माँद में जीता पकड़ा गया था। ज़िले के गवर्नर ने एक सवार को लगान वसूल करने के लिए चाँदौर भेजा था। चाँदौर के पास एक नदी है। दो पहर के समय वह सवार उस नदी के किनारे किनारे जा रहा था। उसने एक बहुत बड़े मादा भेड़िये को अपनी माँद से निकलते देखा। उसके पीछे उसके तीन बच्चे निकले और एक लड़का। लड़का हाथ पैर के बल चलता था। जान पड़ता था कि उस लड़के और भेड़िये के बच्चों में घनी मित्रता है और उन बच्चों की माँ उस लड़के की भी अपने ही बच्चों के समान रक्षा करती है। वे सब नदी के किनारे गये और उन्होंने अच्छी तरह पानी पिया। सवार अपने घोड़े पर बैठा हुआ चुप चाप यह सब देख रहा था। पर भेड़ियों ने उसे नहीं देखा। जब वे पानी पीकर लौटे तब सवार ने उनका पीछा किया और उस लड़के को पकड़ना चाहा। पर वे भगे। लड़का भी उस मादा भेड़िये और बच्चों के बराबर तेज़ भगा; उनसे ज़रा भी पीछे नहीं रहा। अन्त को वे सब माँद में घुस गये। सवार साहब उसको नहीं पकड़ सके। तब उसने चाँदौर से कुछ आदमियों को बुलवाया। उन्होंने कुदारियों से माँद को खोदना शुरू किया। जब वे उसे ८ फुट खोद चुके तब वह भेड़िया तीनों बच्चे और उस लड़के को लेकर बाहर निकला और भगा। सवार ने फिर उनका पीछा किया। उसके साथ और भी कई आदमी दौड़े। कुछ देर में वह उन बच्चों और उस लड़के के पास पहुँच गया और उनको दूसरी तरफ़ भगाया—अर्थात् जिस तरफ़ से आदमी दौड़े आ रहे थे उस तरफ़। आख़िर को वह लड़का पकड़ा गया और भेड़िये के बच्चे छोड़ दिये गये।

सब लोग उस लड़के को गाँव में ले गये। वहां उन्होंने उसे एक मज़बूत रस्सी से बाँधा। क्योंकि वह लड़का आदमियों को देख कर बेतरह घबराता था और जहां कोई गढ़ा या बड़ा सा छेद देखता था वहीं घुसने की चेष्टा करता था। उन्होंने बहुत चाहा कि वह बोले; पर सिवा क्रोध से भरी हुई गुर्राहट के वह कुछ भी नहीं बोल सका। बहुत दिन तक वह उस गाँव में बँधा रहा। उसे देखने के लिए आदमियों की रोज़ भीड़ लगी रहती थी। जब वह किसी बड़े आदमी को देखता तब बहुत डर जाता और भगने की कोशिश करता। पर यदि कोई लड़का उसके पास आता तो वह कुत्ते की तरह दाँत निकाल कर क्रोध से उस पर झपटता और उसे काटने की चेष्टा करता। यदि मांस अच्छी तरह पका कर या उबाल कर उसके सामने रक्खा जाता तो वह उसे छूता तक नहीं; घृणापूर्वक वह उसकी तरफ़ से अपना मुँह फेर लेता। पर यदि कच्चा मांस उसे दिया जाता तो वह बहुत ख़ुश होता। वह तुरन्त उसे, कुत्ते की तरह, ज़मीन पर रख कर अपने पंजों से दबाता और दाँतों से नोच नोच कर खा जाता। खाते वक़्त वह किसी को अपने पास न आने देता। पर यदि कोई कुत्ता उसके खाने में शरीक होना चाहता तो वह कुछ न बोलता। वह सवार चार पाँच दिन तक उस लड़के के पास रहा। फिर उसने उसे हसनपुर के राजा की निगरानी में छोड़ दिया और आप गवर्नर के पास लौट आया। उसने यह वृत्तान्त गवर्नर से कहा। गवर्नर ने राजा से कह कर उस लड़के को कप्तान निकलेट्स के पास भिजवा दिया। कप्तान साहब अवध लोकल इन्फैंट्री की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहली रेजिमेण्ट के कमाँडिंग आफ़िसर थे। जब यह लड़का चाँदौर को लाया गया था तब हसनपुर के राजा मौजूद थे। यह वृत्तान्त मैं उन्हीं की रिपोर्ट के आधार पर लिख रहा हूं।

कप्तान साहब ने इस लड़के को अपने नौकरों के सिपुर्द कर दिया है। वे उसे बहुत अच्छी तरह रखते हैं, पर वह बोलता नहीं। बोलता क्या, वह बोल ही नहीं सकता। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकलता। वह किसीको तंग नहीं करता; चुपचाप पड़ा रहता है। पर यदि कोई उसे तंग करता है तो क्रोध से वह बेतरह गुर्राता है। वह सब चीज़ें धीरे धीरे खाने लगा है। परन्तु कच्चा मांस उसे बहुत पसन्द है। उसे वह खाता ही चला जाता है, मानों वह महीनों का भूखा हो। यदि घड़ा भर मठा उसके सामने रख दिया जाता है तो वह सबका सब एक ही साँस में पी जाता है। चाहे जितनी सरदी पड़े वह अपने बदन पर कपड़ा नहीं बरदाश्त कर सकता। इस साल जब बहुत अधिक जाड़ा पड़ने लगा तब उसे ओढ़ने के लिए एक लेहाफ़ दिया गया। पर उसने किया क्या? फाड़ कर उसने उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले और रुई समेत थोड़ा थोड़ा करके अपनी रोज़ाना रोटी दाल के साथ वह उसे खा गया! उसे हड्डियां चूसने से बड़ा प्रेम है; यदि वे बेपकी हों तो फिर कहना ही क्या है! हड्डियों को वह उतनी ही आसानी से चाबता है जितनी आसानी से कि वह मांस खाता है। बकरी के एक बड़े बच्चे के आधे हिस्से को वह एक दफ़ा में, बिना किसी प्रयास के, खा जाता है। छोटे छोटे कंकड़ और मिट्टी खाने का भी उसे बड़ा शौक़ है। उसके अंग बहुत ही भद्दे हैं; उसकी सूरत ऐसी बुरी है कि देख कर घिन लगती है। उसकी आदतें जितनी हैं सब गन्दी हैं। वह अब तक कुत्तों और गीदड़ों को बहुत चाहता है। चार पैरवाले जितने छोटे छोटे जानवर हैं उन सबसे वह बहुत प्रसन्न रहता है। यदि वे उसके खाते वक़्त पास आजाते हैं तो उनको अपने साथ ख़ुशी से वह खाने देता है।

कप्तान निकलेट्स ने अपनी १४ और १९ सितम्बर १८५० ईसवी की चिट्ठियों में मुझे लिखा है कि वह लड़का अगस्त के अख़ीर में मर गया। जब तक वह जीता रहा न कभी वह हँसा, न कभी वह मुसकराया। जो कुछ उससे कहा जाता था उसे वह प्रायः बिलकुल ही नहीं समझता था। उसके आस पास लोग क्या करते हैं, इसकी वह ज़रा भी परवा न करता था। न उसने किसी आदमी की परवा की, न किसी पर उसकी प्रीति हुई। उसके पास लड़के अकसर जाया करते थे। परन्तु न कभी वह उनके साथ खेला और न खेलने की इच्छा ही उसने ज़ाहिर की। एक कुत्ते को वह अपने साथ खिलाया करता था। जब वह भूखा न होता था तब वह उसी कुत्ते की पीठ ठोंकते हुए बैठा रहता था। यह कुत्ता उस लड़के का खाना बहुत अधिक खा लेता था, इससे लड़का भूखा रह जाता था और दुबला होता चला जाता था। यह देख कर कप्तान साहब ने, एक दिन, उसे गोली मार दी। पर उसके मरने का ज़रा भी रंज लड़के को नहीं हुआ। जब लड़का पकड़ा गया था तब उसके माँ-बाप ने उसे पहचाना था। परन्तु जब उन्होंने देखा कि उसकी यह दशा है तब उन्होंने उसे लेने से इनकार कर दिया। लड़का हसनपुर का था। पर उसके माँ-बाप अब हसनपुर में नहीं हैं। इससे लड़के की उमर का ठीक ठीक पता नहीं लग सकता। देखने से मालूम होता था कि जब वह पकड़ा गया था तब उसकी उमर कोई नौ या दस वर्ष की रही होगी। उसके बाद तीन वर्ष तक वह जीता रहा था। जब उसे कोई चीज़ दरकार होती थी तब वह इशारों से उसे मांगता था; पर वह बहुत कम इशारे जानता था। भूखा होने पर वह अपने मुँह पर हाथ रखता था। जब उसका खाना उससे कुछ दूर पर रक्खा जाता था तब उसके पास कुत्ते की तरह चार पैर से (हाथ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैर के बल) दौड़ जाता था। पर और मौक़ों पर उठ कर वह कभी कभी सीधा भी चलता था। आदमियों की संगति से उसे घृणा थी। ख़ुशी से वह कभी आदमी के पास न बैठता था। जाड़ा, गरमी और बरसात की उसे ज़रा भी परवा न थी। परवा उसे किसी बात की भी न थी; थी सिर्फ़ खाने की। जबसे वह कप्तान साहब के पास आया तबसे उसने कोई नटखटपन का काम नहीं किया। वह चुपचाप बैठा रहता था। उसे पकड़ने या बाँधने की ज़रूरत न होती थी। कोई दो वर्ष वह कप्तान साहब के नौकरों के पास रहा। मरने के कुछ मिनट पहले तक कभी एक शब्द भी वह अपने मुँह से नहीं बोला। पर मरने के समय उसने अपने सिर पर हाथ रख कर सिर्फ़ इतना कहा "दर्द होता है" और पानी माँगा। बस पानी पीते ही उसकी जान निकल गई।

सुल्ताँपुर से बीस मील पूर्व एक जगह छपरा है। वहां एक आदमी अपनी स्त्री और लड़के के साथ रहता था। वह खेती करता था। लड़के की उमर ३ वर्ष की थी। १८४३ ईसवी के मार्च महीने में वह गेहूं और अरहर काटने के लिए अपने खेत को गया। उसकी स्त्री ने सिर पर टोकरी रक्खी और गोद में लड़के को लेकर वहीं, खेत में, सीला बीनने गई। इसके कुछ दिन पहले, जाड़े में, लड़का आग के पास बैठा हुआ ताप रहा था कि एकाएक वह आग में गिर पड़ा और उसके पैर का दाहना घुटना जल गया। इससे वह बहुत दिन तक बीमार पड़ा था। पर अब वह अच्छा हो गया था। परन्तु जलने का दाग़ घुटने पर था। बाप खेत काटने लगा; माँ नीचे गिरी हुई बालें बीनने लगी; लड़का वहीं मेंड़ पर बैठ कर खेलने लगा। इतने में एक झाड़ी से एक भेड़िया एकाएक निकला और लड़के को उठा ले गया। बाप तो कुछ दूर था, पर माँ नज़दीक थी! वह चिल्लाती हुई भेड़िये के पीछे दौड़ी। उसको चिल्लाहट सुन कर गाँव के और भी आदमी दौड़ आये; पर तब तक भेड़िया नज़र से ग़ायब हो गया; और उस लड़के के माँ-बाप को सिर पटक कर रह जाना पड़ा।

छः वर्ष तक इस लड़के का कुछ भी पता नहीं चला। इस बीच में लड़के का बाप मर गया और माँ बेचारी अकेली रह गई। फ़रवरी १८४९ ईसवी में सिँगरामऊ से दो सिपाही आये। छपरा से सिँगरामऊ दस मील है। वह खोवई नदी के किनारे है। नदी के किनारे जंगल में जंगली सूअर बहुत रहते हैं। वे पानी पीने के लिए नदी के किनारे आया करते हैं। सुअरों की तलाश में वे दोनों सिपाही जंगल में, एक जगह, नदी से थोड़ी दूर पर, बैठ रहे। उन्होंने देखा कि जंगल से भेड़िये के तीन बच्चे एक लड़के के साथ निकले और नदी में पानी पीने गये। जब वे पानी पीकर लौटे तब सिपाहियों ने उन पर हमला किया। वहीं पास बीहड़ में उनकी माँद थी। उसी की तरफ़ वे चारों भगे। सिपाहियों ने उनका पीछा किया। वे ख़ूब तेज़ी से दौड़े। भेड़िये के बच्चे तो निकल गये पर लड़का माँद तक न पहुँचने पाया। बीच ही में एक सिपाही ने उसकी पिछली टांग को पकड़ कर उसे पीछे खींच लिया। इस पर वह बेतरह बिगड़ा। उसने बड़े क्रोध में आकर उन सिपाहियों पर आक्रमण किया और उनको कई जगह पर काट खाया। सिपाहियों ने उसे दूर रखने के लिए अपनी बंदूक़ उसके सामने कर दी। उसने बंदूक़ की नली को अपने दाँतों से पकड़ कर उसे बड़े ज़ोर से हिला दिया। बड़ी मुशक़िल में उन्होंने उसे किसी तरह पकड़ पाया। उसे वे अपने घर ले आये और कोई बीस दिन तक अपने यहां रक्खा। इतने दिनों तक सिवा कच्चे मांस के और कुछ भी वे उसे नहीं खिला सके। उसने और कुछ छुवा तक नहीं। सिर्फ़ चिड़ियां और ख़रगोश वग़ैरह खिला कर उसे उन्होंने ज़िन्दा रक्खा। पर प्रतिदिन इस तरह का खाना उसे देने में उन्हें कठिनता होने लगी। इसलिए वे उसे कोइलीपुर के बाज़ार को ले गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहां उन्हों ने उसे इस भरोसे पर छोड़ दिया कि लोगों को दया आवेगी तो वे इसके खाने पीने का प्रबन्ध कर ही देंगे। तब तक शायद इसके माँ-बाप का पता लग जाय और वे इसे ले जायँ। बाज़ार के दिन एक बार छपरा का एक आदमी कोइलीपुर आया। उसने इस लड़के को देखा और अपने गाँववालों से इसका हाल बयान किया। जब लड़के की माँ को यह ख़बर हुई तब उसने उस आदमी से लड़के की सूरत शकल का हाल पूछा। उसने कहा कि उसके बायें घुटने पर जल जाने का निशान है और कमर में, दोनों तरफ़, किसी जानवर के तीन तीन दाँतों के भी निशान हैं। (कमर ही को पकड़ कर भेड़िया उसे उठा ले गया था) यह सुन कर उस औरत को विश्वास हो गया कि वह लड़का उसी का है।

वह औरत तुरन्त ही कोइलीबाज़ार गई। वहां उसने अपने लड़के को पहचान लिया। उसके बदन पर पूर्वोक्त दो तरह के निशानों के सिवा एक और भी निशान उसे मिला। उसकी जाँघ पर भी एक निशान उसने देखा। वहां पर उसे एक दाग़ मिला। वह उस लड़के का जन्म-दाग़ था। वह लड़के को अपने घर ले गई। वहां जितने उसके पड़ोसी थे सब ने उसे पहचाना। दो महीने तक उस औरत ने उसे अपने घर पर रक्खा। जितने ज़मीदार और नम्बरदार आस पास के गाँवों में रहते थे और जिनको शिकार का शौक़ था वे उस लड़के के खाने के लिए बराबर शिकार भेजते रहे। उसकी माँ कहती है कि जब यह लड़का प्यासा होता है तब अपना मुँह पानी में डाल देता है, पर, सांस बाँध कर, पानी पीता है; कुत्ते को तरह थोड़ा थोड़ा करके जीभ से नहीं पीता। उसके बदन से बहुत बुरी दुर्गन्ध आती है। जब उसकी माँ बाहर काम करने चली जाती है तब वह जंगल को भग जाता है। माँ ने बहुत कोशिश की पर वह अपने मुँह से एक शब्द भी नहीं बोल सका। यदि उसे कुछ खाने को मिलता है तो वह अपनी माँ के पीछे पीछे चला जाता है, पर उस पर उसकी ज़रा भी प्रीति नहीं है। और न उसकी माँ की ही उस पर प्रीति है। दो महीने तक उसने लड़के को रक्खा। पर जब उसने देखा कि उससे उसका कुछ भी काम नहीं निकलता तब उसने उसे गाँववालों के भिक्षा-दान के भरोसे छोड़ दिया। थोड़े दिनों में उसने रोटी खाना सीख लिया। और और चीज़ें भी वह खाने लगा है; पर रात के वक्त वह नियम से जङ्गल को चला जाता है। कभी कभी वह मुँह से कुछ बरबराता है। पर उसके कहने का मतलब किसी की समझ में नहीं आता। भेड़ियों के साथ हाथ-पैर के बल चलने से उसके पैर के घुटने और बाँहों के जोड़ बहुत सख़्त हो गये हैं। यदि उसे कपड़ा पहना दिया जाता है तो वह उतार डालता है और उतारने में कपड़े फट जाते हैं। अब तक उसे कच्चा मांस, पके को अपेक्षा, अधिक पसन्द है। यदि सड़ा गला मांस उसे मिल जाता है तो वह उसे बहुत ख़ुशी से खाता है। गाँव के लड़के उसके साथ खेला करते हैं और मेंढ़क पकड़ पकड़ कर उस पर फेंकते हैं। वह मेढ़कों को पकड़ लेता है और खा जाता है। यदि कोई गाय या बैल मर जाता है और उसका चमड़ा खींच लिये जाने पर उसकी लाश पड़ी रह जाती है तो वह वहां फ़ौरन पहुंचता है और कुत्तों की तरह उसे खाने लगता है। यह लड़का अभी तक जीता है। इसकी माँ भी, छपरा में, अभी तक बनी हुई है। यह बयान उसी ने अपने मुँह से लिखाया है।

१८५० के नवम्बर में कप्तान निकलेट ने हुक्म दिया कि यह लड़का मेरे (स्लीमन साहब के) पास भेजा जाय। उसकी माँ उसे लेकर चली। पर रास्ते में वह डर गया और जंगल को भग गया। फिर वह पकड़े नहीं मिला। उसकी माँ वापस गई। यदि वह ज़िन्दा रहा तो लौट जायगा और छपरा पहुँच जायगा। उसे वह अच्छी तरह पहचान गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक लड़के का हाल हसनपुर बँधुवा के राजा ने मुझ से बयान किया है। यह घटना उनकी देखी हुई है। वे कहते हैं कि १८४३ ईसवी में एक लड़का हसनपुर में आया। जान पड़ता था कि भेड़ियों ने उसे पाला पोसा था। उसकी उमर १२ वर्ष की होगी। रंग उसका काला था। वह कच्चा-पक्का, दोनों तरह का, मांस खाता था। जब पहले पहल वह आया तब उसके सारे बदन पर छोटे छोटे बाल थे। पर कुछ दिन में धीरे धीरे बदन के बाल गिर गये। इसका कारण यह था कि उसे खाने के साथ नमक भी मिलता था। और नमक में बाल गिरा देने की तासीर है। वह आदमियों की तरह पैरों के बल सीधा चल तो सकता था, पर बोल नहीं सकता था। वह जंगली जानवरों की तरह बोलता था, पर इशारा करने से मतलब समझ जाता था। एक बनिये की दूकान पर वह अकसर बैठा रहता था। आख़िर को, एक दिन, उसके माँ-बाप ने उसे पहचाना और उसे वे घर ले गये। मालूम नहीं कि फिर उसका क्या हुआ। हसनपुर में रहने वाले सब लोग राजा साहब की इस बात का अनुमोदन करते हैं।

सुल्ताँपुर से १२ मील पश्चिम एक गाँव घट-कोरी है। १८४३ ईसवी में, वहां के रहनेवाले एक गड़रिये ने, एक दिन, सुबह, एक लड़के को एक भेड़िये के साथ हाथ पैर के बल जाते देखा। बड़ी मुश्किलों से उसने उस लड़के को पकड़ पाया। वह बहुत तेज़ भगा; पर गड़रिये ने उसे पकड़ ही लिया। कुछ दिन तक उसे उसने खिलाया पिलाया और बोलना सिखलाने की कोशिश की। पर वह एक शब्द भी न बोल सका। आदमियों और लड़कों के पास बैठना उसे सख़्त नागवार था। वह उन्हें देख कर दूर भागता था। उस समय सुल्ताँपुर में कर्नल ग्रे, अवध लोकल इनफैंट्री के कमान पर, थे। उनके पास वह लड़का लाया गया। बहुत दिन तक वह उनके पास रहा। पर एक दिन वह जंगल को भग गया। नहीं मालूम फिर वह मिला या नहीं।

सुल्ताँपुर के ज़िले में, हसनपुर की रियासत में, एक गाँव बांकेपुर है। वहां एक इज़्ज़तदार ज़मींदार रहता है। उसका नाम है ज़ुल्फ़िक़ार ख़ां। वह बयान करता है कि कोई आठ नौ वर्ष हुए एक सवार उसके गाँव में आया। उसके साथ एक लड़का था। उसकी उमर कोई नौ या दस वर्ष की होगी। उसे उसने एक भेड़िये की माँद में पाया था। उसको वह अपने साथ न रख सका। इसलिए, उसने उसे गाँव में छोड़ दिया। जो कुछ उसे दिया जाता था वह खा लेता था। पर खाने के पहले उसे वह अच्छी तरह सूंघता था। और चीज़ों की अपेक्षा वह कच्चा मांस अधिक पसन्द करता था। वह आदमी की तरह खड़ा होकर चलता था। पर उसके घुटनों और कुहनों पर निशान थे जिससे साबित था कि बहुत दिनों तक वह हाथ-पैर के बल चला था। यदि उससे उस तरह चलने को कहा जाता तो वह इतना तेज़ भगता कि कोई भी उसे पकड़ न सकता। यह नहीं मालूम हुआ कि कितने दिन तक वह उस सवार के साथ रहा था और कितने दिन में उसने पैरों के बल, आदमी की तरह, चलना सीखा था। न वह बात कर सकता था और न उसके मुँह से कोई सार्थक शब्द निकलता था। इशारे वह समझ जाता था और सुन ख़ूब सकता था। यदि इशारे से उसे कोई समझा देता तो खेत में कोई भी जानवर—बकरी, गाय, बैल या भैंस—उसके मारे न आने पाते। उस गाँव में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम बुद्धू था। वही उस लड़के की निगरानी करता था। तीन महीने तक वह बुद्धू के पास रहा। इतने में उसके बाप को उसकी ख़बर मिली। वह एक गड़रिये का लड़का था। वह आया और उसे ले गया। उससे मालूम हुआ कि चार वर्ष हुए लड़के को एक भेड़िया, रात के वक़्त, उठा ले गया था। उस वक़्त लकेड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उमर ६ वर्ष की थी। लड़के को बुद्धू के पास से जाना मंज़ूर न था। पर उसका बाप उसे ज़बरदस्ती घसीट ले गया। नहीं मालूम, फिर उसकी क्या दशा हुई। लड़के के बदन पर बाल न थे। कपड़ों से भी उसे नफ़रत न थी। गाँव के सब आदमियों ने इस घटना को सच बताया।

कोई सात वर्ष हुए एक शाही सवार एक नदी के किनारे किनारे जा रहा था। बहरायच के ज़िले में एक जगह बौंडी उर्फ़ बमनौती है। वहां एक राजा हैं। उनका नाम हरदत्तसिंह है। उन्हींके यहां यह सवार उस समय रहता था। उसने भेड़िये के दो बच्चों और एक लड़के को नदी में पानी पीते देखा। उसके साथ एक आदमी पैदल भी था। उन दोनों ने किसी तरह उस लड़के को पकड़ा। लड़के की उमर कोई बारह वर्ष की होगी। सवार ने उस लड़के के हाथ बाँध दिये और अपने पीछे घोड़े पर उसे बिठा लिया। पर उसमें जंगलीपन और क्रूरता की मात्रा इतनी अधिक थी कि उसने उस सवार के कपड़े फाड़ डाले और कई जगह पर उसने उसे बेतरह काट खाया। वह उसे किसी तरह बौंडी ले आया। वहां राजा हरदत्तसिंह ने उसे बँधवा दिया और कच्चा मांस उसे खाने को दिया। जिस रस्से से वह बँधा था उसे कई दफ़ा काट काट कर वह भग गया। तीन महीने तक वह वहां रहा। राजा हरदत्तसिंह इतने दिनों में उससे ऊब उठे और उसे उन्होंने छोड़ दिया। तब एक काश्मीरी भाँड़ ने उसे ले लिया। छः महीने तक उसने उसे रक्खा और उसकी परवरिश की। उसकी आदतें ऐसी बुरी और गंदी थीं कि वह भाँड़ भी उससे आजिज़ आगया और उसने भी उसे छोड़ दिया। इस तरह छूट कर वह बौंडी के बाज़ार में आवारा घूमने लगा। एक दिन एक बूचर की दूकान से मांस का एक टुकड़ा लेकर वह भग गया। इसके बाद एक दिन उसने एक बनिये की दूकान की कुछ चीज़ें उलट पलट कर दीं। बनिये के उस पर क्रोध आया। उसने उसके एक तीर मारा। तीर लड़के की जाँघ में घुस गया। इस समय सनाउल्ला नामक लखनऊ का एक काश्मीरी सौदागर बौंडी में था। वह राजा हरदत्तसिंह के यहां शाल बेचने आया था। राजा के भाई की शादी थी। उसके पास कई नौकर थे। उनमें से जानू नामक एक कम उमर का ख़िदमतगार था और रमज़ान ख़ां नामक एक बुड्ढा सिपाही था। जानू को उस लड़के पर दया आई। उसने उसकी जाँघ से तीर निकाला; घाव पर मरहम पट्टी लगाई; और पास ही आम के पेड़ के नीचे उसके लिए बिस्तरा कर दिया। वहीं पेड़ के पास वह भी रहता था। परन्तु छोलदारी के खूंटे से उसको उसे बाँधना पड़ा। उस समय वह लड़का कच्चे मांस के सिवा और कुछ न खाता था। इस आदत को छुड़ाने के लिए, अपने मालिक का हुक्म लेकर, जानू उसे दाल-भात देने लगा। पर उसने दाल-भात खाने से इनकार किया। कई दिन तक वह बिना कुछ खाये भूखा ही पड़ा रहा। पर जानू ने धैर्य नहीं छोड़ा। धीरे धीरे उसे बाटियां (कण्डों की आग पर पकाई हुई गोल गोल रोटियां) खाने पर उसने राज़ी किया। ऐसा करने में उसे कोई पन्द्रह दिन लगे। उसके बदन से बहुत ही बुरी बदबू निकलती थी। उसे दूर करने के लिए जानू उसके बदन पर पानी में भिगो कर खली मलता रहा। कई महीने तक उसने खली मली, पर बदबू नहीं गई। दाल, भात और रोटी भी वह खाने लगा। इससे भी बदबू दूर नहीं हुई। उसकी कुहनियों और घुटनों का चमड़ा बहुत सख़्त हो गया था। इससे यह सिद्ध था कि बहुत दिनों तक वह हाथ-पैर के बल चला था। आम के नीचे बाँधे जाने के बाद कोई डेढ़ महीने तक उसके बदन के जोड़ों पर तेल मला गया। तब कहीं वह आदमियों की तरह खड़ा होकर चलने लगा। उसके मुँह से कभी कोई सार्थक शब्द नहीं निकला। हां, कभी कभी वह "अबूदिया" ज़रूर कहता था। "अबूदिया" उस काश्मीरी भाँड़ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी लड़की थी। वह इस लड़के को बहुत चाहती थी। इसीसे लड़का भी उससे कुछ मुहब्बत रखता था। चार महीने बाद वह इशारे समझने लगा और इशारों के अनुसार काम भी करने लगा। जानू ने उसे चिलम भरना सिखलाया। चिलम भर कर और हुक्का तैयार करके वह जानू के पास लाने लगा और जिसे वह कहे उसे देने भी लगा।

एक रात को लड़का पेड़ के नीचे लेटा था कि जानू ने देखा दो भेड़िये उसके पास आये। वे चुपचाप आये और उसके बदन को सूंघने लगे। फिर उन्होंने उसे अपने मुँह से छुआ और वह उठ बैठा। वह उन्हें देख कर ज़रा भी नहीं डरा। उलटा उनके सिर पर उसने अपने हाथ रख दिये और वे उससे खेलने लगे। भेड़िये उसके चारों तरफ़ उछलने कूदने लगे और वह उन पर घास, फूस और पत्तियां फेंकने लगा। जानू ने उन भेड़ियों को भगाने की बहुत कोशिश की; पर वे वहां से न हटे। इससे वह बहुत डर गया और तोपख़ाने के संतरी मीर अकबरअली को उसने आवाज़ दी। उसने कहा—"भेड़िये लड़के को खाना चाहते हैं"। अकबरअली ने जवाब दिया—"लड़के को छोड़ कर तुम भग आवो नहीं तो तुम्हें भी भेड़िये खा जायँगे"। परन्तु जब जानू ने देखा कि भेड़िये लड़के के साथ आनन्द से खेल रहे हैं तब उसका डर छूट गया और वह चुपचाप अपनी जगह पर पड़ा रहा। धीरे धीरे उसने उन्हें भगाने की फिर कोशिश की। वे कुछ दूर हट तो गये, पर फिर लड़के के पास आकर उससे खेलने लगे। आख़िर को उसने उन भेड़ियों को, किसी तरह, वहां से भगा ही दिया। दूसरी रात को तीन भेड़िये आये और वे सबके सब उस लड़के से खेलते रहे। दो तीन दिन बाद एक रात को चार भेड़िये आये, पर चार से अधिक कभी नहीं आये। इस तरह चार पाँच दफ़े भेड़िये आये; इससे जानू का डर छूट गया। जानू का ख़याल है कि पहली रात को जो दो भेड़िये आये थे वे बहुत करके वही बच्चे थे जिनके साथ वह लड़का पहले पहल पकड़ा गया था। लड़के के बदन से भेड़ियों के ही बदन की ऐसी दुर्गन्ध निकलती थी। इसीसे, भेड़िया समझ कर, वे उसे नहीं उठा ले गये। जब वह लड़का उन भेड़ियों के सिर पर अपना हाथ रखता था तब वे उसके मुँह को अपनी जीभ से चाटते थे।

कुछ दिन बाद सनाउल्ला लखनऊ को लौटा। उसने जानू को धमकाया कि यदि वह उस लड़के को न छोड़ देगा तो वह उसे नौकरी से बरख़ास्त कर देगा। पर जानू ने उसे न छोड़ा। सनाउल्ला को भी दया आई। इससे उसने उसे रहने दिया। जानू ने लड़के के सिर पर कपड़ों की एक गठरी रख दी और उसकी बाँह में एक रस्सी बाँध दी। उसी रस्सी को पकड़ कर वह उसे ले चला। रास्ते में जहां कहीं जंगल मिलता लड़का गठरी को फेंक कर भग जाने की कोशिश करता। परन्तु मारे जाने पर वह हाथ जोड़ता और गठरी को उठा कर फिर चलने लगता। पर मार पीट को बहुत जल्द भूल जाता और जहां कहीं वह जंगल देखता वहां वह फिर भगने की कोशिश करता। धीरे धीरे वह हिल गया और भागना बन्द कर दिया। लखनऊ पहुंचने पर, तीन महीने बाद, दो एक दिन के लिए अपने मालिक के हुक्म से जानू कहीं बाहर किसी काम से गया। वह बाहर ही था कि लड़का कहीं भग गया। तब से उसका कोई पता नहीं चला।

लड़के के चले जाने के दो महीने बाद, एक दिन, एक औरत सनाउल्ला के पास आई। वह ज़ात की कोली थी। राजा हरदत्तसिंह के एक रिश्तेदार ने उसे एक चिट्ठी सनाउल्ला के नाम दी थी। उसी को लेकर वह आई थी। वह चुरियरकोटरा को रहने वाली थी। यह गाँव राजा हरदत्तसिंह की ज़मीदारी में है। उससे मालूम हुआ कि उसके एक लड़का चार वर्ष का था। कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छः वर्ष हुए उसे एक भेड़िया उठा ले गया था। उसने कहा कि उसके लड़के के बदन पर दो निशान थे। एक छाती पर था; वह फोड़े का निशान था। दूसरा निशान माथे पर था; वह न मालूम किसका था। जानू के पास जो लड़का था उसके बदन पर भी ठीक यही निशान थे। इससे निःसन्देह वह लड़का इसी औरत का था। लखनऊ में वह औरत सनाउल्ला और जानू के पास कोई चार महीने तक रही। परन्तु जब लड़के का कोई पता न चला तब नाउम्मेद होकर वह अपने घर लौट गई। सनाउल्ला, जानू और रमज़ान ख़ां अभी तक लखनऊ में हैं। उन्होंने मुझ से यह घटना अपने मुँह से बयान की है। अतएव इसके सच होने में कोई सन्देह नहीं है। वह लड़का कोई पांच महीने जानू के पास था। और कोई चार महीने पहले वह पकड़ा गया था। इससे अनुमान होता है कि छः सात वर्ष वह भेड़ियों के साथ रहा होगा। जिस भेड़िये ने उसे पाला होगा उसने इतने समय में, कई दफ़े बच्चे दिये होंगे। जानू का कथन है कि पहले पहल उसने उस लड़के की कमर में कमरबन्द बाँधना चाहा। पर क्रोध में आकर वह कमरबन्द को अकसर तोड़ डालता था। दो महीने में वह कमरबन्द बाँधने लगा। तब जानू ने उसे पायजामा और अंगरखा पहनना सिखलाया। यह उसे बहुत ही नागवार हुआ। बहुत कुछ धमकाने और मारने पीटने पर, बड़ी मुश्किलों से, उसने उन्हें पहना। परन्तु जब वह अपने को अकेला पाता तब कपड़े उतार कर फेंक देता। यदि उसे कोई नंगा देखता तो वह डर कर फिर कपड़े पहन लेता। जब उसका बदन खुजलाता तब जानवरों की तरह वह अपने बदन को पेड़ या दीवार वग़ैरह से रगड़ने लगता। रगड़ने में उसके कपड़े अकसर फट जाते। उसकी यह आदत अन्त तक नहीं छूटी।

राजा हरदत्तसिंह इस समय (२८ जनवरी १८५१) लखनऊ में हैं। वे एक काम से यहां आये हैं। वे कहते हैं कि वह लड़का तीन महीने तक हमारे यहां था। उसकी उमर कोई १२ वर्ष की होगी। कच्चा मांस उसे बहुत ही पसन्द था। वह उसे बड़ी ख़ुशी से खाता था। रोटी वग़ैरह वह छूता तक न था। वह हाथ पैर के बल, बन्दर की तरह, चलता था। बहुत धमकाने से वह खड़ा होकर आदमी की तरह चलता था। पर उसे अच्छी तरह चलना न आता था। इशारे वह समझ जाता था। पर न वह बोल सकता था और न किसी को बोली समझता था। किसी को काट खाने की वह बहुत कम कोशिश करता था।

मैंने बहुत कुछ जांच की पर भेड़ियों की माँद में किसी बड़े आदमी के पाये जाने की घटना का मुझे कोई सबूत नहीं मिला। लखनऊ में इस समय एक बुड्ढा आदमी है। जब वह लड़का था तब, तराई में, एक फ़क़ीर की झोंपड़ी के पास, उसके मरने के बाद, वह मिला था। लोग कहते हैं कि फ़क़ीर ने इस लड़के को भेड़ियों से छीना था। कोई चालीस वर्ष हुए वह एक सवार को मिला था। सवार उसे बादशाह के पास लाया। तब से, बादशाह की कृपा से, वह, लखनऊ में, बड़े आराम से रहता है। एक दिन मैंने उसे बुलाया और उससे बात चीत की। सूरत शकल से वह थारू ज़ात का जान पड़ता है। इसी ज़ात के लोग तराई के जंगलों में अधिक रहते हैं। वह बहुत सीधा सादा है। बोलता भी वह बहुत कम है और जो कुछ बोलता है साफ़ साफ़ नहीं बोल सकता। आदमियों के बीच में बैठना उसे पसन्द नहीं; वह एकान्त में अकेले रहना चाहता है। जो लोग उस से अधिक पूँछ पाँछ करके तंग करते हैं उनसे वह और भी घबराता है। मैंने उससे पूछा कि भेड़ियों के साथ रहने का तुम्हें कुछ भी स्मरण है। उसने कहा—"फ़क़ीर के बहुत दिन पहले ही भेड़िये मर गये"। जान पड़ता था कि इसके सिवा उसे और कुछ याद नहीं। उसको कुहनियों और घुटनों पर कोई निशान भी नहीं जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेड़ियों के साथ उसका रहना साबित हो। इस में कोई सन्देह नहीं कि वह जंगल में मिला था; पर मुझे इस बात पर विश्वास नहीं कि वह भेड़ियों के साथ रहा है।

आठ दस वर्ष की उमर तक जो लड़का भेड़ियों के साथ रहेगा उसमें आदमी की ऐसी समझ कभी न आवेगी। जो कुछ मैंने देखा और सुना है उससे मैं कह सकता हूं कि इस तरह का लड़का कभी आदमी की तरह सज्ञान न होगा। मैंने कभी नहीं सुना कि कोई बड़ा आदमी किसी भेड़िये की माँद में पाया गया हो। जितने मिले हैं लड़के ही मिले हैं। इसका कारण यह है कि बहुत दिनों तक कच्चा मांस खाते खाते या तो वे खुद ही मर जाते हैं या भेड़िये अथवा और हिंस्र पशु उन्हें, बड़े होने के पहले ही, मार डालते हैं। क्योंकि वे भेड़ियों की बराबर नहीं दौड़ सकते; इससे वे हिंस्र जीवों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते। अथवा जो भेड़िये उनको पालते हैं वे या तो कुछ दिनों में खुद ही मर जाते हैं या मार डाले जाते हैं। इस कारण उनके पाले हुए लड़के अकेले रह जाते हैं और दूसरे जीव उन्हें मार खाते हैं। शेर जब किसी जानवर को मारता है तब एक ही दफ़ा में वह उसे नहीं खा जाता। वह लाश के पास, कुछ दूर पर, कहीं, छिपा बैठा रहता है और जब भूख लगती है आकर उसे खाता है। यदि ऐसी लाश को भेड़ियों का पाला हुआ कोई लड़का देख ले तो ज़रूर ही वह उसे खाने लगे। इस दशा में शेर ज़रूर ही उस पर हमला करेगा और उसे मार कर खा जायगा। इन्हीं कारणों से भेड़ियों के पाले हुए जवान आदमियों के पाये जाने का पता नहीं लगता।

पर भेड़िये लड़कों को पालते क्यों हैं? क्यों नहीं पकड़ने के साथ ही मार कर उन्हें खा जाते? क्या दयार्द्र होकर वे उन्हें पालते हैं अथवा अपना बच्चा समझ कर? इस बात का विचार स्लीमन साहब ने नहीं किया।

—

सत्कविता पर बात-चीत।

सुकवि—(कुछ सोचकर हँसते हुए)

"केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु;
केचिद्वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु;
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्भीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे"।

(अनुवाद—
कोऊ सुधा सुरन के घर में बतावे,
कोऊ ललाम-ललनाधर में बतावे,
सच्छास्त्र छानि हम तासु पता बताहीं,
जम्भीर-नीर-भय-मीनन-खण्ड माहीं!)

रसिक—भाई वाह! भला इसके सुनाने का क्या अवसर था?

सु०—अवसर क्या? चित्त ही तो है। इस समय मैं उन लोगों का स्मरण कर रहा था जो अच्छी कविता को बुरी अथवा बुरी को अच्छी कह बैठते हैं। रुचि की विलक्षणता ही पर मैंने यह श्लोक पढ़ दिया।

र०—तब तो उसके पढ़ने का प्रयोजन समझ में आ गया,—(कुछ सोच कर) बड़े गहरे अर्थ हैं!

सु०—अर्थ तो गहरे कुछ नहीं हैं; किसी ने दिल्लगी में कह डाला है। परंतु इस प्रसङ्ग में ये अर्थ सार्थक अवश्य हैं। कहिए आपने अर्थ की गहराई क्या समझी? क्या इसे भी आप सत्काव्य में गिनेंगे?

र०—सुनिये, प्रकृति तीन प्रकार की होती है—सत्वगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी। सात्विकी लोग तो अमृत देव-लोक के सिवा और कहीं बतलाते ही नहीं। जिसको अमृत की आकाङ्क्षा हो वह (उनके मत के अनुसार) पुण्यसञ्चय करके देव-लोक पधारे। रजोगुणी लोग समझते हैं कि ललाम-ललनाओं का अधररस ही अमृत है। और उनसे भी गये बीते तामसी लोगों की रीझ बूझ यह है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृत मछलियों के शोरबे में है जिसमें खूब लीमू निचोड़ा गया हो।

सु०—सम्यक्! मैं आप की बुद्धि की प्रशंसा करता हूं। आपने उत्तम टीका की। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि—

"स श्लोकः श्लोकतां याति विज्ञातरि निवेदिते"

र०—निस्सन्देह! और यदि आज्ञा हो तो मैं इस श्लोक के उत्तरार्द्ध का भी उदाहरण दे दूं।

सु०—अवश्य! रसिक न हों तो सुकवि का आदर ही कौन करे? उत्तरार्द्ध यों है—

"अविज्ञातरि विज्ञाते लकारस्तत्र लुप्यते" *

र०—उदाहरण लीजिये—

"तात जनक तनया यह सोई।
धनुष यज्ञ जेहि कारण होई॥"

"तात" का अर्थ न जानने के कारण एक अनाड़ी ने इस सुन्दर चौपाई का अर्थ इस तरह कर दिया—"जनक तात अर्थात् गर्म हैं और यह उनकी पुत्री भी वही, अर्थात् गर्म, है। इसीलिये धनुषयज्ञ होता है, जिससे उसके देह की व्यथा दूर हो जाय"। इस पर किसी ने कहा कि यह अर्थ ठीक नहीं। तब उसने प्रमाण दे दिया कि आरण्य काण्ड में सीता ने जब अग्नि में प्रवेश किया तब जली नहीं। क्योंकि वह स्वयं गर्म थीं। इसी लिये तो यह सब हो रहा है"!

सु०—वाह! क्या ऐसे भी रसिक दुनिया में होते हैं?

र०—अजी अभी दो ही महीने हुए, इस शहर में एक रामायणी आये थे। वे "परिकर बांधि उठे अकुलाई" का अर्थ करते थे, "रामचन्द्र दण्डें भरने लगे!"

सु०—(हँसकर) भला कैसे?

र०—परि=पड़कर; कर बाँध=हाथ ज़मीन पर जमा कर; उठे अकुलाई, अर्थात् डंडें भरने लगे। (हास्य)

सु०—वाहरे अर्थ!

र०—अजी मैंने तो सुना है कि किसी किसी मासिक पत्र में रामायण के अच्छे अर्थों के साथ इस प्रकार के कपोलकल्पित, अनर्गल अर्थ भी लिखे जाते हैं।

सु०—अच्छा रही! क्या इस तरह के अर्थों को सुन कर भी किसी को आनन्द आता होगा?

र०—क्यों नहीं? "मत्स्यखण्ड" से आप को घृणा है तो क्या सब संसार "वेजीटेरियन हो गया?

सु०—भाई, हम लोग तो कवि हैं। सीधे स्वभाव कविता लिखते हैं। रसिक लोग चाहे जिस दृष्टि से उसे देखें।

र०—मुझ पर छींटा न जमाइये! मैं कह चुका हूं कि तीन प्रकार के रसिक भी होते हैं।

सु०—तो उत्तम कविता कौन?

र०—जिसे उत्तम रसिक पसन्द करें।

सु०—मध्यम कविता?

र०—जिसे मध्यम रसिक पसन्द करें।

सु०—अधम कविता?

र०—जिसे अधम प्रकार के रसिक पसन्द करें।

सु०—वाह! खूब ही विवाद की जड़ काटी। परन्तु मैं छोड़ने का नहीं। कहिये कोई कविता भद्दी भी होती है।

र०—हो सकती है। जो लोग सहृदयता और कवित्व-परिज्ञान में कोरे हैं वे कविता को साफ सुथरी, चिकनी चुपड़ी, भद्दी खुरखुरी, नरम सख़्त जो चाहें कह सकते हैं; क्योंकि कवि-समय-सिद्ध, कविता के गुण-दोष-सूचक विशेषणों को वे जानते ही नहीं।

सु०—अच्छा उत्तम रसिक की सम्मति में उत्तम कविता की भाषा कौन सी होनी चाहिए।

---

* ज्ञाता के आगे पढ़े, सफल होत है श्लोक;
अज्ञ-अग्र "ला" लोप है, शेष रहत है शोक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र०—उड़िया, तैलङ्गी, गुजराती, मारवाड़ी, पैशाची, नैशाचरी, खड़ी, पड़ी, बैठी, कोई भी हो; परन्तु जो भाषा हो अपनी प्रथा के अनुसार स्वच्छ हो। शब्दों का सौन्दर्य्य जितना अधिक होगा उतनी ही कविता अधिक रोचक होगी। परंतु शब्द-सौन्दर्य्य के लिए अर्थ बिगड़ने न पावे।

सु०—छन्द कौन सा हो?

र०—कोई भी। परंतु जो हो उसका निर्वाह अच्छी तरह हो।

सु०—तुक हो कि न हो?

र०—हो, तो रोचकता के हेतु है। न हो, तो दोष नहीं। परंतु बहुत से छन्दों में तुक का न होना उचित नहीं है—जैसे दोहा, चौपाई, मनहरण इत्यादि। इन में कानों को तुक का अभ्यास हो रहा है। इसी तरह बहुत से छन्द ऐसे हैं जिन में तुक का न होना कानों को नहीं खटकता जैसे द्रुतविलम्बित, वसन्त-तिलक, शिखरिणी इत्यादि।

सु०—और विषय?

र०—आकाश, पाताल, जङ्गल, रेगिस्तान, पहाड़, समुद्र, दिन रात, जाड़ा गर्मी, लड़ाई, सन्धि, लड़का, बुड्ढा, वीर, कापुरुष, आस्तिक, नास्तिक, धूल, कांटा, कीर्ति, कलङ्क, राजा, प्रजा, फिरिस्ता, शैतान, ईमान्दार, बेईमान, सुकवि कुकवि, रसिक, अरसिक, कहां तक गिनावें। किसी को भी कविता द्वारा अमर कर डालिए। क्रोध, भय, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम, मोह, उत्कण्ठा, दैन्य, शान्ति, व्यग्रता, इत्यादि चाहे जिस मनोवेग और मानसिक वृत्ति का चित्र खींच डालिये।

सु०—परन्तु कोई कोई तो कहते हैं कि सामयिक विषयों पर ही लेखनी उठानी चाहिये—जैसे बाल-विवाह, विधवा-विवाह, ठहरौनी, वेश्यानृत्य, मद्यपान, एकता आदि।

र०—हां हां! अभी फ़ेहरिस्त ज़रा और लम्बी कीजिये। भङ्ग पीना, अदालत में रुपया बरबाद करना, जुवा खेलना, विदेशी वस्त्र पहिनना, हिन्दू मुसलमानों की फूट, सर्कारी सेना की संख्या, सिविल-सर्विस-परीक्षा का यहां न होना—

सु०—बस क्षमा कीजिये; मतलब पर आइये।

र०—मतलब यह है कि ऐसा कोई विषय नहीं जो काव्य का विषय न हो सके। वेदान्त ऐसा कठिन विषय भी समर्थ कवि के पाले पड़ कर रोचक होचुका है। श्रीशङ्कराचार्य्य का विवेक-चूड़ामणि इस बात का उदाहरण है। परन्तु, महाशय! काव्य और वस्तु है और "रिफ़ार्मरी" और वस्तु है। काव्य में सार वस्तु होती है रस वा आनन्द, जो अनेक विषयों के आधार से हो सकता है। "रिफ़ार्म" के विषय उस के लिये अपरित्याज्य नहीं हैं। मेघदूत में कौन से "रिफ़ार्म" के प्रकरण हैं। परन्तु उस की गणना श्रेष्ठ काव्यों में है। इतना मैं अवश्य कहूंगा कि यदि काव्य के गुणों के साथ साथ उस का विषय भी उपयोगी हो तो सोने में सुगन्ध हो।

सु०—आप के कथन का धन्यवाद।

र०—आप स्वयं सब जानते हैं। इस विषय की चर्चा आप को बहुत रुचती है। इससे फिर कभी यही बात चीत छिड़ेगी।

देवीप्रसाद।

पावस-पंचाशिका।

सृष्टि सर्व-संघात-रूप रचना शङ्कर की।
कौन थाह पावे असीम संसृति-सागर की॥
बहुविध जड़-चैतन्य-जन्य सब दृश्य खरे हैं।
विधिनिषेध-सूचक इन में उपदेश भरे हैं॥ १॥

स्वाभाविक-गुण-कर्म-शील सब जीव निहारे।
पर हमको सिखलाते हैं जड़-चेतन सारे॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका अनुसन्धान यथासंभव होता है।
अनुभवात्मक ज्ञान अन्यथा कब होता है ॥ २ ॥

इस प्रसंग में पक्षपात का गन्ध नहीं है।
इसका नर-भाषालिपि से संबन्ध नहीं है ॥
इस मत में मिथ्या-प्रमाद का लेश नहीं है।
समझो तो यह पौरुषेय उपदेश नहीं है ॥ ३ ॥

इस आगम के अङ्ग अखिल विद्या के घर हैं।
नाना अर्थ असंख्य शब्द अगणित अक्षर हैं ॥
जो इन सत्य सनातन मन्त्रों को पढ़ते हैं।
वे ज्ञानी गुरुजन गौरव-गिरि पर चढ़ते हैं ॥ ४ ॥

नरप्रणीत ग्रन्थों का ऐसा ठाठ न होगा।
इस निबन्धमाला का पूरा पाठ न होगा ॥
पाठक इस वैदिक विलास पर प्यार कीजिये।
पावस मिस चख इस रसका कुछ सार लीजिये ॥ ५ ॥

ऐसा कोई काम किसीने किया न होगा।
जिसका प्रभु ने नियम-निदर्शन दिया न होगा ॥
ब्रह्मशक्ति जो कुछ हम सब को सिखा रही है।
वर्षा उसकी विशद बानगी दिखा रही है ॥ ६ ॥

सूख सूख पानी ऊपर को उड़ जाता है।
सरदी के द्वारा पयोद-पदवी पाता है ॥
भानुताप से तप तप भूतल पर गिरता है।
बार बार इत उत यांहीं हिरता फिरता है ॥ ७ ॥

उमड़ घुमड़ जल के विकार बादल आते हैं।
मिलकर किरणों से बहुरंगी बन जाते हैं ॥
जान लिया जबलौं प्रकाश का संग न होगा।
तबलौं भौतिक वस्तु-वर्ग में रंग न होगा ॥ ८ ॥

दमक दमक दामिनि दुलहिन सी दुर जाती है।
गरजन घोर गगन-मण्डल में पुर जाती है ॥
चलते हैं तब जब घन घन से टकराता है।
पहले पड़े प्रकाश शब्द पीछे आता है ॥ ९ ॥

निरावरण रवि के सन्मुख झरने झड़ते हैं।
इन्द्र-धनुष किरणों से जलधर पर पड़ते हैं ॥
नीली पीली लाल धारियाँ दिखलाते हैं।
मिश्रित रंग बनाने की विधि सिखलाते हैं ॥ १० ॥

श्यामल धवल धराधर से धाराधर धाये।
प्रबल प्रभञ्जन के मारे झुक झुक झर लाये ॥
अलबेले जलके प्रवाह अवनी पर दीखे।
कुल्या-कूलों की रचना रचनी हम सीखे ॥ ११ ॥

जब छिछला वारिद चादर सा तन जाता है।
तब शशि के चहुँ ओर चक्र सा बन जाता है ॥
जिसने पहले चन्द्र-कुण्डली बूझी होगी।
वृत्त बनाने की विधि उसको सूझी होगी ॥ १२ ॥

झाबर, झील, तड़ाग, नदी, नद, सागर, सारे।
हिलमिल एकाकार भये पर हैं सब न्यारे ॥
जैसा इन में ओतप्रोत पावस का जल है।
तैसा ही व्यापक प्रपञ्च में ब्रह्म अचल है ॥ १३ ॥

देख नदी की बाढ़ वृष्टि ऊपर की जानी।
घन विलोक समझे अवश्य बरसेगा पानी ॥
अस्तोदय रवि का अचला की चाल बतावे।
तीन भाँति का यों अनुमान प्रमाण कहावे ॥ १४ ॥

जिस घर में घुस पड़ें उसे ऊजड़ करते हैं।
मनमाने अँधियारे में निधड़क चरते हैं ॥
चोर उलूकों में प्रसिद्ध साधर्म्य घना है।
ऐसी समता से उपमान प्रमाण बना है ॥ १५ ॥

उद्भिज्जों ने जीवनप्रद माना चौमासा।
केवल आक अचेत पड़े जल गया जवासा ॥
जाना जो प्रतिकूल पवन पानी पाते हैं।
सो सरोग रहते हैं अथवा मर जाते हैं ॥ १६ ॥

अँधियारी झुक रही झिली झींगुर झिंगारें।
तिलका तान उड़ाय रहे निशि अलि गुंजारें ॥
जो ये गाल फुलाय राग अविराम न गाते।
तो बरुआ स्वर साध साध मधुअर न बजाते ॥ १७ ॥

दिन में बिहरें साथ रात को संग बिसारें।
बार कुढ़ें चकई चकवे उसपार पुकारें ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनको इनके भाव रिझाते तरसाते हैं।
मिलने का सुख, दुख वियोग का दरसाते हैं ॥१८॥

श्यामा रजनी के रसिया चपला के चेरे।
चमकीले धड़ चमकाते डोलें बहुतेरे ॥
जो जुगनू तमके तन में चिनगी न लगाते।
तो हम अंधियारे घर में दीपक न जगाते ॥ १९ ॥

पिस्सू, मच्छर, डाँस, कूतरी, खटमल, काटें।
दिन में दबके रहें रुधिर रजनी भर चाटें ॥
बिन विवेक इस भाँति अविद्या की बनि आई।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अटके दुखदाई ॥२०॥

दीपक पै पड़ पड़ पतंग जड़ जल जाते हैं।
प्राणदान कर क्या सनेह का फल पाते हैं?
जान लिया जो प्रेम निर्दयी से करता है।
वह प्रिय के रूपानल में जल जल मरता है ॥ २१ ॥

अरुणोदय पर अरुण-शिखा उठ आँखें खोलें।
अब सब सोते जाग पड़ें इस कारण बोलें ॥
इनके अनुचर ब्रह्मकाल में नींद बिसारें।
स्वर उदात्त अनुदात्त स्वरित तीनों उच्चारें ॥ २२ ॥

दिन में विकसें जलज रात को सकुचाते हैं।
कुमुद खिलें निशि पाय दिवस में मुँद जाते हैं ॥
ये रवि शशि के भक्त यथाक्रम सकुचें फूलें।
हम सामयिक सुकर्मों को इस भाँति न भूलें ॥२३॥

भूखे प्यासे भेक प्राण रोके रहते थे।
बैठे विवरों में अचेत आतप सहते थे ॥
अब अगाध जल में समोद मङ्गल गाते हैं।
यों योगी जन बन तप का सुख फल पाते हैं ॥२४॥

बगले ध्यान लगाय मौन मुनि बन जाते हैं।
उचक अचानक मार मार मछली खाते हैं ॥
साधु वेषधारी असाधु ऐसे होते हैं।
पाखण्डी, खल और कहो कैसे होते हैं ?॥ २५ ॥

जोंक और पनियां पन्नग लहराते डोलें।
वायस मेंड़क अपनी चाल दिखाते डोलें ॥
मन्द मन्द गति पारावत हंसों की जानी।
तब तो नाड़ी वात पित्त कफ की पहचानी ॥ २६॥

दलदल में मुख अन्ध गिड़ाये गाढ़ रहे हैं।
कीचड़ खाते जाते हैं मल काढ़ रहे हैं।
भिन्न जलौका से अपना गुण जता रहे हैं।
कविराजों को बस्ती की विधि बता रहे हैं ॥२७॥

जल-कुक्कुर, कारण्ड करें जल-केलि न हारें।
पनडुब्बी डूबें उछलें फिर डुबकी मारें ॥
जो हम इनके कामों का अभ्यास न करते।
तो पानी में कूद कूद कर कभी न तरते ॥ २८ ॥

वीरबहूटी का सुरंग मेरे मन भाया।
समझा था भ्रम से प्रवाल का दाना पाया ॥
इसका कुनबा रेंग रहा सारे जंगल में।
क्या इसका ही रंग ढंग हाला मख़मल में ?॥ २९ ॥

गिज गिजाय कर गति गिजाइयों की बढ़ती है।
एक दूसरी को वाहन बनाय चढ़ती है ॥
जब इनका चालक चढ़ैत दल दीखा होगा।
तब सब ने चढ़ना तुरङ्ग पर सीखा होगा ॥ ३० ॥

भाँति भाँति के रूप रंग धारण करती हैं।
तितली तन परिवर्त्तन किस कारण करती हैं?
हेतु यही है जो इनका अनुकरण न करते।
तो नट नाटक में मनमाने वेष न धरते ॥ ३१ ॥

तार लगा कर ताने बाने से लग पड़ना।
जाल फन्द में फाँस फाँस आखेट पकड़ना ॥
लूता* ने चोखे ओखे कौतुक दिखलाये।
कत्ती, कोरी, चिड़ीमार, मछुवे सिखलाये ॥ ३२ ॥

पहले से पूरा प्रबन्ध सब कर लेते हैं।
भोजन की सामग्री बिल में भर लेते हैं ॥
चौमासे भर चींटे उस धन को खाते हैं।
लाभ अन्न-सञ्चय का हमको समझाते हैं ॥ ३३ ॥

सारस जंगल में समोद मंगल करते हैं।
अन्य विहंगों के अनेक जोड़े चरते हैं ॥

* लूता = मकड़ी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्याहार विहार त्याग सुख से रहते हैं।
धर्म गृहस्थों के इनके गुणगण कहते हैं ॥ ३४ ॥

घेर मोरनी मोरों को झामर भरती हैं।
पीपी पति-दृग-नीर गर्भ धारण करती हैं ॥
जो न दिखाते नाच-रास-रस चख चख केकी।
तो न नाचते भाँड़, वेश्या-जन अविवेकी ॥ ३५ ॥

कौओं से अपने बच्चों को पलवाती हैं।
पेड़ पेड़ पर मोदमढ़ी मंगल गाती हैं ॥
कोयल को करतूत चतुर अबला गहती हैं।
सौंप धाय को बाल बनी युवती रहती हैं ॥ ३६ ॥

स्वाति-बूँद की चाह तृषातुर चातक डोले।
पिऊँ पिऊँ बोले पर जल में चोंच न खोले ॥
अविचल-व्रत-धारी हठ पूरी कर लेते हैं।
हम सब को प्रणपालन की शिक्षा देते हैं ॥ ३७ ॥

जिसके भीतर धूप न जाय न शीत सतावे।
मेह मूसलाधार पड़े पर बूँदन आवे ॥
ऐसे घर में निधड़क रहें बया के जाये।
हमने इनका काम देख तृणमण्डप छाये ॥ ३८ ॥

मौन अधोमुख भोग रहे शाखामृग सारे।
बैठे लंबी पूँछ निचोड़ें मोर बिचारे ॥
जाना, जो प्राणी घर नहीं बनाते होंगे।
वे सब इनकी भाँति सदा दुख पाते होंगे ॥ ३९ ॥

वे स्वामी के श्वान परस्पर में लड़ते हैं।
छप्पर-छाया देख वहीं जाकर अड़ते हैं ॥
जो आवारा लोग श्वान-सम फिरते रहते।
वे भी इसी प्रकार आपदायें बहु सहते ॥ ४० ॥

घुर घुर करते बड़े बड़े शूकर आते हैं।
खोद खोद भूतल मोथा की जड़ खाते हैं ॥
जो इन के झुंडों के तुण्ड न भुंड उड़ाते।
तो हम हलधारी खेतों को जोत न पाते ॥ ४१ ॥

मोरों को वन उपवन ऊसर बाँट दिये हैं।
उपजाऊ सब खेत हमारे छाँट दिये हैं ॥
ठीक ठीक जगदीश देव ने न्याय किया है।
खेती करने का उत्तम उपदेश दिया है ॥ ४२ ॥

हार हार, वन वन, हरियाली की छवि छाई।
वसुधा ने भरपूर सस्य की सम्पति पाई ॥
जान लिया उद्यम उदार की जड़ खेती है।
एक बीज के पूत सैकड़ों कर देती है ॥ ४३ ॥

गुल्म, लता, तरुपुञ्ज, पसारें छदन छबीले।
पल्लव झूलें फूल फली फल धार फबीले ॥
जो हमको करतार न ऐसे दृश्य दिखाता।
पुष्पवाटिका विशद बनाना कौन सिखाता? ॥ ४४ ॥

उपजे क्षिति पर क्षत्रधार क्षत्रक छवि छाये।
इन्द्रफलक पद पाय कुकुरमुत्ता कहलाये ॥
जो इन के आकार गुणीजन देख न पाते।
तो सुन्दर छतरी छाते किस भाँति बनाते? ॥ ४५ ॥

मूल, दण्ड, दल, फूल, फली, फल, गोंद, गिरी, रस।
बीज, सुरंग, सुवास, तेल, तृण, तूल, काठ, कस ॥
दान करें सर्वस्व गुल्म, लतिका, द्रुम, निशि दिन।
हमको कौन बनाता पर उपकारी इन बिन? ॥ ४६ ॥

फूल गये अब काँस अन्त पावस का आया।
मेघों ने यश पाय कूच का शंख बजाया ॥
स्वेत-केशधारी नर योंहीं मर जाते हैं।
बिरले बादल को सी करनी कर जाते हैं ॥ ४७ ॥

जिनकी ध्वनि अथवा बोली हम सुन पाते हैं।
वे निर्जीव सजीव सकल समझे जाते हैं ॥
जो स्वाभाविक शब्द अर्थ अपने न बताते।
तो मुनि-कल्पित वर्णमयी भाषा न बनाते ॥ ४८ ॥

हम लोगों ने अब तक जो कुछ जान लिया है।
क्या विद्या का अन्त इसी को मान लिया है ॥
नहीं नहीं ज्यों ज्यों विचार की उन्नति होगी।
त्यों त्यों अगणित आविष्कार करेंगे योगी ॥ ४९ ॥

ब्रह्मज्ञान की कौन इतिश्री कर सकता है।
क्या गागर में सागर कोई भर सकता है?
जो सत्कवि समझे होंगे उस परमपिता को।
वे बड़भागी आदर देंगे इस कविता को ॥ ५० ॥

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परीक्षा।

जोज़ेफ़ विलमट। दूसरा भाग। अनुवादक, बाबू यशोदानन्दन अखौरी और चतुर्भुज औदीच्य। मूल्य आठ आने। हिन्दी ट्रैन्सलेटिंग् कम्पनी बड़ा बाज़ार कलकत्ता से प्राप्य। इसके पहले भाग की समालोचना सरस्वती में छप चुकी है। जो गुण पहले भाग में बतलाये गये हैं वेही इसमें भी हैं। अनुवाद अच्छा और कहानी मनोमोहक है। ज़रूर पढ़ना चाहिए।

⁂

विचित्र-उपन्यास। बाबू चन्द्रसेन जैनी, इटावा, ने इसे लिखा है। २७ पृष्ठ की छोटीसी पुस्तक है। मूल्य १ आना। इसमें बुढापे के विवाह का वर्णन करते हुए उसके दुष्परिणाम दिखलाये गये हैं। पुस्तक के आगे पीछे जो आक्षेप योग्य दवाइयों के विज्ञापन छपे हैं वे न छपते तो अच्छा था।

⁂

प्रबन्ध-पुष्पाञ्जलि। पं० चिरंजीलाल हेड मास्टर, तहसीली स्कूल, अलीगढ़, कृत। मूल्य ५ आने। इसमें भिन्न भिन्न विषयों पर पत्र हैं। विषय बहुत अच्छे चुने गये हैं। उनसे अनेक प्रकार की शिक्षा मिलती है। पत्रों में जो संस्कृत के श्लोक यत्र तत्र उद्धृत किये गये हैं उनमें कहीं कहीं अशुद्धियां रह गई हैं।

⁂

राज-शिक्षा। प्रथम भाग। पुस्तक-कर्ता पं० व्रजवल्लभ मिश्र, डाकख़ाना सासनी, ज़िला अलीगढ़ से प्राप्य। ख़ूब चिकने और मोटे काग़ज़ पर बड़े टाइप में छपी है। मंझोले साँचे के १३६ पृष्ठ हैं। पुस्तक का विषय हिन्दी में बिलकुल ही नया है। देशी रियासतों के जानने लायक़ इसमें अनेक बातें हैं। राज्य के सिद्धान्त, पुलिस और सेना, न्याय और न्यायालय, सेवा और वेतन, बृटिश-गवर्नमेंट से सम्बन्ध आदि विषय राजाओं के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। इस पुस्तक की समाप्ति एक अध्याय के बीच में कर दी गई है। अध्याय ख़तम होने पर की जाती तो अच्छा होता।

⁂

हीरार मूल्य। श्री नगेन्द्रनाथ-गुप्त प्रणीत बँगला पुस्तक का देवनागरी-संस्करण। इसकी भाषा बँगला ही रक्खी गई है। सिर्फ़ अक्षर देवनागरी कर दिये गये हैं। यह आयोजन एक लिपि-विस्तार के लिए अच्छा है। कहानी मनोरञ्जक अतएव पढ़ने लायक़ है। मूल्य ३ आने। हिन्दी ट्रैन्सलेटिंग् कम्पनी, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता ने इसे प्रकाशित किया है। वही इसे बेचती भी है। नपोलियन की जीवनी भी यही कम्पनी बेचती है।

⁂

नमक सुलेमानी। एक शीशी का दाम १ रुपया। बाबू पञ्चमसिंह वर्म्मा जमोर, गया से प्राप्य। यह "तन्दुरुस्ती का बीमा है। हैज़ा, बदहज़मी, अतीसार, संग्रहणी, कब्ज़, बवासीर, गठिया आदि रोगों का नाशक है"। इसके साथ आये हुए व्यवस्थापत्र में और भी कितने ही गुण इसके लिखे हुए हैं।

⁂

रामगीत पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पण्डित बैजनाथ-कृत। रणवीर-प्रकाश प्रेस, जम्बू, में मुद्रित। मूल गीत संस्कृत में हैं; उनकी व्याख्या काश्मीरी भाषा में। छापा लेथो का है। संस्कृत-गीत छपने में कहीं कहीं गड़बड़ हो गया है। पं० रामशरण रीडर दफ़्तर, क़िलाजात, इसे धर्म्मार्थ बांटते हैं।

⁂

रघुनाथ-ताण्डव। संस्कृत में है। कुल १२ श्लोक हैं। कृष्णचन्द्राष्टक भी इसके साथ है। यह पूर्वोक्त पण्डित बैजनाथ जी की रचना है। छापा लेथो।

⁂

वृद्ध-विवाह-नाटक। बाबू भगवतीप्रसाद दारूका-कृत। दाम आठ आने। पुस्तक-कर्ता, या पण्डित शिवदत्त शर्म्मा, १२ मल्लिक स्ट्रीट, कलकत्ता को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने से प्राप्य। भाषा मारवाड़ी है। विषय नाम ही से प्रकट है। मारवाड़ियों में वृद्ध-विवाह की कुरीति का कुफल इसमें अच्छी तरह दिखलाया गया है। इस की कथा नाटक के रूप में है और इस तरह लिखी गई है कि नाटक आसानी से खेला जा सकता है। मारवाड़ियों को इससे शिक्षा लेनी चाहिए। छपाई अच्छी है। काग़ज़ भी अच्छा है। आरम्भ में बाबू भगवतीप्रसाद का एक बहुत बढ़िया चित्र है।

❋

द्यूत-रहस्य। मूल्य दो आने। यंग मेन्स एशोसियेशन, अल्मोड़ा, ने इसे प्रकाशित किया है। बहुत पुराने ज़माने से लेकर द्यूत का इस में संक्षिप्त इतिहास है। जुवा खेलने के दोष इसमें बहुत अच्छी तरह दिखलाये गये हैं। पुस्तक पढ़ने लायक़ है।

❋

शिक्षा-विधि। पं० रामचन्द्र आनन्दराव देशपांडे, हेडमास्टर, नार्मल स्कूल, रामपुर कृत। मूल्य ६ आने। यह पुस्तक हिन्दी की प्राइमरी-पाठशालाओं के लिए बनाई गई है, जिनके लिये यह बहुत ही उपयोगी है। शिक्षा के विषय इसमें बड़ी योग्यता से समझाये गये हैं। इसमें महाजनी हिसाब किताब (बहीखाते) की जो बातें हैं वे बड़े काम की हैं। देहाती मदरसों के विद्यार्थियों को इन बातों का जानना बहुत ही ज़रूरी है। यह पुस्तक इन प्रान्तों के मदरसों के लिए भी लाभदायक है। भाषा इसकी प्रायः सब के समझने लायक़ है; पर यदि कुछ और सरल होती तो सोने में सुगन्ध हो जाती।

❋

अग्रवाल। यह मासिक पुस्तक है। मार्च १९०६ से अजमेर से निकलने लगी है। सम्पादक हैं बाबू गङ्गाराम, बी० ए०, एल० एल० बी० और बाबू रामचन्द्र कन्दोई। इस १६ पृष्ठ की पुस्तक का वार्षिक मूल्य १।) है। पुस्तक कैसी होगी? यह पहला अङ्क देखकर नहीं कहा जा सकता। पर सम्पादक विद्वान् हैं; इससे आशा है इसमें अच्छे अच्छे लेख छपेंगे।

❋

पञ्चाङ्ग। कलकत्ते के डाक्टर वर्म्मन हर साल नया पञ्चाङ्ग निकालते हैं और मुफ़्त बाँटते हैं। उस में उनकी दवाइयों के विज्ञापन भी रहते हैं। उनका नये साल का पञ्चाङ्ग जो निकला है देखने में बहुत ही नेत्ररञ्जक है। उसमें दश महाविद्याओं के हाफ़टोन चित्र दिये हैं। संस्कृत में प्रत्येक महाविद्या का ध्यान भी है। चित्र अच्छे हैं। पञ्चाङ्ग-विषयक सब साधारण बातें भी हैं। पञ्चाङ्ग का आकार भी अच्छा है और छपाई तथा काग़ज़ भी।

मनोरञ्जक श्लोक।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥

अपमान होने पर भी स्वस्थ रहने वाले—कुछ प्रतीकार न करने वाले—मनुष्य से, वह धूल भी अच्छी है जो पैर से आहत होने पर उड़ कर (पैर रखने वाले के) माथे पर चढ़ जाती है—उसकी सूरत बिगाड़ देती है।

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते?

सूर्य्य का पाद-स्पर्श (किरण-स्पर्श) होने से जब महा जड़ सूर्य्यकान्त मणि भी जल उठता है तब भला तेजस्वी पुरुष पर-कृत अपमान को कैसे सहन कर सकता है?

गिरिधर शर्म्मा।

☞ इस संख्या में अन्यत्र आरमी प्रेस, कानपुर, का एक विज्ञापन प्रकाशित हुआ है, उसे कृपापूर्वक पढ़िए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"विषस्य विषमौषधम्"

"विष की दवा विष"—यह एक अपूर्व पुस्तक का दूसरा नाम है। असल नाम फिर बताया जायगा। हज़ार हज़ार हिन्दी पढ़ने वाले इस पर पहले ही से लट्टू हैं। विश्वास कीजिए, आज तक ऐसी पुस्तक हिन्दी में नहीं निकली। इस में हैं अद्भुत आलोचनायें, अद्भुत कवितायें, अद्भुत पंच; इत्यादि। इसकी कई हज़ार कापियां छाप कर कौड़ी मोल दे डाली जांयगी। पुस्तक दो ढाई सौ पृष्ठ की होगी; पर बिकेगी कुछ ही आने में। तिस पर भी "सरस्वती" के जो ग्राहक फ़ौरन पुस्तक मंगावेंगे उन से सिर्फ़ आधे तिहाई दाम, अर्थात् कोई पांच ही छः आने, लिये जांयगे। पुस्तक तैयार होने में देर नहीं। जल्दी कीजिए।

मैनेजर, आरमी प्रेस,

कानपुर।

स्वामी विवेकानन्द के गुरु परमहंस रामकृष्ण जी की परम मंगलकारिणी उक्तियों का संग्रह दृष्टान्त समुच्चय नाम की पुस्तक

आप अवश्य मंगवाकर पढ़िये।

मूल्य तीन आना, डाक महसूल ⅁॥

पता—इण्डियन प्रेस, प्रयाग।

राजभक्ति पोस्टकार्ड।

सचित्र।

बहुत बढ़िया।

प्रिन्स आफ़ वेल्स ... ... ।।।=) सैकड़ा

प्रिन्सेस आफ़ वेल्स... ... ।।।=) "

डाक महसूल अलग।

इण्डियन प्रेस प्रयाग से मँगवा लीजिए।

ऐसे अच्छे कार्ड आपको बाज़ार में नहीं मिलेंगे।

अलबेला रागिया।

इस उपन्यास को मंगा कर पढ़िये हंसते २ लोट जाइयेगा इसमें प्रचलित कुचालों का नमूना भरा है। दाम सिर्फ़ ।=) डां० म० ⁀)

दीनानाथ ।=), हम्माम का मुर्दा ।=), क़िले की रानी ।।।), अनूठी बेगम =), राजकुमार =), बीर जयमल ॥) इत्यादि और २ उपन्यास भी मिल सक्ते हैं।

पता—गोपाललाल खत्री, लाल बाग़, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती।

भाग ७] आक्टोबर, १९०६ [संख्या १०

विविध विषय।

सम्पादक ऐडवोकेट, सम्पादक श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार, पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए०, पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए०, और पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री जी ने गत मास में सरस्वती की आलोचना करके उसका उत्साह बढ़ाया। इसलिए सरस्वती इन सब सज्जनों की बहुत कृतज्ञ है। इस अनुग्रह के लिए अनेक धन्यवाद।

* * *

रुपया पैसा गिनने और उनकी गड्डियां बनाने में बहुत समय लगता है। मेहनत भी बहुत पड़ती है। टकसालों, ख़ज़ानों और बैंकों में इस काम के लिए बहुत आदमी दरकार होते हैं। पर अब, कुछ दिनों में, शायद कलों से ही यह काम निकल जायगा। अमेरिका के न्यूयार्क नगर में विंकिल साहब एक यंजिनियर हैं। आपने एक ऐसी कल बनाई है जो रुपये, पैसे, अठन्नी, दुअन्नी, आदि सब तरह के सिक्के बिना प्रयास गिन देती है और उनकी गड्डी बना कर, उस पर काग़ज़ लपेट कर, और दोनों किनारों पर निकले हुए काग़ज़ को सफ़ाई के साथ काट कर एक बाक्स में फेंक देती है। जो आदमी उसे चलाता है वह सिक्कों को परखता भी जाता है और कोई ३०० सिक्के एक मिनट में परख लेता है। होशियार से होशियार आदमी सिक्कों को परख कर उनकी एक ही छोटी सी गड्डी एक मिनट में बना सकता है। इसमें गिनना भी शामिल है। पर यह कल एक मिनट में कोई १२ गड्डियां बना देती है और कभी भूल नहीं होती। इतने में सब सिक्के गिन भी जाते हैं और परख भी जाते हैं। ४ से लेकर ७ इंच तक की लम्बी गड्डियां इसमें बनती हैं। छोटे, बड़े सब तरह के सिक्कों की यह गड्डियां बनाती है। इसकी बनी गड्डी इतनी मज़बूत होती है कि बिना सारी गड्डी को तोड़े कोई उसमें से एक भी सिक्का नहीं निकाल सकता।

* * *

☞ सरस्वती के अन्त में, पीले रंग के पृष्ठ पर, जो "निवेदन" छपा है कृपाकर उसे अवश्य पढ़िए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी देशों में कभी कभी देखा गया है कि जो लोग मुर्दा समझे गये थे वे कफ़न-बाक्स के भीतर रखने पर ज़िन्दा पाये गये हैं। इस देश में भी कभी कभी—पर बहुत कम—चिता पर रखने के बाद मृतकों में जीवित होने के लक्षण मिले हैं। इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि नहीं मालूम कितने आदमी आज तक सजीव ही गाड़ या फूंक दिये गये हों। इस जीव-नाश को बचाने के लिए विलायत की एक स्त्री ने एक यंत्र बनाया है। वह कफ़न-बाक्स के ऊपर लगा दिया जाता है और क़बर में बाक्स के गाड़ दिये जाने पर उसका सिरा ऊपर निकला रहता है। यदि मृतक में सजीवता के चिन्ह होते हैं और वह हिलता डुलता या श्वास लेता है तो यन्त्र के ऊपरी हिस्से में जो झंडी सी रहती है उससे इशारे होने लगते हैं और क़बर खोद कर वह आदमी फिर निकाल लिया जाता है। इस यंत्र से क़बर के भीतर हवा भी जाया करती है, पर क़बर के भीतर की बुरी हवा ऊपर नहीं आने पाती।

***

इँगलैंड के वर्त्तमान हाउस आफ़ कामन्स (पारलियामेंट) में कुछ सभासद मज़दूरों की तरफ़ से हैं। इनमें से प्रायः सभी मज़दूरी की हालत से इस रुतबे को पहुँचे हैं। इनसे पूछा गया कि कौन सी पुस्तकों ने तुम्हें इस दरजे को पहुँचाने में विशेष मदद दी? तो मालूम हुआ कि पिल्ग्रिम्स प्राग्रेस (Pilgrims Progress) राबिन्सन क्रूसो (Robinson Crusoe) और बर्न्स, शेक्सपियर और स्काट की किताबों से इन लोगों ने सब से अधिक फ़ायदा उठाया। उससे कम डिकिन्स के उपन्यासों से। और सब से कम हेनरी जार्ज की पुस्तकों से।

***

बोरों के साथ दक्षिणी आफरीक़ा में जो युद्ध हुआ था, लोग उसके बहुत ख़िलाफ़ थे। प्रायः सारे योरप की राय थी कि अंगरेज़ों ने बोरों से लड़ाई ठानने में उचित नहीं किया। सब कहीं अंगरेज़ों की सख़्ती की शिकायतें होती थीं। अतएव अंगरेज़ों के पक्षपाती बन कर सर आर्थर डॉयल को बोर-युद्ध का इतिहास लिखने की इच्छा हुई। इस काम के लिए मांगने पर उन्हें मतलब भर के लिए चन्दा मिल गया। इतिहास समाप्त होने पर उसकी तीन लाख कापियां छपीं और बात की बात में सब ग्रेट-ब्रिटन ही में बिक गईं! तब इस इतिहास के अनुवाद होने लगे और शीघ्र ही फ़्रेंच, जर्मन, डच और नार्वे की भाषाओं में अनुवाद होकर बिके। अमेरिका और कनाड़ा में भी इसकी आवृत्तियां निकलीं और खूब बिकीं। बोर लोग हालैंड वालों के भाई-बन्द हैं; इस लिए डच भाषा का अनुवाद प्रकाशित करने में कुछ कठिनता हुई। अन्त में उसकी पांच हज़ार कापियां छपीं तो इँगलैंड ही में, पर बेची हालैंड में गईं। सब मिला कर इस इतिहास की, थोड़े ही समय में, ४,४०,००० कापियां छप कर बिक गईं। उनकी बिक्री से जो आमदनी हुई वह दुनियां भर की दान-पात्र सभा-सोसाइटियों को ख़ैरात कर दी गई। क्या हिन्दी के लिए भी कभी ऐसा दिन आवेगा?

***

हिन्दी की दशा ऐसी नहीं कि बिना और भाषाओं की मदद के उसके पत्र और पत्रिकाओं का काम चल सके। परन्तु और भाषाओं के लेखों का शाब्दिक अनुवाद छाप देना और लेखक का नाम न देना बहुत अनुचित है। उसका आशय लेकर अपने शब्दों में अदा कर देना या उसके कुछ अंश का भाव ले लेना और बात है। परन्तु गुजराती और मराठी के समाचारपत्र, सरस्वती के लेखों में कभी कभी कुछ अत्यल्प सा फेर फार करके उन्हें छाप देते हैं, पर सरस्वती का नाम नहीं देते। पूछने पर कहते हैं कि वह लेख हमारे किसी संवाद-दाता ने भेजा था, सम्पादक का न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। उर्दू के एक आध अख़बार और रिसाले का ज़िक्र सरस्वती में हम कर चुके हैं। इनमें से "अछूते" और "टटके" लेख प्रकाशित करते करते एक तो ज़िन्दा से मुर्दा हो गये। परन्तु कुछ रिसाले ऐसे भी हैं जो औरों की चीज़ अपनी बना लेना और फिर उन्हीं को गालियां देना अच्छा नहीं समझते। अभी उस दिन सरस्वती के "उर्दू और आज़ाद" लेख को प्रकाशित करने में जालन्धर के प्रसिद्ध रिसाले "आर्य-मुसाफ़िर" ने सरस्वती का विस्मरण नहीं होने दिया। यह तो और भाषाओं की बात हुई। हिन्दी की दुनिया सब से न्यारी है। उसकी विचित्र लीला है। कोई अपने विद्यालय की पाठ्य पुस्तकों में सरस्वती की कविता नक़ल किये लेता है; कोई अपनी मासिक पुस्तक में सरस्वती के लेख और नोट छापे लेता है। और जो इनसे पत्र द्वारा कुछ प्रार्थना करो तो या तो उत्तर ही नहीं देते या जो देते हैं तो बे-सिर-पैर का। जुलाई १९०६ की सरस्वती में प्राचीन भारत के विश्वविद्यालयों पर एक लेख निकला। उसके उस अंश को जिसमें विद्यालयों का वर्णन था हिन्दी के एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र ने सरस्वती ही के शब्दों में नक़ल कर लिया। हां, अपनी तरफ़ से एक छोटी सी भूमिका ज़रूर लगा दी। पत्र भेजा, तो चुप। इसी पत्र ने दो एक दफ़ा सरस्वती को लंबे लंबे उपदेश दिये हैं। उलटी सीधी सुनाने से भी आप बाज़ नहीं आये। अस्तु—

"परहितनिरतानामादरो न स्वकार्य्ये"।

* * *

आर्य्यसमाज, मथुरा, के मंत्री श्रीयुक्त बी० एन० शर्म्मा जी लिखते हैं—"सन् १८८७ या ८८ में इटावा के मैजिस्ट्रेट जंगल में शिकार खेलने गये। वहां एक लड़का, उनको देख और कोलाहल सुन कर, एक भेड़िये को मांद में चला गया। उस लड़के को देखने का साहब कलक्टर को बड़ा कुतूहल हुआ। मांद खोदी गई। तब एक लड़का निकला। उसे साहब कलक्टर अपने साथ ले गये। और बरेली के आर्य्य-समाज-अनाथालय को भेजा। मैंने भी उसे वहीं देखा और कई वर्ष तक देखता रहा।

सूरत—उसकी भयावनी थी। कूबड़ निकला हुआ था। आंखें भीतर घुसी हुईं पर बड़ी चमकदार थीं। पहले प्रायः साल भर तक वह हाथ-पैरों के सहारे चलता रहा। फिर पैरों से चलने लगा।

स्वभाव—उसका बड़ा क्रूर था। आदमी को देख कर भागता था। अकेला बैठना उसे भला लगता था। जब उसको बाहर ले जाते थे तब मांस की दूकान पर वह झपटता था। मांस उसे प्रिय था। उसे कच्चा ही मुँह में देने का वह उद्योग करता था। लड़कों पर भी वह झपट पड़ता था; इस कारण उस पर पूरी निगाह रक्खी जाती थी। पहले तो जो लोग उसे देखने जाते थे उन्हें देख कर वह भाग जाता था। पैसा रुपया हाथ पर देने से फेंक देता था। फिर धीरे धीरे पैसा लेने लगा। जलेबी वग़ैरह खाना प्रथम उसे बुरा लगता था। वह रोटी दाल का खाना अच्छी तरह न जानता था। कुछ दिनों बाद रोटी खाना सीख गया। बोल उसका साफ़ न था। हूं हूं गों गों कर वह बोलता था। भेड़ बकरी देख कर बड़ा ख़ुश होता था। बरन उनकी ओर दौड़ पड़ता था और उसके मुँह पर ख़ुशी ज़ाहिर होने लगती थी। कपड़े पहनने की उसे आदत न थी। नंगा रहना उसे पसन्द था। धोती उसे जबरन पहनाई जाती थी। उसे खोल डालने की वह कोशिश करता था। बहुत से लड़कों में रहना उसे बुरा लगता था। इस कारण वह एक कोने में जा बैठता था। ४, ५ वर्ष में उसकी आदत बहुत कुछ बदल गई थी। मैंने उसे कोई ५, ६ वर्ष देखा। बाग़ में जब सब लड़कों के साथ उसके मैनेजर घुमाने ले जाते तब वह घने पेड़ों में चुपके बैठ जाता था। वह अपनी हँसी को आँखों से प्रकट करता था। दाल भात से उसे अरुचि थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार मैंने उसे एक पैसा दिया। पहले उसने उसे उलट पुलट कर कुछ ग़ौर से देखा। फिर फेंक दिया। जब वह अनाथालय में लाया गया था तब उसकी उम्र क़रीब ८, ९ वर्ष की होगी। अब मैंने सुना है कि वह मर गया। उसे देखने को लोग दूर दूर से आते थे।

धीरे धीरे उसकी चाल और खान-पान में तो भेद पड़ गया, पर उसकी बोली कभी साफ़ नहीं हुई। उसकी बात एक प्रकार का इशारा था। उसे उसके रक्षक ही समझ सकते थे। लाठी, छड़ा या थप्पड़ मारना वह नहीं जानता था। या तो वह दाँतों के ज़रिये या हाथ के पंजों से आक्रमण करता था। कपड़े हाथों से फाड़ कर टूक टूक कर देता था। अन्त तक वह मनुष्यों की तरह बोल न सका। मेला तमाशा या मनुष्यों की भीड़ देख कर वह भागता और डर से काँपने लगता था। पहली बार जब मैं उसे देखने गया उस समय वह दो चार लड़कों में बैठा था। पर मुझे देखते ही कमरे में भागा और एक कोने में छिप रहा। अपना मुँह नीचा कर के उसने कोने में भिड़ा लिया। गोया वह अपने को भेड़िया ही समझता था। जहां तक मुझे ज्ञान है उसका कोई फ़ोटू नहीं लिया गया।"

* * *

उत्तरी ध्रुव की सैर करने की इच्छा रखनेवाले वेलम्यन साहब १५ जून १९०६ को पेरिस से नार्वे के लिए रवाना हो गये। नार्वे के ट्रामसू नगर से आप १२०० मील की यात्रा ध्रुवप्रदेश में करने का विचार रखते हैं। आप जिस ग़ुब्बारे की सहायता से आकाशमार्ग से यात्रा करेंगे वह बहुत बड़ा है। ऐसा ग़ुब्बारा आज तक और नहीं बना था। इस ग़ुब्बारे का योग एक पवन-नौका के साथ किया गया है। ये दोनों मिल कर आकाश में उड़ेंगे। ट्रामसू नगर से आप १ अगस्त के लग भग प्रस्थान करने वाले थे। आप के साथ एक आध विज्ञानी और कारीगर भी रहेंगे। अमेरिका के संयुक्त राज्य की तरफ़ से एक अफ़सर भी रहेगा। यदि आप की पवन-नौका और ग़ुब्बारा बीच में कहीं बिगड़ जायँगे तो बर्फ़ पर चलने वाली जिस पैर-गाड़ी का उल्लेख गत संख्या में किया गया है उसी पर सवार होकर आप लौट आवेंगे। यह नोट लिख चुकने पर सुना कि वेलम्यन साहब किसी कारण से थोड़ी दूर जाकर बीच ही से लौट आये।

* * *

सरस्वती की आठवीं संख्या में महाराज रीवाँ का जीवन-चरित प्रकाशित हुआ है। उसमें निम्न लिखित अशुद्धियां हो गई हैं। आशा है कि पाठक उन्हें सुधार लेंगे।

(१) पृष्ठ २९४; कालम २, पंक्ति २२—श्रावण कृष्ण तृतीया के स्थान में श्रावण शुक्ल तृतीया चाहिए।

(२) पंक्ति ३१ से पारा के अंत तक—कृपालपुर के सब सरदार श्रीमान् के साथ प्रायः रहा करते थे, किन्तु अधिकारी शरीर-रक्षक केवल कर्नल लाल कल्यानसिंह ही थे। लाल अर्जुनसिंह जी महाराज-कुमार के शरीर-रक्षक नियत नहीं किये गये।

(३) पृष्ठ २९५, कालम १, पंक्ति २५-२६—राय साहब पंडित पूर्णमलजी चतुर्वेदी एम० ए० नहीं थे।

(४) पंक्ति ३५, फ़ारसी श्रीमान् को नहीं पढ़ाई गई।

(५) पृष्ठ २९६, कालम २, पंक्ति ४—उसी दर्बार में नियत नहीं किया किन्तु उसके पीछे।

(६) राव बहादुर लाल जनार्दनसिंह को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नहीं, किन्तु स्टेट अथवा प्रधान सेक्रेटरी बनाया।

(७) पृष्ठ २९८, कालम २, पंक्ति १२-१३—इनकी सहसा मृत्यु से राज्य-प्रबन्ध...यह वाक्य केवल मानसूचक है।

(८) पृष्ठ २९९, कालम २, पंक्ति १—सम्पादक, सरस्वती के नोट का उत्तर यह है कि राजा महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजों को कितने ही उचित कारणों से दो विवाह विवश होकर करने पड़ते हैं। ऐसा सुना जाता है कि हमारे श्रीमान् ने अपना पिछला विवाह पहले ही से प्रणबद्ध होने के कारण किया है। दो विवाह-सम्बन्धी कारणों को वही लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं जिनको ऐसी रियासतों की बातों का अनुभव है जो राजा महाराजों के नाबालिग़ होने के कारण गवर्नमेंट की निगरानी में रहती हैं। ये आठों संशोधन बाबू जीतनसिंह जी ने भेजे हैं।

* *
*

बम्बई के प्रसिद्ध सेठ प्रेमचन्द रायचन्द का गत ३१ अगस्ट को परलोकवास हो गया। शिक्षित भारतवासियों में शायद ही कोई ऐसा हो जो आपको न जानता हो। आप जैन-धर्म्मावलम्बी थे। १८३१ ईसवी में आपका जन्म सूरत में हुआ था। मरने के समय आपकी उम्र ७६ वर्ष की थी। साधारण शिक्षा प्राप्त करके कोई १६ वर्ष की उम्र में आपने बंबई में "शेयर" और सट्टे का काम शुरू किया और बहुत धन कमाया। बीच में एक बार आपका काम बिगड़ भी गया; पर अपने बाहु-बल से आप ने फिर करोड़ों रुपये पैदा किये। बम्बई के "शेयर" और नोट के बाज़ार में आप अपना सानी न रखते थे। आप विलक्षण दानी थे। अपनी सम्पत्ति का आपने ख़ूब ही सदुपयोग किया। अपने जीवन में आपने पचास, साठ लाख रुपये दान किये। सो भी सब अच्छे कामों के लिये। कितने ही कालेज, स्कूल और पुस्तकालयों को आप ने लाखों दे डाले। बंबई और कलकत्ता के विश्वविद्यालयों को आपने कोई ग्यारह लाख रुपये दिये। उनके सूद से कुछ निर्दिष्ट विषयों में एक बहुत ऊंची परीक्षा पास करने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी जाती है। इसका नाम है "प्रेमचन्द रायचन्द छात्रवृत्ति"। जो लोग इस परीक्षा को पास करते हैं उनका बड़ा नाम होता है। बंबई का "राजा बाई टावर" आप ही का बनवाया हुआ है। उसे आपने अपनी माता की यादगार में बनवाया था। ऐसे दानवीर की मृत्यु से कौन ऐसा है जिसे शोक न हुआ हो?

* *
*

डेराइस्माईलख़ां के ज़मीदार मिस्टर टहलराम गङ्गाराम, साधुओं की दशा सुधारने की तो चेष्टा जी जान से कर ही रहे हैं, अब आपने एक और बात की चर्चा शुरू कर दी है। आपने पश्चिमी देशों की उन्नति के कारणों का विचार करके यह निश्चय किया है कि अख़बारों का पढ़ना बहुत ज़रूरी है। जब तक सब लोगों में अख़बार और उपयोगी पुस्तकें पढ़ने का शौक न पैदा होगा तब तक इस देश की गिरी हुई दशा न सुधरेगी। योरप और अमेरिका में कुली, कबाड़ी, किसान सब अख़बार पढ़ते हैं। अतएव मिस्टर टहलराम की राय है कि हर ज़िले और हर तहसील में पुस्तकालय और वाचनालय खोले जायँ और वहां पर सब लोगों को मुफ़्त में अख़बार और पुस्तकें पढ़ने को मिलें। आपकी आन्तरिक इच्छा है कि प्रत्येक मन्दिर, धर्म्मशाला और मसजिद में पुस्तकालय खुलें। आप का विचार बहुत ही उत्तम है। ईश्वर उसे सफल करे।

* *
*

एकलिपि-विस्तार-परिषद् के पहले वार्षिक अधिवेशन की रिपोर्ट पढ़ने से मालूम होता है कि परिषद् अपना काम अच्छी तरह कर रही है। उसके प्रयत्न से दो एक बँगला की पुस्तकें देवनागरी अक्षरों में छप गई हैं और दो एक छपने-वाली भी हैं। रिपोर्ट में लिखा है कि प्रयाग के "इंडियन पीपुल" पत्र के सम्पादक बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त विद्यापति ठाकुर की पद्यावली नागराक्षरों में प्रकाशित करने वाले हैं। इसके लिए महाराजा दर्भङ्गा ने उन्हें एक हज़ार रुपया दिया है। एक पुस्तक बाबू यशोदानन्दन अखौरी तैयार कर रहे हैं। उसमें इस देश की प्रसिद्ध प्रसिद्ध लिपियां रहेंगी। "देवनागर" नाम का एक पत्र भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित किया जाने वाला है। श्रीदामोदर मुखोपाध्याय बँगला के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "राजभक्ति" नाम का एक उत्तम उपन्यास बँगला में लिखकर राजा श्रीकमलानन्दसिंह को समर्पित किया है। इसके उपलक्ष्य में राजा साहब ने ५०० रुपये देना स्वीकार किया है। राजा साहब बड़े ही गुणग्राही हैं। सुनते हैं हिन्दी के ग्रन्थकारों को भी आप हज़ारों रुपये दे डालते हैं। अभी हाल में आपने बङ्कीमचन्द्र के "आनन्दमठ" का हिन्दी में अनुवाद करके ख़ुद ही उसे प्रकाशित किया है। "वन्दे मातरम्" इसी आनन्दमठ के एक गीत का अंश है। इस "राजभक्ति" को बड़ा बाज़ार, कलकत्ता, की हिन्दी-ट्रान्सलेटिंग् कम्पनी ने प्रकाशित किया है। यह कम्पनी और यह पुस्तक दोनों परिषद् की अनुमोदित हैं।

* * *

स्वदेशी आन्दोलन और बायकाट नामक प्रबन्ध, जिसे पण्डित माधवराव सप्रे ने अपनी हिन्दी-ग्रन्थमाला में निकाला था, डाक्टर लिमये ने अब पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है। यह पुस्तक बड़े महत्त्व की है और प्रत्येक लिखे पढ़े भारतवासी के पढ़ने और विचार करने लायक़ है। यदि कोई विद्यार्थी इस पुस्तक के किसी विषय को स्वतन्त्र रीति से लिखेंगे अथवा इसका स्वतन्त्र सार ही लिख कर डाक्टर वासुदेवराव लिमये, मोदी लैन, सीताबर्डी, नागपुर को भेजेंगे उन्हें इनाम मिलेगा। इनाम की शर्तें इसी पुस्तक में दी हुई हैं।

मिरज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी।

हिन्दूधर्म्म पर चलनेवालों का विश्वास है कि घोर कलियुग आने पर विष्णु भगवान् कल्की अवतार लेकर संसार को सुमार्ग पर चलाने के लिये आवेंगे। पंजाब में ज़िला गुरदासपुर की बटाला तहसील के क़ादियान-नगर-निवासी हज़रत मिरज़ा ग़ुलाम अहमद विश्वास दिलाते हैं कि धर्म-पुस्तकों में जिस अवतार के होने की भविष्यद्वाणी कही गई है उसी के अनुसार वे इस संसार में प्रकट हुए हैं। जो लोग उनकी शिक्षा पर चलेंगे वे अवश्य स्वर्ग-प्राप्ति करेंगे। इसी प्रकार ईसाइयों का जो विश्वास है कि मसीह फिर आवेंगे उनको चाहिये कि अब और किसी मसीह के आने की बाट न देखें। हज़रत को ही मसीह समझ कर उन पर विश्वास लावें।

सबसे अधिक ज़ोर उनका मुसलमानों पर है। मिरज़ा साहिब विश्वास दिलाते हैं कि जो कोई क़ुरान पर ईमान रखते हैं उनको जानना चाहिये कि जिस महदी के संसार में आने की भविष्यद्वाणी क़ुरान में कही गई है और जो शर्तें की गई हैं उन सब बातों को उन्हीं ने पूरा किया है। एक समय था कि उनको कोई भी नहीं जानता था। सन् १८८० ई० में उनको परमेश्वर ने अपनी इच्छा प्रकाश करने के लिये चुना। प्रारंभ में ईश्वराज्ञा हुई कि उनके पास चारों ओर से भक्तजन आवेंगे। मिरज़ा साहिब उनका सम्मान करें; उनको बहुतायत से घबरावें नहीं। सन् १८८८ में शिष्य बनाने की रीति चली और अहमदी जमात का सिलसिला आरंभ हुआ। सन् १८९१ में ईसा होने का विज्ञापन दिया गया। इस का बड़ा विरोध हुआ। उनकी देखा देखी सियालकोट के चिराग़दीन नामक एक मुसल्मान ने भी ईसा होने का दावा किया जिसके लिये मिर्ज़ा साहिब ने यह भविष्यद्वाणी कही कि वह बुरी तरह मारा जायगा। तदनुसार उसकी मृत्यु प्लेग से हुई। यह भी क़ुरान में लिखा है कि जब मिहदी आवेंगे तब चन्द्र और सूर्य का ग्रहण रमज़ान के महीने में होगा। सोई सन् १८९४ के रमज़ान महीने की १३ को चन्द्र और २८ को सूर्य्य ग्रहण होकर उक्त भविष्यद्वाणी पूरी हुई।

अमृतसर के एक पादरी ने हज़रत की निंदा की। १५ महीने के भीतर उसके मर जाने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घोषणा की गई। परन्तु पादरी ने अपने कर्तव्य पर हृदय में बड़ा पश्चात्ताप किया। इस कारण वह मृत्यु के पंजे से बच गया। पर जब ईसाइयों ने क़सम खिलाकर उससे यह बात पूछी तो उसने पश्चात्ताप करने से इन्कार किया और शीघ्र ही मर गया।

प्लेग का इस देश में आना मिरज़ा साहिब ने सबसे पहिले अपनी पुस्तक बराहीन अहमदिया में प्रकाश किया। यह सन् १८९७ की बात है। इसका सर्व-व्यापी होना उनको सन् १८९८ में मालूम हुआ था।

पंजाब-आर्यसमाज के पण्डित लेखराम का आराजाना किसी से छिपा नहीं हैं। पंडित जी मिरज़ा साहिब से बात चीत करने के लिये खुद क़ादियान गये थे। वहाँ उनकी मृत्यु का समय उनको बताया गया था जो इतना सच निकला कि घातक का पता लगाने के लिये मिरज़ा साहिब के घर की तलाशी हुई।

"बराहीन अहमदिया" में स्वामी दयानन्द सरस्वती की मृत्यु के सम्बन्ध में जो कहा गया था वह भी ठीक निकला। इन सब चमत्कारों को देख कर अनेक मुसल्मान इन पर विश्वास लाये हैं। आज कल इनके समाज में तीन लाख आदमी हैं। वे अफ़ग़ानिस्तान, अफ़रीक़ा, अरब, ईरान, आस्ट्रेलिया, स्ट्रेटसेटिलमेंट तक फैले हुए हैं।

हज़रत मिर्ज़ा साहिब ने अपनी जीवनी अपने आप लिखी है और अपने पुरखों का वृत्तान्त कहते हुए उनको क़ंदहार का मुग़ल बताया है। हिन्दुस्तान आकर उन्होंने इसलामपुर गांव बसाया, जिसका प्रसिद्ध नाम इसलामपुर "क़ाज़ी माझी" हुआ। यह जगह लाहौर से ५० कोस उत्तर-पूर्व की ओर है। समय पाकर उसी गांव का नाम "क़ादियान" हो गया है। मुग़ल लोग इसराईल वंश के हैं और इसी वंश में ईसा का होना बताया जाता है। मिर्ज़ा साहिब ने सिद्ध किया है कि काश्मीरी मुसल्मान और अफ़-गान प्राचीन इसराईल जाति के ही लोग हैं। मिर्ज़ा साहिब का जन्म सन् १८३९-४० में हुआ था। उस समय इनका घराना बहुत ग़रीब हो गया था; सिक्खों ने इनकी बहुत सी पुरानी जायदाद बरबाद कर डाली थी; जिसके हासिल करने के लिये इनके पिता को बड़े मुक़दमे लड़ने पड़े। इनके जन्म से प्राचीन प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार हुआ। परमात्मा ने इनको कह दिया कि अब इस ख़ानदान का नये सिरे से नाम होगा और ऐसी प्रतिष्ठा बढ़ेगी कि बादशाह भी इनके कपड़ों से बरकत लेंगे।

बाल्यकाल में इन्होंने अच्छे अच्छे मौलवियों से फ़ारसी और अरबी पढ़ी। बाप से इन्होंने हिकमत सीखी। बड़े होने पर ज़मीदारों के काम काज में पिता को सहारा दिया और पिता के आग्रह से कुछ दिन अंगरेज़ी सरकार की नौकरी भी की। इन्ही दिनों उनको यह जान पड़ा कि "नौकरी-पेशा लोग निहायत गन्दी ज़िन्दगी बसर करते हैं। उनकी तमाम दिली ख्वाहिशें हराम या हलाल माल हासिल करने ही तक महदूद हैं। बहुतेरे तकब्बुर, बदचलनी, दीन की लापर-वाही और तरह तरह के इख़लाक़-रज़ीला में शैतान के भाई हैं।" इससे नौकरी छोड़ कर आप फिर ज़मीदारी के काम में लगे। परन्तु अपना बहुत सा समय क़ुरान शरीफ़ के पढ़ने में व्यतीत करते थे। इन्हीं दिनों इनके पिता ने एक दिन स्वप्न देखा कि हज़रत मुहम्मद साहेब इनके घर पर बड़े ठाठ बाट से आये हैं। पिता ने उनको भेट देने के लिये एक रुपया निकाला परन्तु वह खोटा निकल गया।

इसका यह अर्थ था कि दुनियादारी के साथ ख़ुदा और रसूल की मुहब्बत एक खोटे रुपये की तरह है। इनके पिता ने अपनी उम्र मुक़दमे लड़ने में ही काटी थी। इससे उनको अपने जीवन का व्यर्थ जाना बहुत शोक और चिन्ता का कारण हुआ। इसी विचार से उन्हों ने एक मसजिद बनवाई और वह ज्यों ही पूर्ण हुई त्यों ही उन का देहान्त हो गया। उसी मसजिद में उन के इच्छानुसार बताई हुई जगह पर उनकी क़बर बनाई गई।

पिता के मरने के दिन ही हज़रत को पहिला "इलहाम" हुआ जिसका अर्थ यह था कि "आज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य्यास्त पीछे पिता का देहान्त होगा"। और सो हो हुआ। जब उन्हें सांसारिक मनुष्यों की तरह पिता के मर जाने का सोच हुआ तब दूसरा वचन मिला जिस का यह भाव था कि "क्या एक प्राणी के लिये परमेश्वर यथेष्ट नहीं है?" इस वचन से उन्हें ऐसी दृढ़ता हुई कि वर्णन नहीं की जाती। यह वचन एक नगीने पर खुदवा कर उसकी एक अंगूठी उन्होंने बनवा ली।

मिरज़ा साहिब आरंभ से ही परमात्मा के बड़े भक्त हैं। उनको विश्वास है कि उन से ईश्वर को भी विशेष प्रीति है। एक बार उन्हें स्वप्न में एक महात्मा ने उपदेश दिया कि पवित्र लोगों को रोज़े रखना बड़ी ज़रूरी बात है। मिर्ज़ा साहिब ने तदनुसार इस व्रत को प्रारम्भ किया। परन्तु दिखावट के लिये नहीं। उनका क़ायदा था कि घर से खाना मँगवाकर चुप चाप किसी अनाथ को दे देते। रात को एक बार खाना खाते थे। उसको भी आपने घटाना शुरू कर दिया; यहां तक कि कुछ समयोपरान्त केवल कई तोले रोटियां खाते थे। तिसपर भी उन्हें कुछ कष्ट नहीं हुआ। उनके आत्मिक विचार बहुत बढ़ गये और हज़रत मुहम्मद साहिब का जाज्वल्यमान रूप उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिया। इस रूप का वर्णन करना कठिन है, क्योंकि दुनिया की आखों से यह दूर है। नौ दस महीने इसी प्रकार व्यतीत हुए। इसका फल उन्हें यह मिला कि भूख प्यास वश में हो गई। एक मोटा पहलवान भी उनके बराबर भूखा नहीं रह सकता।

तेरहवीं सदी बीतने पर जब चौदहवीं सदी लगी तब यह प्रेरित वाक्य मिरज़ा जी को मिला—"ईश्वर ही ने तुझे क़ुरान सिखलाया और उसका मूल तत्त्व तुझ पर खोल दिया। यह इसलिये हुआ कि तू उन लोगों को डरा दे जो पीढ़ी दर पीढ़ी से आलस्य और भूलों में पड़े हुए हैं। इस से वे सुमार्ग पर आजायंगे। उनको कह दे कि तू परमेश्वर की ओर से पुरुषोत्तम नियत किया गया है"। वह वचन बराहीन अहमदिया नामक पुस्तक में छापा गया। १८ वर्ष हुए जब यह पुस्तक मिर्ज़ा साहिब ने प्रकाशित की थी।

इनके सम्प्रदाय में सीधे सादे भोले मुसल्मान ही नहीं, किन्तु कितने ही एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर, डिपटी कलेक्टर, तहसीलदार, असिस्टेंट सर्जन, हास्पिटल असिस्टेंट आदि तथा कई रईस, जागीरदार, तअल्लुक़ेदार और नवाबों की औलाद हैं। कितने मनुष्य जो पहिले बुरे चाल चलन के थे इनके उपदेश से सज्जन बन गये हैं।

मिर्ज़ा साहिब अंगरेज़ी सरकार के बड़े ख़ैरख़्वाह हैं। मुसल्मानों में काफ़िरों के मारने के लिये जो जहाद करने की बात है उसका ये खंडन करते हैं। अपने पैगंबर होने के विषय में कहते हैं—

"ख़ुदा मेरे पर तजल्लीफ़रमा हुआ। उसने मुझसे बातें कीं। मुझसे उसने कहा कि अगर तेरे लिये यह मुश्किल पेश आवे कि लोग कहें कि हम क्योंकर समझें कि तू ख़ुदा की तरफ़ से है, तो तू उन्हें कह दे कि इसके आसमानी निशान मेरे गवाह हैं। दोआएं क़बूल होती हैं। पेश अज़ वक़्त ग़ैब की बातें बतलाई जाती हैं। इन बातों में कोई तेरा मुक़ाबिला नहीं कर सकता। ये निशान मुझे इस लिए दिये गये हैं जिनसे मैं उस सच्चे ख़ुदा की तरफ़ लोगों को खींचूं जिसकी तरफ़ एक दिन हर एक को जाना है।"

आज कल जो बार बार भूकम्प हो रहे हैं उन का आना भी मिर्ज़ा साहिब ने बहुत पहिले से कहा है। इनको परमेश्वर से जो वचन मिलते हैं उन्हें ये अपने अख़बारों में छपवा देते हैं। क़ादियान से "बदर" "अलहकम" "दुनिया के मज़ाहेब पर नज़र" और अंगरेज़ी में "रिव्यू आफ़ रेलीजन्स" चार अख़बार निकलते हैं।

हज़रत ने अभी हाल में एक तजवीज़ यह निकाली है कि क़ादियान में एक स्थान ऐसा बनाया जाय जहाँ धार्मिक लोग मरने पीछे समाधिस्थ किये जांय। इसका नाम "बहिश्ती मक़बरा" रक्खा गया है। मरणानन्तर यहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पाने की इच्छा रखनेवालों को अपनी जायदाद का दसवां अंश सरकार में मक़बरे के नाम लिखा देना होगा। ग़रीब सज्जन मुफ़्त जगह पावेंगे।

आज कल क़ादियान में हज़रत के दर्शनों को अनेक यात्री जाते हैं। इनके लिये एक लंगर ख़ाना (रसोईघर) खुला हुआ है जहां सबको भोजन मिलता है।

मिर्ज़ा साहिब का चरित अमरीका के अख़बारों तक में छप चुका है। मैं आगरा मेडिकल स्कूल के प्रोफ़ेसर डाक्टर ख़लीफ़ा रशीदुद्दीन साहिब को बहुत धन्यवाद देता हूं। आपही से मैंने पहिले पहिल हज़रत का नाम सुना था। तब से मैं बराबर हज़रत मिर्ज़ा साहिब की वाणियों को बड़ी रुचि से पढ़ा करता हूं*। महेन्दुलाल गर्ग।

केरल की तारा।

वीर-मण्डल की महाविद्या महामाया नहीं।
बालि की वनिता न समझो जीव की जाया नहीं॥
सत्यसागर सूरमा हरिचन्द की रानी नहीं।
आपने यह पाँचवीं तारा अभी जानी नहीं॥ १

चित्र-विद्या-विज्ञ रविवर्म्मा दिखाते हैं इसे।
भाव ज्यों के त्यों दिखाने और आते हैं किसे?
चित्र से बढ़कर चितेरे की बड़ाई कीजिये।
जो लगाकर जी लगाने की कथा सुन लीजिये॥२

कल इसीके योग से यतिभाव मेरा खो गया।
सो गया तो स्वप्न में संकल्प पूरा हो गया॥
ध्यान में भरपूर केरल देश की छवि छा गई।
मुसकराती सामने प्रत्यक्ष तारा आगई॥ ३

माँग देकर पाटियों में पीठ पर चोटी पड़ी।
फाड़ मुँह फैलाय फन छविराशि पै नागिन अड़ी॥
भाल पर चाहक चकोरों का बड़ा अनुराग था।
क्यों न होता चन्द्र का वह ठीक आधा भाग था॥४

भ्रू नहीं मैंने कहा रसराज के हथियार हैं।
काम के कमठा किये तारुण्य की तलवार हैं॥
मीन, खंजन, मृग मरें दृग देह-द्रुम के फूल हैं।
इन्दु, मङ्गल, मन्द से तीनों गुणों के मूल हैं॥५

फूल अंबर के न कानों को बता कर चुप रहा।
रूप-सागर के सजीले सीप हैं यों भी कहा॥
गोल गुदकारे कपोलों को कड़ी उपमा न दी।
पुलपुली मौमन पड़ी फूली कचौड़ी चूमली॥ ६

नाक थी किंवा कुटी छवि की छपाकर पै नई।
लौर लटकन की कि बिजली लौ दिया की बन गई॥
खिलखिला कर मुख-बतीसी को कहा बेलाग यों।
कुन्द की कलियां कमल के कोश में लुकती हैं क्यों?७

सब जड़ाऊ भूषणों के सोहने शृङ्गार थे।
कण्ठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे॥
पीन कृश, उकसे कसे, कोमल कड़े, छोटे बड़े।
गुप्त सारे अङ्ग साड़ी की सजावट में पड़े॥ ८

उस नवेली से मिला मैं भी नवेला बन गया।
कुछ दिनों तक साथ रहने का इरादा ठन गया॥
था समय बरसात, चारों ओर घन घिरने लगे।
बे-धड़क वह और मैं उस देश में फिरने लगे॥९

देख बेपुर और कालीकट नगर सिरमौर को।
चल पड़े रत्नागिरी, टेलीचरी, मँगलौर को॥
गैल में नाले, नदी, नद, स्वच्छ-जल-पूरित पड़े।
सैकड़ों एला, सुपारी, नारियल, केला, खड़े॥१०

---

* क्या ही अच्छा होता यदि मिर्ज़ा साहब के दावे के खण्डन में जो कुछ लिखा या किया गया है उसका भी संक्षिप्त उल्लेख इस लेख में हो जाता। आज कल अवतारों का बड़ा ज़ोर है। कानपुर ज़िले के पण्डित सत्यानन्द अग्निहोत्री जी ने लाहौर में "भगवान् देवगुरु" के नाम से प्रसिद्धि पाई है। आपके "विज्ञान-मूलक-धर्म्म" नामकी मासिक पुस्तक की जून की संख्या में लिखा है—"श्री देवगुरु भगवान् के पहले, इस पृथ्वी पर, एक भी आदमी ऐसा नहीं हुआ जिसने वैज्ञानिक रीति से मनुष्य की आध्यात्मिक स्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया हो"। जितने ऋषि, मुनि हुए किसी ने भी जो बात न जानी, वह जानी अग्निहोत्री जी महाराज ने! फिर आप भी क्यों नहीं अपने को ईश्वर का अवतार बतलाते? सम्पादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल नाना भाँति के जंगल पहाड़ों में खिले।
सिंह, भालू, भेड़िये, चीते, हिरन, हाथी मिले॥
चारु चन्दन के लिए ऊँचे मलयगिरि पर चढ़े।
सूंघते सौरभ सने श्रीखण्ड को आगे बढ़े॥ ११

कालड़ी के पास प्यारी पूरणा भी आ गई।
सिद्ध शङ्कर देव की जन्मस्थली मन भा गई॥
न्हा चुके, सुसता चुके, सन्ध्या हवन भी कर लिया।
बाग़ में डेरा दिया, भोजन किया, पानी पिया॥ १२

मैं बिछौने पर पड़ा वह सुन्दरी गाने लगी।
सोहनी बरसात में पीयूष बरसाने लगी॥
वार चकवा रो रहा, चकई नदी के पार थी।
वेदना उनको विरह की हाय विष की धार थी॥ १३

पीठ पर टपका पड़ा तो आँख मेरी खुल गई।
विशद बूँदों से मिले मनमौज-मिश्री घुल गई।
यह उसीका चित्र है तावीज़ में मढ़ लीजिये।
मन लगा कर फिर दुबारा पद्य ये पढ़ लीजिये॥ १४

नाथूराम शङ्कर शर्म्मा।

शिक्षा।

सार्वजनिक काम।

(४)

यहां तक माँ-बाप के कर्तव्यों का विचार हुआ। अब हम सार्वजनिक कामों का विचार आरम्भ करते हैं। यहां पर हमें इस बात का विचार करना चाहिए कि किस तरह का ज्ञान, किस तरह की शिक्षा, आदमी को सार्वजनिक कर्तव्य करने के योग्य बनाती है। यह नहीं कहा जा सकता कि जिस ज्ञान या जिस शिक्षा की बदौलत आदमी सार्वजनिक काम करने के योग्य हो सकता है उसकी तरफ़ आज कल किसी का बिलकुल ही ध्यान नहीं। थोड़ा बहुत ध्यान ज़रूर है। क्योंकि इस समय मदरसों में जो विषय पढ़ाये जाते हैं उनमें राजकीय और सार्वजनिक कामों से सम्बन्ध रखने वाली बातें, यदि बहुत नहीं, तो नाम के लिए कुछ अवश्य रहती हैं। इनमें सिर्फ़ एक इतिहास ही ऐसा विषय है जिसका दर्जा, इस सम्बन्ध में, कुछ बड़ा है।

परन्तु, इशारे के तौर पर जैसा हम पहले ही कह चुके हैं, जिस तरह की इतिहास-शिक्षा आज कल मिलती है वह बहुत करके किसी काम की नहीं। वह पथदर्शक नहीं। उससे उचित शिक्षा नहीं मिलती। इतिहास की जो किताबें मदरसों में जारी हैं उनकी बात तो कुछ पूँछिये ही नहीं। राजकीय विषयों से सम्बन्ध रखने वाली बातों के सही सही सिद्धान्त शायद ही एक आध कहीं उनमें पाये जाते हों। उनको बात जाने दीजिए; बड़ी उम्र के समझदार आदमियों के लिए जो इतिहास की किताबें ख़ूब परिश्रम पूर्वक लिखी गई हैं उन तक में इन सिद्धान्तों का बहुत कम पता मिलता है। लड़के मदरसों में बहुत करके पढ़ते क्या हैं, राजाओं और बादशाहों के जीवन-चरित। भला उनसे समाज-शास्त्र का ज्ञान कैसे हो सकता है? उनमें सामाजिक बातें बहुत ही कम रहती हैं। कहीं कोई कपट-काण्ड रच रहा है; कहीं कोई कूट-नीति का जाल बिछा रहा है; कहीं कोई किसी का राज्य छीन रहा है; कहीं कुछ हो रहा है, कहीं कुछ। यही सब बातें उनमें रहती हैं। इन्हीं बातों को लड़के सीखते हैं और जिन जिन का सम्बन्ध इनसे होता है उनके नाम याद करते हैं। इन बातों से देश के उत्कर्ष के कारण कहीं समझ में आ सकते हैं? ये बातें जातीय उन्नति के कारण जानने में बहुत ही कम मदद देती हैं। इतिहासों में इस तरह की बातें रहती हैं—राज्य के लालच से अमुक अमुक झगड़े फ़साद पैदा हुए। उनका फल यह हुआ कि दोनों दल वालों की सेनायें ख़ूब बहादुरी से लड़ीं। इन सेनाओं के सेनापतियों के अमुक अमुक नाम थे और उनके अधीन जो सरदार थे उनके अमुक अमुक। उनमें हर एक के पास इतनी पैदल सेना,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना रिसाला और इतनी तोपें थीं। उन्होंने अपनी अपनी सेना को लड़ाई के मैदान में इस क्रम से खड़ा किया था। उन्होंने अमुक अमुक युक्ति से काम लिया; अमुक अमुक तरह से धावा किया; और अमुक अमुक तरकीब से वे पीछे हटे। दिन के इतने बजे उन पर अमुक प्रसङ्ग आया—उन पर अमुक आफ़त आई। और इतने बजे उनकी ऐसी जीत हुई। एक धावे में अमुक सरदार काम आया; दूसरे में अमुक पल्टन कट गई। कभी इस दल का भाग्य चमका, कभी उसका। इस तरह भाग्य का उलट फेर होते होते अन्त में अमुक दल की जीत हुई। हर एक दल के इतने आदमी मारे गये, इतने घायल हुए, और इतने विजयी दल ने क़ैद कर लिये। अब बतलाइए कि इस युद्ध-वर्णन में जो बातें लिखी गई हैं उन में कौन सी बात ऐसी है जिससे आपको यह शिक्षा मिल सकती है कि सार्वजनिक कामों में आप को कैसा वर्ताव करना चाहिए। इसमें क्या कोई भी बात ऐसी है। जो आपको यह सिखला सकती है कि आपको अपना नागरिक चालचलन कैसा रखना चाहिए? मान लीजिए कि आप दुनिया की सर्वप्रसिद्ध पन्द्रह लड़ाइयों का ही हाल पढ़ कर चुप नहीं रहे; किन्तु और भी जितनी छोटी बड़ी लड़ाइयां हुई हैं उन सबका सविस्तर हाल आप पढ़ चुके हैं; तो क्या इससे, पारलियामेंट के मेम्बरों का अगला चुनाव होने पर, राय देते समय, आपकी राय में कुछ विशेषता आजायगी? इस इतिहास-ज्ञान की बदौलत उस समय क्या आप कुछ विशेष बुद्धिमानी से राय दे सकेंगे? हरगिज़ नहीं। परन्तु आप कहेंगे कि—"ये सच्ची घटनायें हैं—सच्ची ही नहीं मनोरञ्जक भी"। निःसन्देह ये मनोरञ्जक घटनाये हैं। इनमें से जिनका कुछ अंश या सर्वांश झूठ नहीं वे अवश्य मनोरञ्जक हैं। और बहुत आदमियों को वे वैसी ही मालूम भी होती होंगी। परन्तु इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि इस तरह की घटनायें महत्त्व की हैं—क़दर करने के क़ाबिल हैं। हम लोग कभी कभी बिलकुल ही तुच्छ बातों को किसी कल्पित और अयोग्य कारण से भ्रमवश बनावटी महत्त्व देने लगते हैं। जो आदमी गुले-लाला या गुलाब के पीछे पागल हो रहा है—जिसके दिमाग़ में उसका ख़ब्त समाया हुआ है—उसे यदि किसी अच्छे फूल की बराबर कोई सोना भी तौलने को तैयार हो जाय तो भी वह उसे न देगा। कोई चीनी मिट्टी के महापुराने और दरके हुए बर्तन को ही एक अनमोल चीज़ समझ कर अपने पास रखता है; दुनिया में ऐसे भी आदमी हैं जो प्रसिद्ध हत्यारों का स्मरण दिलाने वाली चीज़ों को हज़ारों रुपये देकर मोल लेते और अपने पास रखते हैं। परन्तु क्या इस तरह की रुचि-विचित्रता से ये चीज़ें क़ीमती हो सकती हैं? क्या ये चीज़ें सिर्फ़ इस लिए बहुत क़ीमती हो जायँगी कि अपनी विचित्र रुचि के कारण, कोई कोई, इनको विशेष मूल्यवान् समझते हैं? यदि नहीं, तो इस बात को भी ज़रूर क़बूल करना होगा कि कुछ ऐतिहासिक बातें, किसी किसी को बहुत पसन्द होने ही के कारण, क़ीमती नहीं हो सकतीं। इस तरह की पसन्द उनके महत्त्व-पूर्ण होने का कोई सबूत नहीं। अतएव और बातों की क़ीमत हम जिस तरह उनके उपयोग का ख़याल करके ठहराते हैं उसी तरह इन बातों की भी क़ीमत उनके उपयोग का ख़याल करके ही ठहरानी चाहिए। जो चीज़ उपयोगी है वही क़ीमती है। जो जितनी अधिक उपयोगी है वह उतनी ही अधिक क़ीमती भी है। हर एक बात का उपयोगी-पन ही उसकी क़ीमत की माप है। यदि कोई आकर तुमसे कहे कि तुम्हारे पड़ोसी की बिल्ली या कुतिया ने कल बच्चे दिये तो तुम कहोगे कि दिये होंगे; हमको इससे क्या? आप की यह ख़बर व्यर्थ है। इससे हमें क्या फ़ायदा? इससे हमारा क्या उपयोग? यद्यपि यह भी एक घटना है, और सही घटना है, तथापि तुम इसे बिल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुल ही व्यर्थ समझोगे। सांसारिक व्यवहारों से इसका कुछ भी सरोकार नहीं। तुम्हारी ज़िन्दगी के कर्तव्य कामों पर इस घटना का कुछ भी असर नहीं हो सकता। यह एक ऐसी घटना है जो तुम को अपनी ज़िन्दगी को पूरे तौर पर सार्थक करने में किसी तरह की मदद नहीं दे सकती। अच्छा, तो, आप इसी उपयोग-विषयक कसौटी से ऐतिहासिक घटनाओं के सम्बन्ध में भी काम लीजिए। उनकी भी क़दर और क़ीमत इसी कसौटी की मदद से निश्चित कीजिए। ऐसा करने से हम जो कुछ कह रहे हैं वह आप को ज़रूर सच मालूम होगा—वह आप के ध्यान में ज़रूर आ जायगा। इतिहास में जो घटनायें बयान की जाती हैं उनका कार्य्य-कारण-भाव नहीं दिखलाया जाता; उनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है—यह नहीं बतलाया जाता। इससे उन घटनाओं के—उन बातों के—आधार पर कोई सिद्धान्त स्थिर नहीं किया जा सकता। जितनी घटनायें हैं उनका एक मात्र उपयोग यह है कि उनकी मदद से हम अपने चाल-चलन-सम्बन्धी—हम अपने सांसारिक-व्यवहार-सम्बन्धी—नियम निश्चित कर सकें; हम यह जान सकें कि हमें किस तरह का चाल चलन अख़्तियार करना चाहिए, किस तरह का व्यवहार पसन्द करना चाहिए। परन्तु इन ऐतिहासिक घटनाओं से हमें इस तरह की कोई शिक्षा नहीं मिलती; इनकी मदद से हम इस तरह का कोई नियम निश्चित नहीं कर सकते। अतएव इनका जानना व्यर्थ है; ये हमारे किसी उपयोग की नहीं। हां, ऐतिहासिक घननाओं को यदि आप दिल बहलाने के लिए पढ़ना चाहें—मनोरञ्जन के लिए पढ़ना चाहें—तो ख़ुशी से पढ़ सकते हैं। परन्तु इस बात की आप व्यर्थ आशा न करें—आप अपने दिल को व्यर्थ न फुसलावें—कि वे आप के किसी काम भी आ सकती हैं। उनसे आपका कोई काम नहीं निकल सकता। वे आप के किसी उपयोग की नहीं।

आरा, नागरीप्रचारिणी सभा के अनुरोध से लिखित

खगोल-विज्ञान।

भूमिका।

हिन्दी-भाण्डार में इस प्रकार की पुस्तकों का अभाव देख कर मैंने इस पुस्तक को रचने का साहस किया है। इस की रचना श्रीमान् लौंगमैंज़ (Longmans) साहेब की पुस्तक के आधार पर की गई है। इसके सिद्धान्त प्रायः सभी अंगरेज़-ज्योतिषियों के मतानुसार हैं। हमारे आदरणीय ज्योतिष-शास्त्र से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है; अतः संभव है कि ग्रहों के उदयास्त-समय अथवा दिशा-निरूपण में भारत-निवासियों को प्रभेद जान पड़े। मैं खगोल-विज्ञान का ज्ञाता भी नहीं हूं; अतः इसमें त्रुटि रहजानी भी आश्चर्य्य-जनक नहीं है। पाठकों से सविनय प्रार्थना है कि वे इन बातों का विचार करके मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे। यदि इस लेख का किञ्चित् भी आदर हुआ तो मैं वचन देता हूं कि इस विषय की एक बड़ी पुस्तक लिख कर मैं हिन्दी-भाषा के प्रेमियों को भेंट करूंगा।

तारा-मय आकाश।

जब हम रात को स्वच्छ आकाश की ओर देखते हैं तब वह प्रकाशवान् बिन्दुओं से जड़ा हुआ सा देख पड़ता है। इनके प्रकाश में न्यूनाधिकता भी दिखाई पड़ती है। और कोई कोई बिन्दु ऐसे भी हैं जिन्हें हम बिना यंत्र के नहीं देख सकते। आकाश के आर पार एक धुंधली प्रकाशमय रेखा दिखाई पड़ती है। यह यदि दूरदर्शक यंत्र से देखी जाय तो असंख्य प्रकाशवान् बिन्दुओं की अवली दिखाई पड़ती है। इस रेखा को आकाश-गंगा या मन्दाकिनी कहते हैं। अंगरेज़ी में इसी को "मिल्की वे" (milky way) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेखा के भीतर असंख्यात तारे इतनी दूरी पर हैं कि वे साफ़ साफ़ दृष्टिगत नहीं होते। उनकी मिली हुई प्रभा से मन्दाकिनी की छटा प्रदर्शित होती है।

इन आकाशस्थ प्रकाशमय बिन्दुओं को हम तारा कहते हैं। उनकी संख्या असंख्य है। इसमें सन्देह नहीं है कि तारों की गणना असंभव है। तथापि जो तारे हम रात को बिना यंत्र की सहायता अपनी आखों से देख सकते हैं उनकी संख्या तीन हज़ार के लग भग है। और यदि हम बहुत ही कीमती दूरबीन लगा कर देखें तो तारों की संख्या लाखों बढ़ जायगी। नित्यप्रति रात के समय तारों को देखने से जान पड़ता है कि उनमें से अनेक तारे नभोमण्डल में अपना स्थान परिवर्तित करते हैं और अनेक अचल हैं। जिन तारों में संचालन-शक्ति नहीं होती उन्हें स्थिर नक्षत्र (Fixed stars) कहते हैं। क्योंकि वे आकाश में एक ही स्थान पर हमेशा उदय होते हैं। जो तारे अपना स्थान बदलते रहते हैं उन्हें "प्लैनेट" (planet) अर्थात् ग्रह कहते हैं। "प्लैनेट" लोक भाषा का शब्द है। इसका अर्थ "भ्रमणकारी" है। इसी से भ्रमण करनेवाले तारों का नाम अंगरेज़ी में प्लैनेट है। आकाश की इस विशेष नक्षत्रावली को ग्रह कहते हैं। यद्यपि यह नाम भ्रमण करने के कारण पड़ा है तथापि आकाश में और भी भ्रमणकारी पिण्ड हैं—जैसे चन्द्रमा और धूमल तारे।

यदि ग्रह और नक्षत्र दूरबीन से देखे जायँ तो, चाहे कैसा ही उत्तम दूरबीन क्यों न हो, तारों का रूप बिन्दुवत् ही देख पड़ता है। हां, वे कुछ अधिक स्वच्छ और स्पष्ट अवश्य हो जाते हैं; किन्तु ग्रहगण के वृत्ताकार बिम्ब (circular disc) की तरह दिखाई पड़ते हैं। और उनकी तलस्थली भी दिखाई पड़ती है।

इस भेद का कारण यही जान पड़ता है कि नक्षत्रों की अपेक्षा ग्रह पृथ्वी के अधिक निकट हैं। इसी से दर्शकों को ग्रह और तारों के रूप में यह भेद देख पड़ता है। अर्थात् ग्रह आकाशमार्ग में भ्रमण करते हैं और उनका रूप वृत्ताकार दिखाई पड़ता है, पर नक्षत्र अचल बिन्दुवत् दिखाई पड़ते हैं।

ग्रहों की गणना सुलभता से हो सकती है, क्योंकि उनकी संख्या केवल पांच है और वे बिना यंत्र के देख पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त दो ग्रह और भी हैं जिनका दर्शन यंत्र ही द्वारा होता है, अन्यथा नहीं। नक्षत्रों का विभाग प्रकाश-भेद से होता है अर्थात् उनका मूल तत्व प्रकाश ही है। इस से यह बात साबित होती है कि तारों में अधिकतर तारे अचल हैं। लग भग बीस प्रकाशमान तारे प्रथम श्रेणी के हैं। सम्पूर्ण आकाश-मण्डलवर्ती तारों में जो अधिक तेजोमय है उसे व्याध या लुब्धक (Sirius-सिरियस) कहते हैं। उसके बाद द्वितीय श्रेणी के नक्षत्र हैं जो प्रथम श्रेणी की अपेक्षा कम तेजोमय हैं। इनके उदाहरण में चार ज्योतिर्मय तारों का समुदाय है जिन्हें प्रायः सप्तर्षि (Great-Bear) कहते हैं। इसके पीछे तृतीय श्रेणी के नक्षत्र हैं जो प्रथम और द्वतीय श्रेणी की अपेक्षा कम ज्योतिवाले हैं। इसी तरह छोटे से छोटे भी तेजोमय नक्षत्रों का विभाग तेज के हिसाब से किया गया है। ऐसे तारों को हम केवल दूरबीन ही से देख सकते हैं, अन्यथा नहीं।

नक्षत्रों की ज्योति जितनी ही कम होगी उतनी ही उनकी संख्या अधिक होगी। यही कारण है कि प्रथम श्रेणी के नक्षत्र केवल बीस हैं और नवम श्रेणीवालों की संख्या १,४२,००० है। इन बातों पर विचार करने से यह बात सिद्ध होती है कि नक्षत्रों के समूह में केवल थोड़े से नक्षत्र बिना यंत्र की सहायता के देख पड़ते हैं।

पञ्चम श्रेणीवाले नक्षत्र धुँधले होते हैं और षष्ठ श्रेणीवाले और भी अधिक धुंधले। अतः सप्तम श्रेणी के नक्षत्रों को देखने के लिए विशेष तीव्र दृष्टि की आवश्यकता है। चित्र नं० १ देखिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

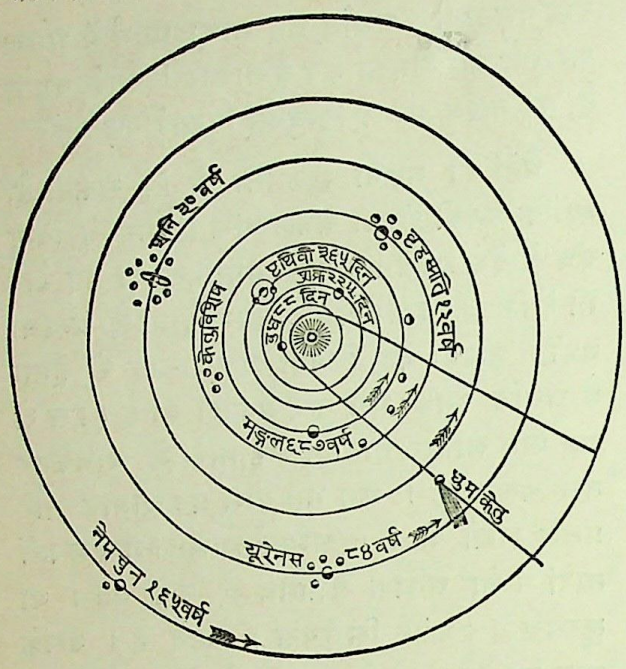

ग्रहों के नाम, उनके वृत्ताकार मार्ग और सूर्य के चारों ओर घूम आने का समय। चित्र, नं० १

अब प्रश्न यह है कि वास्तव में ये नक्षत्र हैं क्या ? ये हम से इतनी दूरी पर हैं कि इनके पृष्ठ-तल की मीमांसा करना बहुत कठिन है। पर एक पिण्ड औरों की अपेक्षा हमारा अधिक निकटवर्ती है। उसे हम सूर्य्य कहते हैं। यदि उसकी मीमांसा की जाय तो दूसरों का अनुभव सहज ही में हो जायगा क्योंकि एक चावल देखने से बटलोही भर का हाल मालूम हो जाता है। सूर्य्य प्रज्वलित बाष्प (Flaming gases) का एक बहुत बड़ा समूह है। यह बाष्प-पिण्ड अपनी धुरी पर बड़े वेग से घूमा करता है। इसके चारों ओर, अपने अपने नियत मार्ग से, अनेक पिण्ड भी परिभ्रमण करते हैं जिन्हें हम ग्रह के नाम से लिख चुके हैं। ग्रहों के चारों ओर अनेक छोटे छोटे तारे भी घूमते हैं जिन्हें उपग्रह कहते हैं। इनके सिवा दूसरे तारे भी हैं जो सूर्य्य के चारों ओर घूमते हैं। उनके भ्रमण की चाल ऐसी है कि कभी तो वे सूर्य्य के बहुत ही निकट आ जाते हैं और कभी उससे बहुत दूर हो जाते हैं। इन्हीं को धूमकेतु कहते हैं।

सूर्य्यमध्यस्थवर्ती आकाश-पिण्ड-समूह को सौर-क्रम (Solar System) या सौर जगत् कहते हैं। सौर जगत् के बीच में एक प्रज्वलित बाष्प का बहुत बड़ा पिण्ड है। इसमें इतना प्रकाश और इतनी गरमी है कि वह अपने चारों तरफ़ भ्रमण करनेवाले ग्रहों को भी प्रकाश तथा उष्णता देता है। ग्रहों के पिण्ड-समुदाय से सूर्य्य का पिण्ड बहुत अधिक बड़ा है।

जिस प्रकार सूर्य्य के चारों ओर ग्रह घूमा करते हैं उसी प्रकार कुछ ग्रहों के भी चारों ओर छोटे छोटे नक्षत्र घूमा करते हैं जिन्हें चन्द्र कहते हैं। ग्रह और उनके चन्द्रों के सिवा अनेक छोटे छोटे ऐसे नक्षत्र हैं जो सूर्य्य के चारों ओर घूमते हैं। जब वे हम लोगों के वायुमण्डल में आ जाते हैं तब वे उल्का के स्वरूप में देख पड़ते हैं।

यद्यपि अनेक नक्षत्र आकार में बहुत बड़े हैं तथापि ऐसे लाखों नक्षत्रों में एक सूर्य्य ही श्रेष्ठ है। जिस प्रकार शीतल-पिण्डों का केन्द्र सूर्य्य है उसी प्रकार प्रत्येक अचल-नक्षत्र अपने परिवर्ती पिण्डों का केन्द्र कहा जा सकता है। पाठक, यह सुनकर आपको शायद आश्चर्य्य होगा कि भूलोक के सिवा अन्यान्य लाखों लोक और भी हैं और उनमें बस्ती होनी भी संभव है; चाहे उनमें मनुष्य न हों, और ही कोई जीव हों।

सूर्य्य।

यह बात पहले लिखी जा चुकी है कि सूर्य्य सौर जगत् (Solar-system) का केन्द्र है और पृथ्वी तथा अन्यान्य ग्रह उसके चारों ओर भ्रमण करते रहते हैं। ग्रह-पिण्ड धीरे धीरे शीतल होते जाते हैं और उनका पृष्ठ-भाग कठोर होता जाता है। सूर्य्य प्रज्वलित उष्णता का एक समूह है जो बराबर इतनी उष्णता फैलाता रहता है कि उससे इतना बड़ा भूलोक भी, जो उससे ९० लाख मील की दूरी पर है, गरम होता रहता है। यद्यपि भूलोक इतनी उष्णता सूर्य्य से प्राप्त करता है तथापि वह सूर्य्य से इतना छोटा है कि उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किरणों का बहुत ही थोड़ा भाग उसके लिए बस होता है। सूर्य्य का प्रकाश इतना प्रखर और प्रचुर है कि जब भूलोक उसके सम्मुख आ जाता है तब हमें आकाशवर्ती किसी ग्रह या नक्षत्र का दर्शन नहीं होता। केवल सूर्य्य की किरणें ही आकाश में फैली हुई देख पड़ती हैं।

सूर्य्य का परिमाण।

देखने में सूर्य्य का बिम्ब भी चन्द्रमा की तरह वृत्ताकार जान पड़ता है, किन्तु, वास्तव में वह बहुत बड़ा गोला है। उसका व्यास प्रायः ८,६५,००० मील के लग भग है अर्थात् पृथ्वी के व्यास से ११० गुना बड़ा है। धरातल की अपेक्षा सूर्य्य का घन-फल १३,३०,००० गुना अधिक है। इन अंकों के विस्तार का अनुमान सिर्फ़ सुनने से नहीं हो सकता; अतः एक सरल उदाहरण देकर सूर्य्य-मण्डल और भू-मण्डल का परिमाण-सम्बन्ध दिखाया जाता है। तीन इंच का एक पृथ्वी का गोला अपने आगे रखिए और उस पर भारतवर्ष का पता लगाइये। जब मिल जाय तब वहां अपने देश पर सूई की नोक से चिन्ह कर दीजिए। जो परिमाण-सम्बन्ध इस चिन्ह का पृथ्वी के गोले के साथ होगा वही पृथ्वी और सूर्य्य का भी परिमाण-सम्बन्ध जानिए। यह बात लिखी जा चुकी है कि सूर्य्य भ्रमणकारी तारों का केन्द्र है और उनमें से कई तारे भूलोक से कहीं बड़े हैं। यदि उन सब तारों का समूह अनुमान में ला जाय तो जानना चाहिए कि उनका सामुदायिक घन-फल भी सूर्य्य की समता नहीं कर सकता है।

सूर्य्य भूलोक से ९,२७,००,००० मील की दूरी पर है। भूलोक की वृत्ताभ-कक्षा की बनावट ऐसी है कि शीतकाल में ग्रीष्म-ऋतु की अपेक्षा, सूर्य्य तीन लाख मील भूलोक के निकट आ जाता है। यही कारण है कि ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीतकाल में सूर्य्य कुछ बड़ा देख पड़ता है, क्योंकि दर्शक से यदि दृश्य दूर है तो उसका रूप छोटा दिखाई देता है और यदि निकट है तो बड़ा।

सूर्य्य का घनफल पृथ्वी से एक लाख गुना अधिक है; किन्तु उसका भार-परिमाण, अर्थात् वज़न, पृथ्वी की अपेक्षा ३,००,००० गुना अधिक है। यह विकल्प घनत्व के कारण है। दूसरा कारण यह भी है कि सूर्य्य उष्ण है। पर पृथ्वी उसकी अपेक्षा अधिक शीतल है। यदि ग्रह तथा उप-ग्रहों की मीमांसा की जाय तो यह ज्ञात होगा कि यद्यपि चन्द्रमा में बाहरी लक्षण उष्ण होने के देख पड़ते हैं तथापि वह एक शीतल पिण्ड है। पृथ्वी का ऊपरी भाग बहुत शीतल है। उस पर महासागर भरे हुए हैं। परन्तु उसका भीतरी भाग उष्ण है। और ग्रह पृथ्वी की तरह शीतल नहीं हैं, क्योंकि वे उष्णवाष्पों से वेष्टित हैं। इससे यह बात सिद्ध होती है कि जितने पिण्ड सौर जगत् में हैं सभी शीतल हैं। हां उनकी शीतलता में न्यूना-धिकता अवश्य है। पृथ्वी के बाहरी पटल को देखने से जान पड़ता है कि उस पर चिर काल तक तीव्र उष्णता पड़ी है। उसका रूप ऐसा है जैसे किसी धधकते हुए बाष्प-प्रदेश में वह संस्थित है और अपनी अक्ष पर वेग से घूमते घूमते क्रमशः शीतल होता जाता है।

सूर्य्य के चिन्ह, भ्रमण और आलोक आदि।

दूरबीन लगा कर देखने से सूर्य्य का दृश्य अद्भुत दिखाई पड़ता है। सूर्य्य के देखने में रंगीन शीशे से काम लेना चाहिए, नहीं तो सूर्य्य के प्रखर किरणों से आँखों को हानि पहुंचने का डर रहता है। देखने से सूर्य्य का बिम्ब निर्म्मल प्रकाशवान् और तेजोमय नहीं

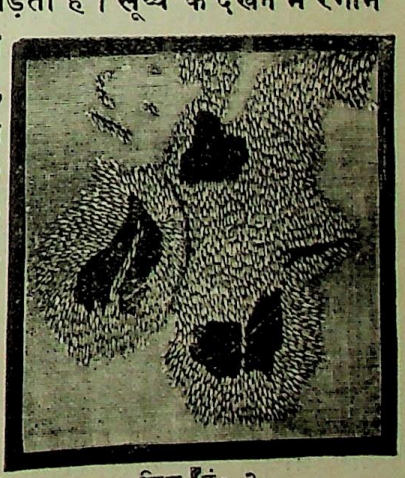

चित्र, नं० २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालूम होता। उस पर काली काली चकत्तियां देख पड़ती हैं जिन्हें सूर्य्य-चिन्ह या सूर्य के दाग़ कहते हैं। चित्र नं० २ देखिये। कभी तो इस प्रकार के अनेक चिन्ह देख पड़ते हैं, कभी थोड़े और कभी एक भी नहीं। चिन्ह का मध्य-भाग अधिक काला दिखाई पड़ता है। उसके चारों ओर एक प्रकार की झालर होती है। छोर की अपेक्षा चिन्हों का मध्य अधिक काला नहीं होता। कोई चिन्ह परिमाण में बहुत ही बड़े होते हैं, जिनके व्यास हज़ारों मील के होते हैं। कोई कोई चिन्ह व्यास में पृथ्वी से भी बड़े होते हैं। खगोल-विज्ञान के ज्ञाताओं ने परीक्षा करके निश्चय किया है कि सूर्य्य भी पृथ्वी की तरह घूमता है। भेद केवल इतना ही है कि उसके घूमने में सिर्फ़ पचीस दिन के लगभग समय लगता है।

सूर्य्य ही के द्वारा पृथ्वी को आलोक और उष्णता प्राप्त होती है। पृथ्वी के दैनिक भ्रमण से हम को कार्य्य और विश्राम का अवसर मिलता है। दिन को हम काम करते हैं और रात को विश्राम। पृथ्वी अपनी अक्ष पर भी घूमती है और साथ ही साथ सूर्य्य की परिक्रमा भी करती जाती है। पृथ्वी के अक्ष-परिभ्रमण से दिन और रात होते हैं और सूर्य्य के चारों ओर घूमने से ऋतुओं का आविर्भाव होता है। ये बातें भूगोल से सम्बन्ध रखती हैं। अतः यहां पर प्रसंगवश केवल निदर्शन मात्र कर दिया गया है। सूर्य्य का आलोक और उसकी उष्णता हमारे बहुत काम आती है। हमारे खाने के पदार्थ, घर की सामग्री, कल-कारख़ानों के लिए धातु, और रेल और जहाज़ के लिए भाफ़, और जलाने के लिए कोयला आदि सभी चीज़ें सूर्य्य ही की गरमी के कारण हैं। हमारा स्वास्थ्य भी सूर्य्य की गरमी ही पर अवलम्बित है।

ग्रह।

दूरस्थ नक्षत्रों की अपेक्षा ग्रहों के विषय में हम लोग अधिक जानकारी रखते हैं। आकाश के पिण्डों का प्रधान समूह ग्रह है। पृथ्वी की बनावट और उसके घूमने के विषय में भूगोल के ज्ञाता अधिक ज्ञान रखते और पृथ्वी किन किन तत्त्वों से बनी है यह भी भली भांति जानते हैं। ग्रहों के ज्ञान के आधार पर ही अन्यान्य पिण्डों की बातों का अनुमान किया जाता है। ग्रह शीतल हैं। किन्तु पृथ्वी और मंगल अधिकतर शीतल हैं। कई ग्रह शीतल होने पर भी उष्ण-वाष्प से वेष्टित हैं।

सूर्य्य के चारों ओर ग्रहों का भ्रमण एक नियत वृत्ताभकक्षा पर होता है। ग्रहों की वृत्ताभकक्षा का रूप दीर्घवृत्त के सदृश होता है।

पृथ्वी की वृत्ताभकक्षा इस प्रकार की है कि जब वह सूर्य्य से बहुत दूर रहती है तब वह अपनी न्यूनान्तर स्थिति से तीन लाख मील के अन्तर पर हो जाती है। नेपचुन नामक ग्रह की अपेक्षा पृथ्वी सूर्य्य के अधिक निकट है। अपनी कक्षा में भ्रमण करने में बहुत दूर होने पर भी पृथ्वी केन्द्र से ९३ लाख मील की दूरी पर रहती है; पर नेपचुन जिस वृत्ताभकक्षा पर चलता है वह २८०० लाख मील सूर्य्य से दूर है। ग्रहों के आकार भिन्न भिन्न होते हैं और उनके शीत-प्रदायक गुण में भी न्यूनाधिकता है। उनका भ्रमण वृत्ताभकक्षा पर होता है। पर दो की कक्षाओं के आकार में सन्देह है। हां इसमें सन्देह नहीं कि साधारण दृष्टि से सब वृत्ताभकक्षाओं के रूप को दीर्घ-वृत्ताकार कह सकते हैं। सूर्य्य के चारों ओर भ्रमण का समय भी भिन्न भिन्न ग्रहों का भिन्न भिन्न है। किसी के भी दिन का परिमाण एक सा नहीं है। पर कई बातों में सब ग्रहों की अवस्था एक सी भी है। जैसे यह कहा जा सकता है कि सब ग्रहों की स्थिति का क्रम एक सा है। सब एक ही केन्द्र के चारों ओर भ्रमण करते हैं। और सब को आलोक और उष्णता सूर्य्य ही से मिलती है।

जिन ग्रहों को हम लोग बिना यंत्र की सहायता के देख सकते हैं। उनकी संख्या केवल पांच*

* नेपचुन और यूरेनस लेकर इस पुस्तक में सात ही ग्रह माने गये हैं। राहु और केतु मिला कर ९ होते हैं। अनुवादक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—अर्थात् (१) बुध, (२) शुक्र, (३) मंगल, (४) बृहस्पति और (५) शनि। इनके सिवा यूरेनस भी कभी कभी धुँधले तारे के समान दिखाई पड़ता है। पर नेपचुन इतनी दूर है कि वह केवल दूरबीन ही से दिखाई देता है। मंगल और बृहस्पति ग्रहों की वृत्ताभकक्षा के मध्य में छोटे छोटे ग्रहों के अनेक समूह हैं जिन्हें केतुविशेष कहते हैं। उन में से लग भग दो सौ का पता लग चुका है, जिनमें बहुतों का व्यास केवल दो चार मील है। यद्यपि इनका आकार बहुत ही छोटा है तथापि ये भी अन्य ग्रहों की तरह सूर्य्य के चारों ओर घूमते हैं।

बुध।

यदि हम ग्रहों को सूर्य्यान्तर के क्रम से देखना आरम्भ करें तो पहले हमें बुध मिलेगा। इसका आकार पृथ्वी से बहुत छोटा है। इसका व्यास तीन सौ मील के लग भग है। यह आकाश में कभी तो सायंकालीन और कभी प्रातःकालीन तारा मालूम पड़ता है। अर्थात् कभी यह सायङ्काल उदय होता है और कभी प्रातःकाल। इस ग्रह की चाल निजवृत्ताभकक्षा पर ८८ दिनों में समाप्त हो जाती है। यदि पृथ्वी की तरह इसको भी ऋतु-परिवर्तन का सौभाग्य प्राप्त होता तो वसन्त, ग्रीष्म, शरद और हेमन्त का केवल तीन ही सप्ताह में अन्त हो जाता। यद्यपि इसकी वृत्ताभकक्षा अधिवृत्तवत् है, तथापि सूर्य्य से इसके दूरस्थ और निकटस्थ अन्तर में बहुत भेद है। जब यह ग्रह सूर्य्य के निकट रहता है तब इसको उष्णता और आलोक पृथ्वी से दस गुना अधिक मिलता है। पर जब यह अपने दूरस्थ अन्तर पर पहुँचता है तब सिर्फ़ पाँच गुना अधिक। बुध से यदि देखा जाय तो सूर्य्य का बिम्ब पृथ्वी से साढ़े चार गुना बड़ा दिखाई देगा। इन भेदों पर ध्यान देने से निश्चय होता है कि यदि इस ग्रह में भी मनुष्य और पेड़ पत्ते होते तो उनमें और भूलोकवालों में पृथ्वी आकाश का अन्तर होता।

शुक्र।

यह ग्रह भी बुध ही के सदृश कभी सायंकाल और कभी प्रातःकाल उदय होता है। इसका तेज कोमल और मनोहर होता है। शुक्र एक प्रसिद्ध ग्रह है। हिन्दी-कवियों ने प्रातःकाल के दृश्यों में इसका प्रायः वर्णन किया है। इसका परिमाण, ऋतु-परिवर्तन, भ्रमण, वृत्ताभकक्षा का स्वरूप, आलोक और उष्णता का भाग आदि सभी प्रायः पृथ्वी के सदृश है। जैसी समानता पृथ्वी और शुक्र में है वैसी किसी और दो ग्रहों में नहीं।

यह ग्रह सूर्य्य से ६,७०,००,००० मील की दूरी पर है। जब यह पृथ्वी के निकट पहुंचता है तब पृथ्वी से केवल साढ़े छब्बीस लाख मील की दूरी पर रहता है। इसका व्यास ७५०० मील है और सूर्य्य के चारों ओर घूमने में इसे २२५ दिन लगते हैं। जहां तक जांच की गई वहां तक यही मालूम हुआ है कि शुक्र के कोई चन्द्रमा नहीं है और उसे इसकी आवश्यकता भी नहीं है। पृथ्वी के चन्द्रमा का प्रधान काम ज्वार भाटा उत्पन्न करने का है। यदि शुक्र में महासागरों का होना माना जाय तो भी उसे चन्द्रमा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सूर्य्य के इतना निकट है कि सूर्य्याकर्षण ही से उसमें इतने ऊंचे और भयंकर ज्वार भाटे उठें जो पृथ्वी को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होते।

मंगल।

और ग्रहों के बीच में यह ग्रह अपने लाल रंग के कारण पहचाना जाता है। इसका व्यास पृथ्वी के आधे व्यास से कुछ अधिक है। पृथ्वी का धरातल इससे ढाई गुना अधिक है। इसका परिमाण पृथ्वी से बहुत कम है। अतः इसके धरातल की आकर्षण शक्ति भी कम है। पृथ्वी पर जिस पदार्थ की तोल आध सेर होगी उसकी तोल वहां केवल तीन ही छटांक के लग भग होगी। मंगल की भूमि पर पृथ्वी की अपेक्षा मनुष्य अधिक उछल सकता है और अधिक वेग से दौड़ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। क्योंकि भूमि की आकर्षण शक्ति जो पदार्थ को अपनी ओर खींचती है, पृथ्वी की अपेक्षा मंगल में कम है। सूर्य्य के चारों ओर भ्रमण करने में जो समय मंगल को लगता है वह हमारे दिन-प्रमाण से ६८७ दिन का होता है। अर्थात् वहां का दिन हमारे दिन से चालीस मिनट अधिक होता है

अपनी वृत्ताभकक्षा की विशेष बनावट के कारण मंगल कभी कभी ऊपर चालीस लाख मील की दूरी पर पहुँच जाता है। यही कारण है कि विज्ञान-वेत्ताओं ने दूसरे ग्रहों की अपेक्षा इस ग्रह के पृष्ठ की परीक्षा अधिक की है। उनका कथन है कि मंगल के दो छोटे छोटे चन्द्रमा हैं और उसके ध्रुवों में पृथ्वी की तरह चारों ओर हिम-मयी भूमि है। उन लोगों ने उसमें काले काले चिन्ह देखे हैं, जिन्हें वे जंगल, नदी और सागर आदि, और लाल रंग के चिन्हों को भूमि-भाग बताते हैं। उन्होंने मंगल का फ़ोटो भी लिया है और कई रंग के चिन्ह देख कर यह निश्चय किया है कि इस ग्रह में पेड़ और लता आदि भी हैं। पेड़ बिना वर्षा के जीवित नहीं रह सकते। इससे उन लोगों का अनुमान है कि मंगल पर कभी कभी मेघमाला भी उत्पन्न होती है, पानी भी बरसता है, और आंधी भी आती है। इन बातों से यह ग्रह मनुष्य के रहने योग्य अनुमान किया जाता है।

मंगल पूर्व दिशा में उदय होता है और पश्चिम में अस्त। १२० दिन बाद वह पूर्व में उदय होता है और ३०० दिन बाद पश्चिम में अस्त। इसका एक चक्कर २६ महीने में पूरा होता है।

बृहस्पति।

यह ग्रह सबसे बड़ा है। इसका व्यास ८५,००० मील है। अर्थात् पृथ्वी के व्यास से यह ग्यारह गुना बड़ा है। इसका ऊपरी भाग पृथ्वी से ११५ गुना अधिक है। पृथ्वी की अपेक्षा इसका घनफल १२३० गुना है, और परिमाण ३०० गुने से भी अधिक है। इसका आकार चित्र, नं० ३ में देखिये।

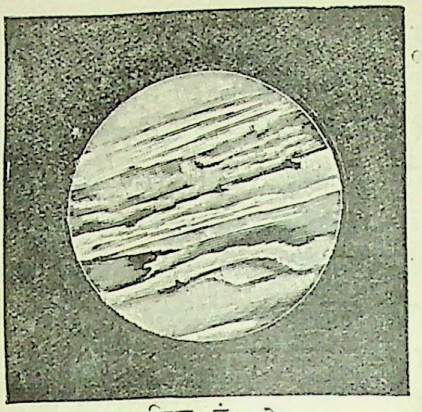

चित्र, नं० ३

बृहस्पति अपनी धुरी पर दस घंटे से भी कम में घूम जाता है। अतः इसकी गति अतिशय तीव्र और भयानक है। सूर्य्य का प्रदक्षिण करने में इस को ४००० दिन से भी अधिक लगते हैं। इसकी वृत्ताभकक्षा सूर्य्य से लगभग ४७६ लाख मील की दूरी पर है। अतः यह पृथ्वी से बहुत ही दूर है। बहुत बड़ा होने के कारण यह ग्रह आकाश-मण्डल में प्रकाशमान देख पड़ता है। कभी तो यह सन्ध्या को उदय होता है, कभी प्रातःकाल, और कभी रात को। जब पृथ्वी अपनी वृत्ताभकक्षा पर भ्रमण करते करते ऐसे स्थान पर पहुंचती है जहां से बृहस्पति सूर्य्य के एक भाग में होकर पृथ्वी से दूर हो जाता है तब यह ग्रह भूमि-वासियों से अदृश्य हो जाता है और बिना दूरबीन के दिखाई नहीं पड़ता। दिन को भी यह ग्रह दूरबीन से दिखाई देता है। इसके चार चन्द्रमा हैं, जिनमें से दो का आकार मंगल के बराबर है। इसके पृष्ठ पर विशेष अवलोकनीय चीज़ इसकी कर्धनी या कटिबन्धन हैं, जो भूमध्यरेखा की तरह बीच में दिखाई पड़ती हैं।

उनमें से कई तो हलके नीले रंग की हैं और शेष लाल। ये कर्धनियां चलायमान बादलों से बनती हैं जिन्हें हम लोग चलते और परिवर्तित होते हुए अपनी आंखों से देखते हैं। इस ग्रह की वह अवस्था है जो वस्तों के योग्य ठंढी होने के पहले पृथ्वी की थी।

शनि।

आकाश-मण्डल में शनि से बढ़कर अद्भुत ग्रह कोई नहीं है। यह ग्रह गोल है। इसका गर्भ सूत्र ७०,००० मील के लग भग है। इसका बाहरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोला १,५०,००० मील की परिधि में है। गोले के ऊपर के कटिबंध हलके नीले और भूरे रंग के हैं। इसके कई वलय हैं। कोई वलय भूरा, कोई प्रकाशमान और कोई बिलकुल काला अर्थात् अन्धकार-मय है। जहां से यह वलय-समुदाय ग्रह के पार होता है वहां इसका रूप कर्धनी या तागड़ी सा मालूम होता है। वलय-समुदाय का यह भाग बारीक और स्वच्छ है। इसमें एक और आश्चर्य की बात यह है कि यह ग्रहों के चारों ओर भ्रमण करता है। पहले विज्ञान-वेत्ताओं को इस ग्रह का पूरा हाल नहीं मालूम था। पर अब निश्चय हुआ है कि इसमें अनेक छोटे छोटे पिण्ड मिले हुए हैं। शनि-मण्डल तो बहुत बड़ा हई है, किन्तु इसके सहकारी आठ चन्द्रमा भी हैं, जिनमें से एक तो बुध ग्रह से भी बहुत बड़ा है।

शनि का घनफल और परिमाण पृथ्वी से सात सौ गुना बड़ा है। सूर्य्य की प्रदक्षिणा करने में इसे साढ़े उनतीस वर्ष लगते हैं। सूर्य्य से यह बृहस्पति की अपेक्षा दूनी दूरी पर है और पृथ्वी की अपेक्षा सात गुनी दूरी पर। यद्यपि इसका आकार बड़ा है तथापि इसका भ्रमण वेग-गति से होता है। इसका दिन-मान हमारे दिन-परिमाण से १०½ साढ़े दस ही घंटे का होता है।

शनि का अस्त पश्चिम में होता है। फिर अड़तीस दिन बाद पूर्व में उदय होता है। १०५ दिन बाद इसकी गति वक्र हो जाती है। और १३५ दिन में फिर वह अपनी मामूली गति पर आजाता है। इस तरह १०५ दिन बाद फिर वह पश्चिम में उदय होता है। इसका एक चक्कर हमारे हिसाब से पौने तेरह महीने में पूरा होता है। शनि का रूप चित्र, नं० ४ में है।

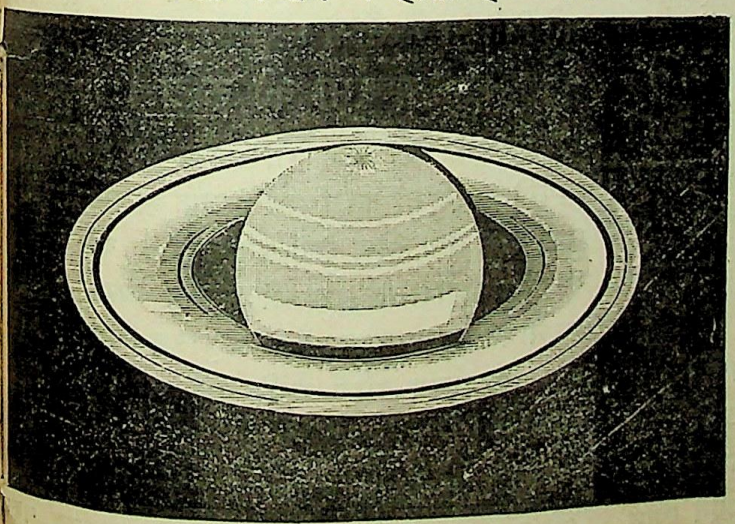

चित्र, नं० ४

यूरेनस और नेपचुन।

इन ग्रहों में यूरेनस वृत्ताभकक्षा में घूमता है। यह कक्षा शनि की वृत्ताभकक्षा से नौ लाख मील बाहर की तरफ़ है। इतनी ही दूरी पर ग्रहों के बाहर, यूरेनस के आगे, नेपचुन सूर्य्य को घेरे हुए है। ये दोनों ग्रह आकार में समान हैं। बृहस्पति और शनि की अपेक्षा ये बहुत ही छोटे हैं। यूरेनस का व्यास ३३,२५७ मील के लगभग है। नेपचुन इससे कुछ बड़ा है। उसके व्यास का आनुमानिक परिमाण ३७,२५० मील है। दोनों ग्रह शनि की अपेक्षा घनत्व में अधिक हैं। पृथ्वी से तुलना करने पर इनकी घनता जलवत् बोध होती है। सूर्य्य से ये इतनी दूरी पर हैं कि वहां से सूर्य्य का दृश्य-बिम्ब दिवस-तारा के समान देख पड़ता है। अतः सूर्य्य का ताप और आलोक इनमें बहुत ही कम पहुंचते हैं। यूरेनस के चार चन्द्रमा हैं। पर वैज्ञानिक अब तक नेपचुन के एक ही चन्द्रमा का पता लगा सके हैं। सूर्य्य की परिक्रमा करने में यूरेनस को ८४ वर्ष और नेपचुन को १६५ वर्ष लगते हैं।

केतु।

ग्रहों के सिवा सौर जगत् में अन्यान्य पिण्ड भी हैं जो कभी कभी नक्षत्रों के बीच चलते हुए देखे जाते हैं। उन्हें केतु कहते हैं। किसी किसी केतु में एक प्रकाशमयी पूंछ सी होती है। ऐसे केतु पूंछल तारे कहलाते हैं। आकाश में केतु का दर्शन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक परिमित समय तक ही होता है। आकाश के किसी एक भाग में यह उदय होता है। केतु का आकार, प्रकाश और स्थान प्रतिदिन परिवर्तित होता रहता है। इसके उदय का समय निश्चित नहीं। कभी कभी यह महीनों तक उदय होता है। कभी जल्दी ही अस्त हो जाता है। जब यह सूर्य्य के अति निकट पहुँच जाता है तब प्रायः अदृश्य हो जाता है, और फिर सूर्य्य की दूसरी ओर उदय होता है। यह धीरे धीरे हटने लगता है, और इसका प्रकाश कम होता जाता है। अन्त में यह अस्त हो जाता है। यह एक विशेष प्रकार की कक्षा पर घूमता है। जब यह सूर्य्य के निकट रहता है तभी पृथ्वी से देख पड़ता है। कभी कभी यह सूर्य्य से बहुत दूर हो जाता है। केतु का रूप चित्र, नं० ५ में देखिये।

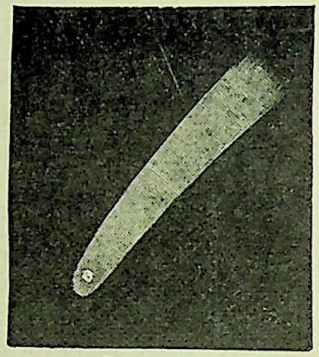

चित्र, नं० ५

उल्का।

छोटे छोटे आकाशीय पिण्ड जो ऊपर से पृथ्वी के वायु-मण्डल (Atmosphere) में प्रवेश करते हैं उन्हें उल्का कहते हैं। कोई उल्का तो समूची गिरती हैं, कोई छोटे छोटे टुकड़ों में, कोई टूट कर ऊपर ही रह जाती हैं। इन बातों का कुछ अनुभव हम लोग उल्का-पात के समय देखते हैं। ये सब छोटे अथवा बड़े आकार के आकाशीय पिण्ड हैं और वायु-मण्डल में प्रवेश करने के पहले अपने पथ पर सूर्य्य की परिक्रमा करते रहते हैं।

चन्द्रमा।

जिस तरह पृथ्वी और अन्यान्य ग्रह अपनी कक्षा में सूर्य्य के चारों तरफ़ भ्रमण करते हैं उसी तरह चद्रमा भी अपनी कक्षा में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। पृथ्वी से यह बहुत छोटा है। अपने स्थान पर यह दूसरे बड़े बड़े पिण्डों के आकर्षण से टिका रहता है। नहीं तो यह भूमि पर गिर जाता। चंद्रमा में अपना तेज और प्रकाश नहीं हैं। जो प्रकाश और तेज हम लोग उसमें देखते हैं वे उसे सूर्य्य द्वारा प्राप्त होते हैं। उसी को वह भूलोक में फैलाता है। चन्द्रमा का व्यास केवल २१५९ मील है। उसका घन-फल पृथ्वी का पचासवां हिस्सा है। पृथ्वी का परिमाण चन्द्रमा की अपेक्षा साढे इकासी गुना अधिक है। पृथ्वी और चन्द्रमा का परिमाण-सम्बन्ध चित्र, नं० ६ में देखिये।

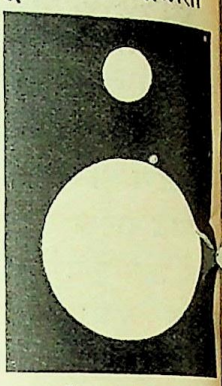

चित्र, नं० ६

चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा २,४०,००० मील की दूरी पर करता है। वह एक परिक्रमा २७ दिन ७ घंटे और ४३ मिनट में पूरी करता है। चन्द्रमा शीतमय पिण्ड है। इसकी शीतलता पृथ्वी से कहीं अधिक है। इसका बाह्य पटल ही शीतल नहीं है, किन्तु अन्तरंग भाग भी शीतल है। यही कारण है जो उसमें वायुमण्डल लुप्त हो गया, महासागर का अभाव होगया, और ज्वालामुखी पर्वत शान्त हो गये। चन्द्रमा का पृष्ठतल दर्पण सा है। उस पर सूर्य्य की ज्योति को लेकर वह उसे भूलोक में प्रतिबिम्बित करता है।

चन्द्रमा की कला।

सूर्य्य का बिम्ब सदा गोल देख पड़ता है। इसके विपरीत चन्द्रमा का बिम्ब प्रत्येक भ्रमण में कुछ ही घड़ी तक पूर्ण गोल देख पड़ता है। परिभ्रमण में चन्द्रमा यथासंभव पूर्ण गोलाकार बिम्ब प्रदर्शित करने की चेष्टा करता है, किन्तु वह बिम्ब कभी तो पूर्ण प्रकाशमय और कभी पूर्ण अन्धकारमय हो जाता है।

सूर्य्यास्त के बाद सन्ध्या समय चन्द्रमा पश्चिम की ओर उदय होता है। उस समय वह बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे की तरफ़ झुका रहता है। उसका संकीर्ण आकार धीरे धीरे बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है। चित्र, नं० ७ का अङ्क २ देखिये। उसे हम लोग नवीन

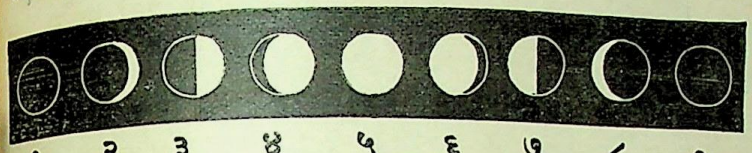

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

चित्र, नं० ७

चन्द्रमा कहते हैं। यह नवीन चन्द्रमा धीरे धीरे प्रतिदिन बढ़ता है और थोड़े दिन बाद पूर्ण होजाता है। सातवें दिन यह अर्द्धवृत्ताकार हो जाता है। चित्र नं० ७ का अंक ३ देखिये। यह बिम्ब पिछली रात में दिखाई देता है। इसके बाद सात दिन तक चन्द्रमा का प्रकाशमान भाग बढ़ता जाता है और चौदहवें तथा पन्द्रहवें दिन तक इसका सब भाग प्रकाशित हो जाता है। चित्र नं० ७, अंक ५, देखिये। उसे हम लोग पूर्णिमा का चन्द्र कहते हैं। इसके बाद चन्द्रमा की पश्चिमी ओर धीरे धीरे कटने लगती है। इसी तरह घटते घटते बाईसवें दिन चन्द्रमा फिर अर्द्धवृत्ताकार हो जाता है (सातवें चित्र का सातवां अंक देखिये)। पूर्ण चन्द्र से अर्द्धवृत्ताकार होने के मध्य काल को अन्तर्भाग कहते हैं। अट्ठाईसवें दिन चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य्य की स्थिति के बहुत ही निकट आजाता है, इससे कई दिनों तक वह अदृश्य हो जाता है; और फिर पूर्वोक्त आकार में उदय होता है। सातवें चित्र का, दूसरा अंक देखिये।

यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है कि चन्द्रमा को पृथ्वी की परिक्रमा करने में २७ दिन ७ घंटे और ४३ मिनट लगते हैं। किन्तु यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि इसे अपनी अक्ष पर घूमने में भी इतना ही समय लगता है। पूरी परिक्रमा के समय इसका तेजोमय भाग सदा सूर्य्य ही की ओर रहता है और तमोमय भाग सूर्य्य से फिरा रहता है। यही कारण है कि हम वही चन्द्रबिम्ब सदैव देखा करते हैं।

चन्द्रमा में दो प्रकार की गतियां हैं। एक तो वह अपनी अक्ष पर घूमता है, दूसरे वह पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। इनके सिवा उसमें एक प्रकार की और भी गति है। पृथ्वी जब सूर्य्य के चारों तरफ़ घूमती है तब वह चन्द्रमा को आगे ले जाती है। जब चन्द्रमा अपना परिभ्रमण करता रहता है तब पृथ्वी भी अपनी कक्षा पर चलती है। इससे चन्द्रमा को पृथ्वी और सूर्य्य के आगे नियमित समय पर पहुंचने में साढ़े उनतीस दिन लगते हैं।

चन्द्रमा का ऊपरी तल।

इसका ऊपरी भाग चिकना नहीं किन्तु खुरखुरा है। कई प्रदेश सापेक्ष-भाव से चौरस भी हैं। कहीं कहीं खारी और पर्वत-मालाओं के चिन्ह पाये जाते हैं। उनके सौन्दर्य्य की समता धरातल में नहीं है। चन्द्रलोक और भूलोक की तुलना करने में सब से बड़ा अन्तर यह मालूम होता है कि चन्द्रलोक में महासागर आदि नहीं हैं; पर भूलोक के नद, नदी, समुद्र जल-पूर्ण हैं। चन्द्रलोक से भूलोक का दृश्य विचित्र मालूम पड़ता है। चित्र नं० ८ देखिये।

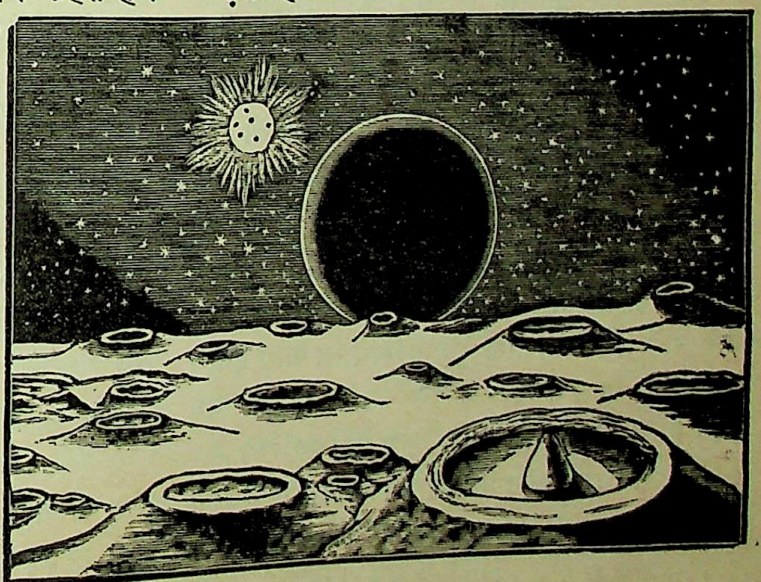

चित्र, नं० ८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रलोक में ज्वालामुखी पर्वतों के चिन्ह अधिक पाये जाते हैं, जिन्हें देखने से मालूम होता है कि वे कभी प्रज्वलित अवश्य थे, पर अब शान्त हो गये हैं। इन ज्वालामुखी पर्वतों में सबसे बड़े की चौड़ाई ४६ मील है। इनके चारों ओर पहाड़ियां और नाले भी हैं। इस पर्वत-माला की चोटियां पतली हैं, किन्तु पूर्ण गोल नहीं हैं। ऊपर की ओर ये ११,००० फुट ऊंची चली गई हैं। पर्वत-माला के बीच में एक पर्वत बहुत ही ऊंचा है। एक दूसरे से मिली हुई पर्वत-मालाओं के ढंग को देखने से ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट होना सूचित होता है।

चन्द्रमा की वर्तमान अवस्था।

अन्यान्य ग्रहों के सदृश चन्द्रमा ने भी सम्पूर्ण शीतावस्था में प्रवेश किया है। इसका आकार छोटा है। अतः यह शीघ्र शीतल हो गया। किसी समय भूलोक की भी यही अवस्था रही होगी।

यदि कल्पना कर लिया जाय कि चन्द्रमा किसी समय उष्ण था और क्रमशः शीतल हो गया है तो इसके ज्वालामुखियों के शान्त होने का कारण भी समझ में आ जाता है। जब चन्द्रमा ने अन्यान्य ग्रहों की तरह भिन्न भिन्न अवस्थाओं में पदार्पण किया तब यह बात भी हमें मान लेनी पड़ेगी कि किसी समय उस पर वायुमण्डल का आवरण भी था और उसमें महासागर भी थे। अब देखने से यह जान पड़ता है कि चन्द्रलोक में वायु और जल का अभाव है। किसी फल को आग में भूनिये और उसे तुरंत निकाल कर देखिये तो आप देखेंगे कि उसके छिलके सिकुड़ गये हैं। ज्यों ज्यों वह ठंढा होता जायगा उसका छिलका पपरिया कर ऐंठता जायगा। चन्द्रमा की भी ऐसी ही अवस्था है। इसके ठंढे होने और सिकुड़ने के समय भूकम्प (या चन्द्रकम्प) ने इसमें बड़े बड़े खोह और दरार बना दिये होंगे और ज्वालामुखी का भी प्रादुर्भाव हो गया होगा। इस तरह इसके पृष्ठतल का जल धीरे धीरे भीतर प्रवेश कर गया होगा। ज्वालामुखियों के होने के यही सब कारण ज्ञात होते हैं। चित्र नं० ९ देखिये।

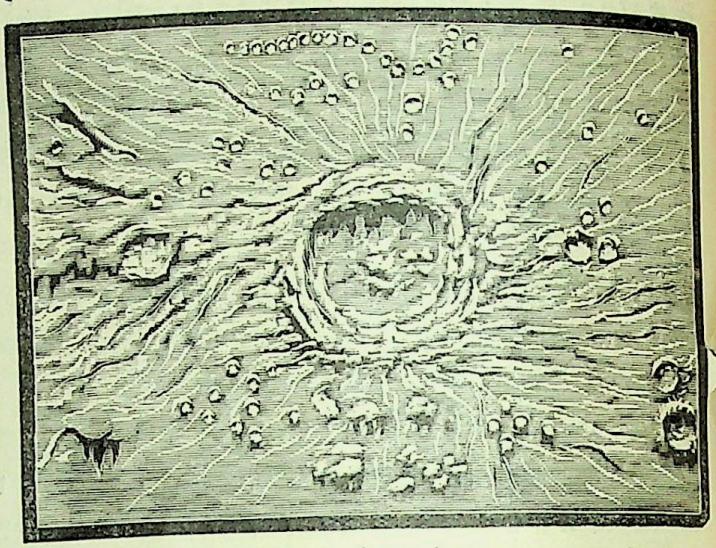

चित्र, नं० ६

जैनेन्द्रकिशोर।

"भट्टी कविता"।

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा हर साल "हिन्दी की अवस्था" की जांच करती है और उसका फल अपनी रिपोर्ट में प्रकाशित करने की भी कृपा करती है। इस प्रकार उसने पाँच छ दफ़े सरस्वती को याद किया है। पहले तीन वर्षों में सभा ही के कार्य्यकर्त्ता इसके सम्पादक थे। इससे, अथवा और किसी कारण से, सभा ने सरस्वती की अवस्था जांचने की विशेष आवश्यकता नहीं समझी। सभा ने उसके विषय में जो कुछ कहा वह यह है—

१९००—"सरस्वती और सुदर्शन पत्र अपने ढंग के अच्छे हैं"।

१९०१—"सरस्वती और छत्तीसगढ़-मित्र के निरन्तर निकलने से सभा को सन्तोष है"।

१९०२—में सभा ने कुछ कहने की कृपा नहीं की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके बाद इस पत्रिका का सम्पादन-कार्य्य काशी में होना बन्द हुआ। इस अवस्था में, १९०३ में, सरस्वती के ग्राहकों की संख्या बढ़ने पर सभा को "बड़ा आनन्द और सन्तोष हुआ"। और १९०४ में यह कह कर सभा चुप रही कि "सरस्वती यथासमय निकलती रही"।

हिन्दी की अवस्था की जांच करने में सरस्वती के विषय में सभा ने पूर्वोक्त पांच वर्षों में दो बार तो उसके यथासमय निकलने पर सन्तोष प्रकट किया; एक बार उसकी ग्राहक-संख्या बढ़ने पर आनन्द मनाया; एक बार उसे अपने ढंग का अच्छा बताया और एक बार मौनावलम्बन किया। छठी बार, अर्थात् गत वर्ष, सभा ने इस प्रकार अपनी राय दी—

"मासिक पत्रों में अब सबसे श्रेष्ठ सरस्वती है। * * * यह सभा उस पत्रिका की उन्नति देख कर प्रसन्न होती है। सरस्वती में सब प्रकार के लोगों की रुचि के अनुसार सरल भाषा में लेखों के रहने से उसका आदर दिनों दिन बढ़ता जाता है। * * * सभा का विश्वास है कि इस पत्रिका द्वारा हिन्दी का हित निरन्तर साधन होता रहेगा।"

इस अवतरण में जो अंश हमने छोड़ दिये हैं वे सभा का "अनुमोदन" दूर होने के विषय में हैं। छ वर्षों में सिर्फ़ गत वर्ष सभा ने अपनी राय देने में अधिक शब्द ख़र्च किये। यह राय देने के समय सभा के "अनुमोदन का अन्त" हुए सिर्फ़ छ महीने हुए थे। तब तक सभा को सरस्वती में कोई दोष नहीं देख पड़े। और यदि देख पड़े तो सभा ने उनका निदर्शन करने की ज़रूरत नहीं समझी। परन्तु मानना पड़ेगा कि सभा को तब तक सरस्वती में बतलाने लायक़ कोई दोष नहीं देख पड़ा। क्योंकि दोष देखकर भी न बतलाना नागरी-प्रचारिणी के सदृश प्रतिष्ठित सभा के लिए कलङ्क की बात है। यदि "हिन्दी की अवस्था" की जांच करने में सभाही दोषों को छिपावेगी तो हिन्दी की उन्नति हो चुकी। और यह भी नहीं कि सभा ने कभी किसी के दोष न दिखलाये हों। दोष वह बहुधा दिखलाया करती है। अतएव इस बात में कोई "मीन मेख" नहीं हो सकता कि गत वर्ष तक सभा की दृष्टि में सरस्वती निर्दोष थी।

परन्तु अनुमोदन के अस्त होने के डेढ़ वर्ष बाद सभा को एक बहुत बड़ा दोष सरस्वती में दिखाई दिया। प्रबन्ध-कारिणी सभा की आज्ञा से, सभा के मन्त्री, बाबू श्यामसुन्दर दास अपनी ७ जुलाई ०६ की रिपोर्ट में लिखते हैं—

"सरस्वती अपने ढंग की एक निराली पत्रिका है। परन्तु दुःख है कि जैसे अच्छे इसके गद्य लेख होते हैं वैसी ही भद्दी इसकी कविता होती है"।

सुना आपने! इससे क्या अर्थ लिया जाय? जब से सरस्वती पैदा हुई तभी से इसकी कविता में भद्दापन है या बीच में आ गया? समय-निर्देश तो सभा ने किया नहीं। इससे यदि कोई यह अर्थ निकाले कि जब सभा की बनाई हुई समिति, और सभा के मंत्री, द्वारा इसका सम्पादन होता था तब भी इसकी कविता भद्दी होती थी तो क्या एतराज़ हो सकता है? हो सकता है वही, जो हमने ऊपर लिखा है। गत वर्ष तक इस दोष का उल्लेख न करना ही इसका प्रमाण है कि कविता में यह भद्दापन अभी साल ही भर का है। बहुत अच्छा। पर "भद्दी कविता" कहते किसे हैं? कविता के लक्ष्य-लक्षण-सम्बन्धी हमने अनेक ग्रन्थ छान डाले पर "भद्दी कविता" का न तो हमें कहीं लक्षण ही मिला और न उदाहरण ही। कविता सरस होती है, नीरस होती है, कर्ण-कटु होती है, कर्ण-मधुर होती है, सालङ्कार होती है। इस तरह गुण-दोष-सूचक और भी कितने ही प्रकार की कविता होती है। पर अब आज यह भी मालूम हो गया कि कविता "भद्दी" भी होती है। सभा यदि "भद्दी कविता" का सोदाहरण लक्षण भी बतला देती तो बड़ी कृपा होती। इससे लोग भद्दी कविता लिखने और प्रकाशित करने से बाज़ आते। सभा की जिस प्रबन्ध-कारिणी कमिटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आज्ञा से मंत्री जी ने यह राय दी है उसमें कितने, कवि काव्यज्ञ अथवा सहृदय जन हैं, इस अप्रिय विषय की आलोचना हम यहां पर नहीं करना चाहते। पर हां जब सभा कहती है कि "भद्दी कविता" भी कोई कविता होती है तब ज़रूर होती होगी और सरस्वती में ज़रूर छपी भी होगी।

सभा ने अपनी राय तो बेधड़क दे डाली, पर यह बतलाने की कृपा न की कि सरस्वती की गत १२ संख्याओं में जो कविता छपी है वह सभी भद्दी है या उसमें से कुछ हो। ख़ैर अब देखिए, जुलाई १९०५ से जून १९०६ तक, सरस्वती में किस किस की कितनी कितनी कवितायें प्रकाशित हुई हैं—

सम्पादक की

१ ऊषा-स्वप्न
२ "वन्दे मातरम्"
३ महिला-परिषद् के गीत
४ प्यारा वतन
५ गौरी
६ आर्य्य-भूमि
७ बालक-विनोद
८ गङ्गा-भीष्म
९ शरीर-रक्षा
१० कर्तव्यपञ्चदशी
११ कुमुदसुन्दरी
१२ महाश्वेता

पं० सत्यशरण रतूड़ी की

१ प्रेम-पताका
२ प्रभात-प्रभा
३ शरत्स्वागत

पं० गिरिधर शर्म्मा की

१ ईश्वर-स्तुति
२ पुस्तक-प्रेम
३ ग्रीष्म
४ महाकवि भारवि का शरद्वर्णन
५ कलङ्की को एड्स

पं० सनातन शर्म्मा सकलानी की।

१ निद्रा
२ मेरी चम्पा
३ पावसराज
४ लार्ड अलिन् कुमारी

बाबू कामताप्रसाद गुरु की

१ भानु की झांकी

बाबू रामरणविजयसिंह की

१ घर में शान्ति
२ हे भारत!

बाबू मैथिलीशरण गुप्त की

१ प्रणय की महिमा
२ क्रोधाष्टक

पं० नाथूराम शङ्कर शर्म्मा की

१ हमारा अधःपतन

शमसुल्-उल्मा हाली की

१ नौकरों पर सख़्ती करने का परिणाम

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार की

१ बम्बई का समुद्र तट

बाबू अयोध्यासिंह उपाध्याय की

१ बालक-विनोद

श्रीमती पार्वती देवी की

१ काव्य-कुसुमाञ्जलि

बाबू जीतनसिंह की

१ कोकिल

पं० श्यामनाथ शर्म्मा की

१ हंसान्योक्तियां

पं० चण्डिकाप्रसाद अवस्थी की

१ स्वदेश-प्रीति

इन कवियों में से पं० गिरिधर शर्म्मा संस्कृत के उत्तम विद्वान् और काव्य के उत्कृष्ट ज्ञाता हैं। आप झालरापाटन में राजगुरु हैं। पण्डित श्यामनाथ शर्म्मा राजा साहब हड़ाहा के दरबार-कवि और संस्कृत तथा हिन्दी दोनों के विशद विद्वान् हैं। सेठ कन्हैयालाल ने अलङ्कार-शास्त्र पर एक ग्रन्थ का ग्रन्थ ही लिख डाला है। जिस समय सरस्वती काशी से सम्पादित होती थी उस समय उनके लेख भी सरस्वती में प्रकाशित हुए थे और बाद में भी हुए हैं। उनकी और पं० सनातन शर्म्मा सकलानी की कविता को श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित करता है। बाबू मैथिलीशरण की भी कविता का यही हाल है। कितने ही लोग उनकी कविता के लिए मुँह फैलाये रहते हैं। बाबू अयोध्यासिंह उपाध्याय की कविता का क्या कहना है। उसे सभा ने एक बार ख़ुद ही प्रकाशित किया है। बाबू कामताप्रसाद गुरु की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कविता सभा की कार्य्यकारिणी कमिटी के सभासद सप्रे महाशय सानन्द छाप रहे हैं। हाली की कविता पर दंश देने का सभा को अधिकार ही नहीं। पं० नाथूराम शङ्कर शर्म्मा जी की कविता की बड़े बड़े काव्यमर्मज्ञ तारीफ़ कर रहे हैं। अब रह कितने कवि गये। सिर्फ़ चार पांच। अच्छा तो क्या सभा सत्य को साक्षी करके कह सकती है कि इन सब कवियोंकी जो कविता सरस्वती में छपी, सभी भद्दी थी? यदि नहीं, तो इस सर्वग्रासी सम्मति के मानी क्या? वर्ष भर में कुल ३९ कवितायें सरस्वती में प्रकाशित हुईं। इनमें से १४ अकेले सम्पादक की हैं। इनमें दो हँसी-दिल्लगी की कवितायें भी शामिल हैं। हम अपने को हरगिज़ कवि नहीं समझते और हमें अच्छी कविता लिखना आता भी नहीं। इसीसे हमने अब कविता लिखना बहुत कुछ कम कर दिया है। पर कभी कभी मित्रों के अनुरोध से हमें लिखना पड़ता है। परन्तु सभा हमारी कविता के विषय में क्या राय रखती है सो सुनिए। सभा के यही मन्त्री, बाबू श्यामसुन्दरदास, प्रबन्धकारिणी सभा की आज्ञा से, सभा के सातवें वार्षिक-विवरण में लिखते हैं—

"हिन्दी पठित (?) समाज * * * * पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी को अत्यन्त अनुग्रहीत (?) है कि" * * उन्होंने "अपनी सरस और मनोहारिणी कविता से भाषा का भंडार भर रसिकों को प्रफुल्लित किया"।

परन्तु यद्यपि एक तिहाई से अधिक हमारी कविता प्रकाशित हुई तथापि सभा के मंत्री और कार्य्यकारिणी कमिटी के सभ्य रसिकों का मनोमुकुल प्रफुल्लित न हुआ। क्योंकि सब कविता भद्दी निकल गई। जो जन ६ वर्ष पहले सरस और मनोहारिणी कविता लिखना खूब जानता था वही अब उस तरह की कविता लिखना बिलकुल ही भूल गया। छ वर्ष और अधिक अभ्यास करने का शायद यह फल हुआ! भवतु। पाठक, आत्मविषयक हमारी इस चर्चा को दया करके क्षमा कीजिए। विवश होकर हमें अपने विषय में इतना लिखना पड़ा।

अच्छा तो भद्दी कविता सभा को पसन्द नहीं। उससे उसे दुःख होता है। अतएव चाहे जिस तरह की कविता का नाम सभा ने "भद्दी कविता" रखा हो उसे वह अपनी प्रकाशित पुस्तकों में कदापि न रखती होगी। क्योंकि जो जिस दोष को जानता है वह उसे नहीं आने देता। और यदि जान बूझ कर भी आने दे तो वह उसका निरा बालिशपन है। आज तक सभा की पत्रिका और उसकी प्रकाशित पुस्तकों में जो कवितायें निकली हैं उनमें से दो तीन तो हमारी हैं; बाक़ी दो तीन और सज्जनों की। शायद सभा को बहुत कम कवितायें ऐसी मिली हैं जो भद्दी न हों। इसीसे उसने आज दस बारह वर्ष में इतनी कम कवितायें प्रकाशित कीं। ख़ैर, हम अपने लिखे पद्यों की तो बात ही नहीं कह सकते। सभा की प्रकाशित अवशिष्ट कविताओं में दो ही तीन कवितायें प्रधान हैं। एक "हरिश्चन्द्र" नामक कविता। दूसरी "सभालोचनादर्श"। तीसरी वह लम्बी कविता जो सभा का भवन खोलने के समय पढ़ी और पीछे से प्रकाशित की गई थी। इन कविताओं को सभा ने यदि सर्वोत्तम कविता समझ कर न छापा होगा तो अच्छा तो ज़रूर ही समझा होगा। क्योंकि यदि सभा इनको भी भद्दी कविता समझती तो क्यों छापती? अतएव सभा की समझ के अनुसार इस प्रकार की कविता की गिनती शायद "भद्दी कविता" में नहीं। "शायद" हम इस लिए कहते हैं, क्योंकि नहीं मालूम "भद्दी" का सभा क्या लक्षण समझती हो। ख़ैर "भद्दी" कविता के लक्षण से च्युत सभा की प्रकाशित इन कविताओं के कुछ नमूने सुनिए—

हरिश्चन्द्र।

मृत्युलोक को मुकुट देस भारत जो सोहै।
ताके उत्तर पच्छिम भाग माहिँ मन मोहै १॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुनि मघवा अति ईर्षा सों मनहीं मन खीझ्यो।
पै निज भाव दुराइ बचन ऐसें पुनि सोझ्यो २॥

पर हित लखि दहिबो पर अहितहिं हेरि जुड़ैबो।
परम छुद्र मति काज जिन्हैं नहिँ कबहुं लजैबो ३॥

औ हरिचन्द अमन्द चरित को तौ गुन खांचत।
हृदय भूलि सब भाव एक आनंद रस रांचत ४॥

जाके तप ब्रह्माण्ड तप्यो हरि आसन डोल्यो।
जो तप बल छत्री सों ह्वै ब्रह्मर्षि कलोल्यो ५॥

पहुँचि कासिका में विश्राम नैक नृप लीन्ह्यो।
स्नानादिक करि चन्दचूर को बन्दन कीन्ह्यो ६॥

कहूं स्वान इक अस्थि खंड लै चाटि चिचोरत।
कहुं कारी महि काक ठोर सों ठोकि टटोरत ७॥

यों कहि दै असीस सब देवी देव सिधारे।
पुनि नृप टहरन लगे लट्ठ कांधे पर धारे ८॥

औ अबोध बालक हूं को बिलकत संग भेज्यो।
इक मरिबे कों छोड़ कहा जो नाहिं अंगेज्यो ९॥

भवन-प्रवेशोत्सव के समय पढ़ी गई कविता।

१—आप ही जिसकी है इतनी बेबसी,
है तरसती हाथ हिलाने के लिए।

२—देखकर उसकी भयानक बुरी गत
चुभ गई हर रोम में इनके सुई।

३—बीस कोटि मनुष्य की भाषा अभी
इस तरह सब भांति है पीछे पड़ी।

४—हिन्द, हिन्दू और हिन्दी के लिए
छोड़ करके राज सुख भोग भी।

५—आप लोगों पास ही है तो जरी
आपही लोग इसको सकते हैं बसा।

६—मुँह गुलाब से धोय कर सौ बार भी
नाम जिसका ले नहीं सकते हैं हम।

७—ऐ हमारे नागरी के सहायको,
ऐ अंधेरी कान के उज्जल रतन।

८—बात है क्या यह मेरे अधिकार की
भूल कर भी जो करें हम सामना।

९—दूर होवे ईस सब इसकी बला
जो भला न गिने इसे उसको है धिक।

१०—इसमें लिख सकते हैं चीठी तक नहीं
जो लिखेंगे भूल होगी सौ जगह।

सभा की यह बे-भद्दी या भद्दापनहीन कविता हुई। यदि इसी तरह की कविता से सभा को "आनन्द" या "सन्तोष" हो और उसका "दुख" दूर हो जाय तो प्रबन्धकारिणी कमिटी की आज्ञा से सभा आज्ञा करे, सरस्वती में ऐसी ही कविता प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जाय। परन्तु सब से अच्छी बात तो यह होगी कि बड़ी कृपा करके सभा प्रबन्धकारिणी कमिटी के सभ्य कवियों से, अथवा जिनको सभा कवि समझती हो उनसे, सब रसों की कविता का एक एक नमूना लिखवा कर प्रकाशित कर दे। उसी को आदर्श मान कर सब लोग कविता लिखें और भद्दी कविता के पाप से परित्राण पावें। यदि सभा ऐसा कर दे तो हिन्दी कविता के साहित्य को वह भद्देपन में डूबने से बचा ले।

अन्त में सभा से प्रार्थना है कि हमने इस लेख को सम्पादक की हैसियत से लिखा है। सभा के मेम्बर की हैसियत से नहीं। यह हम इस लिए कहे देते हैं, क्योंकि सभा शायद यह समझती है कि उसका मेम्बर होने के कारण उसके विषय में, विशेष करके उसके प्रतिकूल, कुछ लिखने की स्वाधीनता मानों हमने पहले ही उसके हस्तगत कर दी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरद ।

[१]

वर्षा गई शरद ऋतु आई ,
फैलाया अब इसने राज ;
चारों ओर शान्ति है छाई ,
हुए सुखी सब प्रजा-समाज ।
जो नदियां छिन छिन बढ़ती थीं ,
ज़ोर शोर से चढ़ने को ;
वे अब रोज़ रोज़ घटती हैं ,
रहा न जोश उमड़ने को ॥

[२]

धीरे धीरे वेग घटातीं ,
नदियां रेत दिखाती हैं ;
ज्यों नव-सङ्गम में सलज्ज हो ,
ललना जघन दिखाती हैं ।
दिन दिन सलिल सूखता जाता ,
मुनि अगस्त्य के आने से ;
जैसे लोभ भंग हो जाता ,
सब्र ख़ूब हो जाने से ॥

[३]

नीच कीच का नाम नहीं है ,
हुआ साफ़ कैसा पानी ;
जैसे मन सज्जन का निर्मल ,
अथवा सत्कवि की वानी ।
बादल-दल भी लोप हो गया ;
चपला-चमक-खड्ग-धारा
नहीं देख पड़ती है नभ में ;
विमल हो गया वह सारा ॥

[४]

सुभग सरोवर से दिनकर की
किरणें सीधी पड़ती हैं ;
धीमे धीमे वायु-वेग से
उठ उठ लहरें लड़ती हैं ।
इस ऋतु में जल नद-नालों का
अति सुहावना होता है ;
मानो चाँदी के पानी का
वह सुहावना सोता है ॥

[५]

नीले, लाल, शुभ्र कमलों से
स्वच्छ सरोवर छाये हैं ;
मत्त मधुप मधु पीने के हित
दूर दूर से आये हैं ।
शोभा ऊपर नीचे सम है ,
देख अक्ष चकराती है ;
चपल मछलियों की जल भीतर ,
क्रीड़ा अति मन भाती है ॥

[६]

यद्यपि बक-वृन्दों की माला
नभ में नहीं दिखाती है ;
इन्द्र-धनुष-युत मेघ-पांति भी
उमड़ घुमड़ नहिँ आती है ;
तौ भी आसमान की शोभा
सब का चित्त चुराती है ;
क्षीर-सिन्धु की सुखमा को भी
तृण-सम दूर हटाती है ॥

[७]

अब कल-कण्ठ नहीं कल करते ,
वह मोरों का नाच नहीं ;
चारों ओर नभोमण्डल में
श्याम घटा घन घोर नहीं ।
तौ भी नभ की छटा निराली
आँखों को सुख देती है ;
खिली चमेली वन उपवन में
चित्त चुराये लेती है ॥

[८]

मन्द वायु से चञ्चल चारु
डालियां जिनकी झूम रहीं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिले हुए फूलों को झुक झुक
ललित पत्तियां चूम रहीं।
रस पीकर मतवाले भौंरे
गूँजा जिन पर करते हैं,
वे कचनार विलोक वियोगी,
ठंढी साँसें भरते हैं॥

[९]

रात चन्द्र से, जल हंसों से,
भूमि कास से, पद्माकर
कुमुदों से, सब हुए धवल अति,
बाग़ मालती से, सुन्दर।
फूले हुए कास-कुसुमों की
शुभ्र छटा छा जाती है;
मानो बूढ़ी होकर वर्षा
सोच सोच पछताती है॥

[१०]

तारे सब गहने समान जिस-
के तन में हैं शोभ रहे;
घूंघट मेघ हटाने से मुख-
चन्द्र देख सब लोभ रहे।
नई कामिनी सी नित दिन दिन
ज्यों ज्यों तरुणाई चढ़ती;
चन्द्र-चन्द्रिका-सित-दुकूल
धारण करती रजनी बढ़ती॥

[११]

विमल चाँदनी खिली हुई है
सब का मन हरनेवाली;
उसे पान करते चकोर,
आंखें जिनकी लाली लाली।
होकर महामुदित मदमाते
मदकल शब्द सुनाते हैं;
घबराते सुन जिसे वियोगी,
संयोगी सुख पाते हैं॥

[१२]

पीपी नाद पपीहा करता,
उसे लगी स्वाती की आस;
और जलों को ज़रा न छूता,
है गुज़ारता बारह मास।
स्वाती से है उसका सच्चा
स्नेह, इसी से सहता प्यास;
इसी भांति तुम नारायण से
स्नेह करो बन उसके दास॥

[१३]

नारायण से जो तुम प्यारे!
सच्चा नेह लगावोगे;
ऋद्धि सिद्धि से भरी सदा सब
भुक्ति मुक्ति तुम पावोगे।
करके सब सुख-भोग वहां जब
अपर लोक में जावोगे;
तोड़ सभी बन्धन माया के,
ब्रह्मरूप बन जावोगे॥

[१४]

कविता द्वारा सदुपदेश ही
मैं सर्वदा सुनाता हूं;
इसी बहाने कभी कभी मैं
प्यारे हरि-गुण गाता हूं।
अब ईश्वर से यही विनय है,
हो सब लोगों का कल्यान;
भारत की दिन दिन उन्नति हो,
अज्ञ बनें विज्ञान-निधान॥

श्रीमुरारि वाजपेयी।

एक अशरफ़ी की आत्म-कहानी।

एक दफ़ा मैं एक पण्डित जी के साथ कलकत्ते गया। घूमते घामते हम दोनों अजायब-घर की तरफ़ जा निकले। अजायब-घर की बात ही क्या!—वहां की सभी चीज़ें अजीब हैं। कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश-देशान्तर के अद्भुत अद्भुत जीव जन्तु हैं; कहीं रङ्ग विरङ्गी चिड़ियां हैं; कहीं नाना प्रकार की मछलियां हैं; कहीं शेर कठहरे में बन्द इस बात को बताते हैं कि "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य"; और कहीं अजगरों को देखकर हिन्दुस्तान की अजगर-वृत्ति का स्मरण होता है।

इधर उधर घूमते फिरते हम दोनों वहां जा पहुंचे जहां सैकड़ों तरह की अशर्फ़ियां और सिक्के बड़े सज धज से रक्खे हुए थे। उनके विषय में आपस में बात छिड़ गई। बातों बातों, मेरे मित्र ने कहा कि पृथ्वी के सारे प्रसिद्ध-यात्रियों ने इन सिक्कों का चौथाई भी भ्रमण न किया होगा। और उनका तजरुबा तो इन सिक्कों के तजरुबे के पसंघे में भी नहीं आ सकता।

पण्डितजी की इस बात का प्रभाव मेरे हृदय पर बड़ा बेढ़ब पड़ा। उसी का विचार करते करते मैं उस रात को सो गया। निद्रा-देवी की गोद में शरण लेते ही उन अशर्फ़ियों में से एक अशरफ़ी मुझे देख पड़ी। देखते देखते वह एक रूपवती युवति होगई। थोड़ी देर तक हम दोनों एक दूसरे को बड़े ग़ौर से देखते रहे। कुतूहल और विस्मय की तरंगें बड़े ज़ोर से मेरे हृदय में उठने लगीं। इन कल्लोलमालाओं के थपेड़ों ने मेरे चित्त की स्थिरता की नौका को चकना चूर कर दिया। जब मैं बहुत कौतुकाक्रान्त हुआ तब मुझ से न रहा गया। मैंने पूछा—"देवि! कहिये आपका आना कैसे हुआ?" उसने बहुत ही मीठे स्वर से उत्तर दिया। उसने कहा—कल तुम मुझे देखकर नाना प्रकार के तर्क-वितर्क मेरे विषय में करते थे। इससे मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाने आई हूं। सुनिए—

मेरा जन्म नर्मदा नदी में हुआ था। "कैसे और किससे" के विषय में मैं कुछ नहीं बता सकती हूं। वहां से मुझे कुछ लोग आगरे लाये। वहां पहुंचने पर मेरे प्रायश्चित्त का समय नियत किया गया, क्योंकि मैं काफ़िरों के संसर्ग से अपवित्र समझी गई। अतः शुद्धि का होना आवश्यक था।

प्रायश्चित्त के लिए, नियत समय पर, पराधीन, मैं, अग्नि में डाली गई। अग्नि से भयंकर ज्वालायें निकलती थीं। अग्नि में पड़ने से मेरा सारा अल्हड़पन जाता रहा। एकदम मेरा शरीर तेजः-पुंज महात्माओं की तरह चमकने लगा। एक प्रकार की ज्योति मेरे शरीर से निकलने लगी, जिससे लोगों को चकाचौंध लगती थी। इसके बाद मैंने, ढाँचे में पहुंचते ही, चक्राकार रूप धारण किया। मेरे मुखचन्द्र पर कलमा और पीठ पर अरबी अक्षरों में यह लिखा गया—

سلطان العاظم محمد جلال الدین اکبر
بادشاه غازي خلد الله ملکه

वहां से निकलते ही मेरे दिल में सफ़र की सूझी। जी में यही हुआ कि अब मन-मानी यात्रा करें। इस स्वाभाविक लालसा के पूर्ण होने में मुझे लोगों से बहुत मदद मिली; हाथों हाथ मैं फिरने लगी। पांच ही वर्ष की अवस्था में अकबर का सारा साम्राज्य मेरे पैरों तले हो गया।

बीच में एक घटना हुई। उस समय नूरजहां अकबर के राज-महलों में थी। सलीम ने उसे अपने प्राण तथा प्रेम दोनों समर्पण कर दिये थे। वह उस पर दिलोजान से फ़िदा था। अकबर के मारे उसकी दाल न गलाई गलती थी। क्योंकि अकबर को यह बात नापसंद थी। अकबर ने उनके सम्मिलन को रोकने का बड़ा भारी प्रयत्न कर रक्खा था। जहांगीर न तो उसके चन्द्रानन को देख सकता, और न उसके वचनामृत को ही पान कर सकता था। मनसिज के तेज़ शरों ने उसके एक एक मर्म्म-स्थल को छेद डाला था।

जब वह इस मार से बहुत ही व्यथित हुआ तब उस मदान्ध ने, एक बांदी को मुझे और मेरी अन्य बहनों को—हम सब पांच सौ थीं—देकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसके द्वारा एक प्रेम-पत्र अपनी प्रियतमा के पास भेजा।

उस बांदी ने मुझे एक बनिये को दे दिया। बनिया पल्ले सिरे का मक्खीचूस था। उसने मुझे एक घड़े में कैद कर दिया। वहां जाने पर मुझे ज्ञात हुआ कि उसमें मेरे समान और भी १००० अभागिनी अबलायें कैद हैं। वहां केवल इतना ही सुख हमें था कि शाम सवेरे हम सबको स्वच्छ वायु का सेवन हो जाता था। बनिया प्रतिदिन दो बार हमें आँगन में निकाल कर गिनता था। इसी तरह दुस्सह दुःख भोगते भोगते बहुत काल बीत गया। एक दिन किसी अपरिचित मनुष्य ने आकर हमें निकाला। बाहर आने पर मालूम हुआ कि वह बनिये का एक-मात्र पुत्र था। उसका बाप, उस समय, मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। मुझे उसने एक हकीम को फ़ीस में दे दिया। हकीमजी ने मुझे अपनी जीवनमूरि नन्हींजान को भेंट किया। मेरे सुदिन फिर लौटे। मैं स्वच्छन्दतापूर्वक घूमने लगी। आप जानते ही हैं कि हमें सैर सपाटे से अधिक और कोई बात प्रियतर नहीं है।

सुख दुःख का जोड़ा है। एक से दिन किसी के नहीं रहते हैं। मैं आनन्द से इधर उधर घूम रही थी, कि इसी बीच में एक बुढ़िया ने मुझे थैली में रखकर ऊपर से डोरी जकड़ दी। मैं फिर कैद होगई। इस बुढ़िया का विश्वास था कि जब तक उसके पास अकबरी अशर्फ़ी रहेगी, तब तक उसे रुपये पैसे के लिए कभी किसी का मुंह न तकना पड़ेगा। बहुत दिनों तक मैं उसकी कैदी रही। अन्त में उसके पाप की नौका भर गई, क्योंकि वह मेरी सी अनेक अबलाओं को वृथा कैद में रखकर सताती थी। एक दिन वह यम-दूतों का शिकार हो गई। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसे कल्पान्त तक रौरव नरक भोगना पड़ेगा।

उसका कोई भी वारिस न था, अतः हमें राजकर्म्म-चारियों की कृपा से राज-कोष में कैद होना पड़ा।

बहुत समय तक हम राज-कोष में कैद रहीं। एक रोज़ बहुत सी अशरफ़ियां निकाली गईं। मैं भी उनमें थी। उस दिन बड़ी धूम-धाम थी। पर सब पर मुर्दनी छाई हुई थी। मानो, सब मुहर्रमी पैदाइश थे। ताज-महल के पास शाहजहां एक शव के पास खड़ा अश्रु-धारा से पृथ्वी को सींच रहा था। वह शव, जैसा पीछे मालूम हुआ, मुम्ताजमहल का था। खैर मुम्ताज की लाश ताज में गाड़ी गई। इस अवसर पर बड़ा दान दक्षिणा दिया गया और मैं एक अफ़ीमची मुल्ला के पाले पड़ी।

जैसे रात के बाद दिन आता है, वैसे ही दुःख के बाद सुख। अथवा यदि यह कहा जाय कि सुख का "बीज" दुःख है तो भी असंगत न होगा। मुल्ला साहब ने मुझे अफ़ीम बेचनेवाले को दिया। अहा! बहुत दिनों की बिछुड़ी हुई मुझे अपनी स्वतंत्रता फिर मिल गई। बीच में और भी कितनी ही घटनायें हुईं। पर उन सब का वर्णन मैं न करूंगी, क्योंकि अब रात थोड़ी ही रह गई है। परन्तु एक विशेष घटना का वर्णन करना मैं परमावश्यक समझती हूं, क्योंकि इसी घटना की बदौलत मैं ईरान जाने से बची।

जिस समय बहादुरशाह ने भारत के शासन को बाग-डोर को हाथ में लिया, उस समय मैं एक बूढ़े धनाढ्य के पास थी। जब वृद्ध ने काल के कराल गाल में समाने का अपना समय पास आया जाना तब उसने अपने सारे धन को कृष्णार्पण कर दिया। उसका पुत्र जुआरी था। इससे उसने एक पत्र के साथ सिर्फ़ मुझे उसके पास भेज दिया। मुझे देखते ही उसका हृदय-कमल विकसित हो उठा। परन्तु पत्र पढ़ने पर उसे मालूम हुआ कि मेरे सिवा बाप की धन दौलत का और कुछ भी हिस्सा उसे न मिलेगा। अतएव उसका शरीर क्रोध से धधक उठा और उसने मुझे ज़ोर से फेंक दिया। मैं एक सून-सान खंडहर के पास जा गिरी। बहुत समय तक मैं वहीं पड़ी रही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन कुछ यात्रियों ने वहीं पर अपना डेरा डाला। एक यात्री उसी खंडहर में जाकर एकान्त में कुछ सोचने लगा। बैठे बैठे वह एक छोटी सी लकड़ी से ज़मीन पर रेखायें खींचने लगा। ऐसा करने से मैं वहां भीतर से निकल आई। अहा! तब तो वह मारे ख़ुशी के गद्गद हो गया। यात्रियों से मालूम हुआ कि उस समय नादिरशाह ने दिल्ली में क़तलेआम का "नादिरशाही हुक्म" दे दिया था। इसी समय उसने शाही ख़ज़ाने और बड़े बड़े धनाढ्यों को भी लूटा और कोहनूर हीरे को भी ईरान ले गया।

ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है! यदि मैं उस खंडहर में न पड़ी रहती, तो क्या आश्चर्य्य कि मैं भी ईरान पहुंच जाती? क्या आश्चर्य्य कि मुझे भी उस ज़ालिम बादशाह के साथ साथ यात्रा करना पड़ता? तुच्छ से तुच्छ घटनायें तक जीवन-मार्ग को कैसे पलट देती हैं इस प्रश्न का उत्तर देने में बड़े बड़े तत्वदर्शी भी असमर्थ हैं।

अब मैं अपनी राम-कहानी के अन्तिम भाग का वर्णन करूंगी। मेरे जीवन का यह भाग बहुत ही विलक्षण है। इसी में एक ऐसी घटना हुई, जिसने मेरी जीवन-यात्रा का मार्ग बिलकुल ही उलट दिया—जिसने मेरी काया ही को पलट दिया। इसी घटना के कारण मुझे स्वाधीनता से सदैव के लिये हाथ धोना पड़ा। इसी घटना के कारण मुझे जन्म भर के लिये कारागार भोगना पड़ा। इसी हृदय-विदारणी घटना ने मुझे कल्पान्त तक अगाध शोक-सागर में ग़ोते खाने को फेंक दिया।

वे यात्री वहां से रवाने हुए। मैं भी उन्हीं के साथ साथ चली। हां, यहां पर यह बतला देना ज़रूरी है कि वे सब दस आदमी थे, और कपड़े लत्तों से धनी जान पड़ते थे। उनके साथ कुछ नौकर चाकर भी थे। उनका असबाब घोड़ों पर लदा था। वे जगन्नाथ जी को जाते थे।

वे सब चलते, ठहरते, और फिर चलते। इसी तरह हम सब नागपुर पहुंचे। शहर में पहुंचने की नौबत भी न आई थी, कि रास्ते ही में कुछ और मुसाफ़िरों से भेंट हुई। ये सब पचीस आदमी थे। इनके पास भी बहुत माल असबाब था। वे अपने को सौदागर कहते थे। नहीं मालूम इन सब से क्या क्या बातें हुईं जो यह ठहरा कि यात्री भी इनके साथ ही शहर के बाहर एक बाग़ में ठहरें।

आधी रात हुई। मैंने देखा कि सारे यात्री मरे पड़े हैं और जो सौदागर थे वे उन यात्रियों की जमा-जथा इकट्ठा करने में लगे हैं। जब सब माल वे इकट्ठा कर चुके, तब यात्रियों की लाशों को उन्हों ने कुछ दूर पर वहीं गाड़ दिया। हाय हाय! इन दुष्टों के इस अमानुष कर्म्म को देखकर मुझे मालूम हो गया कि वे ठग हैं। अब मुझे इन चांडालों के साथ रहना पड़ा। उन्होंने जबलपुर की तरफ़ पैर फेरा। पर जबलपुर तक वे पहुंचने भी न पाये थे कि कुछ सवारों ने उन्हें बीच ही में आघेरा और तब इन कपट-रूपधारी सौदागरों को मालूम हुआ कि अंगरेज़ महाराज ने उन्हें क़ैद कर लिया।

इतने में मेरी नींद टूट गई और अशरफ़न बीबी भी मेरी नज़रों से ग़ायब हो गईं।

वेंकटेशनारायण त्रिपाठी।

एक योगी की साप्ताहिक समाधि।

आश्चर्य्य की बात है कि इस देश में अनेक अद्भुत अद्भुत घटनायें होती हैं। पर यहां के पढ़े लिखे आदमियों में उत्साहाभाव और प्रबन्धरचना में रुचि न होने के कारण वे यहां के किसी पत्र या पुस्तक में नहीं प्रकाशित होतीं। वे हज़ारों कोस दूर, सात समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार, योरप और अमेरिका पहुंचती हैं। वहां के अख़बारों के द्वारा वे फिर इस देश में आती हैं। तब हम लोग उनकी नक़ल करके अपने को कृतार्थ मानते हैं।

योग इस देश की विद्या है। यद्यपि उसका प्रायः सर्वथा नाश हो गया है; तथापि अब भी ढूंढ़ने से कहीं कहीं सच्चे योगी देख पड़ते हैं। अभी, बहुत समय नहीं हुआ, एक योगी हरद्वार में सात दिन की समाधि धारण करके पृथ्वी के पेट में गड़ा रहा था। उस समय हरद्वार में एक अमेरिका-निवासी विज्ञान-विशारद भी मौजूद थे। आपका नाम है डाक्टर ब्राउन। प्राकृतिक-विज्ञान के आप आचार्य्य हैं। कई एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक सभाओं के मेम्बर हैं। आपने इस समाधि का हाल ४ मार्च, १९०६, को "संडे मैगेज़ीन" नामक अमेरिका की एक सामयिक पुस्तक में छपाया है। अमृत-बाज़ार-पत्रिका के पहले सम्पादक बाबू शिशिरकुमार घोष ने इसी वृत्तान्त को अपनी अध्यात्मविद्या-सम्बन्धिनी मासिक पुस्तक में नक़ल किया है। ब्राउन साहब ने लिखा है कि यह घटना उन्होंने अपनी आंखों देखी है। आपके लेख का मतलब अब आपही के मुँह से सुनिए—

हिन्दुस्तान अनेक गूढ़, अज्ञात और अद्भुत बातों की जन्मभूमि है। मैं वहां ३० वर्ष तक रहा। जितनी अद्भुत अद्भुत बातें मैंने वहां देखीं उनमें सबसे अधिक विस्मय पैदा करने वाली बात एक योगी की समाधि थी। यह योगी मृत्यु को प्राप्त हो गया, सात दिन तक ज़मीन में गड़ा रहा और आठवें दिन फिर खोद कर निकाला गया तो जी उठा। यह अलौकिक घटना हरद्वार में हुई। हरद्वार हिन्दुओं का पवित्र स्थान है। वह हिमालय के नीचे गंगा के तट पर है।

हरद्वार में हर बारहवें वर्ष एक प्रचण्ड मेला होता है। लोग दूर दूर से वहां जाते हैं। असंख्यात यात्री वहां इकट्ठे होते हैं। जिस घटना का वर्णन मैं करने जाता हूं, वैसी घटना कितने योरप-निवासियों ने देखी है, मैं नहीं कह सकता। पर इसमें सन्देह नहीं कि बहुत कम ने देखी होगी। उसे देखने के लिए मुझे रूप बदलना पड़ा। साहबी पोशाक में मैं वहां न जाने पाता। इससे मैंने ब्राह्मण का रूप बनाया और एक सभ्य हिन्दुस्तानी बन गया। इस काम में मुझे एक हिन्दुस्तानी मित्र ने बड़ी मदद दी। यह भी ब्राह्मण था और योगविद्या में प्रवीण भी था।

सुबह होने के बहुत पहले ही से हरद्वार के आस पास का प्रान्त कोसों तक कोलाहल और धूम धड़ाके से भर गया। हर सड़क से हज़ारों यात्री शहर में घुसने लगे। जैसे जैसे मन्दिर की तरफ़ यात्रियों के झुंड के झुंड चलने लगे वैसे ही वैसे शंख, भेरी और नगाड़ों के नाद आसमान फाड़ने लगे। प्रत्येक गली कूचा आदमियों से ठसाठस भर गया। नीचे यह हाल, ऊपर निरभ्र आकाश में लाल लाल सूर्य्य अपनी तेज़ किरणों की वर्षा करने लगा।

हम लोगों ने शक्कर के साथ थोड़ी सी गेहूं की रोटी और फल खाकर मन्दिर की तरफ़ प्रस्थान किया। इसी मन्दिर के हाते में योगिराज समाधिस्थ होने को थे। हम ज़रा जल्दी गये, जिसमें बैठने को अच्छी जगह मिल जाय। मन्दिर के फाटक पर हमें कुछ पुजारी मिले। उन्होंने हमारी अगवानी की। हमारे मित्र के वे मित्र थे। वे लोग हमें मन्दिर के अहाते में एक बहुत विस्तृत चौकोन जगह में ले गये। वह एक बड़ी वेदी सी थी। वहीं पर योगिराज समाधिस्थ होने वाले थे। हज़ारों पण्डित, पुजारी और पुरोहित दुग्धफेन-निभ वस्त्र पहने हुए वहां पहले ही से बैठे थे। हम वहां पहुंचे ही थे कि उपस्थित आदमियों में उत्तेजना फैल गई। इस आकस्मिक गड़ बड़ से सूचित हुआ कि कोई विशेष बात होनेवाली है।

हमारे मित्र ने कहा—"परमहंस महात्मा पर्वत के नीचे आ गये। अब वे यहां आ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप शायद जानते होंगे कि योगियों के आठ दरजे होते हैं। हर योगी को क्रम क्रम से योग के आठ अंगों की सिद्धि प्राप्त करनी होती है। एक की साधना करके दूसरी में प्रवेश करना पड़ता है। इन योगांगों के नाम हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। जो महात्मा आ रहे हैं उन्होंने आठों अङ्ग सिद्ध कर लिये हैं। मनुष्यों के सामने यह इनकी अन्तिम उपस्थिति है। अपना शेष जीवन अब ये एकान्त में व्यतीत करेंगे"।

बीस मिनट तक बेहद धूम धाम और कोलाहल होता रहा। शंख, नरसिंहा और भेरी आदि के शब्दों ने ज़मीन आसमान एक कर दिया। सहसा सैकड़ों तुरहियों से एक साथ महाकर्णभेदी नाद होकर कोलाहल एकाएक बन्द हो गया। उस चतुष्कोणाकृति चबूतरे के किनारे आगन्तुक साधुओं की भीड़ आने पर सारा गड़ बड़ एकदम बन्द हो गया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। उस आगत जन-समूह में सब दरजे के योगी थे। सिर्फ़ पहले दो दरजे के न थे। वे सब गुलाबी रंग के कषाय वस्त्र धारण किये हुए थे। सबके चेहरों पर गंभीरता टपक रही थी। चबूतरे का एक किनारा उनके लिए ख़ाली रख छोड़ा गया था। उसी तरह वे लोग चुप चाप चले गये और अपनी अपनी जगह पर जा बैठे। सबसे पीछे तीन योगी एक साथ आये। वे बहुत वृद्ध थे। उनका चेहरा बहुत ही प्रभावोत्पादक था। वे चबूतरे के बीच में जाकर उपस्थित हुए।

सब से पीछे परमहंस महात्मा दिखलाई दिये। ज्योंहीं वे चबूतरे के नीचे सीढ़ियों के पास पहुँचे, सारे पुजारी और पण्डित उठ कर कुछ दूर आगे बढ़े और दोनों हाथ ऊपर उठा कर उन्होंने अभिवादन किया। परमहंस जी चबूतरे पर चढ़ आये। उनके चबूतरे पर चढ़ आने पर उपस्थित पुजारियों और पण्डितों ने सिर झुका कर उन्हें प्रणाम किया। परमहंस जी के पास एक डंडा था। उसके ऊपर त्रिशूल बना हुआ था। उसी के सहारे वे धीरे धीरे चबूतरे के मध्य-भाग की तरफ़ चले। उनकी चाल से मालूम होता था कि चलने में उन्हें तकलीफ़ हो रही है। चबूतरे के बीच में पहुँच कर परमहंस जी खड़े हो गये और अपने झुके हुए शरीर को सीधा कर दिया। वे बिलकुल दिगम्बर थे। सिर्फ़ कमर में एक छोटा सा कषाय वस्त्र था। उनके सिर के बाल और डाढ़ी ख़ूब लम्बी थी। बाल बर्फ़ के सदृश सफ़ेद थे। एक भी बाल काला न था। सिर छोटा था। आखें आग की तरह जल रही थीं। वे भीतर घुस सी गई थीं। जान पड़ता था कि आखों के गढ़ों के भीतर जलते हुए दो कोयले रक्खे हैं। ऐसा कृशाङ्ग आदमी मैंने तब तक न देखा था। योगिराज की देह की एक एक हड्डी देख पड़ती थी। हाथ, पैर, छाती और पसलियों की हड्डियां मानों ऊपर ही रक्खी थीं। देखने से यही जान पड़ता था कि हड्डियों के ढेर के ऊपर काली त्वचा कस कर लपेट दी गई है। परमहंस जी का रूप रंग महा भयानक था। पर चेहरा ख़ूब तेजःपुञ्ज था। हाथ में त्रिशूल था; गले में बड़ी बड़ी गुरियों का रुद्राक्ष। भाल, बाहु और वक्षःस्थल पर भस्म की तीन तीन रेखायें थीं।

कुछ देर तक वे चुपचाप खड़े पुजारियों और पण्डितों की तरफ़ देखते रहे। फिर त्रिशूल को धीरे धीरे दो एक दफ़ा ऊपर नीचे करके मानों उन लोगों को उन्होंने आशीर्वाद दिया। फिर उस त्रिशूल को कुछ देर हाथ से नीचे लटका कर इस ज़ोर से ज़मीन के भीतर गाड़ दिया कि देख कर लोगों को आश्चर्य्य हुआ। किसी को आशा न थी कि परमहंस जी में इतनी शक्ति है। तब अपने दाहिने हाथ से उसके सिरे को ख़ूब मज़बूती से उन्होंने पकड़ लिया। मालूम होता था कि उन्होंने सहारे के लिए ऐसा किया। कुछ देर तक वे ऐसे ही निश्चल-भाव से खड़े रहे। दर्शकों में सन्नाटा छा गया। धीरे धीरे उनका शरीर कड़ा होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा। यह देख कर मुझे आश्चर्य्य हुआ। क्रम क्रम से उनको चेतना जाने लगी। परन्तु जैसे वे खड़े थे वैसे ही खड़े रहे। कुछ मिनटों के बाद वे बिलकुल ही निश्चेष्ट हो गये। देखने से यह मालूम होने लगा कि वे मिट्टी की निर्जीव मूर्त्ति हैं।

तब ओंकार का गान आरम्भ हुआ। वह अनेक प्रकार से ऊंचे नीचे स्वर में गाया गया। योगिराज की मूर्ति वैसी ही अचल और निश्चेष्ट खड़ी रही। इतने में जो योगी परमहंस जी के साथ आये थे उठे; उन्होंने वेदी की तीन बार प्रदक्षिणा की। ओंकार का गान तब तक बराबर होता रहा। उनमें से तीन बुड्ढे योगी परमहंस जी के पास पहुंचे। धीरे धीरे उनका हाथ त्रिशूल से उन्होंने छुड़ाया। दो परमहंसजी के शरीर को थामे रहे। तीसरे ने ज़मीन पर एक सफ़ेद चादर बिछाई। उस पर वह शरीर बड़ी सावधानी से रख दिया गया। देखने से शरीर निर्जीव जान पड़ता था। पर निर्जीव नहीं था। योगीश्वर समाधि-अवस्था को प्राप्त हो गये थे।

सब से ऊंचे दरजे के योगियों की एक टोली तब आगे बढ़ी। वे मिट्टी की एक लम्बी नांद को थामे हुए थे। यह नांद पहले ही से आग पर चढ़ा दी गई थी। इसमें गला हुआ मोम भरा था। हर एक योगी के हाथ में एक एक पैकेट था। उसमें सफ़ेद रंग की कोई चीज़ थी। उसे उन्होंने उस गले हुए मोम में डाल दिया। तब योग के प्रथम पांच अङ्गों में पारङ्गत कुछ योगी योगिराज के शरीर को ज़मीन में गाड़ने के लिए तैयार करने लगे। उन्होंने शरीर को सफ़ेद मलमल में कई दफ़े लपेटा और कपड़े के दोनों छोर सफ़ेद डोरी से कसकर बांध दिये।

परन्तु इसके पहले उन्होंने समाधिस्थ योगिराज की नाक, मुँह और आखों को एक विशेष प्रकार से तैयार किये गये मोम से ख़ूब बन्द कर दिया था। उन्होंने डोरियां पकड़ कर धीरे से शरीर को उठाया और मोम से भरी हुई नांद में डुबो दिया। फिर उसे निकाला और कुछ देर अधर में वैसे ही टांग रक्खा। जब ठंढा होने पर मोम सफ़ेद हो गया तब फिर शरीर को पहले की तरह उन्होंने नांद में डुबोया। आठ बार इस प्रकार मज्जन और उन्मज्जन हुआ। इधर यह काम हो रहा था उधर कुछ योगी शरीर को भूमिस्थ करने के लिए एक गर्त खोदने में लगे थे। कोई बीस आदमी कुदारी और फावड़े लिए हुए यह काम कर रहे थे। कुछ देर में कोई ८ फ़ीट गहरा गढ़ा खुद गया।

तब धार्म्मिक गीत-वाद्य आरम्भ हुआ। फिर वेदी की प्रदक्षिणा हुई। यह हो चुकने पर उन तीन वयोवृद्ध योगियों ने परमहंस जी के शरीर को लकड़ी के एक बाक्स में रखकर गर्त के भीतर उतार दिया। ऊपर से मिट्टी डाल दी गई और स्तूप सा बना दिया गया। स्तूप के ऊपर समाधिस्थ योगिराज का त्रिशूल गाड़ दिया गया।

यहां पर समाधि-विधि समाप्त हुई। सब पुजारी और पण्डित अपने अपने घर गये। मैं उठकर समाधि-स्तूप के पास गया। उसे मैंने ख़ूब ध्यान से देखा। आठ दिन तक मैं रोज़ वहां जाता रहा और स्तूप को ख़ूब सावधानी से देखता रहा। मुझे विश्वास है कि इन आठ दिनों में किसी ने उस पर हाथ नहीं लगाया। मेरे पास ऐसे अखण्डनीय प्रमाण हैं कि वह स्तूप जैसा पहले दिन था वैसा ही अन्त तक बना रहा। किसी से छुये जाने के कोई चिन्ह उस पर मैंने नहीं पाये।

आठवें दिन योगीश्वर का पुनरुत्थान हुआ—उनकी समाधि छूटी। फिर पूर्ववत् दर्शकों और पुजारियों की भीड़ हुई। फिर पूर्ववत् प्रदक्षिणा और गाना बजाना हुआ। उन्हीं योगियों ने स्तूप को खोद कर मिट्टी हटाई और बाक्स को बाहर निकाला। वह लकड़ी के एक तख़्त पर रक्खा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। बाक्स के ऊपर का तख्ता बिरंजियों से ख़ूब बन्द कर दिया गया था। वह वैसा ही मिला। कीलें निकाल कर बाक्स खोला गया। शरीर में लिपटी हुई मलमल की चादर धीरे धीरे खोल कर अलग की गई। आंख, नाक, कान और मुंह का मोम निकाला गया। मुँह ख़ूब अच्छी तरह धोया गया। इतना हो चुकने पर योगिवर्ग वहां से हट आया और वेदी की प्रदक्षिणा करके ओंकार का गान उसने आरंभ किया। बाजे भी बजने लगे। तीसरी प्रदक्षिणा के समय समाधि-मग्न योगिराज का शरीर कुछ हिला और कुछ ही देर में वे उठकर बैठ गये। उन्होंने अपने चारों तरफ़ इस तरह देखा जैसे कोई सोते से जगा हो।

यहां तक तो सब लोग पूर्ववत् बैठे रहे। परन्तु जहां योगिराज उठे और ज़मीन पर उन्होंने अपना पैर रक्खा तहां दर्शकों ने कोलाहल आरंभ कर दिया। शंख, भेरी, नगाड़ों और नरसिंहों के नाद ने पृथ्वी और आकाश एक कर डाला। सबके मुँह से एक साथ आदरार्थक शब्दों के घोष से कानों के परदे फटने लगे। बराबर दस मिनट तक तुमुल नाद होता रहा। किसी तरह धीरे धीरे वह शान्त हुआ। जिस क्रम से योगिराज ने वेदी पर पदार्पण किया था उसी क्रम से उन्होंने प्रस्थान भी किया। सबके पीछे आप, उनके आगे वे तीन जराजीर्ण योगी, उनके आगे और सब लोग। इस तरह परमहंस जी पास के एक पर्वत की गुफ़ा की तरफ़ गये। सुनते हैं अब वे अन्त समय तक वहीं, उस गुफ़ा में, रहेंगे और फिर कभी बस्ती में न आवेंगे।

इसके बाद साहब बहादुर ने अपने हिन्दुस्तानी मित्र से इस विषय में बहुत कुछ वार्तालाप किया और इस बात को साफ़ साफ़ स्वीकार किया है कि आध्यात्मिक बातों में इस देश ने जितनी उन्नति की है उतनी और किसी देश ने नहीं की।

सूर्य के धब्बे।

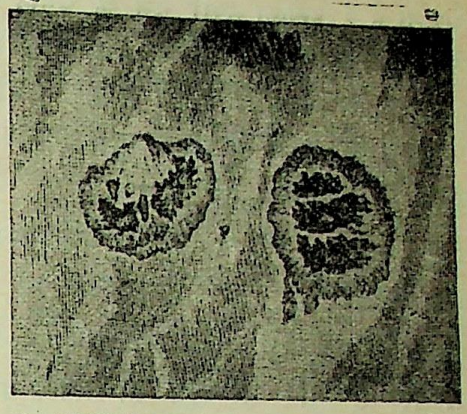

हाल में इस विषय पर बहुत कुछ वाद विवाद हुआ है कि कहीं परसाल के जाड़े की तीव्रता का कारण सूर्य के धब्बे तो नहीं हैं? परसाल बड़ा जाड़ा पड़ा। उसका डंका उत्तर ही में नहीं किन्तु वहां भी वह ख़ूब बजा जहां उसकी आवाज़ कभी नहीं सुनी गई थी। इस अपूर्व घटना का कारण सिवा उसके और क्या हो सकता है कि सूर्य अपनी तेज़ किरण-माला पृथ्वीमंडल पर पहुंचाने से असमर्थ रहा हो। ऐसी घटनायें यदि अल्पकालस्थायी न होतीं तो उनका नतीजा बहुत भयानक होता।

एक ही समय में सूर्य में धब्बों का दिखाई देना और थरमामेटर के पारे का असाधरण तौर से नीचे उतरना यह सिद्ध करता है कि इन दोनों में कोई विशेष सम्बन्ध है और एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव होना सम्भव है। इसी से आशा होती है कि इन धब्बों के ग़ायब होते ही सूर्य और पृथ्वी के दरमियान फिर पुराना सम्बन्ध स्थापित हो जाना चाहिए। यह आशा इस कारण और भी की जाती है कि जब जब और जहां जहां थरमामेटर का पारा गिरता है तब तब वहां वहां सूर्य में छोटे या बड़े धब्बे अवश्य दिखाई देते हैं। सूर्य-सम्बन्धी घटनायें इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्यारहवें वर्ष होती हैं। यहां पर यह सवाल हो सकता है कि सूर्य के धब्बों का प्रभाव पृथ्वी पर क्यों पड़ता है? इसका उत्तर देने के पहले यह जानने की आवश्यकता होगी कि सूर्य बना किस चीज़ का है; अथवा सूर्य क्या वस्तु है। अक्टोबर १९०५ की "सरस्वती" में इसका कुछ उल्लेख हो भी चुका है। सूर्य के ३ भाग हैं—

(१) सूर्य का पिण्ड, जो अधिक पिघली हुई दशा में है।

(२) अग्नि-मण्डल, जो तेजःपुञ्ज ज्वालाओं का मण्डल है और जो सूर्य का अत्यन्त तेजोमय भाग है।

(३) किरीट-मण्डल, जो पूर्वोक्त अग्नि-मण्डल के चारों ओर एक और मण्डल के रूप में है और जो किसी क़दर ठंढ़ी हुई वायु से बना हुआ जान पड़ता है।

स्पेक्ट्रास्कोप (Spectroscope) नामक यंत्र की सहायता से मालूम हुआ है कि जो वायु इस किरीट-मण्डल में हैं उनसे हम अच्छी तरह परिचित हैं। ये वायु चौदह पन्द्रह प्रकार के हैं और धातुओं से ही बने हैं। अर्थात् वायु के रूप ही में धातु हैं। इनमें से बहुत धातु ऐसे हैं जो ज़मीन पर कम पाये जाते हैं। मालूम होता है, सूर्य में वे अधिकता से हैं। किरीट-मण्डल रूपी इस प्रकाण्ड अग्नि का मुख्य भाग हाइड्रोजन (Hydrogen) है जिसकी लपटें उठती हुई स्पष्ट दिखाई देती हैं। इन लपटों की लम्बाई ७०,००० से ३ लाख मील तक होती है। किरीट-मण्डल के देखने का सौभाग्य सदा नहीं प्राप्त होता। क्योंकि अग्नि-मण्डल का लोकोत्तर प्रकाश उसे अदृश्य कर देता है। यह प्रकाश केवल खग्रास-ग्रहण के समय देखा जा सकता है। उस साल हिन्दुस्तान में खग्रास-ग्रहण हुआ था। गत वर्ष भी, ३० अगस्त को, सूर्य का खग्रास-ग्रहण हुआ था; पर इस देश में वह बहुत कम दिखाई दिया।

सूर्य की अनल-ज्वाला में वही अंश पाये जाते हैं जो पृथ्वी पर एक बहुत बड़ी जलती हुई आग में पाये जाते हैं; और दोनों एक ही सा काम करते हैं। जिन लोगों ने किसी इमारत को जलते हुए देखा होगा उन्हें मालूम होगा कि किस तरह लपटें इधर उधर उड़ा करती हैं। वायु चाहे शांत क्यों न हो, परन्तु लपटों की दौड़ धूप चली ही जाती है। कुछ तो इसका कारण वायु के वे झोंके हैं जिनको अग्नि ने उत्पन्न किया है; पर इसका विशेष कारण बिजली है। जब किसी स्थान में बहुत अधिक गरमी पैदा हो जाती है तब वहां बिजली के तूफ़ान आने लगते हैं। कौन नहीं जानता कि गरमी और बिजली में घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अग्नि-मण्डल केवल जलती हुई हवा का पुञ्ज ही नहीं, जो धीरे धीरे अपना प्रकाश और उष्णता फैलाता हो; किन्तु वह बिजली के प्रकोप से पैदा हुए तूफ़ानों का घर भी है। पृथ्वी के प्रचण्ड से भी प्रचण्ड, घोर से भी घोर, तूफ़ान इन तूफ़ानों के सामने कानपुर की विक्टोरिया पार्क (बाग़) में मन्द मन्द बहनेवाली वायु के बराबर हैं। अग्नि-मण्डल की लपटें, इसी कारण, इधर उधर भीम-वेग से उड़ा करती हैं। कहीं तो प्रकाश और उष्णता का समूह बहा करता है और कहीं अंधकार छाया रहता है। पृथ्वी से इसी अंधकार के स्थान हमें सूर्य के बिम्ब में धब्बे से प्रतीत होते हैं। और इन धब्बों का हर समय अपना रूप और स्थान बदलते रहना इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है। जिस तरह साधारण अग्नि-दाह में प्रकाश का कभी यहां अभाव हो जाता है, कभी वहां, इसी तरह अग्नि-मण्डल में भी कभी कहीं प्रकाश का अभाव हो जाता है कभी कहीं। अर्थात् सूर्य के धब्बे सदा अपना रूप और स्थान बदलते रहते हैं।

सूर्य का प्रकाश और उष्णत्व कभी घटता बढ़ता नहीं। परन्तु कभी कभी मालूम होता है, मानो प्रकाश और उष्णता ने सूर्य के उस भाग को छोड़ दिया है जो हमारी आँखों के सामने है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि हम किसी तरह अपने सामने वाले ग्रहों का हाल जान सकते तो यह विदित हो जाता कि जब जब सूर्य के धब्बों के कारण पृथ्वी पर प्रकाश और उष्णता की कमी होती है तब तब उन ग्रहों में उनकी अधिकता होती है।

यह बात पूंछी जा सकती है कि सूर्य-देव इस तरह प्रकाश और उष्णता का दान देने में कब तक समर्थ रहेंगे? अर्थात् क्या कोई ऐसा समय भी आवेगा जब सूर्य में इन चीज़ों का अभाव हो जायगा? प्रकाश और उष्णता अनन्त परमाणुओं के समूह हैं। ये परमाणु हमेशा ख़र्च होते या बदलते रहते हैं। एक मिनट में इन परमाणुओं की करोड़ों—नहीं अरबों—घनफ़ीट चादर ख़र्च होती है। इससे यह अनुमान करना अनुचित नहीं कि सूर्य की उष्णता और प्रकाश का ख़ज़ाना किसी दिन ख़ाली हो जायगा। यदि इसका पता लग जाता कि प्रकाश और उष्णता अपना काम करके कहां चले जाते हैं तो अवश्य भय की बात होती। पर इसका पता नहीं लगता। सम्भव है कि किसी बे-जानी क्रिया के द्वारा वे पृथ्वी में कहीं लोप हो जाते हों और फिर समय पर निकल आते हों; और इसी तरह पानी के दौरान की तरह अपना दौरा जारी रखते हों। पता सिर्फ़ इतना ही लगता है कि जीवात्मा की तरह वे पृथ्वी पर आते हैं, अपना काम करते हैं और फिर कहीं चले जाते हैं। पर कहां? मालूम नहीं।

सरयूनारायण त्रिपाठी।

हिन्दी-मिश्रित संस्कृत-श्लोक।

उर्दू के कवियों ने फ़ारसी ग़ज़लों पर उर्दू के मिसरे लगाये हैं। और उर्दू-ग़ज़लों में प्राचीन फ़ारसी ग़ज़लों के मिसरे खपाये हैं। संस्कृत-कवियों में गुमानी कवि ने भी इस प्रथाका अनुसरण किया है। पण्डित भीमसेन शर्म्मा ने इस कवि के तीन संस्कृत पद्य भेजे हैं जिनका अन्तिम चरण हिन्दी में है। यथा—

[१]

बलाधिकान् मन्त्रविदः सपापान्
हत्वा रणे तान् धृतराष्ट्रपुत्रान्।
शशास धर्म्मात्मज एव राज्यं
"आख़िर, भले का जग में भला है"॥

बल में अधिक, राजनैतिक दांव पेंच के मन्त्र जाननेवाले परन्तु पापात्मा, दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों को समर में मार कर युधिष्ठिर ही ने राज्य पाया। "आख़िर भले का जग में भला है"।

[२]

प्रज्ञावन्तो वीर्यवन्तो वनेषु
चेरुः पार्था दुःखिता दीर्घकालम्।
चक्रे राज्यं धार्तराष्ट्रः कुबुद्धिः
"जग् में सारी बात है बन् पड़े की"॥

बुद्धिमान् और शौर्यवान् होकर भी पांडव बहुत दिन तक जंगलों में दुःखित घूमते रहे। परन्तु दुर्बुद्धि दुर्योधन मज़े में राज्य करता रहा। सच है—"जग् में सारी बात है बन् पड़े की"।

[३]

रामवधूमहरद्दशवक्त्रो
बन्धनमाप मुधैव समुद्रः।
व्यक्तमसज्जनसङ्गफलं तद्
"दुर्जन के सँग वास न कीजे"॥

सीता को हर तो ले गया रावण; पर समुद्र व्यर्थ ही बाँधा गया। यह दुर्जन के साथ रहने का फल है। इससे—"दुर्जन के सँग वास न कीजे"।

इसी अर्थ का द्योतक एक और पद्य भी है पर उसका अन्तिम चरण हिन्दी में नहीं। मालूम नहीं वह पद्य किस का है। पर गुमानी के पद्य का और उसका अर्थ एकही है। देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[४]

दुर्वृत्तसङ्गतिरनर्थपरम्पराया
हेतुः सतां भवति किं वचनीयमेतत्।
लङ्केश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं
प्राप्नोति बन्धमथ दक्षिणसिन्धुराजः॥

दुर्जनों की सङ्गति से सज्जनों को अनेक अनर्थ-परम्परायें भोगनी पड़ती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। देखिए, सीता को हर तो ले जाता है रावण; पर बांधा जाता है बेचारा दक्षिण समुद्र!

कविवर रामकृष्ण ने भी अपने जयपुर-विलास में गुमानी के ऐसे कितने ही पद्य लिखे हैं। उनमें से दो तीन हम यहां पर देते हैं।

[५]

ज्वरार्दिता या कटुकान् कषायान्
न चोत्पिबेत् किं वद वैद्य देयम्?
निबोध हँसीमधुरप्रचारे!
"वहां बनफ़्शा-शरबत् पिलावे"॥

रामकृष्ण जी प्रसिद्ध वैद्य थे। आप से एक स्त्री पूछती है—"यदि ज्वर से पीड़ित कोई स्त्री कड़ुवे कषाय (काढ़े) न पीना चाहे तो उसे क्या दिया जाय"?। यह सुनकर वैद्यराज कहते हैं—"वहां बनफ़्शा शरबत् पिलावे"।

[६]

पित्तातापितशरीर-वल्लरी
सा सखी, वद "हकीम दवाई"।
औषधं शृणु मृगाक्षि मनोज्ञं
"जा गुलाब-गुलक़न्द खिलादे"॥

"मेरी सखी का शरीर पित्ताधिक्य से तप्त हो रहा है। हकीम जी, कोई दवा बतलाइए"। "बहुत अच्छा, मृगलोचनी, मैं एक बड़ी ही मधुर और मनोज्ञ दवा बतलाता हूं। जा, गुलाब-गुलक़न्द खिला दे"।

[७]

हा हन्त किं त्वमसि सुन्दरि दुःखितेव?
सा क्लिश्यते मम सखी, वद किं हि तस्याः?
अम्लोर्ध्ववायुरपि वैद्य न पच्यतेऽन्नं
"देना गुलाब जलसंग शिकंजवीना"॥

वैद्य—सुन्दरी, तुम इतनी दुःखित सी क्यों जान पड़ती हो?

स्त्री—मेरी सखी बीमार है।

वैद्य—उसे हुआ क्या है?

स्त्री—उसे अम्लोर्ध्ववायु है और अन्न नहीं पचता।

वैद्य—"देना गुलाब जलसंग शिकंजवीना"।

और एक आध कवि ने भी इसी तरह के मिश्रित पद्य बनाये हैं।

मनोरञ्जक श्लोक।

(अन्योक्तियाँ)

को हि तुलामधिरोहति शुचिना दुग्धेन सहजमधुरेण?
तप्तं विकृतं मथितं तथापि यत्स्नेहमुद्गिरति॥१॥

सर्वदा मधुर-रस के धारण करने वाले महा-ज्ज्वल दूध की बराबरी कौन कर सकता है? कोई नहीं। क्योंकि उसे चाहे कोई कितना ही तपावे, चाहे कोई कितना ही विकृत करे, और चाहे कोई कितना ही मथे; तिस पर भी वह प्रहारों को सहता हुआ प्रहारकर्त्ताओं के लिए स्नेह (चिकनाई = घी) ही देता है। शत्रुओं पर भी वह स्नेह रखता है, यह भाव॥ १॥

❋

प्राप्य प्रमाण-पदवीं को नामास्ते तुलेऽवलेपस्ते।
नेयास गौरष्टमधस्तात्तादृतरमुच्चैस्तरां कुरुषे॥२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण-पदवी को प्राप्त होकर, हे तुले (तराज़ू)! हम देखते हैं कि तुझको बहुत घमण्ड हो गया है। जो तुझे घमण्ड न होता तो क्या तू आज बड़ों को नीचा स्थान और छोटों को ऊँचा स्थान देती! यह तेरा अविवेक से भरा पक्षपात—यह तेरा अभिमान—तेरी प्रामाणिकता में कलङ्क लगाने वाला है॥ २॥

❋

गुरुषु मिलितेषु शिरसा प्रणमसि लघुषून्नता समेषु तुला।
उचितज्ञासि तुले किं तुलयसि गुञ्जाफलैः कनकम् ॥३॥

हे तुले! गुरु (भारी वस्तु) से मिलने पर तो तू बड़ी नम्रता से सिर झुका कर प्रणाम करती हुई मिलती है, बराबर वालों से बराबर खड़ी होकर मिलती है और लघु (हलकी वस्तु) से—जैसा कि चाहिए—ऊँची हो कर मिलती है। यह तेरा बर्त्ताव तो उचित ही है; पर यह तो बतला कि इस सुवर्ण ने तेरा क्या अपराध किया है जो तू इसको तुलना गुञ्जाफलों से करती है? ॥ ३॥

रामजीलाल शर्म्मा।

हँसी-दिल्लगी।

(टेसू की टाँग)

१—बजै आज यारों का *गाँग,
लाँग† नहीं, यह छोटा साँग‡।
तोड़ो इस टेसू की टाँग,
लड़को, फिर तुम छानो भाँग॥

२—इधर उधर से पैसे माँग,
मकतब मसज़िद में बन स्वाँग॥
देता था यह पहले बाँग,
बात नहीं यह कुछ भी राँग§॥

३—घर है इसका रेगिस्तान,
गुरू शेख़जो, मुग़ल, पठान।
ख़ुदा लड़कपन का भगवान,
आगे का अब सुनो बयान॥

४—अरबी का हो अफ़लातून,
दौड़ चला यह छूने मून*।
इतने में हो गया जिनून,
यह कोरा रह गया बफून†॥

५—देखो कुँजड़े की दूकान,
बैठ गया बस वहाँ जवान।
बरसों बेचे सब सामान,
डंडो पकड़ हुआ सज्ञान॥

६—इन्द्र-अखाड़े को एक हूर,
देख वहां पर इसका नूर।
उड़ा ले गई कोसों दूर,
जाकर की ख़ातिर भरपूर॥

७—पेशवाज उसने पहनाई,
चमकदार चोली कसवाई।
घुँघुरू बाँध, डुपट्टा ताना,
टेसू जी को किया ज़नाना॥

८—लगे थिरकने टेसू राजा,
बजा ख़ूब अलबेला बाजा।
ताता थेई को धुन लगी,
हया छोड़, भक्खर को भगी॥

९—देख ठाठ यह माशूक़ाना,
हुआ ख़लक सारा दीवाना।
"करता क्या बेचारा काज़ी,
मर्द और जोरू जब राज़ी"॥

१०—मुँह पर बाल हुए जब काले,
तब टेसूजो गये निकाले।
गिरे धड़ाम, उड़ गये धुर्रे,
बोलो लड़को, "हिप हिप हुर्रे"॥

---

* गाँग = घंटा। ‡ साँग = गीत।
† लाँग = बड़ा। § राँग = ग़लत।

* मून = चन्द्रमा। † बफून = भाँड।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११—रही न उठने की भी ताब,
एक टाँग के हुए जनाब।
क़लम आपने उससे बाँधी,
चलने लगी मिस्ले वह आँधी।

१२—कुन्द, मुकुन्द, और मुचुकुन्द,
भण्ड-भेष तुम चौपटचन्द।
चौपटचन्दी हाल सुनाऊं,
टेसू का सब मज़ा चखाऊं॥

१३—पूरब पच्छिम दौड़ लगाई,
नहीं पेट भर रोटी पाई।
तब सूरत ले सत्यानाशी,
बने आप गङ्गातटवासी॥

१४—अरबी, तुर्की वहां भुलाई,
"कक्का का" की तान उड़ाई।
सनद सफाचट ज्योंही पाई,
क़लम रेलसी झट दौड़ाई॥

१५—रहे खोलने में अलमारी,
घुसी उसी में विद्या सारी।
चौपट हुई अक्ल महरानी,
मरी उसी दम उसकी नानी॥

१६—नानी मरी कनागत आये,
टेसूजी तब बाहर धाये।
देखी धोबिन एक सयानी,
ले उसकी कुण्डी का पानी॥

१७—सात पुश्त के पुरखे तारे,
ख़ुद भी उसमें ग़ोते मारे।
सारी पूजा पाठ सँभाली,
स्वर्ग-लोक को सड़क निकाली॥

१८—काली ने एक शहर बसाया,
टेसू दौड़ वहीं पर आया।
टाँग वहीं उसने फैलाई,
पकड़ उसे दिन रात हिलाई॥

१९—नौमन खटमल जिस पर छाये,
टूटी ब्यंच, तख़्त, मँगवाये।
उन पर अपनी टाँग पसारी,
खटमल चाट गये दुम सारी॥

२०—गन्दा घर, भई गन्दा घर,
चादर चिथड़ों की दुखतर।
चने पड़े उस पर चुरमुर्रे,
बोलो लड़को, "हिप हिप हुर्रे"॥

२१—उसको एक कलूटा भाया,
कोट, बूट उसको पहनाया।
घड़ी एक उसके लटकाई,
उसके लिए टंक मँगवाई॥

२२—हुआ वही टेसू का प्यारा,
उम्र कोई सत्रह अठ्ठारा।
किया उसे आँखों का तारा,
या कहार या वह बनजारा॥

२३—उस पर टेसू करे सवारी,
देख हँस रही दुनिया सारी।
लड़के भगे हाथ रख सिर पर,
टेसू रहा अकेला घर पर॥

२४—जोरू तब जी में घबराई,
चीख़ मार रोई चिल्लाई।
टेसू ने उठ धता बताई,
"खल को खाय कालिका माई"।

२५—बनी एक चण्डाल-चौकड़ी,
टेसू हुआ उसी की कड़ी।
हिल मिल सब ने काम चलाया,
जो जैसा जिसको कर आया॥

२६—एक चकार चौकड़ी वाला,
घर से निकल हुआ मतवाला।
वह गुरुओं के घर को भगा,
बिना बुलाये जाने लगा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२७—क़दम चूम रज सिर पर रक्खी,
कूद पड़ी इतने में मक्खी।
मक्खी ने उड़ आग लगाई,
दुमची जलने लगी पराई॥

२८—अगर न सीताराम बचाते,
तो चकार जी जल भुन जाते।
यार न समझो इसे चकार,
यह पूरा पिशाच-अवतार॥

२९—ऐसा निपट नीच नर-पिल्ला,
गुरुओं का भी करता गिल्ला।
इससे ही टेसू को भाया,
"जैसा पति वैसोही जाया"॥

३०—तख़्त और एक सजकर आया,
उसे देख टेसू घबराया।
उठने लगे पेट में मुर्रे,
बोलो लड़को "हिप हिप हुर्रे"॥

३१—मुँह उसने तब अपना खोला,
मानों "मिल*" का बंबा बोला।
बक बक उसने ख़ूब लगाई,
हया शर्म सब धोय बहाई॥

३२—ए० बी० सी० डी० ई० एफ० सीख,
अँगरेज़ी में मारी चीख़।
देख संसकीरत का ख़्वाब,
उसमें भी कुछ दिया जवाब॥

३३—और तख़्तवाले चुप चाप,
सुनते रहे अनाप शनाप।
टेसू की गुस्ताख़ी देख,
मजलिस बिगड़ उठी सविशेष॥

३४—सिर बरसे लठ भारी भारी,
निकल गई गुस्ताख़ी सारी।
टाँग टूट कर नीचे आई,
टेसू ने उठ बाँग लगाई॥

३५—मैंने कुछ भी नहीं बिगाड़ा,
बस अब मुझे मिल गया भाड़ा।
मेरे सिर आया था भूत,
भूत नहीं, था यम का दूत॥

३६—अब वह उतर गया है भाई,
छोड़ो मुझको राम दुहाई।
मैं बेचारा बड़ा ग़रीब,
और करो मत मेरी पीब॥

३७—सिर का हुआ कचूमर ख़ासा,
देखा सबने ख़ूब तमाशा।
टेसू जी तब घर को भगे,
दौड़े लड़के पीछे लगे॥

३८—दुम में देदी दिया सलाई,
फिर टेसू की शामत आई।
जले भुने घर भीतर पैठे,
उसी तख़्त टूटे पर बैठे॥

३९—पड़े वहीं पर काँखा करते,
कुफल किये का चाखा करते।
फिर आयेंगे अगले साल,
जमने दीजे तब तक खाल॥

४०—बहुत दिनों तक टेसू रोये,
पूरे दो सौ साथी खोये।
पास लोग यदि अब हैं जाते।
काट उन्हें टेसू जी खाते॥

४१—लड़को आई दिव्य दिवाली,
जै काली कलकत्ते वाली।
उड़े ख़ूब ख़ुशियों के तुर्रे,
बोलो सब मिल "हिप हिप हुर्रे"॥

* मिल = कारख़ाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालरामायण ।

छपकर तैयार हो गया, मूल्य ॥)

इसमें रामायण के सातों काण्डों की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी-भाषा में लिखी गई है कि थोड़ी हिन्दी पढ़े हुए बालक और मामूली पढ़ी लिखी स्त्रियां भी इसको अच्छी तरह पढ़ कर समझ सकती हैं।

यह तो आप जानते ही हैं कि यह बचपन मिट्टी के कच्चे बर्तन की तरह है। मिट्टी के कच्चे बर्तन पर आप चाहे जैसा रंग चढ़ा सकते हैं, आप चाहे जैसी उस पर चित्रकारी कर सकते हैं; वह पकने पर भी वैसी ही रहेगी। पक जाने पर यदि आप चाहें कि हम इस पर दूसरा रंग चढ़ा दें या दूसरा चित्र खैंच दें तो यह हरगिज़ नहीं हो सकता। ठीक इसी तरह बचपन का भी हाल समझिए। बालक जैसा देखते या सुनते हैं वैसा ही वे भी करने लगते हैं। आज कल हमारे देश के बालकों के आचरण ऐसे घिनौने होगये और होते जाते हैं कि जिनको याद कर कर रोमाञ्च हो जाता है।

कारण यह है कि वे बचपन ही से ऐसे कुसंग में पड़ जाते हैं कि फिर उनका सुधरना सर्वथा असम्भव हो जाता है। वे मनमाने वाहियात क़िस्से कहानियां रटा करते हैं।

यदि आप अपने बालकों को सदाचारी बनाना चाहते हैं, यदि आप उनको संगति में डाल कर उनके जीवन को धार्मिक-जीवन बनाना चाहते हैं तो आप इस बालरामायण को मँगा कर उनको पढ़ने के लिये दीजिये। फिर देखिये वे कैसे सदाचारी, कैसे माता पिता और गुरुओं के भक्त होते हैं।

बालभारत ।

दूसरा भाग । मूल्य ॥)

इसमें महाभारत के अठारहों पर्वों की संक्षेप से कुछ कथा बड़ी सरल हिन्दी-भाषा में लिखी गई है। बालक, बालिकाओं और स्त्रियों के पढ़ने योग्य यह भी बहुत अच्छा उपदेशकजनक ऐतिहासिक पुस्तक है। इसके पढ़ने से महाभारत की अनेक कथाओं का ज्ञान हो जाता है। इसी बालभारत का दूसरा भाग भी छपकर तैयार हो गया। यह भी लड़कों के समझने योग्य सरल भाषा में लिखा गया है। इस में महाभारत से छाँट कर बड़े उत्तम उत्तम उपदेशों से भरी हुई २५ कथायें हैं। इसमें हर कथा के अन्त में शिक्षा भी लिखी गई हैं। मूल्य इसका भी वही ॥) है।

पुस्तक मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

स्वामी विवेकानन्द के गुरु परमहंस रामकृष्ण जी की परम मंगलकारिणी उक्तियों का संग्रह दृष्टान्त समुच्चय नाम की पुस्तक

आप अवश्य मंगवाकर पढ़िये।

मूल्य तीन आना, डाक महसूल ⅀॥

पता—इंडियन प्रेस, प्रयाग।

अलबेला रागिया ।

इस उपन्यास को मंगा कर पढ़िये हंसते २ लोट जाइयेगा इसमें प्रचलित कुचालों का नमूना भरा है। दाम सिर्फ़ ।=) डां० म० -)

दीनानाथ ।=), हम्माम का मुर्दा ।=), क़िले की रानी ।।।), अनूठी बेगम =), राजकुमार =), बीर जयमल ॥) इत्यादि और २ उपन्यास भी मिल सकते हैं।

पता—गोपाललाल खत्री, लाल बाग़, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

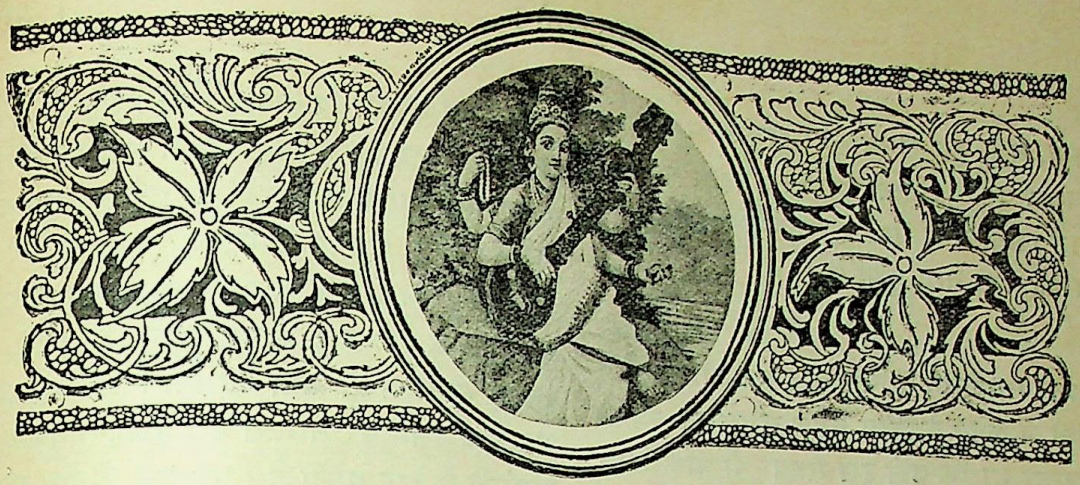

सरस्वती।

भाग ७] नवम्बर, १९०६ [संख्या ११

विविध विषय।

अक्टोबर की सरस्वती में मिरज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी का जीवन-चरित पाठक पढ़ चुके हैं। पाठकों के अवलोकनार्थ इस अङ्क में मिरज़ा साहब का चित्र प्रकाशित किया जाता है।

* * *

गत सितम्बर की २४ से २६ तारीख़ तक क़न्नौज में कान्यकुब्जों की सभा का वार्षिक अधिवेशन था। सभा के मन्त्री पण्डित शिवप्रसाद मिश्र, वकील, फर्रुख़ाबाद, के प्रस्ताव से वहां सभा में "ठहरौनी" पर एक कविता पढ़ी गई थी। वह इस संख्या में अन्यत्र प्रकाशित है।

* * *

फ़ोनोग्राफ़ का अब घर घर प्रचार होगया है। उसमें आदमी की बोली ज्यों की त्यों भरी जा सकती है और वह फिर ज्यों की त्यों, जब चाहो, सुनी जा सकती है। "टाइप राइटिंग्" मैशीन का भी अब सब कहीं प्रचार हो गया है। उसकी सहायता से आदमी यथेच्छ सब बातें "टाइप" में लिख सकता है—अपने मन के भाव टाइप से लिखे गये लेख के रूप में बाहर निकाल सकता है। परन्तु अब तक आदमी पियानो और हारमोनियम इत्यादि बाजों के सस्वर गाने को कल ही की सहायता से न लिख सकता था। यह अभाव भी अब दूर हो गया। वायना के रहनेवाले क्रोमर नामक एक मनुष्य ने एक ऐसा यंत्र निकाला है जो बटन या चाभी दबाने से बजनेवाले बाजे के साथ जोड़ दिया जाता है। उसके जोड़ने के बाद बाजे से जो कुछ गाना निकलता है वह उस यंत्र में आपसे आप लिख जाता है। अँगरेज़ी में सङ्गीत-लेखन के कुछ चिन्ह निश्चित हैं। उन्हीं चिन्हों में सब राग और रागिनियां, आपसे आप, काग़ज़ के टुकड़ों पर लिख जातीं हैं। ये टुकड़े यंत्र में पहले ही से लगे रहते हैं। बजानेवाला पियानो बजाता जाता है और यह यंत्र पियानो से निकली हुई आवाज़ को लिखता जाता है। इसके बनानेवाले आस्ट्रिया के रहनेवाले हैं। जर्मनी की राजधानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्लिन में, अभी कुछ समय हुआ, सङ्गीत से सम्बन्ध रखनेवाली एक प्रदर्शिनी हुई थी। उसमें यह यंत्र प्रदर्शित किया गया था। इसके बनानेवाले क्रोमर साहब का बड़ा नाम हुआ है।

* *
*

हमारे पास गुरु गोविन्दसिंह का जीवनचरित सरस्वती में छपने के लिए बहुत समय से रक्खा है। इरादा था कि उसे इस संख्या में प्रकाशित करेंगे। पर कई एक कारण ऐसे आ पड़े कि उसे हम न प्रकाशित कर सके। इसका हमें खेद है। लेखक महाशय कृपापूर्वक इस देरी के लिए क्षमा करें। अब अगले साल वह अवश्य निकल जायगा।

* *
*

अँगरेज़ी के प्रसिद्ध मासिकपत्र "रिव्यू आव रिव्यूज़" के सम्पादक ने डेढ़ डेढ़ सौ रुपये के पाँच इनाम उन लोगों को देने की घोषणा दी है जो इस विषय पर छोटे छोटे लेख लिखेंगे कि "पुस्तकावलोकन का प्रेम किस तरह पुनरुज्जीवित और प्रवर्द्धित किया जा सकता है"। जिनके लेख उत्तम समझे जायँगे उनको इनाम मिलेगा। कैसा उपयोगी विषय है। क्या ही अच्छा हो यदि इन लेखों के प्रकाशित होने पर इनका अनुवाद हिन्दी में भी निकले। इस विषय की एक छोटी सी पुस्तक अब भी है। जिन अँगरेज़ों में पुस्तकावलोकन से अखण्ड प्रेम है वे उस प्रेम की मात्रा को और भी अधिक बढ़ाने के उपाय ढूंढ रहे हैं। और हम लोग पुस्तकावलोकन से विकट विराग रख कर भी कान में तेल डाले बैठे हैं!

* *
*

अमेरिका में नई तरह से हिज्जे करने के नियमों की बहुत जल्द पाबन्दी होनेवाली है। सारे सरकारी काग़ज़ात अब नई रीति से ही लिखे जायँगे। प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट अपनी ख़ानगी चिट्ठियों में भी नई रीति से हिज्जे करेंगे। न्यूयार्क के शिक्षा-विभाग ने भी इस रीति को मंज़ूर कर लिया है। इससे अब स्कूली किताबें भी नई रीति से लिखी जायँगी। इस परिवर्तन-सम्बन्धी नियम बनाने के लिए भाषा-शास्त्र-विशारदों की एक कमिटी बनाई गई है। वह अपना काम बड़ी तेज़ी से कर रही है। नई रीति में इस बात का ख़ूब ख़याल रक्खा जायगा कि जो शब्द जैसा बोला जाता है वह लिखा भी वैसा ही जाय। देवनागराक्षर की जय! यह गुण उनमें पूरे तौर से है। उसीकी नक़ल अब अँगरेज़ी में होने वाली है। पर उर्दू के एक अनन्य-भक्त ने "ज़माना" में लिखा है कि नागरी अक्षर, सही सही उर्दू लिखने की शक्ति ही नहीं रखते। आपकी अन्धी दलीलों पर हमें कुछ कहना है। वह हम फिर कहेंगे। तब तक नई रीति से लिखी जानेवाली अँगरेज़ी का एक नमूना हम नीचे देते हैं। डूमंड नाम के एक साहब ने एक लेख इसी नई रीति से लिखा है। उसीसे हम नीचे के वाक्य उद्धृत करते हैं—

The memberz ov the Simplified Speling Board recomend a sertain coars, adopt the simplified formz in their publicashonz, and enjoin upon editorz to permit the same modificashonz in the publicashon ov contribushonz from memberz ov the Board. Professor Brander Matthews practises whot he preeches, and sucseedz in obtaining a platform for the propagashon ov hiz prinsiplz. Presept iz good, practis iz beter; but presept and practis ar more powerful in pulling down the fals and putting up the tru.

यह देख कर अँगरेज़ी अख़बारों के सम्पादक घबराये हैं। वे प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट की निन्दा कर रहे हैं और इस परिवर्तन को बुरा बता रहे हैं। पर यह उनकी भूल है। यह नई रीति सर्वथा उचित है। इससे अँगरेज़ी पढ़नेवाले को बहुत सुभीता होगा। यदि ग्रेटब्रिटनवाले इस रीति का अनुकरण न करेंगे तो और लोग ज़रूर करेंगे। अतएव कुछ दिनों में अमेरिकन एक नई ही भाषा हो जायगी और अँगरेज़ी सिर्फ़ अँगरेज़ों के राज्य में रह जायगी।

* *
*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालभारत का दूसरा भाग भी निकल गया। इंडियन प्रेस की प्रकाशित इस पुस्तक का पहला भाग जिन्होंने पढ़ा है उनको तो यह दूसरा भाग ज़रूर ही पढ़ना चाहिए। पर जिन्होंने नहीं पढ़ा, उनको भी इसे देखना चाहिए। इसमें महाभारत की उपदेशजनक और मनोरञ्जक २५ कथाओं का संग्रह है। भाषा लड़कों तक की समझ में आ सकती है। उनके तो यह पुस्तक बड़े ही काम की है। मूल्य सिर्फ़ आठ आने। छपाई और काग़ज़ वग़ैरह सब दिव्य।

* * *

मिर्ज़ापुर-निवासी बाबू काशीप्रसाद आजकल लंडन में हैं। गत अगस्ट में आप यहां से विलायत गये हैं। फ़्रांस के दक्षिण में मारसेलस् नाम का एक बन्दरगाह है। वहां पहुँचते ही आपने "सरस्वती" का स्मरण किया और विश्वविख्यात चित्रकार रैफ़ल के एक चित्र के फ़ोटो की एक कापी ली। असल चित्र रंगीन है और मारसेल्स की चित्रशाला (Picture Gallery) की शोभा बढ़ा रहा है। यह चित्र सेंट जॉन का है और अन्यत्र, इस संख्या में, प्रकाशित किया जाता है। असल रंगीन चित्र के सौन्दर्य्य का शतांश भी फ़ोटो में नहीं आ सकता। तथापि फ़ोटो के देखने से भी रैफ़ल के अद्वितीय चित्र-रचना-कौशल का अच्छा प्रमाण मिलता है। यह चित्रकार इटली का रहनेवाला था। इसे हुए चार पांच सौ वर्ष हुए। इसका कोई कोई चित्र दस दस लाख रुपये की क़ीमत का है!

* * *

प्रकृति ने कानपुर में एक अजीब खेल खेला है। उसने दो सिरवाली एक चतुर्भुजी लड़की पैदा की है। इस चतुर्भुजी लड़की ने एक साईस के घर जन्म लिया है। साईस स्टुअर्ड नाम के एक साहब के यहां नौकर है। इसको पैदा हुए अभी सिर्फ़ एक हफ़्ता हुआ। आज (१० अक्टोबर १९०६) तक यह जीती है। नाभि के पास से, ऊपर, इसके दो भाग हो गये हैं। प्रत्येक भाग सब तरह परिपूर्ण है। हाथ, मुँह, नाक, कान, आँखें, सिर सब अपने भाग में यथावत् हैं। इसका आकार अँगरेज़ी अक्षर 'वाई' (y) का ऐसा है। एक बालक का डील डौल कुछ बड़ा, दूसरे का कुछ छोटा है। जान पड़ता है दोनों बालकों का पिण्ड पहले अलग अलग था, पीछे से, नीचे का भाग एक हो गया। एक टाँग लड़के की मालूम होती है दूसरी लड़की की। लड़के की जननेन्द्रिय का कुछ चिन्ह भी देख पड़ता है। पर प्रधानता लड़की ही के अङ्ग की है। लड़की दोनों मुँहों से एकसाथ दूध पीती है और एक ही साथ रोती भी है। मिस्टर स्टुअर्ड की मेम साहबा ने इसके देखने के लिए टिकट लगा दी है और ख़ूब रुपया बटोर रही हैं। कहती हैं, यह रुपया लड़की की माँ के लिए है। इस लड़की का फ़ोटो प्रकाशित करने का विचार था; परन्तु फ़ोटो अच्छा नहीं निकला। इससे यह विचार अभी शिथिल कर दिया है। *

* * *

आगरे से निकलने वाला "स्वदेश-बान्धव" नामक मासिक पत्र ख़ूब तरक़्क़ी कर रहा है। इसकी छपाई और काग़ज़ दोनों अच्छे हैं। हर अङ्क में २४ पृष्ठ रहते हैं। तिस पर भी वार्षिक मूल्य सिर्फ़ एक रुपया है। इसमें कुछ दिन से अच्छे अच्छे उपयोगी लेख निकलने लगे हैं। प्रत्येक अङ्क में एक जीवन-चरित भी रहता है। स्त्रियों के जीवन-चरित जो इसमें निकलते हैं, ख़ूब शिक्षाप्रद होते हैं। इसे पढ़ कर स्त्रियां और बच्चे निःसीम लाभ उठा सकते हैं। इसके आक्टोबर के अङ्क में "समालोचना" पर जो लेख निकला है वह समालोचकों के मनन करने लायक़ है।

* * *

आक्टोबर की सरस्वती देखकर पण्डित चन्द्रधर शर्म्मा, बी० ए०, ने गुमानी कवि के कई हिन्दी-

* अब इस लड़की के माँ-बाप स्टुअर्ड साहब की नौकरी छोड़ कर अलग होगये हैं। १-११-०६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्रित संस्कृत-श्लोक भेजे हैं। उनमें से एक यह है—

दुष्कृतिनां प्रकृतिः किल घोरा
मानसबुद्धिरतीव कठोरा।
वाक् सुधया सदृशी रसपूरा
"मुँह में राम बग़ल में छूरा" ॥

दुष्ट जनों का स्वभाव बड़ा ही घोर होता है। उनकी आन्तरिक बुद्धि तो महाकठोर होती है; पर ऊपरी बातें अमृत-सदृश रसवती होती हैं। (ऐसों ही के लिए कहा गया है) "मुँह में राम बग़ल में छूरा"!

* *
*

जो सज्जन कृपापूर्वक उत्तम उत्तम लेख भेज कर सरस्वती की विशेष सहायता करते हैं उनके लेख और कवितायें पढ़ कर पाठकों के मन में उनके चित्र-दर्शन की उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है। इस विषय के कई पत्र हमारे पास आये हैं। उनमें आग्रहपूर्वक सूचना की गई है कि कभी कभी हम सरस्वती के प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखक महाशयों का चित्र अवश्य प्रकाशित किया करें। इस प्रणयानुरोध के वशीभूत होकर हम ने इस सूचना को स्वीकार कर लिया है। इसका फल-स्वरूप आज हम इस संख्या में झालरापाटन के राजगुरु श्रीपण्डित गिरिधर शर्म्मा का चित्र पाठकों को भेंट करते हैं। आप संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान् हैं। संस्कृतज्ञ बहुधा हिन्दी लिखना अपमानजनक समझते हैं। पर आपने हिन्दी को भी अपनाया है। आपकी हिन्दी-कविता सरस्वती में अनेक वार प्रकाशित हो चुकी है। इस वार भी है। उससे आपकी कवित्वशक्ति का अन्दाज़ पाठक अच्छी तरह कर सकते हैं।

* *
*

जिन ललित-कलाकल्पद्रुम राजा रविवर्म्मा का सचित्र जीवनचरित सरस्वती के तीसरे भाग में प्रकाशित हुआ था, जिनके मनोमुग्धकारी चित्रों से सरस्वती के पाठकों के नेत्र समय समय पर तृप्त होते आये हैं, जिनके चित्रित चित्रों पर अनेक कवितायें सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी हैं वे अब इस संसार में नहीं हैं। जिनकी चित्रकला-चातुरी ने योरप और अमेरिका तक के चित्रविद्या-विशारदों को मोहित कर लिया, यहां तक कि जर्मनी के चित्रकारों ने जिनको प्रतिस्पर्धा करके हार मानी और विवश होकर उनका चित्र बनाने का कारख़ाना कई लाख रुपये में मोल ले लिया, वे राजा रविवर्म्मा अपनी मानवलीला संवरण करके इस लोक से चल दिये! त्रावनकोर राज्य के एक गाँव में गत २ आक्टोबर को ५९ वर्ष की उम्र में आपका शरीर-पात हुआ। आपने चित्रकला में इतना नाम पैदा किया जितना आज तक किसी भारतवासी ने नहीं किया था। आपकी चित्र कला के नमूने इस समय इस देश के प्रायः सभी समर्थ आदमियों के कमरों की शोभा बढ़ा रहे हैं। कोई शहर शायद हो ऐसा हो जहां आपके बनाये हुए चित्र बाज़ार में न देख पड़ते हों। आपने अपने सुन्दर सुन्दर चित्रों से संसार भर के चित्रकारों को चकित कर दिया था। ऐसे अद्भुत चित्रकार के परलोकवास से "सरस्वती" बहुत शोकाकुल हुई है। ईश्वर राजा रविवर्म्मा के कुटुम्बियों को यह दुःसह दुःख सहने की शक्ति दे!

शेक्सपियर।

इंगलैंड के कालिदास, विलियम शेक्सपियर, का जन्म स्ट्रटफोर्ड-अपान-एवन (Stratford-upon-Avon) नामक स्थान में, २३ अप्रैल सन् १५६४ ई० को हुआ था। उसका बाप ऊन कातने का व्यवसाय करता था और कुछ दिनों तक वह एक जज का मातहत भी रहा था। शेक्सपियर की माँ का नाम आर्डिन था। उसका मायका वारिकशायर प्रान्त में था। शेक्सपियर की शिक्षा की ओर बड़ी बेपरवाही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गई थी। उसके बाप ने उसे छोटे पन ही से अपने व्यवसाय में लगा लिया था। अट्ठारह वर्ष की अवस्था में शेक्सपियर ने अपने एक पड़ोसी किसान की लड़की से व्याह कर लिया। इस लड़की का नाम मिस एन हाथवे (Miss Ann Hathaway) था और यह उम्र में शेक्सपियर से आठ वर्ष बड़ी थी।

शेक्सपियर के आरम्भिक जीवन के बारे में बहुत कुछ मालूम नहीं; और जो कुछ मालूम भी है उससे उसके चाल चलन की कुछ अच्छाई नहीं प्रकट होती। परन्तु यह निश्चित मालूम होता है कि अपनी किशोरावस्था में बुरे मनुष्यों की सङ्गति में शेक्सपियर की बहुत बैठक रहा करती थी। और, जैसा कि प्रायः ऐसी दशा में हुआ करता है, उसको इस बैठक के कारण बहुत कष्ट भी उठाना पड़ा। अपने कई साथियों के साथ वह बड़े आदमियों के बाग़ों से हिरन चुराया करता था। यह आदत उसकी यहाँ तक बढ़ गई कि एक आदमी ने तङ्ग आकर उस पर चोरी के अभिशाप में गिरफ़्तारी का वारंट निकलवा दिया। शेक्सपियर ने एक बड़े आदमी के बाग़ के फाटक पर एक बड़ी भद्दी हजो से भरी हुई कविता लिख कर चिपका दी। इस बाग़ में से आपने खूब हिरन चुराये थे। चाहिये था कि जिसके हिरन आपने चुराये थे उसके प्रति कुछ शिष्टता का व्यवहार करते। परन्तु इसके बदले आपने उस बेचारे को अपनी कविता में गधा और उल्लू तक बना डाला। इसी को 'चोरी और सीना ज़ोरी' कहते हैं। शेक्सपियर के अनेक चरित्र-लेखकों ने इस घटना को बिलकुल ही उड़ा दिया है, और बहुतों ने इसका उल्लेख तो किया है परन्तु यह कह कर उसके अपराध को हलका करने की चेष्टा की है कि अल्पवय में बहुधा युवक ऐसी बातें कर बैठते हैं। सच है प्रतिभाशाली मनुष्यों की बुराइयों पर परदा डालने का लोग ऐसे ही यत्न किया करते हैं। शेक्सपियर को इस बेवकूफ़ी से यह शिक्षा तो अवश्य निकलती है कि एक ऊंचे दर्जे की प्रतिभावाला मनुष्य भी बुरी सङ्गति के बुरे परिणाम और बुरे प्रभाव से नहीं बच सकता। चोरी के दण्ड से बचने के लिये शेक्सपियर को अपना जन्म-स्थान छोड़ देना पड़ा। वह लण्डन को भाग गया।

महारानी एलीज़िबेथ के समय में घोड़ा-गाड़ियों का प्रचार कम था। किराये पर गाड़ी करने का रिवाज था ही नहीं। इसलिये बड़ी शान वाले अमीरों और आलसी या सुकुमार लोगों को (जो पैदल चल नहीं सकते थे या चलना पसन्द नहीं करते थे) जब कहीं दूर, किसी काम के लिये, या नाच तमाशे में, जाना पड़ता था तब वे अपने घोड़ों पर जाया करते थे। लण्डन के थियेटरों को भी ऐसे लोग घोड़ों पर चढ़ कर जाते थे।

न्यायालय के डर से जब शेक्सपियर को लण्डन भाग जाना पड़ा तब पहले पहल रोटी कमाने का उसने यह ढंग निकाला, कि तमाशे के समय थियेटर के दरवाज़े पर वह खड़ा रहता, और जब कोई अमीर आदमी घोड़े पर से उतर तमाशा देखने जाता तब वह उसके घोड़े की बाग पकड़ लेता और जब तक अमीर साहिब नाटकाभिनय देखते वह उनके घोड़े की देख भाल किया करता। अभिनय समाप्त होने पर दो चार आने इन्हें भी मिल जाते।

इस व्यवसाय में वह इतनी फुर्ती और मुस्तैदी से काम करता था कि लोग उसे बहुत चाहने लगे थे। और जब तक शेक्सपियर मिल सकता था अपना घोड़ा वे और किसी के हवाले नहीं करते थे। होते होते इस व्यवसाय में शेक्सपियर को इतनी सफलता हुई कि उसने अपने नीचे दो चार लड़के नौकर रख लिये। ये लड़के इसकी निगरानी में काम किया करते थे। जब शेक्सपियर की पुकार होती तब इनमें से कोई लड़का हाज़िर हो जाता और कहता "हुज़ूर, मैं शेक्सपियर का नौकर हूं"। जब शेक्सपियर ने यह व्यवसाय छोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया तब भी बहुत दिनों तक ऐसे क़ायम मुक़ाम साईस 'शेक्सपियर के छोकरे' कहलाते रहे।

इस व्यवसाय को छोड़ने के बाद शेक्सपियर थियेटर में पात्र बनने लगा। सबसे पहले उसे हैमलेट को प्रेतात्मा का पात्र बनना पड़ा। परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं हुई। इसके बाद फिर उसने इस काम में दो एक बार कोशिश की, परन्तु सफलता न होने से उसने इस धन्धे को भी छोड़ दिया, और केवल नाटक लिखने का व्यवसाय स्वीकार किया। यह अच्छा ही हुआ; क्योंकि यदि ऐसा न होता तो आज हमें शेक्सपियर के इतने नाटकों से शायद वञ्चित ही रहना पड़ता। नाटक लिखने में शेक्सपियर को बड़ी सफलता हुई। उसके नाटकों की लोगों ने बड़ी क़द्र की। स्वयं महारानी एलीज़िबेथ ने उनको बहुत पसन्द किया और दो चार बार शेक्सपियर के नाटकों का अपने सामने अभिनय करवाया। महारानी ही की प्रेरणा से उनके चित्तानुरञ्जन के लिये शेक्सपियर ने 'मेरी वाइव्ज़ आफ़ विंडसर (Merry wives of Windsor) नामक नाटक की रचना की।

तीव्र बुद्धि और असीम प्रतिभा के अतिरिक्त शेक्सपियर में हँसने हँसाने के माद्दे का भी बहुत बड़ा अंश था। उसका शील-स्वभाव बहुत अच्छा था। इसलिये उसकी मित्रता के लिये लोग बहुत उत्सुक रहा करते थे। राजकीय सम्मान के अतिरिक्त राज्य के बड़े आदमियों में भी शेक्सपियर को बड़ा मान प्राप्त था। अर्ल आफ़ सौथम्पटन उसका बड़ा आदर करता था। एक बार प्रसन्न होकर उसने शेक्सपियर को पन्द्रह हज़ार रुपये दे डाला। एक बात शेक्सपियर में और थी। वह असन्तोषी नहीं था। जब उसने काफ़ी रुपया कमा लिया तब अपने जन्म-स्थान स्ट्रटफ़ोर्ड नगर में एक सुन्दर मकान ख़रीद कर वहां भलेमानसों की तरह शान्ति में वह अपना शेष जीवन व्यतीत करने लगा। अब तो लोग चाहते हैं कि मरते दम तक कुछ न कुछ पैदा ही किया करें; कभी विश्राम न लें। पचपन साल के नियम के अनुसार सरकार ज़बर्दस्ती पेन्शन दे रही है। पर आप जन्म-पत्री बदलवाये खड़े हैं। "अजी साहब, अभी हमारे पचपन साल पूरे हो नहीं हुए"। या डाक्टरों की ख़ुशामद कर रहे हैं—"साहब हमारी उम्र कम कर दो"। भई अब बहुत कमा चुके; परिश्रम का फल भोगो; आराम करो; और अन्य उठते हुए, ऊँचे हौसले वालों, नौजवानों के लिये जगह ख़ाली करो।

शेक्सपियर अपने मकान में आराम के साथ रहता था। उसके आस पास के सब लोग उससे बड़ा मित्र-भाव रखते थे। उसके समकालीन बड़े बड़े विद्वान् और लेखक उसके पास आया करते थे। प्रायः विद्वान् लोग और प्रतिभाशालीजन एक दूसरे से ईर्ष्या रक्खा करते हैं; परन्तु शेक्सपियर में यह बात न थी। वह अपने समकालीन विद्वज्जनों और प्रतिभा-सम्पन्नों के गुणों की सदा प्रशंसा किया करता था। शेक्सपियर के समकालीनों में बेन जान्सन एक प्रसिद्ध कवि था। वह पाण्डित्य और बहुज्ञता में शेक्सपियर से कहीं बढ़कर था। परन्तु वह शेक्सपियर की भांति प्रतिभाशाली और प्रत्युत्पन्नमति नहीं था। इन दोनों में बड़ी नोक झोंक रहा करती थी। साहित्य-जीवन में बेन जान्सन शेक्सपियर का "रक़ीब" था। वह शेक्सपियर पर बड़े तीव्र कटाक्ष किया करता था और शेक्सपियर भी उसे ख़ूब बनाया करता था। वह बेन जान्सन की पाण्डित्य-पूर्ण बातों को मज़ाक़ में डाल कर उसे शर्मा दिया करता था। परन्तु सामाजिक जीवन में दोनों बड़े सच्चे और अच्छे मित्र थे। दोनों का आपस में बड़ा हेल मेल था। कहते हैं कि एक रात स्ट्रटफोर्ड के होटल में एक भोज था। शेक्सपियर और बेन जान्सन भी उसमें शामिल थे। दोनों ने ख़ूब आनन्द मनाया और रात भर आनन्द से जागरण किया। शेक्सपियर ने ख़ूब मद्यपान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। रात भर जगने और बहुत सुरापान करने से शेक्सपियर को ज्वर आगया और उसी ज्वर में उसकी मृत्यु हुई। परन्तु बहुत लोग इस बात पर विश्वास नहीं करते। उनकी राय में शेक्सपियर ऐसे प्रतिभाशाली और विज्ञ मनुष्य का अतिशय शराब पीना असम्भव है।

यद्यपि शेक्सपियर ने अपने मन से व्याह किया था, तथापि उसका वैवाहिक जीवन बिलकुल ही शान्ति और सन्तुष्टता-पूर्ण नहीं था। स्त्री-पुरुषों में कभी कोई बड़ी लड़ाई नहीं हुई; परन्तु प्रायः आपस में चटख़ ज़रूर जाती थी। शायद शेक्सपियर की एकाध और प्रेमिकाओं का होना ही इस दम्पति-कलह का कारण हो।

अपने स्वास्थ्य को बिगड़ता देखकर सन् १६१६ के आरम्भ में शेक्सपियर ने अपना वसीयतनामा लिखा। इस वसीयतनामे का पहला पैरा पढ़ने योग्य है, क्योंकि उससे इंगलैंड के सर्वप्रधान नाटककार का ईसाई धर्म में अटल विश्वास प्रकट होता है। वह पैरा यह है—

"प्रथम, मैं अपनी आत्मा अपने स्रष्टा ईश्वर, को सौंपता हूं। मैं आशा करता हूं और दृढ़ विश्वास रखता हूं कि अपने एक मात्र त्राता, ईसामसीह के सद्गुणों के निहोरे पारलौकिक जीवन मुझे भी हिस्सा मिलेगा। जिस पृथ्वी का मेरा शरीर बना हुआ है उसी को मैं उसे सौंपता हूं।"

उसी साल, एप्रिल महीने में, शेक्सपियर की मृत्यु हुई। स्ट्रटफोर्ड के गिरजाघर की वेदी को उत्तर दिशा में वह समाधिस्थ किया गया। उसकी समाधि के ऊपर उसके स्मरण में कटि से ऊपर के भाग की उसकी प्रस्तरमयी मूर्ति (bust) स्थापित की गई। समाधि पर लगे हुए पत्थर पर एक चतुष्पदी कविता खोदी गई। कहते हैं कि इसे स्वयं शेक्सपियर ने पहले ही से रच रक्खा था। वह कविता यह है—

"Good friend, for Jesus's sake forbear,
To dig the dust enclosed here;
Blest be the man who spares these stones,
And curst be he who moves my bones."

अर्थात्—जो मिट्टी यहां गड़ी हुई है उसे, हे सन्मित्र, ईसामसीह के निहोरे वैसी ही गड़ी रहने दे। उसे खोदे मत। जो इन पत्थरों को न छेड़े उसका ईश्वर कल्याण करे और जो इन्हें इधर उधर हटा कर इनकी शान्ति-भङ्ग करे उसे ईश्वर दण्ड दे!

शेक्सपियर की प्रतिभा केवल कविता ही के लिए न थी। यदि उसके जीवन को घटनाओं और अवस्थाओं का वेग उसे जीवन के किसी और मार्ग में ले जाता तो वहां भी वह अपनी प्रतिभा के बल से चमत्कारिक कार्य्य कर दिखाता। प्रायः कवि आदि साहित्य-सेवी जन साहित्य ही के रंग में मस्त रहते हैं। दुनिया के और कामों में न तो उनका मन ही लगता है और न उनमें उन कामों के सम्यक् करने की योग्यता ही रहती है। रुपये पैसे की ओर उन्हें बेपरवाही होती है, और सांसारिक कार्यों में प्रबन्धदक्षता उनमें नहीं पाई जाती। परन्तु शेक्सपियर में यह कमी नहीं थी। सांसारिक बातों में भी वह बड़ा चतुर था। यदि वह किसी राज्य का सचिव बना दिया जाता तो वह सचिव-धर्म को भी बड़ी योग्यता के साथ निबाहता। यदि वह पार्लियामेंट का सभ्य हो जाता तो राजनैतिक बातों में वह अच्छा नाम पाता। अपने रुपये पैसे के मामलों में वह बड़ी होशियारी से काम करता था।

इंगलैंड में डाक्टर जान्सन एक बड़े नामी साहित्य-गुरु हो गये हैं। उनके पहले लोग शेक्सपियर को भूल से गये थे। यह उन्हींके उद्योग का फल है कि शेक्सपियर की ओर सर्वसाधारण की रुचि फिर से जागृत हुई।

शेक्सपियर ने सब मिला कर कोई छत्तीस नाटकों की रचना की और बहुत से छोटे छोटे फुटकर काव्य भी लिखे। ये काव्य प्रायः एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन्दर लड़के या एक सुन्दरी लेडी को लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनसे भी शेक्सपियर की प्रतिभा प्रकट होती है। लोगों का ख़याल है कि यह सुन्दरी शेक्सपियर की प्रेमिका थी और लड़का शेक्सपियर का 'रक़ीब', परन्तु परमस्नेह-भाजन। संयोगान्त, वियोगान्त दोनों प्रकार के नाटक शेक्सपियर ने लिखे हैं। अपने नाटकों की कथा वह प्रायः पुराने क़िस्से कहानियों या नाटकों से लिया करता था। ऐतिहासिक मनुष्यों और घटनाओं को भी लेकर उसने कई नाटक लिखे हैं। रोम के इतिहास के आधार पर भी उसके बनाये हुए कई नाटक हैं। लव्ज़ लेबर लास्ट (Love's Labour Last) नामक नाटक सर्व-सम्मति से शेक्सपियर का प्रथम नाटक माना जाता है। रोमन इतिहास के आधार पर लिखे गये कोरियोलेनस (Coriolanus) को उसकी सब से अन्तिम रचना लोग मानते हैं। इसकी सृष्टि सन् १६०९ ई०, अर्थात् शेक्सपियर की मृत्यु के सात वर्ष पहले, हुई थी। मर्चेण्ट आफ़ वेनिस, किङ्ग लियर, मैकबेथ और हैमलेट शेक्सपियर की सर्वोत्तम रचना समझे जाते हैं। इनमें से पहले, दूसरे और तीसरे का हिन्दी-भाषा में भी अनुवाद हो चुका है। इनके सिवा ऐज़ यू लाइक इट, रोमियो जुलियट, टेम्पेस्ट, जुलियस सीज़र, मिड समर नाइट्स ड्रीम, ओथेलो और रिचार्ड दि सेकण्ड भी उसकी परम प्रसिद्ध कृतियां हैं। इनमें से भी ऐज़ यू लाइक इट टेम्पेस्ट, ओथेलो और रोमियो जुलियट का हिन्दी-भाषान्तर हो चुका है। इन अनुवादों के अवलोकन से हिन्दी-प्रेमियों को शेक्सपियर की प्रतिभा का कुछ न कुछ पता अवश्य ही लग सकता है। इसके कई नाटकों की आख्यायिकायें सरस्वती में भी प्रकाशित हो चुकी हैं।

यद्यपि अपने नाटकों के कथानक को शेक्सपियर प्रायः अन्य स्थानों से लिया करता था, परन्तु पात्रों के चरित्रों का चित्रण स्वयं उसके मस्तिष्क की कृति है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार पात्रों के क्रिया-कलापों का निबाहना, एक कोरी कथा को सुन्दर आवरण द्वारा सुघर करना और उसको सरस बनाना, आदि बातें शेक्सपियर का काम है। शेक्सपियर के नाटकों में मानव-जीवन की सभी दशाओं तथा पहलुओं का सच्चा चित्रण है।

डाक्टर जान्सन ने शेक्सपियर की प्रतिभा के सम्बन्ध में जो कहा है वह बहुत ही ठीक कहा है। उसी को यहां पर उद्धृत करके हम इस छोटे से लेख को समाप्त करते हैं। डाक्टर जान्सन ने लिखा है—"शेक्सपियर सारे लेखकों से, या कम से कम आज कल के सब लेखकों से, बढ़ कर प्राकृतिक कवि है। शेक्सपियर वह कवि है कि जो अपने पाठकों के सामने जीवन और मनुष्य-स्वभाव का सच्चा आईना रख देता है। उसके पात्र, स्थान-विशेषों की उन रीति रिवाजों से परिमित और निर्मित नहीं होते हैं जोकि संसार के अन्य स्थानों में न प्रचलित हों। न वे अध्ययन-विशेष व व्यवसाय-विशेष की उन विशेषताओं से विशिष्ट होते हैं जोकि थोड़े ही मनुष्यों पर अपना प्रभाव डाल सकती हों। और न वे पात्र सर्वदा बदलने वाले फैशन और क्षणिक मतों से ही बद्ध होते हैं। शेक्सपियर के पात्र साधारण जनता के ठीक अवतार हैं। वे संसार में सदा और सब ठौर मौजूद हैं और जांच करने से वे सब काल में पाये जा सकते हैं। अर्थात् शेक्सपियर के पात्र एक-देशीय और एक-कालीन नहीं, वरन सर्वदेशीय और सर्वकालीन हैं। शेक्सपियर के मनुष्य उन्हीं साधारण मनोरागों की प्रेरणा से बोलते और काम करते हैं जो संसार के सभी मनुष्यों के चित्तों को क्षुब्ध किया करते हैं, और जिनसे कि यह समस्त जीवन-जंजाल सञ्चालित होता हुआ जारी रहता है। अन्य-कवियों की कृतियों में पात्र, बहुधा व्यक्ति-विशेष होता है। पर शेक्सपियर की कृतियों में वह साधारणतः कोई मामूली मनुष्य होता है"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् शेक्सपियर के पात्रों के गुण और त्रुटियाँ संसार के सभी मनुष्यों में पाई जा सकती हैं। आगे चल कर डाक्टर जान्सन कहते हैं कि यही पात्रगत सर्वव्यापकता इस बात का प्रधान कारण है कि शेक्सपियर की कृतियों को संसार के सब देशों और सब कालों के लोग पसन्द करते हैं। और उनकी शिक्षाओं को ग्रहण भी करते हैं।

सूर्य्यनारायण दीक्षित।

उद्बोधन।

[१]

तेजस्वियो! तेज ज़रा दिखा दो;
सच्छास्त्रविद्या सबको सिखा दो;
जो सो रहे हैं उनको जगा दो;
आलस्य सारा उनका भगा दो।

[२]

तजो निरी भोजनभट्टता को,
स्वदेश को शीश सभी झुकावो;
हे ब्राह्मणो! "हैं हम अग्रजन्मा"
संसार को आज यही बता दो।

[३]

हे क्षत्रियो! क्षत्रियता तुम्हारी
छिपी नहीं है जन-ताप-हारी;
मालिन्य सारा उसका उड़ा दो;
अनैक्य का मूल सभी मिटा दो।

[४]

स्वराज्य में क्षत्रिय-भूमिपाल!
विद्या-कला-कौशल की कला को
सर्वत्र हे वीरवरो! बढ़ा दो;
यशःपताका जग में उड़ा दो।

[५]

वैश्यो! दुखी गोगण हो रहा है;
वाणिज्य भी चौपट हो चला है;
कहीं न अच्छी कृषि की दशा है;
जीते तुम्हारे यह क्या दशा है?

[६]

व्यापार-वाणिज्य यहां बढ़ादो;
अच्छे चला दो कल कारख़ाने;
विदेशियों को प्रतियोगिता में
प्यारो! उन्हींके घर में बिठा दो।

[७]

उत्पत्ति शूद्रो! प्रभु के पदों से
पवित्र गङ्गा-सम है तुम्हारी;
कर्तव्य पालो अपना; खड़े हो;
पीछे किसीसे तुम क्यों पड़े हो?

[८]

उठो उठो शीघ्र, करो न देरी;
है एक ही तो यह बात मेरी;
स्वदेश-सेवा-व्रत को उठावो;
आनन्द का सिन्धु, उठो, बहावो।

[९]

हे भामिनीओ! कुलकामिनीओ!
ये चूड़ियां हैं परदेशियों की;
कलङ्क भारी पहनो इन्हें जो,
छोड़ो, ज़रा तो मन में लजाओ।

[१०]

शोभा तुम्हारी इनसे ज़रा भी
कभी कहीं भी जग में न होगी;
स्वदेश का जो कुछ हो उसे ही
धारो चहो जो अपनी भलाई।

[११]

प्रधान कर्तव्य सपूत का है
प्रसन्न माँ को रखना सदैव;
हे भाइयो! भारत-भूमि-माँ की
सेवा करो, धर्म्म यही तुम्हारा।

गिरिधर शर्म्मा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"शिक्षा" की भूमिका।

अँगरेज़ी की दो चार उपयोगी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करने का जो हमने विचार किया है उसका यह दूसरा फल है। योरप के तत्वज्ञानियों में महादार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर का स्थान सब से ऊंचा है। बड़े बड़े विद्वानों तक ने आपको पाश्चात्य-दार्शनिकों का शिरोमणि माना है। यह पुस्तक आपही की "एजुकेशन" (Education) नामक अँगरेज़ी पुस्तक का हिन्दी-अनुवाद है। इस अनुवाद को हमने अभी कुछ ही दिन हुए समाप्त किया है।

शिक्षा की जैसी विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण मीमांसा इस पुस्तक में की गई है वैसी आज तक और किसी ने नहीं की। शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकों में यह पुस्तक अद्वितीय है। स्पेन्सर की पुस्तकों में से जितना प्रचार इस पुस्तक का हुआ है उतना और किसी का नहीं हुआ। योरप और एशिया की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हो गये हैं और होते जा रहे हैं। अमेरिका में तो इस पुस्तक का बहुत ही अधिक आदर हुआ है। आज तक इसकी लाखों कापियां छपकर बिक चुकी हैं और बराबर बिक रही हैं। स्पेन्सर ने इस पुस्तक में ऐसी योग्यता से शिक्षा की मीमांसा की है और ऐसे अखण्डनीय प्रमाणों से अपने कथन को सिद्ध किया है कि उसके सिद्धान्तों को मानने में प्रायः किसी को भी "किन्तु"—"परन्तु" करने की जगह नहीं रह गई। स्पेन्सर के सिद्धान्तों के प्रायः सर्वांश को मान्य समझ कर अँगरेज़ों ने अपने देश में अपनी शिक्षाप्रणाली में परिवर्तन आरम्भ कर दिये हैं और जैसे जैसे सुभीता होता जाता है वैसे वैसे वे यथासमय बराबर परिवर्तन करते चले जा रहे हैं। इतने ही से इस पुस्तक की योग्यता और उपयोगिता अच्छी तरह समझ में आ सकती है। शिक्षा-प्रचार के सम्बन्ध में इँगलैंड के मुकाबले में बेचारा भारतवर्ष कोई चीज़ ही नहीं। इस देश में तो शिक्षा की बड़ी ही हीन दशा है। अतएव हम लोगों के लिए तो स्पेन्सर के शिक्षा-विषयक सिद्धान्तों के जानने और तदनुसार व्यवहार करने की बहुत ही अधिक आवश्यकता है। बालक, युवा और वृद्ध सब के लिए, यह पुस्तक समान उपयोगी है। स्पेन्सर ने इस बात को सप्रमाण सिद्ध कर दिखाया है कि अपनी सन्तति का जीवन सार्थक करना अथवा उसे आमरण महादुर्दमनीय आपदाओं में फँसाना सर्वथा माता-पिता के हाथ में है। इससे यदि औरों के लिए नहीं तो बाल-बच्चेदार मनुष्यों के लिए तो यह परमावश्यक है कि वे स्पेन्सर की मीमांसा को विचार-पूर्वक पढ़ें और अपनी प्राण से भी प्यारी सन्तति की शिक्षा का सुप्रबन्ध करके अपने पैत्रिक धर्म्म का पालन करें। सन्तान के अच्छी तरह पालन, पोषण और शिक्षण की योग्यता न रखकर जो लोग पिता के पद के अधिकारी बनते हैं वे ईश्वर की दृष्टि में अपने को अपराधी बनाते हैं। पुत्र-उत्पन्न करके उसकी शिक्षा में अवहेलना करना, और अपनी अयोग्यता अथवा मूर्खता के कारण उसके जीवन को हमेशा के लिए कण्टक बनाना, बहुत बड़ा पाप है। इस घोर पातक —इस कर्तव्य-हीनता—के महा अनर्थकारी परिणाम से बचने की जिन्हें कुछ भी इच्छा हो उनका यह परम धर्म्म है कि वे स्पेन्सर साहब की पुस्तक को ध्यान से पढ़कर अपनी सन्तति के कल्याण का तन, मन, धन से उपाय करें। जो मनुष्य अपनी सन्तति के जीवन को यथाशक्ति सार्थक करने की योग्यता नहीं रखते, अथवा जान बूझ कर उस तरफ़ ध्यान नहीं देते, उनको पिता बनने का अधिकार नहीं। उनको पुत्रोत्पादन करने का अधिकार नहीं। उनको विवाह करने का अधिकार नहीं। जितने विद्यार्थी मदरसों, स्कूलों और कालेजों में शिक्षा पा रहे हैं वे सब, एक न एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन पिता के पद पर अवश्य आरूढ़ होंगे। अतएव युवा और जरठों हो को नहीं, इन छोटे बड़े सब उम्र के विद्यार्थियों को भी चाहिए कि वे स्पेन्सर साहब की शिक्षा से लाभ उठाने का जी जान से प्रयत्न करें।

स्पेन्सर ने शिक्षा की जो मीमांसा इस पुस्तक में की है उसके किसी किसी अंश का सम्बन्ध पाश्चात्य देशों ही की सामाजिक अवस्था और शिक्षा-प्रणाली के अनुकूल है। ऐसे अंशों को छोड़ कर और सब अंश सब देशों के लिए समान उपयोगी हैं। पुस्तक-कर्त्ता ने शिक्षा का जो नमूना इस पुस्तक में दिखलाया है वह सर्वोत्कृष्ट नमूना है। उच्च-कोटि की शिक्षा कैसी होनी चाहिए, इसका एक सजीव चित्र सा उसने खींच दिया है। हिन्दुस्तान के समान अवनत, परावलम्बी, अकर्म्मण्य और शिक्षा-पराङ्मुख देश के लिए स्पेन्सर के नमूने की शिक्षा का एकदम अनुसरण करना बिलकुल ही असम्भव है। उस के सिद्धान्तों को पढ़ कर तत्काल उनके अनुसार व्यवहार नहीं हो सकता। परन्तु शिक्षा के परमोपयोगी नमूने का जान लेना हम लोगों के लिए बहुत आवश्यक है। यदि यह बात मालूम हो जायगी कि सब से अच्छी शिक्षा कैसी होनी चाहिए तो क्रम क्रम से तदनुकूल व्यवहार करने का द्वार तो उन्मुक्त हो जायगा। पथिक को अपने गन्तव्य स्थान की दिशा और उसका मार्ग मालूम हो जाने से उस तक पहुँचने में बहुत सुभीता होता है। जिसे यही नहीं मालूम कि हमें कहां और किस मार्ग से जाना है वह, सम्भव है, कभी अपने अभीष्ट स्थान को न पहुँच सके। और यदि पहुँचे भी तो, मार्ग में अनेक कष्ट उठाने के बाद, देर से पहुँचे।

स्पेन्सर में विषय-प्रतिपादन करने की शक्ति बहुत ही अद्भुत थी। जिस विषय की विवेचना उसने आरम्भ की है उसकी पराकाष्ठा कर दी है। जगह जगह पर उसने प्राकृतिक नियमों की दोहाई दी है। जितने नैसर्गिक नियम हैं, सब मानों प्रत्यक्ष परमेश्वर के बनाये हुए क़ानून हैं। उनकी पाबन्दी करना मानों परमेश्वर की आज्ञा-पालन करना है। और परमेश्वर की आज्ञायें कभी अनुचित और अनिष्टकारिणी नहीं हो सकतीं। अतएव स्पेन्सर ने यथासम्भव इन्हीं आज्ञाओं का अनुसरण करने की सलाह दी है। प्राकृतिक नियम तोड़ने पर प्राकृतिक ही सज़ा देने, प्राकृतिक मनोविकारों की तत्काल तृप्ति करने, भूख और प्यास आदि के रूप में प्राकृतिक अपेक्षाओं की पूर्ति करने, जो प्राकृतिक शक्ति जितना काम कर सकती है उससे अधिक काम उससे न लेने, का स्पेन्सर ने बारंबार विधान किया है। उसके प्रायः सभी सिद्धान्तों का आधार प्राकृतिक नियमों ही पर अवलम्बित है। इसीसे उसके उपदेश इतने मर्म्मस्पर्शी हैं; इसीसे उसके निश्चय इतने अखण्डनीय हैं। जितने नैसर्गिक व्यापार हैं सब कार्य्य-कारण-भावों से नियमित हैं। इस बात को स्पेन्सर ने बड़ी ख़ूबी से समझाया है। इस बात को समझ लेने से मनुष्य में उद्योगशीलता और समाधान-वृत्ति उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकतीं। कार्य्य-कारण-भाव का ज्ञान होने से मनुष्य के ध्यान में यह बात भी आजाती है कि प्रत्येक विषय के सुधार का उसके कार्य्य-कारण से क्या सम्बन्ध है। और इस सम्बन्ध का समझ लेना मानों सुधार के सच्चे तरीक़े को ढूंढ निकालना है।

स्पेन्सर की विषय-विवेचना से एक और भी बहुत ही उपयोगी बात की शिक्षा मिलती है। वह यह है कि मनुष्य को प्रत्येक चीज़ परिश्रम करके प्राप्त करनी चाहिए और स्वाभाविक शक्तियों का विकास मनुष्य को बिना औरों की मदद के, यथासम्भव ख़ुद ही, करना चाहिए। स्पेन्सर का यह सिद्धान्त बहुत ही उपयोगी है। यदि इस बात को सब लोग मान लें और परिश्रमपूर्वक सब चीज़ों की प्राप्ति का ख़ुद ही प्रयत्न करें और ख़ुद ही अपनी ईश्वरदत्त शक्तियों को विकसित करें तो देश की उन्नति होने में विशेष देर न लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों के मानसिक और नैतिक शिक्षण के विषय में स्पेन्सर के विचार बड़े ही उदात्त और श्रद्धेय हैं। अपने बच्चों के मानसिक और नैतिक शिक्षण के लिए माता-पिता को जिन शास्त्रों, जिन नियमों या जिन बातों का जानना ज़रूरी है उनको जान कर यदि वे तदनुकूल व्यवहार करने लगें तो कुछ ही दिनों में भावी सन्तति की मानसिक और नैतिक अवस्था उन्नत हो जाय। और मानसिक तथा नैतिक उन्नति का समाज पर जो असर पड़ता है वह बहुत ही मङ्गलकारक होता है। अतएव इन विषयों में भी स्पेन्सर के सिद्धान्तों का अनुसरण करने से हमारे समाज और हमारे देश के कल्याण की बहुत कुछ आशा है।

व्यापार-धन्धा करके यथेष्ट धन-सम्पादन का जो मार्ग स्पेन्सर ने बतलाया है वह और भी अधिक महत्त्व-पूर्ण है। क्योंकि, इस समय, इस विषय में, हमारे देश की दशा अत्यन्त हीन हो रही है। हम लोगों को पेट भर खाने तक को नहीं मिलता। इस अवस्था में सामाजिक या राजनैतिक विषयों की उन्नति होना प्रायः असम्भाव्य है। जो भूखा है वह समाज का क्या सुधार करेगा? उससे राजनैतिक विषयों की उन्नति की आशा रखना केवल दुराशा है। इसलिए हम लोगों को उदरपूर्ति के लिए पहले प्रयत्न करना चाहिए। इस विषय में हमारा एकमात्र त्राता विज्ञान है। वैज्ञानिक शिक्षा को स्पेन्सर ने इसीलिए प्रधानता दी है और सब तरह की शिक्षाओं में इसीको सबसे अधिक उपयोगी बतलाया है। इस शिक्षा की ओर ध्यान देना प्रत्येक भारतवर्ष-वासी का परम कर्तव्य होना चाहिए।

शारीरिक शिक्षा की दुर्दशा का जो वर्णन स्पेन्सर ने किया है वह बड़ा ही हृदयविदारी है। उसने, इस विषय में, जो कुछ लिखा है उसका सम्बन्ध विलायत से है। इस देश में तो विद्यार्थियों की शारीरिक दुर्दशा का अन्त ही नहीं। इस विषय में स्पेन्सर की बतलाई हुई दुर्गतियों को सोच कर पढ़नेवाले को रोमाञ्च होता है। व्यायाम का बहुत कुछ अभाव, अपरिपक्व वय में सोलह सोलह घंटे मानसिक मेहनत करके परीक्षाओं का पास करना, पाँच छ वर्ष के होते ही छोटे छोटे बच्चों का मदरसे जाना, शरीरारोग्य को एकदम ही नाश कर डालना है। वर्तमान शिक्षा के भयङ्कर परिणामों को सोच कर बदन थर थर काँपने लगता है। इस निर्दय शिक्षा-प्रणाली की बदौलत कितने ही सुकुमार बालक अकाल ही में मौत के मुँह में चले जाते हैं। जो बच जाते हैं वे जन्मरोगी हो जाते हैं और अपने शारीरिक रोगों और व्यङ्गों से अपनी सन्तति का भी जीवन कण्टकमय बनाने के कारण होते हैं। स्पेन्सर ने इन बातों का बहुत ही भयानक चित्र खींचा है। उसे पढ़कर हम लोग वर्तमान कठोर शिक्षा-प्रणाली की हानियों से बहुत कुछ बच सकते हैं। यदि यह पुस्तक हमें उस समय पढ़ने को मिलती जिस समय हम विद्यार्थी थे, या उसके बाद जब हमने पहले ही पहल सांसारिक व्यवहारों का जाल अपने गले में डाला था, तो हम अनेक दुःसह-व्याधियों से बच जाते। पाठक, विश्वास कीजिए, हम आपसे सर्वथा सच कर रहे हैं। इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं।

इस पुस्तक का अनुवाद हिन्दी में करने की सूचना पहले पहल हमें पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०, ने की। आप बनारस में स्कूलों के डेप्युटी इन्स्पेक्टर हैं। इस सूचना के लिए हम आपके हृदय से कृतज्ञ हैं। अनुवाद का निश्चय कर चुकने पर जब हमने इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ा तब हमें मालूम हुआ कि पुस्तक बहुत क्लिष्ट है। अतएव उसका अनुवाद हिन्दी में करना सहज काम नहीं। इस पर हमने इस बात की खोज की कि इस देश की और भी किसी भाषा में इसका अनुवाद हुआ है या नहीं। खोज का फल यह हुआ कि हमें संस्कृत, मराठी और उर्दू इन तीन भाषाओं में इसके अनुवाद का पता लगा। इसका संस्कृत-अनुवाद किसी मदरास-प्रान्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वासी सज्जन ने किया है। वह बँगलौर से प्रकाशित हुआ था। बहुत सम्भव है माइसोर गवर्नमेंट की मदद से यह अनुवाद प्रकाशित हुआ हो। पर यह अनुवाद हमें न मिल सका। प्रकाशकों ने हमारे पत्र के उत्तर में लिखा कि संस्कृत-अनुवाद की सब कापियां बिक गईं। इसका मराठी-अनुवाद श्रीयुक्त वासुदेव गणेश सहस्रबुद्धे ने किया है और आज तक इसके कई संस्करण छपकर बिक चुके हैं। पूना में "दक्षिणा प्राइज़ कमिटी" नाम की एक सभा है। वह उत्तमोत्तम ग्रन्थों के लेखकों को पुरस्कार देती है। उसकी बदौलत आज तक अनेक उपयोगी पुस्तकें मराठी में प्रकाशित हो चुकी हैं और अब भी प्रकाशित होती जाती हैं। यह मराठी-अनुवाद इस सभा का पसन्द किया हुआ है। सहस्रबुद्धे महाशय को इसके लिए दक्षिणा भी मिली है। इसे उन्होंने कोई डेढ़ वर्ष के परिश्रम से समाप्त किया था। उर्दू-अनुवाद मौलवी ख़्वाजह ग़ुलामुल्हसनी साहब पानीपती ने किया है। यह अनुवाद "अंजुमने-तरक़्क़ी-उर्दू" के प्रयत्न का फल है। १९०३ में इस अंजुमन ने कुछ किताबों के अनुवाद कराने के लिए एक विज्ञापन दिया और यह लिखा कि जो लोग इन किताबों का अनुवाद करना चाहें वे अपने अपने अनुवाद का नमूना भेजें। इन किताबों में स्पेन्सर की "शिक्षा" का भी नाम था। पाँच आदमियों ने इस पुस्तक के कुछ पृष्ठों का अनुवाद करके अंजुमन के पास भेजा। सब नमूनों की जाँच कई नामी नामी विद्वानों से कराई गई। बहु-सम्मति से ख़्वाजह साहब का अनुवाद सबसे अच्छा ठहरा। अतएव वही प्रकाशित किया गया। स्पेन्सर की इस पुस्तक के सम्बन्ध में अंजुमन ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में लिखा है—

"यह किताब प्रसिद्ध तत्ववेत्ता हर्बट स्पेन्सर
"की रचना है। इसका नाम "शिक्षा" है। यह
"किताब इस रुतबे की है कि यदि "अंजुमने-उर्दू"
"की तरफ़ से सिर्फ़ यही एक किताब तरजमा
"होकर प्रकाशित होती तो अंजुमन धन्यवाद
"की पात्र थी"।

जिस अंजुमन को यह राय है उसके सभासद कितने ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान् हैं। अतएव इस राय को पढ़ कर, पाठक इस पुस्तक की योग्यता और उपयोगिता का अन्दाज़ सहज ही में कर सकेंगे।

सहस्रबुद्धे महाशय ने अपने अनुवाद में ख़ूब स्वतंत्रता से काम लिया है। इस बात को उन्होंने भूमिका में स्वीकार भी किया है। उन्होंने मनमानी काट छांट की है। जो बात आपको इस देश की समाज-व्यवस्था के प्रतिकूल देखपड़ी है उसे तो आपने छोड़ ही दिया है; किन्तु और भी आपने मनमानी छोड़ छाड़ की है। अनेक स्थलों में आपने नया मज़मून भी अपनी तरफ़ से मिलाया है। उदाहरण के लिए, आपके अनुवाद के अन्तिम पृष्ठ पर जो मज़मून है वह बिलकुल ही नया है। विपरीत इसके ख़्वाजह साहब ने स्पेन्सर के एक एक शब्द का अनुवाद किया है। कहीं बिन्दु-विसर्ग भी आपसे छूटने नहीं पाया। "अंजुमने-तरक़्क़ी-उर्दू" को आज्ञा अनुवाद करने की थी, मूल पुस्तक का मतलब लिखने की नहीं। इसीसे, आप कहते हैं, आपने ऐसा किया। इस पर भी आपका अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है। शाब्दिक अनुवाद होने पर भी मूल का मतलब समझने में बाधा नहीं आती। बड़े बड़े विद्वानों ने आपके अनुवाद की प्रशंसा की है। यह प्रशंसा सर्वथा यथार्थ है। यदि आप स्वतंत्रतापूर्वक मूल पुस्तक का मतलब उर्दू में लिखते तो फिर क्या कहना था? ऐसा करने से सोने में सुगन्ध आजाती। अनुवाद और भी उत्तम होता। इस अनुवाद में हमें सिर्फ़ यही एक त्रुटि देख पड़ी कि मूल का भाव कहीं कहीं ठीक नहीं उतरा। उदाहरणार्थ—स्पेन्सर ने चौथे प्रकरण के अन्त में बहुत अधिक मानसिक मेहनत करने के दुःखकारक परिणामों का वर्णन करते हुए लिखा है कि बित्त बाहर परिश्रम के कारण भूख जाती रहती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ा भी पैदल चलने से थकावट मालूम होती है। ज़ीने पर चढ़ने से दम फूलने लगता है। दृष्टि अत्यन्त मन्द हो जाती है और बाढ़ मारी जाती है। इस अंश का अनुवाद करने में ख़्वाजह साहब ने "Greatly impaired vision" का अर्थ किया है—"सख़्त परेशान ख़्वाब नज़र आने"। यह ठीक नहीं मालूम होता। यहां पर स्पेन्सर का मतलब सिर्फ़ दृष्टि की कमज़ोरी से जान पड़ता है, बुरे बुरे स्वप्नों से नहीं। "Vision" का अर्थ "स्वप्न" भी हो सकता है; परन्तु यहां स्वप्नों से मतलब नहीं, सिर्फ़ दृष्टि की कमज़ोरी से है। परेशान ख़्वाब तो कभी कभी नीरोग आदमियों को भी होते हैं। इसी तरह की और भी त्रुटियां इस अनुवाद में हैं। कुछ भी हो, इन दोनों अनुवादों से हमें बहुत सहायता मिली है। अतएव हम अनुवादक महाशयों के हृदय से कृतज्ञ हैं। कोई ९ महीने के सतत परिश्रम से हमारा यह हिन्दी-अनुवाद समाप्त हुआ है।

हमने अपने अनुवाद में मूल को कोई बात नहीं छोड़ी। पर न तो हमने मूल के एक एक शब्द ही का अनुवाद किया है और न अपनी तरफ़ से कोई बात बढ़ाई ही है। स्पेन्सर के मतलब को हमने अपने शब्दों में लिखने की यथाशक्ति चेष्टा की है। परन्तु उसकी भाषा इतनी जटिल और बह्वर्थगर्भित है कि उसका मतलब अच्छी तरह समझाने के लिए हमें बहुधा अनुवाद को पल्लवित करना पड़ा है। उसकी एक बात को स्पष्ट करने के लिए कहीं कहीं पर हमें चार बातें कहनी पड़ी हैं। परन्तु कोई बिलकुल ही नई बात हमने अपनी तरफ़ से नहीं लिखी। हां, जहां पर स्पेन्सर ने ग्रीक, लैटिन आदि पुरानी भाषाओं की शिक्षा की अनुपयोगिता दिखलाई है वहां हमने "संस्कृत" का भी नाम लिख दिया है। यदि हमने कुछ अधिक लिखा है, तो इतना ही। एक आध जगह पर जहां हमें अपनी तरफ़ से कुछ कहना था वहां हमने अपने कथन को पादटीका में लिख दिया है।

पुस्तक के प्रत्येक प्रकरण में जितने पाराग्राफ़्स् हैं सब में हमने नम्बरवार अङ्क दे दिये हैं और प्रत्येक पाराग्राफ़ का सारांश हाशिये पर लिख दिया है। यह सारांश प्रत्येक पाराग्राफ़ के मतलब को थोड़े में जान लेने के लिए आईने का काम देता है। उसे पढ़ लेने से यह झट मालूम हो जाता है कि इस पाराग्राफ का विषय क्या है। पुस्तक के आरम्भ में प्रकरण-क्रम से सब पाराग्राफ़ों की नम्बरवार एक विषय-सूची दे दी गई है और प्रत्येक पाराग्राफ़ का सारांश भी उसके सामने लिख दिया गया है। इसके सिवा सारी पुस्तक का संक्षिप्त सारांश लिख कर अलग भी लगा दिया गया है। जिसे पूरी पुस्तक का अनुवाद पढ़ने के लिए समय नहीं, वह सिर्फ़ संक्षिप्त सारांश ही पढ़ कर स्पेन्सर के सिद्धान्तों का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जिसे सारांश भी पढ़ने की फ़ुरसत नहीं वह सिर्फ़ विषय-सूची ही पढ़कर यह जान सकता है कि इस पुस्तक में किन किन बातों का वर्णन है। इसके सिवा हर्बर्ट स्पेन्सर का जीवन-चरित और मूल अँगरेज़ी-पुस्तक के प्रकाशक की भूमिका का अनुवाद भी आरम्भ में लगा दिये गये हैं। किसी पुस्तक को पढ़ते समय पढ़ने वाले के मन में पुस्तक-कर्त्ता का परिचय प्राप्त करने की इच्छा सहज ही उत्पन्न होती है। इसी लिए स्पेन्सर का संक्षिप्त चरित भी लिख कर इस पुस्तक के साथ प्रकाशित कर देना हमने मुनासिब समझा। मतलब यह कि शक्ति भर पुस्तक को उपयोगी बनाने में कोई कसर नहीं की गई।

इस अनुवाद में भाषा के सौन्दर्य्य पर हमने ध्यान नहीं दिया। सीधी सादी भाषा में ही मूल-पुस्तक के मतलब को समझाने का हमने यत्न किया है। कहीं कहीं निरुपाय होकर हमें संस्कृत के कठिन शब्दों का भी प्रयोग करना पड़ा है। पर उर्दू, फ़ारसी आदि भाषाओं के जो शब्द बोल-चाल में आते हैं उनका प्रयोग भर सक करने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने त्रुटि भी नहीं की। भाषा चाहे जैसी हो, पुस्तक का मतलब समझ में आ जाना चाहिए। मतलब ही मुख्य है, भाषा-सौन्दर्य्य गौण बात है। अतएव यदि इस अनुवाद को पढ़कर स्पेन्सर का मतलब पाठकों की समझ में आजाय तो हम इतने ही से अपने को कृतार्थ मानेंगे। स्पेन्सर बहुत बड़ा विद्वान् था। उसकी लेखनी में अद्भुत और आश्चर्य्य-कारिणी शक्ति थी। उसके विचार अत्यन्त गहन और गम्भीर हैं। जगह जगह पर उसने, इस पुस्तक में, वैज्ञानिक विषयों का विचार किया है। अतएव हमें इस अनुवाद में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। इस बात को वही लोग अच्छी तरह समझ सकेंगे जिनको कभी इस तरह की क्लिष्ट और गम्भीर-विवेचना-पूर्ण पुस्तक के अनुवाद करने का मौक़ा आया होगा। स्पेन्सर के ग्रन्थों का अनुवाद करने की हम में यथेष्ट योग्यता नहीं। तथापि इस परमोपयोगी पुस्तक के अनुवाद से होने वाले लाभ के ख़याल से हमने जो यह चापल्य किया है उसे, आशा है, विचारशील पाठक क्षमा करेंगे।

हमारे एक मात्र उत्साहदाता सरस्वती के कृपालु पाठक और हिन्दी के सर्व साधारण प्रेमी हैं। अतएव यदि वे स्पेन्सर की "शिक्षा" सदृश पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में होना उचित और लाभदायक समझते हों तो कृपापूर्वक हमें इस बात की सूचना दें, कि अगले वर्ष हम और किस पुस्तक का अनुवाद करें। जो सज्जन इस विषय में हमें कुछ लिखेंगे उनके परामर्श का हम धन्यवादपूर्वक विचार करेंगे और अधिक सम्मति से किसी और उपयोगी पुस्तक का अनुवाद आरम्भ करेंगे। हमारी समझ में इस समय ऐसी पुस्तकों के अनुवाद की ज़रूरत है जो देश, काल, तथा वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के ख़याल से उपकारी हों।

हमारी "स्वाधीनता" अभी तक छपकर पूरी प्रकाशित नहीं हुई। नागपुर की हिन्दी-ग्रन्थ-प्रकाशक मण्डली उसे धीरे धीरे छाप रही है। जैसे जैसे पुस्तक छपती जाती है वैसे वैसे वह "हिन्दी-ग्रन्थमाला" में, हर महीने, थोड़ी थोड़ी, निकलती जाती है। आशा है शीघ्रही पूरी पुस्तक छपकर प्रकाशित होजाय। देखना चाहिए इस "शिक्षा" के छपकर प्रकाशित होने की कब नौबत आती है।

खटमलचन्द की चिट्ठी।

सिद्धि श्री मानवती श्रीमती बहू रानीजी को खटमलचन्द का नमस्कार।

मेरा नाम श्रीखटमलचन्द, ख़िताब झटपटराय, ज़ात कीड़ा, सकूनत खाटनगर, महल्ला तकियागली और पेशा लहूचूस है।

आपको याद होगा कि भगवान रक्तबीज की कृपा से हमारे कुनबे की अच्छी बढ़ती हो रही थी। इतनी बड़ी पृथ्वी पर आप लोगों की जाति दस साल में तीन करोड़ पचास लाख के हिसाब से बढ़ा करती है। और हम लोग एक एक घर में हर साल छः करोड़ के हिसाब से जन्म लेते हैं। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि आप लोगों का दुराचार दिन दिन बढ़ता जाता है। आप लोगों की निठुराई से हम लोग अंडे, बच्चे, जवान, बूढ़े, सब अकाल में काल के कौर बनाये जाते हैं। इससे हमारे जातीय जीवन (National Life) की दिन दिन बड़ी दुर्दशा हो रही है। चारों ओर उदासी छा रही है। जहां देखो वहां सिवा रोने पीटने के और कुछ नहीं सुन पड़ता। आदमियों की जाति में लड़ाई के मैदान से भाग जानेवालों को वीर बहादुर लोग, कायर कह कर छोड़ देते हैं; उनकी जान नहीं मारते। पर हमारी बद-क़िस्मती से आप लोग अब इस बात को भी भूली जाती हैं। लड़ाई में सामना करना तो दूर रहा, आपको देखते ही दुम दबा कर हम भागते हैं और भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर अपने क़िलों में घुस जाते हैं; तो भी आप लोग हमारे पीछे पड़ जाती हैं। तरह तरह के दुख दे दे कर आप हमें मारती हैं। हम बेचारे राई बराबर छोटे कीड़े; पर हम पर आपको दया नहीं आती। आप सी बहादुर—वीराङ्गनाओं—की बहादुरी में ऐसा कलङ्क क्यों कर लगने पाता है सो हमारी छोटी सी अक्ल में नहीं आता।

चाहे जो कुछ हो, इन सब दारुण दुर्घटनाओं के दूर करने की आशा से हमने एक बड़ी भारी कांग्रेस—एक जातीय सभा—खोली है। उस सभा में बड़े बड़े चिन्ताशील, बड़े बड़े दिमाग़वाले, जहांदीदा, खटमल-वंश-उजागर नर और मादीन हैं। उन सब महामान्य खटमल और खटमलाइनों ने आपके पास यह अर्ज़ी भेजने के लिए मुझसे कहा है। आप लोगों में जो आदमी जातीय जीवन की बड़ाई समझ सकते हैं, वे कभी हमारे इस काम को गुस्ताख़ी न समझेंगे। एक बात यह भी कह देनी चाहिए कि मर्दों से आप औरतें ही हमारी ज़्यादःतर दुर्गति किया करती हैं। इस लिए यह प्रार्थनापत्र आप ही लोगों के महावर से रंगे लाल लाल चरणों में अर्पण किया जाता है।

जान मार डालने की आपकी वृत्ति हमारी जाति पर इतनी प्रबल क्यों है, इस बात की आलोचना करके ज्ञानी खटमलाचार्यों ने जो कारण निकाले हैं वे, और जिन जिन उपायों से वह वृत्ति दूर हो सकती है सो, मैं ब्योरेवार कहता हूं-

१। आप नीच जानवर समझ कर हमसे घिनाया करती हैं।

२। हमारी देह की सुगन्ध को आप दुर्गन्ध समझती हैं। इसलिए हमको अपने साथ सेज पर नहीं ठहरने देतीं।

३। हम चाहे जहां छिप कर बैठे रहें, पर आप हमको निकाल बाहर कर देती हैं।

४। ख़ूंख़ार समझकर बिना तहक़ीक़ात किये ही आप हमको मार डालती हैं।

इन्हीं कारणों से आप हमसे नाराज़ रहती हैं। पर ज़रा ध्यान देकर धीरे धीरे सोचने से इन बातों में आप ही की भूल साफ़ मालूम पड़ने लगती है। इन भूलों को छोड़ दीजिएगा तो हम और आप दोनों में दोस्ती हो जायगी। यह सोच कर मैं आपकी भूलें दिखाता हूं—

१। आप हमको नीच समझती हैं। समझिए। पर ज़रा बतलाइए, हम नीच कैसे हुए? यह सही है कि हम बहुत छोटे हैं। पर क्या इस संसार में हमसे भी छोटे कीट—कीट नहीं कीटाणु—नहीं हैं? और कौन कीटाणु नहीं कहा जा सकता? आप हमको जितना छोटा समझती हैं, क्या विश्व-ब्रह्माण्ड के सामने आप भी उसी तरह छोटी नहीं हैं? बात समझ में आजायगी तो आप फिर हमसे घिन न करेंगी। हां, हम लोग पढ़ना लिखना नहीं जानते; इससे आप भले ही हमसे घिनाया कीजिए। पर, हे श्रीमती जी, पढ़ना लिखना न जानने पर भी खटमल की जाति मूर्ख नहीं है। खटमलसंहिता में मूर्खों के जो लक्षण लिखे हैं, उन्हें मैं यहां पर लिखता हूं।

जो विद्यावती होकर भी बुरी आदतों और बुरे आचरणों को नहीं भूलती, जो भले बुरे का ज्ञान रहते भी अज्ञानियों का सा काम करती है, अपना दिमाग़ न रहने पर भी जो दूसरे के दिमाग़ को नारियल के गोले की तरह पकड़ कर हिलाया करती है, वही मूर्ख है। जो प्रशंसा के लालच से सच्ची बात को दिखा देती है, बुरे संस्कारों में पड़ कर अपने कर्तव्य को भूल जाती है, ज्ञानी मनुष्यों के भूल दिखा देने पर आँखें लाल कर लेती है, वही मूर्ख है। जो मादी का तन पाकर नर बनना चाहती है, जो चाँद से सूर्य की, मन से मस्तिष्क की, मादी से नर की बराबरी करती है, वही मूर्ख है।

खटमली-दार्शनिकों ने मूर्खों के और भी बहुत से लक्षण बखाने हैं; अर्ज़ी बढ़ जाने के डर से मैं उन सबको यहां नहीं लिखता। जो कुछ लिखा है, उससे आपको इतना मालूम हो जायगा कि खट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मल लोग चाहे पण्डित न हों, वे मूर्ख नहीं हैं। और आप पढ़ लिख कर खटमलों के सामने डींग हांकती हैं, यह आपकी मूर्खता है। इस जगत् में विद्यावतियों से लोग बहुत कुछ आशा रखते हैं। विद्या सीखने का मज़ा किवाड़ बन्द करके भीतर बैठी हुई आप ही चुपचाप न उड़ाइए। जो अज्ञान हैं, मूर्ख हैं, जन्म भर अंधेरे में पड़े पड़े दिन बिताते हैं, उन पर मत हँसिए। उनकी उन्नति—उनकी भलाई—सोचिए; तभी आपको विद्या से बड़ाई मिलेगी; तभी आपके चरणों में प्रणाम करने को जी चाहेगा। नहीं तो खटमल—मूर्ख, बेपढ़े हुए खटमल—भी आपको बोझा लादनेवाली * * या ही समझेंगे। जो दूसरों के काम न आई, जिससे किसीका उपकार ही न हुआ, उससे तो हम खटमल ही अच्छे।

और देखिये, आप बड़ाई या "महत्त्व" किसे कहती हैं? आत्मा के सद्गुणों को महत्त्व कहती हों, तो, सच्ची बात तो यही है कि हिन्दुस्तानी औरतों से खटमल को जाति किसी तरह नीच नहीं। आप में न एका है, न जातीयता। हम लोग बड़े बड़े परिवार एक साथ मिल कर कैसे सुख से रहते हैं! हमारे यहां कोई डाह, लड़ाई झगड़े का नाम तक नहीं जानता। और आप लोग! जहां चार औरतें इकट्ठी हुईं वहीं डाह, लड़ाई, जलन और अहङ्कार की झड़ी लग जाती है। किसीको चार पैसे कमाकर चैन से पेट भरते देखा कि आपका कलेजा जलने लगा। हम लोगों में ऐसी बात कोई नहीं जानता। आप लोग निठुराई और हिंसा की जीती जागती मूर्त्तियां हैं। ए बहू रानीजी, आप इन उदार और अपनी जाति की भलाई चाहनेवाले खटमलों को नीच समझती हैं? सच पूछिए तो हम कभी नीच नहीं। बल्कि जो ऐब हम में नहीं हैं वे सब आप में पाये जाते हैं। जो गुण हम में हैं, आपने शायद स्वप्न में भी उनको न पाया होगा!

२। आप हमारी देह की सुगन्ध को दुर्गन्ध समझती हैं, यह भी आपकी भूल है। आप इत्र, फुलेल, केवड़ा, गुलाब और विदेशी चर्बी की बनी हुई सुगन्धित चीज़ों से अपने देह की दुर्गन्ध दूर करती हैं। सच पूछिये तो यही सब चीज़ें दुर्गन्ध हैं। जो चीज़ नक़ली है, असली नहीं; जिससे मनुष्य की भोगलालसा बढ़ती है, उसीको दुर्गन्ध समझ कर छोड़ना चाहिए। आप नक़ली चीज़ों को लेकर सच्ची और असली चीज़ों का अनादर करती हैं। क्या आपकी देह में दुर्गन्ध नहीं है? दुर्गन्ध न होती तो इतने तेल फुलेल की क्या ज़रूरत थी?

३। हमारे रहने की जगहों पर आपका दख़ल है सो ठीक है। और हमको वहां सुख चैन से रहने देना आपका उचित और ज़रूरी काम है, यह और भी ठीक है। क्योंकि दुर्बल की रक्षा करना बलवान का धर्म है। बेखटके रहने के लिए आप लोगों ने अंगरेज़ों की शरण ली है, पर ग़रीब खटमल आपके शरण में नहीं रह सकते? आपके क़ानून में लिखा है कि जो आदमी १०।१२ वर्ष तक एक जगह बसता हो उसे वहां से हटाने का अधिकार नहीं रहता। भला यह कहां का न्याय है कि खटमल सैकड़ों हज़ारों वर्ष से जिन खाट, बिछौनों में पुश्त दरपुश्त बस रहे हों, वहां से आप उनको मार भगावें?

४। हम ख़ून पीते हैं यह सही है। पर मैं पूछता हूं, आप लोगों में कौन ऐसी है जो ख़ून नहीं पीती? माँ बेटी का, बहू बुढ़िया सास का, ननद भौजाई का, सुहागिन स्वामी का, बिधवा अपने नातेदारों का पल पल में लहू चूसा करती हैं। आपके ज्ञानी तुलसीदास ने भी बाघिन के साथ आपकी उपमा दी है। वे भी कह गये हैं कि आप पलक पलक में लहू चूसती हैं। ख़ुद आप लोगों में लहू पीने की इतनी भारी चाल है—पर हम बेचारे पेट पालने के लिए बूंद भर लहू छूते ही मारडालने लायक़ बन जाते हैं! किससे यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुख की बात कहूं ? सुनेहीगा कौन ? ओः, सोच कर छाती फटने लगती है !

हमारा जीना मरना आपके हाथों में है। ऐसी दशा में ख़ुशामद के बदले कड़ी बातें कहने से हमारा ही नुक़सान है। पर खटमल की ज़ात नमक-हराम नहीं होती। जिनका ख़ून पीकर जन्म बीत गया, आगे भी जिनसे हम बहुत आशा रखते हैं, उन में दोष देख कर प्राणों के भय से चुप रहना खटमलों को न चाहिए। खटमल ऊपरी दिखावटी शिष्टाचार और ख़ुशामद से दूर भागते हैं। इसलिए अपने खटमली-ज्ञान और कर्त्तव्य पर ध्यान रख कर मैंने यह चिट्ठी लिखी है। अब कहिए, झूठ और मैलेपन को मन से हटा कर हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिएगा या नहीं ? अपनी बुराइयों को छोड़ दीजिएगा तो आपका ख़ून मज़ेदार और मीठा हो जायगा। सब खटमल उसे पी पी कर आपको बढ़ती मनावेंगे। मेरी बात सच मानिए, ऐबों के सबब से आपके ख़ून का स्वाद भी बिगड़ गया है।

लेखक—
बिलकुल डरा हुआ,
शरणागत,
विनीत,
और आपका सदा भला
चाहनेवाला
श्रीझटपटराय खटमलचन्द।*

शरद।

[१]

देखो कैसी शरद् सुहाई ;
अद्भुत सुन्दरता ले आई।
किसको नहीं लुभाती है यह ?
किसका चित न चुराती है यह ?

[२]

देखो तो खेतों के भीतर
मक्का, ज्वार, बाजरा सुन्दर।
पका शालि लहराता शुभतर ;
कृषक-हृदय में मोद रहा भर॥

[३]

आती उड़ उड़ वहां शुकाली ,
जिसको शोभा निपट निराली।
उसे उड़ाते दे दे ताली ,
जो जन करते हैं रखवाली॥

[४]

शोभा देते ख़ूब सरोवर ;
सरसीरुह खिल रहे मनोहर।
गूंज रहे मतवाले मधुकर ;
श्रवण-सुखद रव हंस रहे कर॥

[५]

हुआ कास विकसित अति सुन्दर ;
सारस बोल रहे हैं सुखकर।
मृदु मृदु कूज रहे पक्षीवर ;
उतरे हैं खञ्जन पृथ्वी पर॥

[६]

हुवा प्रकृति का निर्मल जीवन ;
स्वच्छ गम्य सब पन्थ गये बन।
विमल व्योम में छिटके तारे ;
प्रमुदित हुए ज्योतिषी सारे॥

[७]

निर्मल चन्द्र-चन्द्रिका छाई ,
जो चकोर-लोचन-सुखदायी।
करता सिन्धु गर्जना भारी ;
छटा ज्वार-भाटे की न्यारी॥

---

* "वामाबोधिनी" के एक लेख का आंशिक और परिवर्त्तित अनुवाद। अनुवादक—लाला पार्वतीनन्दन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[८]

मत्त मतङ्गज आते जाते
वन में विचरण कर सुख पाते।
शीतल, मन्द, सुगन्धित चलता
पवन, पुलक तनु में है भरता॥

[९]

महो सूंघ कर, पूछ उठा कर,
खुर से रज-कण खूब उड़ा कर।
वृष मद-भरे नाद करते हैं;
सिर ऊँचा करके फिरते हैं॥

[१०]

"अच्छे, स्वच्छ, सर्वदा रहना;
कलकल व्यर्थ कदापि न करना।
जड़ उखाड़ना नहीं किसी की;"
यही नीति अब हुई नदी की॥

[११]

सप्तच्छद में सुमन सुहाये;
मृदुल मालती पर भी आये।
हैं सौन्दर्य-उपासक जो जन,
ये सब हरते हैं उनका मन॥

गिरिधर शर्म्मा।

शरद।

(२)

नील नीरद नाहिँ दीसत इन्द्र-धनु नहिँ भाय।
मन्दगति सरितान की भइ सुठि सोई दरसाय १

व्योम-शोभा बढ़ति निशि मैं नखत-अवली पाय।
मनु सितारन-जड़ित माया नील पट सरसाय २

विमल-सरवर लसत कहुँ कहुँ जल अगाध लखाय।
ललित पीत सुशालि की मृदु महँक सौंधि सुहाय ३

विविधि रँग के खिले सरसिज कुमुदिनी लहराय।
भ्रमर गन गुंजरहिँ मानहुँ प्रकृति यशकौं गाय ४

मोर मद सोँ मत्त ह्वै अब शोर नाहिँ मचाय।
नृत्य-रत कहुँ नाहिँ दीखत उपवननि मैँ जाय ५

हंस कलरव करत अब वर विमल सरितन-तीर।
सारसन की सुभग जोटी कहुँ किलोलत नीर ६

शुक, चक्रवाक लखाहिँ कहुँ कहुँ खंजनन की भीर।
सेत पंछी उड़त नभ-पथ मनहुँ उजरो चीर ७

कंज-रज सोँ सौरभित शुचि बहत मन्द समीर।
हरत हिय-संताप कौँ अरु कर निरोग शरीर ८

पाय सुखमय समय यह हे देशसेवा-वीर!
करहु भारत कौँ सुखी सब हरहु वाकी पीर ९

लक्ष्मीधर वाजपेयी।

हंस का नीर-क्षीर-विवेक।

संस्कृत-साहित्य में हंस, पिक, भ्रमर और कमल की बड़ी धूम है। बिना इनके कवियों की कविता फीकी हो जाती है। कोई पुराण, कोई काव्य, कोई नाटक ऐसा नहीं जिसमें इनका ज़िक्र न हो। इन सब में कवियों ने एक न एक विशेषता भी रक्खी है। यथा—हंस, मिले हुए दूध और पानी को अलग अलग कर देता है; दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। पिक अपने बच्चे कौवों के घोँसले में रख आता है और बड़े होने तक उन्हीं से उनकी सेवा कराता है। भ्रमर, आम की मञ्जरी से अतिशय प्रेम रखता है, पर चम्पे के पास तक नहीं जाता। कमल, चन्द्रमा से द्वेष रखता है। उसकी विद्यमानता में वह कभी नहीं खिलता; पर सूर्य्य का वह परम भक्त है। इनमें से दो एक बातें तो निःसन्देह सही हैं, पर औरों के विषय में मतभेद है। उदाहरण के लिए हंस और उसके नीर-क्षीर-विषयक विवेक को लीजिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत-काव्यों में जगह जगह पर यह लिखा हुआ है कि हंस में यह शक्ति है कि वह दूध और पानी को अलग अलग कर देता है। पर दूध और पानी को अलग अलग करते उसे किसी ने नहीं देखा। शायद किसी ने देखा भी हो, पर इस विषयक का कोई लेख कहीं नहीं मिलता। यह प्रवाद सात समुद्र पार करके अमेरिका पहुँचा। वहां के विद्वानों को हंस का यह अद्भुत गुण सुन कर आश्चर्य्य हुआ। पर वे लोग ऐसी ऐसी बातों को चुप चाप मान लेने वाले नहीं। इस देश में हंस-विषयक यह प्रवाद हज़ारों वर्ष से सुना जाता है। पर इस के सत्यासत्य की जांच आज तक किसी ने नहीं की। यदि किसी ने की भी हो तो उसका फल कहीं लिपिबद्ध नहीं मिलता। अमेरिका में हर्वर्ड नाम का एक विश्व-विद्यालय है। उसमें लांगमैन साहब एक अध्यापक हैं। आपने हंस के इस अलौकिक गुण की परीक्षा का प्रण किया। इसलिए आपने कई हंस मँगा कर पाले और अनेक तरह से उनकी परीक्षा की। पर नीर को क्षीर से अलग करने में उन्होंने हंस को असमर्थ पाया। तो हंस के नीर-क्षीर-विवेक विषयक वाक्यों की क्या सङ्गति हो? इस विषय के दो चार वाक्य सुनिए—

नीर-क्षीर-विवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः?

भामिनीविलास।

हे हंस, यदि क्षीर को नीर से अलग कर देने का विवेक तू ही शिथिल कर देगा, तो फिर इस जगत् में अपना कुलव्रत और कौन पालन करेगा?

वितीर्णशिक्षा इव हृत्पदस्थसरस्वतीवाहनराजहंसैः।
ये क्षीरनीर-प्रविभागदक्षा यशश्चिनस्ते कवयो जयन्ति॥

श्रीकण्ठचरित।

हृदय में स्थित सरस्वती के वाहन राजहंसों ने मानों जिनको शिक्षा दी है, ऐसे क्षीर-नीर-विभाग करने में दक्ष कविजनों की महिमा खूब जागरूक है।

यो हनिष्यति वध्यं त्वां रक्ष्यं रक्षति च द्विजम्।
हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः॥

शकुन्तला।

हंस जिस तरह क्षीर ग्रहण कर लेता है और उसमें मिला हुआ पानी पड़ा रहने देता है, वैसे ही यह भी वध करने योग्य तुझे मारेगा और रक्षणीय द्विज की रक्षा करेगा।

प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाऽशुभाः।
गुणवद्वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः॥

महाभारत-आदिपर्व।

लोगों के मुँह से भली बुरी बातों को सुन कर बुद्धिमान आदमी अच्छी बात को वैसे ही ग्रहण कर लेता है जैसे हंस जल में से दूध को ग्रहण कर लेता है।

यजुर्वेद के तैत्तिरीय ब्राह्मण के दूसरे अध्याय में एक वाक्य है। उसका मतलब है—जिस तरह क्रौञ्च पक्षी जल और दूध को अलग अलग करके दूध को ही पान करता है उसी तरह इन्द्र भी जल से सोमरस को अलग करके उसे पान कर लेता है। इसकी टीका सायनाचार्य ने इस प्रकार की है—

क्षीरपात्रे स्वमुखे प्रक्षिपते सति मुखगतरससम्पर्कात् क्षीरांशो जलांशश्चोभौ विविच्येते।

अर्थात् जलमिश्रित दूध के बर्तन में हंस जब अपनी चोंच डालता है तब मुखगत रसविशेष का योग होते ही जल और दूध दोनों अलग अलग हो जाते हैं या अलग अलग जान पड़ते हैं।

इस पिछले अवतरण से यह सूचित होता है कि किसी किसी की राय में हंस के मुँह में एक प्रकार का रस होता है। उस रस का मेल होने से पानी और दूध अलग अलग हो जाते हैं। यदि इस रस में खट्टापन हो तो दूध का जम कर दही हो जाना सम्भव है। पर इसके लिए कुछ समय चाहिए। क्या हंस की चोंच दूध के भीतर पहुंचते ही दूध जम जाता होगा? सम्भव है, जम जाता हो,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर यह बात समझ में नहीं आती कि पात्र में भरे हुए जलमिश्रित दूध में से जल को अलग करके दूध को हंस किस तरह पीलेता है। अध्यापक लांगमैन की परीक्षा से तो यह बात सिद्ध नहीं हुई। अमेरिका के एक और विद्वान् ने हंस के नीर-क्षीर-विषयक प्रवाद का विचार किया है। आपका नाम है डाक्टर काव्यस। आप वाशिंगटन में रहते हैं। आपका मत है कि हंस के मुँह की बनावट ऐसी है कि जब वह कोई चीज़ खाता है तब उसका रसमय पतला अंश उसके मुँह से बाहर गिर पड़ता है और कड़ा अंश पेट में चला जाता है। आपके मत में दूध से मतलब इसी कड़े अंश से है! बहुत रसीली चीज़ खाते समय रस का बाहर बह आना सम्भव ज़रूर है, पर किसी चीज़ के कठोर अंश का अर्थ दूध करना हास्यास्पद है।

अच्छा, हंस रहते कहां हैं और खाते क्या हैं? हंस बहुत करके इसी देश में पाये जाते हैं। उनका सबसे प्रिय निवासस्थल मानस-सरोवर है। यह सरोवर हिमालय पर्वत के ऊपर है। सुनते हैं यह तालाब बहुत सुन्दर है। इसका जल मोती के समान निर्म्मल है। यहीं हंस अधिकता से रहते हैं और यहीं वे अंडे देते हैं। जाड़ा आरम्भ होते ही, शीताधिक्य के कारण, वे मानस-सरोवर छोड़कर नीचे चले आते हैं; पर विंध्याचल के आगे वे नहीं बढ़ते। विंध्य और हिमालय के बीच में ही निर्मल-जलराशिपूर्ण तालाबों और नदियों के किनारे वे रहते हैं। चैत्र-वैशाख में वे फिर हिमालय की तरफ़ चले जाते हैं। जिन जलाशयों में कमलों की अधिकता होती है वे हंसों को अधिक प्रिय होते हैं। वहीं वे अधिक रहते हैं। उनके शरीर का रंग सफ़ेद होता है। पैर उनके लाल रंग के होते हैं। चोंच का रंग भी लाल होता है। डील डौल उनका बतक से कुछ बड़ा होता है।

यदि हंस दूध पीते हैं तो दूध उनको मिलता कहां से है? मानस-सरोवर में उन्होंने गायें या भैंसें तो पाल नहीं रक्खीं और न हिन्दुस्तान ही के किसी तालाब या नदी में उनके दूध पाने की कोई सम्भावना! इससे गाय-भैंस का दूध पीना हंसों के लिए असम्भव सा जान पड़ता है। कोई कोई कविजन कहते हैं कि हंस मोती चुगते हैं। पर मोती भी मानस-सरोवर में नहीं पैदा होते। यदि उसमें मोतियों का पैदा होना मान भी लिया जाय तो हिन्दुस्तान के तालाबों में, जहां वे कुछ दिन रहते हैं, मोतियों का पैदा होना आज तक नहीं सुना गया। हां, एक बार हमने कहीं पढ़ा था, कि पञ्जाब, या राजपूताने की किसी झील में कुछ सुक्तियां ऐसी मिली थीं जिनमें मोती थे। पर क्या जितने हंस मानस-सरोवर छोड़ कर नीचे आते हैं वे सिर्फ़ उसी झील में जाकर रहते और मोती चुगते हैं? वहां भी यदि मोती बिखरे हुए पड़े हों तभी उन्हें हंसगण आसानी से चुग सकेंगे। पर, यदि वे सुक्तियों के भीतर ही रहते हों तो उनको फोड़ कर मोती निकालना हंसों के लिए ज़रा कठिन काम होगा। पर इन सम्भावनाओं से कुछ अर्थ नहीं। निर्म्मल जल को उपमा मोती से दी जाती है और मानस-सरोवर का जल अत्यन्त निर्म्मल है। इससे उसके मोती-सदृश निर्म्मल जल की उपमा मोती से देते देते लोगों ने जल को ही मोती मान लिया हो तो कोई आश्चर्य्य नहीं। अतएव—

की हंसा मोती चुगैं की भूखे रहि जायँ।

आदि में मोती चुगने से मतलब मोती के समान निर्म्मल जल पीने से जान पड़ता है।

यह पीने की बात हुई। अब खाने की बात का विचार कीजिए। नैषधचरित के पहले सर्ग में लिखा है कि राजा नल ने एक हंस पकड़ा। हंस आदमी की बोली बोलता था। उसने राजा से कहा—

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् पानी में पैदा होने वाले पौधों और बेलों के फलों और कन्दों से मैं मुनियों के समान अपना जीवन-निर्वाह करता हूं। भामिनी-विलास में जगन्नाथराय ने हंस की एक अन्योक्ति कही है। यथा—

भुक्ता मृणालपटली भवता निपीता-
न्यम्बूनि यत्र नलिनानि निषेवितानि।
रे राजहंस! वद तस्य सरोवरस्य
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकारः?

रे राजहंस, जिसके आश्रय में रह कर तूने मृणालदण्डों को खाया, जल-पान किया, और नलिनों का स्वाद लिया उस सरोवर का तू किस प्रकार प्रत्युपकार करेगा? मेघदूत में कालिदास कहते हैं—

आकैलाशाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।

अर्थात् बिस और किसलय रूपी पाथेय (रास्ते में खाने पीने की सामग्री) लेने वाले राजहंस, आकाश में, कैलाश-पर्वत से आप (मेघ) के साथी या सहायक होंगे। विक्रमोर्वशी में भी कालिदास एक जगह कहते हैं—

सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात्
सूत्रं मृणालादिव राजहंसी।

अर्थात् यह सुराङ्गना (मेरा मन शरीर से उसी तरह) खींच रही है जिस तरह राजहंसी मृणाल से सूत्र खींचती है।

इन अवतरणों से प्रकट है कि हंस चाहे मोती चुगते और दूध पीते ही क्यों न हों, पर वे पानी भी पीते हैं और जलरुह पौधों के फल, फूल, मूल, नाल, मृणाल और बिसतन्तु भी खाते हैं। हंसों को जलज-पूर्ण जलाशयों में रहना अधिक पसन्द है। वहां उनके खाने की सामग्री विशेष करके मृणाल-दण्ड, उनके भीतर के बिसतन्तु और उनसे निकलने वाला रस है। कमल-नाल को तोड़ने से उसके भीतर से सफ़ेद सफ़ेद सूत सी एक चीज़ निकलती है उसी को बिस-तन्तु कहते हैं। सुनते हैं उसे हंस बहुत खाते हैं। मृणालदण्ड की गांठों से एक तरह का रस भी निकलता है। वह पतले दूध की तरह सफ़ेद होता है। उसमें कुछ मीठापन भी होता है। उस रस का भी नाम क्षीर है। पेड़ों से निकलने वाले पानी के सदृश सफ़ेद रंग के प्रायः सभी प्रवाही पदार्थों का नाम क्षीर है। यहां तक कि गूलर, बरगद, सेहुँड़ और मदार तक से निकलने वाली सफ़ेद चीज़ को हम लोग दूधही कहते हैं। मृणालदण्ड पानी में रहते हैं। उन्हीं के भीतर से क्षीर-तुल्य सफ़ेद रस निकलता है। उसी रस को हंस पीते या खाते हैं। अतएव, इस तरह, पानी के भीतर से निकाल कर हंसों का दूध पीना ज़रूर सिद्ध है। अनुमान होता है कि आरम्भ में इसी प्रकार के नीर-क्षीर के पृथक्त्व से पण्डितों का मतलब रहा होगा। धीरे धीरे लोग वह बात भूल गये। उनकी यह समझ हो गई कि मामूली जलमिश्रित दूध से हंस जल को पृथक कर देते हैं और जल को छोड़ कर दूध भर पी जाते हैं।

बाबू काशीनाथ खत्री।

नम्रत्वेनोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः
स्वार्थान् सम्पादयन्तो विततप्रियतरारम्भयत्नाः परार्थे।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः
सन्तः साश्चर्य्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः?
भर्तृहरि।

यद्यपि स्वर्गीय बाबू काशीनाथ खत्री उन लोगों में थे जो हिन्दी के बुरे दिनों में खड़े हुए थे, पर उनकी लेखनी की चाल और लोगों से निराली थी। न तो उसके मार्ग में नवोढ़ाओं की सेंधाहट ही आती थी, न परिकीयाओं के कटाक्ष ही बरसते थे, न दूतियों की दौड़ धूप ही दिखाई देती थी, न चारों ओर कमल ही खिले रहते थे जिन पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूंजते गूंजते बेचारे भौंरों का मुँह सूज आता था, और न मलयानिल ही हर समय चलता था जो किसी को तो प्रेमरस में घड़ियों झुमाता और किसी को जलाकर एकबारगी ख़ाक ही कर डालता था। कर्त्तव्यनिष्ठा, सदाचार तथा लोकहित ही का मार्ग ढूंढ़ने को इनकी लेखनी उठती थी, चाहे वह मार्ग शुष्क और नीरस सहरा के रेगिस्तान से होकर गया हो, चाहे शीतल-सलिल-सिञ्चित हरे भरे उद्यानों से। इनके विषय में जानकारी रखना न केवल हिन्दी भाषा ही के नाते उचित है वरन् मनुष्यता के नाते से भी, क्योंकि वे न केवल अच्छे ग्रन्थकार ही थे वरन् अच्छे मनुष्य भी थे। अतः उन लोगों को भी, जिन्हें ग्रंथकारों से कुछ सरोकार नहीं, इनके जीवनवृत्तान्त द्वारा यह जानने को मिलेगा कि किस प्रकार एक सच्चरित्र और सन्मार्ग-गामी पुरुष, बिना अपने चरित्र का कोई अंश दूषित किये, इस संसार में प्रतिष्ठा-पूर्वक सुख-सञ्चय कर सकता है।

बाबू काशीनाथ खत्री का जन्म संवत् १९०६ में आगरे के माई-थान मुहल्ले के एक साधारण खत्री घराने में हुआ। इनके पिता दयालदास जी के यहां कलाबत्तू की एक साधारण दूकान होती थी जिसके द्वारा वे सपरिवार सुखपूर्वक आगरे में निवास करते थे। बाबू काशीनाथ के छः भाई थे और एक बहिन थी जो पीछे से विधवा हो गई।

बाबू साहब का विद्यारम्भ आगरे के एक देशी पाठशाला में हुआ। कुछ काल तक तो वे वहीं संस्कृत और हिन्दी पढ़ते रहे। उसके अनन्तर ये सेंट जान्स कालिजिएट स्कूल में अंग्रेज़ी शिक्षा पाने के हेतु बैठाये गये। इनके बड़े भाई लाला कुंजविहारी लाल इलाहाबाद में लाट साहब के दफ़्तर में लाइब्रेरियन (पुस्तकाध्यक्ष) थे। अतएव, १५ वर्ष की अवस्था में इनके पिता ने इन्हें प्रयाग में उन्हीं के पास भेज दिया। वहां जाकर ये गवर्नमेंट-स्कूल में भरती हुए। संयोगवश शिक्षा समाप्त होने पर ये उसी स्कूल के एक शिक्षक नियुक्त हो गये। पर थोड़े ही दिनों में इनकी वहां से बदली हो गई और ये सिरसा (ज़ि० इलाहाबाद) के हेडमास्टर नियत हुए। यही स्थान अन्त में इनके सुप्रभ जीवन का केन्द्र हुआ। यहां पर ये बारह वर्ष तक रहे। इस बीच में इन्होंने उस क़सबे के छोटे बड़े सब लोगों को अपने विशुद्ध आचरण और मृदुल व्यवहार से अपना लिया। यद्यपि इनकी शिक्षा स्कूल ही में समाप्त हुई, पर विद्या की ओर इनकी रुचि दिन दिन बढ़ती ही गई, कम न हुई। अतएव, यहां बड़ी शान्ति से इनके दिन कटते थे। इसी समय इन्होंने संसार में सद्गुणों की खोज शुरू की, और उनके धारण करने वालों की प्रशंसा और बड़ाई करके ये संतुष्ट होने लगे। याद रखिए, यही सदाचरण की पहिली सीढ़ी है। "भारत-वर्ष की विख्यात स्त्रियों के चरित्र" इसी समय में वर्णन किये गये। किन्तु इनके इस शान्तिमय जीवन-प्रवाह में रुकावट पड़ी। सिरसा का अंग्रेज़ी स्कूल टूट गया। लाचार होकर इन्हें नौकरी के लिए बाहर जाना पड़ा। इनके बड़े भाई प्रयाग में बहुत काल तक थे। इससे बड़े बड़े हाकिमों से उनका मेल जोल हो गया था। निदान बाबू काशी-नाथ को इलाहाबाद में गवर्नमेंट वर्नाक्युलर रिपोर्टर का पद कुछ काल के लिए मिल गया, जिसको इन्हों ने बड़ी योग्यता के साथ निबाहा। उस समय की गवर्नमेंट के असिस्टेन्ट सेक्रेटरी मिस्टर जे० होल्डरनेस ने इन्हें जो प्रशंसापत्र दिया था, उसका एक आवश्यक अंश मैं यहां उद्धृत करता हूं—

During the temporary absence of the Government Reporter on the Vernacular Press, Babu Kashi Nath performed the duties of the office to my satisfaction..... .....Babu Kashi Nath has a very good knowledge of English, writes a fair hand,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and with more practice would translate from the Vernacular into English with accuracy and taste.

ALLAHABAD, J. HOLDERNESS,
12*th Nov.*, 1878. Asst. Secry. to Govt.

इसके पीछे बाबू काशीनाथ लाट साहब के दफ़्तर के पुस्तकाध्यक्ष नियत हुए। यहां पर उन्हें पुस्तकों और समाचार—पत्रों के पढ़ने का अच्छा अवसर हाथ आया। अपनी स्वाभाविक विद्या-भिरुचि के बल से इन्होंने अनेक विषयों के ग्रंथ देख डाले; अनेक तत्त्वों को बिना किसी के सहारे यथासाध्य हृदयस्थित कर लिया। इस प्रकार इन्होंने अंग्रेज़ी में अच्छी योग्यता प्राप्त करली। यद्यपि इन्होंने उर्दू की शिक्षा नियम-पूर्वक किसी मदरसे में नहीं पाई थी, पर अपनी उसी ग्रहण-शक्ति की प्रबलता के सहारे धीरे धीरे ये उस भाषा की ग्रंथकार-मंडली के बीच जा विराजे। इनके हृदय की भावग्राहिणी शक्ति बहुत तीव्र थी, किसी शिक्षक को बाहर से झटका देने की बहुत कम ज़रूरत थी। इनका चित्त विचारों की ओर स्वयं झुक पड़ता था; विचारों को इनके चित्त की ओर ज़बरदस्ती नहीं मोड़ना पड़ता था। संसार में जितने मनुष्य स्वयं-शिक्षित हुए हैं उनका मन इसी ढाँचे का था। सारांश यह कि जिस सुधार और उन्नति की ज्योति इनके जी में जगमगा रही थी उसे प्रवर्द्धित करके औरों के हृदय तक पहुँचाने में जो जो उपचार इन्हें सूझ पड़े उन्हें प्राप्त करने में इन्होंने इस काल में कोई कोर कसर न की। जिस हिन्दी-ग्रंथ-रचना के नाते आज हम इनका चरित लिखने बैठे हैं वह इनके महदुद्देश्य-साधन का एक उपाय मात्र था। ये शब्दकौशल दिखाने या प्रतिभा-प्रदर्शन के लिए नहीं लिखते थे; ये लिखते थे लोकहित के लिए। यह बात इनकी पुस्तकों से साफ़ ज़ाहिर है।

अन्त में नौकरी छोड़ छाड़ कर ये फिर गंगा-तटस्थ अपने प्यारे सिरसा ग्राम को लौट आये और वहीं अन्त-समय तक शान्ति-पूर्वक रहे। यहां पर इन्होंने रुपए का कुछ लेन देन और ग़ल्ले का क्रय-विक्रय आरंभ कर दिया था। प्रचलित पुस्तकों की भी अच्छी आमदनी थी। बड़े सुख-सन्तोष के साथ ये अपने भारी कुटुम्ब को लेकर विद्वदुचित शान्तिमय जीवन के दिन बिताते थे। ये पूरे समाज-संशोधक थे। पर मुँह के बल गिरने वाले न थे। देश के राजनैतिक आन्दोलनों से भी इनकी पूरी सहानुभूति रहती थी। धार्म्मिक विचार इनके दृढ़ और पक्के थे। आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों के ये पक्षपाती थे; पर साथ ही थिओ-सोफ़िकल सोसाइटी से भी सम्बन्ध रखते थे। ये दुराग्रही और छोटी छोटी बातों पर झगड़ने वाले न थे। जो बात जहां पर उत्तम देखी उसे ग्रहण करने की सम्मति इन्होंने दी। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि स्वदेशाभिमान इनमें कुछ कम था; उसकी मात्रा इनमें बहुत अधिक थी। बात यह थी कि उन बातों की निन्दा करने में ये ज़रा भी न चूकते थे जिनसे इनके सुगठित सिद्धान्तों को धक्का पहुँचता था, चाहे वे उनके देश की, समाज की, जाति की अथवा कुल ही की क्यों न हों। ये देश के हितेच्छुक थे, इससे जो बातें उसके कल्याण में बाधा डालने वाली थीं उन्हें ये नहीं सहन कर सकते थे। सदाचार ही को ये अपने जीवन का उद्देश्य मानते थे। ये नित्य प्रातःकाल उठकर कुछ ईश्वरवन्दना करते, फिर गंगा तट पर स्नानादिक करने को जाते थे। वहां से सन्ध्या इत्यादि से निवृत्त हो कर दो घंटे में लौटते थे। गंगातट से इन्हें कुछ विशेष अनुराग हो गया था।

अनेक अच्छे अच्छे उपदेशक और साधु-महात्मा आकर इनके यहां ठहरते थे। स्वामी प्रकाशानन्द सरस्वती, उपदेशक आर्य्यसमाज, कुछ काल तक सिरसा में इनके यहां रहे थे। इस बीच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उन्होंने इनकी सम्मति से गोरक्षा पर एक व्याख्यान दिया, जिसका फल यह हुआ कि उस बस्ती से प्रतिवर्ष पचास साठ रुपये हरद्वार-गोशाला में जाने लगे। बाबू काशीनाथ की रुचि धर्म्म के कार्य्यों में सदा रहती थी। निज वित्तानुसार तो जो कुछ परोपकार ये करते थे वह करते ही थे, पर अपनी बस्ती के महाजनों को भी एक न एक पुण्य-कार्य्य में लगाये रहते थे। एक बार जब राजा माँड़ा सिरसा में आये तब इन्होंने सिरसा वालों की ओर से एक 'एड्रेस' दिया जिसमें इन्होंने अतिथियों के स्वागत के लिए धर्म्मशाला और रोगियों की चिकित्सा के लिए चिकित्सालय न होने पर दुःख प्रकट किया। उक्त राजा साहब ने इनके कहने के अनुसार सिरसा में एक औषधालय खोला और धर्म्मशाला बनने की भी आज्ञा दे दी। बाबू काशीनाथ का यह भी एक नियम था कि प्रतिवर्ष दो चार समाजों के उत्सवों पर अनेक स्थानों में पहुँच जाते थे और नीति और समाज सम्बन्धी दो एक व्याख्यान दे आते थे। बनारस, मिरज़ापुर, कानपुर और आगरा आदि नगरों में इनके कई व्याख्यान हुए थे।

बाबू काशीनाथ का शरीर बहुत दिनों से रोगग्रस्त रहा करता था। किन्तु सन् १८९० ई० में इन्हें सूजन की बीमारी हो गई, जिसकी कुछ दिनों तक तो इन्होंने कुछ फ़िक्र ही न की। जब रोग अधिक कष्टदायक होने लगा तब ये प्रयाग चले गये और दो महीने वहां रह कर अच्छे अच्छे डाक्टरों से चिकित्सा कराई। पर रोग घटने के स्थान पर बढ़ता ही गया। जब इन्होंने अच्छे होने के लक्षण न देखे तब लाचार फिर सिरसा को लौट आये। यहां आने पर इन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि मेरी जीवन-यात्रा अब शेष होने पर है। इन्होंने अपने प्रिय कुटुम्ब पर अपना यह विश्वास स्पष्टरूप से प्रकट भी कर दिया। और ईश्वराराधन, गीता का पाठ, ब्राह्मणों को दानादि आरम्भ कर दिया। अन्त में ९ जनवरी १८९१, शुक्रवार, के दिन जब इनकी तबीयत बहुत ख़राब हुई तब इन्होंने अपने इष्टमित्रों को बुलाकर उनसे बिदा माँगी और कहा—"इस वक्त मैं प्रसन्नता से शरीर त्याग करता हूं; मुझको किसी का इस समय मोह नहीं है।" देखते ही देखते देश का एक सच्चा हितैषी, मातृभाषा का एक सच्चा सेवक, सात्विकशीलता का एक सच्चा आदर्श संसार से उठ गया!

बाबू काशीनाथ के तीन पुत्र और तीन ही कन्यायें हैं। ज्येष्ठ पुत्र बाबू केशवचन्द्र सिरसा ही में रहते हैं। दूसरे पुत्र बा० नवलकिशोर रियासत नागौद (बुन्देलखंड) में कोतवाल हैं। तृतीय पुत्र बा० रामकिशोर, कानपुर में, रेलवे सब इन्सपेक्टर हैं।

[असम्पूर्ण,

रामचन्द्र शुक्ल।

ठहरौनी।

[१]

विबुध, बन्धु-वर, कान्यकुब्ज-कुल-
लब्ध-जन्म, तेजोराशी,
इस क़न्नौज-नगर के द्विजवर
वा सराय-मीरां-वासी।
अथवा दूर दूर से विद्व-
ज्जन जो यहां पधारे हैं;
भाल चारुचन्दन से चर्चित
उर में माला धारे हैं॥

[२]

रंग बिरंगी पगड़ी जिनकी
शिखा-स्पर्श-सुख पाती है;
जिनको देख पूर्वपुरुषों की
छवि सम्मुख आजाती है।
भरद्वाज, काश्यप, कात्यायन,
शुचि शाण्डिल्य गोत्रधारी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुनि उपमन्यु आदि के वंशज
गुण-गौरव के अधिकारी ॥

[३]

वही आज सब यहां विराजे
पांडे, मिश्र, शुक्ल द्विजराज,
पूरे बीस बीस विश्वे के
विमल वाजपेयी महराज।
जिनके दर्शन ही से मन का
अजब हाल हो जाता है;
पूर्व-स्मृति-पयोद-पटलों से
वह सहसा घिर जाता है ॥

[४]

श्री-श्रीहर्ष मिश्र कविवर ने
यहीं सुयश विस्तारा था;
बुध-वर-वृन्द यहीं पर उनसे
तर्क-वाद में हारा था।
मख महान कर यहीं उन्होंने
ऊंची पदवी पाई थी;
यहीं उन्होंने अपने कुल की
महिमा खूब बढ़ाई थी ॥

[५]

यह वह प्रान्त जहां रहने से
कान्यकुब्ज कहलाये हम;
यह वह भूमि नाम जिसका ले
जाय विदेश बिकाये हम।
यह वह नगर जहां बसने को
बन्धु-बान्धव लाये हम;
दूर दूर नगरों के वासी
वहीं आज सब आये हम ॥

[६]

है यह वही, परन्तु नहीं है
इसका पहला वैभव वह;
क्या से क्या हो गया बन्धुवर!
आदिस्थान हमारा यह।
नहीं एक भी वैसे पण्डित
सम्प्रति यहां दिखाते हैं;
पहले के आचार-विचारों
में भी अन्तर पाते हैं ॥

[७]

पूर्वकाल के विद्वानों की
बात याद जब आती है,
मुँह पर समझदार सुजनों के
श्यामलता छा जाती है।
जो कुछ किया उन्होंने उसकी
विस्मृति होती जाती है;
कुछ का कुछ कर ज्ञाति हमारी
मन में नहीं लजाती है ॥

[८]

मुझ अल्पज्ञ दुबे में इतनी
बुद्धि नहीं, न पण्डिताई,
जो कुछ करूं निवेदन तुमसे,
सच कहता हूं हे भाई!
तदपि आप ही की आज्ञा से,
विनय विनीत सुनाऊंगा;
सुन लोगे तो उतने ही से
मैं कृतार्थ हो जाऊंगा ॥

[९]

लड़के के विवाह में कहिए
मोल तोल क्यों करते हो?
इस काले कलङ्क को हा हा!
क्यों अपने सिर धरते हो?
जिनके नहीं शक्ति देने की
क्यों उनका धन हरते हो?
चढ़ कर उच्च सुयश-सीढ़ी पर
क्यों इस भाँति उतरते हो?

[१०]

हे प्रिय बन्धु! पूर्व-पुरुषों का
धर्म्म, नीति, आचार, विचार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनय, विवेक, विशद-विद्या-बल,
निर्मल यशोराशि-विस्तार।
उनका नाम, काम सब उनके,
उनकी महिमा, उनका मान,
ज़रा सोच देखो तो मन में,
थे कितने वे बुद्धि-निधान॥

[११]

फिर हे कान्यकुब्ज-कुल-नन्दन!
खजुहा और मुरादाबाद,
ऊगू, असनी और गेगासों
आदिक की कर लीजे याद।
ठहरौनी के कारण उन पर
वह वह आफ़त आती है;
सब गहनों की नाक, नाक की
नथुनी, तक बिक जाती है॥

[१२]

कहां पूर्वजों की वह करनी?
कहां हमारा ऐसा काम?
निपट, निंद्य, निर्दय, अति निष्ठुर,
न्यायहीन, दोषों का धाम।
कन्याकुल को भाँति भाँति से
पीड़ित हम नित करते हैं;
मुनियों के वंशज होने का
तिस पर भी दम भरते हैं॥

[१३]

सुत है नहीं वस्तु विक्रय की,
वह सर्वस्व हमारा है;
वह आत्मा का आत्मरूप है,
वह आँखों का तारा है।
भूल हुई सो हुई बन्धु-वर!
अब अवश्य संभालो तुम;
इस कलङ्क को अपने उज्ज्वल
कुल से झट धो डालो तुम॥

[१४]

मुनि उपमन्यु और कात्यायन,
कश्यप देवलोक-वासी,
देख देख अतिशय दुःखित हो
यह कुरीति सत्यानाशी।
क्या कहते होंगे मन ही मन
उन्हें न और सतावो तुम;
उनके विमल नाम पर धब्बा
व्यर्थ न और लगावो तुम॥

[१५]

किस स्मृति में, किस गृह्यसूत्र में,
किस पुराण में, बतलावो,
है विधान इस मोल तोल का,
खोल क्यों न तुम दिखलावो?
जो इसका कुछ पता नहीं तो
क्यों यह रीति चलाते हो?
क्यों न इसे हे प्यारे भाई!
छोड़ अलग हो जाते हो?

[१६]

महामूढ़ अविवेकी जन ही
रूढ़ रीतियों के बन दास,
अपना और वंश अपने का
आँख मूँद कर करते नाश।
जो सुधार का ध्यान तुम्हारे
मन में स्थान न पावेगा,
उनमें और आप में, कहिए,
भेद कौन रह जावेगा?

[१७]

जान बूझ कर भी जो अपनी
हानि से न घबराते हैं,
निंद्य, नीच, अनुदार, पुरानी
लीक पीटते जाते हैं।
वे अवश्य इस भूल भयङ्कर
पर सिर धुन पछताते हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शायर, सिंह, सपूत कभी क्या
लीक लीक भी जाते हैं ?

[१८]

यह कुरीति कुल-कन्याओं का
कोमल हृदय जलाती है ;
मनस्ताप से उनके तन को
तप्ताङ्गार बनाती है ।
बीस वर्ष की होने पर भी
अविवाहित रह जाती हैं ;
मुँह से यद्यपि न कुछ कहती हैं ,
अति दुःसह दुख पाती हैं ॥

[१९]

वे व्याही चाहे रह जावें,
चाहे करें वंश बदनाम ;
मर जावें, परवाह नहीं है ;
हमें सिर्फ़ रुपये से काम ।
पाँच का न व्यवहार हमारा ,
लेंगे हम तो एक हज़ार ,
चारु चमकवाले चाँदी के
वही अखण्ड-मण्डलाकार !

[२०]

हे भगवान् ! कहां सोये हो ?
विनती इतनी सुन लीजे ;
कामिनियों पर करुणा करके
कमले ! ज़रा जगा दीजे ।
कनवजियों में घोर अविद्या
जो कुछ दिन से छाई है ,
दूर कीजिए उसे दयामय !
दो सौ दफ़े दुहाई है ॥

[२१]

यह भी नहीं सोचते हम, क्या
दुनिया हमको कहती है ?
कान्यकुब्ज की भूमि अभागी !
तू भी सब कुछ सहती है ।

क्यों न छोड़ते हो कुरीति यह
अतिशय निंद्य दुःखदाई ?
क्या जवाब रखते हो इसका ?
बतलावो तो हे भाई !

[२२]

पुत्रवान लोगों के घर क्या
कन्या कभी न आयेगी ?
क्या उनको इस ठहरौनी की
व्यथा न कभी सतायेगी ?
वर-विक्रय-बाज़ार बीच क्या
कभी नहीं वे जावेंगे ?
द्वार और के जाकर क्या वे
ज़िल्लत नहीं उठावेंगे ?

[२३]

अपने निर्धन बन्धु-वरों की
जो तुमको परवाह नहीं ,
हाय हाय ! तो कन्याओं के
दुख पर भी क्या आह नहीं ?
उनकी गुप्त-अश्रुधारा जो
कहीं निकल बाहर आवे ,
तो यह चन्दन-खौर हमारा
सारा उससे धुल जावे !

[२४]

दत्त, प्रसाद और नारायण
आदिक हैं कितने ही वीर ,
जिनके कुलिश-कठोर हृदय में
कन्याओं की ज़रा न पीर ।
कान्यकुब्ज-कुल के नायक बन
करते हैं अति गर्हित काम;
लड़कों को पढ़ाय अँगरेज़ी
फिर उनको करते नीलाम ॥

[२५]

बीघे विश्वे से मर्यादा
अब तक नापी जाती थी ;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्याकुल की फूंक सम्पदा
सुख से तापी जाती थी।
एम० ए०, बी० ए०, की सनदों से
अब हैं होने लगे क़रार;
ऐसे सुजन-शिरोमणियों को
गिन कर बीस बार धिक्कार!

[२६]

ज़रा देर के लिए समझिए
आप पेाडशी क्वारी हैं;
(क्षमा कीजिए असभ्यता को
हम ग्रामीण अनारी हैं)।
मान लीजिए नयन आपके
कानों तक बढ़ आये हैं;
पीन पयोधर देख आपके,
कुञ्जर-कुम्भ लजाये हैं॥

[२७]

ज्यों ज्यों कटि घटती जाती है
चिन्ता बढ़ती जाती है;
मदनदाह से देह दिनों दिन
दुबली होती जाती है।
रात रात भर नींद आपको
नहीं ज़रा भी आती है;
हाय हाय कर ठंढी साँसें
लेते वह कट जाती है॥

[२८]

देख देख यह दशा आपकी
माता व्याकुल होती है;
सिर हाथों पर रख सारा दिन
फूट फूट कर रोती है।
घर में "भूंजी भाँग" नहीं है,
पिता करे क्या बेचारा;
बिना दहेज मिले वर कैसे?
दौड़ दौड़ कर वह हारा॥

[२९]

अब कहिए इस समय आप पर
कैसी बीतेगी भाई!
ठहरौनी की निंद्य रीति यह
होगी कितनी दुखदाई!
इससे इसे छोड़ अब दीजे
मान लीजिए मेरी बात;
अपने ही कुल की कन्याओं
को कलपावो मत दिन रात॥

[३०]

किसी किसी ने इस कुरीति को
पहले ही से छोड़ा है;
त्याज्य समझ इस पिशाचिनी को
इससे निज मुँह मोड़ा है।
जिनमें प्रचलित है उनको भी
इसे छोड़ना ही चहिए;
भूल जाइए मत घर जाकर,
भाई 'एवमस्तु' कहिए॥

[३१]

जो अपने को उच्च मानते
हैं, उनके न द्वार जावो;
ठहरौनी करके कौड़ी भी
कभी न उनको दिखलावो।
जो अपने को सम समझें हैं;
जिनको नहीं उच्चता-गर्व;
सालङ्कृत कन्या उनको ही
दे, सम्बन्ध कीजिए सर्व॥

[३२]

यही शास्त्र की रीति, यही थी
प्रचलित पहले हे भाई!
अवलम्बन कीजिए इसीका,
यही महा-मङ्गलदायी।
औरों के करने पर हम भी
होंगे उनके अनुयायी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह विचार कर देर न करिए,
बहुत हो चुकी निठुराई ॥

[३३]

शुभ कामों में देर लगाना
नहीं बुद्धिमानों का काम ;
बड़े बड़े ज्ञानी विज्ञानी
कहते हैं यह बात तमाम।
अनुचित निकल गया हो यदि कुछ,
हे भाई ! हे गुण-गण-धाम !
क्षमा कीजिए उसे बन्धुवर !
जाता हूं ; बस तुम्हें प्रणाम ॥

आलसी और हत्यारे पक्षी।

पक्षियों की कार्य्यपरता और बुद्धि का उनके क़द से उलटा सम्बन्ध है। पक्षधारी सृष्टि के आलसी और हत्यारे जीव प्रायः दीर्घकाय और बलवान् होते हैं। छोटी छोटी चिड़ियाँ दिन भर दौड़ दौड़ कर काम किया करती हैं और अपने कर्तव्य का बड़ी प्रसन्नता से सम्पादन करती हैं। पर दीर्घकाय और बलिष्ठ पक्षी प्रायः बेकार और सुस्त पड़े रहते हैं और अपने कर्तव्य-सम्पादन की अवहेलना करते हैं।

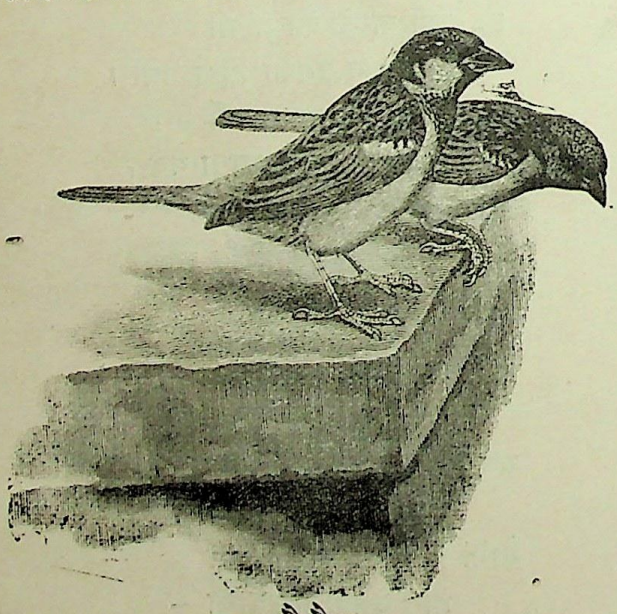

गौरैया

छोटी सी चिड़िया गौरैया को देखिये, कितने उत्साह और कितनी मेहनत से वह हमारे घरों के छज्जों के नीचे, कार्निस के ऊपर, अपना घोंसला बनाती है और कितना जी लगा कर अपने अण्डे सेती है। छोटी सी श्यामा हमारे घरों के धुँधकों और आलों में तिनके चुन चुन कर तृण-शय्या बनाती है और उस पर बड़ी कार्य-तत्परता से अण्डे सेती और बच्चों को सुलाती है। उसका नर भी

श्यामा

घोंसला बनाने में मदद देता है और बच्चों को कीड़े ला ला कर खिलाता है। ऐसी चिड़ियों को अपने घरों में अपना वास बनाने देना हमें बुरा नहीं मालूम देता। किन्तु यही मन होता है कि यदि ऐसे ऐसे दो चार और मेहमान आकर हमारे यहां रहें तो बहुत अच्छा। प्रातःकाल श्यामा की मीठी मीठी तान ही सुनने को मिले।

अब ज़रा शुतुरमुर्ग़ का हाल सुनिये। चिड़ियों में इतना दीर्घकाय कोई पक्षी शायद ही होता हो। जब अण्डे देने का समय आता है तब शुतुरमुर्ग़ी की मादा रेत में छोटा सा गड्ढा खोद कर उसी में अण्डे दे देती है। फिर गड्ढे को बालू से ढक कर वह अण्डों का पोषण रेगिस्तान के जलते हुए सूर्य्य की कृपा पर छोड़ देती है। हाँ केवल शीत-काल की ठण्ढी रातों में वह अवश्य अण्डों पर बैठती है। तिस पर भी दो चार मादायें मिलकर एक दूसरे का काम बँटा लेती हैं। मानों मातृ-धर्म का निर्वाह करना भी उनके लिए कोई बड़ा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी काम हो। दो चार मादायें मिल कर एक ही गड्ढे में अण्डे देती हैं, और बारी बारी से एक

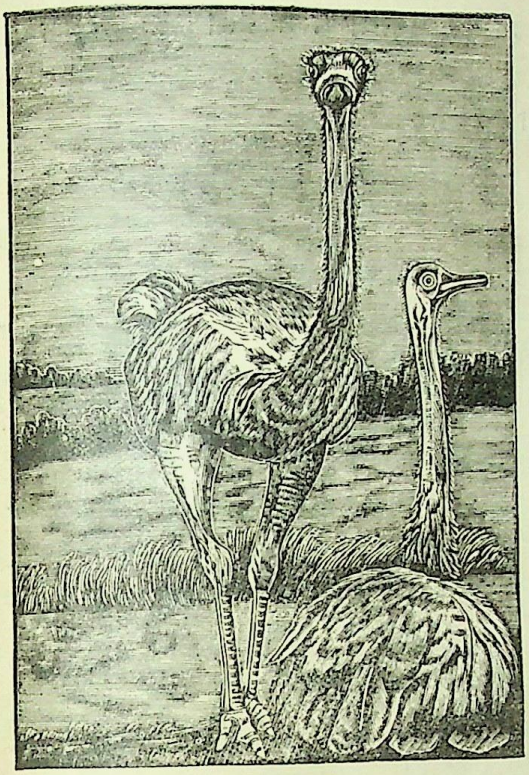

शुतुरमुर्ग़

एक उन पर बैठती है। इतना ही नहीं, किन्तु नर को भी इस अण्ड-पोषण में योग देना पड़ता है। अक्सर यात्रियों ने नर-शुतुरमुर्ग़ को अण्डे सेते देखा है।

घुग्घू कई क़िस्म के होते हैं। ये उल्लू जाति के निशिचारी पक्षी घोंसलों के निर्माण और अण्डों बच्चों के पोषण में बड़ी असावधानी और बेपरवाही करते हैं। इस जाति के प्रायः सभी पक्षी चट्टानों की दरारों और खोहों में अण्डे देते हैं। कुछ उल्लू खँडहरों, पुराने महलों या देवमन्दिरों में अपना आवास बना लेते हैं। कुछ सूखे या सूखते हुए, पुराने वृक्षों के गह्वरों ही पर सन्तोष कर लेते हैं।

उल्लू

चलो जहां स्थान मिला पड़ रहे। कौन इस अल्प सांसारिक जीवन के लिये परिश्रम करे! योरप का खलिहान-वासी घुग्घू ज़रा औरों से कम लापरवाही करता है। क्योंकि उसकी मादा उस अँधेरे विवर के पत्थर पर थोड़ी सी काई या छोटी छोटी घास बिछालेती है जहां कि यह अण्डे देना, और अपनी दिवाभीत नामाक़ूल सन्तति का भरण पोषण करना, चाहती है।

बटेर, लवा और तीतर आदि के वर्ग के पक्षी भी बड़े ही अनाड़ी और भद्दे कारीगर होते हैं। कोई तो एक भद्दे तौर पर बिछी हुई घास के ढेर पर और कोई ज़मीन ही पर अण्डे देते हैं। सुन्दरी फाख़्ता भी अपनी सन्तति के पोषण के विषय में कुछ अधिक ध्यान नहीं देती। ध्यान दे कैसे? उसे प्रेम रस के चखने से ही फ़ुर्सत नहीं मिलती। इधर उधर से कुछ तिनके चुन कर वृक्ष की शाखाओं पर एक छोटा सा मचान बना लिया। चलो घोंसला बन गया। न उस पर घास है, न रुयें, और न किसी ओर से हवा ही की आड़। मालूम होता है कि मानों अभी हवा के झोंके से पक्षिसुन्दरी का घर ज़मीन पर गिरा पड़ता हो।

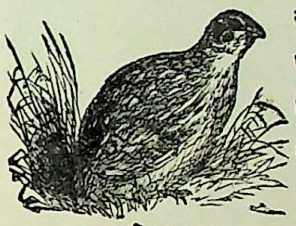

तीतर

मांसाहारी पक्षियों के घोंसले भी अन्य पक्षियों के घोंसलों से लम्बान चौड़ान में तो बड़े, पर कौशल में कुछ बढ़ कर नहीं होते। उक़ाब, बाज़ और जुर्रे के घोंसले ख़ूब लम्बे चौड़े, पर भद्दे होते हैं। नभोविहारियों के राजाओं के ऐसे घर! उक़ाब, पहाड़ों की सुनसान और भयावनी चोटियों पर अपना घोंसला बनाता है। बर्फ़, पानी या पत्थर से वह ज़रा भी नहीं डरता। उसका घोंसला बड़ी बड़ी डालियों का एक ढेर सा होता है। उस पर टहनियों की एक भद्दी चटाई सी बिछी रहती है। इस घोंसले के आँगन का घेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई पन्द्रह से बीस फुट का होता है। एक घोंसला जोड़े के लिये जन्म भर को काफ़ी होता है। परन्तु उसकी लम्बाई हर साल बढ़ती जाती है। क्योंकि जिन जीवों को ये लुटेरे अपने बच्चों के खाने के लिये ले आते हैं उनकी हड्डियां वहीं घोंसले में जमा हुआ करती हैं। ये हड्डियां इतनी दुर्गन्ध फैलाती हैं कि पक्षिराज का विशाल भवन कुछ काल पीछे बीमारियों का घर हो जाता है।

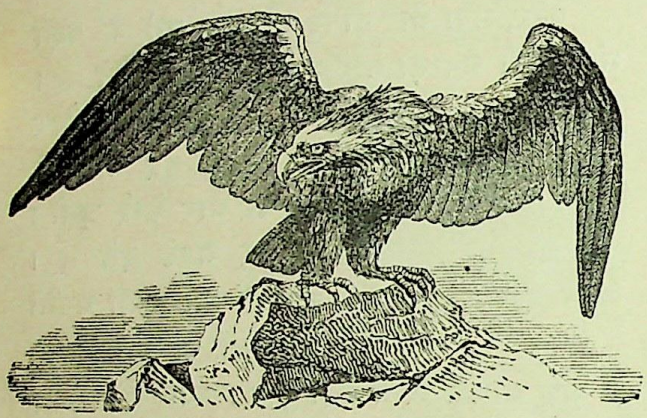

बाज़

बाज़ के घोंसले में इससे भी कम कौशल होता है। उसमें केवल लकड़ियों के छोटे छोटे चैले लगे होते हैं। परिधि में यह घोंसला कोई चार या पाँच फीट होता है।

भला यह तो किसी न किसी भाँति अपने बैठने का स्थान बना लेते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी आलसी होते हैं जो बिल्कुल ही काम न करने की ठान लेते हैं। कोई तो उनमें से चोर-वृत्ति धारण कर लेते हैं और कोई पूरे डाकू हो जाते हैं। ये डाकू अपने दुश्मन के सम्मुख होकर लड़ते और उसे खा जाते हैं। या ऊंचे पर से उसको नीचे फेंक देते हैं और उसके मकान पर अपना अधिकार जमा लेते हैं।

कभी कभी भले मानस भी मौक़ा पाकर चोरी करने से नहीं हिचकिचाते। जब विलायती अबाबील स्वदेश चली जाती है तब चटक उसके घोंसले पर अधिकार जमा लेता है। फिर जब अबाबील वापस आती है तब दोनों में ख़ूब लड़ाई होती है।

इन पक्षधारी डाकुओं में सब से अधिक क्रूर हमारे कवियों की प्यारी कोयल है। इसकी कर्म्म-कथा सुनिये—

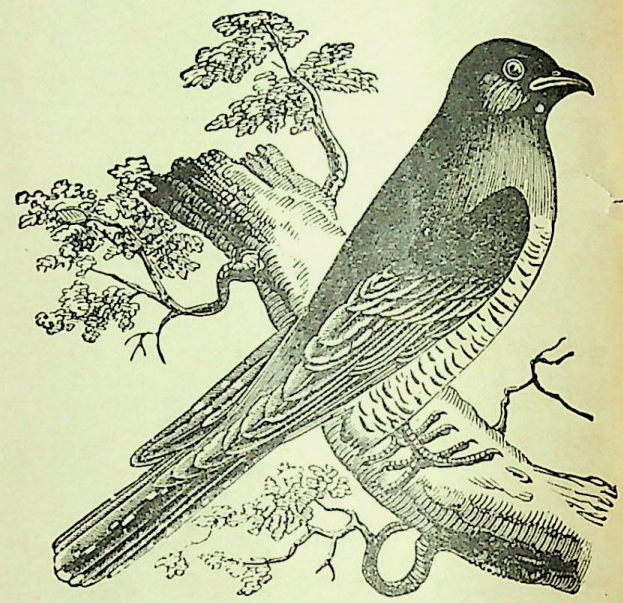

कोयल

आपको इतना आलस्य है कि घोंसले का बनाना तो दूर रहा अण्डों का सेना और बच्चों को चुगाना तक आपको नागवार है। चालबाज़ी और धूर्तता के द्वारा वह अपना भार और पक्षियों को सौंप देती है। इसीसे संस्कृत वालों ने बड़े खोज से कोयल का नाम "परपुष्ट" और "परभृत्" रक्खा है। अधिकतर ऐसी धूर्तता वह छोटी छोटी चिड़ियों के साथ ही करती है। प्रकृति ने कोयल के भाग्य में केवल दो अण्डे हर साल दिये हैं। दो अण्डों के पोषण में जब इतनी जानें जाती हैं तब न जाने कई अण्डे कोयल हरसाल दिया करती तो कितनी जानें जातीं। कीड़े खानेवाली छोटी छोटी चिड़ियों के घोंसलों ही में कोयल अपने अण्डे रखती है। एक बड़ी सी चिड़िया एक छोटे से घोंसले में कैसे प्रवेश कर सकती है, यह बात बहुत दिनों तक लोगों की समझ में न आई थी। इस बात के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता लगाने में एक विद्वान् ने बड़ा परिश्रम किया। पर पता न लगा। उसने निराश होकर अपना प्रयत्न छोड़ ही दिया था, कि एक दिन एक मामूली घटना द्वारा दैवयोग से उसे इस बात का पता लग गया। आफ़्रिका देश में उसने एक दिन एक मादा कोयल का शिकार किया। उसके हलक़ में उसे एक समूचा अण्डा मिला। देखने पर मालूम हुआ कि वह कोयल ही का अण्डा था। उस विद्वान् के साथ उस समय एक हबशी नौकर भी था। उसने भी कहा कि मैंने बहुधा उड़ती हुई कोयल का शिकार करने पर उसके मुँह से गिरते हुए अण्डों को देखा है।

एक और विद्वान् ने भी देखा कि कोयल पहिले अण्डा पृथिवी पर देती है। फिर उसे चोंच से उठा कर किसी और चिड़िया के घोंसले में रख आती है। परन्तु एक घोंसले में एक ही अण्डा रखती है।

यहां तक तो ख़ैर यही हुआ कि दूसरे के घर पर क़ब्ज़ा जमा लिया और उससे अनधिकार सेवा कराई। अब सुनिये, इस उपकार का प्रत्युपकार कोयल का बच्चा किस भांति करता है। शीतला की बीमारी से बचाने वाले टीके के आविष्कर्ता डाक्टर जेनर का कथन है कि कोयल का बच्चा पैदा होने के दो चार ही घण्टों बाद अपने बाजुओं और कन्धों के सहारे उस छोटी चिड़िया के बच्चों के नीचे जाने का यत्न करता है जिसके साथ वह एक ही पालने में पैदा हुआ था। नीचे घुस कर वह बच्चों सहित पालने को अपने ऊपर उठा लेता है और इस बोझ को लिये हुए वह घोंसले के एक किनारे पर चला जाता है। वहां से पालने को मै बच्चों के वह नीचे पृथ्वी पर फेंक देता है, और फिर नीचे बड़े ग़ौर से देखता है कि देखें जो काम हमने किया है वह भली भांति पूरा हुआ है या नहीं!

रेन नामक विलायती चिड़िया के एक बार में दस बच्चे होते हैं। यदि उसके घोंसले में कोयल अपना अण्डा रख आती है (जैसा कि वह प्रायः करती है) तो उसका परिणाम यह होता है कि कोयल के एक बच्चे के लिये दस को जानें जाती हैं। साल में कोयल दो अण्डे देती है। इस हिसाब से प्रति वर्ष बीस बच्चों के प्राण जाते हैं। इसी लिये प्रकृति ने नियम कर दिया है कि साल भर में दो से अधिक अण्डे कोयल न दिया करे। और यही कारण है कि जर्मनी देश में लोग कोयल को कृतघ्नता का आदर्श समझते हैं।

कई विद्वानों का मत है कि मादा कोयल भी इस हत्याकाण्ड को करती है। यदि छोटी चिड़िया के घोंसले में पहिले ही से बच्चे होते हैं तो मादा कोयल एक एक करके उनको मार डालती है और उन के स्थान में अपना अण्डा रख देती है*।

सूर्यनारायण दीक्षित।

लखनवी रामायण।

ज़माना, उरदू का एक सचित्र मासिक पत्र है, जो कानपूर से प्रकाशित होता है। उसमें प्रायः अच्छे अच्छे लेख निकला करते हैं। पत्र के अन्त में कुछ कविता रहा करती है। जुलाई के ज़माना में पण्डित व्रजनारायण, चकबस्त, बी० ए०, (लखनवी) की कुछ कविता "रामायण का एक सीन" नाम से प्रकाशित हुई है। उसीके विषय में मुझे कुछ निवेदन करना है। उक्त पण्डित जी ने अपनी कविता में उस समय का वर्णन किया है जब महीप-मुकुट-मणि, वीरशिरोमणि, धर्म-धुरन्धर, सत्यसिन्धु, श्रीरामचन्द्र जी महाराज वनगमन के समय अपने पिता, भानुकुल-भानु, श्रीदशरथजी महाराज से बिदा होकर अपनी माता, कौशल्या जी

* दी यूनिवर्स (The Universe) नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखित। लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास गये हैं। पण्डित जी अपनी कविता इस प्रकार आरम्भ करते हैं—

रुख़सत हुआ वह बाप से लेकर ख़ुदा का नाम।
राहेतफ़ा कि मंज़िले औवल हुई तमाम॥

इस बैत के पहले मिसरे में रामचन्द्र के लिए "रुख़सत हुआ" यह वाक्य एकवचनात्मक क्रिया होने से श्रवण-सुखद नहीं है। ऐसे स्थलों पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में किस प्रकार वर्णन किया है सो सरस्वती के पाठकों पर विदित ही है। परन्तु उक्त पण्डित जी के अवलोकनार्थ मैं दो चौपाइयां रामचरित-मानस (रामायण) से उद्धृत करता हूं—

उठे सकल रघुपति जब आये;
विश्वामित्र निकट बैठाये।
आगे चले बहुरि रघुराई;
ऋष्यमूक पर्वत निअराई।

पाठक, मुझमें इतनी योग्यता नहीं है कि मैं इस बात का निर्णय कर सकूं कि उर्दू के मुहावरे में रामचन्द्र जी जैसे महात्मा का वर्णन किस प्रकार होना चाहिए; परन्तु इतना अवश्य निवेदन है कि जब उर्दू ही के मुहावरे में किसी प्रतिष्ठित पुरुष के लिए बहुवचनात्मक क्रियायों का प्रयोग अशुद्ध नहीं माना जाता तब परमपूज्य रामचन्द्र जी के लिए 'हुआ' 'गया' आदि एकवचनात्मक क्रियायों का प्रयोग करके क्यों उनके भक्तों का दिल दुखाया जाय?

यदि पण्डित व्रजनारायण जी ने जून का "ज़माना" अवलोकन किया होगा तो उनको विदित हुआ होगा कि स्वयं एडीटर साहब, ज़माना, ने अपने "रामायण का मोताला" नामी लेख में कई जगह रामचन्द्र जी के लिए 'श्री' 'जी' और 'चले,' 'आये,' 'गये' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। लाला शंकरदयाल जी ने तो अपनी उर्दू-रामायण में इस बात का सदा ध्यान रक्खा है। मैं पाठकों के अवलोकनार्थ कुछ पद्य उनकी उर्दू-रामायण से उद्धृत कर देता हूं—

१ जो दम मारूं तो है अंदेशए ख़ाम।
कहां मैं और कहां ज़िक्रे शिरीराम॥

२ जनावे राम आईने अदब से।
हुए यों दुर फिशाँ नेसाने लब से॥

३ हुआ यानी सहर का जबकि हंगाम।
पलंगे ख़ाब से उट्ठे शिरीराम॥
महामुनि ने इजाज़त दी के जावो।
ख़ेरामा फूल फल गुलशन से लावो॥
बचश्मो सर पए तामोल अहकाम।
चले खंदाँ जनावे लछमनो राम॥

"रुख़सत हुआ" इस वाक्य पर मैं अपना विचार प्रकट कर चुका। अब मैं एक और विषय में कुछ विनय करना चाहता हूं। पण्डित जी ने लिखा है,—"ख़ुदा का नाम लेकर वह बाप से रुख़सत हुआ"। मैं कहता हूं कि ख़ुदा का नाम लेकर रामचन्द्र जी नहीं रुख़सत हुए। बल्कि अपने पूज्यपिता को प्रणाम करके। मेरा तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि रामचन्द्र जी ख़ुद ख़ुदा थे। इस लिए वे ख़ुदा का नाम लेकर नहीं चले। न मेरा यही तात्पर्य है कि रामचन्द्र जी के समय में ईश्वर के इस पवित्र नाम "ख़ुदा" का कहीं नामो निशान भी न था। मेरा आशय केवल इतना ही है, कि आज पर्य्यंत जितने रामायण बने हैं उनमें यही लिखा है कि रामचन्द्र जी अपने पिता को प्रणाम करके माता के समीप गये। न कि एक विपद्ग्रस्त कातर पुरुष की तरह ईश्वर का स्मरण करके। मेरे इस कथन की सत्यता नीचे लिखे हुए प्रमाणों से सिद्ध है—

१ वन्दित्वा चरणौ राज्ञो विसंज्ञस्य पितुस्तदा।
२ स* रामः पितरं कृत्वा कैकेयीं च प्रदक्षिणाम्॥
वाल्मीकि-रामायण।

* संस्कृत में एक वचन, ऐसे मौकों पर, अकसर आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ इत्युक्त्वा तु परिक्रम्य भ्रातरं द्रष्टुमाययौ।
अध्यात्म-रामायण।

४ आयसु पालि जन्म फल पाई।
ऐहौं बेगिहिं होइ रजाई॥

५ बिदा मातु सन आवहुँ मांगी।
चलिहौं वनहिं बहुरि पग लागी॥
रामचरितमानस।

६ श्रीराम बलेन पितृ-आज्ञा शिरे धरि।
विलम्ब ना करि आर चल यात्रा करि॥
कृत्तिवासीय रामायण (बँगला)

७ प्रदक्षिण करि तांरे लइया बिदाय।
तांहारा निकटे राम प्रनमिला माय॥
कविराज राजकृष्णराय-कृत रामायण (बँगला)

८ *ज़िपा बेशश मुरादे जां बराउर्द।
गिलीमे फ़ुक्र रा देबाय ख़ुद कर्द॥
मसीह-कृत फारसी-रामायण।

९ चले रघुवर क़दम छूकर अदब से।
हुए रुख़सत शहे रुख़सत तलब से॥
शङ्करदयाल-कृत उर्दू-रामायण।

पण्डित जी की तसनीफ़ का औवल शेर पाठक सुन चुके। दूसरा शेर इस प्रकार है—

मंज़ूर था जो मां कि ज़ियारत का इन्तिज़ाम।
दामन से अश्क पोछ के दिल से किया कलाम॥

इस शेर के पहले मिसरे का मतलब यह है कि मां की ज़ियारत यानी दर्शन का इन्तज़ाम मंजूर था। ख़ैर इन्तज़ाम तक ग़नीमत है। आगे चल कर दर्शन होने के बाद माता के लिए प्रणाम या प्रदक्षिणा तक का इन्तज़ाम या मंजूरी रामचन्द्र जी के लिए नहीं दी गई है। अगर मंज़ूरी दी गई है तो केवल दामन से अश्क पोछने की, जो रामचन्द्र जी के स्वभाव के सर्वथा विरुद्ध है। क्या कोई कह सकता है कि श्रीरामचन्द्र जी वनगमन के समय दुखी हुए थे। दुखी तो वह होता है जिससे ज़बरदस्ती कोई काम कराया जाता है। रामचन्द्र जी तो धर्म की रक्षा के लिए, पिता को अपने वाक्य पर अटल रखने के लिए, देवताओं का दुःख दूर करने के लिए और राक्षसों का संहार करके पृथ्वी का भार उतारने के लिए, अपनी इच्छा से प्रसन्नता के साथ वन को गये थे। बल्कि वनगमन से उनको अधिक आनंद हुआ था; दुःख बिलकुल ही नहीं। देखिए तुलसीदास जी क्या कहते हैं—

(१) मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ।
इहै सोच जनि राखहिं राऊ॥

(२) नवगयन्द रघुवंशमणि, राज अलान समान।
छूट जानि वनगमन सुनि, उर अनंद अधिकान॥

लाला शंकरदयाल ने अपनी उर्दू-रामायण में क्या लिखा है सो भी सुनिए—

कहा सहरा नवरदी है जो मरग़ूब।
बहुत बेहतर, बहुत अच्छा, बहुत ख़ूब॥

इसी तरह के ९९ शेर पण्डित जी के मंज़ूम रामायण से, जो अभी बन रही है, रिसाले ज़माना में छपे हैं। उनमें से शुरू के दो शेरों की आलोचना पाठकों के अवलोकनार्थ लिखी गई। बाक़ी के शेरों के विषय में हमारे सदृश अल्पज्ञों की चुप रहने ही में कुशल है। परन्तु पण्डित जी से कुछ निवेदन अवश्य करना है। वह यह है कि उर्दू-ज़बान में दो मंज़ूम रामायण उत्तम बन चुकी हैं। फिर क्या ज़रूरत है कि पण्डित जी एक और रामायण के बनाने में दर्दसरी करें। अगर पण्डित जी की ऐसी ही श्रद्धा है और रामचन्द्र जी के पवित्र नाम का स्मरण आप करना ही चाहते हैं तो कम से कम सात मरतबे तुलसीकृत रामायण का पाठ अवश्य करलें; तब क़लम उठावें; और अपने क़यास से कुछ भी न लिखें।

यमुनाप्रसाद पाण्डेय।

---

* पिता के चरण चूमने से दिल की मुराद पूरी हुई। रामचन्द्र जी ने राजसी वस्त्र उतार कर फ़क़ीरों की कमली धारण की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदयोच्छ्वास।

[प्राचीन पद्य]

[१]

कतिचिदुद्धतनिर्भरमत्सराः कतिचिदात्मवचःस्तुतिशालिनः।
अहह! केऽपि निरक्षरकुञ्चयस्तदिह सम्प्रति कं प्रति मे श्रमः?

कोई तो मत्सर में गले तक डूबकर उद्धत हो रहे हैं; कोई अपनी ही कविता की स्तुति में लगे हुए हैं, उन्हें और कुछ अच्छा ही नहीं लगता; कोई कोई बिलकुल ही निरक्षर-भट्टाचार्य्य हैं, उनसे कुछ मतलब ही नहीं। तो अब आप ही कहिए, कविता करने का श्रम यदि उठाया जाय तो किसके लिए?

[२]

तथापि क्रियते अन्यः सन्ति यद्यपि दुर्जनाः।
न हि दस्युभयाल्लोके दैन्यवानिह वर्तते॥

दुर्जनों की कमी नहीं है, तथापि हमें जो कुछ लिखना है, हम लिखेंहींगे। चोरों के डर से दुनिया में क्या कोई निर्धन रहना भी पसन्द करता है?

[३]

दुर्जनहुताशदग्धं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमुपयाति।
दर्शयितव्यं तस्मान्मत्सरमनसः प्रयत्नेन॥

काव्यरूप सुवर्ण दुर्जनरूप आग में दग्ध होने से और भी अधिक विशुद्ध हो जाता है। अतएव मत्सरशील मनुष्य को उसे हर प्रयत्न से दिखाना चाहिए।

[४]

स्वयमपि भूरिच्छिद्रश्चापलमपि सर्वतोमुखं तन्वन्।
तितउस्तुषस्य पिशुनो दोषस्य विवेचनेऽधिकृतः॥

दूसरे के उत्कर्ष को न सहनेवाले दुःशीलजनों की दशा चालनी की ऐसी है। खुद सैकड़ों छेदों से परिपूर्ण होकर भी, और सब तरफ़ चञ्चलता किंवा व्यर्थ वाचालता को प्रकट करके भी, वे समझते हैं कि उन्हें दोषरूपी चोकर निकालने का पूरा अधिकार है।

[५]

विपुलहृदयाभियोग्ये खिद्यति काव्ये जडो न मौख्यें स्वे।
निन्दति कञ्चुककारं प्रायः शुष्कस्तनी नारी॥

जड़ आदमी अपनी मूर्खता पर तो खेद नहीं प्रकट करता; पर सैकड़ों सहृदयजनों के हृदयों को आनन्दित करनेवाली कविता को बुरी बतला कर ज़रूर खेद प्रदर्शित करता है। सच है शुष्क-स्तन वाली नारी को कंचुकी की क्या ज़रूरत? इसीसे तो वह कंचुकी बनानेवाले दरज़ी की निन्दा करती है।

[६]

अज्ञातपाण्डित्यरहस्यमुद्रा ये काव्यमार्गे दधतेऽभिमानम्।
ते गारुडीयाननधीत्य मन्त्रान् हालाहलास्वादनमारभन्ते॥

पाण्डित्य के रहस्य की जो गुप्त बातें हैं उनमें कोरे होकर भी जो लोग काव्य के विषय में विज्ञता का घमण्ड करते हैं, वे गोया गारुडीय मन्त्रों का एक अक्षर न जान कर हलाहल का प्याला मुँह में लगाते हैं। ऐसों को भी भला कहीं इस काम में सफलता हो सकती है?

[७]

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां सुवर्णसङ्घेन च ये न पूर्णाः।
ते रीतिमात्रेण दरिद्रकल्पा यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्?

जिनके पास न अर्थरत्न ही हैं और न सुवर्ण का समूह ही है वे बेचारे महादरिद्री जीव (पद्य-रचना को) रीतिमात्र का अवलम्ब करके भला कैसे कवीश्वर की पदवी को पहुँच सकते हैं?

[८]

आघ्रातं प्रतिचुम्बितं प्रतिमुहुर्लीढं च यच्चर्वितं
क्षिप्तं वा यदि नीरसेन कुपितेनात्र व्यथां मा कृथाः।
हे माणिक्य! तवैव तच्च कुशलं यद्वानरेणामुना-
प्यन्तस्तत्त्वनिरूपणव्यसनिना चूर्णीकृतं नाश्मना॥

हे (काव्यरूपी) माणिक्य! इस कुपित (दुर्जन-रूपी) बन्दर ने तुझे बार बार सूंघा, बार बार तेरा चुम्बन किया, बार बार तुझे चाटा, बार बार तुझे मुँह में डाला; यही नहीं किन्तु इस नीरस ने तेरी योग्यता को न समझ कर तुझे दूर फेंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक दिया, इसके लिए तू ज़रा भी खेद मत कर। तू अपने को भाग्यशाली समझ, जो इस बात के देखने के लिए कि तेरे भीतर क्या है, इसने पत्थर से तुझे तोड़ कर चूर चूर नहीं कर डाला!

[९]

काव्यामृतं दुर्जनराहुनीतं प्राप्यं भवेन्नो सुमनोजनस्य।
सचक्रमव्याजविराजमानतैक्ष्ण्यप्रकर्षं यदि नाम न स्यात्॥

यदि विष्णु के चक्र के समान, सज्जनों के चक्र (समूह) की धारा खूब तेज़ न होती, तो दुर्जन-रूपी राहु काव्यरूपी अमृत को उड़ा ही ले जाता; फिर वह काव्यलोलुप-सुजनरूपी देवताओं को हरगिज़ न मिलता। अर्थात् यदि सुकवियों के काव्य के विषय में विकत्थना करने वालों को सुजन अपनी तीक्ष्ण आलोचना से चुप न कर देते तो ये लोग सत्कविता को एक दम ही रसातल को पहुँचा देते।

[१०]

व्यालाश्च राहुश्च सुधाप्रसादाज्जिह्वाशिरोनिग्रहमुग्रमापुः।
इतीव भीताः पिशुना भवन्ति पराङ्मुखाः काव्यरसामृतेषु॥

सुधापान करने की इच्छा रखने वाले राहु और सर्पों को बड़ा ही कठोर दण्ड मिला। राहु का तो धड़ से सिर ही उड़ गया और सर्पों की जिह्वा के दो टुकड़े हो गये। मालूम होता है, इन लोगों की ऐसी दुर्दशा देख कर ही परोत्कर्षासहिष्णु दुर्जन, मारे डर के, काव्यरसरूपी अमृत की तरफ़ अपना मुँह तक नहीं ले जाते-हमेशा उससे दूर भगते हैं।

[११]

सदैव सत्सङ्गमसम्मुखोऽपि खलः स्वचर्य्यां न जहाति जातु।
कृत्वापि सूर्याश्रयणं प्रयत्नाद्राहुर्गतः किं विबुधत्वयोगम्?

कार्यवशात् सत्समागम करके भी, दुर्जन दौर्जन्य नहीं छोड़ता। बड़ी बड़ी मुशकिलों से सूर्य्य का आश्रय करके भी राहु क्या विबुध (देवता; पण्डित) होने की योग्यता को पहुँचा?

[१२]

अवद्यजम्बालगवेषणाय कृतोद्यमानां खलसैरिभाणाम्।
कवीन्द्रवाङ्निर्झरनिर्झरिण्यां संजायते व्यर्थमनोरथत्वम्॥

खलों को आप भैंसे का अवतार समझिए। भैंसों को महा अपावन कीचड़ बहुत पसन्द होता है। वे हमेशा उसी को तलाश में रहते हैं। परन्तु सुकवियों की वाणीरूपी सुरसरिता में जब वे घुसते हैं तब उन बेचारों का प्रयत्न बेतरह निष्फल जाता है। भला गङ्गा में कीचड़ कहां?

[१३]

दृढप्ररूढा शतपत्रयोनेः कियत्यहो साधुजनेऽनुकम्पा।
योऽद्यापि विद्यानवपक्षसङ्गं खलप्लवंगस्य न निर्ममीते॥

ब्रह्मा ने सज्जनों पर एक बहुत ही बड़ा उपकार किया है। उसकी इस चिरप्ररूढ कृपा का विचार करके आश्चर्य्य होता है। वह कृपा यह है कि इन खलरूपी बन्दरों को, सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक, उसने विद्यारूपी पक्ष (पंख) नहीं दिये। यदि कहीं इनको वह विद्या-पक्ष दे देता तो सज्जनों का संसार में रहना कठिन हो जाता। बन्दर यदि उड़ने लगें तो बड़ी बड़ी बस्तियों के भी उजड़ जाने में देर न लगे।

[१४]

नैव व्याकरणज्ञमेव पितरं न भ्रातरं तार्किकं
मीमांसानिपुणं नपुंसकमिति ज्ञात्वा निरस्तादरा।
दूरात्सङ्कुचितेव गच्छति पुनश्चाण्डालवच्छान्दसं
काव्यालङ्करणज्ञमेव कविताकान्ता वृणीते स्वयम्॥

कवितारूपिणी कान्ता वैयाकरण को पिता, नैयायिक को भाई और मीमांसक को नपुंसक समझ कर उनके पास नहीं जाती—उनके विषय में प्रेम-सम्भूत आदर नहीं प्रकट करती। रहे वैदिक लोग, सो उनको तो वह चाण्डाल सा समझ उन्हें छूना तक पाप समझती है। अतएव उन्हें देख सङ्कुचित होकर वह दूर निकल जाती है। परन्तु काव्यालङ्कारों के ज्ञाता, सहृदय सज्जनों को, पाकर वह खुद ही उनके कण्ठ में माला डाल उनकी हो जाती है।

[१५]

विना न साहित्यविदा परत्र गुणः कथञ्चित् प्रथते कवीनाम्।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यशास्त्र का ज्ञाता ही कवियों के गुणों को अच्छी तरह जान सकता है। साहित्य में जो बिलकुल ही शून्य है वह कविता का मर्म्म क्या जाने? तेल की बूंद पानी ही में पड़ने से चारों तरफ़ फैलती है, अन्यत्र नहीं। ज़मीन पर आप चाहे तेल के कुप्पे ढुलकाया कीजिए; पर वह बात वहां थोड़े ही देखने को मिलेगी।

[१६]

अयं मे वाग्गुम्फो विशदपदवैदग्ध्यमधुरः
स्फुरद्बन्धो बन्ध्यः पशुहृदि कृतार्थः कविहृदि।
कटाक्षो वामाक्ष्या दरदलितनेत्रान्तकलितः
कुमारे निःसारः स तु किमपि यूनः सुखयति॥

अच्छे अच्छे पदों के रचना-चातुर्य्य से मधुर और मनोहर मेरा काव्य-प्रबन्ध, अरसिक-पशुओं के हृदय में कुछ भी असर नहीं पैदा कर सकता; परन्तु सहृदय कवियों के हृदय में पहुँच कर वह कृतार्थ हो जाता है। तरुण सुन्दरियों के नेत्रप्रान्त से फेंके गये जो कटाक्ष अज्ञानी बालकों पर निष्फल जाते हैं वही युवकजनों को आनन्ददायक होते हैं।

[१७]

पदव्यक्तिव्यक्तीकृतसहृदयानन्दसरणौ
कवीनां काव्येन स्फुरति बुधमात्रस्य धिषणा।
नवक्रीडावेश्मव्यसनपिशुनो यः कुलवधू-
कटाक्षाणां पन्थाः स खलु गणिकानामविषयः॥

कवियों के काव्य के पदों को, किंवा शब्दों को, सुनने के साथ ही सहृदय लोगों के हृदय में उत्पन्न होने वाले आनन्द के मर्म्म को सिर्फ़ ज्ञाता ही जान सकते हैं, और नहीं। नवीन-समागम के योग से उत्पन्न हुए, कुल-कामिनियों के रसिकत्व-सूचक कटाक्ष, बेचारी वेश्याओं में भला कहां?

[१८]

धन्यास्ते कवयो यदीयरसना रूक्षाध्वसञ्चारिणी
धावन्तीव सरस्वती द्रुतपदन्यासने निष्क्रामति।
अस्माकं रसपिच्छिले पथि गिरां देवी नवीनोदय-
त्पीनोत्तुङ्गपयोधरेव युवतिर्मान्थर्य्यमालम्बते॥

उन कवियों को धन्य कहना चाहिए जिनकी जिह्वारूप सूखी साखी सड़क पर जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाती हुई सरस्वती दौड़ती चली जाती है। परन्तु हमारी स्थिति वैसी नहीं। हमारी जिह्वारूपी सड़क पर रस बह रहा है। इससे फिसल पड़ने का डर है। अतएव नवीन, पीन और उत्तुङ्ग पयोधर वाली युवती की तरह, सरस्वती देवी उस पर धीरे धीरे चलती है। वह डरती है कि कहीं फिसल कर गिर न पड़े, जो बोझ से शरीर के भारी होने के कारण, उसका हाथ पैर टूट जाय।

[१९]

लभ्यः स कुत्र सुजनः स्वकृतीः प्रदर्श्य
भ्रूकन्दलीयुगलमाकलयन्ति यस्य।
नेत्रोत्पलोपरि परिस्फुरदुत्तमाङ्ग-
भृङ्गावलिद्वितयविभ्रमभृत्कवीन्द्राः॥

कवियों को ऐसा सज्जन भला कहां मिल सकता है जिसके सामने अपनी कविता रखकर उस के नेत्ररूपी कमलों के ऊपर, चञ्चलभृङ्गावली-युग्म के विभ्रमरूपी विलासों को धारण करने वाले भ्रूयुगल-कन्द, उन्हें देखने को मिलें? सचमुच ही ऐसा सज्जन मिलना मुश्किल है। और मिल जाय तो कवियों का अहोभाग्य समझना चाहिए। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो सत्कवियों की भी कविता सुनकर ख़ुश होते हों।

[२०]

दिव्ये वाक्प्रसरक्रमे सुकवितुः प्रत्यक्षवाचस्पतेः
श्रोतस्तोत्रकथासु कः खलु पटुः स्याच्चर्म्मचक्षुर्जनः?
लभ्यः शेषफणी कुतोऽत्र स तु यश्चक्षुःसहस्रद्वये-
नाकर्ण्यैनमथ स्तुतौ वितनुयाज्जिह्वासहस्रद्वयीम्॥

वाचस्पति के प्रत्यक्ष अवतार, सुकवि, की दिव्य कविता सुन कर, कौन चर्म्मचक्षुधारी—साधारण मनुष्य—उसकी यथेष्ट प्रशंसा कर सकता है? एक मात्र शेष ही ऐसा है जो इस काम के करने में समर्थ है। वही ऐसे कवि की कविता को दो हज़ार आँखों से सुनकर (सर्प के कान नहीं होते, वह आंखों ही से सुनता है) उतनी ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिह्वाओं से उसकी स्तुति कर सकता है। परन्तु, अफ़सोस, शेष पृथ्वी पर नहीं। अतएव ऐसी दिव्य कविता अप्रशंसित ही रह जायगी।

[२१]

मनस्विनीनामिव साचि वीक्षितं स्तनन्धयानामिव मुग्धजल्पितम्।
अवश्यमासां मधु सूक्तिवीरुधां मनीषिणां मानसमार्द्रयिष्यति॥

मानिनी मुग्धाओं के कुटिल कटाक्षों की तरह, अथवा बालकों के तोतले वचनों की तरह, इन सुभाषितरूपिणी लताओं का मधुर मधु (मुझे विश्वास है) सहृदय सज्जनों के हृदयों को ज़रूर आर्द्र कर देगा।

शब्दार्थ-विचार।

संस्कृत के अनेक ग्रन्थों के आधार पर, पण्डित गणेश सदाशिव लेले ने, मराठी में, साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें शब्द और अर्थ का, साहित्यशास्त्र के नियमों के अनुसार, थोड़े में, अच्छा वर्णन है। यह लेख, प्रश्नोत्तर के रूप में, उसीके कुछ अंश का भावार्थ है।

प्रश्न—शब्द किसे कहते हैं?

उत्तर—जिससे अर्थ का बोध हो ऐसे एक अक्षर, या अनेक अक्षरों के समुदाय, को शब्द कहते हैं।

प्र०—अर्थबोधकता के विचार से कितने प्रकार के शब्द होते हैं?

उ०—तीन प्रकार के—वाचक, लक्षक और व्यञ्जक।

प्र०—वाचक शब्दों का क्या लक्षण है?

उ०—जिस शब्द के जिस अर्थ का, नियम-पूर्वक, बोध होता है वह शब्द उस अर्थ का वाचक कहलाता है। और जो अर्थ उस वाचक शब्द से बोधित होता है वह अर्थ उस शब्द का वाच्यार्थ कहलाता है। उसी का नाम शक्यार्थ, मुख्यार्थ, या स्वार्थ भी है। इस व्यापार का नाम शक्ति या अभिधा-वृत्ति है। उदाहरण—"घट" शब्द से नियमपूर्वक एक पात्र-विशेष का बोध होता है। इसलिए "घट" पात्र-विशेष का वाचक और पात्र-विशेष उसका वाच्यार्थ है।

प्र०—लक्षक शब्द किसे कहते हैं?

उ०—जब किसी शब्द के वाच्यार्थ (अर्थात् मुख्यार्थ) से वाक्य का मतलब ठीक ठीक समझ में नहीं आता तब उस शब्द का कोई और अर्थ ऐसा कल्पित कर लिया जाता है जिससे वाक्य का मतलब ठीक ठीक निकल आवे। इस तरह का कल्पित अर्थ उस शब्द का लक्ष्यार्थ और वह शब्द उस अर्थ का लक्षक कहलाता है। इस शब्द-व्यापार या शब्द-शक्ति का नाम लक्षणा-वृत्ति है। उदाहरण—"प्लेग के डर से सारा शहर भग गया"। इस वाक्य में "शहर" शब्द का वाच्य, अर्थात् मुख्य, अर्थ प्रदेश-विशेष है। परन्तु किसी प्रदेश का भग जाना असम्भव बात है। इसलिए "शहर" शब्द से शहर में रहनेवाले आदमियों का बोध होता है। अतएव "शहर" शब्द शहर में रहनेवाले आदमियों के अर्थ का लक्षक और शहर में रहनेवाले आदमी उसका लक्ष्यार्थ हैं।

रूढि और प्रयोजन के अनुसार लक्षणा होती है। जो लक्षणा रूढि के अनुसार होती है उसे निरूढ लक्षणा और जो प्रयोजन के अनुसार होती है उसे प्रयोजनवती लक्षणा कहते हैं। पूर्वोक्त उदाहरण में जो लक्षणा है वह निरूढ-लक्षणा है; क्योंकि वह रूढि के अनुसार हुई है।

प्र०—व्यञ्जक शब्द किसे कहते हैं?

उ०—वाच्य और लक्ष्य अर्थों के सिवा एक तीसरे ही अर्थ की प्रतीति जिस शब्द से होती है वह शब्द उस अर्थ का व्यञ्जक और वह अर्थ उस शब्द का व्यंग्यार्थ कहलाता है। उदाहरण—"गोविन्द स्वामी की कुटी, प्रयाग में, त्रिवेणी पर है"। यहां त्रिवेणी शब्द के वाच्यार्थ, जलप्रवाह, के ऊपर कुटी का होना सम्भव नहीं। इसलिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षणा करके त्रिवेणी शब्द से त्रिवेणी के तीर का अर्थ ग्रहण करना पड़ता है। त्रिवेणी के तट पर होने के कारण कुटी की शीतलता और पवित्रता की प्रतीति जो मन में होती है वह त्रिवेणी शब्द का व्यंग्यार्थ है और त्रिवेणी शब्द उस व्यंग्यार्थ का व्यञ्जक है। इस शब्द-व्यापार का नाम व्यञ्जना-वृत्ति है। इस उदाहरण में जो लक्षणा की गई है वह कुटी के शीतलत्व और पवित्रत्व को विशेष प्रतीति होने के लिए है।

प्र०—कितनी तरह से लक्षणा होती है?

उ०—दो तरह से—वाच्यार्थ के सादृश्य के अनुसार और वाच्यार्थ के सम्बन्ध के अनुसार। उदाहरण—"देवदत्त! तुम आदमी नहीं बैल हो"। यहां, बैल के बुद्धिमान्द्य आदि गुण, अर्थात् धर्म्म, देवदत्त में होने से यह अर्थ हुआ कि वह बैल—अर्थात् बैल के सदृश—है। इसलिए इस लक्षणा का नाम सादृश्य-निबन्धना है। इसी को कोई कोई गौणी-वृत्ति भी कहते हैं।

"प्लेग के डर से सारा शहर भग गया"—इस उदाहरण में शहर शब्द से शहर सम्बन्धी आदमियों का अर्थ; और "गोविन्द स्वामी की कुटी, प्रयाग में, त्रिवेणी पर, है"—इसमें त्रिवेणी शब्द से त्रिवेणी-सम्बन्धी तट का अर्थ, ग्रहण करना पड़ता है। इसलिए ये दोनों लक्षणायें सम्बन्ध-निबन्धना हैं।

प्र०—सम्बन्ध-निबन्धना लक्षणा कितने प्रकार की होती है?

उ०—दो प्रकार की—जहत्स्वार्था और अजहत्स्वार्था।

प्र०—दोनों का अलग अलग लक्षण क्या है?

उ०—जहां वाच्यार्थ का बिलकुल ही त्याग होता है वहां जहत्स्वार्था होती है। जैसे; "प्लेग के डर से सारा शहर भग गया"—इस उदाहरण में शहर शब्द के वाच्यार्थ, प्रदेश-विशेष, का सर्वथा त्याग होकर सिर्फ़ उससे सम्बन्ध रखने वाले आदमियों का अर्थ लिया गया। इसलिए यह जहत्स्वार्था हुई।

जहां लक्ष्यार्थ के साथ वाच्यार्थ का भी ग्रहण होता है वहां अजहत्स्वार्था होती है। जैसे, "यहां पर दही रक्खा है; बिल्ली न आने पावे"। इस उदाहरण में बिल्ली शब्द से एक जीव-विशेष से भी मतलब है और उसके सिवा कुत्ता या कौआ इत्यादि दही खाने वाले और भी प्राणियों से मतलब है। क्योंकि, कहने वाले को यह इच्छा नहीं, कि सिर्फ़ बिल्ली ही दही के पास न आने पावे, और जीव आवें तो आने दो। अतएव, यहां पर, अजहत्स्वार्था नामक सम्बन्ध-निबन्धना हुई।

कोई कोई, विशेष करके वेदान्ती लोग, जहदजहत्स्वार्था नामक भी लक्षणा मानते हैं। उसमें वाच्यार्थ के कुछ अंश का त्याग होकर अवशिष्ट अंश लक्ष्यार्थ के साथ अपेक्षित अर्थ का बोध कराता है। यह बहुत सूक्ष्म और क्लिष्ट-कल्पना है। इसके उदाहरण की ज़रूरत नहीं।

प्र०—जैसे शब्द में व्यञ्जकता होती है वैसेही क्या अर्थ में भी होती है?

उ०—हां, कभी कभी अर्थ में भी व्यञ्जकता होती है। जैसे; "अरे मार डाला?" इस वाक्य से यह अर्थ निकलता है कि बचाने के लिए कोई दौड़ो। अथवा—'अरे दस बज गये"! यह कहने से सूचित होता है कि स्कूल या दफ़्तर इत्यादि जाने का समय होगया।

प्र०—लक्षणा के क्या और भी कोई प्रकार हैं?

उ०—हैं। लक्षित-लक्षणा और विपरीत-लक्षणा इत्यादि और भी इसके कई प्रकार हैं। उदाहरण:—"द्विरेफ" शब्द से भौंरे के अर्थ का बोध होने से लक्षित-लक्षणा हुई। अर्थात् जिसमें दो रेफ हैं ऐसे द्विरेफ शब्द ने भौंरे को लक्षित करके उसके अर्थ का बोध करा दिया। "आप बड़े होशियार हैं"—इस वाक्य में जहां "होशियार" शब्द से "बेवकूफ़" का अर्थ अपेक्षित होता है वहां विपरीत (उलटी) लक्षणा होती है।

बहुत से शब्द भी लाक्षणिक होते हैं। जैसे जोड़ तोड़। इसका वाच्यार्थ है जोड़ना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तोड़ना; परन्तु लक्षणा से इसका अर्थ प्रबन्ध करना या मेल मिलाना आदि होता है। उदाहरणः—"शिवदत्त, आज कल, एक बहुत बड़ा ठेका लेने के इरादे से जोड़ तोड़ लगा रहे हैं"। इस तरह के बहुत से रूढ शब्द व्यवहार में आते हैं। जैसे "दवा-पानी" में पानी शब्द से दवा ही के समान और चीज़ों का बोध होता है। "रोना-पीटना" में पीटना शब्द से भी रोने ही का बोध होता है। "हमने तुम्हें सौ दफ़े मना किया कि तुम ऐसा काम मत करो" इसमें सौ दफ़े से सिर्फ़ बहुत दफ़े का अर्थ लक्षित होता है।

पुस्तक-परीक्षा।

मित्र। मासिक पत्र। उपन्यास-कार्य्यालय (काशी) के मालिक बाबू बालमुकुन्द वर्म्मा द्वारा प्रकाशित। वार्षिक मूल्य २ रुपये। इसके पांचवें वर्ष का सातवां अङ्क (१५ एप्रिल १९०६ का) हमारे पास समालोचना के लिए आया है। इसमें "होली का रहस्य" और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का चरित—ये दो मुख्य लेख हैं। दो कवितायें भी हैं। इसके सिवा टिप्पणियां और प्राप्ति स्वीकार भी हैं। आरम्भ में अकबर बादशाह का चित्र है। लक्ष्मी बाई का चरित उत्तम है। वह महाराष्ट्र भाषा से अनुवादित हुआ जान पड़ता है। पर अनुवादक का नाम नहीं दिया गया। हमारी सूचना है कि हर अङ्क में लेखों की एक सूची भी छपा करे। पत्र अच्छा मालूम होता है। इस अङ्क में ३२ पृष्ठ है।

❋

श्रीभगवत्सुधाशतकम्। संसार में कवित्व-शक्ति दुर्लभ है। विरले ही कृती विद्वानों को वह प्राप्त होती है। संस्कृत की यथेष्ट विद्वत्ता प्राप्त करने के बाद सुकवि होना तो और भी दुर्लभ है। ईश्वरानुग्रह से ये दोनों दुष्प्राप्य बातें पण्डित शिवदत्त शर्म्मा में पाई जाती हैं। आप की रचित कई पुस्तकों की आलोचना सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी है। आज हमें आपके श्रीभगवत्सुधाशतक के देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस शतक में कुल ११३ श्लोक हैं। सब श्लोकों की हिन्दी और संस्कृत में व्याख्या भी है। व्याख्या स्वयं शतककार की की हुई है। पुस्तक के अन्त में महालक्ष्मी और सरस्वती के दो स्तोत्र भी हैं। इस शतक की कविता बहुत सरस और भावपूर्ण है। कहीं कहीं पर पढ़ने वाला करुण-रस के कल्लोलों में एक दम ही डूब जाता है। उपमन्यु नाम के एक कवि ने "शिवस्तोत्र" नाम की एक सरस कविता लिखी है। प्रसिद्ध कवि "पण्डितराज" जगन्नाथ राय ने उसी तरह की "करुणालहरी" की रचना की है। उसमें विष्णु की स्तुति है। प्रसिद्ध मैथिल पण्डित गोकुलनाथ ने "शिवशतक" नामक एक करुण-रसात्मक कविता लिखी है। पर इन सबसे बढ़कर एक प्राचीन काश्मीरक पण्डित ने "स्तुतिकुसुमाञ्जलि" नामक काव्य किया है। यह बहुत बड़ा काव्य है। इसमें कितने ही स्तोत्र हैं। सब शिव-पर हैं। उनमें से "करुणाक्रन्दन" आदि कई स्तोत्र करुण-रस के आकर हैं। उनके आकलन से चित्त की अजब हालत हो जाती है। जी यही चाहता है कि उनको हमेशा आवृत्ति ही करते रहें। पण्डित शिवदत्त जी का यह सुधाशतक आकार में यद्यपि स्तुतिकुसुमाञ्जलि से छोटा है, तथापि गुण में वह उतना छोटा नहीं। जिस तरह का आनन्द उपमन्यु, जगन्नाथराय, गोकुलनाथ और इस काश्मीरी कवि की कविता में आता है प्रायः उसी तरह का आनन्द इस सुधाशतक के पढ़ने में भी आता है। दो एक उदाहरण सुनिए—

यदि मां जगदीश! साम्प्रतं न हि रक्षिष्यसि सर्वतोभयम्।
मरणन्तु ममाद्य निश्चितं यशसो नैव तवापि जीवितम् ६०

रुदतः समयो गतः कियान् इयताप्यश्रुतमर्थितं त्वया।
तव हन्त! शरण्यताद्भुता भगवन्! यत् प्रचकास्ति सर्वदा ६२

अमितानि कृतानि दुष्कृतान्यपि हा हन्त! दुरात्मनात्मना।
करुणावरुणालयं विभो! स्मरता त्वां न कुतोऽपि भीयते १०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयि माधव ! कीदृशो भवान् महनीयः करुणासुधानिधिः ?
अपि जीवितमद्य मुञ्चतो मम याच्त्रैव न यन्निशम्यते ११०

इसी तरह की कविता इस शतक में है। विस्तार-भय से इन नमूनों का अर्थ हम हिन्दी में नहीं देते। पाठक क्षमा करें। इस शतक में श्लोकों का टाइप यदि कुछ बड़ा होता तो उत्तम होता। पुस्तक के आरम्भ में पण्डित शिवदत्त जी ने बाबू रूडमल गुप्त की प्रशंसा की है। इससे जान पड़ता है कि बाबू साहब गुणग्राहक और कवियों के प्रेमी हैं। आप का यह सद्गुण अभिनन्दनीय है। पण्डित श्रीशिवदत्त शर्म्मा, कविरत्न, का पता १२, मल्लिक स्ट्रीट, कलकत्ता है।

❋

बारहमासी। कवि जगरूप-कृत। श्री चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा द्वारा प्रकाशित। इस बारहमासी की कविता सरस और प्रसाद-गुण-पूर्ण है। पुस्तक के आरम्भ में राधाकृष्ण के झूले का एक उत्तम चित्र है। सचित्र पुस्तक का मूल्य डेढ़ आना; बेचित्र का एक आना। श्रीराघवेन्द्र प्रेस, प्रयाग, से प्राप्य।

❋

गोसेवा से लाभ। श्रीराय-महावीरप्रसाद नारायणसिंह बहादुर कृत। परलोकवासी म० म० श्रीराम मिश्र शास्त्री द्वारा संशोधित। बनारस के मेडिकल हाल प्रेस में मुद्रित। पुस्तक उपयोगी है। अनेक युक्तियों और शास्त्रोक्त प्रमाणों से इस में गोजाति की सेवा और उसके पालन-पोषण की आवश्यकता दिखलाई गई है।

❋

शिवरामाष्टक स्तोत्र। शिव और रामचन्द्र की स्तुति है। भाषा संस्कृत है। उत्तम है। अमृतसर-निवासी पण्डित जगन्नाथ शर्म्मा ने भेजी है।

❋

औषधियां। पण्डित मुकुन्दराम जोशी अनुभवशील वैद्य हैं। काशीपुर (तराई) में आप का आयुर्वेदीय औषधालय है। आपने चन्द्रकला नाम की एक ज्वरघ्न दवा बनाई है। इसे आप मुफ़्त में बांटते हैं। यह चौथिया, तिजारी, एकतरा, जूड़ी, बुख़ार आदि के ऊपर है। इस दवा की चार चार रत्ती की दो ख़ूराकें हमने एक आदमी को दीं जिससे फ़ौरन ही उसका बुख़ार रुक गया। एक ख़ूराक दूसरे दिन भी उसने खाई। तब से आज (१ सितम्बर १९०६) तक उसे बुख़ार नहीं आया। ऐसी दवा के रहते कुनैन खाना व्यर्थ है, तिस पर भी जब दवा मुफ़्त मिलती हो। जोशी जी ने कुन्तलविलास नामक एक तैल भी बनाया है। इसकी छोटी सी शीशी आप एक रुपये में बेचते हैं। इसके विधान-पत्र में लिखा है कि यह अनेक प्रकार के शिरोरोगों को दूर करता है और दिमाग़ को मज़बूत करता है। तैल सुगन्धित है। हमने इसे दो तीन दफ़े लगाया और अच्छा पाया।

❋

सद्धर्म्मः। यह एक संस्कृत-मासिक-पुस्तक है। मथुरा से निकलने लगी है। चार पांच अङ्क निकल चुके हैं। वार्षिक मूल्य एक रुपया है। वेद, वेदाङ्ग, स्मृति, दर्शन, पुराण और साहित्य आदि सब विषयों पर थोड़ा थोड़ा इसमें लिखा जाता है। एक एक दो दो पृष्ठ सब के रहते हैं। कुछ हिन्दी भी रहती है। लेखक सब विद्वान् हैं। लेख अच्छे होते हैं; पर हर विषय में इतना थोड़ा लिखा जाता है कि उससे यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता।

❋

गोशाले की रिपोर्ट। रतलाम में एक गोपाल-गोशाला है। वहां गायों का पालन होता है। लूली लँगड़ी और अपाहिज गायें और बछड़े भी रहते हैं। इसी गोशाले की यह छोटी सी रिपोर्ट है। इसके लिए धन की कमी है। एतदर्थ गोभक्तों से अपील की गई है और नव प्रकार से गायों की भक्ति का मार्ग बतलाया गया है।

❋

रिपोर्ट। क्षत्रिय-महासभा का नवां अधिवेशन जो दिसम्बर १९०५ में, काशी में, हुआ था उसीकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह रिपोर्ट है। क्षत्रियों का उद्योग प्रशंसनीय है। उन्होंने आगरे में अपना एक जातीय स्कूल और बोर्डिंग हाउस स्थापित किया है। अब एक कालेज खोलने की फ़िक्र हो रही है। कितने ही विद्यार्थियों को वजीफ़े दिये जाते हैं। सभा के प्रयत्न से कुरीतियों के छुड़ाने का प्रयत्न हो रहा है। कितने ही राजे महाराजे धनदान से सभा की सहायता कर रहे हैं। क्षत्रियों में विद्या की कमी है। आशा है इस सभा के द्वारा यह कमी धीरे धीरे जाती रहेगी।

❋

ऋजुस्तवमञ्जूषा। तीसरी आवृत्ति। पाण्डेय उमापतिदत्त शर्म्मा द्वारा सङ्कलित। इस पुस्तक की समालोचना जून १९०५ की सरस्वती में छप चुकी है।

❋

पंचाध्यायी। श्रीयुक्त गांधी, नाथा रंगजी, द्वारा कोल्हापुर से प्रकाशित। यह जैन-साम्प्रदायिक एक संस्कृत ग्रन्थ है। २०० पृष्ठ की पुस्तक है। हज़ार से ऊपर श्लोक हैं। जैनशास्त्रों के सिद्धान्त इसमें खूब अच्छी तरह समझाये गये हैं। इसकी टीका भी होती तो अच्छा था। दाम मालूम नहीं।

❋

फूल में कांटा। बाबू रामजीदास-वैश्य-कृत। कोई ढाई सौ पृष्ठ की छोटे सांचे की पुस्तक है। दाम दस आने। यह एक अँगरेज़ी पुस्तक के आधार पर लिखा गया उपन्यास है। लेखक अभी नवयुवक विद्यार्थी हैं। आपने अपने रुचिररूप का फ़ोटो भी पुस्तकारम्भ में दिया है। "लाड़ चाव में साहूकारों के लड़के कहां तक बिगड़ जाते हैं"। नवशिक्षित लोग विलायत जाकर "अपने देश के गुणों को खोकर वहां से दुर्गुण सीख आते हैं। वहां पर वे अपना उद्देश बिलकुल भूल जाते हैं और विलायत की भूमि को स्वर्ग समझ ऐश आराम में मस्त होकर नाना प्रकार के बुरे व्यसनों में फंस कर अपना जीवन नष्ट कर देते हैं"। यही सब बातें इस पुस्तक में दिखलाई गई हैं। कथा मनोरञ्जक और उपदेशपूर्ण है। लेखक का उत्साह प्रशंसनीय है। भाषा में कहीं कहीं गड़बड़ है।

❋

सियारामशतक। श्रीयुत सियाराम व्यास द्वारा लिखित। दाम चार आने। इसका विषय नाम ही से स्पष्ट है। सवैया, भजन और कवितों में रामचन्द्र-विषयक कविता है। कोई कोई पद्य अच्छे हैं।

❋

धूर्त्त ऐय्यारा। कुंवर लक्ष्मीनारायण गुप्त कृत। दाम डेढ़ आने। पृष्ठ-संख्या ३३। इसकी प्रशंसा भूमिका में कर्त्ता महाशय इस तरह लिखते हैं—"यह उपन्यास प्यारे पाठकों को धोखेबाज़ों की चालाकी से बचावेगा और अपनी सच्ची ऐय्यारियों की बहार दिखा कर झूंठो ऐय्यारियों का मुँह काला करेगा। मैं इसकी अधिक प्रशंसा न कर सिर्फ़ इतना ही कहूंगा कि इस कलिकाल में आपका सच्चा सहायक और दुष्टों से बचानेवाला यदि कोई है तो यही है"।

❋

संस्कृतप्रबोध। दूसरा भाग। पण्डित बदरीदत्त शर्म्मा आर्य्यसमाज, कानपुर कृत। दाम ३ आने। इसके पहले भाग की आलोचना सरस्वती में छप चुकी है। इस भाग में लिङ्ग, अव्यय, स्त्री-प्रत्यय और समासप्रकरण हैं। सरल और शुद्ध हिन्दी भाषा में ये विषय बड़ी ही योग्यता से समझाये गये हैं। थोड़े परिश्रम से जिनको संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करना हो उनके लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। अपने ढंग की यह पुस्तक एक ही है।

❋

नलदमयन्ती-नाटक। श्रीमहावीर वर्म्मा प्रणीत। इंडियन प्रेस, प्रयाग में मुद्रित। बनैली के राजकुमार श्रीकीर्त्यानन्दसिंह बहादुर को अर्पित। पृष्ठ-संख्या ५२। दाम आठ आने। इसमें नलदमयन्ती की कथा नाटक के रूप में वर्णन की गई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। कविता में दोष रह गये हैं। दाम भी कुछ अधिक मालूम होते हैं।

⁂

कुंवर उदयभानचरित। सआदतअलीख़ां के समय में इंशाअल्लाख़ां नाम के एक कवि लखनऊ में हो गये हैं। उन्होंने फ़ारसी अक्षरों में यह कहानी ठेठ हिन्दी में लिखी थी। अंगरेज़ी में भी इसका अनुवाद हो गया है। पर हिन्दी में यह न थी। सो लखनऊ के एंग्लो ओरियंटल प्रेस ने इस कमी को दूर कर दिया। कहानी छोटी है। दो आने में मिलती है। इसमें अरबी फ़ारसी का एक भी शब्द नहीं आने पाया। यह इसमें विशेषता है। इसको पढ़ते समय आँखों के सामने इंशा-अल्लाख़ां के समय की हिन्दी का चित्र सा खिँच जाता है। इसे एक बार राजा शिवप्रशाद ने हिन्दी में प्रकाशित किया था, पर उन्होंने इसकी मूलभाषा में बहुत से फेरफार कर दिये थे और कुछ हिस्से छोड़ दिये थे। यह दोष इस पुस्तक में नहीं आने पाया। बीच बीच में इसमें पद्य भी हैं।

अनाथालय की रिपोर्ट। जालन्धर में कन्याओं का एक अनाथालय है। उसकी यह तीसरी रिपोर्ट है। इसके देखने से मालूम होता है कि अनाथालय का प्रबन्ध बहुत अच्छा है। लड़कियों के खाने पीने, शिक्षा और आरोग्य-रक्षा की ओर अच्छी तरह ध्यान दिया जाता है। अनाथालय सर्वसाधारण की सहायता का पात्र है।

⁂

बाबू बुलाक़ीलाल वर्म्मा की पुस्तकें। (१) रामनाम महातम चालीसा। इसमें रामनाम की महिमा के कवित्त और सवैय्या आदि हैं। (२) प्रेमपुष्पाञ्जली। इसमें कोई ४० पद्यों में, रामचन्द्र जी के विषय में, भक्तिरसपूर्ण कविता है। (३) अष्टयाम। तुलसीदासजी की रामायण से विशेष विशेष स्थलों को श्रीयुत राम गुलामजी ने चुन निकाला था। उसीका इसमें संग्रह है। चुनाव अच्छा हुआ है। पुस्तक (१) और (२) की कोई कोई कविता सरस है।

ग्राहकों से निवेदन।

ईश्वर की कृपा और सरस्वती-पाठकों के अनुग्रह से, सरस्वती का (सन् १९०६ का) यह सातवां वर्ष भी समाप्त होने वाला है। इस वर्त्तमान वर्ष में सरस्वती के ११ अङ्क प्रकाशित हो चुके। दिसंबर का बारहवाँ अङ्क भी पाठकों की सेवा में यथासमय पहुंचेगा। ग्राहकों का १९०६ का वार्षिक मूल्य भी दिसंबर को संख्या तक चुक जायगा इसलिये हम सरस्वती के ग्राहकों की सेवा में सादर निवेदन करते हैं कि १९०७ ई० के लिये सरस्वती का वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया भेजकर हिन्दी-साहित्य-प्रचार में सहायता दें।

यदि किसी कारण से आप को रुपया भेजने में कुछ असुविधा हो तो कृपा कर हमें आज्ञा दीजिए; हम जनवरी १९०७ की संख्या वी० पी० द्वारा भेजकर मूल्य प्राप्त करलें। हमें आशा है कि हमारे हिन्दी-प्रेमी सभी उदार ग्राहक मूल्य भेजकर हमारा उत्साह बढ़ावेंगे।

मूल्य भेजने का पता—

मैनेजर,

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

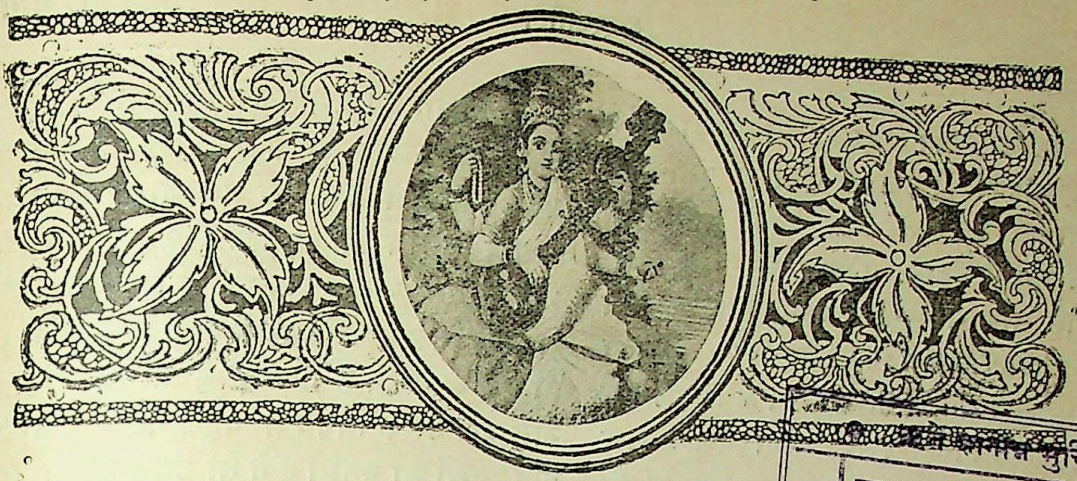

पुस्तक सं०..सर०.....
आगत सं०..७(१२)...
तिथि०.....
गुरुकुल ग्रन्थालय कांगड़ी.

सरस्वती।

भाग ७] दिसम्बर, १९०६ [संख्या १२

वार्षिक विनय।

इस संख्या के साथ सरस्वती का सातवां, और उसके काशीवास-परित्याग का चौथा, साल समाप्त होता है। बड़े हर्ष की बात है कि, अपने अनुग्रहरूपी सलिल से सरस्वती को सिञ्चन करनेवाले सज्जनों से गत वर्ष, दिसम्बर की संख्या में, हमने जो यह प्रार्थना की थी कि—"वे इसे अगले वर्ष, कुछ और भी विशेष कृपा की दृष्टि से देखें" वह सफल हुई। हिन्दी के प्रेमियों ने सरस्वती को अपनाया; उसके प्रचार को गत वर्ष की अपेक्षा भी अधिक बढ़ाया; अच्छे अच्छे लेखों से उसके सुन्दर शरीर को और भी मनोहर बनाया; और हम लोगों के—विशेष करके सरस्वती के मालिकों के—उत्साह को वृद्धिङ्गत किया। इसलिए हम सरस्वती के सब प्रकार के सहायकों के हृदय से कृतज्ञ हैं और उनसे पुनर्वार विनीत-भाव से प्रार्थना करते हैं कि उदारतापूर्वक वे सरस्वती पर पूर्ववत् कृपा बनाये रहें; उसकी त्रुटियों को दूर करने में सत्परामर्श द्वारा सहायता दें; और उसकी प्रचार-वृद्धि की यथासम्भव चेष्टा करें। हमें दृढ़ आशा—आशा क्यों, विश्वास—है कि यदि सरस्वती के प्रेमी उस पर ऐसी ही कृपा बनाये रहेंगे तो, हिन्दी के सर्व-श्रेष्ठ साप्ताहिक समाचारपत्रों से अधिक नहीं तो उनका इतना प्रचार तो उसका अवश्य ही हो जायगा, और अचिरात् हो जायगा। सरस्वती की इस सफलता का सारा श्रेय उसके प्रणयी पाठकों ही को है। उसमें और किसीका हिस्सा नहीं। क्योंकि अपनी समझ के अनुसार कोई चाहे जितने अच्छे लेख लिखे, यदि वे पढ़ने वालों को पसन्द न आये, तो लिखना ही व्यर्थ समझना चाहिए।

इस वर्ष सरस्वती की पृष्ठ-संख्या पूरी ५०० तक पहुँची। पर ग्राहकों को पूर्ववत् वही तीन रुपये मूल्य देना पड़ा। इससे यह मतलब नहीं कि ग्राहक महाशयों पर सरस्वती ने कोई एहसान किया। हरगिज़ नहीं। उलटा सरस्वती ही उनकी एहसानमन्द है। क्योंकि उन्हींकी कृपा, उन्हींकी उदारता, उन्हींकी गुणग्राहकता की बदौलत वह इतने पृष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको भेंट कर सकें। इरादा तो उसका यह है कि यदि ग्राहकों की उस पर ऐसी ही दया-दृष्टि बनी रही तो उत्तरोत्तर वह अपनी पृष्ठ-संख्या और भी अधिक बढ़ाने की चेष्टा करेगी।

अगले साल सरस्वती में उत्तमोत्तम चित्र दिये जाने का विशेष प्रबन्ध किया जा रहा है। आशा है भविष्यत् में जो चित्र सरस्वती में निकलेंगे वे बहुत ही अच्छे होंगे। इसके सिवा एक प्रसिद्ध चित्रकलाकुशल चित्रकार से भी सरस्वती के लिए चित्र बनवाने का प्रबन्ध किया गया है।

लेखों के विषय में यह निवेदन है कि सरस्वती के रसज्ञ वाचक अब कुछ गम्भीर विषयों पर भी लेख पढ़ने के लिए तैयार रहें। सामान्य विषयों पर ही सरल लेख लिखते रहने से हिन्दी की अवस्था उन्नत नहीं हो सकती। इस तरह के लेख पढ़ते पढ़ते, आशा है, हमारे विद्याव्यसनी वाचकों की रुचि में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ होगा। अतएव यदि अब सरस्वती में कभी कभी गम्भीर लेख भी निकलें तो वे अवश्य उनका आदर करेंगे। सरस्वती के सम्पादन में, अगले साल, हम इस बात का ख़याल रक्खेंगे। इस समय हमारे दो एक मित्र लंडन और चिकागो (अमेरिका) में हैं। उन्होंने वहां से अच्छे अच्छे उपयोगी और मनोरञ्जक सचित्र लेख भेजने का वादा किया है। आशा है, सरस्वती के पाठक उनको पसन्द करेंगे और उनको भी पढ़ने के लिए प्रस्तुत रहेंगे।

इस वर्ष सरस्वती के ग्राहकों की सेवा में कोई ३२ पूरे पृष्ठ के, "हाफ-टोन," और ५० से भी अधिक दूसरे छोटे बड़े, चित्र पहुँचे। अब यदि इन चित्रों में से प्रति "हाफ-टोन" चित्र की कम से कम एक आना और दूसरों की प्रति चित्र एक पैसा भी क़ीमत रक्खी जाय तो इतने में भी इस तरह के चित्र ग्राहकों को बाज़ार में न मिलेंगे। अतएव, इस हिसाब से, केवल चित्रों ही का मूल्य सरस्वती के वार्षिक मूल्य के बराबर हो गया। उसके लेख पाठकों को घाते ही में मिले समझने चाहिएँ। यद्यपि हमें विश्वास है, सरस्वती के ग्राहक उस पर उसके चित्रों के कारण कम, पर उसके लेखों के कारण अधिक, कृपा करते हैं, तथापि जिनको उसे पढ़ने के लिए यथेष्ट अवकाश नहीं वे, यदि बाल-बच्चे वाले हैं तो, उसके चित्रों से अपने बालक-बालिकाओं के मनोरञ्जन के लिए ही उसे ले सकते हैं। यदि वे प्रत्येक चित्र का नाम और उसके विषय में बहुत नहीं, दोही चार बातें, बच्चों को बतला देंगे तो उतने ही से उनको कितनी ही नई नई बातें मालूम हो जायँगी। अतएव इस तरह से भी उनको कुछ न कुछ सेवा सरस्वती करेहीगी। मतलब यह कि मूल्य के रूप में सरस्वती की जो सहायता वे करेंगे वह निष्फल न जायगी। इस पर भी यदि पाठक उस पर कृपा-दृष्टि न रक्खें तो हम उनको दोष न देकर हिन्दी ही के दुर्भाग्य को दोष देंगे।

एक और प्रार्थना यह है कि सरस्वती के प्रेमी पाठकों ही को हम उसके विज्ञापन-दाता समझते हैं। इसी से इस विषय में और कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता। हमारे इस अनन्य-सद्भाव को देख कर पाठकों को भी चाहिए कि यदि सरस्वती से हिन्दी की कुछ भी सेवा होती हो, यदि इससे उनका कुछ भी मनोरञ्जन होता हो, यदि इसमें कुछ भी गुण हो तो वे कृपापूर्वक इसके विषय की चर्चा कभी कभी, समयानुसार, अपने मित्रों से भी कर दिया करें। उनकी इस इतनी ही सहायता से सरस्वती के प्रचार में बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। यदि सरस्वती के दो दो ग्राहकों की भी कृपा से एक एक ग्राहक और हो जाय तो हज़ार पाँच सौ कापियां अधिक निकलने लगें और इसके परमोत्साही मालिकों का उत्साह और भी बढ़ जाय—यही नहीं किन्तु गत वर्ष तक इसके प्रकाशन में जो उन्होंने हज़ारों की हानि उठाई है उसे भी वे लाभ ही समझें। यदि हमारी ये प्रार्थनायें न स्वीकार हों, तो इतनी प्रार्थना तो पाठक अवश्य ही स्वीकार करें कि अगले वर्ष के लिए अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्राहकता को नवीन करके गुण-ग्राहकता का परिचय दें। और कुछ प्राप्ति न हो तो न सही, घर के धान तो पयाल में न जायँ। जितने हैं उतने हीं बने रहें; हम इसी को ग़नीमत समझेंगे।

इस साल सरस्वती में दो एक लेख और कवितायें ऐसी निकलीं जिन्हें सुरुचि के प्रेमी पाठकों में से किसी किसी ने शायद न पसन्द किया हो। यदि ऐसा हुआ हो तो हमें खेद है। अतएव इस विषय में हम विश्वास दिलाते हैं कि कुरुचि की वृद्धि करना सरस्वती को कदापि अभीष्ट नहीं। परन्तु बहुत तंग किये जाने पर, कारणवश, यदि कोई वैसा लेख हमारी लेखनी से निकल जाय तो सरस्वती के उदार पाठकों को क्षमा करना चाहिए। तितिक्षा की भी हद होती है। भारवि ने कहा है—

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं, चयमास्कन्दति भस्मनां जनः

अर्थात् जलती हुई आग को कोई छूने का भी साहस नहीं करता; परन्तु राख के ढेरों को लोग निर्भय खूंदते चले जाते हैं।

सरस्वती की प्रशंसा में इस साल कितने ही लेख और कवितायें हमारे पास आई हैं। आत्म-श्लाघा के भय से हम उन सबको नहीं प्रकाशित कर सकते। पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी की भेजी हुई सिर्फ़ एक कविता नीचे प्रकाशित करके, हम और सब सज्जनों से उनके लेख न प्रकाशित करने की क्षमा माँगते हैं।

सरस काव्य, विज्ञान, कला-कौशल-विस्तारन।
रवि-सम ज्ञान प्रकासि तिमिर-अज्ञान-निवारन १
स्वच्छ देश-हित करन हेत कर्त्तव्य-विचारन।
तीरथराज प्रयाग माहिँ कीन्हों वपु-धारन २
मारग सुगम लखाय लेख आमोद-प्रसारन।
सित कीरति विस्तारि नागरी-वरन-प्रचारन ३
कलित ललित वर विषय विभूषित हिन्दी-भूषन।
परम रुचिर मन-हरन चित्र पुनि चरित अदूषन ४
त्रिभुवन-सुख अनुभवहिँ पढ़हिँ जे नर-नारीगन।
काम्य-मोद-कौतूहल-वश होवहिँ सिगरे जन ५

विविध विषय।

इंडियन प्रेस, प्रयाग, की "बालरामायण" प्रकाशित हो गई। बालसखा पुस्तक-माला की यह तीसरी पुस्तक है। इस का मोटा काग़ज़, छोटा साँचा, सुन्दर छपाई, रंगीन टाइटिल पेज, देख कर लड़के ही नहीं जवान भी लहालोट हो जायँगे। इसमें १८३ पृष्ठ हैं, पर दाम सिर्फ़ आठ आने। इसे पण्डित रामजीलाल शर्म्मा ने लिखा है। रामायण के क्लिष्ट और अति-प्रकृत विषयों को यथासम्भव बचाकर शेष बातों का संक्षेप बहुत ही सरल और सुपाठ्यभाषा में लिखा गया है। बीच बीच में तुलसीदासकृत रामचरित-मानस—रामायण—के चुने हुए दोहे और चौपाइयां भी रख दी गई हैं। इससे इसे पढ़ने में लड़के, लड़कियों का और भी अधिक मन लगेगा। लड़कों के लिए "पुस्तकमाला" प्रकाशित करने का जो काम इस प्रेस ने शुरू किया है, बहुत ही उत्तम है। छोटे छोटे बच्चों के पढ़ने के लिए उत्तमोत्तम पुस्तकें तैयार करना मानों हिन्दुस्तान के भावी भाग्य को सुधारना है। परन्तु बच्चों ही की तरफ़ नहीं, हिन्दी के ग्रन्थकारों की तरफ़ भी इंडियन प्रेस का ध्यान गया है। हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि यदि न पढ़ा हो तो गत आक्टोबर और नवम्बर की सरस्वती की पीठ पर छपा हुआ इंडियन प्रेस का "निवेदन" पढ़ें। अब किसी हिन्दी लेखक की यह शिकायत न सुनी जायगी कि धनाभाव के कारण वह हिन्दी की अच्छी अच्छी पुस्तकें नहीं प्रकाशित कर सकता। अब तो उलटा और कुछ मिल जाने की आशा है।

* * *

इस महीने के अन्त में कांग्रेस का जलसा कलकत्ते में होगा। इस दफ़े श्रीयुक्त दादाभाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौरोजी सभापति के आसन को सुशोभित करेंगे। कांग्रेस की सखी प्रदर्शिनी भी वहीं होगी। अतएव सरस्वती के अनेक वाचक कलकत्ते जाँयगे। कलकत्ते की सैर तो वे करेंहींगे; पर कलकत्ते के पास मुरशिदाबाद भी देखने लायक़ है। यह एक ऐतिहासिक शहर है। यहां पर अँगरेज़ महाराज और मुरशिदाबाद के नवाबों के दरमियान अनेक राजनैतिक लीलायें हुई हैं। उनके ख़याल से यह शहर और भी अधिक महत्त्व रखता है। इसमें अब तक अनेक ऐतिहासिक स्थल, इमारतें और पदार्थ प्रायः पूर्ववत् बने हुए हैं। वे सब दर्शनीय हैं। इसीसे हम इस संख्या में मुरशिदाबाद पर एक सचित्र लेख प्रकाशित करते हैं। उसे पढ़कर यदि किसी की इच्छा मुरशिदाबाद देखने को हो तो और भी अच्छा है। नहीं तो, पुरानी बातों का नया हो जाना ही क्या कम है?

* * *

इँगलैंड में एक कल है। उसके भीतर आप चाहे जितने रुपये पैसे डाल दीजिए—चाहे एक दम, चाहे थोड़ा थोड़ा करके—वह उन सबका टोटल ठीक ठीक बता देती है। रुपये पैसे के जोड़ में ज़रा भी ग़लती नहीं होती। अगर आप उससे दी हुई रक़म की रसीद माँगें तो वह आपको उसी वक़्त पक्की रसीद भी दे देती है।

* * *

लंडन के एक दरज़ी ने एक अजीब तरह का कोट बनाया है। उसे पहनकर पानी में कूद पड़ने से आदमी नहीं डूबता; कमर के ऊपर का हिस्सा हमेशा ऊपर को उठा रहता है। उस दरज़ी ने इस कोट के साथ पहनने के लिए गेटर्स भी बनाये हैं। जो लोग ज़रा भी तैरना नहीं जानते वे भी इन दोनों चीज़ों को पहन कर अगर पानी में कूद पड़ते हैं तो नहीं डूबते। अभी कुछ दिन हुए टेम्स नदी में इन दोनों चीज़ों की परीक्षा हुई थी। परीक्षा में वे पास हो गईं। परीक्षा के समय ज्वार-भाटा के कारण नदी बहुत क्षुब्ध हो रही थी। पर जो लोग इन चीज़ों को पहन कर कूदे, नहीं डूबे। इस कोट में एक नली रहती है जिसमें हवा भरी रहती है और हर एक गेटर में, ऐड़ी के पास, पीतल का एक पतला पंखा सा रहता है। वह पतवार का काम देता है। पानी में पैर चलाते वक़्त ये पंखे खुला और बन्द हुआ करते हैं। उनकी सहायता से आदमी आसानी से आगे बढ़ता जाता है और अपने बदन का ऊपरी हिस्सा सीधा रख सकता है। हर एक पंखे का वज़न सिर्फ़ सेर भर है।

* * *

टोगो के स्वदेशप्रेम और वीरत्व आदि गुणों पर जापानी पहले ही से मोहित थे। जब उन्होंने बाल्टिक-बेड़े को चूर्ण-विचूर्ण किया तब उनकी श्रद्धा-भक्ति और भी बढ़ गई। इस घटना के पहले ही मारूकी नाम के एक फ़ोटोग्राफ़र ने टोगो का एक फ़ोटो लिया था। वह अब ख़ूब बिकने लगा। जहां देखो वहीं झुंड के झुंड आदमी उसे ख़रीदने लगे। टोगो जब टोकियो पहुँचे तब अपने फ़ोटो की सब कहीं इतनी अधिक बिक्री देख उन्हें बहुत बुरा लगा। एक दिन वे मारूकी की दुकान पर गये। जाकर आपने मारूकी से कहा—"यह देख कर मेरा कलेजा काँप उठता है कि सब लोग मेरा फ़ोटो मोल लेकर व्यर्थ पैसा ख़र्च कर रहे हैं। यह बहुत ही अनुचित बात है कि मुझ ऐसे अयोग्य आदमी का फ़ोटो लेने में लोग अपना रुपया इस तरह फूंकें। कृपा करके मेरे फ़ोटो का "निगेटिव" मुझे अभी दे दीजिए जिसमें आप और कापियां निकाल कर न बेच सकें"।

मारूकी ने बहुत सोच विचार कर कहा—"पर श्रीमान् को उसकी क़ीमत देनी होगी"।

टोगो—"बेशक। बतलाइए कितनी?"

मारूकी—"बीस यन" ("यन" एक जापानी सिक्के का नाम है)।

टोगो—"मैं बहुत ग़रीब हूं। मेरे लिए इतनी क़ीमत देना, मुशकिल बात है। पर कोई चारा नहीं। देना ही पड़ेगा"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कह कर टोगो ने २० यन गिन दिये और "निगेटिव" लेकर आप चलते हुए।

जो सज्जन हमारे चित्र और चरित पाने के अभिलाषी हैं और अकसर हमें इसलिए लिखा करते हैं, यह नोट हम नम्रतापूर्वक उनके विचारार्थ अर्पण करते हैं।

* * *

पण्डित रामराव राजाराम चिंचोलकर की अकालमृत्यु हुए अभी थोड़े ही दिन हुए। इस दुःखद वार्ता की सूचना सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी है। पण्डित रामरावजी का, हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ लिखने और लिखवाने का दृढ़ सङ्कल्प था। कि जिनसे स्वदेशोन्नति के विचारों की जागृति हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी अल्पावस्था ही में यथा-शक्ति बहुत कुछ प्रयत्न किया था; परन्तु दैवगति से उनकी इच्छा पूर्ण न हुई। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए उनके बाल-मित्र पण्डित माधवराव सप्रे, व्यवस्थापक, हिन्दी-ग्रन्थ-प्रचारक मण्डली, नागपुर, ने २०००) रुपये का एक फंड स्थापित करने का विचार किया है। इस फंड में छः सात सौ रुपये इकट्ठे भी हो चुके हैं। इसके सूद से इतिहास, अर्थशास्त्र, जीवनचरित और राजनैतिक विषयों पर हिन्दी भाषा में ग्रन्थ लिखवाये जायँगे। इस फंड में जो लोग चन्दा देंगे उनकी सम्मति से, इस फंड के प्रबन्ध के लिए, एक कमेटी नियत की जायगी। हिन्दी में इस समय इस प्रकार की पुस्तकों की बड़ी ज़रूरत है। अतः हिन्दी के अभिमानियों और देश-हित-चिन्तकों को इस फंड में चन्दा देकर चिंचोलकर के सदुद्देश्य और सप्रे महाशय के सत्प्रयत्न को अवश्य सफल करना चाहिए। चन्दा सप्रे महाशय के पास भेजना चाहिए।

* * *

इन प्रान्तों के रईसों और तअल्लुकेदारों में अविद्या-देवी का प्रायः अनिर्बन्ध राज्य है। कुछ ही तअल्लुकेदार ऐसे निकलेंगे जो विद्या से थोड़ा बहुत तअल्लुक़ रखते हों। विद्वान् और विद्या-प्रेमी तो और भी कम मिलेंगे। ख़ुशी की बात है, सुल्तानपुर ज़िले में दियरा के तअल्लुकेदार राजा रुद्रप्रताप साहि बड़े विद्या-व्यसनी है। हमारे विशेष ख़ुश होने का कारण यह है कि राजा साहब हिन्दी से भी प्रेम रखते हैं। पण्डित गदाधरप्रसाद मिश्र नामी एक सज्जन से "नरकर्तव्यावलि" नामक एक पुस्तक लिखा कर उसे राजा साहब ने अपने ख़र्च से छपाया है और मुफ़्त बांट रहे हैं। इसकी एक प्रति राजा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी ने हमारे पास समालोचना के लिए भेजी है। पुस्तक का विषय उसके नाम से ही झलक रहा है। इसमें शरीरारोग्य, सद्गुण-सेवन और ईश्वर-भक्ति आदि पर निबन्ध हैं। राजा साहब हमारी धृष्टता को क्षमा करें, इस पुस्तक में कही गईं कितनी ही बातें समयानुकूल नहीं। दातून की लंबाई, चौड़ाई और मुटाई नापते बैठने के अब दिन नहीं रहे। जो बातें लाभदायक भी हैं वे भी अच्छी तरह इस पुस्तक में नहीं लिखी गईं। यदि इस किताब के बदले सर जान लबक् के संसार-कर्तव्य (Use of Life) अथवा संसार-सुख (Pleasures of Life) का हिन्दी-अनुवाद राजा साहब प्रकाशित कराते तो उनका नाम भी होता और पढ़नेवालों को लाभ भी पहुँचता। इस "नरकर्तव्यावलि" की भाषा बहुत ही दोषपूर्ण है। कोई पृष्ठ ऐसा नहीं जिसमें एक नहीं, अनेक त्रुटियां न हों। १४ सतर की भूमिका ही में कई एक दृष्टि-दोष हैं—"शरीर के आरोग्यता" और "विद्वज्जनों को कथन" भी कोई भाषा है? टाइटिल पेज तक में ग़लतियां रह गई हैं। संस्कृत शब्दों का अर्थ प्रति पृष्ठ के नीचे पादटीकाओं में जो दिया गया है उसकी कोई ज़रूरत न थी। या तो सरल भाषा लिखी जाती, या नोट न दिये जाते। यह नहीं कि हर पृष्ठ के नीचे दस पाँच शब्दों का अर्थ! यह बात अब बच्चों की "रीडर्स" तक में नहीं देखी जाती। संस्कृत के जो प्राचीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोक इसमें जगह जगह रक्खेगये हैं उन पर तो बेतरह अत्याचार हुआ है। बुरी बुरी ग़लतियां हुई हैं। पदों का छेद करने में भी बहुत गड़बड़ हुई है। पुस्तककार और प्रेस के कर्म्मचारियों का संस्कृत से ३६ का सम्बन्ध जान पड़ता है। उदाहरण के लिए, सुश्रुत ("धन्वन्तरि" नहीं) के "ऊनषोडशवर्षायां" श्लोक की देखिए क्या दुर्गति हुई है—

ऊनषोड़स वर्षेषु प्राप्तः पञ्चम विन्शातिम्।
यद्याधत्तेपुमान गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥

शिव! शिव! जिन शब्दों से सोलह वर्ष से कम उम्रवाली एक स्त्री का अर्थ निकलता था उससे उतनी उम्र के अनेक युवकों का अर्थ निकलने लगा!!! संस्कृत भाषा बे मौत मार डाली गई। यह श्लोक जैसा इस पुस्तक में छपा है वैसा ही हमने यहां पर लिख दिया है। राजा साहब से प्रार्थना है कि इस यथार्थ-वाद के लिए हम क्षमा किये जायँ। क्योंकि—"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः"। पुस्तकें प्रकाशित करने में आप को अपने गुण-गौरव का ख़याल रखना चाहिए।

* *
*

अमेरिका ने हर बात में अति कर दी है। अब वहां के न्यूयार्क नगर में एक ऐसी इमारत बन रही है जो उँचाई में समग्र संसार की ऊंची से भी ऊंची इमारतों को मात करेगी। उसके मुक़ाबले में लंडन की गगनचुम्बी इमारतें ऐसी मालूम होंगी जैसे किसी ताड़ के सामने कोई छोटा सा सरो का पेड़। जिस सिंगर कम्पनी की बनाई हुई सोने की कलें इस देश में गली गली दिखाई पड़ती हैं उसी के मालिक ने यह इमारत आरम्भ की है। अभी इसके पूरे होने में कुछ देरी है। इसका सर्व्वोच्च भाग ६१२ फ़ीट ऊंचा होगा। चार सौ हाथ से भी अधिक ऊंचा! इस उँचाई को थोड़ी न समझिए। यह हुई कोई एक फरलाँग!!! यह ४१ मंज़िली इमारत होगी और कोई ६००० आदमी इसमें रह सकेंगे! इसका कोई भाग बेकार न रहेगा। ऊंचे से भी ऊंचे खण्ड में आदमी रहेंगे। यह न समझिए कि ४१ वें खण्ड में रहनेवालों को ४१ ज़ीने चढ़ने पड़ेंगे। चढ़ना उतरना किसी को न पड़ेगा। बिजली के ऐसे खटोले रहेंगे कि उनमें पैर रखते ही वे बैठनेवालों को पलक मारते ही ऊपर नीचे पहुँचावेंगे।

* *
*

१ आक्टोबर को बम्बई में रायल एशियाटिक सोसायटी की एक बैठक थी। उसमें अलीबाग़ के सब-जज मिस्टर सलदनहा, बी० ए०, ने इस विषय पर एक लेख पढ़ा कि टामस स्टिफ़ेन्स सब से पहला अँगरेज़ था जो इस देश में १५७९ ईसवी में आया। रोमन कैथलिक सम्प्रदायवालों पर उस ज़माने में बड़ी सख़्ती होती थी। स्टिफ़ेन्स को उसके धार्म्मिक दुश्मनों ने क़ैद करने की फ़िक्र की। इसलिए वह इँगलैंड से भग कर रोम चला गया। वहां वह एक विशेष प्रकार के पादरियों की जमात में दाख़िल होकर पादरी बना और लिस्बन पहुँचा। लिस्बन से वह गोवा आया और क्रिश्चियन-धर्म्म का प्रसार करने की कोशिश करने लगा। ४० वर्ष तक वह सालसिट के प्रायद्वीप में रहा और बहुत लोगों को उसने क्रिश्चियन-धर्म्म में दीक्षित किया। उसने संस्कृत और मराठी भाषायें अच्छी तरह सीखीं। मराठी और पोर्चुगीज़ भाषाओं में उसने अनेक पुस्तकें भी लिखीं। बहुत वृद्ध होकर वह गोवा में मृत्यु को प्राप्त हुआ। पुरानी मराठी भाषा में उसने एक बहुत अच्छी पुस्तक पद्य में लिखी है। वह मराठी के "ओवी" छन्द में है। वह बाइबल का अनुवाद है। बाइबल की पुरानी और नई पुस्तक के नामानुसार उसके ग्रन्थ का नाम है पहला पुराण और दूसरा पुराण। इस पुराण में क्राइस्ट विषयक अनेक गाथायें और जनश्रुतियां भी हैं। सुनते हैं इस पुस्तक की प्रणाली बहुत उत्तम और भाषा बहुत परिमार्जित है। सत्रहवें शतक में इसके कई संस्करण छपकर निकले थे। तब से यह पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर नहीं छपी। अब मँगलौर में इसका एक नया संस्करण छप रहा है। वह शीघ्र ही प्रकाशित होगा। उसके निकलने पर इस अँगरेज़ कवि की मराठी कविता पढ़ने का सौभाग्य इस देशवालों को भी प्राप्त होगा। देखें प्राचीन पादरी साहब की कविता कैसी निकलती है।

* *
*

परम प्रसिद्ध स्वामी रामतीर्थ, एम० ए०, के शरीरपात का समाचार सुन कर दुःख हुआ। गत १७ आक्टोबर को टेहरी, गढ़वाल, में गङ्गास्नान करते समय आप डूब गये। ये गुजराँवाला ज़िले के निवासी थे। लाहौर में क्रिश्चियनों का एक कालेज है। उसका नाम है फ़ोरमन कालेज। उसी में आपने एम० ए० तक शिक्षा पाई थी। गणित में आप बड़े विज्ञ थे। एम० ए० होने के बाद इसी कालेज में आप कुछ समय तक गणित के अध्यापक थे। तदनन्तर आपने "अलिफ़" नाम का एक धार्म्मिकपत्र उर्दू में निकाला था। पर इन झंझटों से आपको विरक्ति होगई और संन्यासी बन कर आप हिमालय की तरफ़ चले गये। वहां से लौट कर जपान और अमेरिका की सैर की। इन देशों में आपने वेदान्त की ख़ूब चर्चा की। विशेष करके अमेरिका में आपके व्याख्यान बड़े ही चाव से सुने गये। उनका यहां तक असर हुआ कि एक अमेरिकन मेम स्वामीजी को जन्मभूमि देखने हिन्दुस्तान आई। अमेरिका में स्वामीजी ने इस देश से जानेवाले विद्यार्थियों के लिए रहने इत्यादि का बहुत कुछ सुभीता किया। यहां लौट आने पर स्वामीजी ने अनेक उत्तमोत्तम व्याख्यान दिये। उनके व्याख्यान बड़े ही लाभदायक और मर्म्मस्पर्शी होते थे। इन व्याख्यानों को कितने ही समाचारपत्र और मासिक-पुस्तकों के कर्त्ता छापते चले आ रहे हैं। गोया स्वामीजी ने इन व्याख्यानों को, लेख के रूप में प्रकाशित करने के लिए, ख़ास कर उन्हींके लिए लिखा हो। स्वामीजी के व्याख्यानों में उर्दू और फ़ारसी के कवियों की अच्छी अच्छी सामयिक उक्तियां बहुत अधिक हुआ करती थीं। इससे जान पड़ता है, स्वामीजी फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता थे। सुनते हैं, मनोविज्ञान पर आप एक पुस्तक लिख रहे थे। उसके प्रायः समाप्त होते ही आपकी मानवलीला समाप्त हो गई। अफ़सोस!

डूबने से पहले आपने अपनी डायरी में "राम का आख़री पयाम" नाम का एक नोट उर्दू में लिखा था। वह अब प्रकाशित हुआ है। उसे देख कर लोग अनुमान करते हैं कि स्वामी जी को अपने अन्त समय का ज्ञान पहले ही से हो गया था।

* *
*

आशुकवि पण्डित अयोध्यानाथ से अब बहुत लोग परिचित हो गये हैं। हिन्दी पढ़नेवालों से आप का पहला परिचय हमने "श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार" के द्वारा १८९८ में कराया था। आपकी आशु-कविता, आपका जीवनचरित और आपकी पण्डिताई आदि का वर्णन नवम्बर १८९८ के "श्री वेङ्कटेश्वरसमाचार" की कई संख्याओं में प्रकाशित हो चुका है। उस लेख में आपकी आशुकविता के अनेक नमूने भी हमने दिये हैं। तब से "हिन्दोस्थान" और "हिन्दी-बङ्गवासी" में भी आपका हाल छपा है। आप झांसी ज़िले के रहनेवाले हैं। उम्र कोई ४१ वर्ष की है। सनाढ्य ब्राह्मण हैं। अकसर बनारस में रहते हैं। देशाटन भी किया करते हैं। कुछ दिन हुए आप कलकत्ते गये थे। वहां कितने ही विद्वानों ने आपका अच्छा आदर किया। पहले आप हम पर झांसी कृपा करने आया करते थे, अब कानपुर। आप संस्कृत के शीघ्र-कवि हैं। जिस विषय पर कहिए श्लोक पर श्लोक कहते चले जाते हैं। गत १९ अगस्त को आपने हम पर फिर कृपा की। आपको हम शहर ले गये। कई जगह आपने अपनी कविता का चमत्कार दिखाया। क्राइस्ट-चर्च कालेज के विद्यार्थियों और अध्यापकों को आपने अपनी आशु-कविता से ख़ूब ही ख़ुश किया। आर्य-समाज में मिस्टर टहलराम गङ्गाराम का व्याख्यान हो रहा था। वहां आपने स्वदेशी-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु-व्यवहार पर कविता करके श्रोताओं को मोहित कर लिया। प्रसङ्गवश आपने स्वामी दयानन्द सरस्वती पर भी कविता की। आज हम आपका चित्र इस संख्या में प्रकाशित करते हैं।

* * *

श्रीमान् अयोध्या-नरेश के परलोक-वास का वृत्तान्त सुन कर दुःख हुआ। आप हिन्दी-कविता के बड़े प्रेमी थे। रसकुसुमाकर आपके इसी प्रेम का फल है। आप अभी हाल ही में महामहोपाध्याय की पदवी से विभूषित किये गये थे।

वाल्मीकिरामायण के अंगरेज़ी-अनुवादक श्रीमान् ग्रिफिथ साहब, और पूर्व-प्रचलित काशीपत्रिका के सम्पादक रायबहादुर पं० लक्ष्मीशङ्कर मिश्र की मृत्यु से भी सरस्वती दुःखित है।

* * *

कुछ दिनों से काशी के भारत-जीवन और प्रयाग के श्रीराघवेन्द्र में अच्छे अच्छे उपयोगी लेख निकलने लगे हैं। हम इन पत्रों को समुन्नति से प्रसन्न हैं। राजा रामपालसिंह जी का हिन्दोस्थान, कलकत्ते का हिन्दी-बङ्गवासी, बम्बई का श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचार, कन्नौज की मोहिनी और आगरे का राजपूत पूर्ववत् हिन्दी की सेवा उत्तम प्रकार से कर रहे हैं। लाहौर का स्वदेश-बन्धु भी उन्नति कर रहा है।

बाबू काशीनाथ खत्री।

[गताङ्क से आगे]

इनकी लिखी निम्नलिखित पुस्तकें और प्रबंध हिन्दी में प्रस्तुत हैं—

(१) शेक्सपियर के मनोहर नाटकों के आशय के अनुवाद।

(२) नीत्युपदेश।

(३) तीन इतिहासिक (?) रूपक।

(४) भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के चरित्र।

(५) यूरोपियन धर्म्मशीला स्त्रियों के चरित्र।

(६) ग्राम-पाठशाला और निकृष्ट नौकरी नाटक।

(७) विधवा-विवाह के शास्त्रिक प्रमाण और बालविधवा-संताप नाटक।

(८) खेती की विद्या के मूल सिद्धान्त।

(९) मन की शुद्धि (व्याख्यान)।

(१०) मिट्टी-द्वारा रोगों का चंगा होना।

(११) किस विधि करके मनुष्य की सन्तान में रूप, बल आदि उत्पन्न किया जा सकता है।

(१२) सच्चा सुख (व्याख्यान)।

(१३) मातृभाषा की उन्नति किस विधि करना योग्य है।

(१४) बालविवाह की कुरीति।

(१५) भारत त्रिकालिक दशा (कर्नल आलकाट के व्याख्यान का अनुवाद)।

(१६) भारतवर्ष का सुधार किस विधि होना सम्भव है।

(१७) इंडियन नेशनल कांग्रेस (ह्यूम साहब के व्याख्यान का अनुवाद)।

(१८) देश की दरिद्रता और अंग्रेज़ी राजनीति (मि० दादाभाई नैरोजी के व्याख्यान का अनुवाद)।

(१९) सभा में वक्तृता करने के नियम।

(२०) गोरक्षा-प्रबंधक।

(२१) गौगुहार।

(२२) तावीज़।

(२३) आर्य्यशिक्षा और वर्णबोध आदि पाठ्य पुस्तकें।

ऊपर की नामावली से स्पष्ट है कि नीति, धर्म्म, समाज तथा स्वदेश-हित ही पर लिखने की ओर इनका ध्यान अधिक था। बाबू साहब इस बात के लिए विशेष प्रशंसा के पात्र हैं कि उन्होंने इन विषयों पर उस समय हाथ लागाया जब लोगों की प्रवृत्ति इनकी ओर बहुत कम थी। उस समय तो लोग प्रायः हँसी दिल्लगी की लच्छेदार बातों तथा अनुप्रासाङ्कित-प्रलम्ब-शब्दवल्लरी ही की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओर अधिक अनुराग दिखाते थे। 'नीत्युपदेश' सुनने के लिए वे प्रस्तुत न थे। फिर इस प्रकार की रचना के लिए उन्हें बराबर उत्साह कहाँ से मिलता रहा, जिसके कारण इनकी लेखनी अपने नियत पथ से नहीं डिगी? ऊपर कहा जा चुका है कि बाबू साहब का सम्बन्ध आर्य्य-समाज से था। इस समाज से चाहे अभी तक और कोई उपकार न हुआ हो पर इतना तो हम निःशंक कह सकते हैं कि इसके द्वारा जाति में एक नूतन बल का सञ्चार और उन्नतिसाधन के समयोपयुक्त उपायों का प्रचार ज़रूर हुआ है। अतएव कुछ तो पूर्वोक्त प्रभाव के बल से और कुछ विशेष विद्यानुरागी उदार राजा महाराजाओं तथा गुणग्राही शिक्षाविभाग के अधिकारियों की सहायता से इन्हें अपनी पुस्तकों के प्रचार में कोई कठिनता न पड़ी। उनका प्रचार दिन पर दिन बढ़ता ही गया। इस बात में बाबू काशीनाथ विशेष भाग्यवान् थे; उन्होंने पुस्तक-रचना से अर्थोपार्जन के साथ साथ अच्छी प्रतिष्ठा भी पाई। "भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के चरित्र" लिखने के उपलक्ष्य में इन्हें उदयपुर-दरबार से १५०) और एक प्रशंसापत्र, और महाराणी स्वर्णमयी से ८०) पारितोषक मिला था। "नीत्युपदेश" इन्होंने महाराजा दरभंगा को समर्पित किया था। इससे महाराजा साहब ने प्रसन्न हो कर ८०) रुपए "छपाई के ख़र्च के लिए" भेजे थे। यह पुस्तक बिहार और पञ्जाब के स्कूलों में प्रचलित भी हो गई थी (नहीं मालूम अब है या नहीं)। इनकी कई पुस्तकें इनामी किताबों की सूची में भी हैं। सन् १८८५ में "भाषा-संवर्धिनी सभा, अलीगढ़" ने इन्हें हिन्दी के उत्तम ग्रंथकार होने के उपलक्ष्य में एक पदक दिया। उर्दू भी बाबू साहब अच्छी लिखते थे। निज़ाम हैदराबाद इनके उर्दू अनुवादों से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने २००) मासिक पर इन्हें अपने यहाँ अनुवादक के पद पर बुलाने के लिए पत्र भेजा। पर इन्होंने यह कह कर टाल दिया कि यदि ३००) मासिक निज़ाम-गवर्नमेंट देना स्वीकार करे तो शायद आने का विचार कर सकता हूं। इस लिखा पढ़ी के उपरान्त ही निज़ाम के प्राइवेट सेक्रेटरी पं० रघुनाथप्रसाद चौबे का तार आया कि "I and Nawab Saheb will reach Allahabad Tuesday, come positively" (हम और नवाब साहब मंगल को इलाहाबाद आवेंगे, ज़रूर आइए)। ये प्रयाग गये और निज़ाम से मिले। नवाब साहब इनसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—"आप मेरे साथ इसी समय हैदराबाद चलें, मुझे ३००) मासिक देना स्वीकार है"। पर इन्हें जाने की इच्छा तो थी नहीं; इससे निवेदन किया कि यदि मुझ पर ऐसी ही कृपा है तो जो कुछ तरजुमे का काम हुआ करे मुझे यहीं उजरत पर मिल जाया करे। मैं इसी में अपने को धन्य मानूंगा।

इनके लेख बराबर उस समय के हिन्दी-पत्रों में निकला करते थे। कर्नल आलकाट के व्याख्यान का अनुवाद "आर्य्यदर्पण" में प्रकाशित हुआ था। "ग्राम-पाठशाला और निकृष्ट नौकरी नाटक" भी पहले "हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" में छपा था। अंग्रेज़ी में भी इनके कई उत्तम उत्तम लेख हिन्दी के पक्ष में तथा और और विषयों पर "हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका" और "हरिश्चन्द्र-मैगेज़ीन" में निकले थे। बाबू हरिश्चन्द्र इनके लेखों का बड़ा आदर करते थे। पर सच पूछिए तो यह कोई बड़ी बात भी न थी; क्योंकि वे निरादर ही किसके लेखों का करते थे। जहां किसी ने हिन्दी के लिए लेखनी उठाई कि भारतेन्दु जी ने उसे सिर माथे पर बैठाया। उन्हीं महानुभाव की उदारता ने देखते देखते उनकी आँखों के सामने ही ऐसे ऐसे पुरुष खड़े कर दिये जिनकी कीर्त्ति सदा हिन्दी भाषा के साथ साथ उसके पथ पर प्रकाश डालती चलेगी और जो अपनी प्रशंसा में अधिक यही कह सकते थे कि "श्रीमुख जासु सराहना, कीन्ही श्रीहरिचन्द"।

शेक्सपियर के नाटकों की आख्यायिका जब इन्होंने प्रकाशित की तब इनके पास मि० आउस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि कई भाषानुरागी और प्रतिष्ठित सज्जनों के प्रशंसा-सूचक पत्र आये, जिनमें से दो को मैं यहाँ देना आवश्यक समझता हूं।

(भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र का पत्र)

यह अनुवाद अति प्रशंसनीय है। इसकी भाषा ऐसी स्वच्छ और सरल है कि हर कोई सुगमता से समझ सकता है। बाबू काशीनाथ जी* खत्री के परिश्रम और योग्यता से यह आनन्द आज हमको और भाषा-रसिकों को प्राप्त हुआ। उसके उपलक्ष्य में आप को एक तुच्छ वस्तु पारितोषक में पारसल द्वारा भेजता हूं। आशा है कि स्वीकार होगी।

१५ वैशाख १९४० हरिश्चन्द्र।

(राजा लक्ष्मणसिंह का पत्र)

मुझे आप के दोनों अनुवादों की लेख-रीति सत्‌चित्त से पसन्द है। बहुत उत्तम मुहाविरे की हिन्दी भाषा है। आप के ग्रंथ इस योग्य हैं कि सब लोग जो इस भाषा के रसिक हैं उनका यथावत् आदर करें। मुझे निश्चय है कि यह पुस्तक शीघ्र वहां पहुँच जायगी जहाँ इसका पूर्ण आदर होगा।

लक्ष्मणसिंह।

इनकी पुस्तकों की दी हुई सूची में केवल ६ या ७ ग्रंथों को छोड़ शेष सब छोटे छोटे व्याख्यान, उपयोगी व्याख्यानों के अनुवाद और पैंफ्लेट ही हैं जो समय समय पर निकले हैं।

(१) शेक्सपियर के नाटकों के आशय के अनुवाद, दो भाग—यह पुस्तक चार्ल्स और मेरी लैम्ब लिखित शेक्सपियर के नाटकों की आख्यायिका का हिन्दी में अनुवाद है। प्रथम भाग में पात्रों के अंग्रेज़ी नामों के स्थान पर हिन्दी नाम 'अभिप्रायानुसार' रक्खे गये हैं। पर इन हिन्दी नामों में 'अभिप्राय' वा गुण का अधिक विचार हो जाने से कुछ बनावट की झलक आ गई है—जैसे, भ्रमाच्छादितसिंह, स्वामी हित-साधकराय, निज-मतलब-सिद्धसिंह, कृतघ्नीप्रसाद इत्यादि। अनुवाद भी बहुत ही स्वच्छन्दता से किया गया है; बहुत से जुमले छोड़ दिये गये हैं; बहुत से अपनी ओर से बढ़ा दिये गये हैं। अंग्रेज़ी आख्यायिका के रचयिता ने उचित अवसरों पर शेक्सपियर ही की शब्द-योजना रखकर उस महाकवि की भाव-प्रदर्शन-प्रणाली से परिचित कराने का यत्न किया है। पर उसके इस हिन्दी अनुवाद में मूल के भाव प्रायः दूसरी ही रीति से व्यक्त किये गये हैं जिससे उनकी (भावों की) यथार्थ मात्रा में भी अन्तर पड़ गया है। अर्थात् कहीं तो वे अधिक तीव्र हो गये हैं और कहीं अधिक हलके। अनुवाद के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं।

What suspicious people these Christians are! Their own hard dealings teach them to suspect the thoughts of others. (ये ईसाई लोग कैसे अविश्वासी होते हैं! उनके कठोर व्यवहार ही उन्हें दूसरों की नियत पर सन्देह करना सिखलाते हैं।) अनुवाद—"ये ईसाई लोग कैसे अविश्वासी हैं! वह अपने ही समान सब का मन जानते हैं"।

When I first imparted my love to you I freely told you all the wealth I had ran in my veins; but I should have told you that I had less than nothing, being in debt. (अर्थात्—जब मैंने पहिले पहल तुम्हें अपना प्रेम-पात्र बनाया था, मैंने बेधड़क कह दिया था, कि जो कुछ धन मेरे पास है वह मेरे रुधिर, कुल, और शील, ही में है; किन्तु मुझे यह कहना था कि मेरे पास कुछ नहीं से भी कम है, क्योंकि मैं ऋणी हूं।) अनुवाद—जब मेरी तुम्हारी प्रीति आरम्भ हुई तो मैंने प्रथम ही तुम्हें जता दिया था

* यदि यह पत्र बा० हरिश्चन्द्र ने बा० काशीनाथ के पास ही भेजा था तो फिर यहाँ उनका नाम क्यों आया?—रा० शु०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मेरा सब धन क्षीण हो गया है और मेरे पास अब कुछ नहीं है; परन्तु मुझे इतना कहना रह गया था कि मैं ऋणी भी हूं"।

Notwithstanding use your pleasure; if your love for me do not presuade you to come, let not my letter (पर अपनी खुशी से काम करना; यदि प्रेम तुम्हे आने के लिए न उभाड़े तो इस चिट्ठी के कारण मत आना।) अनुवाद—"मेरे निमित्त आप अपने विवाह के आनन्द में विघ्न न डालिएगा और न मेरा पत्र अपनी प्रिया को दिखाइयेगा"!

It is a dangerous matter for young maidens to be the confidants of handsome young dukes. (यौवनवती कारियों के लिए सुन्दर युवा राजकुमारों का विश्वासपात्र होना डर की बात होती है) अनुवाद—"नवयौवन कुमारियों का मन सुन्दर पुरुष देख कर शीघ्रही चलायमान हो जाता है"।

मूल का विशेष बन्धन न रहने पर भी कहीं कहीं वाक्य-योजना अव्यवस्थित और ऊटपटाँग हो गई है। जैसे—

(१) सब का प्रीति सहित आदर करता और मीठे वचनों से सत्कार देता।

(२) आप से मेरा इस भाँति बर्त्ताव करने पर क्या मुझे योग्य है .....।

(३) रुपया लेकर अपने मित्र के हवाले कर दिये।

कर्त्ता कई जगह छोड़ दिया गया है।

२—नीत्युपदेश—यह प्रोफ़ेसर ब्लाकी के "सेल्फ़ कल्चर" का अनुवाद है। पर न जाने क्यों इसका नाम बदलकर "नीत्युपदेश" रक्खा गया है। इसकी भाषा "सरल और स्वच्छ" है। पर कहीं कहीं शब्दों की अंग्रेज़ी बैठक ज्यों की त्यों रक्खी गई है जिस से मतलब अंड का बंड हो गया है, जैसे—

(१) "मिथ्या वचन से दोनों देवता और मनुष्यों को स्वाभाविक घृणा होती है"। यहां दोनों शब्द 'मनुष्य' के आगे चाहिए।

(२) "इन तीनों हर समय घेरनेवाले पापों से बचने के लिए लड़कों को सावधानी रखना योग्य है"।

(३) एक जगह लिखा है—"युवा पुरुषों को दिखावट और दम्भ से इतना अधिक दुःख नहीं होता जितना कायरता और साहस और धैर्य्य न होने के कारण हुआ करता है"। क्या कायरता के बिना युवा पुरुषों को दुःख होता है? इस जुमले में "कायरता" शब्द के आगे करण चिह्न "से" रख देने से अभिप्राय स्पष्ट हो जाता।

'जब' और 'जब तक' के साथ "तो," और "वे" के स्थान पर "वह" ही प्रायः इन्होंने लिखा है। 'हानि' का बहुबचन 'हानें' देखने में आता है। 'अमेाल्य,' 'अधोर्य्य,' 'धर्मेष्ट,' और 'कौशलता' ऐसे शब्द भी बहुत मिलते हैं।

३—परम मनोहर इतिहासिक (?) रूपक—इसमें तीन रूपक सम्मिलित हैं। (क) सिन्ध देश की राजकुमारियाँ। इसमें उस समय की एक ऐतिहासिक घटना की चर्चा है जिस समय ख़लीफ़ा उमर ने पहले पहल मोर क़ासिम को सिन्ध में भेजा था। (ख) गुज्नौर की रानी—इसमें भूपाल के "वर्त्तमान राजकुल के नींव डालने वाले" सरदार और गुज्नोर (भूपाल के पास) के पराजित और मृत-राजा की विधवा का वृत्तान्त है। (ग) लव जी का स्वप्न—रघुवंश की एक कथा से लिया गया है। इन तीनों रूपकों में घटनाओं का विस्तार नहीं हुआ है। कुल मिला कर केवल बारह पन्ने की किताब है।

४—भारतवर्ष की विख्यात स्त्रियों के जीवन-चरित—इसमें मुसलमानों के राज्यारंभ से लेकर आज तक की १८ प्रसिद्ध रानियों (संयोगता से स्वर्णमयी तक) के चरित्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) यूरोपियन धर्म्मशीला और पतिव्रता स्त्रियों के चरित्र—यह "Noble deeds of Women" का हिन्दी में अनुवाद है। ४० स्त्रियों के अद्भुत और रोचक वृत्तान्त हैं।

बाबू काशीनाथ अपनी पुस्तकों और लेखों के नाम बहुत लम्बे और बेढंगे रखते थे। अपनी पुस्तकों का विज्ञापन देने में आप कभी नहीं चूकते थे। कोई छोटी सी भी इनकी पुस्तक उठा लीजिए और उसके दोनों ओर विषय-विवरण समेत इनकी पुस्तकों की सूची देख लीजिए। कहीं कहीं इस सूची के अन्त में यह प्रश्न भी मिलेगा कि "तरजुमे का काम चाहिए?"।

इनके व्याख्यानों और पैंफ्लेटों के विषय में मुझे केवल यही कहना है कि वे सब के सब उपयोगी और शिक्षा-प्रद हैं। भारतवर्ष के सुधार के विषय में आपने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है—"जिस भारतवर्ष के निवासियों ने प्रायः सब एशिया को धर्म्म और विद्या का उपदेश दिया है वे सर्वथा दूसरे देशवासियों का अनुकरण करने में ही सत्य उन्नति न कर सकेंगे; भारत की उन्नति का मन्दिर जब निर्माण होगा तब उसकी प्राचीन नींव पर ही होगा। यह वह भूमि नहीं है जहाँ कोई सर्वथा विदेश का वृक्ष लाकर लगा दे और वह भली भाँति पनपे"। नवीन दृष्टि के बाबू लोग क्षमा करें; अपने अपने विचार ही तो हैं।

"स्वदेशी" के विषय में आप कह गये हैं—

"विलायती चीज़ों के देश में फैलने से हमारे सब उद्यम नष्ट भ्रष्ट हो गये। यहां वालों की तो यह हीन-दशा हो गई और विलायत के वणिक और कारीगर यहाँ के प्रभाव से धनधान्य से परिपूरित हो गये। हमको सूखी रोटी नहीं जुड़ती वे गुलछर्रे उड़ाते हैं"।

रामचन्द्र शुक्ल।

स्वर्गीय आनन्दमोहन वसु।

इस वर्ष भारत के तीन प्रसिद्ध सुपुरुष एक ही साथ इस संसार से उठ गये। इनकी मृत्यु से अनेक लोकोपयोगी कार्य्यों की सिद्धि में हानि पहुँची है। इनमें से बाबू आनन्दमोहन वसु की मृत्यु इस समय लोगों के दिल में विशेष खटकती है। उनकी बुद्धि अत्यन्त विमल थी; उनका हृदय बहुत कोमल था; उनका मन देशभक्ति से भरा हुआ था। ईश्वर में उनका पूरा पूरा विश्वास था। इसीलिए उनके लेखों और व्याख्यानों में स्वदेश-भक्ति के साथ साथ ईश्वर-प्रेम की भी झलक रहती थी। वे लोगों को यही उपदेश दिया करते थे कि, ईश्वर सर्व-शक्तिमान् और दयालु है; वह हम लोगों की बुरी दशा देख कर अवश्य दया करेगा। जिस समय दूसरे लोग देशोन्नति के और उपाय बतलाते थे, उस समय वे जननी जन्मभूमि को प्यार करना और ईश्वर की भक्ति में लग्न होना उसके लिए सर्वोत्तम प्रयत्न समझते थे। इनका पावन चरित अत्यन्त मनोहर और शिक्षादायक है। उसकी कुछ बातें, संक्षेप में, नीचे लिखी जाती हैं।

बाबू आनन्दमोहन वसु का जन्म सन् १८४७ ई० में बंगाल प्रान्त के मैमनसिंह नगर में हुआ था। इनके पिता एक अच्छे ज़मींदार थे और उस प्रान्त के लोगों में उनका अच्छा गौरव था। बाबू आनन्दमोहन की प्राथमिक शिक्षा मैमनसिंह ही में प्रारम्भ हुई थी। इसके बाद वे कलकत्ते गये। वहां वे १८६२ ई० में प्रवेशिका (Entrance) परीक्षा पास करके प्रेसीडेन्सी कालेज में शिक्षा पाने लगे। वहां की सब परीक्षाओं में वे अपनी कक्षावालों से विशेष अधिक यश के साथ सफल हुए थे। इसी लिए उनको कितनी ही छात्र-वृत्तियां और पारितोषिक मिले। उनको अन्त तक सब परीक्षाओं में ऐसी ही यशःप्राप्ति होती रही। जब उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था केवल २१ ही वर्ष की थी, तभी उनको सर्कार ने कलकत्ते के इंजिनियरिंग् कालेज में गणित के प्रोफ़ेसर की जगह दी। इनके इस पद पर नियुक्त होने के पहिले किसी देशी सज्जन को यह स्थान न मिला था। पहिले पहल यही, इस पद पर, नियत किये गये।

सन् १८७० ई० में वे बाबू केशवचन्द्र सेन के साथ विलायत गये। वहां जाकर उनका मन बैरिस्टरी की ओर झुका। सुप्रसिद्ध प्रोफ़ेसर फ़ासेट और बाबू आनन्दमोहन वसु का बहुत स्नेह था। फ़ासेट साहब ने उनको उपदेश दिया कि, तुम केम्ब्रिज युनिवर्सिटी की परीक्षा पास करके उच्चपद प्राप्त करो। फ़ासेट साहब के उपदेशानुसार उन्होंने केम्ब्रिज के क्राइस्ट कालेज में प्रवेश किया। वहां भी उनको एक छात्रवृत्ति मिली। केम्ब्रिज में जाने के बाद वे लैटिन और ग्रीक भाषाओं का भी अभ्यास करने लगे। इस बीच में उनको कई विघ्न-बाधाओं का मुक़ाबला करना पड़ा। परन्तु उन सबको पार करके रेंगलर परीक्षा में उन्होंने सोलहवां नम्बर प्राप्त किया। इसके पूर्व किसी भारतवासी को इतना मान इस कक्षा में नहीं मिला था। थोड़े ही दिनों के बाद वे क़ानून की परीक्षा पास करके बैरिस्टर हो गये। वे कलकत्ता और केम्ब्रिज दोनों ही युनिवर्सिटियों के एम० ए० थे।

१८७४ के नवम्बर में वे हिन्दुस्तान लौट आये। बाबू आनन्दमोहन के इस प्रकार गौरव के साथ स्वदेश लौट आने में उनके देशबन्धुओं को असीम आनन्द हुआ, और उन्होंने बड़े अभिमान के साथ उनका स्वागत किया। यहां आकर वे कलकत्ता हाईकोर्ट के बैरिस्टर हो गये। उस समय सर्कार की ओर से क़ानूनी सम्मति प्रदान करनेवाले वकील, मि० वेल नामक एक बैरिस्टर थे। एक बार उनका वसु महाशय से, किसी मामले में, मुक़ाबिला हो गया। उस समय वसु बाबू की चतुरता एवं वक्तृत्वशक्ति पर वेल साहब को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। एक बार एक सभा में उन्होंने वसु बाबू की प्रशंसा करते हुए कहा कि, वसु साहब की जैसी वक्तृत्व-चतुरता वेस्ट मिनिस्टर हाल के बाहर बहुत ही कम देख पड़ती है।

बाबू आनन्दमोहन केवल अपने व्यवसाय ही में नहीं लगे रहते थे। वे अपनी जीविका का काम जितना मन लगा कर करते थे उससे कहीं अधिक उत्सुकता के साथ वे लोकहित के काम करते थे। अपने देश के राजकीय, सामाजिक, औद्योगिक तथा शिक्षा सम्बन्धी आदि सब प्रकार के सुधारों की ओर ध्यान देना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे और इसके लिए वे सर्वदा प्रयत्न भी करते रहते थे। उन्होंने आक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों की विद्यार्थि-सभा के समान कलकत्ते में भी एक सभा स्थापित की; और वे स्वयं उसके अध्यक्ष बने। इस प्रकार की यह पहिली ही सभा यहां स्थापित हुई थी। इससे विद्यार्थियों को बहुत लाभ हुआ। तदनन्तर वसु बाबू ने बाबू सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी की सहायता से इंडियन एसोसिएशन नाम की एक सभा स्थापित की। यह राजकीय सभा आज पर्य्यन्त बड़े महत्त्व की सभा मानी जाती है। वसु बाबू पहले तो इस सभा के मंत्री रहे, फिर इसके अध्यक्ष हो गये।

१८८२ ई० में सर्कार ने सर विलियम हंटर को अध्यक्ष बना कर जो एक शिक्षा विषयक कमीशन नियत किया था, बाबू आनन्दमोहन उसके मेम्बर नियत किये गये थे। उस समय उन्होंने अनेक उत्तम उत्तम काम किये। फिर एक दूसरे बड़े कमीशन में सर्कार ने उनको मेम्बर बनाना चाहा, किन्तु वसु बाबू ने कहा कि, "मुझे और कामों से अवकाश नहीं है; इस से मैं मेम्बर नहीं होना चाहता"। वसु बाबू कलकत्ता युनिवर्सिटी की सिंडीकेट, अर्थात् व्यवस्थापक-सभा, के मेम्बर भी थे। युनिवर्सिटी के काम में उनका चित्त बहुत लगता था। उसकी उन्नति और सुधार के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेजिस्लेटिव कौंसिल में मेम्बर चुने जाने का क़ानून पास होने के पहले ही सर्कार ने, अपनी ओर से, वसु बाबू को उक्त कौंसिल का मेम्बर बनाया। इसके बाद जब लोगों को अपनी ओर से मेम्बर चुनने का अधिकार दिया गया, तब बंगाल प्रान्त के लोगों ने भी उनको यह सम्मान दिया। वे कलकत्ता युनिवर्सिटी की ओर से भी प्रति-निधि चुने गये थे। अर्थात् वसु बाबू, प्रजा तथा राजा, दोनों के सम्मान-पात्र थे।

अपने परम मित्र बाबू दुर्गामोहन दर की सहायता से आनन्दमोहन ने स्त्रियों को उच्च शिक्षा मिलने के लिए "बंगमहिला-विद्यालय" नाम का एक विद्यालय खोला। इसके संस्थापन आदि का ख़र्च इन्हीं दोनों मित्रों ने अपनी गाँठ से दिया। कुछ दिनों में यह पाठशाला इतनी विख्यात हो गई कि, लेडी लिटन (वाइसण्य लार्ड-लिटन की पत्नी) बिना निमंत्रण के स्वयं उसे अवलोकन करने के लिए पधारीं। और सर्कार ने इस विद्यालय को बेथून कालेज में सम्मिलित करके एक बड़ा स्त्री-कालेज बना लिया। बेथून कालेज पहले एक स्कूल था। अतः इस पाठ-शाला के योग से वह कालेज हो गया। इस कालेज की अत्यन्त उन्नति हुई और अनेक स्त्रियां उससे बी० ए०, एम० ए०, आदि परीक्षायें पास करके निकलीं।

अपनी अतिशय बुद्धिमती पत्नी की सहायता से, वसु महाशय ने एक वंग-महिला-समाज स्था-पित किया। स्त्रियों का सुधार और उनमें शिक्षा का प्रचार करना इस समाज का उद्देश्य था। इस समाज ने बहुत सी स्त्रीजनोपयोगी पुस्तकें प्रका-शित कीं, कितने ही वजीफ़े दिये, और कई वर्ष तक अनेक अच्छे अच्छे काम किये। मिस्टर वसु ने पुरुष-विद्यार्थियों के लिए एक नया, सिटी-का-लेज, स्थापित किया था। युनिवर्सिटी की सर्वोच्च परीक्षा तक इसमें शिक्षा दी जाती थी। इस कालेज के ख़र्च का कुल भार वसु बाबू ने कई वर्ष तक अपने ही सिर पर रक्खा। परन्तु जब उन्होंने देखा कि इसका ख़र्च अब इसीसे भली प्रकार चलने लगा, तब उन्होंने उसका प्रबन्ध एक पंचकमेटी के अधिकार में कर दिया। कोई लाभदायक संस्था इस प्रकार सर्वसाधारण के स्वाधीन कर देना कितनी उदारता का काम था! इस कालेज के लिए शहर में एक इमारत तैयार की गई, जिस का प्रवेश-समारम्भ स्वयं लार्ड रिपन ने अपने हाथ से किया। और उसी समय लार्ड रिपन ने बाबू आनन्दमोहन की, इस कालेज-विषयक उन्नति, परिश्रम और व्यय की प्रशंसा करते हुए उनको धन्यवाद दिया।

बाबू साहब ने अपनी जन्मभूमि मैमनसिंह में भी एक पाठशाला खोली, जो आज तक दिन प्रति दिन उन्नति करती जाती है।

बाबू आनन्दमोहन वसु कांग्रेस के बड़े अभि-मानी थे। १८९८ ई० में जब मदरास में कांग्रेस की बैठक हुई थी तब वे उसके सभापति हुए थे। उस समय की उनकी वक्तृता बहुत प्रसिद्ध है। उसके अन्तिम भाग के कुछ वाक्यों का अनुवाद नीचे दिया जाता है। आशा है कि, पाठकों को वसु महाशय की प्रभावशालिनी वक्तृता का कुछ अन्दाज़ इससे हो जायगा।

"हे भाइयो! जो देश हम लोगों की जन्म-भूमि है; जो देश प्राचीन समय में देवताओं का पवित्र और प्यारा निवास-स्थान था; जिस देश ने ऐसे समय में ज्ञान को प्रकाश किया और मानव-जीवन तथा सभ्यता में सार्थकता प्राप्त की जिस समय सारी दुनिया बाल्यावस्था में थी और संसार के सब लोगों पर घोर अन्धकार छाया हुआ था; जिसके दार्शनिक तत्त्ववेत्ताओं ने जीवन के गम्भीर सिद्धान्तों को हल किया और ऋषियों और मुनियों ने सृष्टिकर्त्ता की अपरम्पार महिमा गाई; जिस आर्य्य-भूमि का नाम सुनते ही हृदय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुलकित हो उठता है; उसी आर्य्य-माता के सैकड़ों वर्ष से बिछुड़े हुए पुत्र, इस समय, यहां एकत्र हुए हैं। प्रियबन्धुवर्ग! क्या तुम अपने ऐसे देश का प्यार करते हो? हे भाइयो! हमारी यह जन्म-भूमि प्यार करने योग्य है। इसका प्यार करो; इसको गले लगाओ; वर्त्तमान समय की आपदाओं से इसकी रक्षा करो। कुछ समय से जिस अन्धकार ने इसको घेर लिया था क्रमशः अब उसका तिरोभाव हो रहा है। अब उसके सौभाग्य-रवि का उदय हो रहा है, जिसकी चमकती हुई सुनहरी किरणें आर्य्य-माता के मुख-कमल को प्रफुल्लित कर रही हैं। हे भाइयो! हे भगिनियो! हे प्राचीन भारत की सन्तानो! ऐसे समय में उन किरणों को अधिकाधिक प्रसृत करके उनका प्रकाश चारों ओर फैलाना और अपने लिए एक सुदिन प्राप्त करना हम लोगों पर—हम लोगों की कर्त्तव्य बुद्धि पर—हम लोगों की त्याग-प्रियता और सच्चे प्रयत्न पर—अवलम्बित है। अब यह वृद्ध-भारत वर्षों की गहरी नींद से उठा है। यद्यपि इस समय उसकी बुद्धि की तेज़ी, उसकी शूरता और उसकी पवित्रता कुछ मलिन और धुँधली होगई है तथापि उसके उन गुणों का एक दम नाश नहीं हुआ है। उन सद्गुणों को पुनः जागृत करने के लिए केवल हमारे सच्चे यत्न और पुरुषार्थ की आवश्यकता है"।

१८९७ ई० में केम्ब्रिज-युनिवर्सिटी ने इनको सम्मानसूचक एम० ए० की उपाधि दी। यह मान इनके साथ ही कयंटरबरी के आर्चबिशप और लार्ड चीफ़ जस्टिस को उसी युनिवर्सटी ने दिया था। इससे पाठकों को यह सहज में ज्ञात हो सकता है कि वसु बाबू के इस सम्मान की कितनी क़ीमत है। इसी साल उन्होंने अपने दो पुत्रों को इँगलैंड पढ़ने के लिए भेजा।

वे अन्त समय तक देश-सेवा में लगे रहे। उनका स्वास्थ्य बहुत दिनों से बिगड़ गया था; इसलिए वे किसी सार्वजनिक काम में सम्मिलित न होते थे। परन्तु जिस समय बङ्गभङ्ग के बाद कलकत्ते में "फिडरेशन" हाल की नींव डाली गई थी उस समय वे पालकी में बिठाकर वहां लाये गये थे। वहां उन्होंने जो प्रभावशालिनी वक्तृता दी वही उनकी अन्तिम वक्तृता थी। उसके कुछ अंश का अनुवाद नीचे दिया जाता है।

"यद्यपि गवर्नमेंट की आज्ञा से बंगाल के दो टुकड़े हो गये हैं तथापि मेरा यह विश्वास है कि, इस समय हम लोग जिस भाँति एकत्र हैं उस भाँति कभी पहिले एकत्र न थे। इस समय हम सब लोग एकही भ्रातृभाव से बँधे हुए हैं। हिन्दू, मुसल्मान, और क्रिश्चियन—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम—ये सब एक ही अविभक्त बंगाल के अंश हैं। हे मेरे प्यारे मित्रो! अपने अन्तःकरण से यह कहो कि, ये सब एक ही मातृभूमि के अंश हैं। हम लोगों में चाहे जितने भिन्न भिन्न पंथ हों, तथापि हम सब लोग अपनी एक मातृभूमि (Motherland) के प्रेम से, सगे भाइयों के समान, सदा एकत्र रहेंगे। ऐसा न समझिए कि इस "फ़ेडरेशन—हाल" की नींव इस स्थान ही में डाली जा रही है। जिस ऐक्य-भाव का द्योतक यह भवन है उसका बीजारोपण हमारी पुलकित हृदय-भूमि में भी किया गया है।

"इस देश में लोक-कल्याण-कारी कामों के लिए अनेक पंथ स्थापित किये गये हैं। हे प्यारे मित्रो! आप लोग अपनी मातृभूमि की सेवा के पंथ के अनुयायी बनिए। आप अपने शुद्ध और सरल स्वभाव से, अपने पवित्र और गम्भीर उद्देश्य से, अपने उन्नत भाव और अपने असीम स्वार्थत्याग से, अपनी मातृ-भूमि की सेवा कीजिए और उसके लिए अपने प्राण तक अर्पण कर दीजिए। हे हिन्दू और मुसल्मान भाइयो! आओ, हम सब मिल कर, ईश्वर का स्मरण करके, अपनी मातृ-भूमि की उन्नति का यत्न करें। आज हम लोग यहां नंगे पैर, शोक-सूचक कपड़े पहिन कर, आये हैं। बाज़ारों में सन्नाटा है। व्यापार बन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। लाखों लोगों के घर में चूल्हा नहीं सुलगाया गया। भाइयो! जिन लोगों ने आज अपने घरों के चूल्हों की आग बुझा दी है उन लोगों को उचित है कि वे, अपनी मातृभूमि की सेवा की आग को अपने अन्तःकरणों में खूब प्रज्वलित होने दें, जिससे हमारा जीवन निर्मल हो और हमारा उत्साह बढ़े।

"मैं और भी बहुत कुछ कहना चाहता हूं, परन्तु सामर्थ्य नहीं है। कदाचित् यही मेरे अन्तिम वाक्य हैं! हे प्यारे भाइयो! अब यह शब्दों का समय नहीं है—यह कार्य्य का समय है। क्या आप अपने आंतरिक नेत्रों के द्वारा देख नहीं सकते कि स्वर्ग के दर्वाज़े खुले हैं और देवता पुष्पवृष्टि कर रहे हैं"!

"हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! तू इस प्राचीन आर्य्यावर्त्त का संरक्षक है। हम तुझे चाहे जिस नाम से पुकारें, तू अवश्य हमारी रक्षा करता है। हे जगत्पिता! जिस प्रकार पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार तू भी हम सब लोगों की रक्षा कर"।

ईश्वर की लीला अगाध है। यथार्थ में यही वक्तृता वसु महाशय की अन्तिम वक्तृता थी! अब उनकी मधुर और प्रभावोत्पादक वक्तृता इस संसार में हम लोगों को सुनाई न देगी।

माधवराव सप्रे।

अन्ध-लिपि।

मनुष्य को परमेश्वर ने जितनी इन्द्रियां दी हैं, आँख सबमें प्रधान है। आँख न रहने से जीवन भारभूत हो जाता है। बिना आँखों के मनुष्य प्रायः किसी काम का नहीं रहता। एक इन्द्रिय के न रहने से, अथवा उसके निरुपयोगी हो जाने से, अन्य इन्द्रियों में से एक आध इन्द्रिय अधिक चेतनता दिखाने और अपने काम को विशेष योग्यता से करने लगती है। इसीसे जो मनुष्य चक्षुरिन्द्रियहीन हो जाता है उसकी स्पर्शशक्ति प्रबल हो उठती है। स्पर्श-ज्ञान के प्राबल्य की सहायता से अन्धा आदमी स्पर्श से ही दृष्टि का भी कुछ कुछ काम कर लेता है। तथापि अन्धता के कारण उसका जीवन फिर भी कष्टकमय ही रहता है। अतएव निराश, दीन और दुखी अन्धों को पढ़ाने लिखाने की जिसने युक्ति निकाली उसे धन्य है। योरप और अमेरिका में अन्धों के अनेक स्कूल खुले हैं और हज़ारों अन्धे पढ़ लिख कर कितने ही उपयोगी काम धन्धे करने लगे हैं। कोई शिक्षक है। कोई लेखक है। कोई गाने बजाने का व्यवसाय करता है। कोई कुछ कोई कुछ। जो लोग इस तरह का कोई काम नहीं करते वे भी पढ़ने लिखने में लगे रहते हैं। अतएव उनका मनोरञ्जन हुआ करता है और जीवन भार-भूत नहीं मालूम होता। बड़ी खुशी की बात है, अब इस देश के कलकत्ते और मदरास आदि दो चार प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों में भी अन्धों को शिक्षा देने का प्रबन्ध होगया है। वहां पाठशालायें खुल गई हैं जिनमें लिखने पढ़ने के सिवा कलाकौशल आदि की भी शिक्षा अन्धों को दी जाती है।

अन्धों को पढ़ाने के लिए पहले जिस तरह के ऊंचे उठे हुए अँगरेज़ी अक्षर काम में लाये जाते थे उनसे अन्धों की शिक्षा में बहुत बाधा पहुँचती थी। कई तरह के "टाइप" ईजाद किये गये; पर सबमें, और दोषों के सिवा, सबसे बड़ा दोष यह था कि अन्धे उनको पढ़ तो लेते थे, लिख नहीं सकते थे। लोगों का पहले यह ख़याल था कि बहरों को जैसे बहुत ज़ोर से बोलने पर ही शब्द सुनाई पड़ता है, वैसे ही अन्धों को बड़े ही बड़े अक्षरों का स्पर्शज्ञान हो सकता है। अक्षर या टाइप जितने ही बड़े होंगे उतना ही अधिक सुभीता अन्धों को होगा। परन्तु यह उनकी भूल थी। दृष्टिहीन हो जाने से अन्धों का स्पर्शज्ञान इतना तेज़ हो जाता है कि वे उठे हुए बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटे छोटे टाइप भी उँगली से छू कर पहचान सकते हैं। यही नहीं, किन्तु रेशमी रूमाल के भीतर उँगलियों को रख कर भी वे अक्षर पहचान सकते हैं।

अन्धों को पढ़ाने में जिस तरह के टाइप या अक्षरों से आज कल काम लिया जाता है उनका नाम ब्रेली (Braille) टाइप है। फ़्रांस में पेरिस-नगर के निवासी लुई ब्रेली नाम के एक अन्धे ने, १८३६ ईसवी में, पहले पहल इनका प्रचार किया। उसकी निकाली हुई वर्णमाला इतनी सरल है कि बहुत ही थोड़ी मेहनत से उसे अन्धे सीख सकते हैं। उसे वे पढ़ भी सकते हैं और लिख भी सकते हैं। सिर्फ़ दो ही चार हफ़्ते की मेहनत से अन्धे उसे सीख जाते हैं और उसमें लिखी हुई किताबें वे उतनी ही आसानी और शीघ्रता से पढ़ लेते हैं जितनी आसानी और शीघ्रता से कि चक्षुष्मान् आदमी पढ़ सकते हैं।

अन्धों की इस अक्षरमालिका को वर्णमाला नहीं, किन्तु बिन्दुमाला कहना चाहिए। यह माला ६३ प्रकार के बिन्दुओं के मेल से बनती है। तीन तीन बिन्दुओं—सिफ़रों—की दो सतरें बनाई जाती हैं। वे सतरें एक के आगे दूसरी, बराबर, रक्खी जाती हैं। प्रत्येक सतर के बिन्दु, एक दूसरे के नीचे रक्खे जाते हैं। यथा—⠇। इन्हीं बिन्दुओं में से कुछ बिन्दु काग़ज़ के ऊपर ज़रा ऊंचे उठा दिये जाते हैं। इन उठे हुए बिन्दुओं का क्रम जुदा जुदा होता है और प्रत्येक बिन्दु-समूहों से एक वर्ण, अथवा बहुत अधिक काम में आनेवाले एक शब्द, का ज्ञान होता है। कोई कोई बिन्दु-समूह ऐसा है जिससे एक वर्ण का भी बोध होता है और एक शब्द का भी। इस प्रकार दो अर्थों के देनेवाले बिन्दु-समूहों से जहां जैसा अर्थ मुहावरे के अनुसार अपेक्षित होता है वहां वैसा निकाल लिया जाता है। कहने की ज़रूरत नहीं, यह बिन्दु-वर्णावली अँगरेज़ी वर्णों की ज्ञापक है। अँगरेज़ी जाननेवाले सरस्वती के पाठकों के लिए हम इस अन्ध-लिपि को नीचे प्रकाशित करते हैं—

A	B	C	D	E	F	G	H	I	J
	but	Christ		every	from	God	have		Jesus
⠁	⠃	⠉	⠙	⠑	⠋	⠛	⠓	⠊	⠚

K	L	M	N	O	P	Q	R	S	T
	Lord		not		people	quite	right	some	that
⠅	⠇	⠍	⠝	⠕	⠏	⠟	⠗	⠎	⠞

U	V	X	Y	Z	and	for	of	the	with
unto	very		you						
⠥	⠧	⠭	⠽	⠵	⠯	⠿	⠷	⠮	⠾

ch	gh	sh	th	wh	ed	er	ou	ow	W
child		shall	this	which					will
⠡	⠣	⠩	⠹	⠱	⠫	⠻	⠳	⠪	⠺

देखा आपने कैसा सरल तरीक़ा है। इस बिन्दु-मालिका में जितने बिन्दु बड़े बड़े हैं वे सब काग़ज़ पर उभड़े हुए हैं। उन पर उँगली रखते ही अन्धे जान जाते हैं कि ये किस अक्षर या शब्द के ज्ञापक हैं। प्रत्येक अक्षर की ज्ञापक इसी बिन्दुमालिका को पास पास रखने से शब्द बन जाते हैं। प्रत्येक वर्ण के बीच कुछ कम, और प्रत्येक शब्द के बीच कुछ अधिक, जगह छोड़ दी जाती है, जिसमें एक शब्द दूसरे से मिल न जाय। उदाहरण के लिए, यदि अंगरेज़ी शब्द "at" (ऐट), जिसका अर्थ "पर" होता है, लिखना है तो इस तरह लिखा जायगा—⠁⠞। इसी प्रकार बहुत आसानी से जो चाहें सब इसमें लिखा जा सकता है। वैज्ञानिक विषयों की इबारत लिखने में कुछ कठिनता होती है। क्योंकि टेढ़ी मेढ़ी संज्ञायें, रेखायें और शकलें इस बिन्दुमालिका के द्वारा नहीं बनाई जा सकतीं। परन्तु अन्धों के लिए विज्ञानवेत्ता या शास्त्री होने की अभी वैसी ज़रूरत भी नहीं है। अभी तो उनके लिए ऐसी किताबों की ज़रूरत है जिनसे उनका मनोरञ्जन हो और जिन्हें पढ़कर वे अपना समय अच्छी तरह काट सकें और साथ ही साथ अपने ज्ञान की भी कुछ वृद्धि कर सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बिन्दुवर्णावली में इबारत लिखने के लिए एक ख़ास क़िस्म का ढांचा दरकार होता है। उसी पर काग़ज़ लगा दिया जाता है। अन्धे इसे बड़ी सफ़ाई से लिख लेते हैं। कितनी ही पढ़ी लिखी स्त्रियां इस वर्णावली में किताबें लिख लिख कर अन्धों को नज़र करती हैं।

ब्रेलो की बनाई हुई इस नई बिन्दुमाला का इंगलैंड में प्रचार हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए। १८७२ ईसवी में डाक्टर आरमिटेज नाम के एक विद्वान् ने इसका पहले पहल प्रचार किया। परन्तु इसका अब इतना प्रचार हो गया है कि इसकी बदौलत आज कल हज़ारों अन्धे वहां शिक्षा पा रहे हैं। अन्धों के लिए कितने ही स्कूल खुल गये हैं। यही नहीं, किन्तु एक पुस्तकालय भी है। इसे कुमारी पार्था आरनल्ड नामक एक जन्मान्ध स्त्री ने, कुमारी हाउडन नामक एक अन्य स्त्री की सहायता से, स्थापित किया था। इसको स्थापना हुए लगभग २५ वर्ष हुए। यह अब लंडन के बेज़-वाटर नामक स्थान में है। इस पुस्तकालय का वर्णन नोरा अलेग-ज़ांडर नाम की एक स्त्री ने, एक अंगरेज़ी सामयिक पुस्तक में, बड़ी ही मनोरञ्जक रीति से किया है। इस पुस्तकालय की सरपरस्त इंगलैंड के राजकुल की एक महिला महोदया हैं। इसमें जो पुस्तकें एकत्र हैं वे अन्धों को पढ़ने के लिए दी जाती हैं।

अँगरेज़ी की जो पुस्तकें अन्धों के लिए तैयार की जाती हैं उन्हें पहले आँख वाले आदमी को अन्धों की लिपि में नक़ल करना पड़ता है। इसके बाद उनकी जितनी कापियां दरकार होती हैं उतनी अन्धे कर लेते हैं। पहली कापी आँख वाले किसी को ज़रूर करनी पड़ती है। सुनते हैं, अन्धों पर कृपा करके जो लोग इस तरह की पुस्तकें नक़ल करते हैं उनको यह काम बुरा नहीं मालूम होता। वे इसे बड़े चाव से करते हैं। ज़रा अभ्यास भर उनको हो जाना चाहिए। फिर अन्धलिपि में पुस्तकें नक़ल करने में उनका जी नहीं ऊबता। उससे उलटा उनका मनोरञ्जन होता है।

अन्धलिपि में पुस्तकें नक़ल करने में जगह बहुत ख़र्च होती है। अँगरेज़ी के छोटे छोटे पाँच पाँच छः छः आने के जो उपन्यास बिकते हैं उनकी नक़ल करने में एक एक पुस्तक की आठ आठ दस दस जिल्दें हो जाती हैं। और जिल्दें भी छोटी नहीं—११ इंच चौड़ी और १४ इंच लंबी। बाइबल की नक़ल जो इस लिपि में की गई है उसकी ३५ जिल्दें हुई हैं। गिबन नाम के प्रसिद्ध इतिहासकार ने रोम का जो इतिहास अँगरेज़ी में लिखा है वह ५० जिल्दों में समाप्त हुआ है। शेक्सपियर के नाटकों की कापी करने में भी इतनी ही जिल्दें लिखनी पड़ी हैं!

अन्धलिपि में लिखी गई एक जिल्द में ७५ पन्ने रहते हैं। और उसकी क़ीमत कोई ११ रुपये होती है। ऐसी एक जिल्द की नक़ल करने के लिए कोई ८ रुपये लिखाई दी जाती है। यह काम अकसर अन्धे ही करते हैं और ख़ासा रुपया कमाते हैं। बाक़ी के ३ रुपये काग़ज़ और जिल्द बँधाई वग़ैरह में ख़र्च होते हैं। इस प्रकार गिबन के रोमक इति-हास की क़ीमत कोई साढ़े पाँच सौ रुपये होती है! ऐसी क़ीमती किताबें बेचारे अन्धों को सहज में मिलना मुश्किल बात है। इसी मुश्किल को दूर करने के लिए हैम्सटेड में पुस्तकालय खोला गया था। इस पुस्तकालय की कुछ ही दिनों में इतनी तरक़्क़ी हुई कि इसके लिए एक बहुत बड़ी जगह दरकार हुई और हैम्सटेड से उठाकर उसे बेज़-वाटर नामक स्थान को लाना पड़ा। इस समय कोई ८००० जिल्द पुस्तकें उसमें विद्यमान हैं। प्रति वर्ष कम से कम ५०० नई जिल्दें उसमें रक्खी जाती हैं। ग्रेटब्रिटन में सब मिलाकर ३८,००० अन्धे हैं। उनमें से ५०० अन्धे इस पुस्तकालय के मेम्बर हैं। और कोई एक सौ आदमी अन्ध-लिपि में पुस्तकें नक़ल करने में लगे हुए हैं। जो लोग इस पुस्तकालय के मेम्बर होते हैं उन्हें साल में ३० रुपये के क़रीब चन्दा देना पड़ता है। हर एक मेम्बर एक महीने में ८ जिल्द पुस्तकें पा सकता है। परन्तु जो मेम्बर बहुत ग़रीब हैं उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए चन्दे का नूर्ख ४ रुपये साल तक कम कर दिया गया है। ग़रीब अन्धे ४ रुपये साल देने से महीने में ४ जिल्दें पढ़ने के लिए पाते हैं।

इँगलैंड में अन्धों के लिये स्त्रियां अकसर पुस्तकें नक़ल करती हैं। इसे वे पुण्य का काम समझती हैं। और सचमुच ही यह पुण्य का काम है। धन-सम्पन्न विलायती स्त्रियों को हास-विलास, घूमने-फिरने और नाच-तमाशा देखने या दावत उड़ाने के सिवा और काम बहुधा कम रहता है। अतएव उनमें से जो परोपकार करना और दीन-दुखियों को सहायता देना चाहती हैं वे अन्धों की मदद करती हैं। वे अच्छी अच्छी पुस्तकें नक़ल करके अन्धों के पुस्तकालय में रखने के लिए भेजती हैं। प्रतिदिन सिर्फ़ दो घंटे इस काम में ख़र्च करने से एक साल में चार पाँच जिल्दों की एक ख़ासी पुस्तक नक़ल हो जाती है। अन्ध-लिपि सीखने में न बहुत समय दरकार है और न बहुत मेहनत। कुछ ही हफ़्ते थोड़ा थोड़ा अभ्यास करने से लोग इस लिपि में अच्छी तरह पुस्तकें नक़ल करने लगते हैं।

अन्धों में शिक्षा की अब इतनी उन्नति हो गई है कि उन्होंने दो साप्ताहिक समाचार पत्र निकालने शुरू किये हैं। एक का नाम है "वीकली समरी" (Weekly Summary) दूसरे का "ब्रेली वीकली" (Braille Weekly) इनके सम्पादक, लेखक और समाचार-दाता सब अन्धे ही हैं। वर्तमान राजनैतिक, सामाजिक और धार्म्मिक विषयों में इँगलैंड और अमेरिका के सामयिक पत्र और पत्रिकाओं में जो उत्तमोत्तम लेख निकलते हैं वे काटकर अलग एक पुस्तक में रक्खे जाते हैं। फिर वह पुस्तक अन्ध-लिपि में नक़ल की जाती है और अन्धों के पुस्तकालय में रक्खी जाती है। उसे अन्धे बड़े चाव से पढ़ते हैं और दुनिया में क्या हो रहा है, इसे अच्छी तरह जान कर अपने समाचारपत्रों में अपने विचार प्रकट करते हैं, मुख्य मुख्य बातों की आलोचना करते हैं, और कभी कभी ऐसे ऐसे लेख निकालते हैं जिन्हें पढ़ कर चक्षुष्मान् आदमियों को आश्चर्य्य होता है। अन्धों ने इँगलैंड में एक क्लब भी स्थापित किया है। उसके मेम्बर, अमेरिका और योरप के भिन्न भिन्न देशों में रहने वाले अन्धों से "एस्परांटो" भाषा में पत्र व्यवहार करते हैं। अन्धों पर कनाडा, आस्ट्रेलिया और अमेरिका की गवर्नमेंट की विशेष कृपा है। इन देशों में अन्धों के पत्र और अख़बार आदि डाकद्वारा मुफ़्त भेजे जाते हैं।

अन्धों को सङ्गीत में स्वभावही से कुछ अधिक प्रेम होता है। यह बात हमने इस देश के अन्धों में भी देखी है। कई अन्धों को हमने बहुत अच्छा तबला और सितार बजाते और गाते देखा है।

अन्धों की इस स्वाभाविक शक्ति को उत्तेजना देने के लिए इँगलैंड में सङ्गीत की भी पुस्तकें अन्ध-पुस्तकालय में रक्खी जाती हैं। इस कला में तो कोई कोई अन्धे आँखवाले आदमियों को भी मात करते हैं। विलायत में कुमारी लूकस नाम की एक जन्मान्ध स्त्री है। वह सङ्गीत में बहुतही प्रवीण है। कुछ दिन हुए एक पाठशाला में सङ्गीताध्यापक की जगह ख़ाली हुई। उसके लिए अनेक पुरुष उम्मेदवारों ने अर्ज़ियां दीं। कौन उस जगह के लिए अधिक योग्य है, इसकी जाँच के लिए सबकी परीक्षा हुई। परीक्षा का फल यह हुआ कि कुमारी लूकस का नम्बर सबसे ऊँचा आया। अतः वह जगह उसीको मिली।

अन्धों का स्पर्शज्ञान जैसे बहुत बढ़ा चढ़ा होता है, और उनके अन्धेपन की थोड़ी बहुत कसर उससे निकल जाती है, वैसेही उनकी स्मरण-शक्ति भी विलक्षण होती है। विवेचना-शक्ति भी उनकी बहुत सूक्ष्म होती है। अँगरेज़ी में डिकिन्स के उपन्यास प्रसिद्ध हैं। एक दफ़े एक अन्धा इनमें से एक उपन्यास नक़ल कर रहा था। उसमें एक जगह लिखा था कि उपन्यास का नायक एक शहर में जून के महीने में शाम को अपनी माँ से बात चीत कर रहा था। परन्तु दो तीन अध्यायों के बाद उसी के विषय में फिर उसे यह लिखा हुआ मिला कि एक हफ़्ता वहां रह कर जून की दूसरी तारीख़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को वह अन्यत्र चला गया। इसे पढ़ कर अन्धा फौरन बोल उठा कि यह तारीख़ ग़लत है। जून का एक हफ़्ता एक जगह व्यतीत करके उसी महीने की दूसरी तारीख़ को वह मनुष्य अन्यत्र नहीं पहुँच सकता! इस पुस्तक की सैकड़ों आवृत्तियां छप चुकी हैं। परन्तु तब तक उसके प्रकाशकों में से किसी का ध्यान इस ग़लती की तरफ़ नहीं गया। इस पुस्तक को लाखों आदमियों ने पढ़ा होगा। परन्तु, सम्भव है, किसी पढ़नेवाले को भी यह ग़लती न खटकी हो। खटकी एक अन्धे को!

अन्धों को शिक्षा देना बड़े पुण्य का काम है। क्या कभी वह दिन भी आवेगा जब इस देश के अन्धों को भी पढ़ाने लिखाने का उचित प्रबन्ध होगा?

मुरशिदाबाद।

जिस समय मुरशिदाबाद बंगाल, बिहार और उड़ीसा की राजधानी था उस समय उसका जो गौरव और विभव था, उसका इस समय प्रायः समूल ही नाश हो गया है। उसके बड़े बड़े महल गिरकर ज़मीन के बराबर हो गये हैं; उसके अनेक मशहूर मशहूर महल्लों की जगह जंगल खड़ा हुआ है; उसके अनेक नवाब, नाज़िम, दीवान, नायबदीवान, सिपहसालार और फ़ौजदार सफ़ेद चद्दरों में लिपटे हुए करबला की मिट्टी के साथ, गहरी क़ब्रों के भीतर, इन्साफ़ के आख़िरी दिन का रास्ता देख रहे हैं। जहां किसी समय सात सौ मसजिदों से अज़ाँ की आवाज़ सुन पड़ती थी वहां इस समय सत्तर मसजिदें भी मुश्किल से होंगी। और उनमें से शायद सात ही अच्छी हालत में हों। मुरशिदाबाद में कई लाख आदमियों की बस्ती थी। पर १७६९ ई० के अकाल और १७७० की चेचक की बीमारी ने उसकी आबादी आधी कर दी। १८१५ ईसवी में वहां सिर्फ़ १,६५,००० आदमी रह गये। और अब? अब सिर्फ़ १५०००! किसी समय मुरशिदाबाद बीस मील के घेरे में बसा हुआ था; पर अब उसकी परिधि ६ मील से अधिक नहीं!

पलासी-युद्ध के बाद से ही मुरशिदाबाद का पतन शुरू हो गया। अँगरेज़-राज के प्रभुत्व की वृद्धि और मुरशिदाबाद के वैभव का ह्रास साथ ही साथ होता गया। धीरे धीरे दोनों अपनी चरमसीमा को पहुँच गये। यद्यपि मुरशिदाबाद की इस समय अत्यन्त ही हीन अवस्था है तथापि सौ डेढ़ सौ वर्ष पहिले उसने अनेक राजकीय खेल खेले हैं। नहीं मालूम कितने जाल, कितने फ़रेब, कितने विश्वासघात के अभिनय वहां हुए हैं। अँगरेज़ी-राज्य की वह जन्मभूमि है; क्लाइव-कलङ्क की वह कृष्ण-वैजयन्ती है; स्वामि-द्रोह, स्वार्थ और कृतघ्नता की वह पातालभेदी जड़ है। अब भी उसमें बहुत सी इमारतें और चीज़ें देखने के लायक़ हैं। और नहीं तो मुरशिदाबाद का नाम सुन कर अर्थलोलुप और स्वदेशशत्रु मानिकचन्द, अमीचन्द, रायदुर्लभ, राजवल्लभ, नन्दकुमार आदि का स्मरण नया हो उठता है। इन्हीं कारणों से बाबू पूर्णचन्द्र मजूमदार ने मुरशिदाबाद पर, कुछ दिन हुए, एक किताब अँगरेज़ी में लिखी है। उसीकी कुछ बातों का ज़िक्र इस लेख में किया जाता है।

ईस्ट इंडियन-रेलवे की "लूप लाइन" में एक स्टेशन नलहाटी है। वहां से एक छोटी सी लाइन आज़मगंज तक गई है। लक्खीसराय की तरफ़ से मुरशिदाबाद जानेवालों को वहीं उतरना पड़ता है। आज़मगंज भागीरथी के किनारे पर है। मुरशिदाबाद दूसरे किनारे पर। मुरशिदाबाद का पुराना नाम मक़सूदाबाद है। नवाब मुरशिद-कुली-खां ने, १७०४ ईसवी में, अपने नाम के अनुसार, उसे मुरशिदाबाद में बदल दिया। १२०३ ईसवी में बख़्तियार ख़िलजी ने पहले पहल बंगाल में मुसल्मानी अमल की नींव डाली। तबसे मुरशिद-कुली खां तक ६८ नवाब बंगाल के मुसल्मानी तख़्त पर बैठे। मुरशिद-कुली खां ने ढाका छोड़ कर मुरशिदाबाद को अपनी राजधानी बनाया। मुरशिद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने हिन्दू-कुल में जन्म लिया था। वह एक ग़रीब ब्राह्मण का लड़का था। इस्फ़हान के हाजी सफ़ी नामक एक मुसल्मान व्यापारी ने उसे मुसल्मान बना कर उसका पालन पोषण किया था। औरंगज़ेब के समय में वह हैदराबाद का दीवान था। १७०१ ईसवी में वह बंगाल का दीवान मुक़र्रर हुआ। १७०४ में वह मुरशिदाबाद आया। अठारवीं सदी के प्रथमार्द्ध में मुसल्मानी-राज्य की ख़ूब उन्नति हुई। पर उसके उत्तरार्द्ध से उसकी अवनति शुरू हुई। उसकी अवनति के साथ ही साथ अँगरेज़ी-राज्य की उन्नति होती गई। १७६५ ईसवी में देहली के नाममात्रधारी बादशाह से ईस्ट इंडिया कम्पनी नाम के अँगरेज़ी-वणिक-समूह ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की। तब तक भी मुरशिदाबाद बंगाल की राजधानी रहा। पर १७९३ ईसवी में स्वदेशी राज्य का शेष चिन्ह भी प्रायः जाता रहा और नवाब नाज़िम की सब शक्ति और प्रभुता लुप्त हो गई। नवाब नाज़िम का ख़िताब भर बाक़ी रह गया। वह भी १८८० ईसवी में न रहा। मुरशिदक़ुलीख़ां से लेकर वर्तमान नवाब बहादुर तक १६ नवाब मुरशिदाबाद के सिंहासन पर बैठे। उनके नाम ये हैं।

१	मुरशिद कुलीख़ां	९	सैफ़ुद्दौला
२	शुजाख़ां	१०	मुबारकुद्दौला
३	सरफ़राज़ख़ां	११	बाबर अली
४	अलीवर्दी ख़ां	१२	आलीजाह
५	सिराजुद्दौला	१३	वालाजाह
६	मीर जाफ़र	१४	हुमायूंजाह
७	मीर क़ासिम	१५	फ़रेदूंजाह
८	नजमुद्दौला	१६	हसनअली

मुरशिद कुली ख़ां ने बहुत न्यायपूर्वक राज्य किया। उसने फ़ौजी ख़र्च कम कर दिया; ग़ल्ले का बाहर भेजा जाना बन्द कर दिया; विद्या की उन्नति दी; अनुचित कर माफ़ कर दिये और दीन दुखियों की ख़ूब मदद की। उसके समय में रुपये का पाँच मन चावल बिकता था। जिसकी तनख़्वाह एक रुपया थी वह भी मज़े में दोनों वक़्त "पोलाव" उड़ाता था। उसके दीवान रज़ा ख़ां का स्वभाव उसके स्वभाव से बिलकुल ही उलटा था। जो ज़मीदार मालगुज़ारी नहीं अदा कर सकते थे उनको वह रस्सों से बाँध कर गन्दगी से भरे हुए गढ़ों में डलवा देता था। ऐसे नारकीय कुण्डों का नाम उसने रक्खा था "वैकुण्ठ"! मुरशिदक़ुली ख़ां ने देहली के बादशाह की अधीनता अस्वीकार करके कर देना बन्द कर दिया। वह बंगाल, बिहार और उड़ीसा का स्वतन्त्र नवाब नाज़िम हो गया। उसके बाद उसके दामाद शुजाख़ां को निज़ामत मिली।

शुजाख़ां के वक़्त में अलीवर्दीख़ां नामक एक पुरुष मुरशिदाबाद आया। वह शुजाख़ां के मामू के रिश्तेदारों में से था। शुजा ने उसे पटना का गवर्नर नियत किया।

शुजाख़ां के लड़के सरफ़राज़ख़ां से अपने दीवान हाजी अहमद से अनबन हो गई। हाजी अहमद अलीवर्दीख़ां का भाई था। इस कारण इन दोनों भाइयों ने मिल कर सरफ़राज़ख़ां से बग़ावत की। लड़ाई हुई। लड़ाई में सरफ़राज़ख़ां मारा गया। अलीवर्दी को मुरशिदाबाद की मसनद मिली। उस समय, मुरशिदाबाद के ख़ज़ाने में ७० लाख रुपया नक़्द और ५० करोड़ रुपये का ज़ेवर अलीवर्दी के हाथ लगा!

अलीवर्दीख़ां ने १६ वर्ष राज्य किया और १७५६ ईसवी में, ८० वर्ष की उम्र में, वह मरा। उसने अपने बहनोई मीर जाफ़र को अपना सिपहसालार नियत किया। उसके वक़्त में मरहठों ने बड़ा उपद्रव मचाया। कई दफ़े उनसे अलीवर्दीख़ां को लड़ना पड़ा। एक दफ़ा अलीवर्दी ख़ां ने बर्दवान के पास ४५ हज़ार मराठों को परास्त किया। पर परास्त हुई फ़ौज ने जगतसेठ के मकान का रास्ता लिया और वहां पहुँच कर दो करोड़ रुपया लूटा! बरार का सूबा, और १२ लाख रुपया सालाना चौथ, देना क़बूल करके अलीवर्दी ने मराठों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना पिण्ड छुटाया। उस वक्त जगतसेठ का प्रभुत्व अपार और अपरिमित, था। टकसाल उसीके यहां थी। जितने राजे, महराजे और ज़मींदार थे सब उसी की मुट्ठी में थे। अलीवर्दीख़ाँ के १६ वर्ष प्रायः लड़ाई भिड़ाई ही में गये। तिस पर भी प्रजा उससे ख़ुश थी। पढ़े लिखे आदमियों की उसके यहां क़द्र थी। कविता और इतिहास सुनने का उसे शौक़ था। हिन्दुओं को उसने बड़े बड़े ओहदे दिये थे। उसके कोई लड़का न था। तीन लड़कियाँ थीं। उनको उसने अपने भाई के तीन बेटों से ब्याहा। उनमें से अमीना ख़ानम के बेटे सिराजुद्दौला को उसने गोद लिया।

अँगरेज़ और कुछ हिन्दुस्तानी इतिहासलेखकों ने भी सिराजुद्दौला को काम-कर्दम का कीड़ा, निर्दयता का समुद्र, दुर्व्यसनों का शिरोमणि, अर्थलोलुप और नरपिशाच आदि मधुरिमामय विशेषणों से विभूषित किया है। पर बाबू अक्षय-कुमार मैत्रेय ने बँगला में सिराजुद्दौला का जीवन-चरित लिख कर उसकी इस कलङ्क-कालिमा को धो कर प्रायः बिलकुल ही साफ़ कर दिया है। इस किताब को पढ़ने से यह धारणा होती है कि सिराजुद्दौला के समान सहनशील, राजनीतिज्ञ, बात का सच्चा, निर्भय, शान्ति-प्रिय और रक्तपात-द्वेषी शायद ही और कोई राजा या बादशाह हुआ हो। प्रायः सब कहीं अँगरेज़ों ही के लोभ, प्रतिज्ञा-भञ्जन, अन्याय, प्रतिहिंसक-स्वभाव, अनाचार, विश्वासघात आदि का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में यह बात ख़ूब दृढ़ता से साबित की गई है कि कलकत्ते के अन्धकूप, अर्थात् कालकोठरी या ब्लैकहोल, की हत्या की कहानी बेसिर पैर की एक औपन्यासिक गढ़न्त मात्र है। उसका कहीं इतिहास में पता नहीं। अँगरेज़-वणिकों के अत्याचार के कारण जब विलायत में हाहाकार और छी थू होना शुरू हुआ तब उस बात को भुला देने और ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारियों के अपराध की गुरुता को कम करने के इरादे से हालवेल साहब ने इस झूठी कहानी को सृष्टि की। इस बात को मैत्रेय बाबू ने सप्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा की है और उस समय के अँगरेज़ी काग़ज़ पत्रों से यह साबित किया है कि हालवेल साहब अन्यथावादी और घूसख़ोर था। उसने मीरजाफ़र को पदच्युत करके मीर क़ासिम को मुरशिदाबाद का राजसिंहासन दिला देने के वादे पर मीर-क़ासिम से तीन लाख रुपया लिया और विलायत को झूठ रिपोर्ट कर दी कि मीर जाफ़र ने सिरा-जुद्दौला की माँ, मौसी और कई एक अन्य बेगमों को ढाके में क़ैद करके बड़ी ही निर्दयता से मरवा डाला। अतएव ऐसा अन्यायी और पापी पुरुष राज्य करने के लायक़ नहीं। यह रिपोर्ट बिलकुल ही झूठ थी*। १७६६ ईसवी में कलकत्ते के अँगरेज़ी दरबार ने इस बात की तहक़ीक़ात करके जो रिपोर्ट विलायत भेजी उसमें उसने इस हत्या-कहानी को सर्वथा मिथ्या बतलाया। जिस हालवेल ने इस तरह का मिथ्यावाद किया वही यदि कालकोठरी की कहानी गढ़ कर कलकत्ते के अँगरेज़ सौदागरों के विषय में विलायतवालों की सहानुभूति जाग्रत करने की कोशिश करे तो क्या आश्चर्य्य है ?

सिराजुद्दौला बड़ा स्त्रैण था। उसने एक लाख रुपये देकर देहली से फ़ैज़ी नामक एक वारवनिता मँगाई थी। वह सिर्फ़ २२ सेर वज़न में थी। सुन्दरता में वह दूसरी उर्वशी थी। पीछे से सिराजुद्दौला उससे नाराज़ हो गया और उसे उसने ज़िन्दा ही दीवार में चुनवा दिया। मोहन-लाल नामक एक आदमी की बहन अत्यन्त सुन्दरी थी। उसका देहभार ३२ सेर था। वह भी सिरा-जुद्दौला की अङ्क-गामिनी हुई। इस उपलक्ष्य में मोहनलाल को मन्त्री का पद मिला। सिराजु-द्दौला के बाद उसके महलों में कई सौ स्त्रियां

* In justice to the memory of the late Nabab Meer Jaffer, we think it incumbent on us to acquaint you that the horrible massacres, wherewith he is charged by Mr. Halwell in his address to the proprietors of the East India Stock (page 46), are cruel aspersions on the character of that prince, *which have not the least foundation in truth.* Letter to Court of Directors, 30th September, 1766, Supplement.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलीं! रानी-भवानी की विधवा लड़की तारा को जब उसने बुरी नज़र से देखा तब बंगाले के ज़मींदार उससे बेतरह नाराज़ हो उठे। तब तक सिराजुद्दौला केवल युवराज ही था। जब वह मुरशिदाबाद का मालिक हुआ और जगतसेठ को दरबार में चपत मारा तब जगतसेठ के यहां मन्त्रणा करके लोगों ने उसे विश्वासघातपूर्वक राज्यच्युत करने की ठानी। सिराज ने अपनी मौसी घसीटी बेगम को निकाल दिया; उसका माल असबाब ज़ब्त कर लिया; और मीर जाफ़र को सिपहसालारी के ओहदे से दूर कर दिया। इन्हीं कारणों से लोग और भी उसके ख़िलाफ़ होगये। यही सब बातें सिराजुद्दौला के नाश का कारण हुईं।

अँगरेज़ों ने बिना सिराज के हुक्म के कलकत्ते में क़िला बना लिया और जो अँगरेज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी की तरफ़ से व्यापार न करते थे उनको भी कम्पनी के अफ़सर बिला महसूल व्यापार करनेका परवाना बेचने लगे। यह सिराजुद्दौला को नागवार हुआ। उसने अँगरेज़ों से कहा, क़िला गिरा दो। पर उन्होंने यह बात न मानी। सिराज ने दो दफ़े अपना दूत भी कलकत्ते भेजा। पर अँगरेज़ उससे बुरी तरह से पेश आये। इस दशा में निरुपाय होकर सिराजुद्दौला ने अँगरेज़ों की क़ासिमबाज़ारवाली कोठी पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस पर भी जब कलकत्ते का क़िला न गिराया गया तब सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढ़ाई करके उस पर भी अधिकार कर लिया। कहते हैं कालकोठरी, या अन्धकूप, की हत्या इसी समय हुई।

अँगरेज़ों से सिराज ने पीछे से सन्धि करलो। पर उसके कुछ ही दिन बाद वह भङ्ग हो गई। अँगरेज़ों ने चन्दननगर को लूट कर फ़रासीसियों को वहां से निकाल दिया। इसके बाद उन्होंने लोभवश होकर हुगली, बर्दवान और नदिया को भी लूट लिया। सिराजुद्दौला की इच्छा युद्ध करने की न थी। वह अँगरेज़ों को व्यापार करने का अधिकार पहले का ऐसा देने पर राज़ी था। कलकत्ते के व्यापारी अँगरेज़ भी युद्ध के ख़िलाफ़ थे। पर अँगरेज़ों के थलसेनापति क्लाइव और जलसेनापति वाटसन को यह बात पसन्द न आई। उन्होंने अपना निजी मतलब सिद्ध करने के इरादे से युद्ध करना ही निश्चित किया। जगतसेठ, मीर जाफ़र, कलकत्ते का भूतपूर्व गवर्नर मानिकचन्द, ढाके का गवर्नर राजवल्लभ और वणिक् अमीचन्द अँगरेज़ों से मिल गये। एक दस्तावेज़ लिखी गई। मुरशिदाबाद के ख़ज़ाने से कम्पनी बहादुर को एक करोड़, कलकत्ते के अँगरेज़, बंगाली और अरमनी लोगों को ७० लाख, और अमीचन्द को ३० लाख रुपया पाने की व्यवस्था हुई। अमीचन्द को रुपया देना अँगरेज़ों को मंज़ूर न था और देने का वादा न करने से डर था कि वह उनकी गुप्त मन्त्रणा नवाब पर ज़ाहिर कर देगा। इसलिए क्लाइव ने दो दस्तावेज़ें लिखीं। एक सफ़ेद काग़ज़ पर, दूसरी लाल काग़ज़ पर। लाल काग़ज़वाली जाली थी। उसमें अमीचन्द को रुपये देने की शर्त न थी।

पलासी में अँगरेज़ों का सामना सिराजुद्दौला ने किया। उसके सेनापतियों में से मीरमदन और मोहनलाल को छोड़ कर किसी ने भी ईमानदारी से युद्ध न किया। मीरमदन ने बड़ी बहादुरी दिखलाई। पर वह मारा गया। अकेले मोहनलाल ही क्लाइव का पराभव कर देता, पर विश्वासघातपूर्वक लड़ाई बन्द करा के मीर जाफ़र फ़ौज को शिविर में ले आया। इतने में अँगरेज़ी फ़ौज ने धावा करके सिराजुद्दौला की बची बचाई ख़ैरख़्वाह फ़ौज को तितर बितर कर दिया। सिराज लाचार होकर मुरशिदाबाद आया और वहां से राजमहल की तरफ़ भगा। पर मीर जाफ़र के आदमी उसे रास्ते से पकड़ लाये। अन्त में बड़ी बेइज़्ज़ती के साथ मीर जाफ़र के बेटे मीरन ने उसे मरवा डाला। इसके कुछ ही दिनों बाद मीरन पर बिजली गिरी और उसीसे उसकी मौत हुई। क्लाइव ने मीर जाफ़र को मुरशिदाबाद की मसनद पर बैठाया और यथेष्ट पुरस्कार भी पाया। पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अख़ोर को आत्महत्या करके उसे इस संसार को छोड़ जाना पड़ा।

मीर जाफ़र ने क्लाइव को मालामाल कर दिया और अँगरेज़-वणिकों की हर तरह मदद की। कलकत्ते में टकसाल तक जारी करने की उसने आज्ञा दे दी। पर क्लाइव के विलायत चले जाने पर कालकोठरीवाले हालवेल साहब उससे नाराज़ हो गये। इस कारण आपने मीर जाफ़र को पदच्युत करके उसके दामाद मीर क़ासिम को मुरशिदाबाद की गद्दी इनायत फ़रमाई। मीर क़ासिम ने कलकत्ते के गवर्नर और कौंसिल के मेम्बरों को गद्दी पाने पर २० लाख रुपया देने का वादा किया था। पर इस वादे को उसने पूरा न किया। इसके सिवा और भी कई तरह से उसने अँगरेज़ों को नाराज़ कर दिया। अँगरेज़ों ने लड़ाई में उसे परास्त किया और मीर जाफ़र को दुबारा मुरशिदाबाद की मसनद पर बिठलाया। इस हादसे के दो वर्ष बाद मीर जाफ़र की मौत हुई।

मीर जाफ़र का लड़का नजमुद्दौला गद्दी पर बैठा। पर गद्दी की प्राप्ति के उपलक्ष्य में उसे २१,००,००० रुपया कलकत्ते के अँगरेज़ी कौंसिल के मेम्बरों को देना पड़ा। नजमुद्दौला के वक़्त में क्लाइव फिर कलकत्ते पधारे और देहली के नाम-मात्रधारी बादशाह से कम्पनी बहादुर के लिए बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी की सनद आप ने हासिल की। इसके बाद आपने मुल्क का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया और नजमुद्दौला के लिये ५३ लाख रुपये सालाना वसीक़ा मुक़र्रर कर दिया। इस पर नजमुद्दौला ने बड़ी ख़ुशी ज़ाहिर की। उसने कहा—"अब मैं जितनी नर्त्तकी चाहूंगा रख सकूंगा"। तब से मुरशिदाबाद की नवाबी में घुन लग गया और नवाब की सारी शक्ति, धीरे धीरे, ह्रास होते होते कम्पनी के हाथ में चली गई।

सैफ़ुद्दौला, नजमुद्दौला का छोटा भाई था। उसका वसीक़ा कम्पनी बहादुर ने काट कर ४२ लाख कर दिया। नवाब के नाम के साथ सिर्फ़ नवाबी रह गई। उसके सारे अख़तियारात लंडन में कम्पनी के डाइरेक्टर्स के दफ़्तर में जा पहुँचे। सैफ़द्दौला ने सिर्फ़ ४ वर्ष—१७६६ से १७७० ईसवी तक मुरशिदाबाद की मसनद का सुख भोगा। इस बीच १७६९ ईसवी में चेचक की बड़ी विकराल बीमारी पैदा होगई। उसने ६३ हज़ार आदमियों को हज़म कर लिया। नवाब साहब को भी उसने न छोड़ा।

मुबारकुद्दौला को नवाबी मिली। उसकी उम्र उस वक़्त सिर्फ़ १२ वर्ष की थी। वह मीर जाफ़र का बेटा था। उसकी माँ का नाम बब्बू बेगम था। पर हेस्टिंग्ज़ ने बब्बू बेगम को हटा कर मुबारकुद्दौला की सौतेली माँ मनी बेगम को बालक नवाब का रक्षक नियत किया। सगी को छोड़ कर सौतेली माँ को यह अधिकार क्यों मिला; इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। पर मनीबेगम के वक़्त के काग़ज़ पत्र जो जाँचे गये तो बहुत से रुपये का हिसाब ही न मिला। तहक़ीक़ात हुई। उससे मालूम हुआ—मनी बेगम ने ख़ुद कहा कि—कई लाख रुपया माननीय गवर्नर जनरल, श्रीयुक्त हेस्टिंग्ज़ साहब बहादुर, ने क़बूल फ़रमाया था। महाराज नन्दकुमार ने हेस्टिंग्ज़ पर बेगम से रुपये लेने का इलज़ाम लगाया; पर हेस्टिंग्ज़ ने अपने विलायती मालिकों को समझा बुझा कर सन्तुष्ट कर लिया। मुबारकुद्दौला का वसीक़ा सिर्फ़ १६ लाख साल रह गया। माल के दफ़्तर मुरशिदाबाद से कलकत्ते उठ गये। न्याय-विभाग का काम भी कम्पनी बहादुर ने अपने हाथ में ले लिया। निज़ामत अदालत भी कलकत्ते चली गई। महाराज नन्दकुमार पर एक जाली दस्तावेज़ बनाने का इलज़ाम लगा कर हेस्टिंग्ज़ ने उन्हें फांसी दे दी।

इसके आगे मुरशिदाबाद के इतिहास में कोई विशेष महत्त्व की बातें नहीं हैं। इसलिए अब हम मुरशिदाबाद की दो चार ऐतिहासिक इमारतों का ज़िक्र करते हैं।

क़िला निज़ामत भागीरथी के किनारे है। उसीके भीतर महल, इमामबाड़ा, रहने के मकान, घंटाघर, बँगले और कई मसजिदें हैं। क़िले में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई फाटक हैं। उनमें से दक्षिणी फाटक सबसे अच्छा है। ख़ास ख़ास फाटकों के नीचे से अम्बारी समेत हाथी निकल सकता है। इन फाटकों के ऊपर नौबतख़ाने हैं जहां सुबह, शाम, और आधी रात को नौबत बजा करती है।

मुरशिदाबाद में जो महल है उसका नाम बड़ो कोठो या हज़ारद्वारी है। वही मुरशिदाबाद की मशहूर इमारत है। उसमें बहुत सी चीज़ें देखने के लायक़ हैं। यह इमारत ४२४ फुट लम्बी, २०० फुट चौड़ी और ८० फुट ऊंची है। नवाब नाज़िम हुमायूँ जाह ने इसकी नींव, १८२९ ईसवी में, डाली। इसके बनने में आठ वर्ष लगे। कर्नल मेकल्यूड की निगरानी में यह बनी; पर बनाया इसे हिन्दुस्तानी ही कारीगरों ने। यह बड़ी सुन्दर इमारत है और तीन खण्डों में बनी हुई है। नीचे के खण्ड में तोशाख़ाना, सिलाख़ाना और महाफ़िज़ख़ाना है। इनके सिवा कई एक दफ़्तर भी हैं। दूसरे खण्ड में दरबार का कमरा, मुलाक़ात का कमरा, खाना खाने का कमरा, सोने का कमरा, गोल घर इत्यादि हैं। तीसरे खण्ड में पुस्तकालय, नाचघर इत्यादि हैं। सब कमरे और दीवान-ख़ाने खूब लम्बे चौड़े और सजे हुए हैं। उनमें जो सामान हैं सब ख़ूबसूरत और बेश-क़ीमती हैं।

यहां के पुस्तकालय में हाथ से लिखी हुई फ़ारसी और अरबी की अनेक उत्तमोत्तम और अप्राप्य पुस्तकें हैं। यहां की ऐसी बहुमूल्य क़ुरान की पुस्तकें हिन्दुस्तान में और कहीं नहीं। कलकत्ते में, लार्ड कर्ज़न की कृपा से, महारानी विक्टोरिया की यादगार में, जो इमारत बन रही है उसमें रखने के लिए यहां से कई एक अलभ्य पुस्तकें भेजी गई हैं। इस पुस्तकालय की दो चार पुस्तकों के नाम हम नीचे देते हैं—

१—क़ुरान आलमगीरी। औरंगज़ेब की पुस्तक। ६६५ हिजरी में याक़ूत मुस्तसिमी का लिखी हुई। यह बहुत प्रसिद्ध लेखक हुआ है। इस क़ुरान में औरंगज़ेब की मोहर है। उसमें लिखा है—"अल मुज़फ़्फ़र मुहीउद्दीन औरंगज़ेब बहादुर आलमगीर बादशाह ग़ाज़ी, १०७६ हिजरी"।

२—सिर्फ़ १६ पृष्ठों पर लिखी हुई क़ुरान की पुस्तक।

३—क़ुरान की पुस्तक। बहुत ही छोटे साँचे की—सिर्फ़ २ इंच लंबी २ इंच चौड़ी।

४—अवध के नवाब वज़ीर नसीरुद्दीन हैदर के लिए लिखी गई (२४ इंच × १२ इंच) क़ुरान की पुस्तक। दाम ३०,००० रुपये।

५—अली के हाथ की लिखी हुई क़ुरान की पुस्तक अरब से एक लाख रुपये में ख़रीद कर लाई गई।

६—अनवार-सुहेली। ९४० हिजरी में मुहम्मद यूसुफ़ समरक़न्दी की लिखी हुई। यह पुस्तक अकबर के पास रही है। इस पर अकबर की मोहर और दस्तख़त हैं—"दीदा शुद अल्ला हो अकबर"।

७—फ़ारसी-कवियों की कविता का संग्रह। इस पर देहली के बादशाह शाह आलम की मोहर है।

८—अकबरनामा। अबुलफ़ज़ल का लिखा हुआ। अबुलफ़ज़ल अकबर के नवरत्नों में से था। इस पर एक जगह लिखा हुआ है—"हमदम व हमराज़ जहाँगीर बादशाह"। दूसरी जगह लिखा हुआ है—"अफ़ज़ल ख़ां बन्दये शाहेजहां"।

९—पन्दनामा जहाँगीरी। यह ७ जिल्दों में है। जहाँगीर के लिए फ़ारस के रहनेवाले मीर-इमदाद नामक लेखक ने १६०७ ईसवी में लिखा। ग़दर के वक़्त अँगरेज़ों को यह पुस्तक देहली के शाही पुस्तकालय में मिली थी। पीछे से कलकत्ते की हैमिल्टन कम्पनी ने इसे मुरशिदाबाद के नवाब नाज़िम को ७,००० रुपये में बेचा।

१०—पन्दनामा अरस्तातलीस। अरिस्टाटल की उक्तियों का फ़ारसी-अनुवाद। १०५१ हिजरी में शाहज़ादा दाराशिकोह का लिखा हुआ।

इस महल में चित्र भी बहुत हैं और कोई कोई बहुत क़ीमती हैं।

यहां के सिलहख़ाने, अर्थात् शस्त्रागार, में अनेक पुराने और बहुमूल्य हथियार हैं। कितनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही उत्तमोत्तम तलवार, पेशक़ब्ज़, कटार, भुजाली, पिस्तौल, ढाल, भाला, कुकडी, तब्र इत्यादि हथियार बड़ी ही सुन्दरता से दीवारों पर लगे हुए हैं। कोई २० तरह की तो सिर्फ़ तलवारें हैं। बहुत से हथियार ऐसे हैं जिनसे मुरशिदाबाद के नवाब नाज़िम और उनके सिपहसालार और अमीरों ने लड़ाई में काम लिया है। यहां के अनेक हथियार भी, लार्ड कर्ज़न की कृपा से, विक्टोरिया की यादगार में जो इमारत कलकत्ते में बन रही है, उसमें रखने के लिए उठ गये हैं। दो चार हथियारों के नाम हम नीचे देते हैं।

१—विक्रमादित्य का भाला। मुसल्मानों के द्वारा हिन्दुओं से छीना गया। फल के ऊपर एक तरफ़ विष्णु का दूसरी तरफ़ गरुड़ का चित्र है। फल की लंबाई १८ इंच। सोने से मढ़ा हुआ।

२—तैमूर की तलवार। इस पर फ़ारसी में खुदा हुआ है—"अमीरे साहब केरान"। अक्षर सोने के हैं।

३—फ़ारस के बादशाह शाह अब्बास के समय में मशहूर कारीगर असदुल्ला इस्फ़हानी की बनाई हुई कितनी ही तलवारें।

४—औरंगज़ेब की तलवार। औरंगज़ेब का नाम खुदा हुआ।

५—फ़ारस के शाह अब्बास की निज की तलवार जिसे वह हाथ में रखता था।

६—देहली की बनी हुई तलवार, २ फुट ६ इंच लंबी। इस पर "महम्मदशाह ग़ाज़ी" खुदा हुआ है।

७—वारन हेस्टिंग्ज़ का दिया हुआ कटार। इसे हेस्टिंग्ज़ ने नवाब नाज़िम को नज़र किया था।

८—बारह हज़ार रुपये में ख़रीदे गये दो पिस्तौल। इन पर सोने और चाँदी का बहुत अच्छा काम है।

यहां के तोशेख़ाने में ज़ेवर और जवाहिरात भी बहुत क़ीमती क़ीमती हैं। अनेक हीरे, पन्ने, लाल और मोती ऐसे हैं जो अपने रूप, रंग, बड़ाई और इतिहास के कारण प्रसिद्ध हैं। अनेक रत्न ऐसे हैं जो देहली के बादशाहों के पास रहे हैं। इस तोशेख़ाने में कुछ बहुमूल्य हथियार भी हैं; उन पर तरह तरह के रत्न जड़े हुए हैं। यहां एक तलवार है जिस पर जड़े हुए सिर्फ़ रत्नों की क़ीमत कोई ३०,००० रुपये हैं। एक हीरों से जड़ा हुआ सरपेंच है। कलकत्ते की हैमिल्टन कम्पनी ने इसके एक ही हीरे की बेशुमार क़ीमत बतलाई है। लोग कहते हैं कि यह सरपेंच अकबर का है। एक हार बहुत ही मनोहर और बहुमूल्य है; उसमें बेशक़ीमती मोती, लाल, नीलम और हीरे हैं। एक लाल के ऊपर खुदा हुआ है—"जहांगीरशाह इब्न अकबरशाह, १०१८ हि०"। इस हार को नादिरशाह के डर से देहली के बादशाह महम्मदशाह ने मुरशिदाबाद भेज दिया था।

मुरशिदाबाद के इस महल में बहुत पुराने पुराने काग़ज़ात अभी तक रक्खे हुए हैं। उनमें से कितनो ही सनदें, दस्तावेज़ें, फ़रमान और सन्धिपत्र हैं। कुछ काग़ज़ कलकत्ते के नये विक्टोरिया-भवन में रखने के लिए चले गये हैं। वारन हेस्टिंग्ज़, मेक्फरसन, लार्ड कार्नवालिस और सर जानशोर के हाथ से लिखे हुए कई पत्र अब तक अच्छी तरह सुरक्षित हैं। अँगरेज़ों और नवाब नाज़िमों के दरमियान जो सन्धिपत्र लिखे गये थे वे भी अब तक विद्यमान हैं। उनकी तफ़सील इस प्रकार है—

(१) १७६३ ईसवी का सन्धिपत्र मीर जाफ़र और ईस्ट इंडिया कम्पनी के दरमियान। इसीके अनुसार मीर क़ासिम को पदच्युत करके मीर-जाफ़र को दुबारा मुरशिदाबाद की मसनद मिली और मीर जाफ़र ने अँगरेज़ों को बर्दवान, मेदिनीपुर और चटगाँव के चकले दिये।

(२) ईस्ट इंडिया कम्पनी और नजमुद्दौला के दरमियान, १७६५ ईसवी की, सन्धि। इसके मुताबिक़ कम्पनी ने नवाब की मदद करने का भार अपने ऊपर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

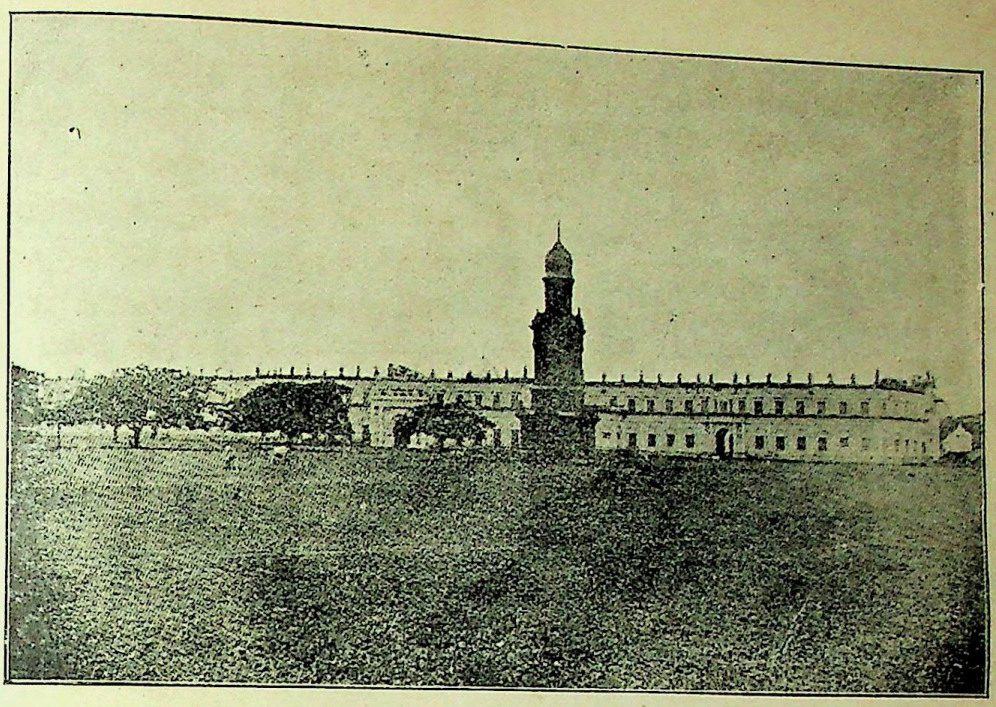

मुरशिदाबादी निज़ामत इमामबाड़ा।

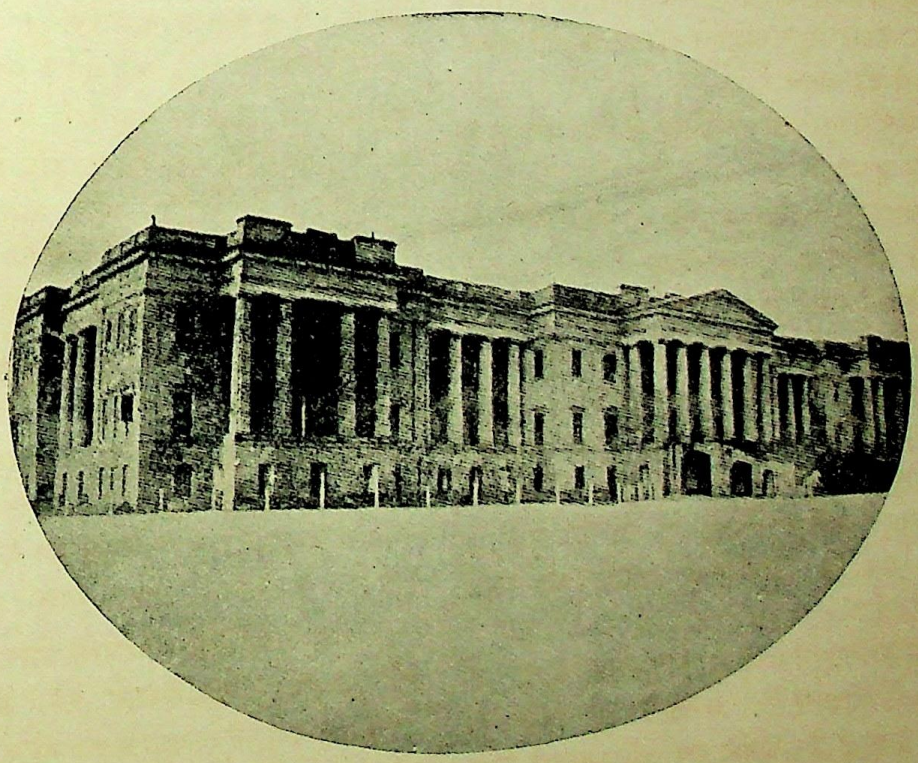

मुरशिदाबादी शाहीमहल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) १७६५ ईसवी का इक़रारनामा। नजमुद्दौला और कम्पनी के दरमियान। इसके अनुसार नवाब ने ५४ लाख सालाना वसीक़ा मंज़ूर किया।

(४) सैफ़द्दौला और कम्पनी के दरमियान, १७६६ ईसवी की, सन्धि। अँगरेज़ों ने नवाब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। नवाब ने सिर्फ़ ४२ लाख रुपया सालाना अपने ख़र्च के लिए लेना मंज़ूर किया।

(५) १७७० ईसवी का सन्धिपत्र। कम्पनी-बहादुर और नवाब मुबारकुद्दौला के दरमियान। नवाब का सिर्फ़ ३२ लाख रुपया साल वसीक़ा क़ुबूल करना।

ये सब सन्धिपत्र कलकत्ते पहुँच गये हैं। इन पर क्लाइव, ड्रेक, वाटसन, वारन हेस्टिंग्ज इत्यादि के असली दस्तख़त हैं। इँगलैंड के राजा चौथे विलियम का लिखा हुआ, नवाब मुबारकुद्दौला के नाम, एक पत्र भी यहां यथावत् रक्खा हुआ है। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मीर जाफ़र को घड़ी, मेज़, संन्दूक़, आईने इत्यादि बहुत सी अच्छी अच्छी और क़ीमती चीज़ें जो नज़र में दी थीं वे भी यहां बड़े यत्न से रक्षित हैं। ये सब ऐतिहासिक चीज़ें अवलोकनीय हैं।

मुरशिदाबाद का इमामबाड़ा एक मशहूर इमारत है। उसके बनाने में ६ लाख रुपये ख़र्च हुए थे। सिर्फ़ ११ महीने में वह बना था। मेसन और मज़दूरों को खाना कपड़ा भी मिलता था। वे दिन रात काम करते थे। इमारत ख़तम होने पर उनको दुशाले और रूमाल इनाम मिले थे। उस वक़्त सारा मुरशिदाबाद दुशालामय हो गया था। इस इमामबाड़े की लंबाई ६८० फ़ीट है। लखनऊ के इमामबाड़े से उतर कर हिन्दुस्तान में इसीका नंबर है। इसमें जो लेख है उसमें लिखा है कि यह "दूसरा करबला" है। इसके खंभे बहुत ही ख़ूबसूरत और ऊंचे हैं; इसका फ़र्श संगमरमर का है; इसके मण्डप के भीतरी हिस्से में सोने और चाँदी का काम है। मोहर्रम के वक़्त, दस बारह रात तक इसमें ख़ूब रोशनी होती है। उस समय इसकी शोभा अपार हो जाती है।

चौक-मसजिद, इस समय, मुरशिदाबाद में सबसे बड़ी मसजिद है। १७६७ ईसवी में उसे मीर जाफ़र की बीबी, मनोबेगम, ने बनवाया था। यह मसजिद बहुत ख़ूबसूरत है और अच्छी हालत में है।

मुरशिदाबाद से थोड़ी दूर पर वह जगह है जहां नवाब नाज़िम का तोपख़ाना था। वहां पर अब सिर्फ़ एक तोप रह गई है। वह बहुत बड़ी है। उसका नाम है "जहांकुशा"। वह एक गाड़ी पर चढ़ी हुई थी। इस समय गाड़ी के पहिये तक ग़ायब हो गये हैं। पर उसका कुछ हिस्सा, जो बहुत मज़बूत लोहे का था, अब तक उसके नीचे देख पड़ता है। तोप की बग़ल में पीपल का एक पेड़ उग आया है। उसने तोप को अपनी गोद में रख कर उसे ज़मीन से ४ फ़ीट ऊंचा उठा लिया है। यह तोप १७ फ़ीट ६ इंच लंबी है। इसका वज़न २१२ मन है। १६३७ ईसवी में इसे जनार्दन नाम के कारीगर ने ढाका में बनाया था। इस पर कई लेख खुदे हुए हैं, जिनमें से सिर्फ़ दो पढ़े जाते हैं।

मुबारक-मंज़िल मुरशिदाबाद के महल से दो मील है। यहां ईस्ट-इंडिया-कम्पनी के दफ़्तर थे। जब दफ़्तर कलकत्ते उठ गये तब नवाब हुमायूं जाह ने इसे दस लाख में ख़रीद कर लिया। इस इमारत के सामने काले पत्थर का एक तख़्त है। सुल्तान शुजा के वक़्त से बंगाले के नवाब नाज़िम इसी तख़्त पर बैठते थे। बुख़ारा के रहने वाले ख़्वाजा नज़र नाम के कारीगर ने इसे, १६४३ में, बनाया था। पलासी की लड़ाई के बाद क्लाइव ने मीरजाफ़र को, मंसूरगंज में, इसी तख़्त पर बिठलाया था। और, १७६६ में, बंगाल, विहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करके, क्लाइव, नजमुद्दौला के बराबर, इसी तख़्त पर विराजे थे। जब से मुरशिदाबाद के नवाब दीवानी का बोझ अपने सिर से उतार कर हलके हो गये तब से उन्होंने इस तख़्त पर बैठना छोड़ दिया। उस साल जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लार्ड कर्ज़न मुरशिदाबाद में मुबारक-मंज़िल देखने पधारे थे, तब आपने अपने आसन से इसे कृतार्थ किया था। अब यह तख़्त कलकत्ते उठ आया है।

मोतीझील, महल से कोई दो मील है। प्राचीन गौड़ की गिरी हुई इमारतों से, अलीवर्दीखाँ के दामाद, नवाज़िश अहमद ने यहां पर एक मकान बनवाया। धीरे धीरे और भी कई अच्छी अच्छी इमारतें यहां पर बन गईं। एक मसजिद भी बन गई। सिराजुद्दौला की मौसी घसीटी बेगम यहीं रहती थी। यहां पर बहुत से राजनैतिक खेल हुए हैं। १७५७ ईसवी में यहीं से सिराजुद्दौला ने पलासी की लड़ाई के लिए प्रस्थान किया था। दीवानी की सनद हासिल करने के बाद यहीं क्लाइव ने ज़मींदारों से नज़रें लीं थीं। १७७१—७३ में, जब वार्नहेस्टिंग्ज़ नवाब नाज़िम के दरबार में पोलिटिकल रेज़िडेंट थे, तब आप यहीं रहा करते थे। यहीं पर सर जान शोर भी कुछ दिनों तक रहे थे।

गंगा के दूसरे किनारे पर ख़ुशबाग़ नाम का एक बाग़ है। उसमें अलीवर्दीखां और उसके कुटुम्बियों की क़ब्रें हैं। सिराजुद्दौला की क़ब्र भी यहीं पर है।

जाफ़रगंज का मक़बरा महल से कोई डेढ़ मील है। मीरजाफ़र से लेकर हुमायूं जाह तक—मुरशिदाबाद के नवाब नाज़िमों—की क़ब्रें यहीं हैं। यहां कई आदमी करान का पारायण करने के लिए नियत हैं। हर तीसरे दिन एक पारायण हो जाता है और फिर वह नये सिरे से शुरू किया जाता है।

हीराझील, जाफ़रगंज से थोड़ी ही दूर है। मसनद पर बैठने के पहले यहीं पर सिराजुद्दौला ने अपना विलासभवन बनवाया था और यहीं पर वह अनंगरंग में मस्त रहता था। पलासी की लड़ाई से लौट कर यहीं से वह, अपनी बेगम, लतीफ़ुन्निसा, को लेकर, राजमहल की तरफ़ भागा था। यहीं क्लाइव ने मीरजाफ़र की बाँह पकड़ कर उसे तख़्त मुबारक पर बिठाया था।

मुरशिदाबाद के पास ही क़ासिम-बाज़ार है। १६५८ ईसवी में यहां पहले पहल अँगरेज़-वणिकों ने अपनी कोठी बनाई। अब इस कोठी का समूल नाश हो गया है। सिर्फ़ एक टीला बाक़ी है। पर अट्ठारहवीं सदी में अँगरेज़ों की रेज़िडेंसी का इमारत बहुत अच्छी थी। शुरू शुरू में हेस्टिंग्ज़ साहब यहीं पर हिन्दुस्तानियों से माल ख़रीदा करते थे। यहीं आपने एक अँगरेज़-विधवा से विवाह भी किया था। कोठी पर दख़ल करने के बाद सिराजुद्दौला ने यहीं से हेस्टिंग्ज़ को क़ैद करके मुरशिदाबाद भेजा था।

मुरशिदाबाद के विषय में अभी बहुत सी बातें लिखना बाक़ी है। पर लेख बढ़ जाने के भय से हम अधिक नहीं लिखा चाहते। सिराजुद्दौला को पदच्युत करके मीरजाफ़र को मसनद दिलाने के उपलक्ष्य में मुरशिदाबाद के ख़ज़ाने से कोई दो करोड़ रुपया कलकत्ते के अँगरेज़-अधिकारियों को दिया गया था। उनमें से कुछ की तफ़सील नीचे देकर हम इस लेख को ख़तम करते हैं—

	रुपया
गवर्नर ड्रेक	४,७२,५००
कर्नल क्लाइव	३५,१०,०००
वाट साहब	१९,५५,०००
मेजर किर्कपैट्रिक	४,०५,०००
वाल्श साहब	८,२३,७५०
स्क्राफटन साहब	३,३७,५००
लूशिंटन साहब	८४,३७५

स्त्री-स्वर्ग।

एक महात्मा का कथन है कि जहां स्त्रियों की पूजा होती है वहीं देवताओं का क्रीड़ालय समझना चाहिए। परन्तु वर्तमान काल में भूमंडल पर शायद ही एक आध स्थान ऐसा निकले जहां सचमुच ही स्त्रियों की पूजा की जाती हो। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश में तो इस समय स्त्रियों की दशा देख कर कहना पड़ता है कि, यह देश कई बातों में स्त्रियों के लिए नरक हो रहा है। यूरप और अमेरिका में स्त्रियों का बहुत आदर होता है; परन्तु ये देश भी अभी स्त्रियों के लिए स्वर्ग कहाने की योग्यता नहीं रखते। वहां भी स्त्रियों को पूरी स्वतंत्रता नहीं है। इन देशों के सामाजिक नियमों को जानने वाले कहते हैं कि वहां पर भी स्त्रियां सब बातों में अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्रतापूर्वक नहीं चल सकतीं। यहां तक कि किसी किसी सामाजिक बन्धन की—असह्य सामाजिक बंधन की—उन्हें बहुत बड़ी शिकायत रहती है। ऐसी दशा में एक अंगरेज़ यात्री ने एक ऐसे प्रान्त का वर्णन किया है जहां की स्त्रियाँ पूरे तौर पर स्वेच्छाचारिणी हैं। आशा है अमेरिका और यूरप की शिक्षित स्त्री-समाज की अगुआ स्त्रियां शीघ्रही एक सभा करके इस यात्री को धन्यवाद देंगी। इस यात्री ने उस प्रान्त की उपमा "स्त्री-स्वर्ग" से दी है। वहां का वर्णन उसने एक समाचारपत्र में प्रकाशित कराया है। उस का कथन है कि, जो कुछ उस ने इस विषय में लिखा है वह सब सत्य है और उसका आंखों देखा हुआ हाल है। वहां की सामाजिक स्थिति का हाल जानने के लिए उसे बहुत कुछ प्रयास करना पड़ा था। उसी लेख के आधार पर मैं भी 'सरस्वती' के पाठकों को वहां की कुछ विचित्र रीतियों का हाल सुनाता हूं।

जिस देश को इस अंगरेज़ यात्री ने "स्त्री-स्वर्ग," कह कर पुकारा है उस का असली नाम लद्दाख़ है। लद्दाख़ तिब्बत के पश्चिमोत्तर में एक छोटा सा प्रान्त है। यहां के निवासी लद्दाख़ी कहलाते हैं और तिब्बती बौद्ध धर्म के माननेवाले हैं। धर्म, भाषा और पोशाक वग़ैरह में वे अधिकतर तिब्बतियों ही से मिलते जुलते हैं। उनका देश तिब्बत से मिला हुआ होने के कारण उनका स्वभाव, उनके विचार, तथा उनकी रीतियां सब तिब्बतियों के समान हैं।

लद्दाख़ की स्त्रियां सुन्दरी होती हैं और नाना प्रकार के वस्त्रालंकारों से अपनी स्वाभाविक सुन्दरता को बढ़ाने का प्रयत्न करती रहती हैं। उन की पोशाक सभ्यता-सम्मत और सुडौल होती है। वे सब प्रकार से स्वतंत्र रहती हैं। वहां एक स्त्री के अनेक पति होते हैं—यही उस देश में सब से अधिक विचित्रता है। अन्य देशों में भी कहीं कहीं यह चाल प्रचलित है; परन्तु लद्दाख़ की स्त्रियों ने इस चाल को हद कर डाली है। विवाहयोग्य उम्र के विषय में यहां के और यूरप तथा अमेरिका के विचारों में बहुत बड़ा अन्तर है। पश्चिम में विवाह करना पति और पत्नी की इच्छा पर अवलम्बित है; परन्तु वहां साथ ही इस बात की ओर भी ध्यान दिया जाता है कि, पुरुष अपना स्वतंत्र जीवन निर्वाह करने की योग्यता रखता है या नहीं। यदि उसमें यह योग्यता नहीं पाई जाती तो समाज उसे अविवाहित रहने की सज़ा देती है। पूर्वी देशों की प्रचलित प्रणाली प्रायः इस के विपरीत है। यहां विवाह का काम माता पिता के हाथ में रहता है और विवाह करना हर आदमी का फ़र्ज़ समझा जाता है। यूरप में विवाह उस उम्र में किया जाता है जब पति-पत्नी विवाह के अभीष्ट-साधन के योग्य होते हैं। पर हिन्दुस्तान में उस उम्र में विवाह किया जाता है जब पति-पत्नी प्रायः यह भी नहीं जानते कि विवाह शब्द के माने क्या हैं। आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से चीन, जापान इत्यादि देशों में आज कल बाल्यविवाह की रस्म बंद हो गई है। पर लद्दाख़ में तो पहिले से ही यह रस्म चली आती है कि विवाह तब किया जाय जब स्त्री को पति की आवश्यकता हो। प्रायः अठारह वर्ष की उम्र में स्त्री विवाह करती है। विवाह होते ही स्त्री अपने पति के घर की पूरे तौर पर स्वामिनी हो जाती है। अतएव युवती होने ही पर वहां विवाह हो सकता है। एक बात और भी है। वह यह है कि पति-पत्नी दोनों की उम्र बराबर होनी चाहिए। इस के दो कारण हैं। एक तो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि अठारह वर्ष की उम्र होने के पहले मनुष्य में आदमियत नहीं आती, दूसरा यह कि अपने से कम उम्र की स्त्री से विवाह करने में आगे नाना प्रकार के झंझटों का डर रहता है। लद्दाख़ में विवाह-बन्धन पवित्र नहीं समझा जाता।

इस प्रान्त में विवाह की रस्म बहुत ही सीधी परन्तु विचित्र है। दूल्हा अपनी दुल्हन को लेने के लिए उस के पिता के घर अकेला जाता है। दुल्हन के रिश्तेदार उसके घर के चारों तरफ़ उसकी रक्षा के लिए बैठे रहते हैं। दूल्हे के पहुँचते ही वे उसकी ख़ूब ख़बर लेते हैं। वहां से किसी तरह छुटकारा पाकर वह दूल्हन के घर पहुँचता है। अंदर जाते ही कुपित तरुण स्त्रियों का एक झुंड उसे घेर लेता है। स्त्रियां उसे अश्लील गालियां देती हैं। और छोटी छोटी लकड़ियों से उसे निर्दयता-पूर्वक मारती हैं। दूल्हा उनको कुछ नज़र करके उनसे अपना पीछा छुड़ाता है। इसके बाद भोजन, गाना तथा नाच होता है। परन्तु दुल्हन अब तक छिपी रहती है। संध्या के समय वह बाहर लाई जाती है और दूल्हा उसे अपने घर ले आता है। यही दूल्हा उस स्त्री का प्रधान पति समझा जाता है; परन्तु उसके छोटे भाइयों को भी उस स्त्री के पति बनने का अधिकार रहता है। किस दरजे तक का पतिसम्बन्धी हक़ उन्हें मिलना चाहिए, यह उस स्त्री की ही इच्छा पर अवलम्बित रहता है। इस विषय में सब छोटे भाइयों का अधिकार बराबर रहता है। विवाह के बाद कुछ दिनों तक प्रधान पति ही उस स्त्री का एक मात्र अधिकारी रहता है। जब उस स्त्री का जी प्रधान पति से कुछ हट जाता है, तब, रीति के अनुसार, उसके छोटे भाई के पति बनने का समय आता है। इसी तरह, क्रम क्रम से, सब भाइयों की स्त्री बन कर सब पतियों पर, और घर के सब आदमियों पर, उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है; और वह अपनी बुद्धि के अनुसार सब पर शासन करने लगती है। जब तक एक पति घर पर रहता है तब तक दूसरे पति काम के लिए बाहर चले जाते हैं। परन्तु स्त्री को इस बात का अधिकार रहता है कि, चाहे वह जिस पति को अपनी कृपा का पात्र बनावे। पुरुष की इच्छा कोई चीज़ नहीं समझी जाती। स्त्री की इच्छा पर ही सब बातें अवलम्बित रहती हैं। अच्छे घरों में सिर्फ़ तीन ही भाइयों के बीच एक पत्नी रहती है। बाक़ी भाइयों को अन्यत्र रह कर स्वतंत्र जीवन-निर्वाह करना पड़ता है। साधारण घरानों में जायदाद तथा स्त्री के अधिकारी सब भाई हुआ करते हैं। अतएव लद्दाख़ की स्त्रियां साधारण घराने ही अधिक पसंद करती हैं।

किसी किसी कुटुम्ब में एक ही दो भाई होते हैं। ऐसी दशा में, यदि स्त्री चाहे तो, वह और पति भी कर सकती है। यह अन्य पति भी उस स्त्री तथा उस के घर की सम्पत्ति का समान अधिकारी हो जाता है और उसके पतियों के साथ, भाई के समान, उसी घर में रहने लग जाता है। यदि स्त्री अपने पतियों से ख़ुश न रहे तो उसे अधिकार है कि वह अपने पिता के यहां लौट जाय, और अन्य किसी से विवाह कर ले। इस दशा में जो माल उसके पिता ने अपने दामाद से पाया होता है वह उसे लौटा देना पड़ता है। यदि प्रधान पति की मृत्यु हो जाती है तो स्त्री एक तागे द्वारा उस की लाश से बांधी जाती है। यदि स्त्री उस तागे को तोड़ डाले, तो समझा जाता है कि, वह पुनर्विवाह करना चाहती है। ऐसा करने से स्त्री अपना माल लेकर अपने पिता के घर लौट सकती है और उसका पिता भी दामाद का दिया हुआ धन लौटाने से बच जाता है। यदि स्त्री के सन्तान होती है तो वह नहीं लौटती; क्योंकि, उस हालत में उसके बच्चे ही जायदाद के स्वामी होते हैं। उसके अन्य पतियों का कुछ भी अधिकार जायदाद पर नहीं पहुँचता।

पति-पत्नी-त्याग की प्रथा वहाँ एक साधारण बात है। स्वभाव न मिलने से फ़ौरन त्याग हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। व्यभिचार बुरी दृष्टि से नहीं देखा जाता। जो पुरुष इस तरह का अपराध करता है उसे पांच रुपये समाज को दंड देने पड़ते हैं। स्त्री का कुछ नहीं बिगड़ता। किम्बहुना, व्यभिचारी पुरुष को स्त्री उलटा अपने ही पति का त्याग कर के किसी दूसरे पुरुष से विवाह कर लेती है। इस प्रकार स्त्री को नौ पति तक करने का अधिकार है। इसके बाद उसे वैधव्य काटना पड़ता है।

सन्तान-प्राप्ति ही शादी करने का मुख्य उद्देश्य रहता है; परन्तु बहु-पतित्व की प्रथा, तथा बुरी आबोहवा आदि के कारण यह इच्छा कभी कभी पूर्ण नहीं होती। यदि एक स्त्री के सन्तान नहीं होती तो दूसरी स्त्री लाई जाती है। उससे भी सन्तान न होने पर तीसरी लाई जाती है। यदि उससे भी न हो तो अनधिकारी भाइयों में से एक भाई तीनों स्त्रियों का पति बनाया जाता है। यदि उसके द्वारा भी किसी स्त्री के सन्तान न हुई तो दूसरा, और दूसरे के हतसफल होने पर, तीसरा भाई पति नियत किया जाता है। यदि स्त्रियों के अभाग्य अथवा सौभाग्य से किसी भी स्त्री को सन्तान न हुई तो एक और स्त्री बाहर से लाई जाती है। वह छहों भाइयों की स्त्री होकर रहती है। उसे भी यदि सन्तान न हुई तो फिर एक बाहरी आदमी उसका पति बनाया जाता है। उसके द्वारा भी यदि चारों स्त्रियों में से एक को भी सन्तान न हुई तो प्रधान पति और पत्नी अपने अपने कुटुम्बों में से विवाह योग्य एक लड़का और एक लड़की चुनते हैं। सब भाई इस लड़की के पति, और लड़का सब स्त्रियों का पति, बनता है। इतना प्रयास करने पर भी यदि सन्तान न हो, और कभी कभी ऐसा होता भी है, तो समझा जाता है कि, उस घराने पर ईश्वरी कोप है।

छोटे भाइयों की दशा कुछ दयाजनक होती है। उन्हें बाहर आश्रमों में दरिद्रियों का सा जीवन बिताना पड़ता है। वे वैवाहिक सुख से वंचित रक्खे जाते हैं। उन्हें स्वतंत्रता नहीं मिलती। कभी कभी ऐसा होता है कि, किसी घराने में केवल लड़कियां ही पैदा होती हैं। ऐसी दशा में बड़ी लड़की ही पिता की सब सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है। यदि उसका पिता धनवान हुआ तो लाखों आदमी उसके हाथ के लिए तरसते हैं। परन्तु उस लड़की को विवाह करने की आवश्यकता ही नहीं होती; क्योंकि, बिना विवाह ही के वह विवाहिता का पूर्ण सुख अनुभव करती है। यदि वह चाहे तो अनेक पति कर सकती है, किसी को भी पत्नी नहीं कहा सकती। ज्योंहीं वह तरुण होती है त्योंहीं उसका पिता उसके लिए एक पुरुष चुनता है। इस पुरुष को 'मेक्पो' कहते हैं। इस पद को पाने के लिए बहुत से युवा प्रयत्न करते हैं। स्त्री जिसे चाहती है, चुन लेती है। यदि वह 'मेक्पो' उसे न भाया तो उसे यथेच्छ निकाल देती है। परन्तु इसके बदले में उसे 'मेक्पो' महाशय को एक भेड़ देनी पड़ती है।

सब से बड़ी लड़की को बारह अथवा तेरह वर्ष की ही उम्र में 'मेक्पो' मिल जाता है। परन्तु और लड़कियों को अट्ठारह वर्ष की उम्र तक पति की राह देखनी पड़ती है। 'मेक्पो'-चुनाई के समय एक विचित्र रस्म होती है। लड़की का पिता दूल्हा बनता है, और बेचारे 'मेक्पो' को दूल्हन बनना पड़ता है। फिर ऊपर वर्णन की गई रीति से विवाह होता है। दावतों के बाद 'मेक्पो' अपनी प्रेयसी के मकान पर लाया जाता है और उसके 'चार्ज' में दे दिया जाता है। उस दिन से वह उसका पति समझा जाता है। कुछ दिनों तक खूब आनंद मनाया जाता है। युवा 'मेक्पो' नाना प्रकार के सुख भोगता है। वह अपनी प्रेयसी के प्रेम, सम्पत्ति और सम्मान का भाजन बनता है। परन्तु इतना होने पर भी उस बेचारे की दशा केवल भेड़ के समान होती है। उसने कुछ भी भूल की कि वह फ़ौरन घर से निकाला गया। उसके जाते ही एक दरजन 'मेक्पो'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्री की प्रेम-भिक्षा मांगने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस डर से पहला 'मेक्पो' प्रथम से ही अपनी प्रेयसी को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता रहता है। यदि इसमें वह सफल हो गया तो उस की सन्तान उस स्त्री की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है और स्वयं उसकी भी बड़ी इज्ज़त होती है। एक युवती के अनेक 'मेक्पो' हो सकते हैं। पर एक साथ दो नहीं हो सकते।

यदि किसी घराने में एक ही लड़का हो और उसका कोई वारिस न हो तो एक प्रौढ़ा स्त्री उस बालक के गले बांधी जाती है। लड़के की बाल्यावस्था में वह दाई का काम देती है और युवावस्था में वही उसकी जोरू हो जाती है। परन्तु यदि वह लड़का चाहे तो उसे दूर कर के अपने योग्य किसी दूसरी स्त्री को भी अपनी पत्नी बना सकता है।

लद्दाख़ में प्रायः देखा जाता है कि, युवा मनुष्य कम मरते हैं। दुर्बल बच्चों और बूढ़ों की ही अकसर मृत्यु होती है। इनके लिए लोग कमरंज करते हैं।

लद्दाख़ में शीत अधिक रहता है। ज़मीन भी वहां की पथरीली है। इससे खेती कम होती है। लद्दाखी प्रायः सुस्त और आरामतलब होते हैं। यदि ग्रीष्म ऋतु में कोई मर जाय तो तीसरे दिन उसकी मृतक-क्रिया होती है। लद्दाखी अपने मुर्दों को अकसर जलाते हैं। यदि शीत-काल में कोई मरता है तो उसके रिश्तेदार और कुटुम्बी १५ दिनों तक उसकी लाश के पास रोते और दावतें करते रहते हैं। मृत्यु के बाद शीघ्र ही पुरोहित बुलाया जाता है। पुरोहित, एक हाथ में पुस्तक लेकर, कुछ पढ़ता जाता है और दूसरे हाथ से लाश के बाल पकड़ कर खींचता रहता है। आध घंटे तक यह संस्कार होता है। पढ़ना ख़तम होने पर यदि लाश की नाक में लोहू आजाय तो समझा जाता है कि, जिसकी वह लाश है, उसको निर्वाण हो चुका। ख़ून देखते ही लोग आनंद मनाने लगते हैं। यदि ख़ून न आवे तो समझा जाता है कि मृतक की आत्मा-वायु मंडल में भटकती हुई कहीं जन्म-धारण करने का यत्न कर रही है। तब लामाओं को धन देकर उसका भटकना बंद कराने के लिए प्रार्थना कराई जाती है। इसके बाद लोग आकर लाश को बिठा देते हैं और उसके हाथ, पैर, कमर इत्यादि रस्सियों से मज़बूती के साथ बाँध देते हैं। यदि लाश कड़ी हो गई हो तो हड्डियों के टुकड़े टुकड़े कर डाले जाते हैं। तदनंतर लाश कपड़े में लपेट कर एक कमरे में रख दी जाती है। लामाओं के सिवा और कोई आदमी उस कमरे में नहीं जाने पाता। ये लोग रात दिन पहरा देते हैं, प्रार्थना करते हैं, दीपक प्रज्वलित रखते हैं और लाश को भोग लगाते रहते हैं। किसी अच्छे दिन लाश को जनाज़े में रख कर सब लोग श्मशान पर ले जाते हैं। वहां पर वे लाश को धीरे धीरे भूनते हैं। जब एक हड्डी उस में से गिर जाती है तब उसे अलग निकाल कर बाक़ी लाश को जला देते हैं। हड्डी लामाओं को दे दी जाती है। उसके चूर्ण को मिट्टी में मिला कर उसकी एक चपाती सी बनाई जाती है। फिर उसकी एक छोटी सी मूर्ति बनाते हैं और उसे दफ़न करते हैं। इसके बाद दावतें वग़ैरह होकर मृतक-संस्कार का अन्त कर दिया जाता है।

लद्दाख़ में लामाओं के आश्रम दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के आश्रमों में लामाओं को विवाह करने तथा बाल-बच्चों सहित रहने का अधिकार है। दूसरे प्रकार के आश्रमों में कठिन ब्रह्मचर्य्य पालन करना पड़ता है। यदि कोई लामा किसी स्त्री को देख ले, अथवा उसके हाथ का भोजन खा ले, तो वह फ़ौरन आश्रम से निकाल दिया जाता है। इन आश्रमों को "गोम्पा" कहते हैं। लामा लोग कर इकट्ठा करते हैं और उसे अपने आश्रमों की तरक्की में ख़र्च करते हैं।

लद्दाख़ में स्त्रियां भी लामा होती हैं। हमें इन्हें लामियां कहना चाहिए। वहां इनका सत्कार कम होता है। जब और कुछ उद्योग नहीं रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब स्त्रियां लामा बन जाती हैं। ग्रीष्म में वे अपने कुटुम्बों के साथ रहती हैं, और गोम्पा के खेतों में काम करती हैं। शीत-काल में, जब घरों में आनंद और क्रीड़ा का समय आता है, उन्हें आश्रमों को लौट जाना पड़ता है। इनके आचरण अच्छे नहीं होते।

लद्दाख़ के निवासी सीधे सादे और दयालु होते हैं। शरीर उनका दृढ़ होता है। वे शान्तिप्रिय होते हैं। आपस में वे कभी नहीं लड़ते। वहां पर न तो पुलीस की आवश्यकता है, न न्यायालयों की। खाने को रोटी और पहनने को कपड़ा वहां पर सब के लिए काफ़ी है। इससे अधिक पाने की वहां किसी को इच्छा भी नहीं होती। चोर, डाकू और लुटेरों का वहां नाम तक नहीं है। चाहे तुम्हारा रुपया पैसा रात दिन रास्ते पर पड़ा रहे, कोई उसे हाथ न लगावेगा। यदि किसी को धन मिल जाता है तो वह उसे अपने पड़ोसियों के खिलाने पिलाने में ख़र्च कर देता है। सहनशीलता लद्दाखियों का प्रधान गुण है। यदि किसी के सिर में चपत लगा दिया जाय तो वह हँसने लगता है। अधिक परिश्रम की शिकायत वे कभी नहीं करते। बर्फ़ के तूफानों में वे बड़े धैर्य्य से काम करते रहते हैं। रात को शराब के नशे में पड़ा रहना उन्हें बहुत पसन्द है। 'छंग' नाम की शराब वे बहुत पीते हैं। इससे बहुत कम नशा होता है।

लद्दाखी बड़े बातूनी होते हैं। घर में वे सदा बातें करते रहते हैं। परन्तु स्त्रियों के सम्मुख वे ऐसा नहीं करते। क्योंकि, इस स्त्री-स्वर्ग में स्त्रियों के सम्मुख अधिक बोलने का पुरुषों को अधिकार ही नहीं है।

माणिक्यचंद्र जैन।

प्रियंवदा।

१—यह है कौन नवोना नारी ?
इसकी छवि लोचन-सुखकारी।
सुधि, बुधि, इसको देख, हमारी
जाने को करती तैयारी।

२—मनोमत्तमातङ्ग हमारा
विवश, विकल, विह्वल, बेचारा
हृदयस्थल छोड़े जाता है ;
जाकर फिर थोड़े आता है ?

३—व्यर्थ क्लेश क्यों इतना सहता ?
हिमकर कर से छूना चहता।
अरे ! लौट, क्यों शामत आई !
लांछन की सुध कर ले भाई।

४—बन पहले फ़ारस का वासी ;
आग पूजने का अभ्यासी।
युग अनेक तू वहीं बितावे ;
फिर यदि भारत को भग आवे।

५—तो सम्भव है इसका पाना ;
व्यर्थ अन्यथा दुःख उठाना।
मन्मथ का मत बने निशाना ;
"हित-अनहित पशु-पक्षिहु जाना"।

६—यह है प्रियंवदा पति-प्यारी,
कुलकामिनी पारसी-नारी।
इसकी रुचिर रेशमी सारी
तन की द्युति दूनी विस्तारी।

७—नित सरितापति-तट को जाती ;
नित आमोद प्रमोद मचाती।
नित यह गीत मनोहर गाती ;
कलकण्ठों को ख़ूब लजाती।

८—मधुर "पियानो" नित्य बजाती ;
जौहर नये नये दिखलाती।
"गौहर" का ग़ुरूर गिर जावे ;
यदि इसका गाना सुन पावे॥

९—परदे का कुछ काम नहीं है ;
कहीं सकुच का नाम नहीं है।
चम्पकवर्णी, श्याम नहीं है ;
इसमें ज़रा कलाम नहीं है॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०—सीखा चित्र बनाना इसने;
कर के कौशल नाना इसने।
पढ़ना और पढ़ाना इसने;
पति का चित्त चुराना इसने॥
११—पुरुषों में भी जाना इसने;
मन्द मन्द मुसकाना इसने।
सुधा-सलिल बरसाना इसने;
ज़रा नहीं शरमाना इसने॥
१२—इसके कुण्डल श्रुति-सुखकारी;
देख अनस्थिरता-रत भारी।
चित्त हुआ उनका अनुयायी;
चञ्चलता की पदवी पाई॥
१३—कच-कलाप बिखराये कैसे?
सम्मुख सुघर बनाये कैसे?
दर्शक-दृग यदि उन पर जाते;
फिर वे नहीं लौटने पाते॥
१४—सरस्वती से जो वर पावे;
इस पर कविता वही बनावे।
इससे श्रम क्यों वृथा उठावें?
क्यों न यहीं अब हम रुक जावें?
१५—अङ्ग अङ्ग सुन्दरताशाली;
सूरत क्या ही भोली भाली।
नहीं और इसकी हमजोली;
रूप-राशि की हद [illegible] हो ली॥
१६—जिसने इसका चित्र बनाया;
मनोमुग्धकर भाव दिखाया।
नृप-रविवर्म्मा सब के प्यारे;
हाय हाय! सो स्वर्ग सिधारे॥

श्रीयुक्त दादाभाई नौरोजी।

ऐसा कौन शिक्षित भारतवासी है जो इस राजनैतिक ऋषि के पवित्र नाम से परिचित न हो? आपके प्रशंसनीय गुणों ने आपको भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रसिद्ध कर दिया है। आपके विमल-यश की पताका देश भर में चारों ओर फहरा रही है। भारतवर्ष पर जो जो उपकार आपने किये हैं, उनके लिए भारतवासी आपके बड़े कृतज्ञ हैं। भारतीय शिक्षित-समाज की आप पर अटल भक्ति है। इसका परिचय तो इसीसे मिल सकता है कि प्रतिवर्ष आपकी वर्षगांठ के दिन, भारत के बड़े बड़े नगरों में, बड़े समारोह से, आनन्दोत्सव मनाये जाते हैं। आप तीसरी बार कलकत्ता कांग्रेस के सभापति बनाये गये हैं। अतः इसी आनन्द के उपलक्ष्य में हम आपका सचित्र संक्षिप्त चरित "सरस्वती" के प्रेमी पाठकों को भेंट करते हैं।

दादाभाई नौरोजी का जन्म १८२५ ई० में, बम्बई नगर में, हुआ था। आपके पूर्वज ६०० वर्षों से पुरोहिती का काम करते चले आये थे। परन्तु आपने उस को छोड़कर नवीन-पथ का अवलम्बन किया। जिस समय आपकी अवस्था केवल चार वर्ष की थी, आप के पूज्य पिता जी का स्वर्गवास हो गया। सौभाग्य से आपकी माता बड़ी योग्य तथा बुद्धिमती थीं। उन्होंने आपको एलफिंस्टन इंस्टीट्यूशन (Elphinstone Institution) में उच्च से उच्च शिक्षा दिलाई। किसीने सत्य कहा है कि, "होनहार बिरवान के होत चीकने पात"। वही बात दादा भाई में भी पाई गई। बालकपन ही से उनकी परिश्रमशीलता तथा योग्यता की चर्चा चारों ओर फैल गई। स्थान स्थान पर आपकी कुशाग्र-बुद्धि तथा विद्वत्ता की प्रशंसा सुनाई देने लगी। एक बार एक यूरोपियन लेडी महाशया कालेज देखने पधारीं; और, विद्यार्थियों से, जिनमें आप भी सम्मिलित थे, परीक्षा के तौर पर कुछ प्रश्न किये। वे आपको ग्रहणशक्ति, विलक्षण बुद्धि तथा समय-सूचकता देख कर चकित और प्रसन्न हुईं। उन्होंने स्वरचित "वेस्टर्न इंडिया" (Western India) नामक ग्रंथ में आपकी प्रतिभा तथा योग्यता का विशेषता से वर्णन किया है। उन्होंने आपके विषय में यह भविष्यद्वाणी कही थी कि, "यह बालक लाखों में एक होगा"। वास्तव में उनका कथन सर्वथा सत्य सिद्ध हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीसही वर्ष की अवस्था में इनकी कालेज की शिक्षा समाप्त हुई। इस समय आपकी विद्वत्ता, बहुज्ञता तथा गम्भीरता ऐसी विख्यात हो रही थी कि सर एर्सकिन पेरी साहब ने, जो उस समय बम्बई हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस थे, आप को बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत भेजने का प्रस्ताव किया; और इसके लिए आधा व्यय देने की प्रतिज्ञा भी की। शेष आधे व्यय का प्रबन्ध कर देने के लिए बम्बई के धनवानों से कहा गया; परन्तु उन लोगों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया। अब दादाभाई को जीविका ढूंढ़ने की चिंता हुई। कुछ ही महीनों के अनन्तर आप उसी स्कूल में, जिसमें आपने प्रारम्भिक शिक्षा पाई थी, हेड-एसिस्टेन्ट मास्टर नियत हुए। इस समय आप को गणित-शास्त्र बड़ा प्रिय था। उसमें आप ऐसे प्रवीण थे कि वार्षिक पारितोषिक वितरण करते समय स्कूल के प्रधानाध्यापक महाशय ने आपकी बड़ी प्रशंसा की और आपकी असाधारण योग्यता के उपलक्ष्य में आप को एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया। १८५४ ई० में आपकी पदोन्नति हुई; और आप कालेज के गणित और भौतिकशास्त्र के अध्यापक नियत हुये। यह पद उस समय तक किसी अन्य भारतवासी को न मिला था। आप ने इस प्रतिष्ठित पद के कर्त्तव्यों को बड़ी ही योग्यता से सम्पादन किया।

आपने दस वर्ष तक कालेज की अध्यापकी की। इस बीच में आपने देशहित के भी बहुत से काम किये। आप के ही उद्योग से बम्बई में पहली कन्या-पाठशाला स्थापित हुई। इन्हीं दिनों में आप बम्बई-विद्यावर्धिनी सभा के कई वर्ष तक सभापति रहे। इस समय आपने बहुत सी सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा, तथा साहित्य-सम्बन्धी सभायें स्थापित कीं। यहां तक कि बम्बई की लिटरेरी तथा साइंटिफिक सोसाइटी, बम्बई एसोसियेशन, फ़ामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट, ईरानी फंड, पारसी जिमनेज़ियम, तथा विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट अजायब घर स्थापित करने का सौभाग्य भी आपही को प्राप्त है। १८५१ ई० में आप ने गुजराती भाषा में "रास्तगुफ़्तार" नामक साप्ताहिक समाचार-पत्र निकाला। इसमें शिक्षा-सम्बन्धी धार्मिक तथा सामाजिक सुधार विषयक लेख रहा करते थे। दो वर्ष तक आपने बड़ी योग्यता से इसका सम्पादन किया। सारांश यह कि देशी समाचार-पत्रों, स्त्रीशिक्षा तथा सामाजिकसुधार की जो उन्नति बम्बई में देखी जाती है, उनका अङ्कुर आप ही के उद्योग से उद्गत हुआ था।

१८५५ ई० में आप मेसर्ज़ कामा एन्ड को के एजन्ट होकर इँगलैंड गये। यद्यपि आप व्यापार-सम्बन्धी कामों से अनभिज्ञ थे; परन्तु आपकी बहुज्ञता तथा सत्यनिष्ठा का विश्वास ऐसा बढ़ा हुआ था कि उक्त व्यापारियों ने आपको अपना साझी बना लिया। वहां भी आपने देशसेवा से मुँह न मोड़ा। भारत की दुर्दशा अँगरेज़ों को जताने और उसके दूर कराने का प्रयत्न करने के लिए आपने एक "लंडन-इंडियन-एसोसियेशन" नामक सभा स्थापित की। १८६७ ई० में इस सभा के उद्देश्यों को बढ़ा कर इसका नाम "ईस्ट इंडियन एसोसिएशन" रक्खा गया; जिसमें भारत के पेंशनप्राप्त अँगरेज़ भी सम्मिलित किये गये। जो लाभ देश को इन सभाओं से हुए हैं, सबको विदित हैं। अपने व्यापार तथा देश-सेवा-सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त आप यूनिवर्सिटी कालेज में गुजराती-भाषा की प्रोफ़ेसरी भी करते थे। कई वर्षों तक आप सिनेट (Senate) के मेम्बर तथा एक बीमा-कम्पनी के डाइरेक्टर भी रहे। वहां आप बारह वर्ष तक रहे। इतने दिनों में आपके शुद्ध तथा सरल व्यवहार और सत्यशीलत्व का सिक्का जम गया। दुर्भाग्य से इन्हीं दिनों में आपको तीन लाख रुपये की हानि उठानी पड़ी। परन्तु मित्रों को ऋणस्वरूप आर्थिक सहायता, तथा निजपरिश्रम, से आपने इस इतनी बड़ी क्षति की पूर्ति बहुत जल्द करदी।

सन् १८६९ ई० में आपके स्वदेश लौटने पर आपका स्वागत बड़ी धूमधाम से किया गया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको आर्थिक सहायता भी दी गई, जिसे आपने धन्यवादपूर्वक स्वीकार करके देशोपकारक कामों में दान कर दिया।

१८७३ ई० में आप दूसरी बार विलायत पधारे। वहां पर आप फास्ट कमेटी में, जो भारत की आर्थिक-दशा की जांच के लिये नियत हुई थी, अपनी सम्मति देने के लिये निमंत्रित किये गये। आप की सूक्ष्मदर्शिता तथा अनुभवशीलता पर फास्ट साहब भी मोहित हो गये; और आपके मधुरभाषण तथा वर्णन-शैली की बड़ी प्रशंसा की। इसी समय में आपने इस देश की दरिद्रता-विषयक अपनी प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशित की। इस में आपने, सरकारी रिपोर्टों के आधार पर अकाट्य युक्तियों से यह सिद्ध किया है कि भारत-वर्ष में दरिद्रता दिन दूनी रात चौगनी बढ़ती जाती है। यद्यपि इँगलैंड के राजनीतिज्ञ मुखियाओं ने इसका विरोध कर अपनी हृदय की सङ्कीर्णता का परिचय दिया; परन्तु कुछ न्याय-प्रिय, उदार-चेता, प्रतिष्ठित पदाधिकारियों ने आपकी सम्मति का समर्थन भी किया।

एक ही वर्ष के पीछे आप बरौदा राज्य के दीवान नियत हुए। उस समय महाराज की अदूरदर्शिता, रेज़ीडेन्ट के अनुचित हस्तक्षेप तथा कर्मचारियों की स्वार्थपरता से राज्य की दशा बड़ी शोचनीय हो गई थी। आप के नियत होते ही बड़ी हल चल मच गई; और आप की शिकायतों के तार बँध गये। परन्तु आपने अपनी प्रबंध-दक्षता तथा कार्य्यकुशलता से सब गड़बड़ अति-शीघ्र शान्त कर दिया। धीरे धीरे आपकी प्रतिष्ठा इतनी बढ़ी कि लार्ड नार्थब्रुक ने, आपको उपस्थिति में, रेज़ीडेन्ट रखने की भी आवश्यकता न समझी; और आप ही को सब स्याही सुफ़ेदी का अधिकार दे दिया। परन्तु कुछ दिनों के बाद आप को कारण वश पदत्याग करना पड़ा।

बरौदा से लौट कर आप दो वर्ष तक बम्बई कारपोरेशन के मेम्बर रहे। इस समय आप ने कारपोरेशन के हिसाब में एक ऐसी ग़लती पकड़ी जिससे उसको ९० लाख रुपये की हानि होती थी। अगस्त १८८५ ई० में लार्ड रे ने आप को अपनी कौंसिल का मेम्बर नियत किया। इस अवसर पर सारे भारतवर्ष में आनन्द मनाया गया। यही वर्ष कांग्रेस के जन्म का था। इसमें भी आपने बहुत कुछ स्वार्थ लिया।

शुरू १८८६ ई० में आपने फिर इँगलैंड-यात्रा की। वहां आपने पारलियामेंट की मेम्बरी के लिए बहुत उद्योग किया; परन्तु सफलता न हुई। एक दफ़े की बात है कि लार्ड सालिसबरी ने आपको कुछ अपमानसूचक ढंग पर "काला आदमी" कहा! यह बात न्याय-प्रिय अंगरेज़ों को भी बुरी मालूम हुई। भारत के समाचार-पत्रों ने बड़ी धूम मचाई। यहां तक कि मिस्टर ग्लैडस्टन ने लार्ड सालिसबरी को इस असभ्यता की बड़ी निन्दा की और कहा कि यह बात सर्वथा असत्य है। क्योंकि दादा भाई का चेहरा लार्ड सालिसबरी से अधिक स्वच्छ और गोरा है। निदान लार्ड सालिसबरी को दादा भाई नौरोजी से इस असभ्यता के लिये क्षमा मांगनी पड़ी।

दिसम्बर १८८६ ई० में आप भारत को लौटे और कलकत्ता कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन के सभापति नियत हुए। १८८७ ई० में बम्बई सर्विस कमीशन (Bombay service Commission) में अपनी सम्मति देकर आप पुनः पारलियामेंट की मेम्बरी की इच्छा से इँगलैंड पधारे। गतबार की असफलता से हतोत्साह न होकर इस दफ़े आपने और भी अधिक उद्योग किया। फल यह हुआ कि आप "हाउस आफ़ कामन्स" के मेम्बर चुन लिये गये। पारलियामेंट की मेम्बरी के समय में आपने भारत की भलाई का उद्योग करने में कोई कसर बाक़ी न रक्खी। भारत में सिविल सरविस परीक्षा (Civil Service Examination) होने का प्रस्ताव कई बार उपस्थित कराया। सर विलियम वेडर्बर्न तथा मिस्टर केन की सहायता से आपने "इंडियन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्लियामेंटरी कमिटी" स्थापित की। यह आपही के उद्योग का फल था कि भारतवर्ष के राजकीय व्यय की जांच के लिये १८९५ ई० में रायल कमिशन (Royal Commission) नियत हुआ। आप पहिले भारतवासी थे जिनको इस कमिशन की मेम्बरी की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इस कमीशन में आप ने जो बातें कहीं उनके पढ़ने से ज्ञात होता है कि भारत की आर्थिक बातों का आपको कैसा अनुभव है; विदेशी भाषा में अपना भाव प्रकट करने की कितनी दक्षता है; और आपका स्वदेश-प्रेम कैसा अलौकिक है। दिसम्बर १८९४ ई० में आप लाहौर की नवीं कांग्रेस के सभापति-पद को सुशोभित करने के लिये निमंत्रित किये गये। मार्ग में जहां आप ठहरे वहीं आप का स्वागत राजसी ठाठ से हुआ। लाहौर में तो लोगों का उत्साह ऐसा उमड़ रहा था कि लोग आप की गाड़ी स्वयं अपने हाथों से खींच कर डेरे तक ले गये। इस अवसर पर सर विलियम हंटर ने टाइम्स-पत्र में आप के अनुकरणीय गुणों तथा असाधारण योग्यता की बड़ी ही प्रशंसा की। शोक है कि ऐसे आनन्द के समय में आप के इकलौते पुत्र का देहान्त हो गया। यह युवक बड़ा होनहार था और डाकूरी में अच्छा नाम कर चला था। नवयुवक पुत्र के वियोग का शोक कुछ ऐसा वैसा नहीं होता। परन्तु धन्य है आप की सहन-शीलता और साहस को कि दारुण दुःख होने पर भी आप उसी मुस्तैदी से देश-सेवा करते रहे!

१८९५ ई० में आप पार्लियामेंट की मेम्बरी से पृथक् हुए। १८९९ ई० में आपने फाउलर करन्सी कमिटी में जो दो लेख उपस्थित किये थे वे भारत के अर्थशास्त्र में अमूल्यरत्न समझे जाते हैं। १९०१ ई० में आपने अपने कुल लेखों तथा व्याख्यानों का संग्रह करके सब को पुस्तकाकार प्रकाशित किया। इसकी प्रशंसा बड़े बड़े विद्वानों ने की है।

अगस्त १९०४ में अम्सटर्डम में जो देश-विदेश के विद्वानों की सभा हुई थी, उसमें आप भी निमंत्रित किये गये। आपके सभा-मण्डप में पहुँचते ही आप के ऋषि-तुल्य तेजस्वी रूप को देख कर सब सभास्थित सज्जन उठ खड़े हुए। वहां जो वक्तृता आपने दी थी उसकी प्रशंसा सारे संसार के प्रतिष्ठित-पत्रों ने की है। स्वयं सभापति महोदय ने भी आपकी स्तुति की थी।

आप इँगलैंड में निवास करते हैं। वहीं आप तन, मन, धन से स्वदेश-सेवामें लीन होकर, तीस कोटि भारतवासियों का आशीर्वाद ग्रहण करते हुए, अक्षय्य पुण्य का लाभ कर रहे हैं। उतनी दूर से आप इस महीने कलकत्ते में होने वाली कांग्रेस के सभापति होने आ रहे हैं।

उदयनारायण वाजपेयी।

जीवन-बीमा।

हमारे अधिकांश पाठक जीवन-बीमा (Life Insurance) का हाल अवश्य ही जानते होंगे। पर कदाचित् उनमें से कुछ महाशय उससे विशेष परिचय न रखते हों। अतः हम पहले इसका संक्षिप्त विवरण देकर तब इसके हानि-लाभों की विवेचना करेंगे।

ऐसी अनेक कम्पनियाँ होती हैं जो लोगों के जीवन का बीमा, अर्थात् ठेका सा, लिए रहती हैं, जिसका तात्पर्य्य यह है कि यदि उनमें से कोई मनुष्य बीमा की मीयाद के अन्दर मर जाय, अथवा मीयाद के दिन पार कर जाय, तो कम्पनी उसे, अथवा उसके वारिसों को, या जिसे वह कह दे उसको, निश्चित-धन देती है। इस बीमा, या ज़िम्मेदारी, के परिवर्तन में कम्पनी उन लोगों से कुछ निश्चित सामयिक चन्दा लेती है। इन्हीं कम्पनियों को जीवन-बीमा-समिति (Life Insurance Company) कहते हैं। बीमों के नियम भिन्न भिन्न हुआ करते हैं; पर विशेष करके दो प्रकार के बीमे देखने में आते हैं। एक वे जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बीमा किये गये मनुष्य की मृत्यु हो पर कम्पनी धन देती है, दूसरे वे जिनमें किसी निश्चित उम्र तक (अधिकतर ५०, ५५, अथवा ६० वर्ष की उम्र तक) जीवित रहने से स्वयं बीमा किये गये मनुष्य; अथवा उसके पहले ही मृत हो जाने से उसके उत्तराधिकारी, को कम्पनी नियत धन अदा करती है। पर पहली सूरत में उस मनुष्य को अपने जीवन-पर्यन्त, और दूसरी दशा में निश्चित उम्र तक, अथवा उसके पूर्वही, मर जाने से, मरने के समय तक, अपना निश्चित सामयिक चन्दा अदा करते रहना चाहिए। नियत समय पर चन्दा न पहुँचाने से बीमा, नियमानुसार, टूट जा सकता है; और जो रुपया उस समय तक अदा किया गया हो उससे या तो उस मनुष्य को एक दम हाथ धोना पड़ता है, या नियमानुसार जैसा उचित हो, किया जाता है। इनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के बीमे होते हैं; पर यहाँ हम इन्हीं बीमों पर अपने विचार प्रकट करेंगे। उचित फेर फार करने से ये सभी अन्य बीमों पर भी प्रायः घटित हो जायँगे।

प्रायः देखा गया है कि ५००० रुपये का बीमा कराने वालों को निम्न लिखित हिसाब के लगभग मासिक चन्दा देना पड़ता है—

(क) यदि ५५ साल की उम्र पर, अथवा उसके पहले मृत्यु हो जाने से तत्काल, कम्पनी को रुपया अदा करना पड़े—

यदि आगामी जन्म-दिन पर २५ साल पूरे हों तो १५ से १७ रुपये मासिक
" " ३० " " १८ से १९ "
" " ३५ " " २२ से २३॥ "
" " ४० " " २९॥ से ३१ "
" " ४५ " " ४५ से ४६॥ "

(ख) यदि मरने ही पर बीमे का रुपया मिलना हो—

यदि आगामी जन्म-दिन पर २५ साल पूरे हों तो ११ से लेकर १२ रुपये मासिक
" " ३० " " १२॥ से १३ "
" " ३५ " " १३॥ से १४॥ "
" " ४० " " १५॥ से १६॥ "
" " ४५ " " १८ से १९ "

इस हिसाब से स्पष्ट है कि जितनी ही कम उम्र में बीमा कराया जाय उतना ही कम मासिक, अथवा अन्य सामयिक, चन्दा देना पड़े। क्योंकि सम्भावना यही है कि वह मनुष्य उतना ही अधिक दिन तक जीता रहेगा और कम्पनी को उतनी ही अधिक क़िस्तें अदा करेगा। केवल मृत्यु पर हिसाब बन्द करने वाले की अपेक्षा ५५ साल पूरे होने, या उसके पहले ही मृत्यु हो जाने से तत्काल, बीमे का रुपया लेने वाले की सामयिक क़िस्त का रुपया अधिक होना ही चाहिए; क्योंकि ५५ साल के बाद वह अवश्य ही चन्दा देना बन्द कर देगा। परन्तु पहले प्रकार के बीमे वाला आदमी, सम्भव है, ७०—८० अथवा ९० साल तक चन्दा देता ही चला जाय। ऊपर दिये हुए हिसाब से पाठक यह भी स्वयं विचार सकते हैं कि १००० रुपये से लेकर १०-१५ हज़ार तक का बीमा कराने में सामयिक चन्दा प्रायः कितना देना पड़ेगा। इस लिए अधिक ब्यौरा देने की यहाँ आवश्यकता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमे से लाभ।

(१) सब से बड़ा, और प्रायः एक मात्र वास्तविक, लाभ यह है कि जो लोग नौकरी पेशा हैं, और घर के मालदार नहीं हैं, एवं थोड़ी तनख़्वाह होने, अथवा किसी अन्य कारण, से अपने परिवार के लिए कोई ऐसा प्रबंध नहीं कर सकते, जिससे उनकी अकाल-मृत्यु कम उम्र में हो जाने पर भी, उनके कुटुम्ब को कष्ट न भोगना पड़े, वे लोग २-३ हज़ार का जीवन-बीमा करा के इसका प्रबन्ध कर सकते हैं। दस बीस रुपये से लेकर प्रायः १००-१२५ रुपये मासिक तक की आमदनी वाले, इस प्रकार के लोगों, को जीवन-बीमा करा लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। न जाने कब प्राण निकल जाँय और बिना बीमा के सम्भव है कि स्त्री, लड़के टके टके को इधर उधर भटकते फिरें। बीमा करा लेने से लड़के वालों की बहुत कम चिन्ता रह जाती है, जिससे चित्त को बहुत कुछ शांति प्राप्त हो जाती है। थोड़ी आमदनी वालों को कोई अच्छी रक़म जमा कर लेना बहुत ही कठिन है।

(२) प्रायः देखा गया है कि कम आमदनी वाले लोग कुछ भी बचा रखने में असमर्थ से पाये जाते हैं। इधर आया, उधर उड़ा। बस उनका रुपया यों हो उठ जाता है और बचत खाता प्रायः कोरा ही रहता है। अथवा यदि थोड़ा बहुत जमा भी हुआ तो लड़के लड़कियों के काम-काजों में लग जाता है। जीवन-बीमा करा लेने से ऐसे लोगों को विवश होकर बचत करनी ही पड़ती है। और उससे उन्हें कुछ असुविधा भी नहीं होती। क्योंकि वास्तविक आमदनी में से बीमे के मासिक चन्दे को घटा कर शेष भाग को ही वे लोग मानो अपनी आमदनी समझते हैं। इन्कम-टैक्स की भाँति वह चन्दा भी आमदनी-खाते में मानो जोड़ा ही नहीं जाता। यदि कहिए कि बिना ऐसे बंधन के ही कोई स्थिर रक़म प्रति मास बचत में डाल दो। तो यह बात करना उन लोगों से दृढ़ता के साथ नहीं बन पड़ता। उसमें समय समय पर अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। पर बीमा करा लेने से विवश होकर एक स्थिर रक़म की बचत का द्वार खुल जाता है और वह कुछ अखरता भी नहीं।

(३) आफ़त विपत में बीमे की "पालिसी" काम भी आ सकती है। क्योंकि उसके आधार पर आप को वाजिब सूद पर ऋण मिल सकता है, जो उसके बिना कदाचित् मिल ही न सकता, चाहे इज्ज़त ही क्यों न मिट्टी में मिल जाती।

(४) अपने पास, अथवा बैंक इत्यादि में, जमा किया हुआ धन थोड़ी सी भी आवश्यकता उपस्थित होने पर उठ जाता है। पर बीमे में लगा हुआ रुपया एक दम ख़र्च हो जाना कठिन है।

(५) अकाल-मृत्यु हो जाने पर बीमे से अच्छा लाभ हो जाना भी सम्भव है। यद्यपि ऐसा लाभ उठाना कदाचित् कोई भी पसन्द न करेगा; तथापि होनहार हो जाने पर, एक अच्छी रक़म हाथ लग जाने से लड़के-बालों के थोड़े बहुत आँसू पुँछही जाते होंगे। इस प्रकार के लाभ के लिए बीमा किया गया मनुष्य जितना ही जल्द मर जाय उतना ही अधिक लाभ होता है।

(६) अधिकांश सरकारी नौकरों और अन्य प्रकार के लोगों को पेन्शन इत्यादि के कारण स्वयं अपनी विशेष चिन्ता नहीं करनी पड़ती। पर जिन लोगों को ऐसा अवलम्ब न हो, उन्हें अपने ही बुढ़ापे के विचार से, ५५ या ६० साल की उम्र वाला बीमा करा लेना उचित कहा जा सकता है। निदान ऐसे ही अनेक लाभ इससे अवश्य होते हैं।

बीमे से हानियाँ।

यों तो हानियाँ भी बहुतेरी सम्भव हैं; पर हम यहाँ पर केवल एक प्रकार की हानि का उल्लेख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर देना बस समझते हैं। क्योंकि एक तो वास्तविक हानि केवल इसी को कह सकते हैं, दूसरे एक मात्र यह हानि; अनेक मनुष्यों के लिए, सभी लाभों को पीछे फेंक देती है। वह हानि यह है कि बीमा कराने वालों को विशेष सम्भावना आर्थिक हानि ही की होती है, लाभ की नहीं। प्रायः २५-३० वर्ष के ही मनुष्य जीवन-बीमा कराते हैं (उसके पहले, बीमे की बात ही कहाँ?) और बीमा करने के पहले कम्पनियाँ उस मनुष्य की भली भाँति डाक्टरी परीक्षा करा ही लेती हैं। इसके सिवा बीमा वही कराता है जो खाने पीने से सुखी होता है। अतः इस अवस्था के तन्दुरुस्त आदमियों में से हज़ार में ५०-६० चाहे भले ही शीघ्र मर जायँ; पर अधिकांश, कम से कम, ६०-६५ साल की उम्र तक अवश्य ही जीवित रहेंगे, और सम्भव है, कि १००-१५० आदमी ७० और ८० वर्ष तक भी पहुँच जायँ। क्योंकि खूब तन-दुरुस्त आदमी २०-२५ साल की उम्र हो जाने पर शीघ्र नहीं मरते। हैज़ा, प्लेग, बुख़ार, इत्यादि सभी बलाएँ, सर्वसाधारण मनुष्यों में से, जिनमें नवजात बच्चों से लेकर १०० वर्ष के बुड्ढे तक शामिल हैं, प्रति हज़ार केवल ३५ से लेकर कुछ कम ४५* तक ही मनुष्यों को, वर्ष भर में, काल-कवलित कराने में समर्थ होती हैं। पर यदि २५ से ६० वर्ष वालों की मृत्यु का लेखा अलग लगाया जाय और उसमें केवल वही लोग जोड़े जायँ जो जीवन-बीमा कराने का सामर्थ्य रखते हों (क्योंकि सैकड़े पीछे केवल १० ही १५ मनुष्य ऐसे निकलेंगे, और, शेष, थोड़ी हैसियत रखने अथवा बुरे स्वास्थ्य के कारण गणना के बाहर हो रह जायँगे) तो हज़ार पीछे, साल भर में, मृत्यु-संख्या कदाचित् ३-४ मनुष्यों से अधिक न निकलेगी। अतः यह स्पष्ट है कि बीमा किये हुए मनुष्यों में से हज़ार पीछे ३, ४, या ५ से अधिक मनुष्य प्रति वर्ष कम उम्री में न मरते होंगे और बीमा-कम्पनियों को कदाचित् १००-२०० बीमा किये गये मनुष्यों में से, साल भर में, केवल एक आदमी के कारण विशेष हानि उठानी पड़ती होगी। शेष मनुष्य उनके कोष को बराबर विवर्धित ही करते रहते होंगे। इन बातों से स्पष्ट है कि बीमा कराने वालों को आर्थिक-हानि-का होना बहुत अधिक सम्भव है। पर आर्थिक लाभ बहुत कम है, और वह लाभ भी कैसा कि जानही पर बीत जाय! अतः जिन लोगों के घर में खाने भर का भी सुभीता हो, जिनकी कम उम्री में अकाल-मृत्यु हो जाने पर भी उनके लड़के बालों को भरण पोषण की तकलीफ़ होने का खटका न हो, जो ऐसे दृढ़ चित्त न हों कि बिना किसी विशेष बंधन के उन्हें कुछ बचा रखना असम्भव सा हो, और जिन्हें मृत्यु पर जुवा खेलने की लालुपता न हो, ऐसे मनुष्यों को जीवन-बीमा कराना, जब तक कि कोई गुप्त भेद न हो, एक दम अनावश्यक, अनुपकारी, और हानि-कर समझना चाहिए।

नीचे हम केवल दो नक़्शे दिये देते हैं जिन पर ध्यान देने से पाठकों को हानि-लाभ का ब्यौरा भली भाँति ज्ञात हो जायगा। इनमें दोनों बीमे पाँच पाँच हज़ार रुपये के, ३० वर्ष की अवस्था में कराये हुए, माने गये हैं, जिनमें से पहले में ५५ साल पूरे होने, अथवा उसके प्रथम मृत्यु हो जाने पर, तत्काल ही रुपया पाने की शर्त है; और दूसरे में केवल मृत्यु के बाद। हमने इनमें ब्यौरे-वार दिखा दिया है कि बीमा कराने के बाद कितने दिनों पर मर जाने से किसी मनुष्य को कितना रुपया उस समय तक देना पड़ेगा और उसे क्या लाभ अथवा हानि होगी। प्रथम क़िस्त अदा करने के साल भर पीछे से साल साल का सूद हमने केवल ४ रुपये सैकड़ा सालाना के हिसाब से जोड़ा है। यद्यपि इससे अधिक सूद बहुत प्रामाणिक बैंकों से मिल सकता है, एवं

* सन् १९०१ की भारतीय मनुष्य-गणना की रिपोर्ट, ज़िल्द १, भाग १, पृष्ठ ४७९, देखो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़मींदारी ख़रीद लेने से कम से कम ५ रुपये सैकड़ा सालाना मुनाफ़ा होता है और १५-२० वर्ष में उसका मूल्य डेढ़ा दूना हो जाना सम्भव है, पर घटने का बहुत ही कम खटका रहता है।

नक़्शा (१); ५५ साल या उससे पहले मृत्यु पर बीमे का रुपया मिले।

३० साल की उम्र में ५००० रुपये का बीमा। चन्दा मासिक १८॥); वार्षिक २२२)

बीमा कराने के जितने साल बाद मनुष्य मरे	उस समय तक उसे कितना रुपया देना पड़ा: पिछले साल की रक़म	उस पर ४ रुपये फ़ी सदी सालाना सूद	वर्तमान साल की क़िस्त	जोड़	मुनाफ़ा या घाटा	कैफ़ियत
	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया	
१	...	...	२२२	२२२	४७७८ मुनाफ़ा	एक से १६ साल के भीतर, अर्थात् ३१ से ४६ वर्ष की अवस्था में, मर जाने से लाभ होगा; पर इसके बाद हानि हो हानि है।
२	२२२	९	२२२	४५३	४५४७ ,,	
३	४५३	१८	२२२	६९३	४३०७ ,,	
४	६९३	२८	२२२	९४३	४०५७ ,,	
५	९४३	३८	२२२	१२०३	३७९७ ,,	
६	१२०३	४८	२२२	१४७३	३५२७ ,,	
७	१४७३	५९	२२२	१७५४	३२४६ ,,	
८	१७५४	७०	२२२	२०४६	२९५४ ,,	
९	२०४६	८२	२२२	२३५०	२६५० ,,	
१०	२३५०	९४	२२२	२६६६	२३३४ ,,	
११	२६६६	१०६	२२२	२९९४	२००६ ,,	
१२	२९९४	१२०	२२२	३३३६	१६६४ ,,	
१३	३३३६	१३३	२२२	३६९१	१३०९ ,,	
१४	३६९१	१४८	२२२	४०६१	९३९ ,,	
१५	४०६१	१६२	२२२	४४४५	५५५ ,,	
१६	४४४५	१७८	२२२	४८४५	१५५ ,,	
१७	४८४५	१९४	२२२	५२६१	२६१ घाटा	१७वें साल से घाटा होना प्रारम्भ हुआ। अर्थात् ४७ साल की उम्र से। अतः यदि वह मनुष्य ५५ साल जी जाय तो कम्पनी को ४२४५) उससे लाभ हो।
१८	५२६१	२१०	२२२	५६९३	६९३ ,,	
१९	५६९३	२२८	२२२	६१४३	११४३ ,,	
२०	६१४३	२४६	२२२	६६११	१६११ ,,	
२१	६६११	२६४	२२२	७०९७	२०९७ ,,	
२२	७०९७	२८४	२२२	७६०३	२६०३ ,,	
२३	७६०३	३०४	२२२	८१२९	३१२९ ,,	
२४	८१२९	३२५	२२२	८६७६	३६७६ ,,	
२५*	८६७६	३४७	२२२	९२४५	४२४५ ,,	

* अर्थात् यदि वह मनुष्य २५ साल तक जीता रहे और ५५ साल का होजाय तो उस समय तक वह बीमा-कम्पनी को ९२४५) दे चुकेगा और केवल ५०००) पावेगा। इस तरह ४२४५) के घाटे में रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक़शा (२); मृत्यु ही पर बीमे का रुपया मिले।

३० साल की उम्र में ५०००) का बीमा। चन्दा मासिक १२।।।); वार्षिक १५३)

बीमा कराने के जितने साल बाद मनुष्य मरे	उस समय तक उसे कितना रुपया देना पड़ा				मुनाफ़ा या घाटा	कैफ़ियत
	पिछले साल की रक़म	उस पर ४ रुपये फ़ी सदी सालाना सूद	वर्तमान साल की क़िस्त	जोड़		
	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया	
१	...	...	१५३	१५३	४८४७ मुनाफ़ा	२१ वर्ष तक, अर्थात् ५१ साल की उम्र तक मर जाने से लाभ है। इसके बाद जीवन-पर्यंत हानि ही हानि है। जितना ही अधिक मनुष्य ज़िन्दा रहे उतना ही अधिक हानि!
२	१५३	६	१५३	३१२	४६८८ ,,	
३	३१२	१२	१५३	४७७	४५२३ ,,	
४	४७७	१९	१५३	६४९	४३५१ ,,	
५	६४९	२६	१५३	८२८	४१७२ ,,	
६	८२८	३३	१५३	१०१४	३९८६ ,,	
७	१०१४	४०	१५३	१२०७	३७९३ ,,	
८	१२०७	४८	१५३	१४०८	३५९२ ,,	
९	१४०८	५६	१५३	१६१७	३३८३ ,,	
१०	१६१७	६४	१५३	१८३४	३१६६ ,,	
११	१८३४	७३	१५३	२०६०	२९४० ,,	
१२	२०६०	८२	१५३	२२९५	२७०५ ,,	
१३	२२९५	९२	१५३	२५४०	२४६० ,,	
१४	२५४०	१०२	१५३	२७९५	२२०५ ,,	
१५	२७९५	११२	१५३	३०६०	१९४० ,,	
१६	३०६०	१२२	१५३	३३३५	१६६५ ,,	
१७	३३३५	१३३	१५३	३६२१	१३७९ ,,	
१८	३६२१	१४५	१५३	३९१९	१०८१ ,,	
१९	३९१९	१५७	१५३	४२२९	७७१ ,,	
२०	४२२९	१६९	१५३	४५५१	४४९ ,,	
२१	४५५१	१८२	१५३	४८८६	११४ ,,	
२२	४८८६	१९५	१५३	५२३४	२३४ घाटा	५२वें साल से हानि शुरू।
२३	५२३४	२०९	१५३	५५९६	५९६ ,,	
२४	५५९६	२२४	१५३	५९७३	९७३ ,,	
२५	५९७३	२३९	१५३	६३६५	१३६५ ,,	
२६	६३६५	२५४	१५३	६७७२	१७७२ ,,	
२७	६७७२	२७१	१५३	७१९६	२१९६ ,,	
२८	७१९६	२८८	१५३	७६३७	२६३७ ,,	
२९	७६३७	३०५	१५३	८०९५	३०९५ ,,	
३०	८०९५	३२४	१५३	८५७२	३५७२ ,,	६०वां साल।
३१	८५७२	३४३	१५३	९०६८	४०६८ ,,	
३२	९०६८	३६२	१५३	९५८३	४५८३ ,,	
३३	९५८३	३८३	१५३	१०११९	५११९ ,,	
३४	१०११९	४०५	१५३	१०६७७	५६७७ ,,	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक़शा (२); मृत्यु ही पर बीमे का रुपया मिले।

३० साल की उम्र में ५०००) का बीमा। चन्दा मासिक १२।।।); वार्षिक १५३)

बीमा कराने के जितने साल बाद मनुष्य मरे	उस समय तक उसे कितना रुपया देना पड़ा				मुनाफ़ा या घाटा	कैफ़ियत
	पिछले साल की रक़म	उस पर ४ रुपये फ़ी सदी सालाना सूद	वर्तमान साल की क़िस्त	जोड़		
	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया	रुपया	
३५	१०६७७	४२७	१५३	११२५७	६२५७ घाटा	६५वां साल।
३६	११२५७	४५०	१५३	११८६०	६८६० ,,	
३७	११८६०	४७४	१५३	१२४८७	७४८७ ,,	
३८	१२४८७	४९९	१५३	१३१३९	८१३९ ,,	
३९	१३१३९	५२५	१५३	१३८१७	८८१७ ,,	
४०	१३८१७	५५२	१५३	१४५२२	९५२२ ,,	
४१	१४५२२	५८१	१५३	१५२५६	१०२५६ ,,	७१वां साल।
४२	१५२५६	६१०	१५३	१६०१९	११०१९ ,,	
४३	१६०१९	६४१	१५३	१६८१३	११८१३ ,,	
४४	१६८१३	६७२	१५३	१७६३८	१२६३८ ,,	
४५	१७६३८	७०५	१५३	१८४९६	१३४९६ ,,	
४६	१८४९६	७४०	१५३	१९३८९	१४३८९ ,,	
४७	१९३८९	७७६	१५३	२०३१८	१५३१८ ,,	७७वां साल।
४८	२०३१८	८१२	१५३	२१२८३	१६२८३ ,,	
४९	२१२८३	८५१	१५३	२२२८७	१७२८७ ,,	
५०	२२२८७	८९१	१५३	२३३३१	१८३३१ ,,	८०वां साल।

क्या ८० वर्ष तक किसी अच्छे स्वास्थ वाले मनुष्य का जीता रहना असम्भव है? कम से कम ६०-६५ तक तो वह अवश्य ही चलेगा। सो उसे सवा अठारह हज़ार से लेकर साढ़े तीन हज़ार, अथवा सवा छः हज़ार रुपये का घाटा पड़ना ही अधिकांश में सम्भव है। कम से कम इन नक़शों से इतना स्पष्ट विदित हो जाता है कि बीमा कराने वालों को कुछ न कुछ आर्थिक-हानि की सम्भावना बहुत विशेष रहती है। अतः बिना आवश्यकता के जीवन-बीमा कराना भूल है। पर आवश्यकता वालों को बीमा अवश्य कराना चाहिए; नहीं तो सम्भव है कि बुढ़ापे में स्वयं वे अथवा उन की अकाल मृत्यु से उनके लड़के बाले, एक एक कौड़ी के लिए मारे मारे फिरें। हानि का तो यह हाल है कि पहले नक़शे के अनुसार ४७ वें, और दूसरे के अनुसार ५२ वें, साल से बीमा किये गये मनुष्य घाटा उठाने लगते हैं! भला घाटे का कहीं ठिकाना है!! और जो कहीं कोई दूसरे नक़शे वाला मनुष्य ९०-९५ वर्ष तक जी गया, तो वह मानो बीमा-कम्पनी के लिए कल्प-वृक्ष ही हो गया!!!

बहुत सा कम्पनियाँ कुछ दिनों के बाद कुछ सूद भी देने लगती हैं। बहुतेरी अपने मुनाफ़े का कुछ अंश भी देती हैं। और्रों में अन्य अनेक प्रकार के लाभ दिखलाये जाते हैं। पर जाँच और हिसाब करने पर, अथवा योंही विचार करने से, प्रत्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112834

ज्ञात होगा कि बीमा करानेवाले को सदा हानि ही उठाने की सम्भावना रहा करती है। और ऐसा तो होना ही चाहिए; क्योंकि कम्पनियाँ बीमे का काम, व्यापार के तौर पर, करती हैं, न कि किसी पर कुछ एहसान करने के लिए। अतः वे अवश्य ही सदा अपने लाभ की ओर ध्यान रक्खेंगी। जो कम्पनियाँ आप को अपना हिस्सेदार बनावेंगी उनमें भी जाँच से कुछ ऐसे ही पेंच निकलेंगे, जिन के कारण उनके वास्तविक संचालकों ही को ठीक ठीक मुनाफ़ा पहुँचता हुआ विदित हो जायगा। इससे सब बातों पर ख़ूब सोच विचार करही बीमा कराना चाहिए।

हमारी समझ में (१) केवल उन्हीं लोगों को जीवन-बीमा कराना चाहिए, जिनको बुढ़ापे में स्वयं अपने, अथवा अकाल मृत्यु हो जाने पर बाल-बच्चों के, भूखों मरने का खटका हो। उन्हें भी केवल इतने रुपये का बीमा कराना चाहिए जितना भरण पोषण के लिए आवश्यक हो (२) तमाम उम्र की अपेक्षा ५५ साल वाला बीमा श्रेष्ठतर है; क्योंकि उसमें बहुत अधिक हानि नहीं हो सकती; पर हाँ उसे आपत्काल के लिए रख ले, चाट न जाय। (३) धन-सम्पन्न लोगों को इस झगड़े में न पड़ना चाहिए। अधिक रुपये का बीमा कराना भूल है। बीमा कम्पनियों के एजंटों की बातों में पड़ना समझदार का काम नहीं। उनकी बातों से तो यही जान पड़ता है कि बीमा-कम्पनियाँ मानो धर्मशाला ही खोले बैठी हैं। और उनकी बातें ऐसी ही होनी भी चाहिएँ, क्योंकि उन्हें तो आप को किसी न किसी भाँति फँसाकर अपना कमीशन झटक लेना ही ठहरा! पर "सेठ फुलाँ दास करोड़पती" के बीमा कराने की बात एजंट द्वारा सुन कर यह कदापि उचित नहीं, कि हम भी वैसा अवश्य कर डालें, चाहे ऊपर लिखे हुए विचारों के अनुसार हमें बीमा कराना हानि-कारी ही क्यों न हो! न जानें "सेठ फुलाँ दास करोड़पती" ने किस विचार से बीमा कराया हो। क्या हम अपनी बात ख़ुद नहीं विचार सकते?

श्यामबिहारी मिश्र।
शुकदेवबिहारी मिश्र।

मनोरञ्जक श्लोक।

[१]

श्रुत्वाऽपि न स्तौति शिरःप्रकम्पैर्यः कोऽपि काव्यं परमं परस्य।
वयं पुनः पूरुषसंज्ञकं तं विषाणहीनं पशुमेव विद्मः॥

जो आदमी दूसरे की परमोत्तम कविता को भी सुनकर सिर हिला कर उसकी प्रशंसा नहीं करता, हमारी सम्मति में तो, वह नाम मात्र का ही पुरुष है। हम तो उसे बिना सींग का पशु ही समझते हैं।

[२]

अनभिज्ञः समासाद्य कवितां गुणवत्तमाम्।
सीदति स्वयमेवाहो रासभः शर्करामिव॥

घूर पर कूड़े में मुँह डालनेवाले गर्दभ के सामने यदि कोई शर्करा का ढेर लगा दे तो भी माधुर्यरसानभिज्ञ गर्दभ उस ढेर को देख कर दुःखित ही होता है। ठीक इसी तरह, गुणोत्कृष्ट कविता को पाकर मूर्ख आदमी भी महादुखी होता है। जिस प्रकार शर्करा के आनन्द को गर्दभ नहीं जानता, इसी तरह मूर्ख भी कविता के आनन्द को नहीं जान सकता।

रामजीलाल शर्म्मा।

☞ नोट—"विज्ञापनों" के अन्त में "नये नियम" और "ग्राहकों से निवेदन" वाला हमारा विज्ञापन कृपा कर अवश्य पढ़िएगा।

पुस्तकालय गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

REP

ley,
ng a
Derm

trie
chi
wit

Ne
uto
you
the
ern
to
cra
att
A
S

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

IIR834

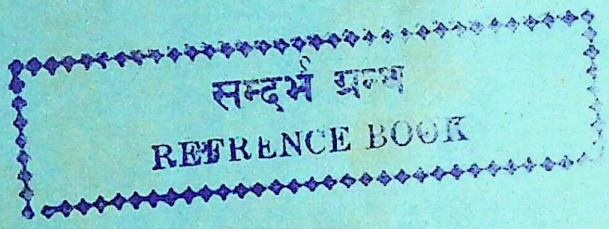

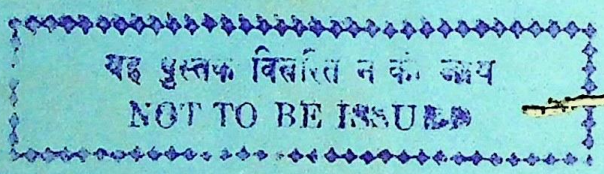

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri